ओ३म्

वाल्मीकि रामायण

आर्यटीका

(प्रथम भाग)

टीकाकार :

पं० आर्यमुनि जी

प्रकाशक :

हरयाणा साहित्य संस्थान

गुरुकुल झज्जर (रोहतक)

ओ३म्

वाल्मीकि-रामायण

आर्यटीका

(प्रथम भाग)

टीकाकार :

पं० आर्यमुनि जी

प्रकाशक :

हरयाणा साहित्य संस्थान

गुरुकुल झज्जर (रोहतक)

प्रकाशकः-
हरयाणा साहित्य संस्थान
गुरुकुल झज्जर, रोहतक
दूरभाष: २०४४

मूल्यः- १६० रुपये

मुद्रकः-
वेदव्रत शास्त्री
आचार्य ऑफसेट प्रेस
गोहाना रोड, रोहतक
फोनः- **72874**

प्रकाशकीय वक्तव्य

वेदों की शिक्षा के अनुसार आदर्श जीवन जीने से व्यक्ति महापुरुष बन जाते हैं। इनके सन्तान भी इन्हीं का अनुसरण करके वीर धीर निडर विद्वान् तथा परोपकारी बनने का यत्न करते हैं। नीतिग्रन्थों में कहा है:-

महाजनो येन गतः सः पन्थाः

जिस मार्ग से चलकर पिता, ज्ञानी, विद्वान् आदि हमारे पूर्वज सच्चा सुख और शान्ति पा चुके हैं, हमें भी कल्याण के लिए उसी मार्ग का अनुसरण करना चाहिये। ऐसे आचरण की शिक्षा हमें अपने प्राचीन इतिहास से मिलती है। उपनिषद् में प्राचीन इतिहास को **"इतिहासपुराणः पञ्चमो वेदानां वेदः"** पांचवां वेद कहा है।

भारतवर्ष के प्राचीन इतिहास के दो ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं:-

१. महर्षि वाल्मीकिकृत रामायण और २.महर्षि वेदव्यासकृत महाभारत। इन्हीं के द्वारा भारत के पुरातन इतिहास की बहुत महत्त्वपूर्ण जानकारी मिलती है। इसी प्रकार के इतिहासग्रन्थ और भी रहे होंगे किन्तु विदेशी आक्रमणकारियों ने अपने हमाम = स्नानागार में पानी गर्म करने के लिये उन ग्रन्थों से इन्धन का काम लिया। सैंकड़ों वर्षों तक पुस्तकालय जलाये जाते रहे। किसी कवि ने ठीक ही कहा है:-

वेद पुराने विद्या के खजाने, उनको जलाया।
अविद्या पापिनी तैंने क्या रंग दिखाया।।

रामायण-महाभारत इन दोनों ऐतिहासिक ग्रन्थों का वास्तविक स्वरूप भी प्रक्षेपकर्त्ता, स्वार्थी एवं पाखण्डियों ने बिगाड़कर रख दिया है। इससे सत्यासत्य का यथार्थ ज्ञान करने में बड़ी कठिनाई आगे आती है। पुनरपि श्री राम के आदर्शरूप की झांकी रामायण में बहुत स्थलों पर देखी जा सकती है। राम के आदर्श गुणों की चर्चा महर्षि वाल्मीकि ने इस प्रकार की है:-

इक्ष्वाकुवंशप्रभवो रामो नाम जनैः श्रुतः।
नियतात्मा महावीर्यो द्युतिमान् धृतिमान् वशी।।८।।
बुद्धिमान् नीतिमान् वाग्मी श्रीमाञ्छत्रुनिबर्हणः।
विपुलांसो महाबाहुः कम्बुग्रीवो महाधनुः।।९।।
महोरस्को महेष्वासो गूढजत्रुररिन्दमः।
आजानुबाहुः सुशिराः सुललाटः सुविक्रमः।।१०।।

समः समविभक्तांगः स्निग्धवर्णः प्रतापवान् ।
पीनवक्षा विशालाक्षो लक्ष्मीवाञ्छुभलक्षणः ।।११।।
धर्मज्ञः सत्यसन्धश्च प्रजानां च हिते रतः ।
यशस्वी ज्ञानसम्पन्नः शुचिर्वश्यः समाधिमान् ।।१२।।

इस प्रकार ७० गुणों से युक्त श्री रामचन्द्र जी का वर्णन रामायण में मिलता है। इन गुणों के कारण ही लाखों वर्ष व्यतीत हो जाने पर भी सारे संसार में आबालवृद्धवनिता सभी राम को अपना पूज्य मानते हैं। ऐसे महापुरुष का जीवन सभी के लिये ज्ञातव्य, पठनीय तथा अनुकरणीय है।

विश्व की अनेक प्रसिद्ध भषाओं अंग्रेजी, रसियन, जर्मन आदि में रामायण का अनुवाद मिलता है। मैं अमेरिका के बर्कले विश्वविद्यालय में गया,वहां संस्कृत के ५-६ प्रवक्ता वाल्मीकिरामायण का अनुवाद इंगलिश में कर रहे थे। बर्कले विश्वविद्यालय में इतिहासविभाग की प्रवक्ता प्रो० डा० जोयना विलियम्स के घर पर जर्मनी भाषा की रामायण देखने को मिली। इण्डोनेशिया में योग्याकार्ता के पर्वत पर पत्थर की सुन्दर मूर्तियों से निर्मित मर्यादापुरुषोत्तम श्री रामचन्द्र का जीवन चरित देखने को मिला। थाईलैण्ड की राजधानी बैंकाक में भित्तिचित्रों के द्वारा रामायण के बड़े सुन्दर दृश्य दिखाये गये हैं। बैंकाक के संग्रहालय के सामने अष्टधातु से बनी धनुर्धर राम की बड़ी सुन्दर प्रतिमा लगी हुई है। जब मैं प्रथम वार थाईलैंड गया उस समय वहां नवां राम राज्य कर रहा था। वहां अयोध्या नगरी और मिथिला पुरी भी बसी हुई हैं।

लन्दन के ब्रिटिश म्यूजियम की लायब्रेरी में हस्तलिखित वाल्मीकिरामायण देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। वह रामायण चार खण्डों में थी। उस रामायण का प्रत्येक खण्ड बीस-बीस किलो से कम भारी नहीं था, इस प्रकार उस रामायण में कम से कम २ मन भार होगा। यह रामायण उदयपुर के महाराजा जगत्सिंह जी ने संवत् १७०३ में जैन साधु सोमदेव सूरि के द्वारा लिखवाकर तैयार करवाई थी। यह बहुत ही सुन्दर संस्करण है। इसके एक पृष्ठ पर अर्थसहित श्लोक लिखे हैं तथा उसी पृष्ठ के सामने उसी वर्ण्य विषयवस्तु को अत्यन्त सुन्दर रंगीन चित्र के द्वारा दिखाया गया है, सारी रामायण इसी प्रकार से है। ब्रिटिश संग्रहालय में भारतीय कक्ष के संरक्षक (Keeper) मेरे मित्र श्री डब्ल्यू ज्वालफ की कृपा से यह सुन्दर रामायण मुझे देखने को मिली। मैंने कई घण्टे लगाकर इस महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ को आद्योपान्त भलीभांति देखा।

बालीद्वीप में छायात्रियों के द्वारा प्रतिदिन रामायण और महाभारत का इतिहास दिखाया जाता है। पहली वार जब मैं बालीद्वीप में गया तो महाभारत का युद्ध छायाचित्रों के द्वारा देखा था। बाली में रामायण महाभारत की बड़ी सुन्दर मूर्तियां लकड़ी, पत्थर, चमड़ा और कागज की बनाई जाती हैं। अरबों रुपयों की सुन्दर मूर्तियों का विक्रय वहां से प्रतिवर्ष होता है। अन्य देशों से आनेवाले पर्यटक यात्री इन्हें खरीदकर ले जाते हैं। यह वहां का एक मुख्य व्यापार है। दो मूर्तियां मैं भी खरीदकर लाया था। एक काष्ठ की सुन्दर मूर्ति महारानी सीता की है, उसमें वीर हनुमान् राम की अंगूठी माता सीता को अशोकवाटिका में भेंट कर रहा है। दूसरी महाराजा युधिष्ठिर की चमड़े की मूर्ति है। बाली की शिल्पकला में सबसे बड़ी कला मूर्तिकला ही है। इस विषय में वह समृद्ध देश है। उसकी आय का सबसे बड़ा साधन मूर्तियों का व्यापार ही है। किन्तु आश्चर्य और हर्ष की वार्ता है कि वहां जितने भी मन्दिर हैं उनमें किसी भी महापुरुष की कोई प्रतिमा (मूर्ति) स्थापित नहीं है और न किसी मूर्ति की पूजा ही होती है। सारे बालीद्वीप में २५ लाख से अधिक वैदिकधर्मी हैं, वे किसी भी मूर्ति की पूजा नहीं करते। बालीद्वीप की भाषा में भी रामायण छपी हुई है। उस द्वीप में भारत की प्रचलित सैंकड़ों जातियों की भांति जातियाँ नहीं हैं, किन्तु वहां केवल चार जातियां = वर्ण हैं, यथा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र।

यह सब कुछ देखकर मुझ पर यह प्रभाव पड़ा कि इन द्वीपों में अगस्त्य आदि ऋषि गये होंगे, उन्होंने ही यहां वैदिक धर्म का प्रचार किया। इसीलिये जब वहां के लोग सन्ध्योपासनादि करते हैं तो आरम्भ में गायत्री मन्त्र का पाठ करते हैं। वहां अगस्त्य कुण्ड और मन्दिर भी बने हैं। वेद भगवान् की आज्ञा के अनुसार वे लोग मुर्दा जलाते हैं। मिलते समय परस्पर अभिवादन के लिये नमोनमः बोलते हैं। इन बातों से सिद्ध है कि भारतवर्ष की अपेक्षा बाली और थाइलैण्ड में राम और रामायण का प्रचार बहुत अधिक है। जब कि इसका मूलस्रोत भारत ही रहा है। इतना सब होने पर भी मर्यादापुरुषोत्तम राम और योगेश्वर श्री कृष्ण जैसे महापुरुषों ने इस देश पर राज्य किया। श्रेष्ठों की रक्षा की और दुष्टों को यथायोग्य दण्ड दिया। इनके मन्दिर तो भारतवर्ष में मिलने ही चाहियें। इसलिये विशेष प्रयत्न करने पर हमें रामायण के तीन मन्दिर उत्तर प्रदेश के एटा, हरयाणा के जींद और राजस्थान के भादरा में मिले हैं। ये गुप्तकाल से पूर्व के हैं। इनमें से मिली रामायण के दृश्यों से अंकित ३० मृण्मूर्तियां हमारे पुरातत्त्व संग्रहालय गुरुकुल झज्जर में हैं। इसी प्रकार महाभारत-कालीन अस्त्र शस्त्र भी कई सौ हमारे यहां विद्यमान हैं। इस विषय पर कभी विस्तार से लिखूंगा।

इस समय तो पाठकों की सेवा में पं० आर्यमुनिकृत आर्यभाषानुवाद सहित वाल्मीकिरामायण प्रकाशित करके उपस्थित कर रहा हूं। यह ग्रन्थ ८१ वर्ष पूर्व सन् १९१२ में लाहौर में छपा था। इतने लम्बे समय के बाद इसके पुनः प्रकाशन का प्रयास हमारी संस्था ने किया है। आशा है पाठक इसका अध्ययन करके लाभ उठायेंगे।

निवेदक
स्वामी ओमानन्द सरस्वती
आचार्य गुरुकुल झज्जर

१९-११-१९९३ ई०

विशेष सूचना

पाठकों को विदित हो कि "वाल्मीकि रामायण" बहुत बड़ा ग्रन्थ होने से हमने इसको दो भागों में विभक्त कर निकालना निश्चित किया है, इस प्रथम भाग = पूर्वार्द्ध में बालकाण्ड अयोध्याकाण्ड और अरण्यकाण्ड यह तीन काण्ड हैं और शेष तीन काण्ड द्वितीय भाग = उत्तरार्द्ध में होंगे।

वाल्मीकिरामायण में वास्तविक कितने श्लोक हैं ? जो निकाले गये, वह क्यों निकाले ? इस का ब्योरा स्पष्टतया रामायण की भूमिका में दर्शाया जायेगा जो द्वितीय भाग के साथ होगी। उसी में अश्लील तथा असम्भव कथाओं को भी संक्षेप से लिखकर उनके प्रक्षिप्त होने में पुष्ट प्रमाण दिये जायेंगे जिनसे विदित होगा कि यह वाल्मीकि रचित नहीं।

इस रामायण में हमने प्रक्षिप्त श्लोक छोड़े हैं और रामायण की वास्तविक कथा सब ज्यों की त्यों रखी हैं, हां कहीं-कहीं अनुपयुक्त विस्तार का संक्षेप करके महर्षि वाल्मीकि के आशय को मन्थन करने का यत्न किया गया है, जिसका सब ब्योरा इसकी भूमिका में स्पष्ट है।।

इस आकर ग्रन्थ के प्रक्षिप्त विषय में कोई त्रुटि रह गई हो अथवा कोई प्रक्षिप्त श्लोक इस आर्यटीका में रह गया हो तो जानने जनाने पर द्वितीयावृत्ति में ठीक कर दिया जायेगा, जो आशा है शीघ्र ही छपेगी।।

श्री पं० आर्यमुनि जी महाराज के विशेषकर सामाजिक प्रोग्राम में बाहर रहने के कारण तथा अक्षर योजकों के प्रमाद से छपाई में कहीं-कहीं मात्रा तथा वर्णादिकों की अशुद्धियां दृष्टिगत होती हैं, सो आशा है पाठकगण स्वयं ठीक कर लेंगे और द्वितीय भाग में इसका पूर्ण प्रबन्ध किया गया है जो आशा है तीन-चार मास तक पाठकों के समीप पहुंचेगा।।

वैदिक धर्म का सेवक
देवदत्त शर्मा
लाहौर

✷ ओ३म् ✷

वाल्मीकिरामायण की विषयसूची

*****

बालकाण्ड

अयोध्याकाण्ड

अरण्यकाण्ड

अथ वाल्मीकिरामायणार्य्यटीका प्रारभ्यते

तपःस्वाध्यायनिरतं तपस्वी वाग्विदां वरम् ।
नारदं परिपप्रच्छ वाल्मीकिर्मुनिपुंगवम् ॥ १ ॥

अर्थ—यम नियमादि व्रत, स्वाध्याय सम्पन्न तथा ब्रह्मवेत्ताओं में उत्तम तपस्वी नारद से मुनिवर वाल्मीकि ने पूछा कि :

कोन्वस्मिन्सांप्रतं लोके गुणवान्कश्च वीर्यवान् ।
धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च सत्यवाक्यो दृढव्रतः ॥ २ ॥

अर्थ—हे भगवन् ! इस लोक में सम्प्रति सब से उत्तम गुणों वाला तथा शस्त्र अस्त्रादि बल सम्पन्न, धर्मज्ञ, कृतज्ञ, सत्यवादी और आपत्काल में भी सदाचार का परित्याग न करने वाला कौन है ?

चारित्रेण च को युक्तः सर्वभूतेषु को हितः ।
विद्वान्कः कः समर्थश्च कश्चैकप्रियदर्शनः ॥ ३ ॥

अर्थ—सब भूतों का हित करने वाला, आत्मा तथा अनात्मा का विवेकी, प्रजा पालनादि कर्मों में निपुण और प्रियदर्शन कौन है ?

आत्मवान्को जितक्रोधो द्युतिमान्कोऽनसूयकः ।
कस्य बिभ्यति देवाश्च जातरोषस्य संयुगे ॥ ४ ॥

अर्थ–मन को वश किये हुए जितक्रोध=जिसने क्रोध को जीत लिया है, द्युतिमान् तथा ईर्षा से रहित और युद्ध में कुपित होने पर जिसके पराक्रम को न सहारते हुए बड़े २ शूरवीर भी भयभीत होते हैं, ऐसा महापुरुष कौन है ?

एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं परं कौतूहलं हि मे ।
महर्षे त्वं समर्थोऽसि ज्ञातुमेवंविधं नरम् ॥ ५ ॥

अर्थ–हे महर्षे ! उक्त गुणों वाले महापुरुष का जीवनचरित्र श्रवण करने के लिये मेरे चित्त में अत्यन्त उत्साह है कृपाकर कथन करें ।

श्रुत्वा चैतत्त्रिलोकज्ञो वाल्मीकेर्नारदो वचः ।
श्रूयतामिति चामन्त्र्य प्रहृष्टो वाक्यमब्रवीत् ॥ ६ ॥

अर्थ–इस प्रकार वाल्मीकि के वचन को सुनकर त्रिलोकज्ञ=कर्म, उपासना तथा ज्ञानकाण्ड रूप वेदत्रयी के जानने वाले नारद प्रसन्न होकर बोले कि :–

बहवो दुर्लभाश्चैव ये त्वया कीर्तिता गुणाः ।
मुने वक्ष्याम्यहं बुद्ध्वा तैर्युक्तः श्रूयतां नरः॥७॥

अर्थ–हे ऋषे ! जो आपने गुण कथन किये हैं वह प्रायः सर्वसाधारण पुरुषों में दुर्लभ हैं परन्तु मैं उस महापुरुष का चरित्र कथन करता हूं जो उक्त गुणों से सम्पन्न है ।

इक्ष्वाकुवंशप्रभवो रामो नाम जनैः श्रुतः ।
नियतात्मा महावीर्यो द्युतिमान्धृतिमान्वशी ॥८॥

अर्थ–इक्ष्वाकु वंश में उत्पन्न एक महापुरुष " रामचन्द्र " है

जो जितेन्द्रिय, महावीर्य्य, कान्तिमान्, धैर्य्यसम्पन्न और वशी= आकर्षणशील है।

बुद्धिमान्नीतिमान्वाग्मी श्रीमाञ्छत्रुनिबर्हणः।
विपुलांसो महाबाहुः कम्बुग्रीवो महाहनुः ॥९॥

अर्थ–बुद्धिमान्, नीतिज्ञ, मधुरभाषी, श्रीमान् और शत्रुओं को पराजित करने वाला है जिसके वृषभ के समान कंधे बड़ी भुजा, कंबू=शंख के समान ग्रीवा और जिसकी हनु=ठोड़ी भरी हुई है।

महोरस्को महेष्वासो गूढजत्रुररिंदमः।
आजानुबाहुः सुशिराः सुललाटः सुविक्रमः ॥१०॥

अर्थ–जिसकी छाती विशाल है, वक्ष्यस्थलगत स्थियें मांसल होने से दृष्टिगत नहीं होतीं, जो बड़े धनुष को धारण करने वाला तथा दीर्घबाहू विशाल मस्तक, छत्राकार=गोल सिर वाला और मनोहर गति वाला है।

समः समविभक्ताङ्गःस्निग्धवर्णः प्रतापवान्।
पीनवक्षा विशालाक्षो लक्ष्मीवाञ्छुभलक्षणः॥११॥

अर्थ–जो न बहुत लम्बा और न बहुत ठिगना समान अंगों वाला=सुडौल शरीर, सुदर्शन, प्रतापशाली, विशाल नयन और लक्ष्मीवान् इत्यादि अनेक शुभ लक्षण युक्त है।

धर्मज्ञः सत्यसंधश्च प्रजानां च हिते रतः।
यशस्वी ज्ञानसंपन्नः शुचिर्वश्यः समाधिमान्॥१२॥

अर्थ–धर्मज्ञ, सत्यप्रतिज्ञ, प्रजाहितकारी, यशस्वी, ब्रह्मज्ञानी, बाह्याभ्यन्तर शौचसम्पन्न, सुशिक्षित तथा योगसम्पन्न है।

प्रजापतिसमः श्रीमान्धाता रिपुनिषूदनः ।
रक्षिता जीवलोकस्य धर्मस्य परिरक्षिता ॥ १३ ॥

अर्थ–प्रजापति=ब्रह्मा के समान शास्त्रज्ञ, प्रजा के धारण पोषण में समर्थ, शत्रु हन्ता, सब जीवों का रक्षक और वर्णाश्रमों के धर्मों की मर्यादा का स्थापन करने वाला है ।

रक्षिता स्वस्य धर्मस्य स्वजनस्य च रक्षिता ।
वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञो धनुर्वेदे च निष्ठितः ॥ १४ ॥

अर्थ–यज्ञादि श्रौतकर्मों का अनुष्ठाता, अपने सेवकों का पालक, वेद वेदाङ्गों के तत्व को जानने वाला और विशेषतः धनुर्वेद में निपुण है ।

सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञः स्मृतिमान्प्रतिभानवान्
सर्वलोकप्रियः साधुरदीनात्मा विचक्षणः ॥ १५ ॥

अर्थ–सांख्य, योगादि षट् दर्शनों का वेत्ता, स्मृतिशाली, प्रतिभाशाली, सब लोगों का प्रिय, सदाचारी, क्षात्रधर्म से देदीप्यमान और लौकिक तथा अलौकिक सब क्रियाओं में पण्डित है ।

सर्वदाभिगतः सद्भिः समुद्र इव सिन्धुभिः ।
आर्यः सर्वसमश्चैव सदैव प्रियदर्शनः ॥ १६ ॥

अर्थ–आर्य्य=सर्व पूज्य, सर्वसम=सुख दुःख में हर्ष विषाद से रहित अथवा शत्रु, मित्र तथा उदासीन में समदर्शी, प्रियदर्शन और नदियों से समुद्र की भांति सदा ही साधुओं का आश्रयणीय है ।

स च सर्वगुणोपेतः कौसल्यानन्दवर्धनः ।
समुद्र इव गाम्भीर्ये धैर्येण हिमवानिव ॥ १७ ॥

अर्थ–जो सब गुणों से सम्पन्न, कौसल्या के आनन्द को बढाने वाला, गम्भीरता में समुद्र की भांति और धीरता में हिमालय के समान है ।

विष्णुना सदृशो वीर्ये सोमवत्प्रियदर्शनः ।
कालाग्निसदृशः क्रोधे क्षमया पृथिवीसमः ॥ १८ ॥

अर्थ–पराक्रम में विष्णु के समान, सोम=चन्द्रमा की भांति दर्शन से ही आल्हादकारी, युद्ध समय शत्रुओं को दण्ड देने के लिये क्रोध में कालरूप अग्नि के समान और क्षमा में पृथिवी के सदृश है ।

धनदेन समस्त्यागे सत्ये धर्म इवापरः ।
तमेवंगुणसंपन्नं रामं सत्यपराक्रमम् ॥ १९ ॥

अर्थ–धर्म के लिये धन व्यय करने में कुवेर के समान और सत्य भाषण करने में साक्षात् धर्ममूर्त्ति है, उक्त गुणों से सम्पन्न अमोघ बलशाली और :–

ज्येष्ठं ज्येष्ठगुणैर्युक्तं प्रियं दशरथः सुतम् ।
प्रकृतीनां हितैर्युक्तं प्रकृतिप्रियकाम्यया ॥ २० ॥

अर्थ–जो सब से बड़ा, बड़ों के गुणों से युक्त दशरथ का प्यारा पुत्र सबकी भलाई में तत्पर रहने वाला, सब लोगों के हित की कामना से :—

यौवराज्येन संयोक्तुमैच्छत्प्रीत्या महीपतिः ।
तस्याभिषेकसंभारान्दृष्ट्वा भार्याथ कैकयी ॥ २१ ॥

अर्थ–राजा दशरथ नें युवराज बनाने के लिये सङ्कल्प किया, ऐसे उत्सव में एकत्रित कीहुई सामग्री को देखकर दशरथ की भार्या कैकेयी ने :—

पूर्वं दत्तवरा देवी वरमेनमयाचत ।
विवासनं च रामस्य भरतस्याभिषेचनम् ॥ २२ ॥

अर्थ–राजा के दिये हुए पूर्व दो वरों को मांगकर एक से रामचन्द्र के लिये बनवास और दूसरे से भरत के लिये युवराज होने का आग्रह किया ।

स सत्यवचनाद्राजा धर्मपाशेन संयतः ।
विवासयामास सुतं रामं दशरथः प्रियम् ॥ २३ ॥

अर्थ–सत्यबचनरूप पाश से बंधे हुए राजा दशरथ ने अपने प्रिय पुत्र रामचन्द्र को बनवास दिया ।

स जगाम वनं वीरः प्रतिज्ञामनुपालयन् ।
पितुर्वचननिर्देशात्कैकेय्याः प्रियकारणात् ॥२४॥

अर्थ–वह वीर रामचन्द्र कैकेयी के निमित्त से प्राप्त हुई पिता की आज्ञा पालन करने के लिये वन को गया ।

तं व्रजन्तं प्रियो भ्राता लक्ष्मणोऽनुजगाम ह ।
स्नेहाद्विनयसंपन्नः सुमित्रानन्दवर्धनः ॥ २५ ॥

अर्थ–उसके वन जाते समय सुमित्रा के आनन्द को बढाने

वाला राम का प्रिय भ्राता लक्ष्मण भी भ्रातृस्नेहवश होकर साथ ही बन को चला गया ।

भ्रातरं दयितो भ्रातुः सौभ्रात्रमनुदर्शयन् ।
रामस्य दयिता भार्या नित्यं प्राणसमाहिता ॥२६॥

अर्थ—इस प्रकार लक्ष्मण का सौजन्य और भ्रातृभाव देखकर रामचन्द्र की धर्मपत्नी सीता जो प्राणसमान प्रिय और :—

जनकस्य कुले जाता देवमायेव निर्मिता
सर्वलक्षणसंपन्ना नारीणामुत्तमा वधूः ॥ २७ ॥

अर्थ—जो जनक के घर देवमाया के समान उत्पन्न हुई थी पतिव्रता स्त्रियों के लक्षणों से भूषित जानकी :—

सीताप्यनुगता रामं शशिनं रोहिणी यथा ।
पौरैरनुगतो दूरं पित्रा दशरथेन च ॥ २८ ॥

अर्थ—चन्द्रमा के पीछे चलने वाली रोहिणी के समान राम के साथ वन को गई, इस प्रकार सीता तथा लक्ष्मण के साथ जाते हुए पुरवासी और राजा दशरथ दूरतक उनके साथ गये ॥

शृङ्गवेरपुरे सूतं गङ्गाकूले व्यसर्जयत् ।
गुहमासाद्य धर्मात्मा निषादाधिपतिं प्रियम्॥२९॥

अर्थ—उन लोगों को जो स्नेहवशात् साथ ही वन को जाने के लिये उद्यत हुए थे तथा सारथि को शृङ्गवेर नामक नगर में गंगा के तट पर ही लौटा दिया और आप आगे चलकर धर्मशील निषादों के अधिपति गुह नामक मल्लाह को मिले ॥

गुहेन सहितो रामो लक्ष्मणेन च सीतया ।
ते वनेन वनं गत्वा नदीस्तीर्त्वा बहूदकाः ॥ ३० ॥

अर्थ—और उस गुह द्वारा गंगा के पार होकर लक्ष्मण तथा सीता के साथ रामचन्द्र एक वन से दूसरे वन को जाते समय बहुत जल वाली नदियों को पार करते हुए :—

चित्रकूटमनुप्राप्य भरद्वाजस्य शासनात् ।
रम्यमावसथं कृत्वा रममाणा वने त्रयः ॥ ३१ ॥

अर्थ—चित्रकूट नामक पर्वत पर पहुंचे और वहां महर्षि भरद्वाज की आज्ञानुसार एक सुन्दर कुटिया बनाकर रहने लगे ।

देवगन्धर्वसंकाशास्तत्र ते न्यवसन्सुखम् ।
चित्रकूटं गते रामे पुत्रशोकातुरस्तथा ॥ ३२ ॥

अर्थ—जब देवताओं के समान देदीप्यमान रामचन्द्र ने सुखपूर्वक चित्रकूट में पहुंचकर निवास किया तब उनके पीछे पुत्रशोक से अत्यन्त आतुर होकर राजा दशरथ :—

राजा दशरथः स्वर्गं जगाम विलपन्सुतम् ।
गते तु तस्मिन्भरतो वसिष्ठप्रमुखैर्द्विजैः ॥ ३३ ॥

अर्थ—पुत्र के लिये विलाप करते हुए मृत्यु को प्राप्त होगये, रामचन्द्र के बनवास जाने के अनन्तर वसिष्ठादि द्विजों की आज्ञा होने पर भी भरत ने :—

नियुज्यमानो राज्याय नैच्छद्राज्यं महाबलः ।
स जगाम वनं वीरो रामपादप्रसादकः ॥ ३४ ॥

अर्थ—राज्यसिंहासन के लिये किंचिन्मात्र भी संकल्प न किया और तत्काल ही राम के वियोग को न सहारते हुए उनकी प्रसन्नता के लिये :—

गत्वा तु स महात्मानं रामं सत्यपराक्रमम् ।
अयाचद्भ्रातरं राममार्यभावपुरस्कृतः ॥ ३५ ॥

अर्थ—सच्चे पराक्रम वाले महात्मा भाई राम के समीप पहुंच कर आर्य्यभाव दर्शाते हुए भरतजी विनती करने लगे कि भगवन् कृपा करके :—

त्वमेव राजा धर्मज्ञ इति रामं वचोऽब्रवीत ।
रामोऽपि परमोदारः सुमुखः सुमहायशाः ॥ ३६ ॥
न चैच्छत्पितुरादेशाद्राज्यं रामो महाबलः ।
पादुके चास्य राज्याय न्यासं दत्त्वा पुनःपुनः॥३७॥
निवर्तयामास ततो भरतं भरताग्रजः ।
स काममनवाप्यैव रामपादावुपस्पृशन् ॥ ३८ ॥
नन्दिग्रामेऽकरोद्राज्यं रामागमनकांक्षया ।
गते तु भरते श्रीमान्सत्यसंधो जितेन्द्रियः ॥३९॥
रामस्तु पुनरलक्ष्य नागरस्य जनस्य च ।
तत्रागमनमेकाग्रो दण्डकान्प्रविवेश ह ॥ ४० ॥

अर्थ—अपनी राजधानी अयोध्या में चलें, क्योंकि आप ही राज्य के पात्र हैं, यह सुनकर परम उदार प्रसन्न वदन यशस्वी रामचन्द्र ने पिता की आज्ञा पालन करते हुए भरत के कथन

करने पर भी राज्य को स्वीकार न कर अपने खड़ाऊं देकर भरत को लौटा दिया और कहा कि यह खड़ाऊं हमारे राज्य सम्बन्धी व्यवहार की रक्षा के लिये अमानत हैं, इसके अनन्तर अपनी इच्छापूर्ति न देखकर भरत रामचन्द्रजी को नमस्कार कर लौट आये और नन्दीग्राम नामक नगर में राम की प्रतीक्षा करते हुए राज्य करने लगे, भरत के लौट आने पर सत्यप्रतिज्ञ जितेन्द्रिय रामचन्द्र चित्रकूट में नगरवासी लोगों के गमनागमन को देखकर एकान्त निवास करने के लिये दण्डक बन को चलेगये ॥

प्रविश्य तु महारण्यं रामो राजीवलोचनः।
विराधं राक्षसं हत्वा शरभङ्गं ददर्श ह ॥ ४१ ॥
सुतीक्ष्णं चाप्यगस्त्यं च अगस्त्यभ्रातरं तथा ।
अगस्त्यवचनाच्चैव जग्राहैन्द्रं शरासनम् ॥ ४२ ॥
खड्गं च परमप्रीतस्तूणी चाक्षयसायकौ ।
वसतस्तस्य रामस्य वने वनचरैः सह ॥ ४३ ॥
ऋषयोऽभ्यागमन्सर्वे वधायासुररक्षसाम् ।
स तेषां प्रतिशुश्राव राक्षसानां तदा वने ॥४४॥
प्रतिज्ञातश्च रामेण वधः संयति रक्षसाम् ।
ऋषीणामग्निकल्पानां दण्डकारण्यवासिनाम्॥४५॥

अर्थ—कमलनयन महाराज रामचन्द्र ने उसी दण्डकारण्य में विराध नामक राक्षस को मारकर शरभङ्ग, सुतीक्ष्ण तथा अगस्त्य आदि मुनियों का दर्शन किया और महर्षि अगस्त्य के कथनानु-

सार ऐन्द्र नामक धनुष, अक्षय बाणों वाली तूणी तथा एक तेज धारावाले खड्ग को ग्रहण किया, कुछ काल पर्यन्त वनवासी मुनियों के साथ निवास करने के अनन्तर कई एक ऋषि रामचन्द्र जी का दर्शन करने के लिये आये और उन्होंने कहा कि भगवन् ! हम इस बन में अनेक राक्षसों से पीड़ित हैं कृपाकर उनको मारकर हमें शान्ति प्रदान करें, तब रामचन्द्र ने अग्नि के समान ब्रह्मवर्च दण्डकारण्य वासी मुनियों के कल्याणार्थ राक्षसों के मारने की दृढ़ प्रतिज्ञा करली ॥

तेन तत्रैव वसता जनस्थाननिवासिनी ।
विरूपिता शूर्पणखा राक्षसी कामरूपिणी ॥ ४६ ॥

अर्थ–और रामचन्द्र ने वहीं दण्डक बन में जनस्थान=रावण के सम्बन्धी जन समूह में बसने वाली सुरूपा सूर्पणखा राक्षसी कुरूप करदी ॥

ततः शूर्पणखावाक्यादुद्युक्तान्सर्वराक्षसान् ।
खरं त्रिशिरसं चैव दूषणं चैव राक्षसम् ॥ ४७ ॥
निजघान रणे रामस्तेषां चैव पदानुगान् ।
वने तस्मिन्निवसता जनस्थाननिवासिनाम्॥४८॥

अर्थ–इसके अनन्तर शूर्पणखा के वाक्य से क्रुद्ध होकर युद्ध के लिये आये हुए खर, त्रिशिर तथा दूषण को और उनके अनुयायी राक्षसों को रण में मारकर रामचन्द्र ने दण्डक बन को निर्भय किया ॥

रक्षसां निहतान्यासन्सहस्राणि चतुर्दश ।

ततो ज्ञातिवधं श्रुत्वा रावणः क्रोधमूर्छितः ॥४९॥
सहायं वरयामास मारीचं नाम राक्षसम् ।
वार्यमाणः सुबाहुशो मारीचेन स रावणः ॥ ५० ॥
न विरोधो बलवता क्षमो रावण तेन ते ।
अनादृत्य तु तद्वाक्यं रावणः कालचोदितः ॥५१॥
जगाम सहमारीचस्तस्याश्रमपदं तदा ।
तेन मायाविना दूरमपवाह्य नृपात्मजौ ॥ ५२ ॥
जहार भार्यां रामस्य गृध्रं हत्वा जटायुषम् ।
गृध्रं च निहतं दृष्ट्वा हृतां श्रुत्वा च मैथिलीम्॥५३॥
राघवः शोकसंतप्तो विललापाकुलेन्द्रियः ।
ततस्तेनैव शोकेन गृध्रं दग्ध्वा जटायुषम् ॥५४॥

अर्थ—इस प्रकार चौदह हज़ार अपने सम्बन्धी राक्षसों की मृत्यु सुनकर क्रोध से प्रज्वलित रावण ने रामचन्द्र की प्राण समान धर्मपत्नि सीता को हरने के लिये मारीच नाम राक्षस से सहायता मांगी, तब मारीच ने कहा कि हे रावण! बलवाले पुरुष के साथ विरोध करना तेरे लिये कल्याणकारी न होगा, इत्यादि अनेक वार समझाने पर भी रावण दुराग्रहवशात् मारीच के उपदेश का अनादर करके अपने साथ ही उसको रामचन्द्र के आश्रम पर लेगया और मायावी मारीच की सहायता से सीता को चुरा लाया, मार्ग में सीता के पक्षपाती गृध्र जाति के जटायुष नामा महाबली को मारकर अपने स्थान पर पहुंचा, तब सीता को कुटिया में न देखकर अपनी प्रिया के वियोग से सन्तप्त व्या-

कुलेन्द्रिय तथा आर्त्तस्वर से विलाप करते हुए रामचन्द्र सीता के अन्वेषणार्थ एक वन से दूसरे वन को गये और मार्ग में सीता के निमित्त मरे हुए जटायुष को देख अन्त्येष्टि संस्कार किया ॥

मार्गमाणो वने सीतां राक्षसं संददर्श ह ।
कबन्धं नाम रूपेण विकृतं घोरदर्शनम् ॥ ५५ ॥

अर्थ—इस प्रकार सीता के अन्वेषणार्थ वन में इतस्ततः पर्यटन करते हुए रामचन्द्र ने एक बड़े भयंकर कबन्ध नाम राक्षस को देखा ॥

तं निहत्य महाबाहुर्ददाह स्वर्गतश्च सः ।
ततोऽस्य कथयामास शबरीं धर्मचारिणीम् ॥५६॥
श्रमणां धर्मनिपुणामभिगच्छेति राघवः ।
सोऽभ्यगच्छन्महातेजाः शबरीं शत्रुसूदनः ॥५७॥

अर्थ—तब शत्रुओं का हनन करने वाले क्षात्रधर्म प्रिय रामचन्द्र ने उसको मार विधिवत् अन्त्येष्टि संस्कार किया और उसने धर्मशीला भीलनी शबरी का पता दिया कि हे राघव ! धर्म में निपुण उस तपस्विनी की ओर जाओ तब वह धर्मशीला शबरी के आश्रम पर पहुंचे ॥

शबर्या पूजितः सम्यग्रामो दशरथात्मजः ।
पम्पातीरे हनुमता संगतो वानरेण ह ॥ ५८ ॥

अर्थ—दशरथ के पुत्र दोनों भाइयों का शबरी ने भले प्रकार आतिथ्य सत्कार किया, वहां से चलकर पंपासर के तट पर वानर जातिवाले महावीर हनुमान् नामक महापुरुष को मिले ।

हनुमद्वचनाच्चैव सुग्रीवेण समागतः ।
सुग्रीवाय च तत्सर्वं शंसद्रामो महाबलः ॥ ५९ ॥
आदितस्तद्यथा वृत्तं सीतायाश्च विशेषतः ।
सुग्रीवश्चापि तत्सर्वं श्रुत्वा रामस्य वानरः ॥ ६० ॥
चकार सख्यं रामेण प्रीतश्चैवाग्निसाक्षिकम् ।
ततो वानरराजेन वैरानुकथनं प्रति ॥ ६१ ॥
रामायावेदितं सर्वं प्रणयाद्दुःखितेन च ।
प्रतिज्ञातं च रामेण तदा वालिवधं प्रति ॥ ६२ ॥

अर्थ–हनुमान् के कथन से सुग्रीव के साथ भेट की और महाबली रामचन्द्र ने आरम्भ से लेकर समाप्ति पर्यन्त अपने दुःख का सब वृत्तान्त कहते हुए सीता का वृत्तान्त विशेषरूप से सुग्रीव को सुनाया, जिसको सुनकर उसने अत्यन्त प्रसन्नता के साथ अग्निहोत्र करके उनसे मित्रता की और रामचन्द्र को विश्वासपात्र समझकर वालि विषयक अपना सब क्लेश उनके प्रति वर्णन किया, तब रामचन्द्र ने वालि के मारने की प्रतिज्ञा करके उसको धैर्य्य दिया ।

वालिनश्च बलं तत्र कथयामास वानरः ।
सुग्रीवः शङ्कितश्चासीन्नित्यं वीर्येण राघवे ॥ ६३ ॥
राघवप्रत्ययार्थं तु दुन्दुभेः कायमुत्तमम् ।
दर्शयामास सुग्रीवो महापर्वतसंनिभम् ॥ ६४ ॥

अर्थ–उनकी प्रतिज्ञा सुनकर भी सुग्रीव के चित्त में प्रतिदिन शंका रहती थी कि पराक्रमशाली दुर्दान्त वालि को रामचन्द्र कैसे मारेंगे, इसलिये उसने वालि का सब पराक्रम वर्णन करते

हुए सुग्रीव ने रामबल के परीक्षणार्थ बालि से मारे हुए दुन्दुभि नामक महादैत्य का अस्थिपञ्जर राम को दिखलाया और कहा कि इस बड़े बलवाले दैत्य को बालि ने मारा है ।

उत्स्मयित्वा महाबाहुः प्रेक्ष्य चास्थि महाबलः ।
पादाङ्गुष्ठेन चिक्षेप संपूर्णं दशयोजनम् ॥ ६५ ॥

अर्थ—इसके अनन्तर महाबाहु=पराक्रमशाली रामचन्द्र ने दुन्दुभि दैत्य के अस्थिपञ्जर को देखकर हंसते हुए उसको अपने पाद के अंगूठे से बहुत दूर फैंक दिया ।

बिभेद च पुनः सालान्सप्तैकेन महेषुणा ।
गिरिं रसातलं चैव जनयन्प्रत्ययं तदा ॥ ६६ ॥

अर्थ—और एक बाण से बड़े भारी सात साल के वृक्षों और पहाड़ को भेदन किया जिससे बालि के मारण विषयक सुग्रीव की शंका निवृत्त होगई ।

ततः प्रीतमनास्तेन विश्वस्तः स महाकपिः ।
किष्किन्धां रामसहितो जगाम च गुहां तदा॥६७॥

अर्थ—तब सुग्रीव के मन में रामचन्द्र की बड़ी प्रीति हुई और उनको विश्वासपात्र समझकर किष्किन्धा पर्वत के ऊपर अपनी कुटी में लेगया ॥

ततोऽगर्जद्धरिवरः सुग्रीवो हेमपिङ्गलः ।
तेन नादेन महता निर्जगाम हरीश्वरः ॥ ६८ ॥
अनुमान्य तदा तारां सुग्रीवेण समागतः ।
निजघान च तत्रैनं शरेणैकेन राघवः ॥ ६९ ॥

अर्थ—और वहां सुवर्ण के समान देदीप्यमान सुग्रीव गर्जने लगा जिसके शब्द को सुनकर तारा की सम्मति से सुग्रीव के साथ युद्ध करने के लिये बालि बाहर निकला जिसको रामचन्द्र ने एक ही बाण से मार दिया ॥

ततः सुग्रीववचनाद्धत्वा वालिनमाहवे ।
सुग्रीवमेव तद्राज्ये राघवः प्रत्यपादयत् ॥ ७० ॥
स च सर्वान्समानीय वानरान्वानरर्षभः ।
दिशः प्रस्थापयामास दिदृक्षुर्जनकात्मजाम् ॥७१॥

अर्थ—इस प्रकार सुग्रीव के वचन से बालि को मारकर उसको किष्किन्धा राजधानी का राजा बनाया और उसने सब वानर= वानर जातीय योद्धाओं को बुलाकर यथाधिकार सीता के अन्वेषणार्थ चारों दिशाओं में भेजा ॥

ततो गृध्रस्य वचनात्संपातेर्हनुमान्बली ।
शतयोजनविस्तीर्णं पुप्लुवे लवणार्णवम् ॥ ७२ ॥
तत्र लङ्कां समासाद्य पुरा रावणपालिताम् ।
ददर्श सीतां ध्यायन्तीमशोकवनिकां गताम् ॥७३॥

अर्थ—इसके अनन्तर गृध्र जातीय संपाती के कथनानुसार महावीर हनुमान शतयोजन=चारसौ कोस विस्तार वाले समुद्र से पार होकर रावण की सुरक्षित राजधानी लङ्का में पहुंचा और वहां उसके अशोकवन में पतिविरह से व्याकुल तथा उन्हीं का चिन्तन करती हुई सीता को देखा ॥

निवेदयित्वाभिज्ञानं प्रवृत्तिं विनिवेद्य च ।
समाश्वास्य च वैदेहीं मर्दयामास तोरणम् ॥ ७४ ॥

अर्थ—तब सीता को रामचन्द्र की अंगूठी देकर सुग्रीव के साथ मित्रता का सब वृत्तान्त सुनाया और विश्वास दिया कि महाराज शीघ्र ही रावण को मारकर आपको मिलेंगे, इस प्रकार सीता को विश्वास देकर हनुमान् ने अशोकवन को छिन्न भिन्न कर दिया ॥

पञ्च सेनाग्रगान्हत्वा सप्त मन्त्रिसुतानपि ।
शूरमक्षं च निष्पिष्य ग्रहणं समुपागमत् ॥७५॥

अर्थ—इसके अनन्तर हनुमान् ने पांच सेनापति, सात मन्त्रि के पुत्र तथा महाबली रावण के अक्ष नाम पुत्र को मारा तब स्वयं मेघनाद के चलाये हुए ब्रह्म नामक अस्त्र के बन्धन में आगया ॥

अस्त्रेणोन्मुक्तमात्मानं ज्ञात्वा पैतामहाद्वरात् ।
मर्षयन्राक्षसान्वीरो यन्त्रिणस्तान्यदृच्छया ॥७६॥
ततो दग्ध्वा पुरीं लङ्कामृते सीतां च मैथिलीम् ।
रामाय प्रियमाख्यातुं पुनरायान्महाकपिः॥ ७७ ॥

अर्थ—ब्रह्मास्त्र से पकड़ने वाले उन शूरवीरों को मारने की सामर्थ्य होने पर भी अपनी इच्छा से कुछ काल पर्यन्त अस्त्र के बन्धन में रहकर पुनः उस बन्धन से निर्मुक्त होगया, फिर लंका में अग्नि लगाकर रामचन्द्र को शीघ्र ही प्रिय सन्देश सुनाने के लिये लौट आया ॥

सोऽभिगम्य महात्मानं कृत्वा रामं प्रदक्षिणम् ।
न्यवेदयदमेयात्मा दृष्टा सीतेति तत्त्वतः ॥७८॥

अर्थ—और रामचन्द्र के समीप आकर उनकी प्रदक्षिणा करके नमस्कार किया तथा विनयपूर्वक जानकी का सब वृतान्त सुनाया कि सीता को भलेप्रकार देख आया हूं ॥

ततः सुग्रीवसहितो गत्वा तीरं महोदधेः ।
समुद्रं क्षोभयामास शरैरादित्यसंनिभैः ॥ ७९ ॥
दर्शयामास चात्मानं समुद्रः सरितांपतिः ।
समुद्रवचनाच्चैव नलं सेतुमकारयत् ॥ ८० ॥
तेन गत्वा पुरीं लङ्कां हत्वा रावणमाहवे ।
रामः सीतामनुप्राप्य परां व्रीडामुपागमत् ॥ ८१ ॥
तामुवाच ततो रामः परुषं जनसंसदि ।
अमृष्यमाणा सा सीता विवेश ज्वलनं सती॥८२॥
ततोऽग्निवचनात्सीतां ज्ञात्वा विगतकल्मषाम् ।
कर्मणा तेन महता त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥ ८३ ॥
सदेवर्षिगणं तुष्टं राघवस्य महात्मनः ।
बभौ रामः संप्रहृष्टः पूजितः सर्वदैवतैः ॥ ८४ ॥

अर्थ—इस के अनन्तर सुग्रीव सहित राम समुद्र के तटपर पहुंचे और सूर्य्यसमान तीरों से समुद्र को कम्पायमान करदिया*

---

* राम ने तीरों द्वारा समुद्र की गहराई आदि भीतरी दशा को भले प्रकार जांचा और फिर निश्चय किया कि पुल बनाना

तब नदियों के पति समुद्र ने उनके प्रति अपना आप सब दिखला दिया अर्थात् समुद्र की गहराई आदि सब उन्होंने जानली, फिर समुद्र के कथनानुसार नल से पुल बंधवाकर लङ्कापुरी में पहुंच युद्ध में रावण को मार सीता को प्राप्त होगये, पर लोकापवाद के भय से सीता को ग्रहण करने में कुछ संकोच करने लगे, और उस जनसमुदाय में राम ने सीता को कुछ दुर्वचन कहा उस को न सहारती हुई सीता ने अग्निद्वारा परीक्षा दी, जब अग्नि की परीक्षा से सीता निष्पाप सिद्ध हुई तब राम ने उसको ग्रहण किया, महात्मा रामचन्द्र के इस कृत्य को देखकर सब मनुष्य, देव और ऋषियों के गण प्रसन्न हुए, सब देवताओं ने राम का पूजन किया और वह प्रसन्न हो बड़े सुशोभित हुए ॥

अभिषिच्य च लङ्कायां राक्षसेन्द्रं विभीषणम् ।
कृतकृत्यस्तदा रामोः विज्वरः प्रमुमोद ह ॥८५॥
देवताभ्यो वरं प्राप्य समुत्थाप्य च वानरान् ।
अयोध्यां प्रस्थितो रामः पुष्पकेण सुहृद्वृतः ॥८६॥

अर्थ—इसके अनन्तर विभीषण को लंका के राज्य का अभिषेक दे रामचन्द्र ने अपने आपको कृतकृत्य समझा तथा देवताओं को उत्तम २ पदार्थ देकर प्रसन्न किया और आप सब सुहृद्वर्ग के साथ पुष्पक विमान द्वारा अयोध्या की ओर चले ।

चाहिये और यही समुद्र का उनके प्रति कहना तथा अपने आपको दिखलाना है, समुद्र का यह कथन अलङ्कार से जानना चाहिये, क्योंकि जड़ समुद्र में भाषणशक्ति नहीं होसक्ती ॥

भरद्वाजाश्रमं गत्वा रामः सत्यपराक्रमः ।
भरतस्यान्तिके रामो हनुमन्तं व्यसर्जयत् ॥ ८७ ॥

अर्थ—तब महर्षि भरद्वाज के आश्रम को प्राप्त हो सत्य पराक्रम वाले राम ने अपने आगमन की सूचना देने के लिये हनुमान को भरत के पास भेजा ।

पुनराख्यायिकां जल्पन्सुग्रीवसहितस्तदा ।
पुष्पकं तत्समारुह्य नन्दिग्रामं ययौ तदा ॥ ८८ ॥

अर्थ—और पुष्पक विमान पर बैठ सुग्रीव के साथ अनेक प्रकार की बीती हुई बातें करते हुए नन्दिग्राम में पहुंचे ।

नन्दिग्रामे जटां हित्वा भ्रातृभिः सहितोऽनघः ।
रामः सीतामनुप्राप्य राज्यं पुनरवाप्तवान् ॥ ८९ ॥

अर्थ—नन्दिग्राम में अपने भ्राताओं के साथ जटा परित्याग कर निष्पाप राम सीता को फिर प्राप्त हो अयोध्या में बड़े हर्ष राज्य करने लगे ।

प्रहृष्टमुदितो लोकस्तुष्टः पुष्टः सुधार्मिकः ।
निरामयो ह्यरोगश्च दुर्भिक्षभयवर्जितः ॥ ९० ॥

अर्थ—रामचन्द्र के राज्यशासन में सब लोग प्रसन्न मन, हृष्ट पुष्ट धार्मिक, नीरोग=आधिव्याधि से रहित तथा दुर्भिक्ष के भय से रहित होगये ।

न पुत्रमरणं केचिद्द्रक्ष्यन्ति पुरुषाः क्वचित् ।
नार्यश्चाविधवा नित्यं भविष्यन्ति पतिव्रतः ॥ ९१ ॥

अर्थ—उस समय कोई पिता अपने पुत्र की मृत्यु न देखते

और नाही विधवा अपने भर्त्ता के वियोग से दग्ध होतीं प्रत्युत सब स्त्रियें पतिव्रतधर्म से देदीप्यमान पूर्ण ऐश्वर्ययुक्त होती थीं ।

नचाग्निजं भयं किंचिन्नाप्सु मज्जन्ति जन्तवः ।
न वातजं भयं किंचिन्नापि ज्वरकृतं तथा ॥ ९२ ॥

अर्थ—रामचन्द्र के शासन काल में न किसी को अग्नि से बाधा और नाही किसी को जल की भीति तथा वायु से पीडा होती थी और न उस समय किसी को ज्वरादि रोगों का भय था ।

नचापि क्षुद्भयं तत्र न तस्करभयं तथा ।
नगराणि च राष्ट्राणि धनधान्ययुतानि च ॥९३॥

अर्थ—उस समय अन्नादि भक्ष्य पदार्थों के स्वतन्त्र तथा इच्छानुसार लाभ से क्षुधा आदि की बाधा न थी और नाही चोरों का भय था, प्रत्युत सब नगर ग्राम तथा जनपद धन धान्य से सम्पन्न थे ।

नित्यं प्रमुदिताः सर्वे यथा कृतयुगे तथा ।
अश्वमेधशतैरिष्ट्वा तथा बहुसुवर्णकैः ॥ ९४ ॥
गवां कोट्ययुतं दत्त्वा विद्वद्भ्यो विधिपूर्वकम् ।
असंख्येयं धनं दत्त्वा ब्राह्मणेभ्यो महायशाः॥९५॥
राजवंशाञ्शतगुणान्स्थापयिष्यति राघवः ।
चातुर्वर्ण्यं च लोकेऽस्मिन्स्वे स्वे धर्मे नियोक्ष्यति॥९६॥

दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च ।
रामो राज्यमुपासित्वा ब्रह्मलोकं प्रयास्यति ॥९७॥

अर्थ—सत्ययुग के समान सब प्रजा अपने २ अधिकार के अनुसार धर्म कार्यों में प्रवृत्त हो आनन्द में मग्न थी, इस प्रकार शान्ति का राज्य स्थापन कर बहुत सुवर्ण की दक्षिणा वाले अनेक अश्वमेध यज्ञों से परमात्मा की उपासना करते हुए विधिपूर्वक ब्राह्मणों को बहुतसी गौयें और धन देकर बड़े यश वाले महाराज रामचन्द्र कई एक धार्मिक राजवंशों को स्थापन करेंगे, चारों वर्णों को अपने २ धर्म में लगावेंगे और ग्यारह हज़ार वर्ष राज्य करके ब्रह्मलोक को प्राप्त होंगे ॥

भाष्य—ज्ञात होता है कि जब राम रावण को मार सीता को लेकर राज्य कर रहे थे तब वाल्मीकि ने नारद के प्रति प्रश्न किया है, "दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि" का अर्थ करते हुए मणिमञ्जीर नामक टीकाकार का कथन है कि रामचन्द्र ने "एकादश सहस्रसंवत्सरान्=ग्यारह हज़ार वर्ष पर्यन्त राज्य किया और इसके विरुद्ध शिरोमणि टीकाकार यों लिखते हैं कि "दशवर्षसहस्राणि दशसंख्यागुणितानिवर्षशतानि शतत्रयवर्षाणि त्रिसहस्रसंख्या संख्यातवर्षाणि त्रिंशत्सहस्रवर्षाणीत्यर्थः दशवर्षशतानि च दशसंख्यागुणितानि वर्षशतानि शतत्रयवर्षाणि सहस्रवर्षाणीत्यर्थः एवं त्रयस्त्रिंशत्सह-

स्त्रवर्षाणि राज्यं रामो नित्यरमणशीलः उपासित्वा कृत्वेत्यर्थः"=दशसहस्र को तीन गुणा करने से तीसहज़ार संख्या बनती है और एक सहस्र को तीन से गुणन करने से तीन हज़ार संख्या सिद्ध होती है, जिसका योग करने से तेतीस हज़ार वर्ष पर्यन्त रामचन्द्र के राज्यशासन का समय निकलता है, सो ठीक नहीं, क्योंकि इतने वर्ष पर्य्यन्त राज्य करना मनुष्य की आयु में असम्भव है, और जहां संख्या का असम्भव पायाजाय वहां प्रकरणवशात् किसी एक नियत संख्या का अथवा असन्त असम्भव में संख्या की अधिकता का तात्पर्य्य होता है, इसी अभिप्राय से पूर्वपक्ष करते हुए पूर्वमीमांसाकार ने "सहस्रदिनपरताधिकरण" में लिखा है कि "सहस्रसम्वत्सरं तदायुषामसम्भवान्मनुष्येषु" मी०६।७।३१=सहस्रवर्ष पर्य्यन्त साध्य यज्ञों में मनुष्यों की आयु का सम्भव न होने से दिव्य शतवर्ष आयु वाले देवताओं का अधिकार होना चाहिये, इत्यादि कई एक सूत्रों से उत्तरोत्तर शङ्का समाधान करते हुए सिद्धान्त यह किया है कि "अहानि वाभिसंख्यत्वात्" मी०६।७।४०=

यागादि कर्मों में मनुष्यों का ही अधिकार होने और सहस्रवर्ष उनकी आयु का सम्भव न होने से प्रकृत में वर्षवाची शब्द का दिन में तात्पर्य्य है अर्थात् "आदित्योवै सर्वर्त्तवा सयदुदेति अथ वसंता यदा संगवो अथ ग्रीष्मो यदा मध्यन्दिने अथ वर्षा यदपराह्ने अथ शरदं यदास्तमेति अथ हेमन्त शिशिरौ"=जब आदित्य उदय होता है तब

वसन्त, जब गोदोहनकाल होता है तब ग्रीष्म, जब मध्यान्ह होता है तब वर्षा, अपरान्हकाल में शरद् और सूर्य्यास्तकाल में हेमन्त तथा शिशिर दोनों ऋतुयें होती हैं, इस प्रकार एक ही दिन में षट् ऋतुरूप वर्ष की पूर्त्ति होने से सहस्रसंवत्सर सत्र में "पंचपंचाशतस्त्रिवृता" इस वाक्य की सन्निधि से ५५ दिन का ग्रहण है अर्थात् सहस्रवर्ष की अपेक्षा उक्त योग की समाप्ति उक्त दिनों में कीजाती है, इत्यादि अनेक स्थलों में असम्भव संख्या का परित्याग करके सम्भव संख्या का ही ग्रहण किया जाता है, इसी प्रकार उक्त श्लोक में ३३ हज़ार वर्षों की संख्या ३३ वर्ष परक जाननी चाहिये अर्थात् रामचन्द्र ने ३३ वर्ष राज्य किया ॥

इदं पवित्रं पापघ्नं पुण्यं वेदैश्च संमितम् ।
यः पठेद्रामचरितं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ९८ ॥

अर्थ—रामचन्द्र का यह जीवनचरित्र परमपवित्र है, जो पुरुष इसको पढ़कर उनके समान अपने जीवन को बनावे तो वह भी पवित्र होजाता है ॥

एतदाख्यानमायुष्यं पठन्रामायणं नरः ।
सपुत्रपौत्रः सगणः प्रेत्य स्वर्गे महीयते ॥ ९९ ॥

अर्थ—आयु के देने वाले इस रामायण को पुत्र पौत्रसहित पढ़कर आचरण करने वाला पुरुष इस जन्म तथा परजन्म में उत्तम लोकों को प्राप्त होता है ॥

पठन्द्विजो वागृषभत्वमीयात्स्यात्क्षत्रियो-
भूमिपतित्वमीयात्। वणिग्जनः पुण्यफलत्व-
मीयाज्जनश्च शूद्रोऽपि महत्त्वमीयात् ॥ १०० ॥

अर्थ–इस रामायण का अध्ययन करने वाला ब्राह्मण बाणी की श्रेष्ठता को, क्षत्रिय राज्य को, वैश्य पुण्यफल को और शूद्र श्रेष्ठता को प्राप्त होता है ॥

इति प्रथमः सर्गः

अथ द्वितीयः सर्गः

नारदस्य तु तद्वाक्यं श्रुत्वा वाक्यविशारदः ।
पूजयामास धर्मात्मा सहशिष्यो महामुनिम् ॥१॥

अर्थ–नारद के वाक्य को सुनकर शास्त्रों के लापन करने में चतुर, धर्मशील तथा औपनिषद अर्थ के मनन करने वाली प्रतिभा से सम्पन्न महर्षि वाल्मीकि ने अपने शिष्यों के सहित भले प्रकार नारद का सत्कार किया।

यथावत्पूजितस्तेन देवर्षिनारदस्तथा ।
आपृच्छ्यैवाभ्यनुज्ञातः स जगाम विहायसम् ॥२॥

अर्थ–वाल्मीकि के किये हुए सत्कार से प्रसन्न होकर देवर्षि नारद उनकी आज्ञा लेकर अपने अभीष्ट देश को चले गये ।

स मुहूर्तं गते तस्मिन्देवलोकं मुनिस्तदा ।
जगाम तमसातीरं जाह्नव्यास्त्वविदूरतः ॥ ३ ॥

अर्थ—नारद के गमनान्तर दो घड़ी समय व्यतीत होने पर वाल्मीकि मुनि गंगा के समीप तमसा नदी के तट पर स्नान करने के लिये गये।

स तु तीरं समासाद्य तमसाया मुनिस्तदा।
शिष्यमाह स्थितं पार्श्वे दृष्ट्वा तीर्थमकर्दमम् ॥ ४॥

अर्थ—तमसा नदी के शुद्ध वालुवाले तट पर पहुंच ऋषि ने अपने शिष्य को कहा कि:—

अकर्दममिदं तीर्थं भरद्वाज निशामय।
रमणीयं प्रसन्नाम्बु सन्मनुष्यमनो यथा॥ ५॥

अर्थ—हे भरद्वाज! देखो यह तीर्थ किस प्रकार स्वच्छ कीचड़ादि मल से रहित, साधु पुरुषों के स्वच्छ हृदयवत् निर्मल जल वाला रमणीय है।

न्यस्यतां कलशस्तात दीयतां वल्कलं मम।
इदमेवावगाहिष्ये तमसातीर्थमुत्तमम्॥ ६॥

अर्थ—इसलिये हे तात! यहीं कमण्डलु और वल्कल रखदो मैं इसी तमसा नदी के उत्तम तट पर स्नान करूंगा।

एवमुक्तो भरद्वाजो वाल्मीकेन महात्मना।
प्रायच्छत मुनेस्तस्य वल्कलं नियतो गुरोः॥ ७॥

अर्थ—इस प्रकार महात्मा वाल्मीकि के बचन सुनकर भरद्वाज ने उनको स्नान करने के लिये वस्त्र दिया।

स शिष्यहस्तादादाय वल्कलं नियतेन्द्रियः।
विचचारह पश्यंस्तत्सर्वतो विपुलं वनम्॥ ८॥

अर्थ—शिष्य के हाथ से वल्कल=स्नान वस्त्र लेकर जितेन्द्रिय मुनिवर वाल्मीकि तमसा तट पर वन में परमात्मा की अपार महिमा को देखने लगे।

तस्याभ्याशे तु मिथुनं चरन्तमनपायिनम्।
ददर्श भगवांस्तत्र क्रौञ्चयोश्चारुनिस्वनम्॥ ९॥

अर्थ—तब उन्होंने वहां समीप ही निर्भय होकर विचरते हुए चकवा चकवी नामक पक्षियों के जोड़े को देखा जो कभी पृथक् नहीं होते और उनके मधुर शब्द को सुनकर मुनि का मन अत्यन्त प्रसन्न हुआ।

तस्मात्तु मिथुनादेकं पुमांसं पापनिश्चयः।
जघान वैरनिलयो निषादस्तस्य पश्यतः॥ १०॥

अर्थ—उसी अवसर में मुनि के सन्मुख ही किसी एक पापात्मक निषाद ने उन दोनों में से नर को तीर से मारदिया।

तं शोणितपरीताङ्गं चेष्टमानं महीतले।
भार्या तु निहतं दृष्ट्वा रुवार करुणां गिरम्॥११॥

अर्थ—रुधिर से भरे हुए अंगों वाले, पृथिवी पर तड़फते हुए अपने प्रिय सहचारी पति को मरा हुआ देख चकवी अत्यन्त करुणाभरी वाणी से बिलाप करने लगी।

तथाविधं द्विजं दृष्ट्वा निषादेन निपातितम्।
ऋषेर्धर्मात्मनस्तस्य कारुण्यं समपद्यत॥ १२॥
ततः करुणवेदित्वादधर्मोऽयमिति द्विजः।
निशाम्य रुदतीं क्रौञ्चीमिदं वचनमब्रवीत्॥१३॥

अर्थ–तब ऐसी आनन्दमय अवस्था में निषाद से मारे हुए पक्षी को देख धर्मात्मा करुणाशील ऋषि का चित्त दया से आर्द्र होगया और रुदन करती हुई उसकी प्रिया को देखकर ऋषि ने कहा कि :—

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः ।
यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम् ॥ १४ ॥

अर्थ–हे निषाद! जो तू ने प्रमादवश होकर काम से मोहित मिथुनभाव से स्वतन्त्र विचरने वाले चकवा चकवी के जोड़े में से एक हनन करदिया है इसलिये निरन्तर कई वर्ष पर्यन्त तुमको सुखपूर्वक स्थिति का लाभ न होगा ।

तस्येत्थं ब्रुवतश्चिन्ता बभूव हृदि वीक्षतः ।
शोकार्तेनास्य शकुनेः किमिदं व्याहृतं मया॥१५॥

अर्थ–इस प्रकार कथन करके ऋषि ने विचारा कि इस पक्षी के शोक से आतुर होकर मैंने क्या कहा है ।

चिन्तयन्स महाप्राज्ञश्चकार मतिमान्मतिम् ।
शिष्यं चैवाब्रवीद्वाक्यमिदं स मुनिपुंगवः ॥१६॥

अर्थ–तब अन्तर्मुख हो प्रतिभाशाली मुनिवर वाल्मीकि ने चिन्ता करते हुए अपने शिष्य को कहा कि :—

पादबद्धोऽक्षरसमस्तन्त्रीलयसमन्वितः ।
शोकार्तस्य प्रवृत्तो मे श्लोको भवतु नान्यथा॥१७॥

अर्थ–हे भरद्वाज ! चार पादों से युक्त, प्रत्येक पाद में सम अक्षरों वाला वीणालय के साथ गायन करने योग्य पक्षी के आर्त्त शब्द को सुनकर मेरे मुख से निकला हुआ यह श्लोक वृथा

होना ठीक नहीं अर्थात् इस श्लोक की रचना के समान एक महा काव्य का निर्माण करना उचित समझता हूं।

शिष्यस्तु तस्य ब्रुवतो मुनेर्वाक्यमनुत्तमम्।
प्रतिजग्राह संतुष्टस्तस्य तुष्टोऽभवन्मुनिः ॥ १८ ॥

अर्थ—उक्त रीति से कथन करने वाले मुनि के उत्तम काव्य रूप वाक्य को श्रवण कर शिष्य ने कहा कि भगवन् तथास्तु, तब प्रसन्न होकर वाल्मीकि ऋषि :—

सोऽभिषेकं ततः कृत्वा तीर्थे तस्मिन्यथाविधि।
तमेव चिन्तयन्नर्थमुपावर्तत वै मुनिः ॥ १९ ॥

अर्थ—तमसा के पवित्र तीर्थ पर स्नान कर सन्ध्योपासन करने के अनन्तर उसी अर्थ का चिन्तन करते हुए अपने आश्रम पर चले आये।

भरद्वाजस्ततः शिष्यो विनीतः श्रुतवान्गुरोः।
कलशं पूर्णमादाय पृष्ठतोऽनुजगाम ह ॥ २० ॥

अर्थ—और विनयसम्पन्न मननशील वाल्मीकि का प्रिय शिष्य भरद्वाज भी जल पूर्ण कलश को उठाकर पीछे २ चला।

स प्रविश्याश्रमपदं शिष्येण सह धर्मवित्।
उपविष्टः कथाश्चान्याश्चकार ध्यानमास्थितः॥ २१ ॥

अर्थ—इस प्रकार धर्मशील मुनि अपने शिष्य के सहित आश्रम को प्राप्त हो आसन पर बैठकर ध्यान में स्थित हो कई एक उत्तम२ कथा कहने लगे।

आजगाम ततो ब्रह्मा लोककर्ता स्वयंप्रभुः।
चतुर्मुखो महातेजा द्रष्टुं तं मुनिपुंगवम् ॥ २२ ॥

अर्थ–इसी अवसर में चतुर्मुख=चार वेदों का ज्ञाता, सर्वत्र लोगों की धर्म मर्यादा स्थापन करने वाला, तेजस्वी, स्वतन्त्र प्रज्ञाशाली ब्रह्मा नामक ऋषि वाल्मीकि के आश्रम पर आये।

वाल्मीकिरथ तं दृष्ट्वा सहसोत्थाय वाग्यतः।
प्राञ्जलिः प्रयतो भूत्वा तस्थौ परमविस्मितः॥ २३॥
पूजयामास तं देवं पाद्यार्घ्यासनवन्दनैः।
प्रणम्य विधिवच्चैनं पृष्ट्वा चैव निरामयम्॥ २४॥
अथोपविश्य भगवानासने परमार्चिते।
वाल्मीकये च ऋषये संदिदेशासनं ततः॥ २५॥
ब्रह्मणा समनुज्ञातः सोऽप्युपाविशदासने।
उपविष्टे तदा तस्मिन्साक्षाल्लोकपितामहे॥ २६॥
तद्गतेनैव मनसा वाल्मीकिर्ध्यानमास्थितः।
पापात्मना कृतं कष्टं वैरग्रहणबुद्धिना॥ २७॥
यत्तादृशं चारुरवं क्रौञ्चं हन्यादकारणात्।
शोचन्नेव पुनः क्रौञ्चीमुपश्लोकमिमं जगौ॥ २८॥
पुनरन्तर्गतमना भूत्वा शोकपरायणः।
तमुवाच ततो ब्रह्मा प्रहसन्मुनिपुंगवम्॥ २९॥
श्लोक एवास्त्वयं बद्धो नात्र कार्या विचारणा॥३०॥

अर्थ–ऋषि को देख हाथ जोड़कर बड़ी नम्रता के साथ प्रसन्नचित्त वाल्मीकि अपने आसन पर खड़े होगये और पाद्य अर्घ्य, आसन तथा नमस्कार आदि से ऋषिवर ब्रह्मा का विधिपूर्वक स्वागत किया, इसके अनन्तर वाल्मीकि के दिये हुए पवित्र आसन

पर बैठकर ब्रह्मा ने उनको बैठने के लिये आज्ञा दी और ब्रह्मा की आज्ञा पाकर वह भी अपने आसन पर स्थित हो उसी क्रौञ्चपक्षी की मृत्यु का चिन्तन करते हुए कहने लगे कि पापात्मा वैर बुद्धि वाले व्याध ने कैसा पाप किया है, इत्यादि, इस प्रकार शोक करते हुए पुनः २ मन में "मा निषाद प्रतिष्ठांत्वम्" इसी श्लोक का पाठ भी करने लगे, उनको चिन्तातुर देखकर हृदयगतभाव के जानने में निपुणमति ब्रह्मा ने कहा कि हे मुने ! जो आपने वाक्यसन्दर्भ रचा है निस्सन्देह वह श्लोक है ॥

मच्छन्दादेव ते ब्रह्मन्प्रवृत्तेयं सरस्वती ।
रामस्य चरितं कृत्स्नं कुरु त्वमृषिसत्तम ॥ ३१ ॥

अर्थ—तुम्हारे मुख से स्वाभाविक उत्तम सरस्वती का विकाश हुआ है, हे ऋषे ! इसी प्रकार के काव्य द्वारा रामचन्द्र का पवित्र चरित्र वर्णन करो ।

धर्मात्मनो भगवतो लोके रामस्य धीमतः ।
वृत्तं कथय धीरस्य यथा ते नारदाच्छ्रुतम् ॥३२॥

अर्थ—धर्मात्मा गुणसम्पन्न बुद्धिमान् धृतिशाली राम का चरित्र जो आपने नारदद्वारा संक्षेप से श्रवण किया है उसी का विस्तार करो।

रहस्यं च प्रकाशं च यद्वृत्तं तस्य धीमतः ।
रामस्य सहसौमित्रे राक्षसानां च सर्वशः ॥३३॥
वैदेह्याश्चैव यद्वृत्तं प्रकाशं यदि वारहः ।
तच्चाप्यविदितं सर्वं विदितं ते भविष्यति ॥३४॥

अर्थ—और जो सीता तथा लक्ष्मण के सहित रामचन्द्र का चरित्र प्रसिद्ध वा रहस्य है और जिसप्रकार उन्होंने बन में जाकर

राक्षसों का वध किया है जिसको तुम जानते वा नहीं जानते हो इत्यादि सब वृत्तान्त मेरे द्वारा विदित होजायगा।

न ते वागनृता काव्ये काचिदत्र भविष्यति।
कुरु रामकथां पुण्यां श्लोकबद्धां मनोरमाम्॥३५॥

अर्थ—इस काव्य में आपकी वाणी मिथ्या न होगी, इसलिये मनोहर उत्तम गुणों से भूषित, पवित्र रामचरित्र को श्लोकों में ग्रन्थन करो।

यावत्स्थास्यन्ति गिरयः सरितश्च महीतले।
तावद्रामायणकथा लोकेषु प्रचरिष्यति॥३६॥

अर्थ—जब तक पृथिवी पर पर्वत वा नदियें स्थिर रहेंगी तब तक तुम्हारी बनाई हुई रामायण की प्रवृत्ति लोक में ज्यों की त्यों बनी रहेगी॥

तस्य बुद्धिरियं जाता महर्षेर्भावितात्मनः।
कृत्स्नं रामायणं काव्यमीदृशैः करवाण्यहम्॥३७॥

अर्थ—तब उस निर्मल बुद्धिवाले महर्षि का यह विचार हुआ कि मैं सम्पूर्ण रामायण को काव्य=श्लोकबद्ध बनाऊं॥

उदारवृत्तार्थपदैर्मनोरमैस्तदास्य रामस्य
चकार कीर्तिमान्। समाक्षरैः श्लोकशतै-
र्यशस्विनो यशस्करं काव्यमुदारदर्शनः॥३८॥

अर्थ—एवं दृढ़ निश्चय कर विशाल बुद्धि वाले मननशील वाल्मीकि ने यशस्वी रामचन्द्र के चरित्र को प्रसाद गुणयुक्त अनेक विध मनोहर छन्दों से विभूषित यशस्वी राम का यश प्रकट करने वाला काव्य बनाया॥

तदुपगतसमाससंधियोगं सममधुरोपन-
तार्थवाक्यबद्धम् । रघुवरचरितं मुनिप्रणीतं
दशशिरश्च वधं निशामयध्वम् ॥ ३९ ॥

अर्थ—और वह काव्य तत्पुरुषादि समास, स्वरादि सन्धि तथा अनेक विध योग=पद व्युत्पत्ति युक्त सरल रचना वाले माधुर्यगुण-सम्पन्न वाक्यों द्वारा उक्त महाकाव्य को बनाकर अपने शिष्यों को सुनाया, जिसमें रामचरित्र और रावण का बध है ॥

इति द्वितीयः सर्गः

अथ तृतीयः सर्गः

श्रुत्वा वस्तु समग्रं तद्धर्मार्थसहितं हितम् ।
व्यक्तमन्वेषते भूयो यद्वृत्तं तस्य धीमतः ॥ १ ॥

अर्थ—धर्मशील महर्षि वाल्मीकि नारद के मुख से रामचन्द्र का धर्मयुक्त संक्षिप्त वृत्तान्त सुनकर ब्रह्मा की प्रेरणा से उसका काव्यरूपतया ग्रन्थन करने के लिये अन्तर्मुख हो चिन्तन करने लगे ॥

उपस्पृश्योदकं सम्यङ्मुनिः स्थित्वा कृताञ्जलिः ।
प्राचीनाग्रेषु दर्भेषु धर्मेणान्वेषते गतिम् ॥ २ ॥

अर्थ—पूर्व की ओर अग्रभाग वाले कुशा के आसन पर बैठ आचमन करके भले प्रकार शुद्ध हो हाथ जोड़कर परमात्मा का ध्यान करते हुए इस प्रकार विचार किया कि :—

रामलक्ष्मणसीताभीराज्ञा दशरथेन च ।
स भार्येण स राष्ट्रेण यत्प्राप्तं तत्र तत्त्वतः ॥३॥
हसितं भाषितं चैव गतिर्यावच्च चेष्टितम् ।
तत्सर्वं धर्मवीर्येण यथावत्संप्रपश्यति ॥ ४ ॥
स्त्रीतृतीयेन च तथा यत्प्राप्तं चरता वने ।
सत्यसंधेन रामेण तत्सर्वं चान्ववेक्षत ॥ ५ ॥
ततः पश्यति धर्मात्मा तत्सर्वं योगमास्थितः ।
पुरा यत्तत्र निर्वृत्तं पाणावामलकं यथा ॥ ६ ॥

अर्थ—जिससे राजा दशरथ ने राम, लक्ष्मण, सीता और कौसल्यादि स्त्रियों सहित अपने राज्य में सुखपूर्वक निवास करते हुए जो २ आहार विहार, हंसना प्रेम से भाषण करना आदि व्यवहार किया था और जिस प्रकार धर्मपत्नी सीता सहित सत्य प्रतिज्ञा वाले रामचन्द्र ने बन में जाकर सुख दुःखादि का अनुभव किया था, इत्यादि सब वृत्तान्त समाधिस्थ होकर मुनि ने हस्तामलकवत् यथाक्रम साक्षात्कार किया ॥

तत्सर्वं तत्त्वतो दृष्ट्वा धर्मेण स महामतिः ।
अभिरामस्य रामस्य तत्सर्वं कर्तुमुद्यतः ॥ ७ ॥
कामार्थगुणसंयुक्तं धर्मार्थगुणविस्तरम् ।
समुद्रमिव रत्नाढ्यं सर्वश्रुतिमनोहरम् ॥ ८ ॥
स यथा कथितं पूर्वं नारदेन महात्मना ।
रघुवंशस्य चरितं चकार भगवान्मुनिः ॥ ९ ॥

अर्थ—नारद के उपदेशानुसार परम पवित्र रामचरित्र को काव्य रूप से अनुभव होने के कारण देदीप्यमान मेधा वाले महा मुनि बाल्मीकि ने अनेक विध रत्नों के आकर, समुद्र की भांति गम्भीरार्थयुक्त धर्म, अर्थ, काम, मोक्षरूप चतुर्विध पुरुषार्थ सम्बन्धि उपदेश वाले शब्द तथा अर्थगत रचना सौन्दर्य्य सम्पन्न अत्यन्त मनोहर रामायण नाम महाकाव्य बनाया ॥

जन्म रामस्य सुमहद्वीर्यं सर्वानुकूलताम् ।
लोकस्य प्रियतां क्षान्ति सौम्यतां सत्यशीलताम् ॥१०॥
नाना चित्राः कथाश्चान्या विश्वामित्र सहायने ।
जानक्याश्च विवाहं च धनुषश्च विभेदनम् ॥ ११ ॥
रामरामविवादं च गुणान्दाशरथेस्तथा ।
तथाभिषेकं रामस्य कैकेय्या दुष्टभावताम् ॥ १२ ॥
विघातं चाभिषेकस्य रामस्य च विवासनम् ।
राज्ञः शोकं विलापं च परलोकस्य चाश्रयम् ॥१३॥
प्रकृतीनां विषादं च प्रकृतीनां विसर्जनम् ।
निषादाधिपसंवादं सूतोपावर्तनं तथा ॥ १४ ॥

अर्थ—जिसमें रामचन्द्र का जन्म, खरदूषणादि राक्षसों के मारने योग्य अनुपम बल और उनकी सब के लिये अनुकूलता, प्रियता, शान्ति,क्षमा,सुशीलता,सत्य भाषण तथा अन्य अनेक प्रकार की विचित्र कथा, विश्वामित्र का समागम, धनुष का तोड़ना सीता का स्वयंवर, परशुराम तथा रामचन्द्र का विवाद, युवराज होने योग्य राम सम्बन्धी गुण, रामचन्द्र के अभिषेक का आरम्भ

और कैकेयी के हृदय की दुष्टता, राज्यातिलक में विघ्न की उपस्थिति राम का बनवास, राम के वियोग से आतुर हुए दशरथ का विलाप और उनकी मृत्यु, अयोध्या वासियों के चित्त का विषाद तथा उनको नगर में लौटाना और रामचन्द्र को छोड़कर सारथि का लौटना, इत्यादि सब विषय विस्तारपूर्वक वर्णन किये गये हैं॥

गङ्गायाश्चापि संतारं भरद्वाजस्य दर्शनम् ।
भरद्वाजभ्यनुज्ञानाच्चित्रकूटस्य दर्शनम् ॥ १५ ॥
वास्तुकर्मनिवेशं च भरतागमनं तथा ।
प्रसादनं च रामस्य पितुश्च सलिलक्रियाम् ॥१६॥
पादुकाग्र्याभिषेकं च नन्दिग्रामनिवासनम् ।
दण्डकारण्यगमनं विराधस्य वधं तथा ॥ १७ ॥
दर्शनं शरभङ्गस्य सुतीक्ष्णेन समागमम् ।
अनसूयासमास्यां च अङ्गरागस्य चार्पणम्॥१८॥

अर्थ—गङ्गा से पार होना, भरद्वाज का मिलाप तथा उनकी आज्ञानुसार चित्रकूट का दर्शन करना और वहां कुटिया बनाकर गृहप्रतिष्ठा करके निवास करना, भरत का आगमन, अयोध्या में जाने के लिये राम के आगे भरत की प्रार्थना, पिता की मृत्यु सुनकर राम का शोकातुर होना, रामचन्द्र के खडाऊं लेकर भरत का नन्दिग्राम में निवास करना, चित्रकूट से दण्डकारण्य में जाना विराध का वध, शरभङ्ग का दर्शन, सुतीक्ष्ण का समागम, अत्रि ऋषि की धर्मपत्नी अनुसूया के साथ सीता समागम और उनको अर्घ्य तथा चन्दनार्पण का वर्णन किया ॥

दर्शनं चाप्यगस्त्यस्य धनुषो ग्रहणं तथा ।
शूर्पणख्याश्च संवादं विरूपकरणं तथा ॥ १९ ॥
वधं खरत्रिशिरसोरुत्थानं रावणस्य च ।
मारीचस्य वधं चैव वैदेह्या हरणं तथा ॥ २० ॥
राघवस्य विलापं च गृध्रराजनिबर्हणम् ।
कबन्धदर्शनं चैव पम्पायाश्चापि दर्शनम् ॥ २१ ॥

अर्थ—अगस्त्य का दर्शन तथा उनसे धनुष लेना, पञ्चवटी में जाना, शूर्पणखा का दर्शन और उसके साथ विवाद होकर उसको विरूप कर देना, खर, त्रिशिरा आदि राक्षसों को मारना, सीता का हरण, रामचन्द्र का विलाप, जटायु का मिलना, मारीच का मारना, जटायु की मृत्यु, कबन्ध और पम्पासर का दर्शन ॥

शबरीदर्शनं चैव फलमूलाशनं तथा ।
प्रलापं चैव पम्पायां हनूमद्दर्शनं तथा ॥ २२ ॥
ऋष्यमूकस्य गमनं सुग्रीवेण समागमम् ।
प्रत्ययोत्पादनं सख्यं वालिसुग्रीवविग्रहम् ॥ २३ ॥
वालिप्रमथनं चैव सुग्रीवप्रतिपादनम् ।
ताराविलापं समयं वर्षरात्रनिवासनम् ॥ २४ ॥
कोपं राघवसिंहस्य बलानामुपसंग्रहम् ।
दिशः प्रस्थापनं चैव पृथिव्याश्च निवेदनम् ॥ २५ ॥

अर्थ—शबरी का मिलाप और उसके दिये हुए फल फूल खाना, पम्पासर में सीता के विरह से रामचन्द्र का

अत्यन्त विलाप करना, हनुमान् का दर्शन, उसके कथनानुसार ऋष्यमूक पर्वत पर जाना और सुग्रीव का दर्शन करके उसको बाली के हननार्थ विश्वास दिलाना तथा उसके साथ रामचन्द्र की मित्रता, बालि का मारना, तारा का विलाप, वर्षाकाल पर्यन्त उसी पर्वत पर निवास करना, रामचन्द्र का सुग्रीव पर क्रोध करना, सेना का संग्रह, सीता के अन्वेषणार्थ हनुमान आदि के प्रति पृथ्वी के प्रसिद्ध स्थानों का वर्णन करना, इत्यादि सब बातों को ऋषि ने विस्तार से वर्णन किया।

अंगुलीयकदानं च ऋक्षस्य बिलदर्शनम् ।
प्रायोपवेशनं चैव संपातेश्चापि दर्शनम् ॥ २६ ॥
पर्वतारोहणं चैव सागरस्यापि लङ्घनम् ।
समुद्रवचनाच्चैव मैनाकस्य च दर्शनम् ॥ २७ ॥
राक्षसीतर्जनं चैव च्छायाग्राहस्य दर्शनम् ।
सिंहिकायाश्च निधनं लङ्कामलयदर्शनम् ॥ २८ ॥
रात्रौ लङ्काप्रवेशं च एकस्यापि विचिन्तनम् ।
आपानभूमिगमनमवरोधस्य दर्शनम् ॥ २९ ॥
दर्शनं रावणस्यापि पुष्पकस्य च दर्शनम् ।
अशोकवनिकायानं सीतायाश्चापि दर्शनम् ॥३०॥
अभिज्ञानप्रदानं च सीतायाश्चापि भाषणम् ।
राक्षसीतर्जनं चैव त्रिजटास्वप्नदर्शनम् ॥ ३१ ॥

अर्थ—सीता के विश्वासार्थ रामचन्द्र का अंगूठी देना, ऋक्षराज जाम्बवान् का बिल समानाकार गृह देखना,

समुद्र के तटपर पहुंचकर सीता का पता न मिलने के कारण अनशन ब्रत का धारण करना, जटायु के बड़े भाई संपाति का मिलना, समुद्र पार होने के लिये महेन्द्र नामक पर्वत पर चढ़ना, राक्षसी को झिड़कना तथा छायाग्राह को देखना, सिंहिका नाम राक्षसी को मार लंका के पर्वत को देखना, रात्रि के समय हनुमान् का लंका में प्रवेश कर चिन्तन करना और उसी समय रावण के अन्तःपुर तथा पुष्पकविमान को देख अशोक बन में आकर सीता का दर्शन कर उसके आगे रामचन्द्र की दीहुई अंगूठी अर्पण करना और अनेक विध वार्त्तालाप करना, राक्षसियों का सीता को डराना तथा त्रिजटा के स्वप्नदर्शन को वर्णन किया ॥

मणिप्रदानं सीताया वृक्षभङ्गं तथैव च ।
राक्षसीविद्रवं चैव किंकराणां निबर्हणम् ॥ ३२ ।
ग्रहणं वायुसूनोश्च लङ्कादाहाभिगर्जनम् ।
प्रतिप्लवनमेवाथ मधूनां हरणं तथा ॥ ३३ ॥
राघवाश्वासनं चैव मणिनिर्यातनं तथा ।
संगमं च समुद्रेण नलसेतोश्च बन्धनम् ॥ ३४ ॥
प्रतारं च समुद्रस्य रात्रौ लङ्कावरोधनम् ।
विभीषणेन संसर्गं वधोपायनिवेदनम् ॥ ३५ ॥

अर्थ—रामचन्द्र के विश्वासार्थ सीता का हनुमान् के प्रति मणि का देना, हनुमान् का अशोक बन का नाश करना, राक्षसियों का पलायन, कई एक राक्षसों को मारना, हनुमान् का पकड़ा जाना,

लंका का दाह,सीता का सन्देश लेकर हनुमान् का आना, सीता की दीहुई मणि देकर रामचन्द्र को विश्वास दिलाना,राम का समुद्र के पास पहुंचकर सेतु का बांधना, समुद्र के पार होकर रात्रि के समय लंका पर आक्रमण करना और विभीषण के साथ मिलकर उसके कथन किये हुए रावण के बध करने के उपाय को भी वर्णन किया ॥

कुम्भकर्णस्य निधनं मेघनादनिबर्हणम् ।
रावणस्य विनाशं च सीतावाप्तिमरेः पुरे ॥ ३६ ॥
विभीषणाभिषेकं च पुष्पकस्य च दर्शनम् ।
अयोध्यायाश्च गमनं भरद्वाजसमागमम् ॥३७॥
प्रेषणं वायुपुत्रस्य भरतेन समागमम् ।
रामाभिषेकाभ्युदयं सर्वसैनविसर्जनम् ।
स्वराष्ट्ररञ्जनं चैव वैदेह्याश्च विसर्जनम् ॥३८॥
अनागतं च यत्किंचिद्रामस्य वसुधातले ।
तच्चकारोत्तरे काव्ये वाल्मीकिर्भगवानृषिः ॥३९॥

अर्थ—कुंभकर्ण तथा मेघनाद का मारना,रावण को मारकर लंका में सीता को प्राप्त होना, विभीषण को राजतिलक देकर पुष्पकविमान का देखना, विजय प्राप्त कर अयोध्या में आते हुए भरद्वाज का मिलाप, अपने आगमन का संदेश देने के लिये हनुमान् को भरत के पास भेजना और भरत का प्रसन्नतापूर्वक मिलाप, रामचन्द्र का अभिषेक,सब सेना का विसर्जन,राम का सिंहासन पर बैठ राज्यशासन करना और प्रजा के रञ्जनार्थ सीता का पुनः वन में भेजना,

इत्यादि कई एक अन्य राम सम्बन्धी विषयों को महर्षि वाल्मीकि ने सुन्दर काव्य में वर्णन कर विचार किया कि कौन बुद्धिमान् शिष्य इस महान् ग्रन्थ का अध्ययन करके मेरे परिश्रम को सफल करेगा।

इति तृतीयः सर्गः

अथ चतुर्थः सर्गः

तस्य चिन्तयमानस्य महर्षेर्भावितात्मनः।
अगृहीतां ततः पादौ मुनिवेषौ कुशीलवौ ॥ १ ॥

अर्थ—इस प्रकार चिन्तन करते हुए शुद्ध अन्तःकरण वाले मुनि का आशय समझकर कुश लव नामक दो ब्रह्मचारियों ने ऋषि के चरणों को पकड़कर आदिकाव्य रामायण का अध्ययन करने के लिये प्रार्थना की ॥

कुशीलवौ तु धर्मज्ञौ राजपुत्रौ यशस्विनौ।
भ्रातरौ स्वरसंपन्नौ ददर्शाश्रमवासिनौ ॥ २ ॥
स तु मेधाविनौ दृष्ट्वा वेदेषु परिनिष्ठितौ।
वेदोपबृंहणार्थाय तावग्राहयत प्रभुः ॥ ३ ॥

अर्थ—यशस्वी, मेधाशाली, गुरुशुश्रूषारूप धर्म को जानने वाले निज आश्रमवासी तथा मधुरस्वर वाले वेदार्थ के चिन्तन में तत्पर राजपुत्र कुश लव नामक दोनों भाइयों को अधिकारी समझकर ऋषि ने उनको रामायण पढ़ाया ॥

काव्यं रामायणं कृत्स्नं सीतायाश्चरितं महत्।

पौलस्त्यवधमित्येवं चकार चरितव्रतः ॥ ४ ॥
पाठ्ये गेये च मधुरं प्रमाणैस्त्रिभिरन्वितम् ।
जातिभिः सप्तभिर्युक्तं तन्त्रीलयसमन्वितम् ॥५॥
रसैः शृङ्गारकरुणहास्यरौद्रभयानकैः ।
वीरादिभीरसैर्युक्तं काव्यमेतदगायताम् ॥ ६ ॥

अर्थ–जिसमें सीता का उत्तम चरित्र तथा रावण की निन्दनीय मृत्यु वर्णन कीगई है और जो साधारण पाठ तथा स्वर विशेष के आलाप द्वारा गायन करने योग्य द्रुत, मध्य, विलम्बित रूप गन्धर्वशास्त्र प्रसिद्ध तीन प्रमाणों से युद्ध, निषाद, ऋषभ, गान्धारादि सात प्रकार की जातियों से वीणाद्वारा आलाप करने योग्य है, एवं जिसमें श्रृङ्गार, करुण, हास्य, रौद्र, वीर और भयानक रसों को कविता की शैली से भले प्रकार दर्शाया गया है, ऐसे सर्वोत्तम काव्य का उक्त दोनों भाइयों ने बड़े प्रेमपूर्वक अध्ययन किया ॥

तौ तु गान्धर्वतत्त्वज्ञौ स्थानमूर्छनकोविदौ ।
भ्रातरौ स्वरसंपन्नौ गन्धर्वाविव रूपिणौ ॥ ७ ॥
रूपलक्षणसंपन्नौ मधुरस्वरभाषिणौ ।
बिम्बादिवोत्थितौ बिम्बौ रामदेहात्तथा परौ ॥८॥
तौ राजपुत्रौ कार्त्स्न्येन धर्म्यमाख्यानमुत्तमम् ।
वाचोविधेयं तत्सर्वं कृत्वा काव्यमनिन्दितौ ॥ ९ ॥

ऋषीणां च द्विजातीनां साधूनां च समागमे ।
यथोपदेश तत्त्वज्ञौ जगतुःस्तौ समाहितौ॥ १० ॥

अर्थ–इस प्रकार गन्धर्व शास्त्र के तत्त्व को जानने वाले षडजादि स्वरों के लापन में चतुर, मानो दोनों भाई गन्धर्व की मूर्ति हैं रूप लावण्य से सम्पन्न मधुरस्वर गन्धर्व के समान देदीप्यमान कुश और लव दोनों भाई जो बिम्ब से प्रतीत होने वाले प्रतिबिम्ब की भांति मानो रामचन्द्र की देह ही हैं, गुरुकृत उपदेश के अनुसार आदि काव्य का अध्ययन कर ऋषि, द्विजाति तथा साधु पुरुषों के समागम में अत्यन्त मधुर स्वर से गान करते थे ॥

महात्मानौ महाभागौ सर्वलक्षणलक्षितौ ।
तौ कदाचित्समेतानामृषीणां भावितात्मनाम् ॥११॥
मध्येसभं समीपस्थाविदं काव्यमगायताम् ।
तच्छ्रुत्वा मुनयः सर्वे बाष्पपर्याकुलेक्षणाः ॥ १२ ॥
साधु साध्विति तावूचुः परं विस्मयमागताः ।
ते प्रीतमनसः सर्वे मुनयो धर्मवत्सलाः ॥ १३ ॥
प्रशशंसुः प्रशस्तव्यौ गायमानौ कुशीलवौ ।
अहो गीतस्य माधुर्यं श्लोकानां च विशेषतः॥१४॥
चिरनिर्वृत्तमप्येतत्प्रत्यक्षमिव दर्शितम् ।
प्रविश्य तावुभौ सुष्ठु तथा भावमगायताम् ॥ १५ ॥

अर्थ–एक दिन उत्तम भाग्यशाली महात्मा कुश-लव ने

शुद्ध अन्तःकरण वाले मुनियों की सभा में इस काव्य का गायन किया तब उसको श्रवण कर विस्मय को प्राप्त हो सब मुनि प्रसन्न मन से उनकी स्तुति करते हुए बोले कि अहो किस प्रकार गीत की मधुरता और श्लोकों की उत्तम रचना है जिसके श्रवण करने से रामचन्द्र का जीवनचरित्र प्रत्यक्ष अनुभव होता है, जब मुनि लोगों ने उनकी ऐसी प्रशंसा की तो दोनों भाइयों ने मध्यमादि स्वरों से अति मधुर वाणी में ऐसी रीति से गाया कि उन्होंने सब के मन अपनी ओर आकर्षित करलिये ॥

सहितौ मधुरं रक्तं संपन्नं स्वरसंपदा ।
एवं प्रशस्यमानौ तौ तपःश्लाघ्यैर्महर्षिभिः ॥ १६ ॥

संरक्ततरमत्यर्थं मधुरं तावगायताम् ।
प्रीतः कश्चिन्मुनिस्ताभ्यां संस्थितः कलशं ददौ ॥१७॥

अर्थ—इस प्रकार उन तपस्वियों के स्तुति करने पर उनकी विशेष उत्कण्ठा देख पुनः मधुर स्वर से गायन करने लगे, फिर प्रसन्न होकर उनको किसी मुनि ने कलश दिया ।

प्रसन्नो वल्कलं कश्चिद्ददौ ताभ्यां महायशाः ।
अन्यः कृष्णाजिनमदाद्यज्ञसूत्रं तथापरः ॥ १८ ॥
कश्चित्कमण्डलुं प्रादान्मौञ्जीमन्यो महामुनिः ।
बृसीमन्यस्तदा प्रादात्कौपीनमपरो मुनिः ॥ १९ ॥
ताभ्यां ददौ तदा हृष्टः कुठारमपरो मुनिः ।
काषायमपरो वस्त्रं चीरमन्यो ददौ मुनिः ॥ २० ॥

अर्थ–और किसी गन्धर्वविद्या के रहस्य को जानने वाले मुनि ने प्रसन्न होकर वस्त्र दिये तथा किसी ने कृष्णाजिन,किसी ने यज्ञोपवीत, किसी ने कमण्डलु, किसी ने मौञ्जी मेखला, किसी ने आसन, किसी ने कौपीन, किसी ने कुठार. किसी ने काषायवस्त्र और किसी ने चीर अर्पण किया ॥

जटाबन्धनमन्यस्तु काष्ठरज्जुं मुदान्वितः ।
यज्ञभाण्डमृषिः कश्चित्काष्ठभारं तथा परः ॥ २१ ॥
औदुम्बरीं बृसीमन्यः स्वस्ति केचित्तदावदन् ।
आयुष्यमपरे प्राहुर्मुदा तत्र महर्षयः ॥ २२ ॥

अर्थ–इस प्रकार बड़ी प्रसन्नता के साथ किसी मुनि ने जटा बन्धन के लिये सूत्र, किसी ने समिधाओं को बान्धने के लिये रज्जु, किसी ऋषि ने यज्ञपात्र तथा किसी ने अग्निहोत्र के लिये समिधा और किसी मुनि ने उदुम्बर का बना हुआ आसनविशेष भेट किया, और कई एक मुनियों ने केवल "आयुष्मन्तौ भवतां"=चिरायु होवे,इसप्रकार आशीर्वाददिया॥

ददुश्चैवं वरान्सर्वे मुनयः सत्यवादिनः ।
आश्चर्यमिदमाख्यानं मुनिना संप्रकीर्तितम् ॥२३॥

अर्थ–एवं उनको यथायोग्य भेट करके सत्यवादी मुनि बोले कि महर्षि वाल्मीकि ने बड़ी योग्यता से इस रामचरित्र का ग्रन्थन किया है ॥

परं कवीनामाधारं समाप्तं च यथाक्रमम् ।
अभिगीतमिदं गीतं सर्वगीतिषु कोविदौ ॥ २४ ॥

अर्थ—यह काव्य कवियों को अपनी योग्यता बढ़ाने के लिये बहुत लाभकारी है जिसको इन दोनों ब्रह्मचारियों ने मधुर स्वर से गायन किया है अवश्य ही यह अध्ययन करने योग्य है ॥

आयुष्यं पुष्टिजननं सर्वश्रुतिमनोहरम् ।
प्रशस्यमानौ सर्वत्र कदाचित्तत्र गायकौ ॥ २५ ॥
रथ्यासु राजमार्गेषु ददर्श भरताग्रजः ।
स्ववेश्मचानीय ततो भ्रातरौ स कुशीलवौ ॥ २६ ॥
पूजयामास पूजार्हौ रामः शत्रुनिबर्हणः ।
आसीन काञ्चनेः दिव्ये स च सिंहासने प्रभुः ॥ २७ ॥

अर्थ—इस आयु के देने वाले पुष्टिवर्धक मनोहर काव्य का राजगलियों में गायन करते हुए सुनकर महाराज रामचन्द्र कुश लव नामक दोनों भाइयों को राजमन्दिर में लेगये और उनका यथायोग्य सत्कार कर आसन दे स्वयं काञ्चनमय दिव्य राज-सिंहासन पर विराजमान होकर :—

उपोपविष्टैः सचिवैर्भ्रातृभिश्च समन्वितः ।
दृष्ट्वा तु रूपसंपन्नौ विनीतौ भ्रातरावुभौ ॥ २८ ॥
उवाच लक्ष्मणं रामः शत्रुघ्नं भरतं तथा ।
श्रूयतामेतदाख्यानमनयोर्देववर्चसोः ॥ २९ ॥

अर्थ—अन्य सब मन्त्रिवर्ग तथा अपने भाइयों के साथ सभा में उन सुशिक्षित दोनों भाइयों के रूप सौन्दर्य को देख रघुकुल

भूषण रामचन्द्र ने भरत, लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न को कहा कि देवताओं के समान देदीप्यमान कुश लव द्वारा उत्तम आख्यान का श्रवण करो ॥

विचित्रार्थपदं सम्यग्गायकौ समचोदयत् ।
तौ चापि मधुरं रक्तं स्वचित्तायतनिःस्वनम् ॥३०॥
तन्त्रीलयवदत्यर्थं विश्रुतार्थमगायताम् ।
ह्लादयत्सर्वगात्राणि मनांसि हृदयानि च ।
श्रोत्राश्रयसुखं गेयं तद्बभौ जनसंसदि ॥ ३१ ॥

अर्थ–जिसमें नानाप्रकार के विचित्र अर्थसहित पद हैं, इतना कहकर उनको गान करने के लिये आज्ञा दी और उन्होंने मधुर स्वर से वीणालय के साथ इस प्रकार उस श्रवणार्ह काव्य का गायन किया कि जिसको सुनते ही सभास्थ सब पुरुषों के मन प्रफुल्लित होगये ॥

इमौ मुनी पार्थिवलक्षणान्वितौ कुशीलवौ ।
चैव महातपस्विनौ । ममापि तद्भूतिकरं ।
प्रचक्षते महानुभावं चरितं निबोधत ॥ ३२ ॥

अर्थ–रामचन्द्र बोले कि हे सभास्थ पुरुषो ! यह कुश लव नामक दोनों महातपस्वी राजपुत्रों के समान लक्षणों वाले कल्याणप्रद मेरे तथा सीता के चरित्र को गायन करते हैं आप सब ध्यान देकर श्रवण करो ॥

ततस्तु तौ रामवचः प्रचोदितावगायतां-

मार्गविधानसंपदा । स चापि रामः परिषद्गतः
शनैर्बुभूषयासक्तमना बभूव ॥ ३३ ॥

अर्थ—तब महाराज रघुवर के वचन को सुनकर उक्त दोनों ब्रह्मचारियों ने गन्धर्वशास्त्र प्रसिद्ध मार्ग नामक गायन के प्रकार से रामचरित्र का गान किया जिसको सुनकर सभा के मध्य में स्थिर चित्त विराजमान रामचन्द्र अत्यन्त प्रसन्न हो तन्मय होगये ॥

इति चतुर्थः सर्गः

अथ पंचमः सर्गः

तदिदं वर्तयिष्यावः सर्वं निखिलमादितः ।
धर्म कामार्थसहितं श्रोतव्यमनसूयया ॥ १ ॥

अर्थ—अब उक्त आख्यान का आदि से लेकर समाप्ति पर्य्यन्त वर्णन करता हूं, इस धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को देने वाले रामायण का ध्यानपूर्वक श्रवण करना चाहिये ॥

कोशलो नाम मुदितः स्फीतो जनपदो महान् ।
निविष्टःसरयूतीरे प्रभूतं धनधान्यवान् ॥ २ ॥

अर्थ—सरयू नदी के तट पर धन धान्य से पूरित एक बड़ा प्रफुल्लित कोशल नाम महान् देश है ।

अयोध्या नाम नगरी तत्रासील्लोकविश्रुता ।
मनुना मानवेन्द्रेण या पुरीनिर्मिता स्वयम् ॥ ३ ॥

अर्थ—उसमें मानवेन्द्र मनु की बसाई हुई लोकप्रसिद्ध अयोध्या नाम नगरी है ॥

आयता दश च द्वे च योजनानि महापुरी।
श्रीमती त्रीणि विस्तीर्णा सुविभक्तमहापथा ॥४॥

अर्थ—वह महापुरी १२ योजन=४८कोश लम्बी, ३ योजन=१२ कोश चौड़ी और विस्तृत मार्गों से शोभायमान है ॥

राजमार्गेण महता सुविभक्तेन शोभिता।
मुक्त पुष्पावकीर्णेन जलसिक्तेन नित्यशः ॥५॥

अर्थ—वह नित्य जलसिंचन किये हुए विस्तृत राजमार्ग से सुशोभित है जिस पर सदा फूल खिले रहते हैं ॥

तां तु राजा दशरथो महाराष्ट्र विवर्धनः।
पुरीमावासयामास दिवि देवपतिर्यथा ॥ ६ ॥

अर्थ—उसमें बड़े राज्य का बढ़ाने वाला राजा दशरथ ऐसे बसता है जैसे इन्द्रलोक में इन्द्र निवास करता है ॥

कपाट तोरणवतीं सुविभक्तांतरापणाम्।
सर्वयन्त्रायुधवतीमुषिता सर्वशिल्पिभिः ॥ ७ ॥

अर्थ—वह पुरी सब यन्त्र आयुधों से युक्त और शिल्पियों से बसी हुई सुविभक्त बाज़ारों वाली किवाड़ और तोरणों से सुशोभित है ॥

सूत मागधसम्बाधां श्रीमतीमतुलप्रभाम्।
उच्चाट्टलध्वजवतीं शतघ्नीशत संकुलाम् ॥ ८ ॥

अर्थ—वह अतुलप्रभापुरी ऊंचे २ अट्टाओं पर ध्वजा वाली सैकडों तोपों से पुरित और बहुत से सूत मागधों से युक्त अतुल शोभावाली है ॥

बधू नाटक संघैश्च संयुक्तां सर्वतः पुरीम् ।
उद्यानाम्र वणोपेतां महतीं साल मेखलाम् ॥ ९ ॥

अर्थ—वह पुरी सब ओर से साल और आम्र के बन वाटिकाओं से घिरी हुई और स्त्रियों के कला नाटक समुदायों से युक्त है ॥

दुर्ग गम्भीर परिखां दुर्गामन्यैर्दुरासदाम् ।
वाजि वारण सम्पूर्णां गोभिरुष्ट्रैः खरैस्तथा ॥१०॥

अर्थ—बड़े दुर्ग तथा गहरी खाइयों वाली जिसमें शत्रुओं का प्रवेश नहीं होसक्ता और जो घोड़े, हाथी, गौ, ऊंट, खच्चर आदि संपूर्ण पशुओं से युक्त है ॥

सामन्त राजसंघैश्च वलिकर्मभिरावृताम् ।
नानादेश निवासैश्चवणिग्भिरुपशोभिताम् ॥११॥

अर्थ—शूरवीर योद्धा, राजपुरुषों के समुदाय और बलिकर्म=सदावर्त्त से आवृत तथा अनेक देश निवासी व्यापारियों से सुशोभित है ॥

प्रासादैर्रत्न विकृतैः पर्वतैरिव शोभिताम् ।
कूटागारैश्च संपूर्णामिन्द्रस्येवामरावतीम् ॥ १२ ॥

अर्थ—रत्नों से जटित क्रीडा पर्वतों वाले राजगृहों से सुशोभित तथा स्त्रियों के क्रीडागृहों से युक्त इन्द्र की अमरावती पुरी के समान है ॥

चित्रामष्टा पदाकारांवरनारीगणायुताम् ।
सर्वरत्नसमाकीर्णां विमानगृह शोभिताम् ॥१३॥

अर्थ—सुवर्ण की चित्रकारी से अलंकृत, विदुषी सुंदर नारी गणों से युक्त तथा सर्व प्रकार के रत्नों से पूर्ण सप्तमंजिल गृहों से सुशोभित है ॥

गृहगाढामविच्छिद्रां समभूमौ निवेशिताम् ।
शालि तण्डुल संपूर्णामिक्षुकाण्डरसोदकाम् ॥ १४ ॥

अर्थ—पौरजनों के घने गृहों से युक्त समान भूमि पर बसने वाली ईख के दंडरस के समान मीठे पानी वाली और शाली चावलों के ढेरों से युक्त है ॥

दुन्दुभीभिर्मृदंगैश्च वीणाभिः पणवैस्तथा ।
नादितां भृशमत्यर्थं पृथिव्यांतामनुत्तमाम् ॥१५॥

अर्थ—और जो दुन्दुभी, मृदङ्ग, वीणा, पणवादि वादित्रों से नादित पृथिवी पर सर्वोत्तम है ॥

विमानमिव सिद्धानां तपसाधिगतं दिवि ।
सुनिवेशित वेश्मां तां नरोत्तम समावृताम् ॥१६॥

अर्थ—वह पुरी गृहप्रवेशक उत्तम द्वारों से युक्त, महापुरुषों से पूरित ऐसी दिव्य है जैसे श्रमयुक्त विज्ञान से निर्मित आकाश में सिद्धों के विमान होते हैं ॥

ये च वाणैर्नविध्यन्ति विविक्तमपरापरम् ।
शब्दवेध्यं च विततं लघुहस्ता विशारदाः ॥१७॥

अर्थ—जिन बन के दुष्ट पशुओं को वाणों द्वारा राजा तथा मन्त्री आदि नहीं मारसकते उनको लघुहस्त=शीघ्र शस्त्र चलाकर मारने वाले शब्दवेधी योद्धा वहां वसते हैं ॥

सिंह व्याघ्रवराहाणां मत्तानां नदतांवने ।
हन्तारोनिशितैः शस्त्रैर्वलाद्वाहुबलैरपि ।।१८।।

अर्थ—और बन में मत्त होकर नाद करने वाले सिंह, व्याघ्र तथा वराहों को तीक्ष्ण शस्त्रों तथा बाहुबल से हनन करने वाले योद्धा वहां पर हैं ॥

तादृशानां सहस्रैस्तामभिपूर्णा महारथैः ।
पुरीमावासयामासराजादशरथस्तदा ॥ १९ ॥

अर्थ—ऐसे सहस्रों महारथियों तथा अन्यान्य अनेक गुणयुक्त पुरुषों से पूर्ण उस पुरी में राजा दशरथ निवास करते हैं ॥

तामग्निमद्भिर्गुणवद्भिरावृतां-
द्विजोत्तमैर्वेदषडंग पारगैः ।
सहस्रदैः सत्यरतैर्महात्मभि-
र्महर्षिकल्पैर्ऋषिभिश्चकेवलैः ॥ २० ॥

अर्थ—फिर वह पुरी अग्निहोत्री, गुणवान, छःअंगों सहित वेदपारङ्गत द्विजोत्तम तथा सहस्रों विद्यार्थियों को वेदविद्या पढ़ाने वाले, सत्यरत, महात्मा महर्षि और केवल मंत्रार्थद्रष्टा ऋषियों से पूर्ण है ॥

इति पंचमःसर्गः

अथ षष्ठः सर्गः

तस्यां पुर्य्यामयोध्यायां वेदवित्सर्वसंग्रहः ।
दीर्घदर्शी महातेजाः पौरजानपदप्रियः ॥ १ ॥

अर्थ—उस अयोध्यापुरी में वेदज्ञ, सबका यथायोग्य मान करने वाला, दीर्घदर्शी, महातेजस्वी पुरवासी वा देशवासियों का प्रिय—

इक्ष्वाकूणामतिरथो यज्वा धर्मपरो वशी ।
महर्षि कल्पो राजर्षिस्त्रिषु लोकेषु विश्रुतः ॥२॥

अर्थ—इक्ष्वाकु वंशीय महारथी, यज्ञशील, धर्मपरायण, सबको वश में रखने वाला महर्षियों के समान राजर्षि तीनों लोक में प्रसिद्ध—

बलवान्निहतामित्रो मित्रवान् विजितेन्द्रियः ।
धनैश्च संचयैश्चान्यैः शक्रवैश्रवणोपमः ॥३॥

अर्थ—पराक्रमी, शत्रुहन्ता, मित्रोंवाला, जितेन्द्रिय और धनधान्य के संचय में इन्द्र और कुवेर के समान है ॥

यथा मनुर्महातेजा लोकस्य परिरक्षिता ।
तथा दशरथो राजा लोकस्य परिरक्षिता ॥ ४ ॥

अर्थ—राजा दशरथ सम्पूर्ण प्रजा का सब ओर से ऐसा ही रक्षक है जैसा महातेजस्वी मनु अपनी प्रजा का परिरक्षक था ॥

तेन सत्याभिसन्धेन त्रिवर्गमनुतिष्ठता ।
पालिता सा पुरीं श्रेष्ठा इन्द्रेणेवामरावती ॥ ५ ॥

अर्थ—धर्म, अर्थ, काम के अनुष्ठाता उस सत्यप्रतिज्ञ ने वह अयोध्यापुरी इस प्रकार से सुरक्षित की जैसे इन्द्र की अमरावती थी॥

तस्मिन्पुरवरे हृष्टा धर्मात्मानो बहुश्रुताः ।
नरास्तुष्टा धनैः स्वैः स्वैरलुब्धाः सत्यवादिनः ॥६॥

अर्थ–उस श्रेष्ठ पुरी में सब जन हृष्ट पुष्ट, धर्मात्मा, बहुश्रुत, लोभरहित, सत्यवादी और अपनी ही कमाई के धन से सन्तुष्ट हैं ॥

नाल्पसन्निचयः कश्चिदासीत्तस्मिन्पुरोत्तमे ।
कुटुम्बी यो ह्यसिद्धार्थो गवाश्वधनधान्यवान् ॥७॥

अर्थ–उस उत्तम पुरी में न कोई निर्धन और नाही कोई कुटुम्बी धर्मादि तथा गौ, घोड़ा आदि धन धान्य से रहित था ॥

कामी वा न कदर्यो वा नृशंसः पुरुषः क्वचित् ।
द्रष्टुंशक्यमयोध्यायां नाविद्वान्नचनास्तिकः ॥ ८ ॥

अर्थ–अयोध्या में कोई बिना पढ़ा वा नास्तिक देखने को भी न था और नाही कोई कामी, झूठा, खुशामदी, कठोरचित्त वा हिंसक था ॥

सर्वे नराश्च नार्यश्च धर्मशीलाः सुसंयताः ।
मुदिताः शीलवृत्ताभ्यां महर्षय इवामलाः ॥ ९ ॥

अर्थ–उस पुरी में सम्पूर्ण नर नारी धर्मशील, सदाचारी, श्रेष्ठ-स्वभाव और ब्रह्मचर्यादि व्रतों से युक्त महर्षियों की नाईं निष्पाप हैं ॥

नाकुण्डली नामुकुटी नास्रग्वी नाल्पभोगवान् ।
नामृष्टो नानुलिप्ताङ्गो नासुगंधश्च विद्यते ॥१०॥

अर्थ—उस पुरी में कुंडल, मुकुट तथा मालाओं से कोई भी रहित न था न कोई मलिन वेश वाला तथा इतर चन्दनादि के लेपों से रहित अल्प सुखवाला था ॥

नामृष्टभोजी नादाता नाप्यनंगदनिष्कधृक् ।
नाहस्ताभरणो वापि दृश्यते नाप्यनात्मवान् ॥११॥

अर्थ—अस्वादु भोगों वाला, दान न देने वाला, हृदय व हाथों में सुवर्ण के भूषण न पहरने वाला और अन्तःकरण को वश में न रखने वाला अयोध्या में कोई न था ॥

नानाहिताग्निर्नायज्वा न क्षुद्रो वा न तस्करः ।
कश्चिदासीदयोध्यायां नचावृत्तो न संकरः॥१२॥

अर्थ—अग्निहोत्र न करने वाला, गार्हपत्याग्नि तथा वेदोक्त व्रतों से हीन, क्षुद्र, चौर और वर्णसंकर कोई भी अयोध्यापुरी में न था ॥

स्वकर्मनिरतानित्यं ब्राह्मणा विजितेन्द्रियाः ।
दानाध्ययनशीलाश्च संयताश्च प्रतिग्रहे ॥१३॥

अर्थ—ब्राह्मण लोग जितेन्द्रिय, नित्य पंचमहायज्ञ करने वाले, संयमी, दान देने लेने वाले और वेदाध्ययनादि स्वकर्मों में रत थे ॥

नास्तिको नानृतीवापिनकश्चिदबहुश्रुतः ।
नासूयको नाशक्तो नाविद्वान्विद्यते क्वचित्॥ १४ ॥

अर्थ—नास्तिक, झूठ बोलने वाला तथा बहुत शास्त्र न सुना हुआ, ईर्षालु, अशक्त और अविद्वान् वहां कोई भी न था ॥

नाषडङ्गविदत्रास्तिनाव्रतो ना वहुश्रुतः ।
नदीनःक्षिप्तचित्तोवाव्यथितोवापिकश्चन ॥१५॥

अर्थ-छःअंगों के साहित वेदों को न जानने वाला, दुराचारी, अश्रुतज्ञ, निर्धन, भ्रमात्मकबुद्धि और रोगी कोई भी न था ॥

कश्चिन्नरो वा नारी वा नाश्रीमान्नाप्यरूपवान् ।
द्रष्टुंशक्यमयोध्यायां नापिराजन्यभक्तिमान्॥१६॥

अर्थ-ऐश्वर्य्य मे रहित, कुरूप तथा राजा में भक्ति न रखने वाला कोई भी नर नारी अयोध्यापुरी में न था ॥

वर्णेष्वग्र्य चतुर्थेषु देवतातिथिपूजकाः ।
कृतज्ञाश्च वदान्याश्च शूरा विक्रम संयुताः ॥१७॥

अर्थ-उस अयोध्यापुरी में चारो वर्णों के मनुष्य देवता तथा अतिथियों के पूजक,कृतज्ञ,बड़ेदानी,शूरवीर और पराक्रमयुक्त थे॥

दीर्घायुषोनराः सर्वे धर्म सत्यं च संश्रिताः ।
सहिताः पुत्र पौत्रैश्चनित्यंस्त्रीभिः पुरोत्तमे ॥१८॥

अर्थ-उस उत्तमपुरी में पुत्र पौत्र और स्त्रियों सहित सम्पूर्ण मनुष्य बड़ी आयु वाले और धर्म तथा सत्य के आश्रित थे ॥

क्षत्रंब्रह्ममुखंचासीद्वैश्याः क्षत्रमनुव्रताः ।
शूद्राः स्वकर्मनिरतास्त्रीन्वर्णानुपचारिणः ॥ १९ ॥

अर्थ-क्षत्री ब्राह्मणों के अनुगामी, वैश्य क्षत्रियानुगामी तथा शूद्र स्वधर्म में तत्पर तीनों वर्णों की सेवा करते थे ॥

सातेनेक्ष्वाकुनाथेनपुरीसुपरि रक्षिता ।

यथापुरस्तान्मनुनामानवेन्द्रेण धीमता ॥ २० ॥

अर्थ—जैसे पूर्वकाल में मानवेन्द्र मनु ने रक्षा की थी वैसे ही इक्ष्वाकुवंशीय राजा दशरथ उस पुरी की रक्षा कर रहा था ॥

योधानाममिकल्पानां पेशलानाममर्षिणाम् ।
संपूर्णकृतविद्यानां गुहा केसरिणामिव ॥ २१ ॥

अर्थ—जैसे पर्वतों की कंदरा सिंहों से भरपूर होती हैं वैसे ही अस्त्रविद्या के जानने वाले, अनिन्दित, असह्य, युद्धकर्त्ता तथा सम्पूर्ण विद्यायुक्त योधाओं से वह पुरी भरपूर है ॥

कांबोज विषये जातैर्वाह्लीकैश्चहयोतमैः ।

वनायुजेर्नदीजैश्च पूर्णा हरिहयोत्तमैः ॥ २२ ॥

अर्थ—और वह पुरी कांबोज=काबुल, वाह्लीक=अरब तथा सैंधव=सिंधु नदी तट के और हरिवर्ष=यूरप के उत्तम २ घोड़ाओं से सुशोभित है ॥

विन्ध्यपर्वतजैर्यत्तैःपूर्णाहैमवतैरपि ।

मदान्वितैरतिवलैर्मातंगैः पर्वतोपमैः ॥ २३ ॥

अर्थ—विन्ध्याचल और हिमालय पर्वतों में उत्पन्न हुए मत्त, मदान्ध, अतिवलवान मातंग, पर्वतों के समान हाथियों से पूर्ण थी ॥

ऐरावत कुलीनैश्च महापद्मकुलैस्तथा ।

अंजनादपि निष्क्रान्तैर्वामनादपिचाद्विपैः ॥२४॥

अर्थ—ऐरावत, महापद्म जाति तथा अंजन और वामन जाति वाले हाथियों से वह पुरी सुशोभित थी ॥

भद्रैर्मन्द्रैर्मृगैश्चैव भद्रमन्द्रमृगस्तथा ।
भन्द्र मन्द्रैर्भद्र मृगैर्मृगमन्द्रैश्च सा पुरी ॥ २५ ॥
नित्य मत्तैः सदा पूर्णा नागैरचल सन्निभैः ।
सायोजने द्वेच भूयः सत्य नामा प्रकाशते ॥२६॥

अर्थ—भद्रजातीय, मन्द्रजातीय और मृगजातीय तथा भद्र, मन्द्र, मृग तीनों के मेल से उत्पन्न जाति वाले, भद्र मन्द्र, भद्र मृग, मृग मन्द्र जाति वाले, मतवाले पर्वतों के समान हाथियों से सदा भरी हुई तीन योजन विस्तारवाली किसी से कभी युद्ध में पराजित न होने वाली उत्तमोत्तम गजों से पूर्ण थी ॥

तां पुरीं स महातेजा राजादशरथो महान् ।
शशास शमितामित्रो नक्षत्राणीव चन्द्रमाः॥२७॥

अर्थ—उस पुरी में शत्रुओं का नाशक महातेजस्वी महाराजा दशरथ नक्षत्रों में चन्द्रमा की भांति शासन करता था ॥

तां सत्यनामां दृढतोरणार्गलां-
गृहैर्विचित्रैरुपशोभितां शिवाम् ।
पुरीमयोध्यां नृसहस्रसंकुलाम्-
शशासवै शक्रसमो महीपतिः ॥ २८ ॥

अर्थ—दृढ़ किवाड़ों वाले परकोटा से युक्त, सुन्दर, विचित्र गृहों से सुशोभित, हज़ारों मनुष्यों की बसावट से भरपूर, सत्यनामा उस अयोध्यापुरी में राजा दशरथ इन्द्र के समान शासन करता था ॥

इति षष्ठः सर्गः

अथ सप्तमः सर्गः

तस्यामात्या गुणैरासन्निक्ष्वाकोः सुमहात्मनः ।
मन्त्रज्ञाश्चेङ्गितज्ञाश्च नित्यं प्रियहितेरताः ॥ १॥

अर्थ–उस इक्ष्वाकुवंशीय श्रेष्ठ महात्मा दशरथ के मन्त्रीगण नीतिज्ञ, चेष्टा से मनुष्यों के आभ्यन्तर भावों के जानने वाले, नित्य ही प्रेमपूर्वक राजहित में रत—

अष्टौबभूबुर्वीरस्य तस्यामात्यायशस्विनः ।
शुचयश्चानुरक्ताश्च राजकृत्येषुनित्यशः ॥ २ ॥

अर्थ–पवित्रात्मा नित्य राज काज में अनुरक्त उस यशस्वी राजा के निम्नलिखित आठ मन्त्री थे :—

धृष्टिर्जयन्तोविजयः सुराष्ट्रो राष्ट्रवर्द्धनः ।
अकोपोधर्मपालश्च सुमन्त्रश्चाष्टमोऽर्थवित् ॥ ३ ॥

अर्थ–धृष्टि, जयन्त, विजय, सुराष्ट्र, राष्ट्रवर्द्धन, अकोप, धर्मपाल और अर्थवित आठवां सुमन्त्र था ॥

ऋत्विजोवाद्धाभिमतौतस्यास्तामृषि सत्तमौ ।
वसिष्ठो वामदेवश्चमन्त्रिणश्चतथापरे ॥ ४ ॥

अर्थ–महाराज को ऋतु २ में यज्ञ कराने वाले महाश्रेष्ठ वसिष्ठ और वामदेव दो ऋत्विज् और इनके अतिरिक्त व्यवहार द्रष्टा नीचे लिखे अन्य मन्त्री भी थे ॥

सुयज्ञोप्यथजाबालिः काश्यपोप्यथ गौतमः ।
मार्कंडेयस्तुदीर्घायुस्तथा कात्यायनोद्विजः ॥५॥

अर्थ–सुयज्ञ, जाबाली, काश्यप, गौतम, दीर्घायु मार्कंडेय और द्विजोत्तम कात्यायन ॥

एतैर्ब्रह्मर्षिभिर्नित्यमृत्विजस्तस्य पौर्वकाः ।
विद्याविनीताह्रीमन्तः कुशलानियतेन्द्रियाः ॥६॥

अर्थ—परम्परा से नियत उक्त मन्त्रीगण ब्रह्मऋषि वसिष्ठ तथा वामदेव के साथ यज्ञ में तत्पर, सब के सब विद्याविनीत, लज्जावान्, चतुर और जितेन्द्रिय थे॥

श्रीमन्तश्च महात्मानः शास्त्रज्ञादृढविक्रमाः ।
कीर्त्तिमन्तःप्रणिहिता यथावचन कारिणः ॥ ७ ॥

अर्थ—श्रीमान्, महात्मा, शास्त्रज्ञ, दृढ़ पराक्रमी, स्थिरचित्त, आज्ञाकारी और :—

तेजः क्षमायशः प्राप्ताः स्मितपूर्वाभिभाषिणः ।
क्रोधात्कामार्थ हेतोर्वानब्रूयुरनृतं वचः ॥ ८ ॥

अर्थ—तेजस्वी, सहनशील, यशस्वी, प्रसन्नमुख मधुर भाषी, स्वार्थ तथा क्रोधवश होकर कभी झूठ बोलने वाले न थे॥

तेषामविदितं किंचित्स्वेषु नाऽस्तिपरेषु वा ।
क्रियमाणं कृतंवाऽपि चोरेणाऽपिचिकीर्षितम् ॥ ९ ॥

अर्थ—उस मन्त्रीगण को अपने समुदाय वा अन्यों में कुछ भी अविदित न था वह वर्त्तमान और भविष्यत् के कर्त्तव्य को गुप्तचरों द्वारा जानकर कार्य्य करते थे॥

कुशलाव्यवहारेषु सौहृदेषुपरीक्षिताः ।
प्राप्तकालं यथा दण्डंधारयेयुः सुतेष्वपि ॥ १० ॥

अर्थ—सब व्यवहारों में चतुर, सुहृदता में परीक्षित,न्याय करते समय पुत्रों को भी विना दंड दिये नहीं छोड़ते थे॥

कोशसं ग्रहणेयुक्ता बलस्य च परिग्रहे ।
अहितं चापिपुरुषं नहिंस्युरविदूषकम् ॥ ११ ॥

अर्थ—कोशसंचय में चतुर, सेना के संपादक और बिना अपराध शत्रु को भी दण्ड न देने वाले थे ॥

वीराश्च नियतोत्साहा राजशास्त्रमनुष्ठिताः ।
शुचीनां रक्षितारश्च नित्यं विषयवासिनाम् ॥ १२ ॥

अर्थ—वीर, नियत समय पर उत्साही, राजनीति के अनुष्ठान करने वाले और राज्य निवासी सदाचारियों के रक्षक थे ॥

ब्रह्मक्षत्र माहिंसंतस्ते कोशं समपूरयन् ।
सुतीक्ष्णदंडाः संप्रेक्ष्य पुरुषस्य बलाबलम् ॥ १३ ॥

अर्थ—वह ब्राह्मण क्षत्रियों में निर्वैरता को धारण करते हुए राजकोश को पूर्ण रखते और अपराधी पुरुषों का बलाबल विचार कर कठोर या कोमल दण्ड देते थे ॥

शुचीनामेक बुद्धीनां सर्वेषां संप्रजानताम् ।
नासीत्पुरे वा राष्ट्रे वा मृषावादीनरः क्वचित् ॥१४॥

अर्थ—ऐकमत्य से काम करने वाले, पवित्रात्मा, विचारशील मंत्रियों के होने पर नगर वा राज्य में कोई पुरुष भी मिथ्यावादी न था ॥

क्वचिन्नदुष्टस्तत्रासीत्परदाररतिर्नरः ।
प्रशान्तं सर्व मेवासीद्राष्ट्रं पुरवरं च तत् ॥ १५ ॥

अर्थ—वहां कोई भी नर दुष्ट, परदाराभिगामी न होने से वह श्रेष्ठ पुर और राज्य सब ओर से निरुपद्रव था ॥

सुवास सः सुवेषाश्च ते च सर्वे शुचिव्रताः ।
हितार्थाश्चनरेन्द्रस्य जाग्रतो नय चक्षुषा ॥ १६ ॥

अर्थ–वह सब मंत्री सुशोभित वस्त्रधारी, सुन्दर वेष, सदाचारी और राजा के हितार्थ नीति मे काम करने वाले––

गुरोर्गुण गृहीताश्च प्रख्याताश्चपराक्रमैः ।
विदेशेष्वपि विज्ञाताः सर्वतो बुद्धिनिश्चयाः ॥१७॥

अर्थ–गुरुजनों के सद्गुणों को ग्रहण करने वाले, पराक्रम द्वारा सर्वत्र प्रसिद्ध, सब ओर से निश्चित बुद्धि और अन्य देशों के रीति व्यवहारों को जानने वाले थे ॥

अभितो गुणवन्तश्च नचासन्गुणवर्जिताः ।
सन्धिविग्रह तत्वज्ञाः प्रकृत्या सम्पदान्विताः॥१८॥

अर्थ–सर्वत्र देशकालानुसार अनेक प्रकार के गुणों वाले, सन्धि तथा विग्रह में कुशल और सात्विकी, राजसी तथा तामसी भेद से त्रिविध सम्पत्ति वाले थे ॥

मन्त्रसंवरणेशक्ताः शक्ताः सूक्ष्मासु बुद्धिषु ।
नीतिशास्त्रविशेषज्ञाः सततं प्रियंवादिनः ॥ १९ ॥

अर्थ–राजमंत्र को गुप्त रखने में समर्थ, सूक्ष्म विचारों में तीव्र बुद्धि वाले, प्रतिभाशाली, नीतिशास्त्र को विशेषता से जानने वाले और निरन्तर प्रियवादी थे ॥

ईदृशैस्तैरमात्यैश्च राजा दशरथोऽनघः ।
उपपन्नो गुणोपेतैरन्वशासद्वसुन्धराम् ॥ २० ॥

अर्थ–उक्त प्रकार के गुणों से युक्त चतुर मंत्रियों द्वारा धर्मशील राजा दशरथ पृथिवी का अनुशासन करते थे ॥

अवेक्ष्यमाणश्चारेण प्रजा धर्मेण रक्षयन् ।
प्रजानां पालनं कुर्वन्न धर्मपरिविर्जयन् ॥ २१ ॥

अर्थ–गुप्तचरों द्वारा प्रजा के व्यवहारों को जानता हुआ अधर्म के त्यागपूर्वक धर्म से प्रजा पालन करने वाला—

विश्रुतस्त्रिषु लोकेषु वदान्यः सत्यसंगरः ।
स तत्र पुरुषव्याघ्रः शशास पृथिवीमिमाम् ॥ २२ ॥

अर्थ–तीनों लोकों में विख्यात सत्यवक्ता और महादानी वह पुरुषसिंह इस पृथिवी पर शासन करता था ॥

नाध्यगच्छद्विशिष्टं वा तुल्यं वा शत्रुमात्मनः ।
मित्रवान्नत सामंतः प्रतापहतकंटकः ॥ २३ ॥

अर्थ–शत्रुओं से रहित,प्रताप वाला,मित्रगण से युक्त,वीरों से सेवित उस राजा से न कोई अधिक बलवान् और न कोई उसके तुल्य था ॥

तैर्मन्त्रिभिर्मंत्रहिते निविष्टैर्वृतोऽनुरक्तः
कुशलैः समर्थैः । सपार्थिवोदीप्तिमवाप-
युक्तस्तेजोमयैर्गोभिरिवोदितोऽर्कः॥२४॥

अर्थ–उन उत्तम सलाह देने वाले, चतुर, राजहितैषी, समर्थ और बुद्धिमान मंत्रियों के सहित राजा दशरथ इस प्रकार शोभित थे जैसे तेजवाली किरणों से युक्त उदयकाल में सूर्य्य की शोभा होती है ॥

इति सप्तमः सर्गः

अथ अष्टमः सर्गः

तस्य चैवं प्रभावस्यधर्मज्ञस्य महात्मनः ।
सुतार्थं तप्यमानस्य नासीद्वंशकरः सुतः ॥ १ ॥

अर्थ–उस धर्मज्ञ, प्रभावशाली, न्याय से प्रजापालन में तत्पर राजा दशरथ को चिन्ता हुई कि शोक है जो आजतक मेरे वंश का स्थापन करने वाला कोई पुत्र नहीं हुआ ॥

ततोऽब्रवीदृष्यश्रृंगं राजादशरथस्तदा ।
कुलस्यवर्धनं तत्तु कर्तुमर्हसि सुव्रत ॥ २ ॥

अर्थ–इसके अनन्तर राजा दशरथ ने श्रृङ्गी ऋषि से कहा कि हे सुव्रत ! आपको हमारी वंशवृद्धि का उपाय करना चाहिये ॥

तथेति च स राजानमुवाचद्विजसत्तमः ।
भविष्यन्ति सुताराजंश्चत्वारस्ते कुलोद्वहाः ॥ ३ ॥

अर्थ–यह सुनकर ब्राह्मणों में श्रेष्ठ श्रृङ्गीऋषि ने राजा दशरथ से कहा कि तथास्तु, हे राजन् ! आपके वंश को बढ़ाने वाले चारपुत्र उत्पन्न होंगे ॥

स तस्य वाक्यं मधुरं निशम्य प्रणम्य तस्मैप्रयतोनृपेन्द्रः।
जगाम हर्षपरमं महात्मातमृष्यश्रृंगं पुनरप्युवाच॥४॥

अर्थ–इस प्रकार ऋषि का मधुरवाक्य सुनकर राजा दशरथ ने उनको नम्रतापूर्वक प्रणाम किया और परमप्रसन्न हो महात्मा श्रृङ्गीऋषि से पुत्रोत्पत्तिविषय में पुनः कहा ॥

मेधावी तु ततोध्यात्वा स किंचिदिदमुत्तरम् ।
लब्धसंज्ञस्ततस्तं तु वेदज्ञो नृपमब्रवीत् ॥ ५ ॥

अर्थ–बुद्धिमान् वेदज्ञ ऋषि कुछ काल सोचविचार कर राजा दशरथ से बोले कि पुत्रेष्टि यज्ञ कराने से आपके पुत्र उत्पन्न होंगे ॥

इष्टिं तेऽहं करिष्यामि पुत्रीयां पुत्र कारणात् ।
अथर्व शिरसि प्रोक्तैर्मन्त्रैः सिद्धां विधानतः ॥ ६ ॥

अर्थ—हे राजन् ! पुत्रोत्पत्ति के लिये अथर्ववेद में विधान कीहुई पुत्रेष्टि यज्ञ हम करावेंगे, क्योंकि वह हमको सिद्ध है अर्थात् उसको हम भले प्रकार जानते हैं ॥

ततः प्राक्रमदिष्टितां पुत्रीयां पुत्रकारणात् ।
जुहावाग्नौ च तेजस्वी मंत्रदृष्टेन कर्मणा ॥ ७ ॥

अर्थ—इसके अनन्तर महातेजस्वी ऋषि ने पुत्र इच्छा से पुत्रेष्टि यज्ञ का प्रारम्भ किया, जैसाकि वेद में उक्त इष्टि का विधान लिखा है ॥

भाष्य—पुत्रेष्टि यज्ञ का वर्णन आश्वलायन श्रौ० २ । १.० । ८ तथा अथर्ववेद के कई प्रकरणों और शत० १.४ । ९ । १४ । २ में कियागया है, उसी प्रकार सुयज्ञ, वामदेव, जावालि, काश्यप, पुरोहित वसिष्ठ और अन्य ब्राह्मणों की सम्मति से सरयू के तट पर उत्तर की ओर यज्ञमण्डप बनाया गया, देश देशान्तरों के वेदवेत्ता ब्राह्मण बुलाये गये और बड़े सन्मानपूर्वक शृङ्गीऋषि को बुलाकर ब्रह्मा के स्थान पर स्थापित किया, राजा और रानियों को चिरकाल तक व्रत करा दीक्षा में प्रविष्ट कर वेदपारग यज्ञ कर्त्ताओं ने विधिपूर्वक सब कृत्य कराया, यज्ञ के समाप्त होने पर यज्ञशेष=खीर कौशल्या, सुमित्रा और कैकेयी को दी और उन्होंने विभाग पूर्वक खाई, फिर वेदमंत्रों द्वारा उच्चध्वनि से सब ब्राह्मणों ने उनको विविध आशीर्वाद दिये, तब राजा दशरथ शृङ्गीऋषि से बोले कि हे सुव्रत ! आपकी कृपा से मेरे कुल की वृद्धि हो, ऋषि ने आशीर्वाद दिया कि हे राजन् ! तुम्हारे चार पुत्र होंगे जो तेरे कुल को उच्च बनावेंगे, इसके अनन्तर राजा

ने उन ब्राह्मणों को गौ और सुवर्णादि विविध प्रकार की दक्षिणा दे प्रसन्न कर सन्मानपूर्वक विदा किया, फिर ऋष्यशृङ्ग नाना भांति पूजित हो अपनी कुटी पर गये जो अंगदेश के राजा सोमपाद के राज्य में थी और राजा दशरथ स्वयं उनको पहुंचाने के लिये पीछे २ गये, इस प्रकार सबको विदाकर राजा पुत्र जन्म की चिन्तना करने लगे ॥

स्मरण रहे कि उक्त पुत्रेष्टि प्रकरण में जो अश्वमेध यज्ञ का विधान किया है वह हिंसापरक होने से सर्वथा त्याज्य है, क्योंकि वहां सम्पूर्ण कृत्य वेदवित् ब्राह्मणों द्वारा अथर्ववेद के आधार पर किया गया था और वेद में स्पष्टतया हिंसा का निषेध किया है, जैसाकि "मुग्धादेवा उत शुना यजन्त" अथर्व० ७।१।५ "यथामांसं यथासुरा" अथर्व० ६।७।१ इत्यादि मंत्रों में स्पष्टतया हिंसा तथा मांसभक्षण का निषेध पाया जाता है, इससे सिद्ध है कि यहां अश्वमेध यज्ञ में जो अश्वादि पशुओं का हनन विधान किया गया है वह प्रक्षिप्त होने से ग्राह्य नहीं ॥

ततो यज्ञे समाप्ते तु ऋतूनां षट्समत्ययुः ।
ततश्च द्वादशे मासे चैत्रे नावमिके तिथौ ॥ ८ ॥
नक्षत्रेऽदितिदैवत्ये स्वोच्चसंस्थेषु पञ्चसु ।
ग्रहेषु कर्कटे लग्ने वाक्पताविन्दुना सह ॥ ९ ॥
कौसल्या जनयद्रामं दिव्यलक्षण संयुतम् ।
लोहिताक्षं महाबाहुं रक्तोष्ठं दुन्दुभिस्वनम् ॥ १० ॥

अर्थ—यज्ञ के समाप्त होने पर जब छः ऋतु बीत चुके तब बारहवें महीने चैत्र मास नवमी तिथि पुनर्वसु नक्षत्र में जब पांचों

ग्रह अपने उच्च स्थानों में थे और बृहस्पति चन्द्रमा के साथ था उस समय कर्कलग्न में कौसल्या के दिव्यलक्षण युक्त राम का जन्म हुआ, जिसके लाल नेत्र, बड़ी भुजा, लाल होंठ और दुन्दुभि के तुल्य ध्वनि थी॥

भरतो नाम कैकेय्यां जज्ञे सत्यपराक्रमः।
अथ लक्ष्मणशत्रुघ्नौ सुमित्राजनयत्सुतौ॥ ११॥

अर्थ–कैकेयी से सत्यपराक्रम वाला भरत उत्पन्न हुआ और सुमित्रा से लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न यह दो पुत्र उत्पन्न हुए॥

पुष्ये जातस्तु भरतो मीनलग्ने प्रसन्नधीः।
सार्पे जातौ तु सौमित्री कुलीरेऽभ्युदितेरवौ॥ १२॥

अर्थ–पुष्य नक्षत्र मीन लग्न में निर्मल बुद्धि वाला भरत उत्पन्न हुआ और अश्लेषा नक्षत्र कर्कलग्न में सूर्य्य के उदय होते समय सुमित्रा के दोनों पुत्र उत्पन्न हुए॥

उत्सवश्च महानासीदयोध्यायां जनाकुलः।
रथ्याश्च जनसंबाधा नटनर्तकसंकुलाः॥ १३॥

अर्थ–अयोध्या में बड़े समारोह से महान् उत्सव हुआ, गलियां नट, नर्तक और जनसमुदाय से भरी हुई थीं॥

गायनैश्च विराविण्यो वादनैश्च तथापरैः।
विरेजुर्विपुलास्तत्र सर्वरत्नसमन्विताः॥ १४॥
प्रदेयांश्च ददौ राजा सूतमागधबन्दिनाम्।
ब्राह्मणेभ्यो ददौ वित्तं गोधनानि सहस्रशः॥ १५॥

अर्थ—अयोध्या में बड़ी २ खुली गलियें गाने वालों और बाजों के शब्दों से गूंजती हुई सब प्रकार के रत्नों से युक्त शोभायमान थीं, सूत=पुराणपाठी, मागध=वंशावली कहने वाले और वन्दिजन=स्तुति पढ़ने वालों को राजा ने पारितोषिक दिये और ब्राह्मणों को धन तथा बहुत सी गौयें दीं ॥

अतीत्यैकादशाहं तु नामकर्म तथाकरोत् ।
ज्येष्ठं रामं महात्मानं भरतं कैकेयीसुतम् ॥ १६ ॥
सौमित्रिं लक्ष्मणमिति शत्रुघ्नमपरं तथा ।
वसिष्ठः परमप्रीतो नामानि कुरुते तदा ॥ १७ ॥

अर्थ—ग्यारह दिन व्यतीत होने पर परमानन्दित वसिष्ठमुनि ने चारो भाइयों का नामकरण किया, कौसल्या के महाप्रतापी पुत्र का नाम राम, कैकेयी के पुत्र का नाम भरत और सुमित्रा के पुत्रों का नाम लक्ष्मण और शत्रुघ्न रखा ॥

ब्राह्मणान् भोजयामास पौरजानपदानपि ।
अददद्ब्राह्मणानां च रत्नौघममलं बहु ॥ १८ ॥

अर्थ—उस दिन ब्राह्मण तथा अन्य पुरवासी और देशवासियों को भोजन दिया और ब्राह्मणों को बहुत से अमूल्य रत्न दिये ॥

तेषां जन्मक्रियादीनि सर्वकर्माण्यकारयत् ।
सर्वेवेदविदःशूरा सर्वे लोकहितेरताः ॥ १९ ॥

अर्थ—इसके अनन्तर समय २ पर अन्न प्राशन, मुण्डन और कर्णवेधादि सब संस्कार वसिष्ठमुनि ने कराये, वह चारो वेद के ज्ञाता, शूरवीर और लोकहित में रत थे ॥

सर्वे ज्ञानोपसम्पन्नाः सर्वे समुदिता गुणैः ।
तेषामपि महातेजा रामः सत्यपराक्रमः ॥ २० ॥

अर्थ—वह सब ज्ञान से सम्पन्न तथा सम्पूर्ण गुणों से पूर्ण और उनमें सब से पराक्रमी तथा महातेजस्वी राम था ॥

इष्टः सर्वस्य लोकस्य शशाङ्क इव निर्मलः ।
गजस्कन्धेऽश्वपृष्ठे च रथचर्यासु संमतः ॥ २१ ॥
धनुर्वेदे च निरतः पितुः शुश्रूषणे रतः ।
बाल्यात्प्रभृति सुस्निग्धो लक्ष्मणो लक्ष्मिवर्धनः॥२२॥

अर्थ—वह चन्द्रमा की भांति निर्मल,सर्वलोक प्रिय और हाथी, घोड़े तथा रथ पर चढ़ने में बड़ा निपुण, धनुर्वेद में तत्पर तथा पिता की सेवा करने में बड़ा उत्साही और लक्ष्मीसम्पन्न लक्ष्मण बाल्यावस्था से ही राम का बड़ा स्नेही था ॥

रामस्य लोकरामस्य भ्रातुर्ज्येष्ठस्य नित्यशः ।
सर्वप्रियकरस्तस्य रामस्यापि शरीरतः ॥ २३ ॥
लक्ष्मणो लक्ष्मिसम्पन्नो बहिःप्राण इवापरः ।
नच तेन विना निद्रां लभते पुरुषोत्तमः ॥ २४ ॥

अर्थ—लक्ष्मण अपने ज्येष्ठ भाई राम के निरन्तर भक्त, सर्वप्रिय और उनको प्राण के समान प्यारा मानते थे, लक्ष्मण को राम इतना प्रिय था कि उस पुरुषोत्तम को उसके बिना निद्रा नहीं आती थी ॥

मृष्टमन्नमुपानीतमश्नाति न हि तं विना ।
यदा हि हयमारूढो मृगयां याति राघवः ॥२५॥

अथैनं पृष्ठतोऽभ्येति सधनुः परिपालयन् ।
भरतस्यापि शत्रुघ्नो लक्ष्मणावरजो हि सः ॥ २६ ॥
प्राणैः प्रियतरो नित्यं तस्य चासीत्तथा प्रियः ।
ते यदा ज्ञानसम्पन्नाः सर्वे समुदिता गुणैः ॥२७॥

अर्थ–लक्ष्मण राम के बिना भोजन नहीं करते थे, जब राम शिकार खेलने जाते तो उनके पीछे २ धनुषबाण लिये हुए लक्ष्मण उनकी रक्षा करता था, जिसप्रकार रामचन्द्र को लक्ष्मण सब प्रकार से परमप्यारे थे इसी प्रकार उनके भाई शत्रुघ्न भरत को प्राणसमान प्रिय और वह उनको परमप्रिय था, वह सब ज्ञान से सम्पन्न और सब गुणों से भरपूर थे॥

अथ राजा दशरथस्तेषां दारक्रियां प्रति ।
चिन्तयामास धर्मात्मा सोपाध्यायःसबान्धवः॥२८॥
तस्य चिन्तयमानस्य मन्त्रिमध्ये महात्मनः ।
अभ्यागच्छन्महातेजा विश्वामित्रो महामुनिः ॥२९॥

अर्थ–इसके अनन्तर राजा दशरथ उनके विवाहविषयक पुरोहित और बान्धवों के साथ विचार करने लगे, जब राजा मन्त्रियों के मध्य में बैठे हुए उक्त विचार करही रहे थे कि महातेजस्वी विश्वामित्र मुनि वहां आये ॥

स राज्ञो दर्शनाकांक्षी द्वाराध्यक्षानुवाच ह ।
शीघ्रमाख्यात मां प्राप्तं कौशिकं गाधिनःसुतम्॥३०॥

अर्थ–वह मुनि राजा के दर्शनों की इच्छा करते हुए द्वारपालों से बोले कि तुम शीघ्र ही राजा को सूचना दो कि कुशिकवंशी गाधि का पुत्र विश्वामित्र आया है ॥

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य राज्ञो वेश्मप्रदुद्रुवुः ।
ते गत्वा राजभवनं विश्वामित्रमृषिं तदा ॥ ३१ ॥

अर्थ—विश्वामित्र का वचन सुनकर द्वारपाल राजा के भवन की ओर भागे गये और राजभवन में जाकर राजा से कहा कि ऋषि विश्वामित्र पधारे हैं ॥

प्राप्तमावेदयामासुर्नृपायेक्ष्वाकवे तदा ।
तेषां तद्वचनं श्रुत्वा सपुरोधाः समाहितः ॥ ३२ ॥
प्रत्युज्जगाम संहृष्टो ब्रह्माणमिव वासवः ।
स दृष्ट्वा ज्वलितं दीप्त्या तापसं संशितव्रतम् ॥३३॥

अर्थ—इक्ष्वाकुवंशीय राजा दशरथ से द्वारपाल ने उक्त प्रकार निवेदन किया, तब राजा दशरथ एकाग्रचित्त हो वसिष्ठमुनि सहित प्रसन्न हुए २ आसन से उठ मुनि से मिलने आये " जैसे ब्रह्मा को आता देख इन्द्र अगुमानी को जाता है " जब विश्वामित्र को देखा तो तेज से देदीप्यमान, तपस्वी, यमनियमों के पालन कर्त्ता आगे खड़े हैं ॥

प्रहृष्टवदनो राजा ततोऽर्घ्यमुपहारयत् ।
स राज्ञः प्रतिगृह्यार्घ्यंशास्त्रदृष्टेन कर्मणा ॥ ३४ ॥

अर्थ—राजा ने प्रसन्न होकर मुनि को अर्घ्य दिया और मुनि ने शास्त्रानुसार अर्घ्य स्वीकार कर राजा से पूछा कि :—

कुशलं चाव्ययं चैव पर्यपृच्छन्नराधिपम् ।
पुरे कोशेजनपदे बान्धवेषु सुहृत्सु च ॥ ३५ ॥

अपि ते संनताः सर्वे सामन्तरिपवो जिताः ।
दैवं च मानुषं चैव कर्म ते साध्वनुष्ठितम् ॥ ३६ ॥

अर्थ–राजन् ! नगरवासी, कोश=खज़ाना, देशवासी, भाई बन्धु इष्टमित्रादि सब कुशलपूर्वक हैं ? सब सामन्त=राजा लोग जो आपके अधीन हैं आपके सन्मुख नम्र तो रहते हैं, शत्रु तो सब जीत लिये हैं ? और दैव तथा मानुषकर्म=अग्निहोत्रादि यज्ञ और अतिथि पूजनादि का तो भले प्रकार अनुष्ठान होता है ॥

वसिष्ठं च समागम्य कुशलं मुनिपुंगवः ।
ऋषींश्चतान्यथान्यायं महाभाग उवाच ह ॥३७॥

अर्थ–फिर वसिष्ठमुनि को प्राप्त होकर कुशल पूछा और वामदेवादि जो अन्य ऋषि खड़े थे उनसे भी यथाक्रम कुशल पूछते हुए मिले ॥

ते सर्वे हृष्टमनसस्तस्य राज्ञो निवेशनम् ।
विविशुः पूजितास्तेन निषेदुश्चयथार्हतः ॥ ३८ ॥

अर्थ–वह सब प्रसन्न मन हुए २ राजा के मन्दिर में प्रविष्ट हुए और सन्मानपूर्वक यथायोग्य स्थानों पर बैठगये ॥

अथ हृष्टमना राजा विश्वामित्रं महामुनिम् ।
उवाच परमोदारो हृष्टस्तमभिपूजयन् ॥ ३९ ॥

अर्थ–इसके अनन्तर उदारचित्त राजा प्रसन्न होकर महामुनि विश्वामित्र का बड़े हर्ष से सन्मान करता हुआ बोला कि :—

यथाऽमृतस्य संप्राप्तिर्यथावर्षमनूदके ।
यथा सदृशदारेषु पुत्रजन्माप्रजस्य वै ॥ ४० ॥
प्रनष्टस्य यथा लाभो यथा हर्षो महोदयः ।
तथैवागमनं मन्ये स्वागतन्ते महामुने ॥ ४१ ॥
कं च ते परमं कामं करोमि किमु हर्षितः ।
पात्रभूतोसि मे ब्रह्मन् दिष्ट्या प्राप्तोसिमानद ॥४२॥
अद्य मे सफलं जन्म जीवितं च सुजीवितम् ।
यस्माद्विप्रेन्द्र मद्राक्षं सुप्रभाता निशामम ॥ ४३ ॥
पूर्वं राजर्षिशब्देन तपसा द्योतितप्रभः ।
ब्रह्मर्षित्वमनुप्राप्तः पूज्योऽसि बहुधा मया ॥ ४४ ॥

अर्थ—जिस प्रकार किसी को अमृत की प्राप्ति हो, जैसे मरुभूमि में वर्षा हो, जिस प्रकार विना सन्तति वाले के घर सदृश रूप,आयु और गुणों में तुल्य स्त्री से पुत्र का जन्म हो, जैसे खोये हुए पदार्थ का लाभ हो और जिस प्रकार किसी उत्सव का हर्ष हो इसीप्रकार आपके आगमन से आनन्द प्राप्ति मानता हूं, हे महामुने ! आपका आगमन शुभ हो, मैं हर्षित चित्त वाला आपकी कौन बड़ी कामना किस प्रकार पूर्ण करूं, हे ब्रह्मन् ! आप मेरे पूज्य=सब प्रकार की सेवा के योग्य हैं, अहोभाग्य जो यहां दर्शन देकर मेरा जन्म सफल किया, आज मेरा जीवन सुजीवन है, क्योंकि आज आप जैसे उत्तम ब्राह्मण का दर्शन हुआ है, आज की रात्रि शुभ प्रभात वाली हुई है, प्रथम आप राजऋषि शब्द से पुकारे जाकर फिर

बड़े तप से महातेजस्वी ब्रह्मऋषि हुए हैं, अतएव राजऋषि तथा ब्रह्मऋषिपन को प्राप्त आप सब प्रकार से पूजा के योग्य हैं ॥

तदद्भुतमभूद्विप्र पवित्रं परमं मम।
शुभक्षेत्रगतश्चाहं तव संदर्शनात्प्रभो ॥ ४५ ॥
ब्रूहि यत्प्रार्थितं तुभ्यं कार्यमागमनंप्रति ।
इच्छाम्यनुगृहीतोऽहं त्वदर्थं परिवृद्धये ॥ ४६ ॥
कार्यस्य न विमर्शं च गन्तुमर्हसि सुव्रत ।
कर्ता चाहमशेषेण दैवतं हि भवान्मम ॥ ४७ ॥
इति हृदयसुखं निशम्य वाक्यं श्रुतिसुख-
मात्मवता विनीतमुक्तम् । प्रथितगुणयशा
गुणैर्विशिष्टः परमऋषिः परमं जगाम हर्षम् ॥४८॥

अर्थ—हे विप्र ! आपका यह परमपवित्र आगमन बड़ा आश्चर्य-जनक है, हे प्रभो ! आपके दर्शन से मैं शुभशरीर को प्राप्त हुआ हूं अर्थात् अत्यन्त पवित्र होगया हूं, अब आप कृपाकरके यह बतलायें कि आपका आगमन किस निमित्त हुआ है ? हे सुव्रत ! मेरी यह इच्छा है कि मैं आपका कार्य्य करके अनुग्रहीत होऊं अर्थात् अपनी वृद्धि के लिये आपका अर्थ पूर्ण किया चाहता हूं, हे सुव्रत ! आपको कार्य्य का विचार नहीं करना चाहिये मैं आपका कार्य्य पूर्ण प्रकार से करूंगा, क्योंकि आप मेरे देवता=पूज्य हैं, इस प्रकार उदारचित्त राजा के नम्रतापूर्वक कथन किये हुए वाक्य सुनकर यशस्वी तथा श्रेष्ठ गुणों वाले महर्षि विश्वामित्र परम हर्ष को प्राप्त हुए ॥

इति अष्टमः सर्गः

अथ नवमः सर्गः

तच्छ्रुत्वा राजसिंहस्य वाक्यमद्भुतविस्तरम् ।
हृष्टरोमा महातेजा विश्वामित्रोऽभ्यभाषत ॥ १ ॥

अर्थ—राजसिंह महाराज दशरथ के उक्त प्रकार नम्रतापूर्वक सविस्तर वाक्य सुनकर महातेजस्वी विश्वामित्र पुलकित हो बोले कि :—

सदृशं राजशार्दूल तवैवभुविनान्यतः ।
महावंश प्रसूतस्य वसिष्ठ व्यपदेशिनः ॥ २ ॥
यत्तु मे हृद्गतं वाक्यं तस्य कार्य्यस्य निश्चयम् ।
कुरुष्व राजशार्दूल भवसत्य प्रतिश्रवः ॥ ३ ॥
अहं नियममातिष्ठे विद्धयर्थं पुरुषर्षभ ।
तस्य विघ्नकरौ द्वौ तु राक्षसौ कामरूपिणौ ॥ ४ ॥
व्रते तु बहुशश्चीर्णेसमाप्त्यां राक्षसाविमौ ।
मारीचश्च सुबाहुश्च वीर्यवन्तौ सुशिक्षितौ ॥ ५ ॥
तौ मांस रुधिरौघण वेदिं तामभ्य वर्षताम् ।
अवधूते तथाभूते तस्मिन्नियमनिश्चये ॥ ६ ॥

अर्थ—हे राजशार्दूल ! यह वाक्य पृथिवी पर आपके ही योग्य हैं, क्योंकि आप इक्ष्वाकुवंश में उत्पन्न वसिष्ठजी के उपदेशानुसार चलने वाले हैं, हे राजशार्दूल ! जो कामना मेरे हृदय में है उसको निश्चय पूर्ण कर सत्यप्रतिज्ञ बनो, हे पुरुष श्रेष्ठ ! मैं

व्रतपूर्वक यज्ञ करता हूं, उस यज्ञ में दो कामचारी राक्षस विघ्न करते हैं, मैंने बहुत वार व्रत किया पर सदा समाप्ति के समय मारीच और सुबाहु यह दो राक्षस जो बड़े बलवाले और सुशिक्षित हैं, वह वेदि में मांस और रुधिर डाल जाते हैं और ऐसा करने से हमारे यज्ञ का निरादर होता है ॥

कृतश्रमो निरुत्साहस्तस्माद्देशादपाक्रमे ।
नच मे क्रोधमुत्स्रष्टुं बुद्धिर्भवतिपार्थिव ॥ ७ ॥
तथाभूता हि सा चर्या न शापस्तत्रमुच्यते ।
स्वपुत्रं राजशार्दूल रामं सत्यपराक्रमम् ॥ ८ ॥
काकपक्षधरं वीरं ज्येष्ठं मे दातुमर्हसि ।
शक्तो ह्येष मयागुप्तो दिव्येन स्वेन तेजसा ॥ ९ ॥
राक्षसा ये विकर्तारास्तेषामपि विनाशने ।
श्रेश्चास्मै प्रदास्यामि बहुरूपं न संशयः ॥ १० ॥

अर्थ—हे राजन् ! इस कारण निरुत्साह हो उस देश से निकल आया हूं और उन पर क्रोध करने का मेरा विचार नहीं होता, क्योंकि यज्ञ में क्रोध करना तथा शाप देना अनुचित है, हे राजशार्दूल ! अपने ज्येष्ठपुत्र राम को हमें दीजिये, क्योंकि यज्ञ के विनाशक राक्षसों के मारने में वह सर्वथा समर्थ है, वह मेरी रक्षा में रहता हुआ अपने तेज से उन राक्षसों का विनाश कर निःसन्देह हमारा यज्ञ पूर्ण करावेगा, और मैं इसको बहुत प्रकार के शस्त्र अस्त्र भी दूंगा ॥

त्रयाणामपि लोकानां येन ख्यातिं गमिष्यति ।
न च तौ राममासाद्यशक्तौ स्थातुं कथंचन ॥ ११ ॥

रामस्य राजशार्दूल न पर्याप्तौ महात्मनः ।
अहं ते प्रतिजानामि हतौ तौ विद्धि राक्षसौ ॥१२॥
यदि ते धर्मलाभं तु यशश्च परमंभुवि ।
स्थिरमिच्छसि राजेन्द्र रामं मे दातुमर्हसि ॥ १३ ॥
दशरात्रं हि यज्ञस्य रामं राजीवलोचनम् ।
नात्येति कालो यज्ञस्य यथायं मम राघवः ॥१४॥
तथा कुरुष्व भद्रं ते मा च शोके मनः कृथाः ।
इत्येवमुक्त्वा धर्मात्मा धर्मार्थं सहितं वचः ॥१५॥

अर्थ-जिससे राम तीनो लोकों में ख्याति को प्राप्त होगा और दोनों राक्षस राम के सन्मुख खड़े होने में किसी प्रकार भी समर्थ नहीं, हे राजशार्दूल ! महात्मा राम की वह वरावरी नहीं करसकते, मैं आपसे प्रतिज्ञा कर कहता हूं कि आप उन दोनों राक्षसों को मरा हुआ सुनेंगे, हे राजेन्द्र ! यदि आप धर्म का लाभ और पृथिवी पर यश स्थिर करना चाहते हैं तो राम को मेरे साथ भेज दीजिये, यज्ञ की दश रात्रि के लिये राम की आवश्यकता है, सो हे राघव ! जिसप्रकार मेरे यज्ञ का काल न बीतजाय वैसा कीजिये, आपका कल्याण हो, आप संशयग्रस्त न हों, इस प्रकार धर्म और अर्थ सहित वचन कहकर " विरराम महातेजा विश्वामित्रो महामतिः "=महामति, महातेजस्वी धर्मात्मा विश्वामित्र चुप होगये ॥

तच्छ्रुत्वा राजशार्दूलो विश्वामित्रस्य भाषितम् ।
मुहूर्त्तमिव निःसंज्ञः संज्ञावानिदमब्रवीत् ॥ १६ ॥

अर्थ–विश्वामित्र के इस प्रकार वचन सुनकर कुछ काल के लिये राजा शोक में निमग्न होगये और फिर होश में आकर बोले कि :—

अहमेवधनुष्पाणिर्गोप्ता समरमूर्धनि ।
निर्विघ्ना व्रतचर्या सा भविष्यति सुरक्षिता ॥१७॥
अहं तत्र गमिष्यामि न रामं नेतुमर्हसि ।
बालोह्यकृतविद्यश्च नच वेत्ति बलाबलम् ॥१८॥
नचास्त्र बलसंयुक्तो नच युद्ध विशारदः ।
नचासौ रक्षसां योग्यःकूटयुद्धा हि राक्षसाः ॥१९॥

अर्थ–मैं ही धनुष हाथ में लेकर रणभूमि में आपके यज्ञ का रक्षक बनुंगा और इस भांति सुरक्षित हुई आपकी व्रतचर्या निर्विघ्न पूर्ण होगी, मैं वहां स्वयं जाउंगा राम को न लेजाइये, क्योंकि राम अशिक्षित बालक होने से बलाबल को नहीं जानता, न अस्त्रबल से युक्त और न युद्ध में निपुण है यह राक्षसों के योग्य नहीं, क्योंकि वह युद्ध में कूटनीति करते अर्थात् धोखे देते हैं ॥

विप्रयुक्तो हि रामेण मुहूर्तमपि नोत्सहे ।
जीवितुं मुनिशार्दूल न रामं नेतुमर्हसि ॥ २० ॥
यदि वा राघवं ब्रह्मन्नेतुमिच्छसि सुव्रत ।
चतुरङ्ग समायुक्तं मया सह च तं नय ॥ २१ ॥
चतुर्णामात्मजानां हि प्रीतिः परमिका मम ।
ज्येष्ठे धर्मप्रधाने च न रामं नेतुमर्हसि ॥ २२ ॥

अर्थ—हे मुनि शार्दूल ! मैं राम से वियुक्त होकर एक मुहूर्त भी नहीं जीसकता, सो आप राम को न लेजायें, हे सुव्रत ! यदि आप राम को ही लेजाना चाहते हैं तो चतुरंग=हाथी, घोड़े, रथ और पैदलों की सेना और मेरे साथ उसको ले चलें, चारो पुत्रों में से धर्मप्रधान बड़े राम में मेरी परमप्रीति है सो आप राम को न लेजाइये ॥

तच्छुत्वा वचनं तस्य स्नेहपर्याकुलाक्षरम् ।
समन्युःकौशिकोवाक्यंप्रत्युवाचमहीपतिम् ॥ २३ ॥

अर्थ—पुत्र के स्नेहवश प्रतिज्ञा से फिसलने वाले उक्त वाक्यों को सुनकर क्रोधयुक्त विश्वामित्र राजा से फिर बोले कि :—

पूर्वमर्थं प्रतिश्रुत्वा प्रतिज्ञां हातुमिच्छसि ।
राघवाणामयुक्तोऽयं कुलस्यास्य विपर्ययः ॥ २४ ॥
यदीदं ते क्षमं राजन् गमिष्यामि यथागतम् ।
मिथ्याप्रतिज्ञः काकुत्स्थ सुखी भव सुहृद्व्रतः॥२५॥

अर्थ—हे राजन् ! पहले प्रतिज्ञा करके अब मोहवश प्रतिज्ञा छोड़ते हो, यह रघुवंशियों के योग्य नहीं और इस कुल के सर्वथा विपरीत है, यदि आप ऐसा ही करना चाहते हैं तो मैं जैसे आया हूं वैसे ही चला जाउंगा, हे ककुत्स्थवंशीय तुम ! भ्रष्टप्रतिज्ञ होकर अपने इष्टमित्रादिकों के साथ सुखी होओ ॥

तस्य रोष परीतस्य विश्वामित्रस्य धीमतः ।
चचाल वसुधा कृत्स्ना देवानां च भय महत् ॥२६॥

अर्थ–उस बुद्धिमान् विश्वामित्र को रोष से भरा हुआ देखकर पृथिवी कांप उठी और देवताओं को बड़ा भय हुआ ॥

त्रस्तरूपं तु विज्ञाय जगत्सर्वं महानृषिः ।
नृपतिं सुव्रतो धीरो वसिष्ठो वाक्यमब्रवीत् ॥२७॥

अर्थ–सबको भयभीत देखकर उत्तम व्रतों वाले बुद्धिमान् महर्षि वसिष्ठ राजा से बोले कि :—

इक्ष्वाकूणां कुलेजातः साक्षाद्धर्म इवापरः ।
धृतिमान् सुव्रतः श्रीमान्नधर्मं हातुमर्हसि ॥ २८ ॥
त्रिषु लोकेषु विख्यातो धर्मात्मा इति राघवः ।
स्वधर्मं प्रतिपद्यस्व नाधर्मं वोढुमर्हसि ॥ २९ ॥

अर्थ–इक्ष्वाकुओं के वंश में जन्म लेकर आप मानो साक्षात् दूसरा धर्म हैं, धैर्यवाला, अच्छे व्रतों वाला और श्रीमान् होकर आपको धर्म नहीं छोड़ना चाहिये, रघु की सन्तान धर्मात्मा तीनों लोकों में विख्यात है, इसलिये आप अपने धर्म का पालन करें अधर्म सिर पर न लें॥

प्रतिश्रुत्य करिष्येति उक्तं वाक्यमकुर्वतः ।
इष्टापूर्तवधो भूयात्तस्माद्रामं विसर्जय ॥ ३० ॥

अर्थ–" यह कार्य्य करुंगा " ऐसी प्रतिज्ञा करके जो अपने कहे वाक्य को पूर्ण नहीं करता उसके यज्ञ और वापी, कूपादि से होने वाला धर्म, यह सब नाश होजाते हैं, इसलिये आप राम को अवश्य भेजदो ॥

कृतास्त्रमकृतास्त्रं वा नैनं शक्ष्यन्ति राक्षसाः ।
गुप्तं कुशिक पुत्रेण ज्वलने नामृतं यथा ॥३१॥
एष विग्रहवान् धर्म एष वीर्यवतां वरः ।
एष विद्याधिको लोके तपसश्च परायणम् ॥ ३२ ॥

अर्थ–चाहे राम अस्त्रों में निपुण है वा नहीं पर कुशिकवंशी विश्वामित्र से रक्षा किये हुए को राक्षस नहीं दबा सकते, जैसे अग्नि से रक्षा किये हुए अमृत=हवि को कोई नहीं बिगाड़ सकता, और राम मतिमान् धर्म ही है, यह शक्तिवालों में श्रेष्ठ, विद्या में बड़ा और यह तप का परम आश्रय है ॥

एषोऽस्त्रान् विविधान् वेत्ति त्रैलोक्ये स चराचरे ।
नैनमन्यः पुमानवेत्ति नच वेत्स्यन्ति केचन ॥३३॥
अपूर्वाणां च जनने शक्तो भूयश्च धर्मवित् ।
न रामगमने राजन् संशयं गन्तुमर्हसि ॥ ३४ ॥
तेषां निग्रहेण शक्तः स्वयं च कुशिकात्मजः ।
तव पुत्रहितार्थाय त्वामुपेत्याभिया च ते ॥३५॥

अर्थ–यह राम इतने विविध अस्त्रों को जानता है कि चराचर से भरी हुई त्रिलोकी में अन्य कोई नहीं जानता और न कोई आगे जानेगा, यह धर्मवेत्ता नये अस्त्र उत्पन्न करने में भी समर्थ है, सो हे राजन्! राम को जाने दे संशय में न पड़, यह कुशिक का पुत्र उन राक्षसों के हनन करने में स्वयं समर्थ है पर तेरे ही पुत्रों के कल्याणार्थ तुम्हारे समीप आकर याचना कर रहा है ॥

इति नवमः सर्गः

अथ दशमः सर्गः

तथा वसिष्ठे ब्रुवति राजा दशरथः स्वयम् ।
प्रहृष्टवदनो राममाजुहाव स लक्ष्मणम् ॥ १ ॥

अर्थ—वसिष्ठ के उक्त प्रकार कथन करने पर राजा दशरथ ने प्रसन्न मुख हो लक्ष्मण सहित राम को बुलाया ॥

कृतस्वस्त्ययनं मात्रा पित्रा दशरथेन च ।
पुरोधमा वसिष्ठेन मङ्गलैरभिमंत्रितम् ॥ २ ॥

अर्थ—प्रथम माता ने फिर पिता दशरथ ने स्वस्तिवाचन किया, तदनन्तर पुरोहित वसिष्ठ ने मंगलाचरण के मंत्र पढ़े ॥

स पुत्रं मूर्ध्न्युपाघ्राय राजा दशरथस्तथा ।
ददौ कुशिक पुत्राय सुप्रीते नान्तरात्मना ॥ ३ ॥

अर्थ—और फिर राजा दशरथ ने पुत्र का सिर चूमकर प्रसन्न चित्त हो कुशिकपुत्र विश्वामित्र को दे दिया ॥

विश्वामित्रो ययावग्रे ततो रामो महाशयः ।
काकपक्षधरो धन्वी तं च सौमित्रिरन्वगात् ॥ ४ ॥
तदा कुशिकपुत्रं तु धनुष्याणि स्वलंकृतौ ।
बद्धगोधाङ्गुलित्राणौ खड्गवन्तौ महाद्युति ॥ ५ ॥
कुमारौ चारुवपुषौ भ्रातरौ राम लक्ष्मणौ ।
अनुयातौ श्रिया दीप्तौ शोभते तामानिन्दितौ ॥६॥

अर्थ—तब आगे २ विश्वामित्र उनके पीछे काकपक्षधारी

यशस्वी राम धनुष धारण किये हुए और उनके पीछे २ लक्ष्मण चले, उस समय राम लक्ष्मण दोनों राजकुमार हाथों में धनुष धारण किये हुए और वस्त्रादिकों से सजे धजे खड्ग लिये बड़ी कान्ति वाले, सुन्दर शरीर वाले और सर्वथा आनन्दित विश्वामित्र के पीछे २ चलते हुए उनकी शोभा को बढ़ा रहे थे ॥

अध्यर्धयोजनंगत्वा सरय्वा दक्षिणे तटे ।
रामेति मधुरां वाणीं विश्वामित्रोऽभ्यभाषत ॥ ७ ॥

अर्थ—अयोध्या से डेढ़ योजन=छ कोस चलकर सरयू के दक्षिण किनारे पर पहुंच रामचन्द्र से विश्वामित्र मधुर बाणी द्वारा बोले कि :—

गृहाण वत्स सलिलं माभूत्कालस्य पर्ययः ।
मन्त्रग्रामं गृहाणत्वं बलामतिबलां तथा ॥ ॥ ८ ॥

अर्थ—हे राम ! जल लेकर आचमन कर समय बीत न जाय, इस शुभकाल में बला और अतिबला नामक दोनों विद्याओं के मंत्रों को मुझ से ग्रहण कर ॥

एतद्विद्याद्वये लब्धे न भवेत्सदृशस्तव ।
बला चातिबला चैव सर्वज्ञानस्य मातरौ ॥ ९ ॥

अर्थ—यह बला और अतिबला दोनो विद्यायें सब ज्ञानों की मातायें हैं सो इन दोनो विद्याओं को तु उपलब्ध कर फिर तेरे सदृश कोई नहीं होसकता ॥

क्षुत्पिपासे न ते राम भविष्येते नरोत्तम ।
बला अतिबलां चैव पठतस्तात राघव ॥ १० ॥

विद्याद्वयमधीयाने यशश्चाथ भवेद्भुवि ।
पितामहसुते ह्येते विद्ये तेजः समन्विते ॥ ११ ॥
प्रदातुं तव काकुत्स्थ सदृशस्त्वं हि पार्थिव ।
कामं बहुगुणाः सर्वे त्वय्येते नात्र संशयः ॥ १२ ॥

अर्थ–हे नरश्रेष्ठ राम ! तू बला और अतिबला विद्याओं का अध्ययन कर, इनके पढ़ते हुए हे तात ! तुमको भूख और प्यास न लगेगी, इन दोनों विद्याओं के अध्ययन करने पर सारे संसार में तेरा यश होगा, क्योंकि यह दोनों ब्रह्मा की प्रकट कीहुई होने से उनकी कन्यायें कहातीं और यह दोनों विशेष तेजवाली हैं सो हम यह तुमको देंगे, इनके ग्रहण करने योग्य तुम्हीं हो, क्योंकि तुम में निस्सन्देह इन विद्याओं के सीखने योग्य गुण हैं ॥

तपसा संभृते चैते बहुरूपे भविष्यतः ।
ततो रामो जलं स्पृष्ट्वा प्रहृष्टवदनः शुचि ॥१३॥
प्रतिजग्राह ते विद्ये महर्षेर्भावितात्मनः ।
विद्या समुदितो रामः शुशुभे भीमविक्रमः॥ १४ ॥

अर्थ–तप से धारण कीहुई उक्त दोनो विद्यायें बहुरूप=बहुत साधनों वाली होंगी, तब राम ने आचमनादि द्वारा पवित्र हो प्रसन्नमुख हुए २ शुद्ध हृदय महर्षि विश्वामित्र से दोनों विद्याओं को सीखा और उनके सीखने से राम का पराक्रम बड़ा प्रचण्ड होगया अर्थात् वह बहुत शोभा को प्राप्त होगये ॥

सहस्ररश्मिर्भगवान् शरदीव दिवाकरः ।
उषुस्तां रजनीं तत्र सरय्वां स सुखं त्रयः ॥ १५ ॥

दशरथनृपसूनुसत्तमाभ्यां तृणशयनेऽनुचितेतदो-
षिताभ्याम् । कुशिक सुत वचोनुलालिताभ्यां
सुखमिव साविबभौ विभावरी ॥ १६ ॥

अर्थ—जैसे शरदऋतु में सहस्रकिरण वाला सूर्य्य शोभा को प्राप्त होता है वैसे ही राम भी सुशोभित हुए और उस रात्रि को उन तीनों ने वहीं सरयू के किनारे सुखपूर्वक वास किया. राजा दशरथ के दोनों श्रेष्ठ पुत्र रात्रि को तृणों की अनुचित शय्या पर सोये पर विश्वामित्र की ललित कथाओं को श्रवण करते हुए उनकी रात बड़े सुखपूर्वक व्यतीत हुई ॥

इति दशमः सर्गः

अथ एकादशः सर्गः

प्रभातायां तु शर्वर्यां विश्वामित्रो महामुनिः ।
अभ्यभाषत काकुत्स्थौ शयानौ पर्णसंस्तरे ॥ १ ॥
कौसल्या सुप्रजा राम पूर्वा सन्ध्याप्रवर्तते ।
उत्तिष्ठ नरशार्दूल कर्तव्यं दैवमाह्निकम् ॥ २ ॥

अर्थ—प्रभात होने पर विश्वामित्र महामुनि पत्तों के विस्तर पर सोये हुए राम लक्ष्मण से बोले कि हे कौसल्या के सुपुत्र राम ! इस समय तुमको सोना अनुचित है, क्योंकि यह समय प्रातःसन्ध्या करने का है, हे नरशार्दूल ! दैवकर्म=सन्ध्या अग्निहोत्र करो ॥

तस्यर्षेः परमोदारं वचः श्रुत्वा नरोत्तमौ ।
स्नात्वा कृतोदकौ वीरौ जपेतुःपरमं जपम् ॥ ३ ॥
कृताह्निकौ महावीर्यौ विश्वामित्रं तपोधनम् ।
अभिवाद्यातिसंहृष्टा गमनायाभितस्थतुः ॥ ४ ॥

अर्थ—ऋषि के परम उदार बचन सुन दोनों श्रेष्ठ भाइयों ने स्नानकर आचमन किया और परमजप=गायत्री का जप करके पूर्वाह्लिक के कर्म सन्ध्या अग्निहोत्रादि से निवृत्त हो महावीर्य्य तपोधन विश्वामित्र को अभिवादन करके प्रसन्न मन दोनों भाई चलने के लिये सन्मुख खड़े होगये ॥

तौ प्रयान्तौ महावीर्यौ दिव्यां त्रिपथगां नदीम् ।
ददृशाते ततस्तत्र सरय्वाः संगमे शुभे ॥ ५ ॥
तत्राश्रमपदं पुण्यमृषीणां भावितात्मनाम् ।
इहाद्य रजनीं राम वसेम शुभदर्शन ॥ ६ ॥
पुण्ययोः सरितोर्मध्ये श्वस्तरिष्यामहेवयम् ।
इह वासः परोऽस्माकं सुखं वत्स्यामहे निशाम् ॥७॥

अर्थ—वह तीनों महावीर्य्य चलते २ जब रमणीय गंगा नदी के तट पर पहुंचे तब वहां उन्होंने गंगा और सरयू के शुभ संगम पर ऋषियों का एक पुण्य आश्रम देखकर विश्वामित्र बोले कि हे शुभदर्शन राम! आज रात्रि को यहां इन दोनो नदियों के मध्य में वसें और कल को पार हों, यहां हम सुखपूर्वक रात व्यतीत करेंगे ॥

तेषां संवदतां तत्र तपो दीर्घेण चक्षुषा ।
विज्ञाय परमप्रीता मुनयो हर्षमागमन् ॥ ८ ॥
अर्घ्यं पाद्यं तथातिथ्यं निवेद्य कुशिकात्मजे ।
राम लक्ष्मणयोः पश्चादकुर्वन्नातिथि क्रियम् ॥ ९ ॥

अर्थ–वह तीनों वहां उक्त प्रकार से आपस में वार्तालाप कर रहे थे कि वहां के मुनियों ने उनको दीर्घदृष्टि द्वारा जानकर परमप्रसन्न हो हर्ष को प्राप्त हुए, और प्रथम कुशिक के पुत्र विश्वामित्र का आर्घ्य, पाद्य तथा आतिथ्य करके पश्चात राम लक्ष्मण का अतिथि सत्कार किया ॥

ततः प्रभाते विमले कृताह्निकमरिंदमौ ।
विश्वामित्रं पुरस्कृत्य नद्यास्तीरमुपागतौ ॥ १० ॥
ते च सर्वे महात्मानो मुनयःसंशितव्रताः ।
उपस्थाप्य शुभां नावं विश्वामित्रमिहाब्रुवन्॥११॥
आरोहतु भवान्नावं राजपुत्र पुरस्कृतः ।
अरिष्टं गच्छ पन्थानं मा भूत्कालस्य पर्ययः॥१२॥
विश्वामित्रस्तथेत्युक्त्वातानृषीन् प्रतिपूज्य च ।
ततार सहितस्ताभ्यां सरितं सागरं गमाम् ॥ १३ ॥

अर्थ–फिर निर्मल प्रभात में उठकर सन्ध्या अग्निहोत्रादि कर्मों से निवृत्त हो दोनों भाई विश्वामित्र के पीछे २ नदी के तट पर आये, और वहां बड़े व्रतधारी महात्मा मुनिवर एक उत्तम नौका उपस्थित कर विश्वामित्र से बोले कि राजपुत्रों से

सुशोभित आप नौका पर सवार होकर निर्विघ्न अपने मार्ग पर जायं बिलम्ब न हो, विश्वामित्र "तथास्तु" कहकर और उन महात्माओं का पूजन करके दोनों भाइयों सहित समुद्र गामिनी गङ्गा के पार उतरे ॥

स वनं घोर संकाशं दृष्ट्वा नरवरात्मजः ।
अविप्रहतमैक्ष्वाकः पप्रच्छमुनिपुंगवम् ॥ १४ ॥
अहो वनमिदं दुर्गं झिल्लिकागण संयुतम् ।
भैरवैः श्वापदैःकीर्णंशकुन्तैर्दारुणारवैः ॥ १५ ॥
नाना प्रकारैः शकुनैर्वाश्यद्भिर्भैरवस्वनैः ।
सिंह व्याघ्र वराहैश्चवारणैश्चापि शोभितम् ॥ १६ ॥
धवाश्व कर्णक कुभैर्बिल्वतिन्दुकपाटलैः ।
संकीर्णं बदरीभिश्च किंन्विदं दारुणं वनम् ॥१७॥

अर्थ–और आगे एक भयंकर निर्जन वन को देखकर इक्ष्वाकुवंशीय राजकुमार रामचन्द्र ने मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्र से पूछा कि अहो ! यह वन तो बड़े कष्ट से जाने के योग्य है, क्योंकि इसमें ठौर २ झींगुरों का शब्द होरहा है, और सिंह तथा अन्य पशुओं और दारुण भयंकर ध्वनि वाले बोलते हुए नाना प्रकार के पक्षियों से भरा हुआ है, सिंह, व्याघ्र, सूअर और हाथियों से सुशोभित, धवा=खैर, कर्णक=असगन्ध, कौ, बिल्ल, तेंदुए, पाटल और बेर के वृक्षों से भरा हुआ यह कौनसा दारुण वन है ॥

तमुवाच महातेजा विश्वामित्रो महामुनिः ।
एतौ जनपदौ स्फीतौ दीर्घकालमरिंदम ॥ १८ ॥

मलदाश्च कुरुषाश्च मुदिता धनधान्यतः ।
कस्यचित्त्वथ कालस्य यक्षिणी कामरूपिणी ॥१९

अर्थ—तब महातेजस्वी विश्वामित्र बोले कि हे शत्रुओं को दमन करने वाले राम ! यहां धन धान्य से पूरित हर्ष से भरे हुए मलदा और कुरुष दो देश थे, कुछ काल से एक सुन्दरी ताटका नाम यक्षिणी=यक्ष जाति की कन्या यहां निवास करती है ॥

ताटका नाम भद्रं ते भार्या सुन्दस्य धीमतः ।
मारीचो राक्षसः पुत्रो यस्य शक्र पराक्रमः ॥२०॥
इमौ जनपदौ नित्यं विनाशयति राघव ।
सेयं पन्थानमावृत्य वसत्यत्यर्ध योजने ॥ २१ ॥
अत एव च गन्तव्यं ताटकाया वनं यतः ।
स्वाबाहु बलमाश्रित्य जहीमां दुष्टचारिणीम् ॥२२॥

अर्थ—वह ताटका बुद्धिमान सुन्द राक्षस की पत्नी और इन्द्र के तुल्य पराक्रमी मारीच राक्षस जिसका पुत्र है, हे राघव ! वह उक्त दोनों देशों को विनाश कररही है और वह यहां से आधे योजन के अन्तर पर मार्ग को रोककर वसती है, सो यहां से हमको उधर चलना चाहिये जिधर ताटका का बन है, हे राम ! अपने बाहुबल के सहारे इस दुष्ट आचरण वाली ताटका को मार ॥

मन्नियोगादिमं देशं कुरु निष्कण्टकं पुनः ।
एनां राघव दुर्वृत्तां यक्षीं परमदारुणाम् ॥ २३ ॥

गो ब्राह्मण हितार्थाय जहि दुष्ट पराक्रमात् ।
नहि ते स्त्रीबधकृते घृणा कार्या नरोत्तम ॥ २४ ॥
चातुर्वर्ण्य हितार्थं हि कर्तव्यं राजसूनुना ।
नृशंसमनृशंसं वा प्रजारक्षण कारणात् ॥ २५ ॥
पातकं वा सदोषं वा कर्तव्यं रक्षता सदा ।
राज्यभार नियुक्तानामेषधर्मः सनातनः ॥ २६ ॥

अर्थ–हमारी आज्ञा से फिर इस देश को निर्भय कर, हे राघव ! इस परमदारुण दुष्ट पराक्रम वाली ताटका का गौ ब्राह्मण के हितार्थ वध कर, हे नरोत्तम ! तुमको स्त्रीवध से घृणा नहीं करनी चाहिये, क्योंकि चारो वर्णों की रक्षा के लिये राजकुमार का कर्तव्य है कि जो स्त्री के कारण किसी को दुःख पहुंचता हो तो उस स्त्री का वध करने में कोई दोष नहीं. राजपुत्र को चारो वर्णों के हित का काम अवश्य करना चाहिये. चाहे कोई क्रूर स्वभाव हो वा सौम्यस्वभाव, चाहे उसके मारने मे पाप हो वा उससे बड़ा अपवाद हो, पर प्रजा के दुःख निवारणार्थ रक्षा करने वाले को सदा ही उसका वध करना चाहिये, अपकारी के मारने में कोई पाप नहीं, जिनके ऊपर राज्य का भार है उनका यही सनातनधर्म है, " अधर्मा जहि काकुत्स्थ धर्मो ह्यस्यां न विद्यते "–इसलिये हे काकुत्स्थ ! अधर्म से पूर्ण इस ताटका को निःशंक मार इसमें धर्म का गन्ध भी नहीं ॥

इति एकादशः सर्गः

अथ द्वादशः सर्गः

मुनेर्वचनमक्लीबं श्रुत्वानरवरात्मजः ।
राघवः प्रांजलिर्भूत्वा प्रत्युवाचदृढव्रतः ॥ १ ॥
अनुशिष्टोऽस्म्ययोध्यायां गुरुमध्ये महात्मना ।
पित्रादशरथे नाहं नावज्ञेयं हि तद्वचः ॥ २ ॥

अर्थ–विश्वामित्र के अक्लीब=मरदाना वचन सुनकर दृढ़ व्रतों वाला रामचन्द्र हाथ जोड़कर बोला कि अयोध्या में वसिष्ठादि गुरुओं के सन्मुख मुझको पिता दशरथ ने आज्ञा दी है कि आपके वचन की मुझको अवज्ञा नहीं करनी चाहिये ॥

सोऽहं पितुर्वचःश्रुत्वा शासनाद्ब्रह्मवादिनः ।
करिष्यामि न सन्देहस्ताटकावधमुत्तमम् ॥ ३ ॥
गो ब्राह्मण हितार्थाय देशस्य च हिताय च ।
तव चैवाप्रमेयस्य वचनं कर्तुमुद्यतः ॥ ४ ॥

अर्थ–सो मैं पिता के वचनानुसार और आप ब्रह्मवादी=वेदज्ञ की आज्ञानुसार निःसन्देह ताटका का वधरूप उत्तम काम करुंगा, गो ब्राह्मण के हितार्थ और देश के कल्याणार्थ आपकी सर्वथा आज्ञापालन करुंगा ॥

एवमुक्त्वा धनुर्मध्ये वध्वामुष्टिमरिंदमः ।
ज्याघोषमकरोत्तीव्रं दिशः शब्देन नादयन् ॥ ५ ॥

अर्थ–यह कहकर शत्रुओं के तपाने वाले रामचन्द्र ने धनुष के मध्य में मुट्ठी बांधकर तिल्ले की ऐसी तीव्रध्वनि की कि उसका शब्द सब दिशाओं में गूंज उठा ॥

तेन शब्देन वित्रस्तास्ताटका वनवासिनः ।
ताटका च सु संक्रुद्धा तेन शब्देन मोहिता ॥ ६ ॥

अर्थ—उस शब्द से ताटका तथा अन्य वनवासी भयभीत हुए और ताटका उस शब्द से मोहित हो अति क्रुद्ध हुई ॥

तं शब्दमभिनिध्याय राक्षसी क्रोध मूर्च्छिता ।
श्रुत्वा चाभ्यवदत्क्रुद्धा यत्र शब्दो विनिःसृतः ॥७॥
तं दृष्ट्वा राघवः क्रुद्धां विकृतां विकृताननाम् ।
प्रमाणेनातिवृद्धां च लक्ष्मणं सोऽभ्यभाषत ॥ ८ ॥

अर्थ—उस शब्द को सुनकर राक्षसी ताटका क्रोध से व्याकुल हुई वहां आई जहां से शब्द हुआ था. उस क्रुद्ध हुई विकराल मुखवाली और प्रमाण में बहुत बड़ी को देखकर रामचन्द्र लक्ष्मण से बोले कि :—

पश्य लक्ष्मण यक्षिण्या भैरवं दारुणं वपुः ।
भिद्येरन्दर्शनादस्या भीरूणां हृदयानि च ॥ ९ ॥
एवं ब्रुवाणे रामे तु ताटका क्रोध मूर्च्छिता ।
उद्यम्य बाहुं गर्जन्ती राममेवाभ्यधावत ॥ १० ॥
उद्धुन्वाना रजो घोरं ताटका राघवा वुभौ ।
रजोमेघेन महता मुहूर्तं सा व्यमोहयत् ॥ ११ ॥

अर्थ—हे लक्ष्मण ! इस यक्षिणी का भयंकर दारुण शरीर देख जिसके देखने से भीरुओं का हृदय कम्पायमान होता है. इस प्रकार राम के कहते हुए क्रोध से व्याकुल हुई ताटका भुजा

उठाकर गर्जती हुई राम की ओर दौड़ी, और भयंकर धूलि उड़ाकर धूलि के बड़े मेघ से राम लक्ष्मण को दो घड़ी तक विमोहित कर दिया ॥

तामापतन्तीं वेगेन विक्रान्तामशनीमिव ।
शरेणोरसिविव्याध पपात च ममार च ॥ १२ ॥
ततो मुनिवरः प्रीतस्ताटका बध तोषितः ।
मूर्ध्निराममुपाघ्राय इदंवचनमब्रवीत ॥ १३ ॥

अर्थ–और विजुली की भांति वेग से झपटती हुई उस राक्षसी को राम ने छाती में तीर मारकर वींध दिया और वह गिरकर मरगई, तब वह मुनिवर विश्वामित्र ताटका बध से प्रसन्न हो बड़े प्रेमपूर्वक राम के सिर पर हाथ फेरकर यह वचन बोले कि :—

इहाद्य रजनीं राम वसाम शुभदर्शन ।
श्वः प्रभाते गमिष्यामस्तदाश्रमपदंमम ॥ १४ ॥
निहत्य तां यक्षसुतां स रामः प्रशंस्यमानः–
सुरसिद्ध संघैः । उवास तस्मिन्मुनिना-
सहैव प्रभातवेलां प्रतिबोध्यमानः ॥ १५ ॥

अर्थ–हे शुभदर्शन राम ! आज की रात्रि यहीं निवास करें कल प्रभात मेरे आश्रम की ओर चले, उस यक्षकन्या= ताटका के मारने से देवता और सिद्धों के गण परम प्रसन्न हो राम की प्रशंसा करने लगे, राम मुनि के साथ उस रात्रि वहीं रहे और प्रातःकाल होने पर जागे ॥

इति द्वादशः सर्गः

अथ त्रयोदशः सर्गः

अथ तां रजनीमुष्य विश्वामित्रो महायशाः ।
प्रहस्य राघवं वाक्यमुवाच मधुरस्वरम् ॥ १ ॥
परितुष्टोऽस्मि भद्रं ते राजपुत्र महायशः ।
प्री या परमया युक्तो ददाम्यस्त्राणि सर्वशः ॥ २ ॥
यैरमित्रान्प्रसह्याजौ वशीकृत्य जयिष्यसि ।
तानि दिव्यानि भद्रं ते ददाम्यस्त्राणि सर्वशः ॥३॥

अर्थ—इसके अनन्तर वह रात्रिभर वहां रहकर महायशस्वी विश्वामित्र हंसकर रामचन्द्र को मधुर वचन बोले कि हे राम ! मैं तुम पर बड़ा प्रसन्न हूं, तुम्हारा कल्याण हो, हे बड़े यश वाले राजपुत्र में परम प्रीति से युक्त हुआ आपको बहुत से अस्त्र देता हूं जिन दिव्य अस्त्रों से तुम संग्राम में सब शत्रुओं को जीतकर वस कर सकोगे वह सम्पूर्ण तुम्हें देता हूं ॥

दण्डचक्रं महद्दिव्यं तव दास्यामि राघवः ।
धर्मचक्रं ततो वीर कालचक्रं तथैव च ॥ ४ ॥
विष्णुचक्रं तथात्युग्रमैन्द्रमस्त्रं तथैव च ।
वज्रमस्त्रं नरश्रेष्ठ शैवं शूलवरं तथा ॥ ५ ॥
अस्त्रं ब्रह्मशिरश्चैव ऐषीकमपि राघव ।
ददामि ते महाबाहो ब्राह्ममस्त्रमनुत्तमम् ॥ ६ ॥

गदे द्वे चैव काकुत्स्थ मोदकी शिखरी शुभे ।
प्रदीप्ते नरशार्दूल प्रयच्छामि नृपात्मज ॥ ७ ॥

अर्थ—हे राघव ! तुम्हें एक बड़ा दिव्य दण्डचक्र, धर्मचक्र, कालचक्र, विष्णुचक्र, बड़ा उग्र इन्द्र अस्त्र और हे नरश्रेष्ठ ! वज्र अस्त्र, शैव शूलवर, ब्रह्मशिर, ऐषीक अस्त्र और हे महाबाहो ! सब से उत्तम तुम्हें ब्रह्म अस्त्र देता हूं, हे काकुत्स्थ ! दो शुभ गदा, मोदकी और शिखरी अस्त्र जो सबसे बड़े प्रचण्ड हैं वह मैं तुम्हें देता हूं ॥

धर्मपाशमहं राम कालपाशं तथैव च ।
वारुणं पाशमस्त्रं च ददाम्यहमनुत्तमम् ॥ ८ ॥
अशनी द्वे प्रयच्छामि शुष्कार्द्रे रघुनन्दन ।
ददामि चास्त्रं पैनाकमस्त्रं नारायणं तथा ॥ ९ ॥
आग्नेयमस्त्रदायितं शिखरं नाम नामतः ।
वायव्यं प्रथनं नाम ददामि तव चानघ ॥ १० ॥
अस्त्रं हयशिरो नाम क्रौञ्चमस्त्रं तथैव च ।
शक्तिद्वयं च काकुत्स्थ ददामि तव राघव ॥ ११ ॥

अर्थ—हे राम ! मैं धर्मपाश, कालपाश और वरुणपाश जो उत्तम अस्त्र हैं तुम्हें देता हूं, हे रघुनन्दन ! दो अशनी अस्त्र, शुष्क तथा आर्द्र और पिनाक तथा नारायण अस्त्र, अग्नि का प्यारा=आग्नेयास्त्र जिसको शिखर कहते हैं तथा हे निष्पाप ! वायु का प्रथन नाम अस्त्र तुम्हें देता हूं, हयशिर अस्त्र, क्रौञ्च अस्त्र और हे राघव ! दो शक्ति अस्त्र देता हूं ॥

कंकालं मुसलं घोरं कापालमथ किङ्किणीम् ।
धारयन्त्यसुरा यानि ददाम्येतानि सर्वशः ॥ १२ ॥
वैद्याधरं महास्त्रं च नन्दनं नाम नामतः ।
असिरत्नं महाबाहो ददामि नृपरात्मज ॥ १३ ॥
गान्धर्वमस्त्रं दयितं मोहनं नाम नामतः ।
प्रस्वापनं प्रशमनं दाद्मिसौम्यं च राघव ॥ १४ ॥
वर्षणं शोषणं चैव संतापनविलापने ।
मादनं चैव दुर्धर्षं कन्दर्पदयितं तथा ॥ १५ ॥

अर्थ—और कंकाल, मुसल, घोर, कपाल तथा किंकिणी अस्त्र जिनको असुर धारण करते हैं वह सब तुम्हें देता हूं, विद्याधर महाअस्त्र जो नन्दन नाम से प्रसिद्ध है और जिससे असि आदि शस्त्र निकलते हैं, हे राजपुत्र! वह तुम्हें देता हूं, गन्धर्व अस्त्र जो मोहन नाम से प्रसिद्ध है तथा प्रस्वापन और प्रशमन अस्त्र देता हूं, वर्षण, शोपण, संतापन, विलापन और किसी से पराजय न होने वाला मादन नाम अस्त्र देता हूं ॥

गान्धर्वमस्त्रं दयितं मानवं नाम नामतः ।
पैशाचमस्त्रं दयितं मोहनं नाम नामतः ॥ १६ ॥
प्रतीच्छ नरशार्दूल राजपुत्र महायशः ।
तामसं नरशार्दूल सौमनं च महाबलम् ॥ १७ ॥
संवर्तं चैव दुर्धर्षं मौसलं च नृपात्मज ।
सत्यमस्त्रं महाबाहो तथा मायामयं परम् ॥ १८ ॥

सौरं तेजःप्रभं नाम परतेजोपकर्षणम् ।
सोमास्त्रं शिशिरं नाम त्वाष्ट्रमस्त्रं सुदारुणम् ॥१९॥

अर्थ–और गन्धर्वों का मानव तथा पैशाच अस्त्र जो मोहन नाम से प्रसिद्ध है, हे बड़े यश वाले राजपुत्र! इनको ग्रहण कर, हे नरशार्दूल! तामस और बड़े बलवाले सौमन को लाभ कर, हे नृपसुत! संवर्त और दुर्धर्ष, मौसल और हे महाबाहो! सत्य अस्त्र और मायामय अस्त्र, सूर्य्य का तेजःप्रभ नाम जो शत्रु के तेज का खींचने वाला है सोम का अस्त्र शिशिरनामी और त्वष्टा का अस्त्र सुदारुण इनको मुझसे ले ॥

दारुणं च भगस्यापि शीतेषुमथ मानवम् ।
एतान् राम महाबाहो कामरूपान् महाबलान् ॥२०॥
गृहाण परमोदारान् क्षिप्रमेव नृपात्मज ।
स्थितस्तु प्राङ्मुखो भूत्वा शुचिर्मुनिवरस्तदा ॥२१॥
ददौ रामाय सुप्रीतो मन्त्रग्राममनुत्तमम् ।
सर्वसंग्रहणं येषां दैवतैरपि दुर्लभम् ॥ २२ ॥
ततः प्रीतमना रामो विश्वामित्रं महामुनिम् ।
अभिवाद्य महातेजा गमनायोपचक्रमे ॥ २३ ॥

अर्थ–और भग का भयंकर तथा शीतेषु नाम मानव अस्त्र, इन बलवान् सारी इच्छाओं को पूर्ण करने वाले परम उदार अस्त्रों को हे राजा के पुत्र! शीघ्र ही मुझ से ग्रहण कर, फिर विश्वामित्र मुनि ने पवित्र हो पूर्वाभिमुख खड़े होकर बड़ी प्रसन्नतापूर्वक

सब से उत्तम मन्त्रसमूह राम को दिया जिन सब का संग्रह देवताओं को भी दुर्लभ है, फिर प्रसन्न मन महातेजस्वी राम महामुनि विश्वामित्र को अभिवादन करके यात्रा के लिये तैयार होगये ॥

इति त्रयोदशः सर्गः

अथ चतुर्दशः सर्गः

प्रतिगृह्य ततोऽस्त्राणि प्रहृष्टवदनः शुचिः ।
गच्छन्नेव च काकुत्स्थो विश्वामित्रमथाब्रवीत् ॥ १ ॥
गृहीतास्त्रोऽस्मि भगवन् दुराधर्षः सुरैरपि ।
अस्त्राणां त्वहमिच्छामि संहारान्मुनिपुंगव ॥ २ ॥
एवं ब्रुवति काकुत्स्थे विश्वामित्रो महातपाः ।
संहारान् व्याजहाराथ धृतिमान् सुव्रतः शुचिः ॥३॥

अर्थ–राम अस्त्रों को ग्रहणकर प्रसन्नमुख शुद्ध हुए २ चलते समय विश्वामित्र से बोले कि हे भगवन्! मैंने आपके दिये हुए सब अस्त्रों को ग्रहण करलिया अब देवता भी मुझे परास्त नहीं करसकते पर अब मैं इनके संहार=रोकने वाले अस्त्र जानना चाहता हूं, राम के इस प्रकार कथन करने पर तपस्वी, धैर्य्यवान् तथा पवित्रात्मा विश्वामित्र ने संहार करने वाले अस्त्रों का वर्णन किया, जिनके नाम यह हैं :—

सत्यवन्तं सत्यकीर्तिं धृष्टं रभसमेव च ।
प्रतिहारतरं नाम पराङ्मुखमवाङ्मुखम् ॥ ४ ॥

लक्षाक्षाविषमौ चैव दृढनाभसुनाभकौ ।
दशाक्षशतवक्त्रौ च दशशीर्षशतोदरौ ॥ ५ ॥
पद्मनाभमहानाभौ दुन्दुनाभस्वनाभकौ ।
ज्योतिषं कृशनं चैव नैराश्यविमलावुभौ ॥ ६ ॥
यौगंधर विनिद्रौ च दैत्यप्रमथनौ तथा ।
शुचिबाहुर्महाबाहुनिष्कलिर्विरुचस्तथा ।
सार्चिमाली धृतिमाली वृत्तिमान्रुचिरस्तथा ॥ ७ ॥
पित्र्यः सौमनसश्चैव विधूतमकरावुभौ ।
परवीरं रतिं चैव धनधान्यौ च राघव ॥ ८ ॥
कामरूपं कामरुचिं मोहमावरणं तथा ।
जृम्भकं सर्पनाथं च पन्थानवरुणौ तथा ॥ ९ ॥
कृशाश्वतनयान् राम भास्वरान् कामरूपिणः ।
प्रतीच्छ मम भद्रं ते पात्रभूतोसि राघव ॥ १० ॥

अर्थ—सत्यवान्, सत्यकीर्ति, धृष्ट, रभस, प्रतिहारतर, पराङ्मुख, अवाङ्मुख, लक्षाक्ष, विषम, दृढ़नाभ, सुनाभ, दशाक्ष, शतवक्त्र, दशशीर्ष, शतोदर, पद्मनाभ, महानाभ, दुन्दुनाभ, स्वनाभ, ज्योतिष, कृशन, नैराश्य, विमल, यौगन्धर, विनिद्र, दोनों दैत्यप्रमथन, शुचिबाहु, महाबाहु, निष्कली, विरुच, सर्चिमाली, धृतिमाली, वृत्तिमान्, रुचिर, पित्र्य, सौमनस, विधूत, मकर, परवीर, रति, धन, धान्य, कामरूप, कामरुचि, मोह, आवरण, जृम्भक, सर्पनाथ, पन्थान

और वरुण, हे राम! यह सब कृशाश्व ऋषि के प्रकट किये हुए कामरूप अस्त्र हैं, हे राघव! इनको मुझ से ले, तेरा कल्याण हो, तू इन सब का पात्र है ॥

सच तान् राघवो ज्ञात्वा विश्वामित्रं महामुनिम् ।
गच्छन्नेवाथ मधुरं श्लक्ष्णं वचनमब्रवीत् ॥ ११ ॥

अर्थ—राम उन सब अस्त्रों को जानकर विश्वामित्र महामुनि से यह स्पष्टतया मधुर वचन बोले कि :—

किन्वेतन्मेघसंकाशं पर्वतस्याविदूरतः ।
वृक्षखण्डमितोभाति परं कौतूहलं हि मे ॥ १२ ॥

अर्थ—हे भगवन्! यह मेघ के तुल्य प्रतीत होता हुआ पर्वत के समीप वृक्षों का समूह क्या है? इसके जानने का मुझको बहुत कौतूहल है ॥

दर्शनीयं मृगाकीर्णं मनोहरमतीव च ।
नानाप्रकारैः शकुनैर्वल्गुनादैरलंकृतम् ॥ १३ ॥

अर्थ—वह मृगों से युक्त बड़ा सुहावना, मन को आकर्षण करने वाला और नाना प्रकार के पक्षी मधुर स्वर से गाते हुए इसको अलङ्कृत कर रहे हैं ॥

निःसृताःस्म मुनिश्रेष्ठ कान्ताराद्रोमहर्षणात् ।
अनया त्ववगच्छामि देशस्य सुखवत्तया ॥ १४ ॥

अर्थ—हे मुनिश्रेष्ठ! यह ऐसा सुखदाई प्रतीत होता है कि इसको देखने से बड़ी प्रसन्नता होती है और ज्ञात होता है कि अब हम भयङ्कर वन से निकल आये हैं ॥

इति चतुर्दशः सर्गः

अथ पंचदशः सर्गः

अथ तस्याप्रमेयस्य तद्वनं परिपृच्छतः ।
विश्वामित्रो महातेजा व्याख्यातुमुपचक्रमे ॥ १ ॥

अर्थ–इसके अनन्तर उस वन को पूछते हुए महातेजस्वी विश्वामित्र ने रामचन्द्र को बतलाया कि :—

एष पूर्वाश्रमो राम वामनस्य महात्मनः ।
सिद्धाश्रम इति ख्यातः सिद्धोह्यत्र महातपाः ॥२॥

अर्थ–हे राम ! यह महात्मा वामन का पूर्वाश्रम है जो सिद्धाश्रम नाम से प्रसिद्ध है, क्योंकि वह महा तपस्वी यहीं पर सिद्ध हुआ था ॥

एनमाश्रममायान्ति राक्षसा विघ्नकारिणः ।
अत्रैव पुरुषव्याघ्र हन्तव्या दुष्टचारिणः ॥ ३ ॥
अद्य गच्छामहे राम सिद्धाश्रममनुत्तमम् ।
तदाश्रमपदं तात तवाप्येतद्यथा मम ॥ ४ ॥

अर्थ–इस आश्रम में वह विघ्नकारी राक्षस आते हैं, सो हे पुरुषव्याघ्र ! तुम उन दुष्टाचारियों को यहीं मारो, हे राम ! आज हम इस परमोत्तम सिद्धाश्रम में आगये हैं, सो यह आश्रम जैसा मेरा है वैसा ही तुम्हारा है ॥

इत्युक्त्वा परमप्रीतो गृह्य रामं सलक्ष्मणम् ।
प्रविशन्नाश्रमपदं व्यरोचत महामुनिः ॥ ५ ॥

तं दृष्ट्वा मुनयः सर्वे सिद्धाश्रम निवासिनः ।
उत्पत्योत्पत्य सहसा विश्वामित्रमपूजयन् ॥ ६ ॥

अर्थ–यह कहकर परमप्रसन्न हुए महामुनि ने राम लक्ष्मण को साथ लेकर आश्रम में प्रवेश किया, और सिद्धाश्रमवासी उनको देखकर परमप्रसन्न हुए २ सब उठ खड़े हुए और विश्वामित्र का पूजन करने लगे ॥

यथार्हं चक्रिरे पूजां विश्वामित्राय धीमते ।
तथैव राजपुत्राभ्यामकुर्वन्नातिथि क्रियाम् ॥ ७ ॥
मुहूर्त्तमिव विश्रान्तौ राजपुत्रावरिन्दमौ ।
प्राञ्जली मुनिशार्दूलमूचतू रघुनन्दनौ ॥ ८ ॥

अर्थ–बुद्धिमान् विश्वामित्र का यथाविधि पूजन करके वैसे ही दोनों राजपुत्रों का अतिथि सत्कार किया, कुछ काल विश्राम करके शत्रुओं को दमन करने वाले दोनों राजपुत्र हाथ जोड़कर विश्वामित्र मुनि से बोले कि :—

अद्यैव दीक्षां प्रविश भद्र ते मुनिपुंगव ।
सिद्धाश्रमोऽयं सिद्धःस्यात्सत्यमस्तु वचस्तव ॥९॥
एवमुक्तो महातेजा विश्वामित्रो महामुनिः ।
प्रविवेश तदा दीक्षां नियतो नियतेन्द्रियः ॥ १० ॥

अर्थ–हे मुनिवर ! आज ही दीक्षा में प्रवेश करो, आपका कल्याण हो, यह सिद्धाश्रम सिद्ध हो और आपका वचन सत्य हो, महातेजस्वी विश्वामित्र को जब इस प्रकार कहागया तो वह नियमपूर्वक दीक्षा में प्रविष्ट हुए ॥

कुमारावपि तां रात्रिमुषित्वा सुसमाहितौ ।
प्रभातकाले चोत्थाय पूर्वां सन्ध्यामुपास्य च ॥११॥
स्पृष्टोदकौ शुची जप्यं समाप्य नियमेन च ।
हुताग्निहोत्रमासीनं विश्वामित्रमवन्दताम् ॥ १२ ॥

अर्थ—वह दोनों कुमार बड़ी सावधानी से रात्रि को वहां निवास करके प्रभात में उठकर पवित्र हो पूर्वा सन्ध्या उपासन कर नियम से जप समाप्त करके विश्वामित्र को अभिवादन किया और अग्निहोत्र करने के लिये बैठगये ॥

इति पंचदशः सर्गः

अथ षोडशः सर्गः

अथ तौ देशकालज्ञौ राजपुत्रावरिंदमौ ।
देशेकाले च वाक्यज्ञावब्रूतां कौशिकं वचः ॥ १ ॥
भगवञ्छ्रोतुमिच्छावो यस्मिन्काले निशाचरौ ।
संरक्षणीयौ तौ ब्रह्मन् नातिवर्तेत तत्क्षणम् ॥ २ ॥

अर्थ—इसके अनन्तर देशकालज्ञ तथा शत्रुओं को दमन करने वाले, वाक्य के ज्ञाता वह दोनों राजकुमार देशकाल के अनुसार विश्वामित्र से बोले कि हे भगवन् ! कृपाकरके ऐसा करें कि जिस समय वह दोनों राक्षस रोकने हैं वह क्षण न बीतजाय ॥

एवं ब्रुवाणौ काकुत्स्थौ त्वरमाणौ युयुत्सया ।
सर्वे ते मुनयः प्रशशंसुर्नृपात्मजौ ॥ ३ ॥
अद्यप्रभृति षड्रात्रं रक्षतां राघवौ युवाम् ।
दीक्षां गतौ ह्येषमुनिर्मौनित्वं च गमिष्यति ॥४॥

अर्थ–जब उक्त प्रकार दोनों राजपुत्रों ने युद्ध के उत्साह से शीघ्रपात करते हुए कहा तो वह सम्पूर्ण मुनि प्रसन्न होकर कहने लगे कि आज से लेकर छः रात्रि हैं आप दोनों कुमार हमारी रक्षा करें, यह मुनि इतने दिन मौनधारण किये हुए रहेंगे, क्योंकि यह दीक्षा को प्राप्त हैं ॥

तौ च तद्वचनं श्रुत्वा राजपुत्रौ यशस्विनौ ।
अनिद्रं षडहोरात्रं तपोवनमरक्षताम् ॥ ५ ॥
अथ काले गते तस्मिन् षष्ठेऽहनि तथागते ।
सौमित्रिमब्रवीद्रामो यत्तो भव समाहितः ॥ ६ ॥

अर्थ–वह दोनों यशस्वी राजपुत्र उक्त मुनियों के वचन सुनकर रात्रिदिन निद्रा का त्याग करके तपोवन की रक्षा करते रहे, जब वह काल व्यतीत होगया और छठा दिन आया तब राम ने लक्ष्मण से कहा कि हे वीर लक्ष्मण ! सावधान होकर तैयार रहो ॥

रामस्यैवं ब्रुवाणस्य त्वरितस्य युयुत्सया ।
मारीचश्च सुबाहुश्च तयोरनुचरास्तथा ॥ ७ ॥

आगम्यभीमसंकाशारुधिरौघानवासृजन् ।
तावापतन्तौ सहसादृष्ट्वाराजीवलोचनः ॥ ८ ॥

अर्थ—युद्ध की इच्छा करते हुए लक्ष्मण से रामचन्द्र उक्त प्रकार कह ही रहे थे कि मारीच और सुबाहु अपने अनुचरों के साथ आकर रुधिर छिड़कने लगे, तब कमलनेत्र राम ने उनको देखकर :—

मानवं परमोदारमस्त्रं परमभास्वरम् ।
चिक्षेप परमक्रुद्धो मारीचोरसि राघवः ॥ ९ ॥

अर्थ—परमक्रुद्ध हो चमकते हुए परमोदार मानव अस्त्र को मारीच पर फैंका ॥

विचेतनं विघूर्णन्तं शीतेषुबलपीडितम् ।
निरस्तं दृश्य मारीचं रामो लक्ष्मणमब्रवीत् ॥१०॥
पश्यलक्ष्मण शीतेषुं मानवं मनुसंहितम् ।
मोहयित्वा नयत्येनं नच प्राणैर्वियुज्यते ॥ ११ ॥

अर्थ—तब वह बेहोश होकर घुमाई लेता हुआ ठंडे तीरों वाले मानव अस्त्र से पीड़ित हुए बेदम मारीच को देखकर राम लक्ष्मण से बोले कि हे लक्ष्मण! मनुष्य से प्रयोग किये हुए ठंडे तीरों वाले इस मानव अस्त्र को देख जिसने इसको बेहोश कर दिया है पर यह अभी प्राणों से विमुक्त नहीं हुआ ॥

इमानपि वधिष्यामि निर्घृणान्दुष्टचारिणः ।
राक्षसान्पापकर्मस्थान्यज्ञघ्नान् रुधिराशनान् ॥१२॥

इत्युक्त्वा लक्ष्मणं चाशु लाघवं दर्शयन्निव ।
विगृह्य सुमहच्चास्त्रमाग्नेयं रघुनन्दनः ॥ १३ ॥

अर्थ—अब इन दूसरे राक्षसों को भी मारता हूं जो दुष्टाचारी, पापकर्मों में स्थित, यज्ञनाशक और रुधिर भक्षण करने वाले हैं, इस प्रकार लक्ष्मण से कहकर शीघ्रता से राम ने बहुत बड़े आग्नेय अस्त्र को सुवाहु पर फैंका ॥

सुवाहूरसिचिक्षेप स विद्धः प्रापतद्भुवि ।
शेषान्वायव्यमादाय निजघान महायशाः ॥१४॥
स हत्वा राक्षसान्सर्वान् यज्ञघ्नान् रघुनन्दनः ।
ऋषिभिः पूजितस्तत्र यथेन्द्रो विजये पुरा ॥ १५ ॥

अर्थ—और वह विधकर भूमि पर गिरपड़ा, फिर महा यशस्वी राम ने वायव्य अस्त्र लेकर शेष सब राक्षसों का हनन कर डाला, वह महाबली राम यज्ञ के नाशक सब राक्षसों को मारकर ऋषियों से उसी प्रकार पूजे गये जिसप्रकार पूर्वकाल में अपने विजय से इन्द्र पूजे गये थे ॥

अथ यज्ञे समाप्ते तु विश्वामित्रो महामुनिः ।
निरीतिका दिशो दृष्ट्वा काकुत्स्थमिदमब्रवीत्॥१६॥

अर्थ—इसके अनन्तर यज्ञ समाप्ति पर महामुनि विश्वामित्र सब दिशाओं को निरुपद्रव देखकर राम से बोले कि :—

कृतार्थोऽस्मि महाबाहो कृतं गुरुवचनंस्त्वया ।
सिद्धाश्रममिदं सत्यं कृतं वीर महायशः ॥ १७ ॥
सहि रामं प्रशंस्यैवं ताभ्यां सन्ध्यामुपागमत्॥१८॥

अर्थ—हे महाबाहो ! आपने मुझको कृतार्थ कर गुरुओं के वचन को पूर्ण किया, हे बड़े यश वाले वीर ! आपने इस स्थान को सच्चा सिद्धाश्रम बनादिया है, इस प्रकार विश्वामित्र राम की प्रशंसा करते हुए दोनों भाइयों को साथ लेकर सन्ध्या उपासना में प्रवृत्त हुए ॥

इति षोडशः सर्गः

अथ सप्तदशः सर्गः

अथ तां रजनीं तत्र कृतार्थौ रामलक्ष्मणौ ।
ऊषतुर्मुदितौ वीरौ प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥ १ ॥

अर्थ—इसके अनन्तर कृतार्थ हुए२ हर्ष को प्राप्त राम लक्ष्मण प्रसन्नचित्त होकर रात्रिभर वहीं रहे ॥

प्रभातायां तु शर्वर्यां कृतपौर्वाह्णिकक्रियौ ।
विश्वामित्रमृषींश्चान्यान्सहितावभिजग्मतुः॥ २ ॥

अर्थ—फिर प्रभात होने पर प्रातःकाल का नित्यकर्म करके दोनों भाई विश्वामित्र और दूसरे ऋषियों के सन्मुख जाकर :—

अभिवाद्य मुनिश्रेष्ठं ज्वलन्तमिव पावकम् ।
ऊचतुः परमोदारं वाक्यं मधुरभाषिणौ ॥ ३ ॥

अर्थ—प्रज्वलित अग्नि के समान तेजस्वी मुनि को अभिवादन करके मधुरभाषी दोनों भाई यह उदार वाक्य बोले कि :—

इमौ स्म मुनिशार्दूल किंकरौ समुपस्थितौ ।
आज्ञापय यथेष्टं वै शासनं करवावकिम् ॥ ४ ॥

अर्थ—हे मुनिवर ! यह दोनों सेवक उपस्थित हैं यथेष्ट आज्ञा दीजिये जिसको हम पूर्ण करें ॥

एवमुक्ते तयोर्वाक्ये सर्वएव महर्षयः ।
विश्वामित्रं पुरस्कृत्य रामं वचनमब्रुवन् ॥ ५ ॥

अर्थ—जब दोनों भाइयों ने हाथ जोड़कर उक्त वाक्य कहा तो सब महर्षि विश्वामित्र को आगे करके रामचन्द्र से यह बचन बोले कि :—

मैथिलस्य नरश्रेष्ठ जनकस्य भविष्यति ।
यज्ञः परमधर्मिष्ठस्तत्र यास्यामहे वयम् ॥ ६ ॥
त्वं चैव नरशार्दूल सहास्माभिर्गमिष्यसि ।
अद्भुतं च धनूरत्नं तत्र त्वं द्रष्टुमर्हसि ॥ ७ ॥

अर्थ—हे नरश्रेष्ठ ! मिथिलाधिपति जनक के यहां परमधर्म वाला यज्ञ होगा हम सब वहां जावेंगे. सो हे नरशार्दूल ! आप भी हमारे साथ चलें और वहां अद्भुत धनुपयज्ञ देखें ॥

तद्धि पूर्वं नरश्रेष्ठ दत्तं सदसि दैवतैः ।
अप्रमेयबलं घोरं मखे परमभास्वरम् ॥ ८ ॥
धनुषस्तस्य वीर्य्यं हि जिज्ञासन्तो महीक्षितः ।
न शेकुरारोपयितुं राजपुत्रा महाबलाः ॥ ९ ॥

तद्धनुर्नरशार्दूल मैथिलस्य महात्मनः ।
तत्र द्रक्ष्यसि काकुत्स्थ यज्ञं च परमाद्भुतम् ॥ १० ॥

अर्थ—हे नरश्रेष्ठ ! अत्यन्त देदीप्यमान.अप्रमेय=अतुल बलवाला वह घोर धनुष " पूर्वकाल में जनक ने यज्ञ किया था उस यज्ञ में सभास्थ बैठे हुए " देवताओं ने उसको दिया था, उस धनुष की शक्ति बड़ी प्रबल है उसकी जिज्ञासा करते हुए बड़े २ बलवाले राजपुत्र उसको नहीं चढ़ासके, हे नरशार्दूल ! वह धनुष और परम अद्भुत यज्ञ महात्मा मिथिलाधिपति के यहां देखोगे ॥

इत्युक्त्वा मुनिशार्दूल कौशिकं स तपोधनः ।
उत्तरांदिशमुद्दिश्य प्रस्थातुमुपचक्रमे ॥ ११ ॥
ते गत्वादूरमध्वानं लम्बमाने दिवाकरे ।
वासं चक्रुर्मुनिगणाः शोणाकूले समाहिताः ॥ १२ ॥

अर्थ—यह कहकर तपोधन=जिनका तप ही धन है, ऐसे मुनिवर विश्वामित्र ने उत्तर दिशा की ओर उद्देश्य करके प्रस्थान किया और दूर जाकर जब सूर्य्यास्त हुआ तब सब मुनियों ने शोणा नदी के तटपर वास किया ॥

उपास्य रात्रिशेषं तु शोणाकूले महर्षिभिः ।
निशायां सुप्रभातायां विश्वामित्रोऽभ्यभाषत ॥ १३ ॥
सुप्रभाता निशाराम पूर्वासन्ध्या प्रवर्तते ।
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ भद्रं ते गमनायाभिरोचय ॥ १४ ॥

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य कृतपूर्वाह्णिकक्रियः ।
गमनं रोचयामास वाक्यं चेदमुवाच ह ॥ १५ ॥

अर्थ—शोणा नदी के तटपर महर्षियों सहित रात व्यतीत कर प्रभात होने पर विश्वामित्र ने कहा कि हे राम ! अब प्रभात होगया उठो और प्रातःकाल की सन्ध्या करके चलने के लिये तैयार होजाओ, इस प्रकार मुनि के वचन सुनकर राम पूर्वाह्णिक का कृत्य करके चलने को तैयार हुए और मुनि से बोले किः—

अयं शोणः शुभजलोगाधः पुलिनमण्डितः ।
कतरेण यथा ब्रह्मन् सन्तरिष्यामहेवयम् ॥ १६ ॥

अर्थ—यह पवित्र जल वाली शोणा नदी जो अगाध=अथाह और बहुत बालु वाली है, हे ब्रह्मन ! हम लोग किस मार्ग से पार होंगे ॥

एवमुक्तस्तु रामेण विश्वामित्रोऽब्रवीदिदम् ।
एषपन्था मयोद्दिष्टो येन यान्ति महर्षयः ॥ १७ ॥

अर्थ—राम का उक्त वाक्य सुनकर विश्वामित्र बोले कि यह मार्ग है जिससे महर्षि जाया करते हैं ॥

ते गत्वा दूरमध्वानं गतेऽर्धदिवसे तदा ।
जाह्नवीं सरितां श्रेष्ठां ददृशुर्मुनिसेविताम् ॥ १८ ॥

अर्थ—वह दूर मार्ग जाकर आधा दिन व्यतीत होने पर नदियों में श्रेष्ठ गंगा को देखा जो मुनियों से सेवित है ॥

तां दृष्ट्वा पुण्यसलिलां हंससारससेविताम् ।
बभूवुर्मुनयः सर्वे मुदिताः सहराघवाः ॥ १९ ॥

अर्थ—बड़े पवित्र जलवाली जिसपर हंस और सारस वास करते हैं ऐसी नदी को देखकर राम लक्ष्मण सहित सब मुनि प्रसन्न हुए ॥

तस्यास्तीरे तदा सर्वे चक्रुर्वासपरिग्रहम् ।
ततः प्रभाते विमले पुण्यां त्रिपथगां नदीम् ॥२०॥
संतारं कारयामास सर्षिसंघस्य कौशिकः ।
उत्तरं तीरमासाद्य संपूज्यर्षिगणं तदा ॥ २१ ॥

अर्थ—और उसी के तटपर रहने के लिये सब की सम्मति हुई, फिर निर्मल प्रभात होने पर विश्वामित्र सब ऋषियों सहित राम को गंगा के पार लेगये और उत्तरीय तटपर पहुंचकर वहां निवास करने वाले ऋषियों का पूजन किया ॥

गंगाकूले निविष्टास्ते विशालां ददृशुःपुरीम् ।
विशालां नगरीं रम्यां दिव्यां स्वर्गोपमां तदा॥२२॥
आवसत् परमप्रख्यः सुमतिर्नाम दुर्जयः ।
सुमतिस्तु महातेजा विश्वामित्रमुपागतम् ॥२३॥
पूजां च परमां कृत्वा सोपाध्यायः सबान्धवः ।
प्राञ्जलिः कुशलं पृष्ट्वा विश्वामित्रमथाऽब्रवीत्॥२४॥

अर्थ—और गंगा तट पर निवास करते हुए उन्होंने बहुत सुहावनी, दिव्य और स्वर्ग के तुल्य रमणीय विशालापुरी को देखा जिसमें उस समय दुर्जय=काठिनता से जीतने योग्य, प्रसिद्ध सुमति राजा वास करता था वह तेजस्वी विश्वामित्र के समीप आया और पुरोहित तथा बान्धवों सहित मुनि का पूजन कर हाथ जोड़ कुशल पूछकर बोला कि :—

इमौ कुमारौ भद्रं ते देवतुल्यपराक्रमौ ।
परस्परेण सदृशौ प्रमाणेङ्गितचेष्टितैः ॥ २५ ॥
किमर्थं च नरश्रेष्ठौ संप्राप्तौ दुर्गमे पथि ।
वरायुधधरौ वीरौ श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥ २६ ॥

अर्थ—आपका कल्याण हो, यह देवों के तुल्य पराक्रम वाले दोनों कुमार जो कद और चेष्टा में परस्पर सदृश, नरश्रेष्ठ शस्त्रधारण किये हुए दोनों वीर किस तरह इस दुर्गम मार्ग में आये हैं ? मैं इस तत्व को जानना चाहता हूं ॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा यथा वृत्तं न्यवेदयत् ।
विश्वामित्र वचः श्रुत्वा राजा परमविस्मितः॥२७॥

अर्थ—विश्वामित्र ने सारा वृत्त उससे कहा कि यह राजा दशरथ के पुत्र हैं, इत्यादि, तब मुनि के वचनों को सुनकर राजा बड़ा विस्मित हुआ और :—

अतिथि परमं प्राप्तौ पुत्रौ दशरथस्य तौ ।
पूजयामास विधिवत्सत्कारार्हौ महाबलौ ॥ २८ ॥

अर्थ—अतिथि रूप से प्राप्त हुए परम आदरणीय महाबली महाराज दशरथ के दोनों पुत्रों का विधिवत सत्कार किया ॥

ततः परमसत्कारं सुमतेः प्राप्य राघवौ ।
उष्य तत्र निशामेकां जग्मतुर्मिथिलां ततः ॥२९॥
तां दृष्ट्वा मुनयः सर्वे जनकस्य पुरीं शुभाम् ।
साधु साध्विति शंसन्तो मिथिलासमपूजयन्॥३०॥

अर्थ—और वह दोनों भाई राजा सुमति से परम सत्कार पाकर एक रात्रि वहां रह मिथिला को चलेगये और जनक की उस सुहावनी पुरी को देखकर सब मुनियों ने साधु=उत्तम २ कहते हुए मिथिला की प्रशंसा की ॥

इति सप्तदशः सर्गः

अथ अष्टादशः सर्गः

ततःप्रागुत्तरांगत्वा रामः सौमित्रिणा सह ।
विश्वामित्रं पुरस्कृत्य यज्ञवाटमुपागमत् ॥ १ ॥

अर्थ—इसके अनन्तर पूर्व और उत्तर के बीच ईशानादिशा की ओर चलकर राम लक्ष्मण सहित विश्वामित्र यज्ञस्थान में आये ॥

रामस्तु मुनिशार्दूलमुवाच सहलक्ष्मणः ।
साध्वी यज्ञसमृद्धिर्हि जनकस्य महात्मनः ॥२॥

बहूनीह सहस्राणि नानादेशनिवासिनाम् ।
ब्राह्मणानां महाभाग वेदाध्ययनशालिनाम्॥३॥

अर्थ—रामचन्द्र तथा लक्ष्मण मुनिवर विश्वामित्र से बोले कि महात्मा जनक का यज्ञ बड़ा प्रशंसनीय है,क्योंकि यहां पर नाना-देश निवासी वेदाध्ययन करने वाले ब्राह्मण सहस्रों विद्यमान हैं ॥

ऋषिवाटाश्च दृश्यन्ते शकटीशतसंकुलाः ।
देशो विधीयतां ब्रह्मन्यत्रवत्स्यामहेवयम् ॥ ४ ॥

अर्थ—और ऋषियों के यज्ञ की सामग्री सैकड़ों छकड़ों पर लदी हुई जगह २ मुनि लोग उतरे हैं सो आप भी कोई अच्छा स्थान निश्चित कीजिये जहां हम सब ठहरसकें ॥

रामस्य वचनं श्रुत्वा विश्वामित्रो महामुनिः ।
निवासमकरोद्देशे विविक्ते सलिलान्विते ॥ ५ ॥

अर्थ—महामुनि विश्वामित्र ने रामचन्द्र के उक्त वचन सुनकर जल के निकट एकान्तस्थान में निवास किया ॥

विश्वामित्रमनुप्राप्तं श्रुत्वा स नृपतिस्तदा ।
शतानन्दं पुरस्कृत्य पुरोहितमनिन्दितम् ॥ ६ ॥
प्रत्युज्जगाम सहसा विनयेन समन्वितः ॥ ७ ॥
ऋत्विजोऽपि महात्मानस्त्वर्घ्यमादाय सत्वरम् ।
विश्वामित्रायधर्मेण ददुर्मन्त्रपुरस्कृतम् ॥ ८ ॥
प्रतिगृह्य तु तां पूजां जनकस्य महात्मनः ।
पप्रच्छ कुशलं राज्ञो यज्ञस्य च निरामयम् ॥ ९ ॥
स तांश्चापि मुनीन्पृष्ट्वा सोपाध्याय पुरोधसः ।
यथार्हमृषिभिः सर्वैः समागच्छत्प्रहृष्टवत् ॥ १० ॥

अर्थ—विश्वामित्र का आगमन सुनकर महात्मा जनक प्रशंसित पुरोहित शतानन्द को आगे करके नम्रतापूर्वक शीघ्र ही लेने को गये और महात्मा ऋत्विज् ने धर्ममर्यादानुसार शीघ्र ही अर्घ्य लेकर विश्वामित्र को दिया, महात्मा जनक की उक्त पूजा को स्वीकार कर मुनि राजा से कुशल पूछते हुए बोले कि यज्ञ

तो सर्वप्रकार निर्विघ्न होरहा है ? फिर उपाध्याय तथा पुरोहित सहित सब मुनियों की कुशल क्षेम पूछकर सब के साथ प्रसन्न हो यथायोग्य मिले ॥

अथ राजा मुनिश्रेष्ठं कृताञ्जलिरभाषत ।
धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि यस्य मे मुनिपुंगव॥११॥

अर्थ–फिर राजा हाथ जोड़कर मुनिवर विश्वामित्र से बोले कि हे मुनिश्रेष्ठ ! मैं धन्य हूं और बड़ा अनुग्रहीत हूं जो आपने दर्शन देकर कृतार्थ किया ॥

यज्ञोपसदनं ब्रह्मन् प्राप्तोसि मुनिभिः सह ।
इमौ कुमारौ भद्रं ते देवतुल्यपराक्रमौ ॥ १२ ॥
गजसिंहगती वीरौ शार्दूलवृषभोपमौ ।
अश्विनाविव रूपेण समुपस्थितयोवनौ ॥ १३ ॥
वरायुधधरौ वीरौ कस्य पुत्रौ महामुने ।
भूषयन्ताविमं देशं चन्द्रसूर्याविवाम्बरम् ॥ १४ ॥
परस्परस्य सदृशौ प्रमाणेङ्गितचेष्टितैः ।
काकपक्षधरौ वीरौ श्रोतुमिच्छामि तत्वतः ॥१५॥

अर्थ–हे ब्रह्मन् ! आपके साथ यज्ञस्थान में आये हुए देव-तुल्य पराक्रम वाले दोनों कुमार कौन हैं जो हाथी और सिंह की चाल वाले शार्दूल तथा वृषभ के तुल्य बलवान् और रूप में अश्विनी कुमारों के समान भरे हुए यौवन वाले हैं, सुन्दर शस्त्रों को धारण किये हुए यह दोनों वीर किसके पुत्र हैं ? जो इस

स्थान को शोभायमान कर रहे हैं, जैसे सूर्य्य चन्द्र आकाश को शोभायमान करते हैं. आपस में बराबर कद वाले, चेष्टा में परस्पर एक दूसरे के सदृश और काकपक्षधारी यह दोनों वीर कौन हैं ? इनके तत्व को सुनना चाहता हूं ॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा जनकस्य महात्मनः ।
न्यवेदयन्महात्मानौ पुत्रौ दशरथस्य तौ ॥ १६ ॥

अर्थ–महात्मा जनक के उक्त वचन सुनकर मुनि ने निवेदन किया कि यह दोनों महापुरुष दशरथ के पुत्र हैं ॥

सिद्धाश्रम निवासं च राक्षसानां वधं तथा ।
तत्रागमनमव्यग्रं विशालायाश्च दर्शनम् ॥ १७ ॥
एतत्सर्वं महातेजा जनकाय महात्मने ।
निवेद्य विररामाथ विश्वामित्रो महामुनिः ॥ १८ ॥

अर्थ– और फिर सिद्धाश्रम का निवास, राक्षसों का वध, वहां निर्भय होकर आना और मार्ग में विशालापुरी को देखना, यह सब वृत्त महात्मा जनक के प्रति निवेदन करके महातेजस्वी विश्वामित्र चुप होगये ॥

जनकः प्राञ्जलिर्वाक्यमुवाचकुशिकात्मजम् ।
धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि यस्य मे मुनिपुंगव ॥१९॥
यज्ञं काकुत्स्थसहितः प्राप्तवानसि कौशिक ।
पावितोऽहं त्वया ब्रह्मन् दर्शनेन महामुने ॥२०॥

अर्थ–फिर जनक हाथ जोड़कर विश्वामित्र से बोले कि मैं धन्य हूं, अनुगृहीत हूं, जिसके यज्ञ में आप रामसहित पधारे हैं, हे ब्रह्मन् ! आपने अपने दर्शन से मुझको पवित्र करादिया ॥

अप्रमेयं तपस्तुभ्यमप्रमेयं च ते बलम् ।
अप्रमेया गुणाश्चैव नित्यं ते कुशिकात्मज ॥२१॥
कर्मकालो मुनिश्रेष्ठ लम्बते रविमण्डलम् ।
श्वःप्रभाते महातेजो द्रष्टुमर्हसि मां पुनः ॥ २२ ॥

अर्थ—हे कुशिक की सन्तान विश्वामित्र ! आप अप्रमेय तप वाले, अतुल बल वाले और सदा ही शुभ गुणों वाले हैं, हे मुनिश्रेष्ठ ! अब सन्ध्यावन्दनादि कर्मों का समय है, क्योंकि सूर्य्य अस्त होरहा है, इसलिये अब मैं जाता हूं, हे महातेजस्वी ! कल. प्रातः फिर आपका दर्शन होगा ॥

स्वागतं जपतां श्रेष्ठमामनुज्ञातुमर्हसि ।
एवमुक्तो मुनिवरः प्रशस्य पुरुषर्षभम् ॥ २३ ॥
विससर्जाशु जनकं प्रीतं प्रीतमनास्तदा ॥२४॥

अर्थ—हे मुनिश्रेष्ठ ! आपका आगमन शुभ हो, अब मुझे आज्ञा दीजिये, ऐसा कथन करने पर मुनि ने प्रसन्न हो मुदित हुए नर-श्रेष्ठ जनक की प्रशंसा करके उनको विदा किया ॥

इति अष्टादशः सर्गः

अथ एकोनविंशतिः सर्गः

ततः प्रभाते विमले कृतकर्मा नराधिपः ।
विश्वामित्रं महात्मानमाजुहाव सराघवम् ॥ १ ॥

तमर्चयित्वा धर्मात्माशास्त्रदृष्टेन कर्मणा ।
राघवौ च महात्मानौ तदावाक्यमुवाच ह ॥ २ ॥

अर्थ—इसके अनन्तर निर्मल प्रभात होने पर राजा ने नित्य-कर्म करके राम लक्ष्मण सहित महात्मा विश्वामित्र को बुलाया, और धर्मात्मा जनक ने शास्त्रानुसार राम, लक्ष्मण सहित मुनि का पूजन कर यह वचन बोले कि :—

भगवन् स्वागतं तेऽस्तु किंकरोमि तवानघ ।
भवानाज्ञापयतु मामाज्ञाप्यो भवताह्यम् ॥ ३ ॥
एवमुक्तः स धर्मात्मा जनकेन महात्मना ।
प्रत्युवाच मुनिर्वीरं वाक्यं वाक्यविशारदः ॥ ४ ॥

अर्थ—हे भगवन ! आपका आगमन शुभ हो. हे निष्पाप ! मैं आपका क्या कार्य्य करूं आज्ञा दीजिये. मैं आपका आज्ञा-कारी हूं, महात्मा जनक ने जब उस धर्मात्मा विश्वामित्र को उक्त प्रकार कहा तो वाक्यविशारद मुनिश्रेष्ठ ने यह उत्तर दिया किः—

पुत्रौ दशरथस्येमौ क्षत्रियौ लोकविश्रुतौ ।
द्रष्टुकामौ धनुःश्रेष्ठं यदेतत्त्वयि तिष्ठति ॥ ५ ॥
एवमुक्तस्तु जनकः प्रत्युवाच महामुनिम् ।
श्रूयतामस्य धनुषो यदर्थमिह तिष्ठति ॥ ६ ॥

अर्थ—राजा दशरथ के यह क्षत्रिय लोक विख्यात दोनों पुत्र उस श्रेष्ठ धनुष को देखना चाहते हैं जो आपके यहां स्थित है, जनक यह सुनकर मुनि से बोले कि हे भगवन ! यह धनुष जिस प्रयोजन के लिये यहां स्थित है वह सुनिये :—

देवरात इति ख्यातो निमेः षष्ठो महीपतिः ।
न्यासोऽयं तस्य भगवन् हस्ते दत्तो महात्मनः ॥ ७ ॥
दक्षयज्ञ वधेपूर्वमस्माकं पूर्वजे विभौ ॥ ८ ॥

अर्थ–इस धनुष को दक्ष प्रजापति के यज्ञ में राजा देवरात के हाथ में देवताओं ने अमानत दिया था जोकि राजा निमी से छठी पीढ़ी में हमारे पूर्वज एक बड़े सामर्थ्यवान राजा हुए हैं, तब से यह धनुष हमारे यहां है ॥

भूतलादुत्थितां तां तु वर्धमानां ममात्मजाम् ।
वरयामासुरागम्य राजानो मुनिपुंगव ॥ ११ ॥
तेषां वरयतां कन्यां सर्वेषां पृथिवीक्षिताम् ।
वीर्यशुल्केति भगवन्नददामि सुतामहम् ॥ १२ ॥
ततः सर्वे नृपतयः समेत्य मुनिपुंगव ।
मिथिलामभ्युपागम्य वीर्यं जिज्ञासवस्तदा ॥१३॥

अर्थ–हे मुनिश्रेष्ठ ! भूतल से निकली हुई उस मेरी कन्या को बड़ी होने पर बहुत राजाओं ने आकर मुझ से वरने की प्रार्थना की, पर मैंने उन राजाओं में से किसी को भी कन्या नहीं दी, क्योंकि मेरी यह प्रतिज्ञा है कि जो उक्त धनुष को उठाकर तोल सकेगा उसको कन्या दूंगा, हे मुनिवर ! तब सब राजा लोग मिलकर भी मिथिला में आये और अपने बल की हर प्रकार से परीक्षा की ॥

तेषां जिज्ञासमानानां वीर्यं धनुरुपाहम् ।
न शेकुर्ग्रहणे तस्य धनुषस्तोलनेऽपि वा ॥ १४ ॥

अर्थ—उन सब जिज्ञासा वालों के सन्मुख वह धनुष लाया गया परन्तु वह न उस धनुष को उठासके और न तोल सके ॥

तेषां वीर्य्यवतां वीर्य्यमल्पं ज्ञात्वा महामुने ।
प्रत्याख्यातानृपतयस्तन्निबोध तपोधन ॥ १५ ॥
तदेतन्मुनिशार्दूल धनुः परमभास्वरम् ।
रामलक्ष्मणयोश्चापि दर्शयिष्यामिसुव्रत ॥ १६ ॥

अर्थ—हे महामुने ! आपको ज्ञात होकि उन वीरों की वीरता अल्प जानकर मैंने उनको सीता नहीं दी, हे मुनिशार्दूल ! यह धनुष बड़े तेजवाला है सो हे सुव्रत ! अब राम और लक्ष्मण को भी दिखलाउंगा ॥

भाष्य—पाठकों को ज्ञात होकि इस स्थल में सीता की उत्पत्ति भूतल=पृथिवी से लिखी है अर्थात् विश्वामित्र के प्रति राजा जनक का यह कथन है कि :—

अथ मे कृषतः क्षेत्रं लाङ्गलादुत्थिता मया ।
क्षेत्रं शोधयता लब्ध्वा नाम्ना सीतेतिविश्रुता

अर्थ—मैं यज्ञ करने के लिये पृथिवी जुतवा रहा था तब हल के आगे कूंड़ में से एक कन्या निकली, सो मैंने क्षेत्र को जोतते हुए पाई थी इसलिये उसका नाम सीता रखागया ॥

इस कन्या की उत्पत्ति जिसप्रकार क्षेत्र से मानी है वह सन्तोष जनक नहीं, हमारे विचार में सीता की उत्पत्ति विषयक यह लेख भी ऐसा ही युक्ति शून्य है जैसे कि अन्य बहुत से लेख हैं जिनका विवरण हमने विस्तारपूर्वक भूमिका में किया है, वास्तव में " जनकस्यापत्यं जानकि "=जनक की

पुत्री होने से इसका नाम "जानकी" था, यह कन्या हृष्ट पुष्ट शूर वीर तथा शुभगुणसम्पन्न विदुषी थी, इसकी वीरता यहां तक विदित होती है कि यह उस धनुष को चढ़ा सकती थी, इसी कारण इसके पिता जनक ने यह प्रतिज्ञा की कि जब तक कोई इस धनुष को न तोड़ देगा तबतक मैं उसके साथ सीता का विवाह न करूंगा अर्थात् इसके गुणकर्मानुसार योग्य वर से जनक जानकी का विवाह करना चाहते थे जैसी कि प्राचीन मर्यादा है, उपरोक्त लेखानुसार बहुत से क्षत्रिय और राजे सीता को वरने के लिये आये परन्तु वह सीता के समान योग्यता न रखते हुए हताश हो चलेगये, फिर सीता ने राम को देखकर उनके साथ परिणय करने के लिये अपनी इच्छा प्रकट की और राम ने अपने बाहुबल से धनुष तोड़कर सीता को वरा, जैसाकि निम्नलिखित लेख से पाया जाता है :—

इति एकोनविंशतिः सर्गः

अथ विंशतिः सर्गः

जनकस्य वचः श्रुत्वा विश्वामित्रो महामुनिः।
धनुर्दर्शय रामाय इति होवाच पार्थिवम् ॥ १ ॥

अर्थ—जनक के वचन सुनकर महामुनि विश्वामित्र ने राजा जनक से कहा कि रामचन्द्र को धनुष दिखलावें ॥

ततः स राजा जनकः सचिवान् व्यादिदेश ह।
धनुरानीयतां दिव्यं गन्धमाल्यविभूषितम् ॥ २ ॥

जनकेन समादिष्टाः सचिवाः प्राविशन् पुरम् ।
मञ्जूषामष्टचक्रां तां समूहुस्ते कथंचन ॥ ३ ॥

अर्थ—इसके अनन्तर राजा जनक ने मंत्रियों को आज्ञा दी कि गन्धमालाओं से सुशोभित दिव्य धनुष को लाओ, जनक की आज्ञा पाते ही वह सचिव पुरी में प्रविष्ट हुए और आठ पहियों वाली उस पेटी को जिसमें धनुष था बड़ी कठिनता से खींचकर लाये ।

तामादाय तु मञ्जूषामायसीं यत्र तद्धनुः ।
सुरोपमं ते जनकमूचुर्नृपतिमन्त्रिणः ॥ ४ ॥
इदं धनुर्वरं राजन् पूजितं सर्वराजभिः ।
मिथिलाधिप राजेन्द्र दर्शनीयं यदिच्छसि ॥ ५ ॥

अर्थ—उस धनुष वाली पेटी को लाकर मंत्रीगण राजा जनक से बोले कि हे राजन् ! यह श्रेष्ठ धनुष है जिसका सब राजाओं ने आदर किया है, हे मिथिलाधिपति राजेन्द्र ! यह धनुष है जिसको आप देखना चाहते हैं ॥

तेषां नृपो वचः श्रुत्वा कृताञ्जलिरभाषत ।
विश्वामित्रं महात्मानं तौ चोभौ रामलक्ष्मणौ ॥६॥

अर्थ—राजा जनक मंत्रियों के वचन सुनकर हाथ जोड़ महात्मा विश्वामित्र और राम लक्ष्मण दोनों से बोले कि :—

इदं धनुर्वरं ब्रह्मञ्जनकैरभिपूजितम् ।
राजभिश्च महावीर्यैरशक्तैः पूरितुं परा ॥ ७ ॥

अर्थ—हे ब्रह्मन् ! यह श्रेष्ठ धनुष है जिसका हमारे कुटुम्ब में सब जनक आदर करते आये हैं और पूर्व बड़े २ वीर महाराजाओं से यह नहीं ताना गया ॥

तदेतद्धनुषां श्रेष्ठमानीतं मुनिपुंगव ।
दर्शयैतन्महाभाग अनयो राजपुत्रयोः ॥ ८ ॥

अर्थ—हे मुनिवर ! यह श्रेष्ठ धनुष यहां लायागया है, सो हे महाभाग ! इन राजपुत्रों को इसे दिखालाओ ॥

विश्वामित्रस्तु धर्मात्मा श्रुत्वा जनकभाषितम् ।
वत्स राम धनुः पश्य इति राघवमब्रवीत् ॥ ९ ॥

अर्थ—धर्मात्मा विश्वामित्र जनक के वचन सुनकर रामचन्द्र से बोले कि हे वत्स राम ! धनुष को देखो ॥

महर्षेर्वचनाद्रामो यत्र तिष्ठति तद्धनुः ।
मञ्जूषां तामपावृत्य दृष्ट्वा धनुरथाब्रवीत् ॥ १० ॥
इदं धनुर्वरं ब्रह्मन् संस्पर्शामीह पाणिना ।
यत्नवांश्च भविष्यामि तोलने पूरणेऽपि वा ॥११॥

अर्थ—महर्षि विश्वामित्र की आज्ञा पाकर राम उस पेटी के समीप गये जिसमें धनुष था, उसको खोल धनुष को देखकर बोले कि हे ब्रह्मन् ! मैं इस श्रेष्ठ धनुष को उठाने के लिये हाथ से पकड़ तोलने तथा चढ़ाने का यत्न करता हूं ॥

बाढमित्येव तद्राजा मुनिश्च समभाषत ।
लीलया स धनुर्मध्ये जग्राह वचनान्मुनेः ॥ १२ ॥

पश्यतां नृसहस्राणां बहूनां रघुनन्दनः ।
आरोपयित्वा मौर्वीं च पूरयामास तद्धनुः ॥ १३ ॥
तद्बभञ्ज धनुर्मध्ये नरश्रेष्ठो महायशाः ।
x तस्य शब्दो महानासीन्निर्घातसमनिःस्वनः॥१४॥

अर्थ–राम का उक्त वचन सुनकर राजा और मुनि दोनों ने स्वीकार किया, फिर मुनि की आज्ञा पाकर रामचन्द्र ने सहस्रों राजाओं के देखते २ झटपट लीलामात्र से धनुष को बीच में पकड़कर उठालिया और महायशस्वी नरश्रेष्ठ राम ने उस धनुष की प्रत्यञ्चा खींचकर मध्य में से दो टुकड़े करदिये ॥

गुरुहि प्रणाम मनहिमन कीन्हा । अति लाघव उठाय धनुलीन्हा ॥
लेत चढ़ावत खैंचत गाढ़े । काहु न लखा देख सब ठाढ़े ॥
तेहि क्षण मध्य राम धनु तोरा । भरेउ भुवन ध्वनि घोर कठोरा ॥
प्रभु दोउ खण्ड चाप महि डारे। देख लोग सब भये सुखारे ॥
बाजे नभ गहगहे निशाना । देववधू नाचहिं कर गाना ॥
मुदित कहहिं जहं तहं नरनारी । भंजेउ राम शंभु धनुभारी ॥
बाजहिं बहु बाजने सुहाये । जहं तहं युवतिन मंगल गाये ॥
श्रीहत भये भूप धनु टूटे । जैसे दिवस दीप छवि छूटे ॥

तस्य शब्दो महानासीन्निर्घातसमनिस्वनः ।
भूमिकम्पश्चसुमहान् पर्वतस्येव दीर्यतः ॥ १५ ॥

अर्थ–धनुष के टूटने का बड़ा घोर शब्द हुआ जिससे फटते हुएं पर्वत की भांति आसपास की भूमि कांप गई ॥

निपेतुश्च नराः सर्वे तेन शब्देन मोहिताः ।
वर्जयित्वा मुनिवरं राजानं तौ च राघवौ ॥ १६ ॥
प्रत्याश्वस्ते जने तस्मिन् राजा विगतसाध्वसः ।
उवाच प्राञ्जलिर्वाक्यं वाक्यज्ञो मुनिपुंगवम्॥१७॥

अर्थ—विश्वामित्र, जनक, राम और लक्ष्मण को छोड़कर अन्य सब लोग जो वहां उपस्थित थे दहलकर गिर पड़े, लोगों के शान्त होने पर हर्ष को प्राप्त राजा जनक वाक्य के जानने वाले मुनिवर विश्वामित्र से बोले कि :—

भगवन् दृष्टवीर्यो मे रामो दशरथात्मजः ।
अत्यद्भुतमचिन्त्यं च नतर्कितमिदंमया ॥ १८ ॥

अर्थ—हे भगवन् ! दशरथ सुत राम की वीरता मैंने देखी, इनका बड़ा अद्भुत और अचिन्त्य बल है मैं ऐसा नहीं जानता था॥

जनकानां कुले कीर्तिमाहरिष्यति मे सुता ।
सीता भर्तारमासाद्य रामं दशरथात्मजम् ॥ १९ ॥
मम सत्या प्रतिज्ञा च वीर्य्यशुल्केति कौशिक ।
सीता प्राणैर्बहुमता देया रामाय मे सुता ॥ २० ॥

अर्थ—मेरी पुत्री सीता दशरथ के पुत्र राम को भर्त्ता पाकर जनकों के कुल में यश लायेगी, हे कौशिक ! मेरी यह प्रतिज्ञा "कि सीता का मूल्य बल है अर्थात् बलवान् पुरुष ही इसको प्राप्त कर सकता है" सत्य हुई, मेरी पुत्री सीता जो प्राण सम प्रिय है राम को दूंगा ॥

भवतोऽनुमते ब्रह्मन् शीघ्रं गच्छन्तु मन्त्रिणः ।
मम कौशिक भद्रं ते अयोध्यां त्वरिता रथैः॥२१॥

अर्थ—हे ब्रह्मन् ! आपकी अनुमति हो तो मेरे मंत्री अब शीघ्र रथों पर सवार हो अयोध्या को जायें ॥

कौशिकस्तु तथेत्याह राजा चाभाष्य मन्त्रिणः ।
अयोध्यां प्रेषयामास धर्मात्मा कृतशासनात् ॥२२॥
यथावृत्तं समाख्यातुमानेतुं च नृपं तदा ॥ २३ ॥

अर्थ—विश्वामित्र के " तथास्तु " कहने पर धर्मात्मा राजा जनक ने मंत्रियों को बुलाकर उन्हें सन्देश पत्र दे अयोध्या की ओर भेजा कि तुम राजा दशरथ को सम्पूर्ण वृत्त सुनाकर अपने साथ लेआओ ॥

दूत अवधपुर पठवहु जाई। आनें नृप दशरथहि बुलाई ॥
मुदित राउ कह भलेहि कृपाला। पठये दूत अवध तेहि काला ॥

इति विंशतिः सर्गः

अथ एकविंशः सर्गः

जनकेन समादिष्टा दूतास्ते क्लान्तवाहनाः ।
त्रिरात्रमुषितामार्गे तेऽयोध्यां प्राविशन् पुरीम्॥१॥

अर्थ—जनक की आज्ञा पाकर दूत तीन रात्रि मार्ग में रहकर अयोध्या में पहुंचे जिनके घोड़े थक गये थे ॥

ते राजवचनाद्दूता राजवेश्म प्रवेशिताः ।
ददृशुर्देवसंकाशं वृद्धं दशरथं नृपम् ॥ २ ॥

बद्धाञ्जलिपुटाः सर्वे दूता विगत-साध्वसाः ।
राजानं प्रश्रितं वाक्यमब्रुवन्मधुराक्षरम् ॥ ३ ॥

अर्थ–राजा की आज्ञा द्वारा राजमन्दिर में प्रवेश कर देवतुल्य वृद्ध राजा दशरथ का दर्शन करके निर्भय हो हाथ जोड़कर नम्रतापूर्वक मधुरवाणी से बोले कि :—

मैथिलो जनको राजा साग्निहोत्र-पुरस्कृतः ।
मुहुर्मुहुर्मधुरया स्नेहसंरक्तया गिरा ॥ ४ ॥
कुशलं चाव्ययं चैव सोपाध्यायपुरोहितम् ।
जनकस्त्वां महाराजा पृच्छते स पुरःसरम् ॥ ५ ॥
पृष्ट्वा कुशलमव्यग्रं वैदेहो मिथिलाधिपतिः ।
कौशिकानुमते वाक्यं भवन्तमिदमब्रवीत् ॥ ६ ॥

अर्थ–हे महाराज ! महायज्ञशाली मिथिलाधिपति राजा जनक ने स्नेहयुक्त मधुरवाणी द्वारा आपका और आपके पुरोहित, उपाध्याय तथा मंत्रीगण का कुशल क्षेम बार २ पूछा है, तदनन्तर विदेहों के राजा जनक ने विश्वामित्र की अनुमति द्वारा आपसे यह वाक्य कहा है कि :—

पूर्वं प्रतिज्ञा विदिता वीर्य्यशुल्का ममात्मजा ।
राजानश्च कृतामर्षा निर्वीर्या विमुखीकृताः ॥७॥

अर्थ–मेरी पूर्व प्रतिज्ञा विदित है कि जो पराक्रमयुक्त पुरुष होगा उसके साथ अपनी कन्या सीता का विवाह करूंगा, जिस पर बहुत से राजे शक्तिहीन हो विमुख होचुके हैं ॥

सेयं मम सुता राजन् विश्वामित्र-पुरस्कृतैः ।
यदृच्छयागतै राजान्निर्जिता तव पुत्रकैः ॥८॥

अर्थ—हे राजन् ! यह मेरी कन्या विश्वामित्र के साथ अपनी इच्छा से आये हुए आपके बीर पुत्र राम ने जीती है ॥

तच्चरत्नंधनुर्दिव्यं मध्ये भग्नं महात्मना ।
रामेण हि महाबाहो महत्यां जनसंसदि ॥ ९ ॥
अस्मैदेया मया-सीता वीर्य्यशुल्का महात्मने ।
प्रतिज्ञां तर्तुमिच्छामि तदनुज्ञातुमर्हसि ॥ १० ॥

अर्थ—हे महाबाहो ! यह दिव्य धनुष महात्मा राम ने भरी सभा के बीच तोड़दिया है, सो मैं अपनी कन्या सीता भद्र राम को देकर अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण किया चाहता हूं, आप इस विषय में आज्ञा देकर कृतार्थ करें ॥

सोपाध्यायो महाराज पुरोहित-पुरसरः ।
शीघ्रमागच्छ भद्रं ते द्रष्टुमर्हसि राघवौ ॥ ११ ॥
प्रीतिं च मम राजेन्द्र निर्वर्तयितुमर्हसि ।
पुत्रयोरुभयोरेवं प्रीतिं त्वमुपलप्स्यसे ॥ १२ ॥

अर्थ—हे महाराज ! उपाध्याय तथा पुरोहित सहित शीघ्र पधारें और यहां आकर अपने पुत्रों को देखें, हे महाराज ! आप मेरी प्रीति को पूर्ण करने योग्य हैं, आप यहां आनकर दोनों पुत्रों की प्रीति लाभ करें अर्थात् दोनों पुत्रों के विवाह की शोभा देखें ॥

दूतवाक्यं तु तच्छ्रुत्वा राजा परमहर्षितः ।
वसिष्ठं वामदेवंचमन्त्रिणोऽन्यांश्चसोऽब्रवीत्॥१३॥

अर्थ–दूतों के मधुर वचन सुनकर राजा परम प्रसन्न हो वासिष्ठ, वामदेव तथा अन्य मंत्रियों से बोले कि :—

दृष्टवीर्यस्तु काकुत्स्थो जनकेन महात्मना ।
संप्रदानं सुतायास्तु राघवे कर्तुमिच्छति ॥१४॥
यदि वो रोचते वृत्तं जनकस्य महात्मनः ।
पुरीं गच्छामहे शीघ्रं माभूत्कालस्य पर्ययः॥ १५॥

अर्थ–महात्मा जनक ने राम के बल को भले प्रकार देखा है और वह उसके साथ अपनी कन्या का विवाह करना चाहते हैं, यदि आप महात्मा जनक का कुल शील उत्तम समझते हैं तो शीघ्र ही उस पुरी को चलें विलम्ब नहीं होना चाहिये ॥

मंत्रिणो बाढमित्याहुः सह सर्वैर्महर्षिभिः ।
सुप्रीतश्चाब्रवीद्राजाश्वोयात्रेति च मंत्रिणः ॥१६॥

अर्थ–मंत्रियों ने सब महर्षियों से मिलकर " बहुत अच्छा-चलिये " इस प्रकार कथन किया तब राजा अति प्रसन्न होकर मंत्रियों से बोले कि कल प्रातःकाल चलना चाहिये ॥

पहुंचे दूत राम पुर पावन । हरषे नगर विलोकि सुहावन ॥
भूप द्वार तिन खबर जनाई । दशरथ नृप सुन लिये बुलाई ॥
करि प्रणाम तिन पाती दीन्हीं । मुदित महीप आप उठि लीन्हीं ॥
वारि विलोचन बांचत पाती । पुलकि गात आई भर छाती ॥
पुनि धरि धीर पत्रिका बांची । हरषी सभा बात सुनि सांची ॥

तब नृप दूत निकट बैठारे। मधुर मनोहर वचन उचारे॥
भइया कहहु कुशल दोउ बारे। तुम नीके निज नयन निहारे॥
पहचानेहु तो कहहु स्वभाऊ। प्रेम विवश पुनि पुनि कह राऊ॥
कहहु विदेह कवन विधि जाने। सुनि प्रियवचन दूत मुसकाने॥

सुनहु महीपति मुकुटमणि, तुम सम धन्य न कोउ॥
राम लषण जिनके तनय, विश्वविभूषण दोउ॥

पूछन योग न तनय तुम्हारे। पुरुष सिंह तिहुं पुर उजियारे॥
सीय स्वयंवर भूप अनेका। सिमिटे सुभट एकते एका॥
सके उठाय सुरासुर मेरु। सोउ हिय हार गयऊ करि फेरू॥

तहां राम रघुवंशमणि, सुनिय महामहिपाल॥
भंजेउ चाप प्रयास विनु, जिमि गज पंकज नाल॥

इति एकविंशः सर्गः

अथ द्वाविंशः सर्गः

ततो रात्र्यां व्यतीतायां सोपाध्यायः सबान्धवः।
राजा दशरथो हृष्टः सुमन्त्रमिदमब्रवीत्॥ १॥

अर्थ—इसके अनन्तर रात्रि व्यतीत होने पर उपाध्याय और बान्धवों सहित प्रसन्न हुए राजा दशरथ सुमन्त्र से बोले कि:—

अद्य सर्वे धनाध्यक्षा धनमादाय पुष्कलम्।
व्रजन्त्वग्रे सुविहिता नानारत्नसमन्विताः॥२॥

अर्थ—आज सब धनाध्यक्ष=खज़ानची पुष्कल धन लेकर नानारत्नों से युक्त सावधान होकर आगे चलें॥

चतुरङ्गबलं चापि शीघ्रं निर्यातु सर्वशः ।
वसिष्ठो वामदेवश्च जाबालीरथ काश्यपः ॥३॥
मार्कण्डेयस्तु दीर्घायुर्ऋषिः कात्यायनस्तथा ।
एतेद्विजाऽ प्रयान्त्वग्रे स्यन्दनं योजयस्व मे ॥४॥

अर्थ—और चतुरङ्गबल=हाथी, घोड़े, रथ तथा पैदल इन चार अंगों वाली सेना, वसिष्ठ, वामदेव, जाबालि, काश्यप, दीर्घायु मार्कण्डेय और ऋषि कात्यायन यह सब ब्राह्मण आगे चलें और मेरा रथ जोड़कर तैयार करो ॥

वचनाच्च नरेन्द्रस्य सेना च चतुरङ्गिणी ।
राजानमृषिभिः सार्धं व्रजन्तं पृष्ठतोऽन्वयात् ॥५॥

अर्थ—राजा की आज्ञा पाकर वह चार अङ्गों वाली सेना ऋषियों के साथ चलते हुए राजा के पीछे चली ॥

गत्वा चतुरहं मार्गं विदेहानभ्युपेयिवान् ।
राजा च जनकःश्रीमान्श्रुत्वापूजामकल्पयत् ॥६॥
ततो राजानमासाद्य वृद्धं दशरथं नृपम् ।
उवाच च नरश्रेष्ठो नरश्रेष्ठं मुदान्वितम् ॥ ७ ॥

अर्थ—चार दिन मार्ग चलकर विदेहों के देश में पहुंचे, श्रीमान् राजा जनक ने दशरथ का आगमन सुनकर उनके सत्कारार्थ अगुमानी भेजे और उन्होंने वहां पूजा की सब सामग्री एकत्रित करदी, फिर राजा जनक वृद्ध राजा दशरथ को प्राप्त होकर हर्ष से भराहुआ नरश्रेष्ठ दशरथ से बोला कि :—

स्वागतं ते नरश्रेष्ठ दिष्ट्याप्राप्तोऽसि राघव ।
पुत्रयोरुभयोः प्रीतिं लप्स्यसे वीर्यनिर्जिताम् ॥८॥

अर्थ–महाराज आपका आगमन शुभ हो, हे राघव ! हमारे भाग्य से आये हो, अपने बल से जीती हुई दोनों पुत्रों की प्रीति=खुशी लाभ करोगे ॥

दिष्ट्या प्राप्तो महातेजा वसिष्ठो भगवानृषिः ।
सह सर्वैर्द्विजश्रेष्ठैर्देवैरिव शतक्रतुः ॥ ९ ॥

दिष्ट्या मे निर्जिता विघ्ना दिष्ट्या मे पूजितं कुलम् ।
राघवैः सह संबन्धाद्वीर्यश्रेष्ठैर्महाबलैः ॥ १० ॥

अर्थ–तेजस्वी भगवान् वसिष्ठ ऋषि अन्य श्रेष्ठ ब्राह्मणों के साथ हमारे भाग्य से देवों के साथ इन्द्र की भांति यहां पधारे हैं, अहो भाग्य ! आपके दर्शन से मेरे सब विघ्न शान्त और मेरा कुल पूजित होगया, जबकि बल में श्रेष्ठ महात्मा राघवों के साथ सम्बन्ध हुआ है ॥

ततः सर्वे मुनिगणाः परस्परसमागमे ।
हर्षेण महता युक्तास्तां रात्रिमवसन् सुखम् ॥११॥

अर्थ–फिर सब मुनिगण परस्पर एक दूसरे से मिलकर हर्ष युक्त हो आनन्दपूर्वक रात्रिभर निवास किया ॥

राजा च राघवौ पुत्रौ निशाम्य परिहर्षितः ।
उवास परमप्रीतो जनकेनाभिपूजितः ॥ १२ ॥

अर्थ—राजा दशरथ ने भी अपने दोनों पुत्रों से मिलकर तथा महात्मा जनक से पूजित होकर परम प्रीति से वास किया ॥

जनकोऽपि महातेजाः क्रियाधर्मेण तत्त्ववित् ।
यज्ञस्य च सुताभ्यां च कृत्वा रात्रिमुवास ह ॥१३॥

अर्थ—और तेजस्वी जनक भी यज्ञ के शेष कर्म तथा दोनों कन्याओं के लिये विवाह सम्बन्धी कर्म को विधिपूर्वक करके रात को सुख की नींद सोये ॥

भूप भरत पुनि लिये बुलाई । हय गज स्यंदन साजहु जाई ॥
चलहु वेग रघुवीर बराता । सुनत पुलक पूरे दोउ भ्राता ॥
सहित वसिष्ठ सोह नृप कैसे । सुर गुरु संग पुरन्दर जैसे ॥
करि कुलरीति वेदविधि राऊ । देखि सबहिं सब भांति बनाऊ ॥
सुमिरि राम गुरु आयुस पाई । चले महीपति शंख बजाई ॥
आवत जानि भानुकुल केतू । सरितन जनक बधायउ सेतू ॥
वसन विचित्र पांवड़े पर हीं । नृप दशरथ तापर पगु धर हीं ॥
अति सुन्दर दीन्हेउ जनवासा । जहं सब कहं सब भांति सुपासा॥

भूप विलोके जबहिं मुनि, आवत सुतन समेत ।
उठे हर्ष सुख सिन्धुमहं, चले थाहसी लेत ॥

मुनिहि दण्डवत कीन्ह महीशा । बार बार पदरज धरि शीशा ॥
कौशिक राउ लियं उर लाई । कहि अशीश पूंछी कुशलाई ॥

इति द्वाविंशः सर्गः

अथ त्रयोविंशः सर्गः

ततः प्रभाते जनकः कृतकर्मा महर्षिभिः ।
उवाच वाक्यं वाक्यज्ञः शतानन्दं पुरोहितम् ॥१॥

अर्थ—इसके अनन्तर प्रभात होने पर जनक महर्षियों के साथ सन्ध्या अग्निहोत्रादि कर्म करके वाक्य के जानने वाले शतानन्द पुरोहित से यह वाक्य बोले कि :—

भ्राता मम महातेजा वीर्यवानातिधार्मिकः ।
कुशध्वज इति ख्यातः पुरीमध्यवसच्छुभाम्॥२॥
सांकाश्यां पुण्यसंकाशां विमानामिव पुष्पकम्॥३॥

अर्थ—मेरा छोटा भाई जो बड़ा तेजस्वी, बलवान् और धार्मिक कुशध्वज नाम वाला पुष्पक विमान की भांति स्थित स्वर्ग तुल्य सांकाश्यपुरी में निवास करता है ॥

तमहं द्रष्टुमिच्छामि यज्ञगोप्ता स मे मतः ।
प्रीतिं सोऽपि महातेजा इमां भोक्ता मया सह॥४॥

अर्थ—उसको मेरी इच्छा देखने की है, वह मेरे यज्ञ का रक्षक होकर वह भी महातेजस्वी मेरे साथ इस आनन्द में सम्मिलित होगा ॥

आज्ञयातु नरेन्द्रस्य आजगाम कुशध्वजः ।
स ददर्श महात्मानं जनकं धर्मवत्सलम् ॥ ५ ॥

अर्थ—राजा की आज्ञा पाकर शतानन्द के साथ कुशध्वज जनकपुरी में आये और धर्मवत्सल महात्मा जनक को मिले ॥

सोऽभिवाद्य शतानन्दं जनकं चातिधार्मिक ।
राजार्हं परमंदिव्यमासनं सोऽध्यरोहत ॥ ६ ॥

उपविष्टावुभौ तौ तु भ्रातरावमितद्युती ।
प्रेषयामासतुर्वीरौ मन्त्रिश्रेष्ठं सुदामनम् ॥ ७ ॥

अर्थ–फिर पुरोहित शतानन्द और धर्मात्मा जनक को अभिवादन करके राजा के योग्य दिव्य आसन पर बैठगये, उन दोनों तेजस्वी भाइयों ने अपने २ आसन पर बैठकर अपने मंत्री सुदामा को कहा किः—

गच्छ मन्त्रिपते शीघ्रमिक्ष्वाकुममितप्रभम् ।
आत्मजैः सह दुर्धर्षमानयस्व समन्त्रिणम् ॥ ८ ॥
औपकार्यां स गत्वा तु रघूणां कुलवर्धनम् ।
ददर्श शिरसा चैनमभिवाद्येदमब्रवीत् ॥ ९ ॥

अर्थ–हे मंत्रिश्रेष्ठ ! तुम महातेजस्वी इक्ष्वाकुवंशीय राजा दशरथ के पास शीघ्र जाओ और आत्मिकबल वाले राजा, मन्त्रियों और उनके पुत्रों को यहां बुला लाओ तब राजा की आज्ञा पाकर सुदामा जनवासे में गया और रघुकुल को बढ़ाने वाले महाराज दशरथ से मिल सिरझुका प्रणाम कर बोलाकिः—

अयोध्याधिपते वीर वैदेहो मिथिलाधिपः ।
स त्वां द्रष्टुं व्यवसितः सोपाध्यायपुरोहितम् ॥ १० ॥

अर्थ–हे अयोध्याधिपते वीर ! मिथिलाधिपति विदेह राजा उपाध्याय और पुरोहित सहित आपके दर्शनाभिलाषी हैं ॥

मन्त्रिश्रेष्ठवचः श्रुत्वा राजासर्षिगणस्तदा ।
स बन्धुरागमत्तत्र जनको यत्र वर्तते ॥ ११ ॥

अर्थ-श्रेष्ठ मन्त्रि के वचन सुनकर राजा ऋषिगण और बान्धवों सहित वहां गये जहां महाराजा जनक थे ॥

राजा च मन्त्रिसहितः सोपाध्यायः स बान्धवः ।
वाक्यं वाक्यविदां श्रेष्ठो वैदेहमिदमब्रवीत् ॥ १२ ॥
विदितं ते महाराज इक्ष्वाकुकुलदैवतम् ।
वक्ता सर्वेषु कृत्येषु वसिष्ठो भगवानृषिः ॥ १३ ॥

अर्थ-वाक्य के जानने वालों में श्रेष्ठ राजा दशरथ मन्त्री, पुरोहित और बान्धवों सहित राजा जनक से बोले कि हे महाराज ! आपको विदित हो कि यह इक्ष्वाकु कुल के देवता=गुरु भगवान् वसिष्ठ ऋषि सम्पूर्ण कार्य्यों में वक्ता हैं ॥

एष वक्ष्यति धर्मात्मा वसिष्ठो मे यथाक्रमम् ।
तूष्णींभूते दशरथे वसिष्ठो भगवानृषिः ॥ १४ ॥
उवाच वाक्यं वाक्यज्ञो वैदेहं सपुरोधसम् ।
मनुः प्रजापतिः पूर्वमिक्ष्वाकुश्च मनोः सुतः ॥१५॥

अर्थ-यह धर्मात्मा वसिष्ठ मेरे वंश का वर्णन यथाक्रम करेंगे, महाराज दशरथ के चुप होने पर वाक्य के ज्ञाता भगवान् वसिष्ठ ऋषि पुरोहित सहित राजा जनक से बोले कि प्रथम मनु प्रजापति हुए और उनका पुत्र इक्ष्वाकु हुआ ॥

तमिक्ष्वाकुमयोध्यायां राजानं विद्धिपूर्वकम् ।
इक्ष्वाकोस्तुः सुतः श्रीमान् कुक्षिरित्येव विश्रुतः॥१६॥
कुक्षेरथात्मजः श्रीमान्विकुक्षिरुदपद्यत ।

विकुक्षेस्तु महातेजा बाणः पुत्रः प्रतापवान्॥१७॥

अर्थ—इक्ष्वाकु अयोध्या में सब से पहला राजा हुआ, इक्ष्वाकु का पुत्र श्रीमान् कुक्षि, कुक्षि का पुत्र श्रीमान् विकुक्षि, विकुक्षि का पुत्र महातेजस्वी, प्रतापी बाण हुआ ॥

बाणस्य तु महातेजाः अनरण्यः प्रतापवान् ।
अनरण्यात् पृथुर्जज्ञे त्रिशङ्कुस्तु पृथोरपि ॥ १८ ॥
त्रिशङ्कोरभवत्पुत्रो धुन्धुमारो महायशाः ।
धुन्धुमारान्महातेजा युवनाश्वो महारथः ॥ १९ ॥
युवनाश्वसुतश्चासीन्मान्धाता पृथिवीपतिः ।
मान्धातुस्तु सुतः श्रीमान् सुसन्धिरुदपद्यत ॥२०॥

अर्थ—बाण का पुत्र तेजस्वी प्रतापी अनरण्य, अनरण्य का पुत्र पृथु,पृथु का पुत्र त्रिशंकु हुआ, त्रिशंकु का पुत्र महायश धुन्धुमार,धुन्धुमार का पुत्र महारथ युवनाश्व,युवनाश्व का पुत्र राजा मानधाता और मानधाता का पुत्र श्रीमान् सुसन्धि हुआ ॥

सुसन्धेरपि पुत्रौ द्वौ ध्रुवसन्धिः प्रसेनजित् ।
यशस्वी ध्रुवसन्धेस्तु भरतो नाम नामतः ॥२१॥
भरतात्तु महातेजा असितो नाम जायत ।
अस्यैते प्रतिराजान उदपद्यन्त शत्रवः ॥ २२ ॥

अर्थ—सुसन्धि के दो पुत्र ध्रुवसन्धि और प्रसेनजित् हुए, ध्रुवसन्धि का यशस्वी पुत्र भरत हुआ, भरत से महातेजस्वी असित हुआ, जिसके प्रतिपक्षी=सामना करने वाले यह शत्रु उत्पन्न हुएः—

हैहयास्तालजङ्घाश्च शूराश्च शशबिन्दवः ।
तांश्च स प्रतियुध्यन्वै युद्धे राजा प्रवासितः ॥२३॥
हिमवन्तमुपागम्य भार्याभ्यां सहितस्तदा ।
असितोऽल्पबलो राजा कालधर्ममुपेयिवान्॥२४॥

अर्थ—हैहय, तालजंघ और शूरवीर शशविन्दु, इनके साथ युद्ध करता हुआ राजा राज्य से पृथक् कियागया, और दोनों पत्नियों सहित हिमालय में आकर अल्प बलवाला राजा असित मृत्यु को प्राप्त होगया ॥

द्वे चास्य भार्ये गर्भिण्यौ बभूवतुरिति श्रुतिः ।
एका गर्भविनाशार्थं सपत्न्यै सगरं ददौ ॥ २५ ॥
ततः शैलवरे रम्ये बभूवाभिरतो मुनिः ।
भार्गवश्च्यवनो नाम हिमवन्तमुपाश्रितः ॥ २६ ॥

अर्थ—उस समय राजा की दोनों पत्नियें गर्भवती थीं, उनमें से एक ने गर्भनाशार्थ दूसरी सौतिन को विष वाला भोजन दिया, वहां उस रमणीय उत्तम पर्वत पर भृगुवंशी च्यवन नामक मुनि निवास करते थे ॥

तत्र चैका महाभागा भार्गवं देववर्चसम् ।
तमृषिं साभ्युपागम्य कालिन्दी चाभ्यवादयत्॥२७॥
स तामभ्यवदद्विप्रः पुत्रेप्सुं पुत्रजन्मनि ।
तव कुक्षौ महाभागे सुपुत्रः सु महाबलः ॥ २८ ॥

अर्थ—वह रानी कालिन्दी उस देवतुल्य तेजस्वी भृगुवंशी

ऋषि के निकट आई और आनकर उनकी पूजा की, तब उस ब्राह्मण ने पुत्र की कामना वाली उस रानी को आशीर्वाद दिया कि हे महाभागे ! तेरी कुक्षि से बड़ा पराक्रमी तेजस्वी सुपुत्र शीघ्र ही उत्पन्न होगा ॥

च्यवनं च नमस्कृत्य राजपुत्री पतिव्रता ।
पत्याविरहिता तस्मात्पुत्रं देवी व्यजायत ॥ २९ ॥
सपत्न्या तु गरस्तस्य दत्तो गर्भ जिघांसया ।
सहतेन गरेणैव संजातः सगरोऽभवत् ॥ ३० ॥

अर्थ—पति से रहित वह पतिव्रता राजपुत्री च्यवन ऋषि को नमस्कार करके चली आई और उनके आशीर्वाद से उसके पुत्र उत्पन्न हुआ, क्योंकि उसकी सौतिन ने उसके गर्भनाशार्थ विष दिया था इसलिये उस विष के साथ उत्पन्न होने के कारण उस का नाम सगर रखा गया, गर नाम विष का है, विष के साथ उत्पन्न होने वाले का नाम "सगर" हुआ ॥

सगरस्यासमञ्जस्तु असमञ्जादथांशुमान् ।
दिलीपोंऽशुमतः पुत्रो दिलीपस्य भगीरथः॥३१॥
भगीरथात्ककुत्स्थश्च ककुत्स्थाच्च रघुस्तथा ।
रघोस्तु पुत्रस्तेजस्वी प्रवृद्धः पुरुषादकः ॥ ३२ ॥

अर्थ—सगर का पुत्र असमञ्ज, असमञ्ज से अंशुमान, अंशुमान का पुत्र दिलीप और दिलीप का पुत्र भगीरथ हुआ, भगीरथ से ककुत्स्थ, ककुत्स्थ से रघु और रघु से तेजस्वी प्रवृद्ध उत्पन्न हुआ :—

कल्माषपादोऽप्यभवत्तस्माज्जातस्तु शङ्खणः ।
सुदर्शनः शङ्खणस्य अग्निवर्णः सुदर्शनात् ॥३३॥
शीघ्रगस्त्वग्निवर्णस्य शीघ्रगस्य मरुः सुतः ।
मरोः प्रशुश्रुकस्त्वासीदम्बरीषः प्रशुश्रुकात् ॥३४॥

अर्थ—जो पुरुषादक और कल्माषपाद भी कहलाया, उसका पुत्र शंखन, शंखन का सुदर्शन और सुदर्शन का पुत्र अग्निवर्ण हुआ, अग्निवर्ण का शीघ्रग, शीघ्रग का मरु, मरु का प्रशुश्रुक और प्रशुश्रुक के अम्बरीष नामा पुत्र उत्पन्न हुआ ॥

अम्बरीषस्यपुत्रोऽभून्नहुषश्च महीपतिः ।
नहुषस्य ययातिस्तु नाभागस्तुययातिजः ॥३५॥
नाभागस्य बभूवाज अजाद्दशरथोऽभवत् ।
अस्माद्दशरथाज्जातौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥ ३६ ॥
रामलक्ष्मणयोरर्थे त्वत्सुते वरये नृप ।
सदृशाभ्यां नरश्रेष्ठ सदृशे दातुमर्हसि ॥ ३७ ॥

अर्थ—अम्बरीष का पुत्र राजा नहुष, नहुष का ययाति और ययाति के नाभाग नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई, नाभाग के अज, अज का पुत्र दशरथ और इस दशरथ से यह राम लक्ष्मण दोनों भाई उत्पन्न हुए हैं, हे राजन! इन राम लक्ष्मण के अर्थ आपकी दोनों कन्यायें वरता हूं, हे नरश्रेष्ठ! इनके रूप और अन्य गुणों में सदृश जान आप अपनी कन्यायें इन्हें दीजिये ॥

इति त्रयोविंशः सर्गः

अथ चतुर्विंशः सर्गः

सं०–अब जनक अपनी वंशावली कथन करते हैं :—

एवं ब्रुवाणं जनकः प्रत्युवाच कृताञ्जलिः ।
श्रोतुमर्हसि भद्रं ते कुलं नः परिकीर्तितम् ॥ १ ॥
प्रदाने हि मुनिश्रेष्ठ कुलंनिरवशेषतः ।
वक्तव्यं कुलजातेन तन्निबोध महामते ॥ २ ॥

अर्थ–महर्षि वासिष्ठ के उक्त प्रकार कथन करने पर राजा जनक हाथ जोड़कर बोले कि मैं भी अपने कुल की वंशावली कथन करता हूं आप सुने, क्योंकि कुलीनों को उचित है कि कन्यादान समय अपने कुल की सम्पूर्ण परम्परा कहें, सो हे महा-मुने ! मैं कहता हूं आप भले प्रकार जानें ॥

राजाभूत्त्रिषु लोकेषु विश्रुतः स्वेनकर्मणा ।
निमिः परमधर्मात्मा सर्वसत्त्ववतांवरः ॥ ३ ॥
तस्य पुत्रो मिथिर्नाम मिथिला येन निर्मिता ।
प्रथमो जनको नाम जनकादप्युदावसुः ॥ ४ ॥

अर्थ–अपने श्रेष्ठ कर्मों से तीनों लोकों में विख्यात, परम धार्मिक, तेजस्वी और महाप्रतापी निमि राजा हुए, उनका पुत्र मिथि हुआ जिसने मिथिला की नींव डाली, वही प्रथम जनक हुआ है उसी के नाम से हमारे वंशवाले जनक कहलाते हैं और जनक का पुत्र उदावसु हुआ ॥

उदावसोस्तु धर्मात्मा जातो वै नन्दिवर्धनः ।
नन्दिवर्धनसुतः शूरः सुकेतुर्नाम नामतः ॥ ५ ॥
सुकेतोरपि धर्मात्मा देवरातो महाबलः ।
देवरातस्य राजर्षेर्बृहद्रथ इति स्मृतः ॥ ६ ॥

अर्थ—उदावसु का पुत्र धर्मात्मा नन्दिवर्धन, नन्दिवर्धन का पुत्र शूरवीर सुकेतु और सुकेतु का पुत्र धर्मात्मा देवरात हुए, जिनके समय का यह धनुष है और राजऋषि देवरात का पुत्र वृहद्रथ हुआ ॥

बृहद्रथस्य शूरोऽभून्महावीरः प्रतापवान् ।
महावीरस्य धृतिमान्सुधृतिः सत्यविक्रमः ॥ ७ ॥
सुधृतेरपि धर्मात्मा धृष्टकेतुः सुधार्मिकः ।
धृष्टकेतोश्च राजर्षेर्हर्यश्व इति विश्रुतः ॥ ८ ॥

अर्थ—वृहद्रथ का प्रतापी शूरवीर पुत्र महावीर हुआ, महावीर का बड़े धैर्य्य और सच्चे पराक्रम वाला सुधृति, सुधृति का पुत्र धर्मात्मा धृष्टकेतु और धृष्टकेतु का पुत्र राजऋषि हर्यश्व हुआ ॥

हर्यश्वस्य मरुः पुत्रो मरोः पुत्रः प्रतीन्धकः ।
प्रतीन्धकस्य धर्मात्मा राजा कीर्त्तिरथःसुतः ॥ ९ ॥
पुत्रः कीर्त्तिरथस्यापि देवमीढ इति स्मृतः ।
देवमीढस्य विबुधो विबुधस्य महीध्रकः ॥ १० ॥

अर्थ—हर्यश्व का पुत्र मरु, मरु का प्रतीन्धक, प्रतीन्धकका पुत्र

धर्मात्मा राजा कीर्तिरथ,कीर्तिरथ का पुत्र देवमीढ, देवमीढ का विबुध और विबुध का पुत्र महीध्रक हुआ ॥

महीध्रकसुतो राजा कीर्तिरातो महाबलः ।
कीर्तिरातस्य राजर्षेर्महारोमा व्यजायत ॥ ११ ॥
महारोम्णस्तु धर्मात्मा स्वर्णरोमा व्यजायत ।
स्वर्णरोम्णस्तु राजर्षेर्ह्रस्वरोमा व्यजायत ॥ १२ ॥

अर्थ—महीध्रक का पुत्र महाबली कीर्तिरात,राजऋषि कीर्तिरात का महारोमा,महारोमा का धर्मात्मा पुत्र स्वर्णरोमा और स्वर्णरोमा ऋषि का पुत्र ह्रस्वरोमा हुआ ॥

तस्य पुत्रद्वयं राज्ञो धर्मज्ञस्य महात्मनः ।
ज्येष्ठोऽहमनुजो भ्राता मम वीरः कुशध्वजः ॥१३॥
मां तु ज्येष्ठं पिता राज्ये सोऽभिषिच्य पिता मम ।
कुशध्वजं समावेश्य भारं मयि वनं गतः ॥ १४ ॥

वृद्धे पितरि स्वर्याते धर्मेण धुरमावहम् ।
भ्रातरं देवसंकाशं स्नेहात्पश्यन् कुशध्वजम् ॥१५॥

अर्थ—धर्मज्ञ, महात्मा ह्रस्वरोमा के दो पुत्र उत्पन्न हुए जिनमें से बड़ा मैं हूं और मेरा छोटा भाई यह वीर कुशध्वज है, मुझ बड़े को पिता राज्य देकर और कुशध्वज को मुझे सौंप बन को चले गये, वृद्ध पिता का स्वर्गवास होने पर मैंने धर्मपूर्वक राज्यरूप धुरा को उठाया और देवतुल्य भाई कुशध्वज को स्नेह से देखता रहा ॥

कस्यचित्त्वथ कालस्य सांकाश्यादागतः पुरात् ।
सुधन्वा वीर्य्यवान् राजा मिथिलामवरोधकः ॥१६॥
स च मे प्रेषयामास शैवंधनुरनुत्तमम् ।
सीता कन्या च पद्माक्षी मह्यं वै दीयतामिति॥१७॥

अर्थ—कुछ काल व्यतीत होने पर वीर्य्यवान् राजा सुधन्वा ने सांकाश्यपुर से आकर मिथिला को घेर लिया और अपने दूतों को मेरे पास भेजा कि अत्युत्तम शैवधनुष और पद्माक्षी=पद्म के तुल्य नेत्रो वाली अपनी कन्या सीता मुझको दें ॥

तस्याप्रदानाद्ब्रह्मर्षे युद्धमासीन्मया सह ।
स हतोऽभिमुखो राजासुधन्वा तु मयारणे ॥ १८ ॥
निहत्य तं मुनिश्रेष्ठ सुधन्वानं नराधिपम् ।
सांकाश्ये भ्रातरं शूरमभ्याषिञ्चं कुशध्वजम् ॥ १९ ॥

अर्थ—हे ब्रह्मऋषे ! उन दोनों के न देने से मेरे साथ युद्ध हुआ और मेरे सन्मुख रण में लड़ता हुआ राजा सुधन्वा मुझसे मारा गया, फिर सुधन्वा को मारकर सांकाश्यपुरी में अपने भाई सूरमा कुशध्वज को राजतिलक दिया ॥

कनीयानेष मे भ्राता अहं ज्येष्ठो महामुने ।
ददामि परमप्रीतो वध्वौ ते मुनिपुंगव ॥२०॥
सीतां रामाय भद्रं ते ऊर्मिलां लक्ष्मणाय च ।
वीर्यशुल्कां मम सुतां सीतां सुरसुतोपमाम् ॥१२॥

अर्थ—हे महामुने ! यह कुशध्वज मेरा छोटा भाई और मैं

बड़ा हूं, हे मुनिश्रेष्ठ ! मैं परम प्रसन्न होकर आपको दो वधू देता हूं, आपका कल्याण हो, सीता का विवाह राम के साथ हो और लक्ष्मण ऊर्मिला को विवाहें, मेरी पुत्री सीता जिसका मूल्य बल और जो देवकन्या के तुल्य है ॥

द्वितीयामूर्मिलां चैव त्रिर्वदामि न संशयः ।
ददामि परमप्रीतो वध्वौ ते मुनिपुंगव ॥ २२ ॥

अर्थ—दूसरी ऊर्मिला परम पसन्न होकर देता हूं और दृढ़ता के लिये तीन वार कहता हूं इसमें संशय नहीं ॥

राम लक्ष्मणयो राजन् गोदानं कारयस्व ह ।
पितृकार्यं च भद्रं ते ततो वैवाहिकं कुरु ॥२३ ॥

अर्थ—हे राजन् ! प्रथम राम लक्ष्मण का गोदान से समावर्तन संस्कार और पितृकार्य्य कीजिये तदनन्तर विवाह सम्बन्धी कृत्य करें ॥

मघा ह्यद्य महाबाहो तृतीये दिवसे प्रभो ।
फाल्गुन्यामुत्तरे राजंस्तस्मिन् वैवाहिकं कुरु ॥२४॥
रामलक्ष्मणयोरर्थे दानं कार्यं सुखोदयम् ॥ २५ ॥

अर्थ—हे महाबाहो ! आज मघा नक्षत्र है आज से तीसरे दिन उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में विवाह कीजिये और हे राजन् ! राम लक्ष्मण से दान कराइये जोकि कल्याण का हेतु है ॥

इति चतुर्विंशः सर्गः

अथ पंचविंशः सर्गः

तमुक्तवन्तं वैदेहं विश्वामित्रो महामुनिः ।
उवाच वचनं वीरं वसिष्ठसहितो नृपम् ॥ १ ॥

अर्थ—राजा जनक के उक्त प्रकार कथन करने पर वसिष्ठ सहित महामुनि विश्वामित्र उस वीर राजा से बोलि कि :—

अचिन्त्यान्यप्रमेयाणि कुलानि नरपुंगव ।
इक्ष्वाकूणां विदेहानां नैषां तुल्योऽस्तिकश्चन ॥२॥
सदृशो धर्मसम्बन्धः सदृशी रूपसंपदा ।
रामलक्ष्मणयो राजन् सीता चोर्मिलया सह ॥३॥

अर्थ—हे नरश्रेष्ठ ! इक्ष्वाकुओं और विदेहों के कुल अचिन्त्य तथा अप्रमेय हैं, इनके तुल्य कोई नहीं, हे राजन् ! सीता और ऊर्मिला के साथ राम लक्ष्मण का धर्मसम्बन्ध समान और रूप की मम्पदा भी सदृश है ॥

वक्तव्यं च नरश्रेष्ठ श्रूयतां वचनं मम ।
भ्राता यवीयान्धर्मज्ञ एष राजा कुशध्वजः ॥४॥
अस्य धर्मात्मनो राजन् रूपेणाप्रतिमं भुवि ।
सुताद्वयं नरश्रेष्ठ पत्न्यर्थं वरयामहे ॥ ५ ॥

अर्थ—हे नरश्रेष्ठ ! मुझे कुछ आपसे और भी वक्तव्य है आप मेरा वचन सुनें, आपका जो यह छोटा भाई धर्मज्ञ राजा कुशध्वज है इस धर्मात्मा की दोनों कन्यायें जो इस भूमि पर रूप में अतुल हैं उन दोनों को हम वधू बनाने के लिये मांगते हैं ॥

भरतस्य कुमारस्य शत्रुघ्नस्य च धीमतः ।
वरयेते सुतेराजंस्तयोरर्थे महात्मनोः ॥ ६ ॥
पुत्रादशरथस्येमे रूपयौवन शालिनः ।
लोकपाल समाः सर्वे देवतुल्य पराक्रमाः ॥७॥

अर्थ–एक को कुमार भरत की और दूसरी को बुद्धिमान् शत्रुघ्न की पत्नी बनावेंगे, क्योंकि यह दोनों राजकुमार भी महात्मा हैं और यह दोनों कन्यायें भी सब प्रकार से उनके सदृश हैं, राजा दशरथ के पुत्र रूप यौवन सम्पन्न, सब लोकपालों के तुल्य और देवतुल्य पराक्रम वाले हैं ॥

उभयोरपि राजेन्द्र सम्बन्धेनानुबध्यताम् ।
इक्ष्वाकुकुलमव्यग्रं भवतः पुण्यकर्मणः ॥ ८ ॥
विश्वामित्र वचः श्रुत्वा वसिष्ठस्य मते तदा ।
जनकः प्राञ्जलिर्वाक्यमुवाच मुनिपुंगवौ ॥ ९ ॥

अर्थ–हे राजेन्द्र ! आप दोनों भाइयों के सम्बन्ध से इक्ष्वाकुओं का कुल और आप जो पुण्यकर्मा हैं उनका कुल पूर्ण सम्बन्ध वाला होगा, वसिष्ठ सहित विश्वामित्र के वचन सुनकर राजा जनक दोनों मुनिवरों से हाथ जोड़कर बोले कि :—

कुलंधन्यमिदं मन्ये येषां तौ मुनिपुंगवौ ।
सदृशं कुलसम्बन्धं यदाज्ञापयतः स्वयम् ॥ १० ॥
एवं भवतु भद्रं वः कुशध्वज सुते इमे ।
पत्न्यौ भजेतां सहितौ शत्रुघ्न भरतावुभौ ॥ ११ ॥

अर्थ—हे मुनिवरो ! मैं इस कुल को धन्य समझता हूं जिनके कुल में सम्बन्ध करने को आप स्वयं सदृश कथन करते हैं, वास्तव में आप ऐसे ही हैं, आपका कल्याण हो और कुशध्वज की यह दोनों कन्यायें भरत और शत्रुघ्न की पत्नी बनें ॥

एकान्हा राजपुत्रीणां चतसृणां महामुने ।
पाणीन्गृह्णन्तु चत्वारो राजपुत्रा महाबलाः ॥१२॥

अर्थ—और हे महामुने ! एक ही दिन महाबली चारो राजपुत्र चारो राजपुत्रियों के हाथ पकड़ें ॥

तथा ब्रुवति वैदेहे जनके रघुनन्दनः ।
राजा दशरथो हृष्टः प्रत्युवाच महीपतिम् ॥ १३ ॥
युवामसंख्येय गुणौ भ्रातरौ मिथिलेश्वरौ ।
ऋषयो राजसङ्घाश्च भवद्भ्यामभिपूजिताः ॥१४॥

अर्थ—वैदेह जनक के उक्त प्रकार कथन करने पर रघु की सन्तान राजा दशरथ प्रसन्नमुख राजा जनक से बोले कि आप दोनों भाई मिथिला के स्वामी असंख्यात गुणों वाले हैं, क्योंकि आपने ऋषि और राजसमूह पूजे हैं ॥

स्वस्ति प्राप्नुहि भद्रं ते गमिष्यामि स्वमालयम् ।
श्राद्धकर्माणि सर्वाणि विधास्यामीति चाब्रवीत् ॥१५॥

अर्थ—हे भद्र ! आपका कल्याण हो, मैं अपने स्थान पर जाता हूं और वहां सब श्राद्धकर्म*करूंगा ॥

---

* यहां श्राद्धकर्म से तात्पर्य्य ब्रह्मभोज तथा दानादि का है जो विवाहोत्सव के आरम्भ में कियाजाता है ॥

तमापृष्ट्वा नरपतिं राजा दशरथस्तदा ।
मुनीन्द्रौ तौ पुरस्कृत्य जगामाशु महायशाः ॥१६॥
स गत्वा निलयं राजा श्राद्धं कृत्वा विधानतः ।
प्रभाते काल्यमुत्थाय चक्रे गोदानमुत्तमम् ॥१७॥

अर्थ–इसके अनन्तर राजा से आज्ञा लेकर महायशस्वी राजा दशरथ दोनों मुनियों को आगे कर चले गये और घर जाकर विधिवत् श्राद्धकर्म कर रात को सुख की नींद सोये, प्रभात समय उठकर राजा ने सब पुत्रों का समावर्तन संस्कार किया ॥

इति पंचविंशः सर्गः

अथ षड्विंशः सर्गः

यस्मिंस्तु दिवसे राजा चक्रे गोदानमुत्तमम् ।
तस्मिंस्तु दिवसे शूरो युधाजित्समुपेयिवान् ॥१॥
पुत्रः केकयराजस्य साक्षाद् भरतमातुलः ।
दृष्ट्वा पृष्ट्वा च कुशलं राजानमिदमब्रवीत् ॥ २ ॥

अर्थ–जिस दिन राजा ने गोदानादि से अपने पुत्रों का उत्तम समावर्तन किया उसी दिन केकय राजा का पुत्र भरत का साक्षात् मामा सूरमा युधाजित् वहां आया और सब कुशल पूछकर राजा से बोला कि :—

केकयाधिपतीराजा स्नेहात्कुशलमब्रवीत् ।
येषां कुशलकामोऽसि तेषां संप्रत्यनामयम् ॥ ३ ॥
स्वस्रीयं मम राजेन्द्र द्रष्टुकामो महीपतिः ।
तदर्थमुपयातोऽहमयोध्यां रघुनन्दनः ॥ ४ ॥

अर्थ—केकय देश के अधिपति राजा ने परमप्रीति से आपके प्रति कुशल कहा है और जिनका आप कुशल चाहते हैं उनके यहां इस समय आनन्द मंगल है. हे राजेन्द्र ! महाराज केकय मेरे भानजे भरत को देखना चाहते हैं. इसलिये हे रघुनन्दन ! मैं पहले अयोध्या में आया था ॥

श्रुत्वा त्वहमयोध्यायां विवाहार्थं तवात्मजान् ।
मिथिलामुपयातांस्तु त्वया सह महीपते ॥ ५ ॥
त्वरयाभ्युपयातोऽहं द्रष्टुकामः स्वसुःसुतम् ।
अथ राजा दशरथः प्रियातिथिमुपस्थितम् ॥ ६ ॥

अर्थ—वहां यह सुनकर कि आपके पुत्र आप सहित विवाहार्थ मिथिला में गये हैं, फिर मैं अपने भानजे भरत के देखने की कामना से तुरन्त यहां आया हूं. तब राजा दशरथ ने अपनी प्यारी के भाई का अतिथि सत्कार किया ॥

दृष्ट्वा परमसत्कारैः पूजनार्हमपूजयत् ।
ततस्तामुषितो रात्रिं सह पुत्रैर्महात्मभिः ॥ ७ ॥
प्रभाते पुनरुत्थाय कृत्वा कर्माणि कर्मवित् ।
ऋषींस्तदा पुरस्कृत्य यज्ञवाटमुपागमत् ॥ ८ ॥

अर्थ—राजा ने पूजन योग्य पुरुषों का परम प्रीति से सत्कार कर उस रात्रि महात्मा दशरथ ने पुत्रों सहित आनन्दपूर्वक शयन किया, प्रभात समय उठकर अपने कर्मों से निवृत्त हो ऋषियों को आगे कर यज्ञमण्डप में आये ॥

युक्ते मुहूर्ते विजये सर्वाभरणभूषितैः ।
भ्रातृभिः सहितो रामः कृतकौतुक मङ्गलः ॥ ९ ॥
पितुः समीपमाश्रित्य तस्थौ भ्रातृप्रावृतः ।
वसिष्ठो भगवानेत्य वैदेहमिदमब्रवीत् ॥ १० ॥

अर्थ—और राम उचित विजयमुहूर्त में सब भूषणों से अलंकृत भ्राताओं सहित कौतुकमंगल=मंगलाचार करके पिता के समीप आखड़े हुए तब महर्षि वसिष्ठ राजा जनक के निकट जाकर बोले कि :—

राजा दशरथो राजन् कृतकौतुक मङ्गलैः ।
पुत्रैर्नरवर श्रेष्ठो दातारमभिकाङ्क्षते ॥ ११ ॥
इत्युक्तः परमोदारो वसिष्ठेन महात्मना ।
प्रत्युवाच महातेजा वाक्यं परमधर्मवित् ॥ १२ ॥

अर्थ—हे राजन् ! राजा दशरथ सब मंगलाचार करके पुत्रों सहित यज्ञस्थान में प्रवेश के लिये द्वारपर खड़े हुए आपकी आज्ञा चाहते हैं, महात्मा वसिष्ठ ने परम उदार राजा जनक से जब इस प्रकार कहा तो वह धर्म का ज्ञाता महातेजस्वी बोला कि :—

कः स्थितः प्रतिहारो मे कस्याज्ञां संप्रतीक्षते ।
स्वगृहे को विचारोऽस्ति यथा राज्यमिदं तव॥१३॥

कृतकौतुकसर्वस्वा वेदिमूलमुपागताः ।
मम कन्या मुनिश्रेष्ठ दीप्तावह्नेरिवार्चिषः ॥१४॥

अर्थ—गृहप्रवेशक द्वार पर मेरा कौन द्वारपाल खड़ा है जिसकी आज्ञा की महाराज प्रतीक्षा करते हैं,अपने घर में आने का विचार क्या करना, जैसा आपका वह राज्य है वैसा ही यह भी आपका है, हे मुनिवर ! विवाह से प्रथम का मंगलकर्म करके अग्नि की भांति देदीप्यमान् मेरी कन्यायें वेदि के समीप उपस्थित हैं ॥

सज्जोऽहंत्वत्प्रतीक्षोऽस्मि वेद्यामस्यां प्रतिष्ठितः ।
अविघ्नं क्रियतां सर्वं किमर्थं हि विलंब्यते ॥१५॥
तद्वाक्यं जनकेनोक्तं श्रुत्वा दशरथस्तथा ।
प्रवेशयामास सुतान् सर्वानृषिगणानपि ॥ १६ ॥

अर्थ—और मैं सब मंगल कर्मों से निवृत्त हो इस वेदि पर खड़ा हुआ आपही की प्रतीक्षा कररहा हूं, सो महाराज अब विलम्ब न करके कार्य्य करें, द्वार पर ठहरे हुए क्यों विलम्ब कररहे हैं, राजा जनक के उक्त वाक्य सुनकर महाराज दशरथ ने अपने पुत्रों और सब ऋषियों को यज्ञमण्डप में प्रवेश कराया ॥

ततो राजा विदेहानां वसिष्ठमिदमब्रवीत् ।
कारयस्व ऋषे सर्वामृषिभिः सह धार्मिक ॥१७॥
तथेत्युक्त्वा तु जनकं वसिष्ठो भगवानृषिः ।
विश्वामित्रं पुरस्कृत्य शतानन्दं च धार्मिकम् ॥१८॥

अर्थ—इसके अनन्तर विदेहों का राजा जनक महात्मा वसिष्ठ से बोला कि हे धार्मिक ऋषे ! आप इन सब ऋषियों के सहित

विवाह कृत्य करावें,तब तपस्वी भगवान् वसिष्ठ जनक से "तथास्तु" कहकर विश्वामित्र और धार्मिक शतानन्द को आगे करके :—

प्रपामध्ये तु विधिवद्वेदिंकृत्वा महातपाः ।
अलंचकार तां वेदिं गन्ध पुष्पैः समन्ततः ॥१९॥
सुवर्णपालिकाभिश्च चित्रकुम्भैश्च सांकुरैः ।
अंकुराढ्यैः शरावैश्च धूपपात्रैः सधूपकैः ॥ २० ॥
शङ्खपात्रैः स्रुवैः स्रुग्भिः पात्रैरर्घ्यादिपूरितैः ।
लाजपूर्णैश्चपात्रीभिरक्षतैरपि संस्कृतैः ॥ २१ ॥

अर्थ—मण्डप के मध्य में विधिपूर्वक वेदि बनाकर उसके चारो ओर सुगन्धित पुष्पों से सजाया, सुनहरी रेखाओं से विभूषित किया और पुष्पों के विचित्र पेड़ों को शरावे आदि पात्रों में रखकर सजाया तथा धूपयुक्त धूप के पात्र, शंखाकार पात्र, स्रुवा, स्रुचादि पात्रों को यथास्थान रखा और अर्घ्यादि जल के पूर्णपात्र भरकर और लाजा=खीलों के पात्र तथा संस्कृत किये हुए चावलों को यथास्थान रखकर वेदि को सुदर्शन बनाया ॥

दर्भैः समैः समास्तीर्य विधिवन्मंत्रपूर्वकम् ।
अग्निमाधाय वेद्यां तु विधिमंत्र पुरस्कृतम् ॥ २२ ॥

अर्थ—समान कुशाओं के आसनों को विधिपूर्वक यथायोग्य बिछाकर शास्त्रोक्त विधिद्वारा वेदमंत्र पढ़ तेजस्वी महात्मा वसिष्ठ ने वेदि में अग्न्याधान कराया ॥

जुहावाग्नौ महातेजा वसिष्ठो भगवानृषिः।
ततः सीतां समानीय सर्वाभरणभूषिताम् ॥ २३ ॥
समक्षमग्नेः संस्थाप्य राघवाभिमुखे तदा ।
अब्रवीज्जनको राजा कौसल्यानन्द-वर्द्धनम् ॥२४॥

अर्थ—इसके अनन्तर सम्पूर्ण भूषणों से भूषित सीता को लाकर अग्नि के समक्ष राम के सन्मुख स्थापन कर राजा जनक कौसल्या के आनन्द को बढ़ाने वाले राम से बोले कि :—

इयं सीता मम सुता सहधर्मचरी तव ।
प्रतीच्छ चैनां भद्रं ते पाणिं गृह्णीष्वपाणिना ॥२५॥
पतिव्रता महाभागा छायेवानुगता सदा ।
इत्युक्त्वा प्राक्षिपद्राजा मंत्रपूतं जलं तदा ॥२६॥

अर्थ—यह सीता मेरी कन्या आपकी सहधर्मचरी=साथ धर्म कार्य्य करने वाली हो, इसको आप स्वीकार करें, आपका कल्याण हो, अपने हाथ से सीता का हाथ ग्रहण कर, यह महाभागा पतिव्रता होकर छाया की भांति सदा आपकी अनुगामिनी रहेगी, यह कहकर मन्त्र से पवित्र किया हुआ जल राजा ने छोड़दिया ॥

साधु साध्विति देवानामृषीणां वदतां तदा ।
देवदुन्दुभि निर्घोषः पुष्पवर्षो महानभूत् ॥ २७ ॥
एवं दत्त्वा सुतां सीतां मन्त्रोदक पुरस्कृताम् ।
अब्रवीज्जनको राजा हर्षेणाभिपरिप्लुतः ॥ २८ ॥

अर्थ—देवता और ऋषियों ने साधु २ कह आशीर्वाद दिया, देवताओं की दुन्दुभियें=वाद्यविशेष बजाये गये और फूलों की बड़ी वर्षा हुई, इस प्रकार मंत्र और जल से आदर के साथ सीता का दान करके राजा जनक परमानन्दित होकर बोले कि :—

लक्ष्मणागच्छ भद्रं ते ऊर्मिलामुद्यतां मया ।
प्रतीच्छ पाणिं गृह्णीष्व मा भूत्कालस्य पर्ययः॥२९॥

अर्थ—लक्ष्मण आओ, तुम्हारा कल्याण हो, आप ऊर्मिला को वरें, इसका हाथ पकड़कर अपनी सहधर्मिणी बनावें, समय का विलम्ब नहो ॥

तमेवमुक्त्वा जनको भरतं चाभ्यभाषत ।
गृहाण पाणिं माण्डव्याः पाणिना रघुनन्दन॥३०॥

अर्थ—तदनन्तर जनक भरत से बोले कि हे रघुनन्दन ! इस माण्डवी कन्या के हाथ को अपने हाथ से ग्रहण कर ॥

शत्रुघ्नं चापि धर्मात्मा अब्रवीन्मिथिलेश्वरः ।
श्रुतकीर्तेर्महाबाहो पाणिंगृणीष्व पाणिना ॥३१॥

अर्थ—फिर महाराज जनक शत्रुघ्न से बोले कि हे महाबाहो ! आप इस श्रुतकीर्ति कन्या के हाथ को अपने हाथ से ग्रहण करें ॥

सर्वे भवन्तः सौम्याश्च सर्वे सुचरितव्रताः ।
पत्नीभिः सन्तु काकुत्स्था मा भूत्कालस्य पर्ययः॥३२॥
जनकस्य वचः श्रुत्वा पाणीन्पाणिभिरस्पृशन् ।

चत्वारस्ते चतसृणां वसिष्ठस्य मते स्थिताः॥ ३३॥

अर्थ–फिर जनक बोले कि हे ककुत्स्थवंशियो ! आप सब सौम्यस्वभाव और सब पूर्ण रीति से ब्रह्मचर्य्य को धारण किये हुए उत्तम आचरणों वाले हैं आप सब पत्नियों सहित हों, समय का विलम्ब नहो, इस प्रकार राजा जनक के वचन सुन महात्मा वसिष्ठ की आज्ञानुसार चारो भाइयों ने चारो कन्याओं के हाथों को स्पर्श कर ग्रहण किया ॥

अग्निं प्रदक्षिणं कृत्वा वेदिं राजानमेव च।
ऋषींश्चापि महात्मानः सहभार्या रघूद्वाहा ॥३४॥
यथोक्तेन ततश्चक्रुर्विवाहं विधिपूर्वकम् ।
त्रिरग्निं ते परिक्रम्य ऊहुर्भार्या महौजसः ॥३५॥

अर्थ–फिर उन महात्मा रघुवरों ने अग्नि, वेदि, राजा और ऋषियों की अपनी पत्नियों सहित प्रदक्षिणा करके तीन वार अग्नि की प्रदक्षिणा कर शास्त्रोक्त विधि से विवाह किया ॥

अथोपकार्यां जग्मुस्ते सभार्या रघुनन्दनाः ।
राजाप्यनुययौ पश्यन् सर्षिसङ्घः सबान्धवः ॥३६॥

अर्थ–इस प्रकार शास्त्रोक्त विधि द्वारा विवाह करके गाजे बाजों सहित अपनी भार्याओं को साथ ले चारो राजकुमार जनवासे को पधारे और राजा दशरथ भी अपने बान्धव तथा ऋषियों सहित पुत्रों के विवाह सम्बन्धी आनन्दोत्सव को देखते हुए जनवासे में आये ॥

इति षड्विंशः सर्गः

अथ सप्तविंशः सर्गः

अथ रात्र्यां व्यतीतायां विश्वामित्रो महामुनिः ।
आपृष्ट्वा तौ च राजानौ जगामोत्तरपर्वतम् ॥१॥
विश्वामित्रे गते राजा वैदेहं मिथिलाधिपम् ।
आपृष्ट्वैव जगामाशु राजा दशरथः पुरीम् ॥ २ ॥

अर्थ–इसके अनन्तर रात्रि व्यतीत होने पर महामुनि विश्वामित्र राजा जनक तथा दशरथ से आज्ञा लेकर उत्तर पर्वत की ओर चले गये और उनके चले जाने पर मिथिलाधिपति राजा जनक से आज्ञा लेकर राजा दशरथ अपनी पुरी अयोध्या की ओर चले ॥

राजा विदेहानां ददौ कन्याधनं बहु ।
दत्त्वा बहुविधं राजा समनुज्ञाप्य पार्थिवम् ॥३ ॥
प्रविवेश स्वनिलयं मिथिलां मिथिलेश्वरः ।
राजाप्ययोध्याधिपतिः सह पुत्रैर्महात्मभिः ॥ ४ ॥

अर्थ–तब विदेहों के राजा जनक ने बहुतसा कन्याधन=दहेज दिया अर्थात सोना, चांदी, हाथी, घोड़ा, वस्त्र तथा नौकर चाकर आदि अनेक प्रकार का धन देकर राजा दशरथ से आज्ञा ले राजा जनक अपने घर आये और अयोध्याधिपति राजा दशरथ अपने महानुभाव पुत्रों सहित और :—

ऋषीन् सर्वान् पुरस्कृत्य जगाम स बलान्वितः ।
ददर्शभीमसंकाशं जटामण्डलधारिणम् ॥ ५ ॥

भार्गवं जामदग्नेयं राजा राजविमर्दनम् ।
ज्वलन्तमिव तेजोभिर्दुर्निरीक्ष्यं पृथग्जनैः ॥ ६ ॥

अर्थ—ऋषियों को आगे करके सेना समेत जब आगे गये तो राजा ने भव्यदर्शन, जटासमूह को धारण किये हुए, राजाओं को मर्दन करने वाले जमदग्नि कुमार भृगुवंशी परशुराम को देखा जो तेज से जाज्वल्यमान=जलते हुए के समान थे जिनके सन्मुख साधारण पुरुष निगाह उठाकर नहीं देखसक्ता था ॥

स्कन्धे चासज्यपरशुंधनुर्विद्युद्गणोपमम् ।
प्रगृह्य शरमुग्रं च त्रिपुरघ्नं यथा शिवम् ॥ ७ ॥
तद्दृष्ट्वा भीमसंकाशं ज्वलन्तमिव पावकम् ।
वसिष्ठप्रमुखा विप्रा जपहोमपरायणाः ॥ ८ ॥

अर्थ—बिजुली के तुल्य चमकते हुए कुल्हाड़े तथा धनुष को कन्धे पर धरे हुए और हाथ में तीर लिये मानो त्रिपुर के मारने वाले शिव की भांति स्थित, जलती हुई अग्नि के तुल्य उस भीममूर्ति को देखकर स्वाध्याय तथा होमपरायण वसिष्ठादि ब्राह्मण और :—

संगता मुनयः सर्वे संजजल्पुरथोमिथः ।
कच्चित्पितृवधामर्षी क्षत्रं नोत्सादयिष्यति ॥९॥
पूर्वं क्षत्रवधं कृत्वा गतमन्युर्गतज्वरः ।
क्षत्रियोत्सादनं भूयो न खल्वस्य चिकीर्षितम्॥१०॥

अर्थ—अन्य सम्पूर्ण मुनि परस्पर आपस में कहने लगे कि यह पितृबध का बदला लेता हुआ फिर क्षत्रियों का नाश करना चाहता है, पहले क्षत्रियों का बध करके इसका क्रोध और सन्ताप दूर होचुका है फिर इसको क्षत्रियों का वध अभीष्ट नहीं होना चाहिये ॥

एवमुक्त्वर्घ्यमादाय भार्गवं भीमदर्शनम् ।
ऋषयो रामरामेति मधुरंवाक्यमब्रुवन् ॥ ११ ॥
प्रतिगृह्य तु तां पूजामृषिदत्तां प्रतापवान् ।
रामं दाशरथिं रामो जामदग्न्योऽभ्यभाषत ॥१२॥

अर्थ—उक्त प्रकार कथन करके अर्घ्य लेकर भृगुवंशी भीमदर्शन परशुराम को सब ऋषिजन हे राम ! हे राम ! इस प्रकार मधुर वचन बोले, तब ऋषियों से दिये हुए उस अर्घ्य को स्वीकार कर वह प्रतापी जमदग्नि का पुत्र परशुराम दशरथ के राम से बोले कि :—

राम दाशरथे राम वीर्यं ते श्रूयतेऽद्भुतम् ।
धनुषो भेदनं चैव निखिलेन मया श्रुतम् ॥१३॥
तदद्भुतमचिन्त्यं च भेदनंधनुषस्तथा ।
तच्छ्रुत्वाहमनुप्राप्तोधनुर्गृह्यापरं शुभम् ॥ १४ ॥

अर्थ—हे दशरथ के राम ! तेरा बल बड़ा अद्भुत सुना जाता है और धनुष का तोड़ना भी मैंने सब सुना है, धनुष का तोड़ना तैने बड़ा अद्भुत और अचिन्त्य काम किया है, यह सुनकर मैं एक दूसरा शुभ धनुष लेकर आया हूं ॥

तदिदं घोरसंकाशं जामदग्न्यं महद्धनुः ।
पूरयस्व शरेणैव स्वबलं दर्शयस्व च ॥ १५ ॥
तदहं ते बलं दृष्ट्वा धनुषोऽप्यस्य पूरणे ।
द्वंद्व युद्धं प्रदास्यामि वीर्यश्लाघ्यस्य राघव ॥१६॥

अर्थ–यह घोरसंकाश=भयंकर बड़ा भारी धनुष जो मेरे पिता जमदग्नि से मुझे प्राप्त हुआ है इसको तीर से पूर्ण कर तेरा बल देखकर मैं तेरे बल की प्रशंसा करता हुआ तुझको द्वंद्व युद्ध* दूंगा अर्थात् तुझको अपने सन्मुख युद्ध में लड़ने वाला समझुंगा॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा राजा दशरथस्तदा ।
विषण्णवदनो दीनः प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत् ॥१७॥
क्षत्ररोषात्प्रशान्तस्त्वं ब्राह्मणश्च महातपाः ।
बालानां मम पुत्राणामभयं दातुमर्हसि ॥१८॥

अर्थ–परशुराम के उक्त वचन सुनकर राजा दशरथ खिन्न मुख हो हाथ जोड़कर बोले कि अब तो आप क्षत्रियों पर क्रोध करने से शान्त होचुके हैं और आपतो महातपस्वी ब्राह्मण हैं मेरे इन बालक पुत्रों को अभय दीजिये ॥

भार्गवाणां कुलेजातः स्वाध्याय व्रतशालिनाम् ।
सहस्राक्षे प्रतिज्ञाय शस्त्रं प्राक्षिप्तवानसि ॥ १९ ॥
सत्वंधर्म परोभूत्वा कश्यपाय वसुंधराम् ।
दत्त्वावनमुपागम्य महेन्द्रकृत केतनः ॥ २० ॥

---

* दो का सन्मुख युद्ध, जिसमें कोई किसी को सहायता न देसके उसका नाम " द्वंद्वयुद्ध " है ॥

मम सर्वविनाशाय संप्राप्तस्त्वं महामुने ।
नचैकस्मिन् हते रामे सर्वेजीवामहेवयम् ॥२१॥

अर्थ—क्योंकि आप वेदाध्ययन रूप व्रतशाली, भार्गवों के कुल में उत्पन्न, आपने एकवार सहस्राक्ष राजा के प्रति यह प्रतिज्ञा की थी कि अब हम शस्त्र धारण न करेंगे, यह कहकर शस्त्र फेंक दिये थे फिर आप सब पृथिवी क्षत्रियों से लेकर कश्यप मुनि को दे महेन्द्र पर्वत पर तप करने के लिये जावसे, हे मुनिराज ! अब आप हमारा सर्वस्व नाश करने के लिये यहां आये हैं, एक राम के मारे जाने पर हम सब न जीवेंगे ॥

ब्रुवत्येवं दशरथे जामदग्न्यः प्रतापवान् ।
अनादृत्य तु तद्वाक्यं राममेवाभ्यभाषत ॥ २२ ॥
इदं च वैष्णवं राम धनुः परपुरंजयम् ।
ऋचीके भार्गवे प्रादाद्विष्णुः सन्यासमुत्तमम्॥२३॥

अर्थ—उक्त प्रकार दशरथ कहते रहे पर प्रतापी परशुराम ने उनके कथन की परवाह न करके रामचन्द्र ही से बोले कि हे राम ! यह वैष्णव धनुष शत्रुओं के दुर्गों को जीतने वाला विष्णु ने भृगु के पुत्र ऋचीक के पास रखा था ॥

ऋचीकस्तु महातेजाः पुत्रस्याप्रतिकर्मणः ।
पितुर्मम ददौ दिव्यं जमदग्नेर्महात्मनः ॥ २४ ॥
न्यस्तशस्त्रे पितरि मे तपोबलसमन्विते ।
अर्जुनो विदधे मृत्युं प्राकृतां बुद्धिमास्थितः॥२५॥

अर्थ–महातेजस्वी ऋचीक ने यह दिव्यधनुष अपने पुत्र मेरे पिता महात्मा जमदग्नि को दिया जिसके सन्मुख कोई खड़ा नहीं होसक्ता था जब मेरे पिता ने तप से युक्त होकर सब शस्त्र छोड़ दिये तो नीच बुद्धि अर्जुन=सहस्रबाहु ने उनको मार दिया ॥

वधमप्रतिरूपं तु पितुः श्रुत्वा सुदारुणम् ।
क्षत्रमुत्सादयं रोषाज्जातं जातमनेकशः ॥ २६ ॥
पृथिवीं चाखिलां प्राप्य कश्यपाय महात्मने ।
यज्ञस्यान्तेऽददं राम दक्षिणां पुण्यकर्मणे ॥ २७ ॥

अर्थ–पिता का अति दारुण वध सुनकर क्रोधवशात् मैंने अनेकबार क्षत्रबल को नष्ट कर अर्थात् क्षत्रियों से पृथिवी निर्बीज करके हे राम ! विश्वजित् याग की समाप्ति में पुण्यकर्मा महात्मा कश्यप को दान देकर :—

दत्त्वा महेन्द्रनिलयस्तपोबलसमन्वितः ।
श्रुत्वा तु धनुषो भेदं ततोऽहं द्रुतमागतः ॥ २८ ॥

अर्थ–मैं तप करने के लिये महेन्द्रपर्वत पर रहने लगा, अब धनुष का टूटना सुनकर शीघ्र ही वहां से आरहा हूं ॥

तदिदं वैष्णवं राम पितृपैतामहं महत् ।
क्षत्रधर्मं पुरस्कृत्य गृह्णीष्व धनुरुत्तमम् ॥ २९ ॥
योजयस्व धनुः श्रेष्ठे शरं परपुरंजयम् ।
यदि शक्तोऽसि काकुत्स्थ द्वंद्वं दास्यामि ते ततः ॥३०

अर्थ—हे राम ! यह वैष्णव धनुष जो पिता परपिता से मेरे पास आया है सो तू क्षात्रधर्म का आदर करता हुआ इसको ग्रहण करके इसमें शत्रुओं के किलों को जीतने वाला तीर जोड़, यदि तू ऐसा करने में समर्थ होगा तो मैं तुझको द्वंद्वयुद्ध दूंगा ॥

श्रुत्वा तु जामदग्न्यस्य वाक्यं दाशरथिस्तदा ।
गौरवाद्यन्त्रितकथः पितू राममथाब्रवीत् ॥ ३१ ॥

अर्थ—राजा दशरथ का पुत्र रामचन्द्र जमदग्नि के पुत्र परशुराम के उक्त वाक्य सुनकर पिता के गौरव से संकोच करता हुआ बोला कि :—

श्रुतवानस्मि यत्कर्म कृतवानसि भार्गव ।
अनुरुध्यामहे ब्रह्मन् पितुरानृण्यमास्थितः ॥ ३२ ॥
वीर्यहीनमिवाशक्तं क्षत्रधर्मेण भार्गव ।
अवजानासि मे तेजः पश्य मेऽद्यपराक्रमम् ॥३३॥

अर्थ—हे भार्गव ! अपने पिता का ऋण चुकाते हुए, या यों कहो कि पिता के घातकों से बदला लेते हुए जो आपने क्षत्रियों का वध किया है वह मैंने सब सुना और मैं इसको स्वीकार करता हूं कि बलसम्पन्न पुरुष को अवश्य बैर का बदला लेना चाहिये परन्तु हे भृगुकुलोत्पन्न ! क्षात्रधर्म से युक्त मेरे तेज को जो आप बलहीन असक्तसा मानकर मेरा अपमान कर रहे हैं यह मैं नहीं सहसक्ता, सो आज आप मेरे पराक्रम को देखें ॥

इत्युक्त्वा राघवः क्रुद्धो भार्गवस्य वरायुधम् ।
शरं च प्रतिजग्राह हस्ताल्लघुपराक्रमः ॥ ३४ ॥

आरोप्य स धनू रामः शरं सज्यं चकार ह ।
जामदग्न्यं ततो रामं रामः क्रुद्धोऽब्रवीद्वचः ॥३५॥

अर्थ—यह कहकर क्रुद्ध हो बड़े पराक्रम वाले राम ने परशुराम के हाथ से धनुष और तीर लेकर धनुष को खींच उसके चिल्ले में तीर जोड़ दिया और क्रुद्ध होकर परशुराम से बोले कि :—

ब्राह्मणोऽसीतिपूज्यो मे विश्वामित्रकृतेन च ।
तस्माच्छक्तो न ते राम मोक्तुं प्राणहरं शरम्॥३६॥

जडीकृते तदालोके रामे वरधनुर्धरे ।
निर्वीर्यो जामदग्न्योऽसौ रामो राममुदैक्षत॥३७॥

अर्थ—आप ब्राह्मण मेरे पूज्य हैं और मिश्वामित्र की भगिनी के पौत्र होने से यह तुम्हारे प्राणों को हरने वाला तीर तुम पर नहीं छोड़ता, राम उस श्रेष्ठ धनुष को धारण किये हुए खड़े हैं और लोग आश्चर्य्यजनक हो निश्चल खड़े देख रहे हैं, और जमदग्नि का पुत्र परशुराम बलहीन होकर राम की ओर ताक रहा है ॥

तेजोभिर्गतवीर्यत्वाज्जामदग्न्यो जडीकृतः ।
रामं कमलपत्राक्षंमन्दमन्मुवाच ह ॥ ३८ ॥
शरमप्रतिमं राम मोक्तुमर्हसि सुव्रत ।
शरमोक्षे गमिष्यामि महेन्द्रं पर्वतोपमम् ॥ ३९ ॥

अर्थ–रामचन्द्र के तेज से परशुराम का बल नष्ट होजाने के कारण जड़वत खड़े हुए परशुराम कमलनेत्र रामचन्द्र से नम्रतापूर्वक बोले कि हे सुव्रत राम! इस अप्रतिम तीर को आप छोड़ने योग्य हैं, तीर के छोड़ने पर मैं अपने महेन्द्रपर्वत की ओर चला जाऊंगा ॥

तथा ब्रुवति रामे तु जामदग्न्ये प्रतापवान् ।
रामो दाशरथिः श्रीमांश्चिक्षेप शरमुत्तमम् ॥ ४० ॥
रामं दाशरथिं रामो जामदग्न्यः प्रपूजितः ।
ततः प्रदक्षिणीकृत्य जगामात्मगतिं प्रभुः ॥४१॥

अर्थ–जमदग्नि के पुत्र परशुराम के उक्त प्रकार कथन करने पर श्रीमान् दशरथ के प्रतापी पुत्र राम ने उस तीर को छोड़ा, तब परशुराम ने रामचन्द्र की प्रशंसा की और उनकी प्रदक्षिणा करके अपने स्थान को चले गये ॥

परशुराम का आगमन

तेहि अवसर सुनि शिवधनु भंगा । आये भृगुकुल कमल पतंगा ॥
गौर शरीर भूति भलि भ्राता । भालविशाल त्रिपुण्ड विराजा ॥
शीश जटा शशि वदन सुहावा । रिसवश कछुक अरुण ह्वै आवा ॥
वृषभकंध उर बाहु विशाला । चारु जनेउ माल मृगछाला ॥
कटि मुनि वसन तूण दुइ बांधे । धनु शरकर कुठार कल कांधे ॥
बोले चितै परशु की ओरा । रे शठ सुनेसि स्वभाव न मोरा ॥
भुजबल भूमि भूपविन कीन्हीं । विपुलवार महिदेवन दीन्हीं ॥
सहसबाहु भुज छेदन हारा । परशु विलोकिं महीप कुमारा ॥

राम उवाच

भृगुकुल समुझि जनेउ विलोकी। जो कुछ कहो सहौं रिस रोकी ॥
सुर महिसुर हरिजन अरु गाई। हमरे कुल इन पर न शुराई ॥
सूर समर करणी करहिं, कहि न जनावहिं आपु ॥
विद्यमान रण पाइ रिपु, कायर कथहिं प्रलापु ॥
देव दनुज भूपति भट नाना। सम बल अधिक होउ बलवाना ॥
जो रण हमहिं प्रचारै कोऊ। लरैं सुखेन काल किन होऊ ॥
क्षत्रिय तनुधरि समर सकाना। कुलकंलक तेहि पामर जाना ॥
कहौं स्वभाव न कुलहिं प्रशंसी। कालहु डरैं न रण रघुवंशी ॥

परशुराम उवाच

राम रमापति करधनु लेहु। खेंचहु चाप मिटै सन्देहू ॥
देत चाप आपुहि चढ़ गयऊ। परशुराम मन विस्मय भयऊ ॥
जाना रामप्रभाव तब, पुलकि प्रफुल्लित गात।
जोरि पाणि बोले बचन, प्रेम न हृदय समात ॥
जय रघुवंश बनज वन भानू। गहन दनुज कुल दहन कृशानू ॥
जय सुर धेनु विप्रहितकारी। जय मद मोह कोह भ्रम हारी॥
कहि जय जय जय रघुकुल केतू। भृगुपति गये वनहिं तप हेतू ॥

इति सप्तविंशः सर्गः

अथ अष्टाविंशः सर्गः

अभिवाद्य ततो रामो वसिष्ठप्रमुखानृषीन् ।
पितरं विह्वलं दृष्ट्वा प्रोवाच रघुनन्दनः ॥ १॥

अर्थ—इसके अनन्तर रामचन्द्र ने वसिष्ठादि ऋषियों को अभिवादन किया और पिता को व्याकुल देखकर बोले कि:—

जामदग्न्यो गतो रामः प्रयातु चतुरङ्गिणी ।
अयोध्याभिमुखी सेना त्वया नाथेन पालिता॥२॥

अर्थ—जमदग्नि का पुत्र परशुराम चलागया है अब आप अपने जैसे स्वामी से रक्षा कीहुई चतुरङ्गिणी सेना को अयोध्या की ओर लेचले ।

गतो राम इतिश्रुत्वा हृष्टःप्रमुदितो नृपः ।
पुनर्जातं तदामेने पुत्रमात्मानमेव च ॥३॥
चोदयामास तां सेनां जगामाशु ततः पुरीम् ।
पताकाध्वजिनीं रम्यां तूर्योद्घुष्टनिनादिताम्॥४॥

अर्थ—परशुराम का जाना सुनकर राजा दशरथ हर्षित मन हुए २ बड़े प्रमुदित हुए और उन्होंने यह समझा कि पुत्रसहित हमारा नया जन्म हुआ है, फिर उस सेना को अयोध्या की ओर चलने के लिये आज्ञा देकर आप शीघ्र ही पुरी को चलेगये जो झण्डियों तथा झण्डों से शोभायमान और बाजों की ध्वनियों से गूंज रही है ॥

सिक्तराजपथां रम्यां प्रकीर्णकुसुमोत्कराम् ।
राजप्रवेशसुमुखैःपौरैर्मङ्गलवादिभिः ॥ ५ ॥
सम्पूर्णां प्राविशद्राजा जनौघैः समलंकृताम् ।
पौरैः प्रत्युद्गतो दूरं द्विजैश्च पुरवासिभिः ॥ ६ ॥
पुत्रैरनुगतः श्रीमाञ्श्रीमद्भिश्च महायशाः ।
प्रविवेश गृहं राजा हिमवत्सदृशंप्रियम् ॥ ७ ॥

अर्थ–जिसके राजमार्ग=सड़कें छिड़की हुई बड़ी रम्य और जगह २ पर फूल खिले हुए तथा कहीं फूलों की बखेर होरही है, पुरी में राजा के प्रवेश से लोगों के मुख फूल की तरह खिले हुए और मंगल बोल रहे हैं, ऐसे पुरवासियों से भरी हुई जगह २ मनुष्य गणों से शोभायमान अयोध्यापुरी में राजा दशरथ प्रविष्ट हुए, अयोध्यावासी ब्राह्मण और अन्य लोग राजा को दूरतक लेने गये, और जिसके श्रीमान् पुत्र पीछे२चलरहे हैं वह महायशस्वी राजा फिर हिमालय सदृश घर में प्रविष्ट हुआ ॥

ततः सीतां महाभागामूर्मिलां च यशस्विनीम् ।
कुशध्वजसुते चोभे जगृहुर्नृपयोषितः ॥ ८ ॥
अभिवाद्याभिवाद्यांश्च सर्वा राजसूतास्तदा ।
रेमिरे मुदिताः सर्वा भर्तृभिः सहितारहः ॥ ९ ॥

अर्थ–तत्पश्चात् राजपत्नियों ने महाभागा सीता तथा यशस्विनी ऊर्मिला और कुशध्वज की दोनों कन्याओं को ग्रहण किया और वह अभिवादन योग्य स्त्रियों को नमस्कार करके अपने २ पतियों के साथ पृथक् २ रहकर गृहस्थाश्रम सम्बन्धी कार्य्यों में प्रवृत्त हुईं ॥

कुमारश्च महात्मानो रूपेणाप्रतिमाभुवि ।
कृतदाराः कृतास्त्राश्च सधनाः ससुहृज्जनाः ॥१०॥
शुश्रूषमाणाः पितरं वर्तयन्ति नरर्षभाः ।
कस्यचित्त्वथ कालस्य राजा दशरथः सुतम् ॥११॥

अर्थ—वह महात्मा चारो कुमार जो पृथिवी में अपने २ बल से अनुपम, स्त्रियों वाले, अस्त्रविद्या में निपुण और धन से युक्त सुहृद् जनों समेत नरश्रेष्ठ पिता की सेवा में तत्पर होगये, कुछ काल व्यतीत होने पर एकवार राजा दशरथ ने अपने पुत्र भरत से कहा किः—

भरतं कैकयीपुत्रमब्रवीद्रघुनन्दनः ।
अयं केकयराजस्य पुत्रो वसति पुत्रक ॥ १२ ॥
त्वां नेतुमागतो वीरो युधाजिन्मातुलस्तव ।
श्रुत्वा दशरथस्यैतद्भरतः कैकयी सुतः ॥ १३ ॥

अर्थ—हे कैकेयी के पुत्र भरत ! यह केकय राजा का पुत्र तेरा मामा युधाजित् तुम्हारे लेने को आया हुआ है, राजा के इस प्रकार वचन सुनकर कैकेयी का पुत्र भरतः—

गमनायाभिचक्राम शत्रुघ्नसहितस्तदा ।
आपृच्छ्य पितरं शूरो रामं चाक्लिष्टकारिणम् १४॥
गते च भरते रामो लक्ष्मणश्च महाबलः ।
पितरं देवसंकाशं पूजयामासतुस्तदा ॥ १५ ॥

अर्थ—शत्रुघ्न को साथ ले वहां जाने की इच्छा करता हुआ पिता दशरथ, किसी को कष्ट न देने वाले भ्राता राम और अपनी माताओं से आज्ञा मांगकर अपने मामा युधाजित् के साथ चलागया, भरत के चले जाने पर राम और महाबली लक्ष्मण देवतुल्य अपने पिता दशरथ की पूजा में प्रवृत्त हुए ॥

पितुराज्ञां पुरस्कृत्य पौरकार्याणि सर्वशः ।
चकार रामः सर्वाणि प्रियाणि च हितानि च॥१६॥
मातृभ्यो मातृकार्याणि कृत्वा परमयन्त्रितः ।
गुरूणां गुरुकार्याणि काले कालेऽन्ववैक्षत ॥१७॥

अर्थ—और पिता की आज्ञानुसार धर्मात्मा राम अपने प्रिय तथा पुर के हित सम्बन्धी सम्पूर्ण कार्य्यों को करने लगे, बड़ी नम्रतापूर्वक माताओं के कार्य्यों को करके गुरुओं के कार्य्यों को समय २ पर देखते थे ॥

एवं दशरथः प्रीतो ब्राह्मणा नैगमास्तथा ।
रामस्य शीलवृत्तेन सर्वे विषयवासिनः ॥ १८ ॥
रामश्च सीतया सार्धं विजहार बहूनृतून् ।
मनस्वी तद्गतमनास्तस्या हृदि समर्पितः ॥ १९ ॥

अर्थ—इस प्रकार राम के शीलपूर्वक वर्ताव से पिता दशरथ, देशवासी ब्राह्मण, सौदागर और सम्पूर्ण राज्य निवासी अत्यन्त प्रसन्न थे, मनस्वी राम सीता में अपना मन लगा और उनका मन अपने में निवेशित कर सीता के साथ बहुत ऋतुओं तक आनन्दपूर्वक रहे ॥

प्रिया तु सीता रामस्य दाराः पितृकृता इति ।
गुणाद्रूपगुणाच्चापि प्रीतिर्भूयोऽभिवर्धते ॥ २० ॥
तस्याश्च भर्ता द्विगुणं हृदये परिवर्तते ।
अन्तर्गतमपि व्यक्तमाख्याति हृदयं हृदा ॥२१॥

अर्थ—राम को सीता परमप्रिय थी जिसको उसके पिता आदिकों ने राम की पत्नी बनाया है उसके भीतर के गुण और रूप लावण्य वाह्य गुणों से राम की प्रीति सीता में दिनों दिन अधिकाधिक होती थी और सीता के हृदय में अपने परमप्रिय भर्ता राम का अनुराग उससे भी द्विगुण था, क्योंकि हृदय हृदय के भाव को स्पष्ट बतला देता है ॥

इति अष्टाविंशः सर्गः

समाप्तश्चेदं बालकाण्डम्

ओ३म्

अथ अयोध्याकाण्डं प्रारभ्यते

गच्छतामातुलकुलं भरतेन तदानघः ।
शत्रुघ्नो नित्य शत्रुघ्नोनीतः प्रीति पुरस्कृतः ॥ १ ॥

अर्थ—जब भरत अपने मामा के घर गये तो शत्रुओं पर विजय पाने वाले पवित्रात्मा शत्रुघ्न को भी प्रीतिपूर्वक साथ लेगये ॥

स तत्र न्यवसद्भ्रात्रा सह सत्कारसत्कृतः ।
मातुलेनाश्वपतिना पुत्रस्नेहेन लालितः ॥ २ ॥

अर्थ—और वह वहां अपने भ्राता भरत के साथ सत्कार पूर्वक रहा, मामा अश्वपति उनका पुत्र सम स्नेहपूर्वक लालन करता था ॥

तत्रापि निवसन्तौ तौ तर्प्यमाणौ च कामतः ।
भ्रातरौ स्मरतां वीरौ वृद्धंदशरथं नृपम् ॥ ३ ॥
राजापि तौ महातेजाः सस्मार प्रोषितौ सुतौ ।
सर्वे एव तु तस्येष्टाश्चत्वारः पुरुषर्षभाः ॥ ४ ॥

अर्थ—यद्यपि वहां रहते हुए उन दोनों भाइयों की सब इच्छायें पूर्ण कीजाती थीं पर वह अपने वृद्ध पिता राजा दशरथ को कभी नहीं भूलते थे, इसी प्रकार उधर महातेजस्वी राजा

दशरथ भी परदेश गये हुए अपने दोनो पुत्रों को सदा स्मरण किया करते थे, क्योंकि उनको चारो ही पुत्र समानरूप से प्रिय थे ॥

स्वशरीराद्विनिर्वृत्ताश्चत्वार इव बाहवः ।
तेषामपि महातेजा रामो रतिकरः पितुः ॥ ५ ॥

अर्थ—जैसे अपने शरीर से निकली हुई चार भुजा हों वैसे ही वह चारो भाई थे पर उन चारो में से महातेजस्वी राम पिता दशरथ को अधिक प्रिय था ॥

स हि रूपोपपन्नश्च वीर्यवाननसूयकः ।
भूमावनुपमः सूनुर्गुणैर्दशरथोपमः ॥ ६ ॥
स च नित्यं प्रशान्तात्मा मृदुपूर्वं च भाषते ।
उच्यमानोऽपि परुषं नोत्तरं प्रतिपद्यते ॥ ७ ॥

अर्थ—क्योंकि वह अतिरूपवान्, बलसम्पन्न और निन्दा रहित होने से श्रेष्ठ गुणों में अपने पिता के तुल्य पृथिवी पर अनुपम पुत्र थे, वह शान्तिसम्पन्न राम सदा मीठे वचन बोलते और कठोर शब्द सुनकर भी कटु भाषण नहीं करते थे ॥

कदाचिदुपकारेण कृतेनैकेन तुष्यति ।
न स्मरत्यपकाराणां शतमप्यात्मवत्तया ॥ ८ ॥

अर्थ—वह ऐसे बलवान् आत्मा थे कि उनके साथ कोई एक भी उपकार करदे तो उसी में सन्तुष्ट होजाते और किसी ने सैकड़ों अपकार किये हों उनका वह कभी स्मरण नहीं करते थे अर्थात् किये हुए उपकार को मानने वाले और अपकारों को भूल जाने वाले थे ॥

शीलवृद्धैर्ज्ञानवृद्धैर्वयोवृद्धैश्च सज्जनैः ।
कथयन्नास्तवै नित्यमस्त्रयोग्यान्तरेष्वपि ॥ ९ ॥

अर्थ—वह अस्त्राभ्यास से अवकाश पाकर सदा शीलवृद्ध, ज्ञानवृद्ध और अपने से आयु में बड़े सज्जनों के साथ शास्त्र चिन्तन किया करते थे ॥

बुद्धिमान् मधुरभाषी पूर्वभाषी प्रियंवदः ।
वीर्यवान्नच वीर्येण महता स्वेन विस्मितः ॥१०॥
नचानृतकथो विद्वान् वृद्धानां प्रतिपूजकः ।
अनुरक्तः प्रजाभिश्च प्रजाश्चाप्यनुरञ्जते ॥ ११ ॥

अर्थ—वह बुद्धिमान, मीठा बोलने वाले, जो बात करने आवे उससे प्रथम ही मधुरवाणी द्वारा बोलने वाले और सब प्रकार शक्तिसम्पन्न होकर भी अपनी बड़ी शक्ति का घमण्ड न रखने वाले, कभी आपस में भी झूठी कथा न कहने वाले, विद्वान् वृद्धों के पूजक, सब प्रजाओं के प्यारे और वह सब प्रजाओं पर प्यार करने वाले थे ॥

सानुक्रोशो जितक्रोधो ब्राह्मणप्रतिपूजकः ।
दीनानुकम्पी धर्मज्ञो नित्यं प्रग्रहवाञ्छुचिः ॥१२॥
कुलोचितमतिः क्षात्रं स्वधर्मं बहु मन्यते ।
मन्यते परया कीर्त्या महत्स्वर्गफलं ततः ॥ १३ ॥

अर्थ—दयावान्, जितक्रोध, ब्राह्मणों के पूजक, दीनों पर दया करने वाले, धर्मज्ञ, दुष्टों को सदा ही दण्ड देने वाले और

आप सदैव पवित्राचरण रखने वाले, कुल की मर्यादानुसार चलने वाले, क्षात्रधर्म का बड़ा मान करने वाले और उससे उत्तम कीर्ति द्वारा बड़े स्वर्गफल की कामना वाले थे ॥

नाश्रेयसि रतो यश्च न विरुद्धकथारुचिः ।
उत्तरोत्तरयुक्तीनां वक्ता वाचस्पतिर्यथा ॥ १४ ॥

अर्थ—अकल्याणकारी कर्मों में प्रेम न रखने वाले, धर्मविरुद्ध कथाओं में रुचि न रखने वाले और उत्तरोत्तर युक्तियों का वाचस्पति की न्याईं समर्थन करने वाले और :—

अरोगस्तरुणो वाग्मी वपुष्मान्देशकालवित् ।
लोके पुरुषसारज्ञः साधुरेको विनिर्मितः ॥ १५ ॥
स तु श्रेष्ठैर्गुणैर्युक्तः प्रजानां पार्थिवात्मजः ।
बहिश्चर इव प्राणो बभूव गुणतः प्रियः ॥ १६ ॥

अर्थ—नीरोग, ज्वान, प्रशस्त वाक्य बोलने वाला, मनोहर शरीरधारी, देशकालज्ञ और लोक में पुरुष के तत्व को जानने वाला वही एक साधु रचागया था, वह श्रेष्ठ गुणों से युक्त राजा दशरथ का पुत्र गुणों से प्राणसमान प्रिय प्रजाओं के बाहर विचरने वाले प्राण की न्याईं था अर्थात् जिसप्रकार प्राण भीतर विचरते हैं इसी प्रकार वह प्राणों की भांति बाहर विचरता था ॥

सर्वविद्याव्रतस्नातो यथावत्साङ्गवेदवित् ।
इष्वस्त्रे च पितुः श्रेष्ठो बभूव भरताग्रजः ॥ १७ ॥

कल्याणाभिजनः साधुरदीनः सत्यवागृजुः ।
वृद्धैरभिविनीतश्चद्विजैर्धर्मार्थदर्शिभिः ॥ १८ ॥
धर्मकामार्थतत्त्वज्ञः स्मृतिमान् प्रतिभानवान् ।
लौकिकसमयाचारे कृतकल्पो विशारदः ॥ १९ ॥

अर्थ—ब्रह्मचर्य्यव्रतपूर्वक सब विद्याओं में पारगन्ता, अतएव यथावत् अङ्गों*सहित वेद का ज्ञाता,वह भरत का बड़ा भाई तीर और अस्त्रों में पिता से बढ़कर, सब कल्याणों की जन्मभूमि, साधु=उत्तम गुणों वाला, अदीन=कभी दीन न होने वाला, सत्यभाषण करने वाला, सरल चित्त, धर्म, अर्थ के द्रष्टा वृद्ध ब्राह्मणों से शिक्षा पाया हुआ, धर्म, अर्थ तथा काम के तत्त्व को जानने वाला, स्मृतिवान, प्रतिभाशाली, लौकिक कार्य्यों में बड़ा दक्ष और धर्माचरण में अतिनिपुण=अनुष्ठानी था ॥

निभृतः संवृताकारो गुप्तमन्त्रः सहायवान् ।
अमोघक्रोधहर्षश्च त्यागसंयमकालवित् ॥२०॥
दृढभक्तिः स्थिरप्रज्ञो नासद्ग्राही न दुर्वचाः ।
निस्तन्द्रिरप्रमत्तश्च स्वदोषपरदोषवित् ॥ २१ ॥
शास्त्रज्ञश्च कृतज्ञश्च पुरुषान्तरकोविदः ।
यः प्रग्रहानुग्रहयोर्यथान्यायं विचक्षणः ॥ २२ ॥

अर्थ—नम्रस्वभाव वाला,आकार को ढापे हुए गुप्तमंत्र वाला

---

* शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्दशास्त्र=पिङ्गलाचार्य्यकृत सूत्र और ज्योतिष यह षट् वेद के अंग हैं ॥

अर्थात् कार्य्य की सिद्धि होने से पूर्व किसी को भेद न देने वाला, सहायकों वाला, न निष्फल क्रोध और हर्ष करने वाला, त्याग और संयम के काल का वेत्ता, ईश्वर और देवों में दृढ़भक्ति वाला, स्थिर बुद्धि, न खोटे पुरुषों का ग्राहक, न दुर्वचन बोलने वाला, आलस्य तथा प्रमाद से रहित, अपने और दूसरों के दोषों को जानने वाला, शास्त्रज्ञ, कृतज्ञ, प्रत्येक पुरुष का भेद जानने वाला और न्यायानुसार दण्ड देने तथा अनुग्रह करने में पण्डित था॥

सत्संग्रहानुग्रहणे स्थानविन्निग्रहस्य च ।
आयकर्मण्युपायज्ञःसंदृष्टव्ययकर्मवित् ॥ २३ ॥
श्रैष्ठ्यं चास्त्र समूहेषु प्राप्तो व्यामिश्रकेषु च ।
अर्थ धर्मौ च संगृह्य सुखतन्त्रो नचालसः ॥२४॥
वैहारिकाणां शिल्पानां विज्ञातार्थविभागवित् ।
आरोहे विनये चैव युक्तो वारणवाजिनाम् ॥२५॥

अर्थ—सत्पुरुषों का संग्रह और उनका मान करने में बड़ा निपुण, निग्रह=यथावसर शासन करने तथा दण्ड देने वाला, आयकर्म=अपनी आमदनी का उपाय सोचने वाला, शास्त्रानुसार व्ययकर्म करने वाला, सम्पूर्णशास्त्र तथा व्यामिश्र=संस्कृत और अन्य भाषाओं से मिले हुए ग्रन्थों के जानने में श्रेष्ठ, धर्म और अर्थ के संग्रहपूर्वक सुख सेवी, अपने कर्तव्यों को पूर्ण करने में निरालस, वैहारिक शिल्प=व्यावहारिक कारीगरी में निपुण, अर्थ का विभाग जानने वाला और हाथी, घोड़े पर सवारी करने तथा उनके सधाने में बड़ा सावधान था ॥

धनुर्वेदविदां श्रेष्ठो लोकेऽतिरथसंमतः ।
अभियाता प्रहर्ता च सेनानयविशारदः ॥२६॥
अप्रधृष्यश्च संग्रामे क्रुद्धैरपि सुरासुरैः ।
अनसूयो जितक्रोधो न दृप्तो नच मत्सरी ॥२७॥

अर्थ—धनुर्वेद के जानने वालों में श्रेष्ठ, लोक में अतिरथ=योद्धा माना हुआ, शत्रुओं पर चढ़ाई और प्रहार करने वाला और सेना के व्यूह बांधने में निपुण, संग्राम में सुर असुर कोई युद्ध करने को क्यों न आवे कभी अधीर न होना, अनिन्दक रहना, क्रोध के वश कभी न होना और न कोई मत्सर करना ॥

एवं श्रेष्ठैर्गुणैर्युक्तः प्रजानां पार्थिवात्मजः ।
संमतस्त्रिषु लोकेषु वसुधायाः क्षमागुणैः ॥२८॥
तथा सर्वप्रजाकान्तैः प्रीतिसंजननैः पितुः ।
गुणैर्विरुरुचे रामो दीप्तःसूर्य्य इवांशुभिः ॥२९॥

अर्थ—इस प्रकार श्रेष्ठ गुणों से युक्त और क्षमा में पृथिवी के तुल्य वह राजपुत्र राम तीनो लोकों में प्रजा को प्रिय था, सब प्रजा से मान पाये हुए अपने पिता दशरथ की प्रीति को उत्पन्न करने वाले गुणों से देदीप्यमान हुआ ऐसा शोभायमान था जैसे किरणों से सूर्य्य शोभायमान होता है ॥

तमेवंवृत्त संपन्नमप्रधृष्य पराक्रमम् ।
लोकपालोपमं नाथमकामयत मेदिनी ॥ ३० ॥

अर्थ–इस प्रकार अपने आश्रितों की रक्षारूप व्रत से युक्त, किसी से विजय न होने वाला, पराक्रम वाले लोकपालों के तुल्य राम को मानो पृथिवी अपना स्वामी बनाना चाहती है ॥

तं समीक्ष्य तदा राजा युक्तं समुदितैर्गुणैः ।
निश्चित्य सचिवैः सार्धं युवराजमनन्यत ॥ ३१ ॥

अर्थ–उक्त सद्गुणसम्पन्न राम को देखकर राजा दशरथ ने मंत्रियों से निश्चय करके उनको युवराज बनाने का विचार किया ॥

आत्मनश्च प्रजानां च श्रेयसे च प्रियेण च ।
प्राप्ते काले च धर्मात्मा भक्त्या त्वरितवान्नृपः॥३२॥
नाना नगर वास्तव्यान् पृथग्जानपदानपि ।
समानिनाय मेदिन्यां प्रधानान् पृथिवीपतीन्॥३३॥
नतु केकयराजानं जनकं वा नराधिपः ।
त्वरया चानयामास पश्चात्तौ श्रोष्यतः प्रियम्॥३४॥

अर्थ–अपने और प्रजाओं के कल्याणार्थ तथा राम में प्रजाओं की प्रीति से ठीक समय आजाने पर उस धर्मात्मा राजा दशरथ ने भक्ति से शीघ्र ही नाना नगरों में वास करने वाले तथा अपने अधीन प्रधान राजाओं को बुला लिया परन्तु शीघ्रता के कारण राजा केकय और जनक को नहीं बुलाया और यह समझकर कि वह दोनों इस प्रिय को पीछे सुन ही लेंगे ॥

भाष्य–राजा दशरथ ने राम को राज्य देने में जो शीघ्रता की उसका कारण यह था कि एकतो राजा पूर्ण आयु भोग

चुके थे, दूसरे उन्होंने सोचा कि पृथिवी पर नाना प्रकार के उत्पात दिखाई देते हैं इसलिये अपना और अपनी प्रजा का कल्याण इसी में देखता हूं कि राम को राज्य देकर परमात्म-परायण होजाऊं, जैसीकि प्राचीन मर्यादा थी, और यह विचार राजा के दिल में आज उत्पन्न नहीं हुआ प्रत्युत जिस समय उनके चारो पुत्रों का समावर्तन होकर विवाह भी होगया और वह पुत्र तथा पुत्रवधुओं सहित अयोध्यापुरी में पहुंच गये वहां उनको एकदम अपने सिर से राज्यभार उतारने का विचार उत्पन्न हुआ, उधर राम को राजकार्य्यों में निपुण देखा, क्योंकि राम ने राजकार्य्यों में हाथ डालते ही प्रजा को अति प्रसन्न करलिया थां और वसिष्ठादि मंत्री तथा अपने अधीन राजे आदि सभी राम के सद्गुणों से अति प्रसन्न थे, योग्य तथा बड़े होने से राज्य के अधिकारी भी राम ही थे, सो राम में प्रजा की भक्ति और अपना परलोक निकट देखकर राजा को एकाएक राम के युवराज बनाने का विचार प्रबल होगया और दैवयोग से वसन्तऋतु तथा पुष्य नक्षत्र भी बहुत निकट था जिसमें राज्याभिषेक हुआ करते थे, इन सब कारणों से राजा को जल्दी करनी पड़ी, पाठकगण ! दैवयोग बड़ा प्रबल होता है उस काल में पुष्य नक्षत्र इतना निकट था कि शीघ्रता में केकयदेश से कैकयी के पिता राजा केकय और मिथिला से जनक कोभी नहीं बुला सके और यह सोच लिया कि इस प्रिय को पीछे सुन ही लेंगे, यदि राजा केकय और उनके साथ भरत शत्रुघ्न आजाते तो राम के बन जाने विषयक विघ्न का नाम भी न आता, पर उस समय धार्मिक राज्य का इतना बल था कि राजा को यह विश्वास था कि इस धर्मकार्य्य से कोई विपरीत न होगा, यह उनको भी

प्रिय ही है पीछे सुनलेंगे और कैकयी भी धर्ममर्यादा को जानती थी इसलिये उसको भी अविश्वास न था, राम के राज्याभिषेक सम्बन्धी कार्य्यों को बड़े उत्साहपूर्वक करती रही, पर यह कौन जानता था कि नीचकुलोत्पन्न दासी मन्थरा कैकयी पर जादू का काम करेगी, वास्तव में यह मन्थरा का ही काम था कि कैकयी के कान भरकर राम के राज्याभिषेक में विघ्न डाला, जैसाकि अग्रिम लेखों से पाठकवृन्द सम्पूर्ण वृत्त ज्ञात करेंगे :—

इति प्रथमः सर्गः

अथ द्वितीयः सर्गः

ततः परिषदंसर्वामामन्त्र्य वसुधाधिपः ।
हितमुद्धर्षणं चैवमुवाच प्रथितं वचः ॥ १ ॥
राजलक्षण युक्तेन कान्तेनानुपमेन च ।
उवाच रसयुक्तेन स्वरेण नृपतिर्नृपान् ॥ २ ॥

अर्थ—इसके अनन्तर सभा को बुलाकर राजा उच्चस्वर से हितकारी और हर्षजनक बचन बोले, राजा के लक्षणों से युक्त मधुर और गम्भीर स्वर से पृथिवीपति दशरथ अन्य राजाओं से बोले किः—

विदितं भवतामेतद्यथा मे राज्यमुत्तमम् ।
पूर्वकैर्मम राजेन्द्रैः सुतवत्परिपालितम् ॥ ३ ॥

अर्थ–आपको भलेप्रकार विदित है कि मेरा यह उत्तम राज्य जिसको मेरे पूर्वजों ने पुत्रवत् पालन किया है और :—

मयाप्याचरितं पूर्वैः पन्थानमनुगच्छता ।
प्रजा नित्यमनिद्रेण यथाशक्त्यभिरक्षिताः॥ ४ ॥
इदं शरीरं कृत्स्नस्य लोकस्य चरताहितम् ।
पाण्डुरस्यातपत्रस्य च्छयायां जरितं मया ॥ ५ ॥

अर्थ–मैंने भी बड़ों के मार्ग पर चलते हुए वैसाही आचरण किया है कि सदा जाग्रत=चैतन्य रहकर यथाशक्ति प्रजाओं की रक्षा की और सम्पूर्ण लोकहित का आचरण करते हुए मैंने यह शरीर क्षात्रधर्मरूप क्षत्र की छाया में बूढ़ा कर दिया है ॥

राजप्रभावजुष्टां च दुर्वहामजितेन्द्रियैः ।
परिश्रान्तोऽस्मि लोकस्यगुर्वीं धर्मधुरं वहन् ॥ ६ ॥
सोहं विश्राममिच्छामि पुत्रं कृत्वा प्रजाहिते ।
सन्निकृष्टानिमान्सर्वाननुमान्य द्विजर्षभान् ॥ ७ ॥

अर्थ–जो राजप्रभाव वाले क्षात्रधर्मपरायण राजाओं से सेवन कीजाती है और जिसको अजितेन्द्रिय पुरुष नहीं उठासकते, ऐसी भारी लोकमर्यादा की धुरा को मैं उठाये हुए थकगया हूं, सो अब मैं यहां बैठे हुए सब द्विजवरों की सम्मति से पुत्र राम को प्रजा के हित में लगा विश्राम करना चाहता हूं ॥

अनुरूपः स वो नाथो लक्ष्मीवांल्लक्ष्मणाग्रजः ।
त्रैलोक्यमपि नाथेन येन स्यान्नाथवत्तरम् ॥ ८ ॥

यदिदं मेऽनुरूपार्थं मया साधु सुमन्त्रितम् ।
भवन्तो मेऽनुमन्यन्तां कथं वा करवाण्यहम् ॥ ९ ॥
यद्यप्येषा मम प्रीतिर्हितमन्यद्विचिन्त्यताम् ।
अन्यामध्यस्थचिन्ता हि विमर्दाभ्यधिकोदया॥१०॥

अर्थ—और उस लक्ष्मीवान् लक्ष्मण के बड़े भाई को तुम्हारा नाथ=स्वामी बनाता हूं, जिस नाथ से न केवल आपही नाथ वाले होंगे अपितु तीनों ही लोक नाथवत्तर=सनाथ होंगे, यदि यह मेरा विचार उत्तम फल वाला है और मैंने ठीक सोचा है तो आप सब मेरे साथ सहमत हों अथवा अपनी सम्मति दें कि मुझको क्या कर्तव्य है ? यद्यपि मेरी प्रीति=खुशी यही है कि राम को राज्याभिषेक हो परन्तु इससे उत्तम कुछ अन्य हित है तो वह आप सब सोचें, क्योंकि मध्यस्थों का विचार कुछ और ही होता है जो वाद विवाद से अधिक फल वाला बनजाता है ॥

इति ब्रुवन्तं मुदिता प्रत्यनन्दन्नृपाः नृपम् ।
वृष्टिमन्तं महामेघं नदन्त इव बर्हिणः ॥ ११ ॥
स्निग्धोऽनुनादः संजज्ञे ततो हर्षसमीरितः ।
जनौघोद्धुष्टसंनादो विमानं कम्पयन्निव ॥ १२ ॥

अर्थ—राजा का उक्त विचार सुनकर सब राजाओं ने प्रसन्नतापूर्वक इस प्रकार स्वाकीर किया जैसे वृष्टि वाले महामेघ को नाचते हुए मोर अंगीकार करते हैं, सब जनसमुदाय की हर्ष से उच्चारण कीहुई मधुर ऊंची गूंजती हुई ध्वनि ऐसी उत्पन्न हुई कि जिसने मानो सारे राजभवन को कम्पा दिया ॥

तस्य धर्मार्थविदुषो भावमाज्ञाय सर्वशः ।
ब्राह्मणा बलमुख्याश्च पौरजानपदैः सह ॥१३॥
समेत्य ते मन्त्रयितुं समतागमतबुद्धयः ।
ऊचुश्चं मनसा ज्ञात्वा वृद्धं दशरथं नृपम् ॥ १४॥

अर्थ–धर्म, अर्थ के जानने वाले उस राजा दशरथ के भाव को भले प्रकार जानकर ब्राह्मण और सेना के मुखिया दूसरे राजों और अन्य पुरुषों के साथ मिलकर विचारने लगे और अपने २ मन से निश्चित कर सब एक ही विचार पर स्थित हो वृद्ध राजा दशरथ से बोले कि :—

इच्छामो हि महाबाहुं रघुवीरं महाबलम् ।
गजेन महता यान्तं रामं छत्रावृताननम् ॥१५॥
बहवो नृप कल्याणा गुणाः सन्ति सुतस्य ते ।
इक्ष्वाकुभ्योऽपिसर्वेभ्यो ह्यतिरिक्तो विशांपते ॥१६॥

अर्थ–हे राजन् ! हम सब की इच्छा है कि हम महाबाहु, महाबली रघुवीर राम को बड़े हाथी पर चढ़ा हुआ और सिरपर छात्र से ढका हुआ उनका मुख देखें, हे राजन् ! आपके पुत्र में बहुत से कल्याण वाले गुण हैं, अधिक क्या राम सब इक्ष्वाकुवंशियों में बढ़े हुए हैं ॥

धर्मज्ञः सत्यसंधश्च शीलवाननसूयकः ।
क्षान्तः सान्त्वयिताश्लक्ष्णःकृतज्ञो विजितेन्द्रियः॥१७
मृदुश्च स्थिरचित्तश्च सदा भव्योऽनसूयकः ।
प्रियवादी च भूतानां सत्यवादी च राघवः ॥१८॥

बहुश्रुतानां वृद्धानां ब्राह्मणानामुपासिता।
तेनास्येहातुला कीर्तिर्यशस्तेजश्चवर्धते ॥ १९ ॥
देवासुरमनुष्याणां सर्वास्त्रेषु विशारदः।
सम्यग्विद्याव्रतस्नातो यथावत्साङ्गवेदवित् ॥ २० ॥

अर्थ—धर्मात्मा, सत्यवादी, शीलवान्, निन्दा से रहित, क्षमावाला, शान्तिदायक, स्पष्टवक्ता, कृतज्ञ, जितेन्द्रिय, मृदुस्वभाव, स्थिरचित्त, सदा प्रसन्नवदन, अनिन्दक, सब से मीठा बोलने वाला, सत्यवादी और बहुश्रुत वृद्ध ब्राह्मणों का सत्संगी होने से इसकी लोक में अतुल कीर्ति, यश और तेज बढ़ रहा है, देव, असुर और मनुष्यों के सब प्रकार के अस्त्रों में निपुण, भलेप्रकार विद्या तथा ब्रह्मचर्य्य व्रत में स्नान किया हुआ और अंगों सहित वेद का जानने वाला है ॥

पौरान् स्वजनवन्नित्यं कुशलं परिपृच्छति।
पुत्रेष्वग्निषु दारेषु प्रेष्य शिष्यगणेषु च ॥ २१ ॥
व्यसनेषु मनुष्याणां भृशं भवति दुःखितः।
उत्सवेषु च सर्वेषु पितेव परितुष्यति ॥ २२ ॥

अर्थ—पुरवासी लोगों को सदा स्वजनों की भांति देखता, पुत्र, स्त्री, भृत्य, अग्नि*और शिष्यगणों के विषय में कुशल पूछता तथा लोगों को व्यसनों में देखकर अत्यन्त दुःखी होता और उत्सवों में पिता की भांति अति प्रसन्न होता है ॥

---

* अग्निहोत्रादि यज्ञों का नित्य होना अर्थात् यह पूछना कि तुम्हारे सन्ध्या अग्निहोत्रादि यज्ञ तो नित्य होते हैं ॥

सत्यवादी महेष्वासो वृद्धसेवी जितेन्द्रियः ।
स्मितपूर्वाभिभाषी च धर्मसर्वात्मनाश्रितः ॥ २३ ॥
रामो लोकाभिरामोऽयं शौर्य्यवीर्य्यपराक्रमैः ।
प्रजापालनसंयुक्तो न रागोपहितेन्द्रियः ॥ २४ ॥

अर्थ—सत्यवादी, बड़ा धनुर्धारी, वृद्धों की सेवा करने वाला, जितेन्द्रिय, हंसकर प्रथम भाषण करने वाला, सम्पूर्ण बल से धर्म के आश्रित रहने वाला, शौर्य, वीर्य्य, पराक्रमादि गुणों से सारी सृष्टि का प्रिय, प्रजा पालन में तत्पर और राग से उसके इन्द्रिय दूषित नहीं हैं ॥

नास्य क्रोधः प्रसादश्च निरर्थोऽस्ति कदाचन ।
हन्त्येष नियमाद्वध्यानवध्येषु न कुप्यति ॥२५॥
युनक्त्यर्थैः प्रहृष्टश्च तमसौ यत्र तुष्यति ।
वत्सः श्रेयसि जातस्ते दिष्ट्यासौ तव राघव ॥२६॥

अर्थ—राम का क्रोध वा प्रसाद=हर्ष कभी निरर्थक नहीं होता, जो बध्य हैं उनका नियम से बध करता और जो अवध्य=निरपराध हैं उन पर कभी क्रोध नहीं करता, जिस पर प्रसन्न होता उसको सन्तुष्ट कर देता है फिर किसी पदार्थ की उसको इच्छा नहीं रहती, हे राघव! आपका यह पुत्र आपके भाग्य से कल्याण में अति श्रेयस्कर है ॥

आशंसते जनः सर्वो राष्ट्रे पुरवरे तथा ।
आभ्यन्तरश्च बाह्यश्च पौरजानपदो जनः ॥ २७ ॥

तेषां तद्याचितं देव त्वत्प्रसादात्समृध्यताम् ।
पश्यामो यौवराज्यस्थं तव राजोत्तमात्मजम् ॥२८॥

अर्थ—बाहर भीतर के सब देश, पुर और राज्यनिवासी राम की प्रशंसा करते हुए यही चाहते हैं कि राम ही राजा हो, इनकी प्रार्थना हे देव! तुम्हारी कृपा से फले, हे राजोत्तम! हम लोग आपके पुत्र को युवराज बना हुआ देखें ॥

इति द्वितीयः सर्गः

अथ तृतीयः सर्गः

तेषामञ्जलिपद्मानि प्रगृहीतानि सर्वशः ।
प्रतिगृह्याब्रवीद्राजा तेभ्यः प्रियहितं वचः ॥ १ ॥

अर्थ—उन सब को कमलों के सदृश दोनों हाथ जोड़े हुए कहते सुनकर राजा ने स्वीकार किया और वह यह प्रिय हितकर वचन बोले कि :—

अहोऽस्मि परमप्रीतः प्रभावश्चातुलो मम ।
यन्मे ज्येष्ठं प्रियं पुत्रं यौवराज्यस्थमिच्छथ ॥ २ ॥

अर्थ—अहो मैं बड़ा प्रसन्न हुआ हूं, मेरा प्रताप अतुल है जो मेरे प्यारे पुत्र को युवराज बनाने में आप सब सहमत हैं ॥

चैत्रः श्रीमानयं मासः पुण्यः पुष्पितकाननः ।
यौवराज्याय रामस्य सर्वमेवोपकल्प्यताम् ॥ ३ ॥

वसिष्ठं मुनिशार्दूलं राजा वचनमब्रवीत् ।
अभिषेकाय रामस्य यत्कर्म सपरिच्छदम् ॥४॥

अर्थ—यह पवित्र शोभायुक्त पुण्य चैत्रमास जिसमें वन फूले हुए हैं, यही राम के युवराज बनाने के लिये श्रेष्ठ है सब सामग्री एकत्रित करो, और मुनिवर वसिष्ठ को राजा ने कहा कि हे भगवन्! राम के अभिषेकार्थ जो कुछ कर्तव्य है वह आज्ञा दीजिये॥

तदद्य भगवन्सर्वमाज्ञापयितुमर्हसि ।
तच्छ्रुत्वा भूमिपालस्य वसिष्ठो मुनिसत्तमः ॥५॥

अर्थ—इसके अनन्तर आज जो कुछ करना है वह सब सामग्री सहित आज्ञा करें, राजा के इस वचन को सुनकर मुनिवर वसिष्ठ :—

आदिदेशाग्रतो राज्ञः स्थितान्युक्तान्कृताञ्जलीन् ।
सुवर्णादीनि रत्नानि बलीन्सर्वौषधीरपि ॥ ६ ॥
शुक्लमाल्यानि लाजांश्च पृथक्क मधुसर्पिषी ।
अहतानि च वासांसि रथं सर्वायुधान्यपि ॥७॥
चतुरङ्गबलं चैव गजं च शुभलक्षणम् ।
चामरव्यजने चोभे ध्वजं छत्रं च पाण्डुरम् ॥ ८ ॥

अर्थ—राजा के सन्मुख हाथ जोड़े खड़े हुए मंत्रियों से बोले कि सुवर्णादि रत्न, वलि योग्य पदार्थ, सब ओषधियें, श्वेत मालायें, लाजा=खीलें, शहद और घी इनको पृथक् २ लाओ, सब नये बस्त्र, रथ, सब शस्त्र, चतुरङ्ग सेना, शुभलक्षणों

वाला हाथी, दो श्वेत चवरियें और ध्वजा तथा श्वेत छत्र उपस्थित करो ॥

शतं च शातकुम्भानां कुम्भानामग्निवर्चसाम् ।
हिरण्यशृङ्गमृषभं समग्रं व्याघ्रचर्म च ॥ ९ ॥
यच्चान्यत्किञ्चिदेष्टव्यं तत्सर्वमुपकल्प्यताम् ।
उपस्थापयत प्रातरग्न्यगारे महीपतेः ॥ १० ॥

अर्थ—और अग्नि के तुल्य कान्ति वाले सुवर्ण के सौ घट, सोना चढ़े हुए सींगों वाला सांड और सिंहासन के लिये सिंह की अखण्ड छाला, यह सब सामग्री राजा के अग्नि मन्दिर में प्रातः काल उपस्थित करादो और जो कुछ और भी चाहिये वह सब सामान तैयार करो ॥

अन्तःपुरस्य द्वाराणि सर्वस्य नगरस्य च ।
चन्दनस्रग्भिरर्च्यन्तां धूपैश्च घ्राणहारिभिः॥११॥
सत्कृत्यद्विजमुख्यानां श्वः प्रभाते प्रदीयताम् ।
घृतं दधि च लाजांश्च दक्षिणाश्चापि पुष्कलाः॥१२॥

अर्थ—अन्तःपुर और नगर के सब द्वार चन्दन माला और अति सुगन्धित धूप से सजा दो और कल प्रातःकाल ब्राह्मणों को सत्कारपूर्वक घृत, दधि, लाजा और पुष्कल दक्षिणा दें ॥

सूर्येऽभ्युदितमात्रे श्वो भविता स्वस्तिवाचनम् ।
ब्राह्मणाश्च निमन्त्र्यन्तां कल्प्यन्तामासनानि च ॥१३॥

दीर्घासिबद्धयोधाश्च संनद्धामृष्टवाससः ।
महाराजाङ्गनं शूराः प्रविशन्तु महोदयम् ॥ १४ ॥

अर्थ—कल सूर्य्योदय होते ही स्वस्तिवाचन होगा, उसके लिये ब्राह्मणों को निमन्त्रित कर आसन तैयार करो और योद्धा लोग वरदियें सहित कवच पहन तलवारें बांधकर महाराज के महोत्सव वाले आंगन में प्रवेश करें ॥

ततः सुमन्त्रं द्युतिमान् राजा वचनमब्रवीत् ।
रामः कृतात्मा भवता शीघ्रमानीयतामिति ॥१५॥
स तथेति प्रतिज्ञाय सुमन्त्रो राजशासनात् ।
रामं तत्रानयांचक्रे रथेन रथिनां वरम् ॥१६॥

अर्थ—इसके अनन्तर तेजस्वी महाराज दशरथ सुमन्त्र से बोले कि आप धर्मात्मा राम को शीघ्र ले आओ, वह सुमन्त्र "तथास्तु" कहकर राजा की आज्ञानुसार रथि=योद्धाओं में श्रेष्ठ राम को रथ पर चढ़ाकर ले आया ॥

प्रासादस्थो रथगतं ददर्शायान्तमात्मजम् ।
गन्धर्वराजप्रतिमं लोके विख्यातपौरुषम् ॥१७॥
दीर्घबाहुं महासत्त्वं मत्तमातङ्गगामिनम् ।
रूपौदार्य्यगुणैः पुंसां दृष्टिचित्तापहारिणम् ॥१८॥

अर्थ—प्रासाद=राजमहल पर स्थित राजा दशरथ ने अपने पुत्र राम को आते हुए देखा जो गन्धर्वराज के तुल्य, लोक में

जिसका पौरुष विख्यात, जो बड़ी भुजाओं वाला, बड़ा दिलेर, मत्त हाथी कीसी चालवाला और रूप तथा उदारतादि गुणों से पुरुषों की दृष्टि और चित्त को आकर्षण करने वाला और :—

घर्माभितप्ताः पर्जन्यं ह्लादयन्तमिव प्रजाः ।
न ततर्प समायान्तं पश्यमानो नराधिपः ॥१९॥
अवतार्य सुमन्त्रस्तु राघवं स्यन्दनोत्तमात् ।
पितुः समीपं गच्छन्तं प्राञ्जलिः पृष्ठतोऽन्वयात्॥२०॥

अर्थ—धूप से तपी हुई प्रजाओं को मेघ की तरह प्रसन्न करने वाले राम को आता हुआ देख राजा तृप्त नहीं होते थे, फिर सुमन्त्र ने राम को उत्तम रथ से उतारकर पिता के निकट जाते हुए के पीछे २ हाथ जोड़कर आप चला, और :—

स तं कैलासशृङ्गाभं प्रासादं रघुनन्दनः ।
आरुरोह नृपं द्रष्टुं सह सूतेन राघवः ॥ २१ ॥
स प्राञ्जलिरभिप्रेत्य प्रणतः पितुरन्तिके ।
नाम स्वं श्रावयन् रामो ववन्दे चरणौ पितुः॥२२॥

अर्थ—वह नरश्रेष्ठ राघव सुमन्त्र के साथ कैलास शिखर समान ऊंचे महल पर बैठे हुए राजा दशरथ के दर्शनार्थ ऊपर चढ़गया, और सन्मुख जाकर दोनों हाथ जोड़ सिरझुका अपना नाम सुनाकर राम ने पिता की चरणवन्दना की ॥

तं दृष्ट्वा प्रणतं पार्श्वे कृताञ्जलिपुटं नृपः ।
गृह्याञ्जलौ समाकृष्य सस्वजे प्रियमात्मजम्॥२३॥

दिदेश राजा रुचिरं रामाय परमासनम् ।
तदासन-वरं प्राप्य व्यदीपयत् राघवः ॥ २४ ॥
तेन विभ्राजता तत्र सा सभापि व्यरोचत ।
विमलग्रह-नक्षत्रा शारदी द्यौरिवेन्दुना ॥२५॥

अर्थ–राजा ने अपने समीप राम को हाथ जोड़े हुए खड़ा देखकर हाथ से पकड़ अपने प्रिय पुत्र को कण्ठ से लगाया और उनको उत्तमासन पर बैठने की आज्ञा दी, उस आसन को प्राप्त कर राम शोभायमान हुए और उनके वहां बैठने से वह सभा भी अधिक शोभावाली बनगई, जैसे निर्मलग्रह तारों से युक्त शरद ऋतु का आकाश चन्द्रमा से शोभायमान होता है ॥

तं पश्यमानो नृपतिस्तुतोष प्रियमात्मजम् ।
अलंकृतमिवात्मानमादर्शतल-संस्थितम् ॥ २६ ॥
स तं सस्मितमभाष्य पुत्रं पुत्रवतांवरः ।
उवाचेदं वचोराजा देवेन्द्रमिव कश्यपः ॥ २७ ॥

अर्थ–अपने उस प्रिय पुत्र को देखकर राजा अति प्रसन्न हुए जैसे कोई पुरुष अलंकृत होकर अपने आपको दर्पण में देख प्रसन्न होता है, वह पुत्र वालों में श्रेष्ठ राजा मुसकराते हुए पुत्र को सम्बोधन करके इस प्रकार बोले जैसे कश्यप देवेन्द्र से कहते हैं ॥

ज्येष्ठायामसि मे पत्न्यां सदृश्यां सदृशः सुतः ।
उत्पन्नस्त्वं गुणज्येष्ठो मम रामात्मजः प्रियः ॥२८॥

त्वया यतः प्रजाश्चेमाः स्वगुणैरनुरञ्जिताः ।
तस्मात्त्वं पुष्ययोगेन यौवराज्यमवाप्नुहि ॥ २९ ॥

अर्थ—हे राम ! मेरी बड़ी पत्नी जो गुण कर्म में मेरे सदृश है उसमें से तू सदृश सुत गुणों में ज्येष्ठ मेरा प्रिय पुत्र उत्पन्न हुआ है और तैने अपने गुणों से सब प्रजायें प्रसन्न की हैं इसलिये तू पुष्ययोग में यौवराज्य को प्राप्त हो अर्थात् राजा बन ॥

कामतस्त्वं प्रकृत्यैव विनीतो गुणवानिति ।
गुणवत्यपि तु स्नेहात्पुत्र वक्ष्यामि ते हितम् ॥३०॥
भूयो विनयमास्थाय भव नित्यं जितेन्द्रियः ।
कामक्रोधसमुत्थानि त्यजस्व व्यसनानि च ॥३१॥

अर्थ—हे पुत्र ! तू स्वभाव से ही पूर्ण विनीत तथा गुणवान् है पर फिर भी स्नेहवशात् तुम्हें उपदेश करता हूं कि तू इससे भी अधिक विनयसम्पन्न होकर सदा जितेन्द्रिय रहना और काम क्रोध से उत्पन्न होने वाले व्यसनों में कभी न फसना ॥

परोक्षया वर्तमानो वृत्त्या प्रत्यक्षया तथा ।
तुष्टानुरक्तप्रकृतिर्यः पालयति मेदिनीम् ॥ ३२ ॥
तस्य नन्दन्ति मित्राणि लब्ध्वामृतमिवामराः ।
तस्मात् पुत्र त्वमात्मानं नियम्यैवं समाचर ॥३३॥

अर्थ—परोक्ष तथा प्रत्यक्ष वृत्ति से वर्तता हुआ अर्थात् स्वयं गुप्तरीति अथवा गुप्तचरों द्वारा अपने तथा दूसरे राज्य के

वृत्तांत को जानता हुआ और प्रत्यक्षरूप से सम्पूर्ण वृत्तांत को जानकर सब व्यवहारों को साधता हुआ, प्रजा और राजकर्मचारियों को जो सन्तुष्ट और प्रसन्न रखकर पृथिवी का पालन करता है उसके मित्र आनन्द मनाते हैं, जैसे अमृत को पाकर देवता आनन्दित होते हैं, इसलिये हे पुत्र ! तुम भी अपने आप को संयमी बनाते हुए उत्तम आचरणपूर्वक रहना ॥

तच्छ्रुत्वा सुहृदस्तस्य रामस्य प्रियकारिणः ।
त्वरिता शीघ्रमागत्य कौसल्यायै न्यवेदयन् ॥३४॥
सा हिरण्यं च गाश्चैव रत्नानि विविधानि च ।
व्यादिदेश प्रियाख्येभ्यःकौसल्या प्रमदोत्तमा॥३५॥

अर्थ–राजा के उक्त वचन सुन राम के शुभचिन्तक सुहृदों ने तुरन्त ही शीघ्र कौसल्या के समीप पहुंच कर युवराज बनने विषयक सब वृत्त निवेदन किया और कौसल्या ने इस शुभसम्वाद को सुनकर उन कहने वालों को सुवर्ण, गौयें और विविध रत्न दिये ॥

अभिवाद्य राजानं रथमारुह्य राघवः ।
ययौ स्वं द्युतिमद्वेश्म जनौघैः प्रतिपूजितः ॥३६॥

अर्थ–इसके अनन्तर रामचन्द्र राजा को अभिवादन करके रथ पर चढ़ जन समूहों से यथास्थान आदर पाते हुए अपने देदीप्यमान मन्दिर को चले गये ॥

तेचापि पौरानृपतेर्वचस्तच्छ्रुत्वातदालाभमिवेष्टमाशु । नरेन्द्रमामन्त्र्यगृहाणिगत्वादेवान्समानर्चुरभिप्रहृष्टाः ॥ ३७ ॥

अर्थ–और पुरवासी लोग भी राजा दशरथ के वचन सुनकर मानो मनोवाञ्छित पदार्थ लाभ हुआ इस प्रकार आनन्दित हो शीघ्र ही अपने २ घरों में जाकर प्रसन्न हो देवताओं की पूजा* करने लगे ॥

इति तृतीयः सर्गः

अर्थ चतुर्थःसर्गः

गतेष्वथ नृपो भूयः पौरेषु सहमन्त्रिभिः ।
मंत्रयित्वा ततश्चक्रे निश्चयज्ञः सनिश्चयम् ॥१॥
श्व एव पुष्यो भविताश्वोभिषेच्यस्तु मे सुतः ।
रामोराजीव पत्राक्षो युवराज इति प्रभुः ॥ २ ॥

अर्थ–इसके अनन्तर निश्चय के जानने वाले राजा दशरथ ने यह निश्चय किया कि कल पुष्य नक्षत्र में कमलपत्र के समान नेत्रों वाले मेरे पुत्र रामचन्द्र का अभिषेक होगा अर्थात वह युवराज बनाये जावेंगे ॥

अथान्तर्गृहमाविश्य राजा दशरथस्तदा ।
सूतमामन्त्रयामास रामं पुनरिहानय ॥ ३ ॥

अर्थ–फिर राजा महलों में पधारे और सुमन्त्र को बुलाकर आज्ञा दी कि रामचन्द्र को फिर यहां बुला लाओ ॥

---

* दानादि द्वारा विद्वानों के सत्कार का नाम "देवपूजन" है ॥

इति सूत वचः श्रुत्वा रामोपित्वरयान्वितः ।
प्रययौ राजभवनं पुनर्द्रष्टुं नरेश्वरम् ॥ ४ ॥

अर्थ—सुमन्त्र ने रामचन्द्र के पास जाकर सब वृत्त कहा जिसको सुनकर राम अतिशीघ्र राजा के दर्शनार्थ राजमन्दिर को पधारे ॥

प्रविशन्नेव च श्रीमान् राघवो भवनं पितुः ।
ददर्श पितरं दूरात्प्रणिपत्य कृताञ्जलिः ॥ ५ ॥

अर्थ—रामचन्द्र ने राजमन्दिर में प्रवेश कर पिता दशरथ को हाथ जोड़कर प्रणाम किया ॥

प्रणमंतन्तमुत्थाप्य संपरिष्वज्यभूमिपः ।
प्रादिश्य चासनं चास्मै रामं च पुनरब्रवीत् ॥६ ॥

अर्थ—प्रणाम करते हुए पुत्र को प्रेमवशात् हृदय से लगा बैठने के लिये आसन दिया और फिर यह वचन बोले कि:—

राम वृद्धोस्मि दीर्घायुर्भुक्ताभोगायथेप्सिताः ।
अन्नवद्भिः क्रतुशतैर्यथेष्टं भूरिदाक्षिणैः ॥ ७ ॥
जातमिष्टमपत्यंमेत्वमद्यानुपमं भुवि ।
दत्तमिष्टमधीतं च मया पुरुषसत्तम ॥ ८ ॥

अर्थ—हे राम ! अब मैं दीर्घायु होने से बहुत वृद्ध होगया हूं और भोगों को भी भोग चुका हूं, अन्नयुक्त बहुदक्षिणा वाले बहुत से यथेष्ट यज्ञ किये, ईश्वर अनुग्रह से तुम जैसे पुत्र भी उत्पन्न हुए और जो इष्ट था वह सब पूर्ण हुआ, हे पुरुष सत्तम ! शास्त्रों का अध्ययन भी मैंने भले प्रकार किया ॥

अनुभूतानि चेष्टानि मया वीर सुखान्यपि ।
देवर्षिपितृविप्राणामनृणोऽस्मितथात्मनः ॥९॥
नकिंचिन्ममकर्तव्यं तवान्यत्राभिषेचनात् ।
अतो यत्त्वामहं ब्रूयां तन्मेत्वं कर्तुमर्हसि ॥१०॥
अद्य प्रकृतयः सर्वास्त्वामिच्छन्ति नराधिपम् ।
अतस्त्वां युवराजानमभिषेक्ष्यामि पुत्रक ॥११॥

अर्थ—हे वीर ! अब कोई ऐसा सुख शेष नहीं रहा जो मैंने न भोगा हो, देव, ऋषि, पितर और ब्राह्मण इनके ऋण सेभी छूट गया, क्योंकि जबतक पुरुष यज्ञ, अध्ययन, दान, पुत्रोत्पादन और उत्तम पदार्थों का भोग न करे तब तक उक्त ऋण से नहीं छूट सकता, सो अब मैं सर्वथा कृतकार्य्य हूं, अब तुम्हारे अभिषेक से भिन्न अन्य कुछ कर्तव्य नहीं, इसलिये जो तुम्हें मैं कहता हूं वह करो, हे नरश्रेष्ठ ! सब प्रजा तथा मन्त्रीगण की यह इच्छा है कि तुम युवराज होओ, इसलिये हे पुत्रक ! मैं तुमको कल प्रातः युवराज बनाना चाहता हूं ॥

अद्य चन्द्रोऽभ्युपगमत्पुष्यात्पूर्वं पुनर्वसुम् ।
श्वः पुष्ययोगं नियतं वक्ष्यन्ते दैवचिन्तकाः॥१२॥

अर्थ—आज पुनर्वसु नक्षत्र है कल प्रातःकाल पुष्य नक्षत्र होगा, ज्योतिर्वित् पुरुष कहते हैं कि राज्याभिषेक के लिये यही नक्षत्र सर्वोपरि है ॥

तस्मात्त्वयाद्य प्रभृतिनिशेयं नियमात्मना ।
सह वध्वोपवस्तव्यादर्भप्रस्तरशायिना ॥ १३ ॥

अर्थ–इसलिये तुम आज रात्रि को सपत्नीक व्रत कर नियम से रहना और पत्थर की शिला पर कुशासन बिछाकर शयन करना ॥

सुहृदश्चाप्रमत्तास्त्वां रक्षंत्वद्य समन्ततः ।
भवन्ति बहु विघ्नानि कार्याण्येवं विधानिहि ॥१४॥

अर्थ–तुम्हारे सुहृद् बड़ी सावधानी से आज तुम्हारी रक्षा चारो ओर से करते रहें, क्योंकि ऐसे कार्य्यों में अनेक प्रकार के विघ्न हुआ करते हैं ॥

इत्युक्तः सोभ्यनुज्ञातः श्वोभाविन्यभिषेचने ।
व्रजेतिरामः पितरमभिभाष्याभ्ययाद्गृहम् ॥ १५ ॥

अर्थ–उक्त प्रकार कथन करके राजा ने कहा कि अब तुम अपने घर जाओ, राजा की आज्ञानुसार प्रणाम करके रामचन्द्र अपने मन्दिर को चले गये ॥

प्रविश्यचात्मनो वेश्मराज्ञादिष्टेभिषेचने ।
तत्क्षणादेव निष्क्रम्य मातुरन्तःपुरंययौ ॥ १६ ॥
तत्र तां प्रवणामेवं मातरं क्षौमवासिनीम् ।
वाग्यतां देवतागारे ददर्शायाचतीं श्रियम् ॥१७॥

अर्थ–महाराज दशरथ से अभिषेक की आज्ञा होने पर रामचन्द्र तत्काल ही अपने घर आये कि यह प्रिय सम्वाद सीता को भी सुनाऊं पर वहां सीता को न देखकर तत्काल ही माता के अन्तःपुर को चले गये और वहां उन्होंने माता को रेशमी

वस्त्र पहने हुए अग्निमन्दिर में मौनधारण किये झुककर राम के लिये राज्यलक्ष्मी की याचना करते हुए देखा ॥

प्रागेव चागता तत्र सुमित्रा लक्ष्मणस्तथा ।
सीता चानायिता श्रुत्वा प्रियं रामाभिषेचनम्॥१८॥
तस्मिन् काले हि कौसल्या तस्थावामीलितेक्षणा ।
सुमित्रयाऽन्वास्यमाना सीतया लक्ष्मणेन च॥१९॥

अर्थ–और वहां सुमित्रा तथा लक्ष्मण पहले ही आचुके थे "राम का अभिषेक होगा" यह प्रिय सुनकर कौसल्या ने सीता को पहले ही वहां बुलालिया था, उस समय कौशल्या नेत्र बंद किये हुए परमात्मध्यान में स्थित थी और सुमित्रा, लक्ष्मण तथा सीता उनके पृष्ठभाग में बैठे हुए थे ॥

श्रुत्वा पुष्ये च पुत्रस्य यौवराज्येऽभिषेचनम् ।
प्राणायामेन पुरुषं ध्यायमाना जनार्दनम् ॥ २० ॥
तथा सनियमामेव सोऽभिगम्याभिवाद्य च ।
उवाच वचनं रामो हर्षयंस्तामिदं वचः ॥ २१ ॥

अर्थ–कौसल्या यह सुनकर कि पुष्यनक्षत्र में मेरे पुत्र को राज्याभिषेक होगा वह प्राणायाम द्वारा परमपुरुष का ध्यान कर रही थी, उस नियम वाली कौसल्या के समीप जाकर अभिवादन करके राम यह हर्षयुक्त वचन बोले कि :—

अम्ब पित्रा नियुक्तोस्मि प्रजापालनकर्मणि ।
भविता श्वोऽभिषेको मे यथा मे शासनं पितुः॥२२॥

अर्थ–हे अम्ब ! मुझको पिता ने प्रजापालनरूप कर्म में

नियुक्त किया है और कल प्रातः मेरा अभिषेक होगा, जैसाकि मुझे पिता का शासन है ॥

सीतयाप्युपवस्तव्या रजनीयं मयासह ।
एवमृत्विगुपाध्यायैः सह मामुक्तवान्पिता ॥२३॥
यानि यान्यत्र योग्यानि श्वो भाविन्यभिषेचने ।
तानि मे मङ्गलान्यद्य वैदेह्याश्चैव कारय ॥ २४ ॥

अर्थ–और आज रात्रि को सीता के सहित मैंने उपवास करना है, इस प्रकार ऋत्विज उपाध्यायों के साथ मुझको पिता ने आज्ञा दी है, कल होने वाले अभिषेक में जो २ मङ्गलकार्य्य होने चाहियें वह सब मेरे और सीता के आज करवावें ॥

एतच्छ्रुत्वा तु कौसल्या चिरकालाभिकांक्षितम् ।
हर्षबाष्पकुलं वाक्यमिदं राममभाषत ॥ २५ ॥

अर्थ–चिरकाल से इच्छावाली कौसल्या इस बात को सुनकर हर्षयुक्त मधुरवाणी से बोली कि :—

वत्स राम चिरंजीव हतास्ते परिपन्थिनः ।
ज्ञातीन्मे त्वं श्रिया युक्तः सुमित्रायाश्चनन्दय॥२६॥
इत्येवमुक्तो मात्रा तु रामो भ्रातरमब्रवीत् ॥
प्रांजलिं प्रह्वमासीनमभिवीक्ष्यस्मयन्निव ॥ २७ ॥

अर्थ–हे वत्स राम ! चिरजीवो, तुम्हारे शत्रु हत हों, लक्ष्मी से युक्त हुआ तू मेरे और सुमित्रा के बन्धुओं को आनन्दित करने वाला हो, इस प्रकार माता के बचन सुन हाथ जोड़ झुककर बैठे हुए भाई लक्ष्मण को देखकर मुसकराते हुए राम यह बचन बोले कि :—

लक्ष्मणेमां मया सार्धं प्रशाधि त्वं वसुंधराम् ।
द्वितीयं मेऽन्तरात्मानं त्वामियं श्रीरुपस्थिता॥२८॥
सौमित्रे भुङ्क्ष्व भोगांस्त्वमिष्टान् राज्यफलानि च ।
जीवितं चापि राज्यं च त्वदर्थमभिकामये ॥ २९ ॥

अर्थ–हे लक्ष्मण ! मेरे साथ इस पृथिवी का शासन कर, तू मेरा दूसरा अन्तरात्मा है सो यह लक्ष्मी तुम्हें उपस्थित हुई है, हे लक्ष्मण ! तू इष्टभोगों और राज्य के फलों को भोग, मैं तेरे लिये जीवन और राज्य चाहता हूं अर्थात् मेरा यह शरीर और राज्य आपके अर्थ ही है ॥

इत्युक्त्वा लक्ष्मणं रामो मातरावभिवाद्य च ।
अभ्यनुज्ञाप्य सीतां च ययौ स्वं च निवेशनम्॥३०॥

अर्थ–रामचन्द्र भाई लक्ष्मण को यह कहकर और दोनों माताओं को अभिवादन करके सीता को आज्ञा दिलाकर अपने भवन को चलेगये ॥

इति चतुर्थः सर्गः

अथ पंचमः सर्गः

संदिश्य रामं नृपतिः श्वोभाविन्यभिषेचने ।
पुरोहितं समाहूय वसिष्ठमिदमब्रवीत् ॥ १ ॥

अर्थ–राजा ने कल होने वाले अभिषेक के विषय में राम को संदेश देकर फिर पुरोहित वसिष्ठ को बुलाकर यह वचन कहा कि :—

गच्छोपवासं काकुत्स्थं कारयाद्य तपोधन ।
श्रेयसे राज्यलाभाय बध्वा सह यतव्रत ॥ २ ॥

अर्थ—हे दृढ़ व्रतों वाले तपोधन! आप राम को श्री, यश और राज्यलाभ के लिये वधु सहित उपवास करायें ॥

तथेति च स राजानमुक्त्वा वेदविदांवरः ।
स्वयं वसिष्ठो भगवान् ययौ रामनिवेशनम् ॥ ३ ॥
उपवासयितुं वीरं मंत्रविन्मंत्र-कोविदम् ।
ब्राह्मं रथवरं युक्तमास्थाय सुधृतव्रतः ॥ ४ ॥

अर्थ—राजा के उक्त वचन सुन "तथास्तु" कहकर वेद जानने वालों में श्रेष्ठ भगवान् वसिष्ठ ब्राह्म रथ पर चढ़कर उपवास कराने को उस वीर दीप्तिमान् रामचन्द्र के घर गये ॥

तमागतमृषिं रामस्त्वरन्निव ससंभ्रमम् ।
मानयिष्यन् स मानार्हं निश्चक्राम निवेशनात् ॥५॥
अभ्येत्य त्वरमाणोऽथ रथाभ्याशं मनीषिणः ।
ततोऽवतारयामास परिगृह्य रथात्स्वयम् ॥ ६ ॥

अर्थ—मानार्ह=प्रतिष्ठा योग्य ऋषि के आने पर उनके सन्मानार्थ राम गौरव के साथ शीघ्र ही भवन से बाहर आये और महर्षि के रथ के निकट जाकर उनका स्वयं हाथ पकड़ रथ से उतारा ॥

स चैनं प्रश्रितं दृष्ट्वा संभाष्याभिप्रसाद्य च ।
प्रियार्हं हर्षयन् राममित्युवाच पुरोहितः ॥ ७ ॥

प्रसन्नस्ते पिता राम यत्त्वं राज्यमवाप्स्यसि ।
उपवासं भवानद्य करोतु सह सीतया ॥ ८ ॥

अर्थ-रामचन्द्र को नम्र देखकर सम्भाषण द्वारा उनको प्रसन्न किया और प्रिय वचन योग्य राम को हर्षित करते हुए पुरोहित वसिष्ठजी बोले कि हे राम! तुम्हारे पिता तुम पर प्रसन्न हैं तुम्हें कल युवराज बनाया जायगा, इसलिये आप सीता समेत आज उपवास करें ॥

प्रातस्त्वामभिषेक्ता हि यौवराज्ये नराधिपः ।
पिता दशरथः प्रीत्या ययातिं नहुषो यथा ॥ ९ ॥
इत्युक्त्वा स तदा राममुपवासं यतव्रतः ।
मन्त्रवत्कारयामास वैदेह्या सहितं मुनिः ॥ १० ॥

अर्थ-हे राम! तुम्हारे पिता प्रातःकाल तुम्हें यौवराज्य पर स्थापित करेंगे, क्योंकि वह तुमसे बहुत प्रसन्न हैं, जैसे प्रसन्न होकर राजा नहुष ने ययाति को राज्य दिया वैसे ही तुमको दशरथ देंगे, यह कहकर दृढ़ व्रतों वाले राम को सीता सहित मुनि ने उपवास कराया ॥

ततो यथावद्रामेण स राज्ञो गुरुरर्चितः ।
अभ्यनुज्ञाप्य काकुत्स्थं ययौ रामनिवेशनात् ॥ ११ ॥
सुहृद्भिस्तत्र रामोपि सहासीनः प्रियंवदैः ।
सभाजितो विवेशाथताननुज्ञाप्य सर्वशः ॥ १२ ॥
हृष्टनारीनरयुतं रामवेश्म तदाबभौ ।
यथा मत्तद्विजगणं प्रफुल्लनलिनं सरः ॥ १३ ॥

अर्थ–राम ने गुरु वसिष्ठ की यथायोग्य पूजा की, फिर वह राम से आज्ञा लेकर उनके भवन से चले गये, और राम भी वहां प्रियवादी मित्रों के साथ बैठे हुए उनसे पूजित हो उन सबको आज्ञा देकर अपने भवन में प्रविष्ट हुए, उस समय हर्ष से भरे हुए नरनारियों से युक्त राजभवन ऐसा शोभायमान था जैसे मत्त पक्षिगणों से युक्त फूले हुए कमलों वाला सरोवर शोभायमान होता है ॥

स राजभवनप्रख्यात्तस्माद्रामनिवेशनात् ।
निर्गत्य ददृशे मार्गं वसिष्ठो जनसंवृतम् ॥ १४ ॥
जनवृन्दोर्मि संघर्षहर्षस्वनवतस्तदा ।
बभूव राजमार्गस्य सागरस्येव निःस्वनः ॥ १५ ॥

अर्थ–इधर, वसिष्ठजी ने राजभवन के तुल्य रामभवन से निकल कर देखा तो सब सड़कों को लोगों से भरा हुआ पाया, राजमार्गों में लोगों की हर्षध्वनि मानो सागर की ध्वनि सी प्रकट होरही है, लोगों के दलों के दल शब्द करते हुए सड़कों पर लहरों के तुल्य जाते थे ॥

सिक्तसंमृष्टरथ्याहि तथा च वनमालिनी ।
आसीदयोध्या तदहः समुच्छ्रितगृहध्वजा ॥ १६ ॥
तदाह्ययोध्यानिलयः सस्त्रीबालाकुलोजनः ।
रामाभिषेकमाकांक्षन्नाकांक्षन्नुदयंरवेः ॥ १७ ॥

अर्थ–उस समय सड़कों पर छिड़काव होने और भांति २ के वृक्ष जगह २ लगने और ऊंचे २ ध्वजा पताकादिकों से

अयोध्या परम सुशोभित थी, उस समय अयोध्यावासी सब स्त्री पुरुष रामचन्द्र के अभिषेक को देखने के लिये सूर्य्य के उदय होने की इच्छा करते थे ॥

प्रजालंकारभूतं च जनस्यानन्दवर्धनम् ।
उत्सुकोऽभूज्जनो द्रष्टुं तमयोध्यामहोत्सवम् ॥१८॥
एवं तज्जनसंबाधं राजमार्गं पुरोहितः ।
व्यूहन्निव जनौघं तं शनै राजकुलं ययौ ॥ १९ ॥

अर्थ–प्रजा के अलंकारभूत लोगों के आनन्द बढ़ाने वाले अयोध्या के उस महोत्सव को देखने के लिये लोग अति उत्साहित थे, इस प्रकार लोगों से भरे हुए उस राजमार्ग में जनसमुदाय से धीरे २ मार्ग निकालते हुए पुरोहित राजभवन को गये ॥

तमागतमभिप्रेक्ष्य हित्वा राजासनं नृपः ।
पप्रच्छ स च तस्मै तत् कृतमित्यभिवेदयत् ॥२०॥
तेन चैव तदा तुल्यं सहासीनाः सभासदः ।
आसनेभ्यः समुत्तस्थुः पूजयन्तः पुरोहितम् ॥२१॥

अर्थ–उनको आता देखकर राजा अपने आसन से उठकर खड़े हो उनसे पूछने लगे तब पुरोहित वसिष्ठजी ने सुनाया कि सब कृत्य करा आया हूं, राजा के साथ बैठे हुए सब सभासद पुरोहितजी की पूजा करते हुए अपने २ आसनों से उठ खड़े हुए ॥

गुरुणात्वभ्यनुज्ञातो मनुजौघं विसृज्यतम् ।
विवेशान्तः पुरं राजा सिंहो गिरिगुहामिव ॥२२॥

अर्थ—फिर गुरु से आज्ञा लेकर राजा सबको विसर्जन करके अन्तःपुर में प्रविष्ट हुए जैसे सिंह पर्वत की कन्दरा में प्रवेश करता है ॥

इति पंचमः सर्गः

अथ षष्ठः सर्गः

गते पुरोहिते रामः स्नातो नियत मानसः ।
सहपत्न्या विशालाक्ष्या नारायणमुपागमत् ॥१॥

अर्थ—जब पुरोहित वसिष्ठजी चलेगये तब विशालनेत्र सीता सहित रामचन्द्र मन को जीत स्नान कर नारायण=परमात्मा की उपासना में प्रवृत्त हुए ॥

प्रगृह्यशिरसापात्रीं हविषो विधिवत्ततः ।
महते दैवताऽयाज्यं जुहावज्वलितानले ॥ २ ॥

अर्थ—प्रथम हवि=हवन सामग्री को विधिवत् तैयार करके उसकी प्रतिष्ठा की फिर परमपिता परमात्मा के निमित्त प्रज्वलित अग्नि पर आहुति देकर :—

शेषं च हविषस्तस्य प्राश्याशास्यात्मनःप्रियम् ।
ध्यायन्नारायणं देवं स्वास्तीर्णे कुशसंस्तरे ॥३॥

अर्थ—आत्मा को प्रिय शेष बचे हुए हविष को खाकर परमात्मा का ध्यान करते हुए कुशासन के विस्तर पर मौन धारण कर सोये ॥

एकयामावशिष्टायां रात्र्यां प्रति विबुध्य सः ।
अलंकार विधिं सम्यक्कारयामास वेश्मनः ॥ ४ ॥

अर्थ–एक पहर रात्रि शेष रहने पर उठे और उठकर अपने भवन को भलेप्रकार शुद्ध कराया ॥

तत्र शृण्वन् सुखावाचः सूतमागधवन्दिनाम् ।
पूर्वांसन्ध्यामुपासीनो जजापसु समाहितः ॥५॥
तुष्टाव प्रणतश्चैव शिरसा मधुसूदनम् ।
विमलक्षौमसंवीतो वाचयामास सद्विजान् ॥ ६ ॥

अर्थ–फिर तत्काल ही सूत=प्राचीन यश गान करने वाले और मागध=वंशावली कहने वालों ने आकर प्रिय संवाद सुनाया, और राम पूर्वकालिक सन्ध्या उपासना तथा गायत्री के जप करने में प्रवृत्त हुए, इसके अनन्तर राम ने झुककर परमात्मा की स्तुति प्रार्थना की और फिर विमल वस्त्र धारण करके ब्राह्मणों को बुला स्वस्तिवाचन और शान्तिपाठ कराया ॥

ततः पौरजनः सर्वः श्रुत्वा रामाभिषेचनम् ।
प्रभातां रजनीं दृष्ट्वा चक्रे शोभायितुं पुरीम् ॥७॥

अर्थ–इसके अनन्तर प्रभात होने पर सब पुरवासियों ने राम का अभिषेक सुनकर पुरी को भलेप्रकार सुशोभित बनाया॥

जनौघैस्तैर्विसर्पद्भिः शुश्रुवे तत्र निःस्वनः ।
पर्व सूदीर्ण वेगस्य सागरस्येव निःस्वनः ॥८॥

अर्थ–अयोध्या में बड़ा आनन्दोत्सव होरहा था, सब

लोग इधर उधर घूमते हुए बड़ा भारी शब्द सुनते थे जैसे पूर्णमासी के दिन बढ़े हुए अतिवेगवाले समुद्र का शब्द सुनाई देता है ॥

ज्ञातीदासी यतो जाता कैकेय्या सहोषिता ।
प्रासादं चन्द्रसंकाशमारुरोह यदृच्छया ॥ ९ ॥
सिक्तराजपथां रम्यां प्रकीर्णकमलोत्पलाम् ।
अयोध्यां मन्थरा तस्मात् प्रसादादन्ववैक्षत ॥१०॥

अर्थ—अयोध्या में यह सब आनन्द होरहा था कि एक ज्ञाती-दासी=जो कैकेयी के माता पिता ने दी थी और जो रानी कैकेयी की सेवा में रहती थी, वह चन्द्रतुल्य प्रासाद=महल पर स्वाभाविक=अचानक चढ़ी और उसने महल पर से देखा कि अयोध्या बड़ी रम्य बन रही है उसके राजपथों में सुगन्धित जलों का छिड़काव होकर उनपर कमलफूल खिले हुए हैं ॥

पताकाभिर्वराहाभिर्ध्वजैश्च समलंकृताम् ।
संप्रहृष्टजनाकीर्णां ब्रह्मघोषनिनादिताम् ॥ ११ ॥
हृष्टप्रमुदितैः पौरैरुच्छ्रितध्वजमालिनीम् ।
अयोध्यां मन्थरा दृष्ट्वा परं विस्मयमागता ॥१२॥

अर्थ—बहुमूल्य ध्वजा पताका सब ऊंचे २ स्थानों पर सुशोभित होरही हैं, हर्ष से भरे हुए लोगों से भरपूर तथा सर्वत्र वेद-ध्वनि होरही है और हर्ष तथा मोद से भरे हुए पुरवासी ध्वजायें ऊंची कर रहे हैं, अचानक ही अयोध्या की ऐसी धूमधाम देखकर मन्थरा बड़े विस्मय=अचम्भे को प्राप्त हुई ॥

सा हर्षोत्फुल्लनयनां पाण्डुरक्षौमवासिनीम् ।
अविदूरे स्थितां दृष्ट्वा धात्रीं पप्रच्छ मन्थरा ॥१३॥
उत्तमेनाभिसंयुक्ता हर्षेणार्थपरासती ।
राममाता धनं किंनु जनेभ्यः संप्रयच्छति ॥१४॥

अर्थ—तब मन्थरा ने हर्ष से प्रफुल्लित नेत्रों वाली, शुद्ध वस्त्र धारण किये हुए समीप ही कौसल्या के महल पर स्थित रामचन्द्र की धाया से पूछा कि आज क्या है जो बड़ी हर्षित होकर राम की माता लोगों को धन देरही है ॥

अतिमात्रं प्रहर्षः किं जनस्यास्य च शंस मे ।
कारयिष्यति किं वापि संप्रहृष्टो महीपतिः ॥१५॥

अर्थ—आज लोग क्यों अति हर्षित होरहे हैं और राजा भी अति प्रसन्न हुआ क्या करना चाहता है ? यह मुझको संशय है तू सम्पूर्ण वृत्त सुना ॥

विदीर्यमाणा हर्षेण धात्रीतु परयामुदा ।
आचचक्षेऽथ कुब्जायै भूयसीं राघवे श्रियम् ॥१६॥
श्वः पुष्येण जितक्रोधं यौवराज्येन चानघम् ।
राजा दशरथो राममभिषेक्ता हि राघवम् ॥ १७ ॥

अर्थ—हर्ष से भरी हुई परम मुदित धाया ने बड़ी प्रसन्नतापूर्वक कुब्जा को बतलाया कि राम को भूयसी राज्यलक्ष्मी दीजाने वाली है, कल पुष्य नक्षत्र में जितक्रोध, निष्पाप राम को राजा राजतिलक देंगे ॥

धात्र्यास्तु वचनं श्रुत्वा कुब्जा क्षिप्रममर्षिता ।
कैलासशिखराकारात्प्रासादादवरोहत ॥ १८ ॥
सा दह्यमाना क्रोधेन मन्थरा पापदर्शिनी ।
शयानामेत्य कैकेयीमिदंवचनमब्रवीत् ॥ १९ ॥

अर्थ–धाया के वचन सुनकर मन्थरा न सहसकी, क्रोध से भरी हुई कैलासशिखर समान ऊंचे महल से शीघ्र ही उतर आई और क्रोध से जलती हुई पापदर्शिनी मन्थरा लेटी हुई कैकेयी के समीप आकर बोली कि :—

उत्तिष्ठ मूढ़े किं शेषे भयं त्वामभिवर्तते ।
उपप्लुतमघौघेन नात्मानमवबुध्यसे ॥ २० ॥
अनिष्टे सुभगाकारे सौभाग्येन विकत्थसे ।
चलं हि तव सौभाग्यं नद्याः स्रोत इवोष्णगे॥२१॥

अर्थ–हे भोली उठ क्यों लेट रही है तेरे सन्मुख बड़ा भय वर्त रहा है, तू अपने आपको दुःख से घिरा हुआ नहीं समझती, हे सौभाग्यवती के समान भाषण करने वाली, तू सौभाग्य से अपने आपको सराहा करती थी कि " मेरा स्वामी सब से बढ़कर मेरा प्रिय चाहता है " अब तेरा सौभाग्य क्षीण होने वाला है, जैसे गरमी में नदियों का प्रवाह सूखजाता है ॥

एवमुक्त्वा तु कैकेयी रुष्टया परुषं वचः ।
कुब्जया पापदर्शिन्या विषादमगमत्परम् ॥२२॥
कैकेयीत्वब्रवीत् कुब्जां कच्चित् क्षेम न मन्थरे ।
विषण्णवदनां हि त्वां लक्षये भृशदुःखिताम् ॥२३॥

अर्थ–जब रुष्ट हुई पापदर्शिनी मन्थरा ने कैकेयी को उक्त प्रकार कठोर वचन कहा तो वह बड़े बिषाद को प्राप्त होकर मन्थरा से बोली कि हे मन्थरे! कुशल तो है? यह क्या कारण है जो मैं तुझको उदास मुख और अत्यन्त दुःखी देखती हूं॥

सा विषण्णतरा भूत्वा कुब्जा तस्य हितैषिणी।
विषादयन्ती प्रोवाच भेदयन्ती च राघवम्॥२४॥

अर्थ–यह सुनकर और भी अधिक खिन्नमुख हो कैकेयी की हितैषिणी मन्थरा कैकेयी को विषाद और राजा दशरथ से भेद उत्पन्न करती हुई बोली कि:—

अक्षयं सुमहद्देवि प्रवृत्तं त्वद्विनाशनम्।
रामं दशरथो राजा यौवराज्येऽभिषेक्ष्यति॥२५॥
सास्म्यगाधे भये मग्ना दुःखशोकसमन्विता।
दह्यमानानलेनेव त्वद्धितार्थमिहागता॥२६॥

अर्थ–हे देवि! तुम्हारा बहुत बड़ा विनाश होने लगा है जो कभी पूर्ण न होगा, राजा दशरथ राम को युवराज बनायेंगे, सो मैं दुःख, शोक से युक्त अगाध भय में डूबी हुई आग से जलती हुई सी तुम्हारे हित के लिये ऊपर से यहां आई हूं॥

तव दुःखेन कैकेयि मम दुःखं महद्भवेत्।
त्वद्वृद्धौ मम वृद्धिश्च भवेदत्र न संशयः॥२७॥
नराधिपकुले जाता महिषी त्वं महीपतेः।
उग्रत्वं राजधर्माणां कथं देवि न बुध्यसे॥२८॥

अर्थ—हे कैकेयि ! तुम्हारे दुःख से मुझे बड़ा दुःख होगा और तुम्हारी वृद्धि से मेरी वृद्धि होगी, इसमें संशय नहीं, हे देवि ! राजकुल में उत्पन्न और राजा की रानी होकर न जाने तू राजधर्मों की भयंकरता को क्यों नहीं समझती ॥

उपस्थितं प्रयुञ्जानस्त्वयि सान्त्वमनर्थकम् ।
अर्थेनैवाद्य ते भर्ता कौसल्यां योजयिष्यति ॥२९॥
अपवाह्य तु दुष्टात्मा भरतं तव बन्धुषु ।
काल्ये स्थापयिता रामं राज्ये निहतकण्टके ॥३०॥

अर्थ—तेरा भर्ता राजा तुझको प्रत्येक अवसर पर यों ही तसल्ली देता रहा पर धन धान्य से आज कौसल्या को ही युक्त करेगा और मन में खुटाई रखकर ही भरत को ननिहार=तेरे बान्धवों में निकाल अवसर पाकर निष्कण्टक राज्य में राम को स्थापन करेगा ॥

सा प्राप्तकालं कैकेयि क्षिप्रं कुरु हितं तव ।
त्रायस्व पुत्रमात्मानं मां च विस्मयदर्शने ॥ ३१ ॥
मन्थराया वचः श्रुत्वा शयनात्सा शुभानना ।
उत्तस्थौ हर्षसंपूर्णा चन्द्रलेखेव शारदी ॥ ३२ ॥

अर्थ—हे कैकेयि ! अभी समय है, अपना हित शीघ्रकर, हे आश्चर्य्य देखने वाली अपने आपको, अपने पुत्र और मुझको बचा, मन्थरा के बचन सुन वह सुन्दर मुख वाली लेटी हुई हर्ष से पूर्ण हो शरदऋतु की चन्द्ररेखा के समान उठ बैठी ॥

अतीव सा तु सन्तुष्टा कैकेयी विस्मयान्विता ।
दिव्यमाभरणं तस्यै कुब्जायै प्रददौ शुभम् ॥३३॥

अर्थ-और अत्यन्त प्रसन्न तथा आश्चर्य हुई कैकेयी ने एक दिव्यभूषण उतार कर मन्थरा को दिया और बोली कि :—

इदं तु मन्थरे मह्यमाख्यातं परमं प्रियम् ।
एतन्मे प्रियमाख्यातं किं वा भूयः करोमि ते ॥३४॥

अर्थ-हे मन्थरा ! यह तो तैने मुझ से परमप्रिय बात कही, यह तैने मुझे प्रिय बतलाया है, कह तुझे और क्या दान= पारतोषिक दूं ॥

रामे वा भरते वाहं विशेषं नोपलक्षये ।
तस्मात्तुष्टास्मि यद्राजा रामं राज्येऽभिषेक्ष्यति ॥३५॥
न मे परं किंचिदितो वरं पुनः प्रियं प्रियार्हे
सुवचं वचोऽमृतम् । तथा ह्यवोचस्त्वमतः
प्रियोत्तमं वरं परं ते प्रददामि तं वृणु ॥३६॥

अर्थ-राम और भरत में कोई भेद नहीं, इसलिये मैं यह सुनकर प्रसन्न हुई हूं कि राजा राम को राज्य देंगे, हे प्रीति-दान के योग्य मन्थरा ! यह तैने बड़ा उत्तम अमृतरूप वचन कहा इससे बढ़कर और तू उत्तम वचन मेरे लिये नहीं कहसक्ती, सो मैं इस पारतोषिक से पीछे तुझको और उत्तम वर देती हूं कि जो पदार्थ चाहे सो मांगले ॥

इति षष्ठः सर्गः

अथ सप्तमः सर्गः

मन्थरात्वभ्यसूयैनामुत्सृज्याभरणं हि तत् ।
उवाचेदं ततो वाक्यं कोप दुःख समन्विता ॥१॥

अर्थ—कैकेयी के उक्त वचन सुन बड़ी निन्दा से उसका दिया हुआ भूषण फैंक कर बड़े कोप वा दुःख से मन्थरा बोली कि :—

हर्षं किमिदमस्थाने कृतवत्यसिबालिशे ।
शोकसागर मध्यस्थं नात्मानमवबुध्यसे ॥ २ ॥
मनसा प्रसहामि त्वां देवि दुःखार्दिता सती ।
यच्छोचितव्ये हृष्टासि प्राप्य त्वं व्यसनं महत् ॥३॥

अर्थ—हे कैकेयि ! तू किस तरह कुठौर हर्ष कर रही है तू अपने आपको शोकसागर के मध्य में स्थित नहीं समझती भला यह हर्ष का कौन समय है, हे देवि ! मैं दुःख से पीड़ित हुई मन से तुम पर हंसती हूं कि तुम इस भारी विपद को प्राप्त होकर शोक के स्थान में हर्ष मना रही हो ॥

शोचामि दुर्मतित्वं ते काहि प्राज्ञा प्रहर्षयेत् ।
अरेः सपत्नीपुत्रस्य वृद्धिं मृत्योरिवागताम् ॥४॥
भरतादेव रामस्य राज्य साधारणाद्भयम् ।
तद्विचिन्त्यविषण्णास्मि भयं भीताद्धिजायते ॥५॥

अर्थ—मैं तुम्हारी कुबुद्धि को सोचती हूं कि कौनसी मति तुमको हर्षित करती है, सौतिन के पुत्र की बढ़ती जो मृत्यु के समान है उसको तू चाहती है, राज्य में साझा होने से राम को भरत से ही भय है, क्योंकि भीत से भय होता है, इस चिन्ता से मैं अति आतुर हूं ॥

लक्ष्मणो हि महाबाहू रामं सर्वात्मनागतः ।
शत्रुघ्नश्चापि भरतं काकुत्स्थं लक्ष्मणो यथा ॥६॥
प्रत्यासन्नक्रमेणापि भरतस्यैव भामिनि ।
राज्यक्रमो विप्रकृष्टस्तयोस्तावद्यवीयसोः ॥ ७ ॥
विदुषः क्षत्रचारित्रे प्राज्ञस्य प्राप्तकारिणः ।
भयात्प्रवेपे रामस्य चिन्तयन्ती तवात्मजम् ॥८॥

अर्थ—महाबाहु लक्ष्मण सर्वथा राम के अनुगत और इसी प्रकार शत्रुघ्न भरत की ओर होने से उन दोनों को भय नहीं होसक्ता, केवल भरत वा राम में ही राज्य सम्बन्धी झगड़ा है, हे भामिनि ! उत्पत्ति क्रम से भी भरत को ही राज्य प्राप्त है, क्योंकि दूसरे दोनों छोटे हैं, क्षत्रचारित्र=सन्धि विग्रह में निपुण, बुद्धिमान्, प्राप्त अवसर को न खोने वाला और सब तरह नीतिज्ञ राम से तेरे पुत्र भरत के प्रति भावी अनर्थ सोचती हुई मैं भय से कांप रही हूं ॥

सुभगा खलु कौसल्या यस्याः पुत्रोऽभिषेक्ष्यते ।
उपस्थास्यसि कौसल्यां दासीव त्वं कृताञ्जलिः ॥९॥

अर्थ—निश्चयकरके कौसल्या सौभाग्यवती है जिसका पुत्र

कल युवराज होगा, और तू दासी की भांति हाथ बांधकर कौसल्या की सेवा में उपस्थित हुआ करेगी ॥

एवं च त्वं सहास्माभिस्तस्याः प्रेष्या भविष्यसि ।
पुत्रश्च तव रामस्य प्रेष्यभावं गमिष्यति ॥ १० ॥
तां दृष्ट्वा परमप्रीतां ब्रुवन्ती मन्थरां ततः ।
रामस्यैव गुणान्देवी कैकेयी प्रशशंस ह ॥ ११ ॥

अर्थ–इस प्रकार तुम हमारे सहित कौसल्या की सेविका होगी और तुम्हारा पुत्र राम का चाकर बनेगा, कैकेयी मन्थरा को बड़ी अप्रसन्नता से बोलती हुई देखकर वह फिर भी राम ही के गुणों की प्रशंसा करने लगी कि :—

धर्मज्ञो गुणवान् दान्तः कृतज्ञः सत्यवाञ्छुचिः ।
रामो राजसुतो ज्येष्ठो यौवराज्यमतोऽर्हति ॥१२॥
भ्रातॄन् भृत्यांश्च दीर्घायुः पितृवत्पालयिष्यति ।
संतप्यसे कथं कुब्जे श्रुत्वा रामाभिषेचनम् ॥१३॥

अर्थ–हे मन्थरा ! राम राजा का ज्येष्ठ पुत्र है और वह बड़ा धर्मात्मा, गुणवान दमनशील, किये हुए उपकार को मानने वाला, सत्यवादी और पवित्र होने से वही युवराज होने योग्य है, वह दीर्घायु राम भ्राताओं और भृत्यों का पितावत पालन करेगा, हे कुब्जे ! तू रामाभिषेक को सुनकर क्यों संतप्त होरही है ॥

भरतश्चापि रामस्य ध्रुवं वर्षशतात्परम् ।
पितृपैतामहंराज्यमवाप्स्यतिनरर्षभः ॥ १४ ॥

अर्थ-अब रही यह बात कि राम राजा होगा, सो यदि राम सौ वर्ष भी राज्य करे तो भी पिता पितामह से प्राप्त हुए राज्य को वह कदापि नहीं दबा सक्ता, इसलिये सद्गुणसम्पन्न भरत फिर भी अपने राज्य को प्राप्त कर लेगा॥

साचत्वभ्युदये प्राप्ते दह्यमानेव मन्थरे ।
भविष्यति च कल्याणे किमिदं परितप्यसे ॥१५॥

अर्थ-हे मन्थरा ! ऐसे उत्सव समय जिसमें सब प्रकार कल्याण ही कल्याण होगा तू क्यों दग्ध होरही है ॥

यथा वै भरतो मान्यस्तथा भूयोऽपि राघवः ।
कौसल्यातोऽतिरिक्तं च स तु शुश्रूषते हि मां॥१६॥
राज्यं यदि हि रामस्य भरतस्यापि तत्तदा ।
मन्यते हि यथात्मानं तथा भ्रातृंस्तु राघवः॥१७॥
कैकेय्या वचनं श्रुत्वा मन्थरा भृशदुःखिता ।
दीर्घमुष्णं विनिश्वस्य कैकयीमिदमब्रवीत् ॥१८॥

अर्थ-जिसप्रकार भरत मुझको मान्य=प्रिय है उससे बढ़कर मुझको राम प्यारा है, क्योंकि वह कौसल्या से अधिक मेरी सेवा करता है, यदि राम का राज्य है तो वह भरत का भी है, क्योंकि राम अपने भाइयों को अपने जैसा समझता है, कैकेयी के उक्त बचन सुनकर मन्थरा असन्त दुःखी हो ऊंचा गरम श्वास भरकर कैकेयी से यह बचन बोली कि :—

अनर्थदर्शिनी मौर्ख्यान्नात्मानमवबुध्यसे ।
शोकव्यसनविस्तीर्णे मज्जन्ती दुःखसागरे ॥१९॥

भविता राघवो राजा राघवस्यानु यः सुतः ।
राजवंशात्तु भरतः कैकेयि परिहास्यते ॥ २० ॥
असावत्यन्तनिर्भग्नस्तव पुत्रो भविष्यति ।
अनाथवत्सुखेभ्यश्च राजवंशाच्च वत्सले ॥ २१ ॥
साहंत्वदर्थे संप्राप्ता त्वं तु मां नावबुध्यसे ।
सपत्निवृद्धौ या मे त्वं प्रदेयं दातुमिच्छसि ॥ २२ ॥

अर्थ–हे कैकेयि ! तू मूर्खता से भारी अनर्थ देखेगी, जो शोक और विपद् से विस्तीर्ण=फैले हुए दुःखसागर में डूबती हुई तू अपने आपको नहीं समझती कि क्या होगा, हे कैकेयि ! अब राम राजा होगा और उसके पीछे उसका पुत्र युवराज होने से भरत राजवंश से पृथक् होजायगा, अधिक क्या वह तेरा पुत्र भरत सुख और राजवंश से अनाथ की न्याईं सदा असन्त दूर रहेगा, सो मैं तेरे शुभ के लिये प्राप्त हुई हूं पर तू मेरे वचन नहीं समझती प्रत्युत सौतिन की वृद्धि में तू मुझे उलटा पारतोषिक देना चाहती है ॥

ध्रुवं तु भरतं रामः प्राप्य राज्यमकण्टकम् ।
देशान्तरं नाययितालोकान्तरमथापि वा ॥ २३ ॥

अर्थ–इस निष्कण्टक राज्य को प्राप्त होकर यह बात निश्चित है कि राम या तो भरत को देशान्तर भेजेगा अथवा लोकान्तर में पहुंचायेगा ॥

बाल एव तु मातुल्यं भरतो नायितस्त्वया ।
सन्निकर्षाच्च सौहार्दं जायते स्थावरेष्विव ॥ २४ ॥

भरतानुवशात्सोपि शत्रुघ्नस्तत्समंगतः ।
लक्ष्मणो हि यथा रामं तथायं भरतं गतः ॥ २५ ॥
श्रूयते हि द्रुमः कश्चिच्छेत्तव्योवनजीवनैः ।
सन्निकर्षादिषीकाभिर्मोचितः परमाद्भयात् ॥ २६ ॥

अर्थ–राम तो भरत को जब निकालेगा तब निकालेगा पर तुमने तो बाल्यावस्था में ही उसको ननिहार में भेजदिया फिर स्नेह कहां रहा, स्नेह तो निकट रहने ही से होता है जैसाकि स्थावरों में भी देखा जाता है कि लता गुल्मादि निकट रहने वाले से ही मोह करते हैं, भरत का साथी होने से शत्रुघ्न भी राजा के मोह से पृथक् होगया और जिस प्रकार लक्ष्मण राम का अनुयायी होने से राजा के समीप है इसी प्रकार भरत का अनुयायी होने से शत्रुघ्न दूर है, जैसाकि एक उदाहरण है कि एक वृक्ष वनजीवियों से काटने योग्य भी था पर जिनके वह समीप था उन्होंने सन्निकट जान नहीं काटा प्रत्युत कांटों की बाड़ लगाकर और भी सुरक्षित करादेया और तुमने अपने पुत्र को पृथक् कर ननिहार भेजदिया, तुमसे तो वही अच्छे हैं ॥

गोप्ता हि रामं सौमित्रिर्लक्ष्मणं चापि राघवः ।
अश्विनोरिवसौभ्रात्रं तयोर्लोकेषुविश्रुतम् ॥२७॥

अर्थ–लक्ष्मण राम की और राम लक्ष्मण की रक्षा करेगा, इन दोनों का भ्रातृभाव अश्विनीकुमारों के समान लोक में प्रसिद्ध है ॥

तस्मान्न लक्ष्मणे रामः पापं किंचित्करिष्यति ।
रामस्तु भरते पापं कुर्यादेव न संशयः ॥ २८ ॥

तस्माद्राजगृहादेव वनं गच्छतु राघवः ।
एतद्धि रोचते मह्यं भृशं चापि हितं तव ॥ २९ ॥

अर्थ—इसलिये राम लक्ष्मण के साथ कुछ पाप नहीं करेंगे पर भरत के साथ अवश्य करेंगे, इसमें सन्देह नहीं. इस कारण मुझको यह भला प्रतीत होता है कि राजभवन से राम शीघ्र ही बन को जायं और इसी में तुम्हारा हित भी है ॥

एवं ते ज्ञातिपक्षस्य श्रेयश्चैव भविष्यति ।
यदिचेद् भरतो धर्मात्पित्र्यंराज्यमवाप्स्यति॥३०॥
स ते सुखोचितो बालो रामस्य सहजो रिपुः ।
समृद्धार्थस्य नष्टार्थो जीविष्यति कथंवशे ॥ ३१ ॥

अर्थ—और इसमें केवल तुम्हारा ही कल्याण नहीं वरन सब जातिवर्ग का कल्याण होगा जो भरत धर्म से अपने पिता का राज्य पावेंगे, भरत केवल तुम्हें ही प्यारे हैं और रामचन्द्र के तो सहज=स्वाभाविक रिपु हैं फिर समृद्धि के नष्ट होने पर राम के अधीन हो कैसे जीवेंगे ॥

अभिद्रुतमिवारण्ये सिंहेन गजयूथपम् ।
प्रच्छाद्यमानं रामेण भरतं त्रातुमर्हसि ॥ ३२ ॥
दर्पान्निराकृता पूर्वं त्वयासौभग्यवत्तया ।
राममाता सपत्नी ते कथं वैरं नयापयेत् ॥ ३३ ॥

अर्थ—इसलिये बन में सिंह से भयभीत हाथी झुण्ड के समान राम से भयभीत भरत की रक्षा कीजिये, और यह भी नहीं

कि राजा होने से भरत ही को दुःख होगा किन्तु तैने अपने सौभाग्य के अभिमान से अपनी सौतिन कौसल्या के साथ जो २ वैर किये हैं उन सबका बदला राम के राजा होने से वह अवश्य लेगी ॥

यदा हि रामः पृथिवीमवाप्स्यते ध्रुवं प्रणष्टो भरतो भविष्यति । अतो हि संचिन्तय राज्यमात्मजे परस्य चैवास्य विवासकारणम् ॥ ३४ ॥

अर्थ–मैं तुम्हें फिर कहती हूं कि यदि राम को राज्य मिला तो निश्चयकरके भरत नाश को प्राप्त होजायगा, इसलिये उचित यही है कि अपने पुत्र भरत को राज्य और राम को वन भेजने का उपाय कर, इसी में कल्याण है अन्यथा नहीं ॥

देखि मन्थरा नगर बनावा । मंजुल मंगल बाज बधावा ॥
पूछेसि लोगन कहा उछाहू । राम तिलक सुनिभा उर दाहू ॥
भरत मातु पहं गई बिलखानी । का अनमनि हंसि हंसि कह रानी॥

सभय रानि कह कहसि किन, कुशल राम महिपाल ।
लषण भरत रिपुदमन सुनि, भा कुबरी उर शाल ॥

रामहिं छांड़ि कुशल केहि आजू । जाहि नरेश देइं युवराजू ॥
देखहु कस न जाय सब शोभा । जो अवलोकि मोर मन क्षोभा॥
पूत विदेश न शोच तुम्हारे । जानति हो वश नाह हमारे ॥
नींद बहुत प्रिय सेज तुराई । लखहु न भूप कपट चतुराई ॥
रहे प्रथम अब ते दिन बीते । समउ फिरे रिपु होहिं पिरीते ॥
राजहि तुम पर प्रीति विशेषी । सवति स्वभाव सकहिं नहिं देखी॥
रचि प्रपञ्च भूपहि अपनाई । रामतिलकहित लगन धराई ॥
जो सुत सहित करहु सेवकाई । तौ घर रहहु न आन उपाई ॥
फिरा कर्म प्रिय लागि कुचाली । बकहि सराहइं मानि मराली ॥

सुन मंथरा बात फुर तोरी । दहिन आंखि नित फरकइ मोरी॥
पूछेय गुणिन रेख तिन्ह खांची । भरत भुआल होहिं यह सांची ॥
भामिनि करहु तौ कहउं उपाऊ । हैं तुम्हरी सेवावश राऊ ॥
दुइ वरदान भूप सन थाती । मागहु आजु जुड़ावहु छाती ॥
सुतहिं राज्य रामहिं बनवासू । देहु लेहु सब सवति हुलासू ॥

बड़ कुघात करि पातकिन, कह्यो कोपगृह जाहु ।
काज सम्भारेउ सजग सब, सहसा जनि पतियाहु ॥

इति सप्तमः सर्गः

अथ अष्टमः सर्गः

एवमुक्त्वा तु कैकेयी क्रोधेन ज्वलितानना ।
दीर्घमुष्णं विनिःश्वस्य मन्थरामिदमब्रवीत् ॥ १ ॥

अर्थ–मन्थरा के उक्त प्रकार कथन करने पर कैकेयी का मुख क्रोध से लाल होगया और लम्बा गरमश्वास भरकर मन्थरा से बोली कि :—

अद्य राममितः क्षिप्रं वनं प्रस्थापयाम्यहम् ।
यौवराज्येन भरतं क्षिप्रमेवाभिषेचये ॥ २ ॥
इदंत्विदानीं सपश्यै केनोपायेन मन्थरे ।
भरतः प्राप्नुयाद्राज्यं न तु रामः कथंचन ॥ ३ ॥

अर्थ–आज मैं राम को शीघ्र ही यहां से वन भिजवाती

और यौवराज्य में तुरन्त ही भरत का अभिषेक कराती हूं, हे मन्थरा ! अब इस बात को विचार कि किस उपाय से भरत राज्य को प्राप्त हो और राम किसी प्रकार भी राज्य प्राप्त न करसके ॥

एवमुक्त्वा तु सा देव्या मन्थरा पापदर्शिनी ।
रामार्थमुपाहिंसन्ती कैकेयीमिदमब्रवीत् ॥ ४ ॥

अर्थ—जब रानी ने उक्त प्रकार से कहा तो वह पापदर्शिनी मन्थरा राम के अर्थ को नाश करती हुई कैकेयी से बोली कि:—

हन्तेदानीं प्रपश्य त्वं कैकेयि श्रूयतां वचः ।
यथा ते भरतो राज्यं पुत्रः प्राप्स्यसि केवलम्॥५॥
किं न स्मरसि कैकेयि स्मरन्ती वा निगूहसे ।
यदुच्यमानमात्मार्थमत्तस्त्वं श्रोतुमिच्छसि ॥ ६ ॥

अर्थ—हे कैकेयि ! अब तू ध्यानपूर्वक मेरा वचन सुन, जिस प्रकार तेरा पुत्र केवल भरत ही राज्य को प्राप्त हो, हे कैकेयि ! क्या तुम्हें स्मरण नहीं वा स्मरण करती हुई छिपाती है जो अपने प्रयोजन को मुझसे सुनना चाहती है ॥

मयोच्यमानं यदि ते श्रोतुं छन्दो विलासिनि ।
श्रूयतामभिधास्यामि श्रुत्वा चैतद्विधीयताम् ॥७॥

अर्थ—हे विलासिनि ! यदि तेरी इच्छा अपना कहा हुआ मुझसे सुनने की है तो सुन मैं कहती हूं और सुनकर उसको विचार ॥

पुरा देवासुरे युद्धे सह राजर्षिभिः पतिः ।
आगच्छत्त्वामुपादाय देवराजस्य साह्यकृत् ॥८॥

दिशमास्थाय कैकेयि दाक्षिणां दण्डकान्प्रति ।
वैजयन्तमितिख्यातं पुरं यत्र तिमिध्वजः ॥ ९ ॥

अर्थ—पूर्व देवासुर युद्ध में राजऋषियों के साथ तेरा पति तुमको लेकर देवराज की सहायता के लिये गया था, हे कैकेयि ! दक्षिण दिशा में दण्डक वन के भीतर प्रसिद्ध वैजयन्तपुर में जहां तिमिध्वज राजा था ॥

स शम्बर इतिख्यातः शतमायो महासुरः ।
ददौ शक्रस्य संग्रामं देवसङ्घैरनिर्जितः ॥ ॥१०॥
तस्मिन्महति संग्रामे पुरुषान्क्षतविक्षतान् ।
रात्रौ प्रसुप्तान्घ्नन्तिस्म तरसापास्य राक्षसाः ॥११॥

अर्थ—वह शम्बर नाम से प्रसिद्ध सैकड़ों माया जानने वाला महादैत्य था जो पहले कभी किसी से नहीं जीता गया, उसने देव समूहों सहित इन्द्र को संग्राम दिया कि मुझसे युद्ध कर, उस बड़े संग्राम में राक्षस लोग दिन के युद्ध से थककर रात्रि को सोये हुए क्षत=थोड़े घाव वाले और विक्षत=बहुत घाव वाले योद्धाओं को बल से खींचकर लेजाते और मारडालते थे ॥

तत्राकरोन्महायुद्धं राजा दशरथस्तदा ।
असुरैश्च महाबाहुः शस्त्रैश्च शकलीकृतः ॥ १२ ॥
अपवाह्य त्वया देवि संग्रामान्नष्टचेतनः ।
तत्रापि विक्षतः शस्त्रैः पतिस्ते रक्षितस्त्वया ॥१३॥

अर्थ—वहां महाबाहु राजा दशरथ ने असुरों के साथ भारी युद्ध किया और शस्त्रों से उसके सब अंग घायल होकर राजा

अचेतन होगया, हे देवि ! तब वहां शस्त्रों से क्षत=घायल हुए अपने पति को संग्राम से निकाल कर तैंने ही बचाया था ॥

तुष्टेन तेन दत्तौ ते द्वौ वरौ शुभदर्शने ।
स त्वयोक्तः पतिर्देवि यदेच्छेयं तदावरम् ॥१४॥

अर्थ—हे शुभदर्शन ! उस समय राजा ने प्रसन्न होकर तुझको दो वर दिये थे और हे देवि ! तैंने पति को कहा था कि जब मैं चाहूंगी तब इन वरों को आपसे मांग लूंगी ॥

गृह्णीयामिति तत्तेन तथेत्युक्तं महात्मना ।
अनभिज्ञा ह्यहं देवि त्वयैव कथितं पुरा ॥ १५ ॥
कथैषा तव तु स्नेहान्मनसा धार्यते मया ।
रामाभिषेकसंभारान्निगृह्य विनिवर्तय ॥ १६ ॥
तौ वरौ याच भर्तारं भरतस्याभिषेचनम् ।
प्रवासनं च रामस्य वर्षाणि चतुर्दश ॥ १७ ॥

अर्थ—तब उस महात्मा ने कहा "तथास्तु" कैकेयी बोली हे मन्थरा मैं तो इससे सर्वथा अनभिज्ञ थी, मन्थरा ने कहा हे देवि ! तैंने ही मुझसे कहा था, तेरे स्नेहवशात् ही मैंने इस कथा को मन से धारण किया हुआ है भुलाया नहीं, यही स्मरण कराके अपने पति से वर मांगकर अभिषेक को पलट दे, वह दो वर अपने भर्ता से यह मांग कि भरत को अभिषेक और राम चौदहवर्ष के लिये बनजायं ॥

चतुर्दश हि वर्षाणि रामे प्रव्राजिते वनम् ।
प्रजाभावगतस्नेहः स्थिरः पुत्रो भविष्यति ॥१८॥

क्रोधागारं प्रविशाद्य क्रुद्धेवाश्वपतेः सुते ।
शेष्वानन्तर्हितायां त्वं भूमौ मलिनवासिनी ॥१९॥

अर्थ–जब राम चौदहवर्ष वन में रहेंगे तब तेरे पुत्र भरत में प्रजा का स्नेह स्थिर होजायगा, हे अश्वपति की बेटी क्रोधागार= कोपभवन में क्रुद्ध हुई की भांति प्रवेश कर मलिनवस्त्र धारण करके विना विछाये हुए ही भूमि पर लेट जा ॥

मास्मैनं प्रत्युदीक्षेथा माचैनमभिभाषथाः ।
रुदन्ती पार्थिवं दृष्ट्वा जगत्यांशोकलालसा ॥२०॥
दयिता त्वं सदा भर्तुरत्र मे नास्ति संशयः ।
त्वत्कृते च महाराजो विशेदपि हुताशनम् ॥२१॥

अर्थ–जब राजा तुम्हारे समीप आवें तो न तुम उनकी ओर देखना न उनसे कुछ भाषण करना राजा को देखकर रोती हुई भूमि पर लेटती ही रहना, इसमें संशय नहीं कि तू अपने भर्ता की प्यारी है तेरे लिये महाराज अग्नि में प्रवेश करसक्ते हैं ॥

न त्वां क्रोधयितुं शक्तो न क्रुद्धां प्रत्युदीक्षितुम् ।
तव प्रियार्थं राजा तु प्राणानपि परित्यजेत् ॥२२॥
न ह्यतिक्रमितुंशक्तस्तव वाक्यं महीपतिः ॥
मन्दस्वभावे बुध्यस्व सौभाग्यबलमात्मनः ॥२३॥

अर्थ–राजा न तुझे क्रोधित करसकता न तुझे क्रुद्ध हुई देखसक्ता है, अधिक क्या तेरे प्रिय के लिये राजा प्राण तक भी निछावर करने को तैयार है, वह तेरे वाक्य को कदापि उल्लंघन नहीं करसक्ता,हे भोले स्वभाव वाली ! अपने सौभाग्य के वल को समझ ॥

मणिमुक्ता सुवर्णानि रत्नानि विविधानि च ।
दद्याद्दशरथो राजा मास्मतेषु मनःकृथाः ॥ २४॥
यौ तौ देवासुरे युद्धे वरौ दशरथो ददौ ।
तौ स्मारय महाभागे सोऽर्थो न त्वा क्रमेदति॥२५॥

अर्थ–राजा दशरथ तुम्हें अनेक प्रकार के मणि, मोती, सोना, रत्न देगा उनमें तुम मन मत देना अर्थात् उनका लेना स्वीकार न करना, हे महाभागे ! देवासुर संग्राम में जो वह दोनों वर तुझे महाराज ने दिये हैं उनका स्मरण कराना जिससे वह प्रयोजन तेरे हाथ से न जाता रहे ॥

यदा तु ते वरं दद्यात्स्वयमुत्थाप्यराघवः ।
व्यवस्थाप्य महाराजं तामिमं वृणुयावरम् ॥ २६ ॥
रामं प्रव्राजयारण्ये नव वर्षाणि पञ्च च ।
भरतः क्रियतां राजा पृथिव्यां पार्थिवर्षभ ॥२७॥

अर्थ–जब राजा दशरथ तुम्हें स्वयं उठाकर वर देने लगें तब तू महाराज को व्यवस्थाप्य=स्थिर करके उनसे यह वर मांगना कि हे राजश्रेष्ठ ! राम को चौदहवर्ष के लिये वन भेजो और भरत को पृथिवी का राजा बनाओ ॥

चतुर्दश हि वर्षाणि रामे प्रव्राजिते वनम् ।
रूढश्च कृतमूलश्च शेषं स्थास्यति ते सुतः ॥२८॥

अर्थ–जब राम चौदहवर्ष वन में रहेगा तो तेरा पुत्र भरत पुष्ट होजायगा और फिर आगे भी वही राजा बना रहेगा ॥

एवं प्रव्राजितश्चैव रामोऽरामो भविष्यति ।
भरतश्च हतामित्रस्तव राजा भविष्यति ॥ २९ ॥

अर्थ–इस प्रकार बन को जाने पर राम राम न रहेगा अर्थात् प्रजा को अप्रिय होजायगा और तेरा पुत्र भरत हतशत्रु होकर राजा होगा ॥

प्राप्तकालं नु मन्येऽहं राजानं वीतसाध्वसा ।
रामाभिषेकसङ्कल्पान्निगृह्य विनिवर्तय ॥३०॥

अर्थ–सो मैं तुम्हारे लिये यह अवसर प्राप्त हुआ मानती हूं, तू निर्भय होकर राजा को निग्रहस्थान में करके राम के अभिषेक विषयक सङ्कल्प से उसको निवृत्त कर ॥

गतोदके सेतुबंधो न कल्याणि विधीयते ।
उत्तिष्ठ कुरु कल्याणं राजानमनुदर्शय ॥३१॥

अर्थ–हे कल्याणि कैकेयि ! पानी के वह जाने पर बंद बांधने से कुछ फल नहीं, तुम उठकर अपना कल्याण करो और राजा को यह सब दर्शाओ ॥

तथा प्रोत्साहिता देवी गत्वा मन्थरया सह ।
क्रोधागारं विशालाक्षी सौभाग्यमदगर्विता॥३२॥
अवमुच्य वरार्हाणि शुभान्याभरणानि च ।
संविश्य भूमौ कैकेयी मन्थरामिदमब्रवीत् ॥३३॥

अर्थ–उक्त प्रकार उत्तेजित कीहुई विशाल नेत्रों वाली रानी मन्थरा के साथ कोपघर में जाकर सौभाग्य के मद से

गर्व वाली कैकेयी ने बहुमूल्य शुभ आभूषण उतारकर फेंकदिये और पृथिवी पर लेटकर मन्थरा से बोली कि :—

इह वा मां मृतां कुब्जे नृपायावेदयिष्यसि ।
वनं तु राघवे प्राप्ते भरतः प्राप्स्यते क्षितिम् ॥३४॥
सुवर्णेन न मे ह्यर्थो न रत्नैर्नच भूषणैः ।
एष मे जीवितस्यान्तो रामो यद्यभिषिच्यते॥३५॥

अर्थ—हे कुब्जे ! अब मेरे विषय में राजा को यह दर्शाओ कि वह मरगई अथवा यों कहो कि राम वन जायगा और भरत राज्य को प्राप्त होगा, न मुझको सुवर्ण चाहिये न रत्न और न अन्य भूषणों से प्रयोजन है, राम का राजा होना मेरे जीवन का अन्त है अर्थात् राम का अभिषेक हुआ तो मैं तुरन्त ही प्राण त्याग दूंगी ॥

इति अष्टमः सर्गः

अथ नवमः सर्गः

विदर्शिता यदा देवी कुब्जया पापयाभृशम् ।
तदाशेतेस्मसाभूमौ दिग्धविद्धेव किन्नरी ॥ १ ॥

अर्थ—जब पापिन मन्थरा ने उक्त प्रकार कैकेयी को बार२ अनर्थ सिखाया तब वह भूमि में लेट गई, जैसे वाण लगने से किन्नरी भूतल में अचेत होकर पड़ जाती है ॥

प्रियार्हां प्रियमाख्यातुं विवेशान्तःपुरं वशी ।
स कैकेय्या गृहं श्रेष्ठं प्रविवेश महायशाः ॥ २ ॥

अर्थ–इसके अनन्तर अन्य कार्य्यों से निवृत्त होकर राजा अपनी प्यारी पत्नी को प्रिय सम्बाद सुनाने के लिये अन्तःपुर में प्रविष्ट होकर वह वशीकृत मन वाला महायशस्वी राजा कैकेयी के श्रेष्ठ गृह में गया ॥

वादित्ररव संघुष्टं कुब्जा वामनिकायुतम् ।
लतागृहैश्चित्रगृहैश्चंपकाशोकशोभितैः ॥ ३ ॥
दांत राजतसौवर्ण वेदिकाभिः समायुतम् ।
नित्य पुष्प फलैर्वृक्षैर्वापीभिरुपशोभितम् ॥ ४ ॥

अर्थ–जो नाना प्रकार के बाजों से शब्दायमान, छोटे कद वाली दासियों से युक्त और लतागृह, चित्रगृह, चंपक तथा अशोक के वृक्षों से शोभायमान, हाथीदांत, चांदी और सुवर्ण की वेदियों से युक्त जिनमें फल फूल वाले वृक्ष सदा शोभा देते और बावड़ियों से शोभायमान था, ऐसे ऋद्धि वाले गृह में महाराज प्रविष्ट हुए ॥

न ददर्शस्त्रियं राजा कैकेयीं शयनोत्तमे ।
अपश्यन् दयितांभार्यां पप्रच्छ विषसाद च ॥ ५ ॥
नहि तस्य पुरा देवी तां वेलामत्य वर्तत ।
न च राजा गृहं शून्यं प्रविवेश कदाचन ॥ ६ ॥

अर्थ–वहां प्यारी कैकेयी को उत्तम शयन स्थान पर न

देखकर राजा ने खिन्न होकर पूछा, क्योंकि इससे पूर्व राजा के गृहप्रवेश समय रानी सदा ही उपस्थित रहती थी, और इससे पहले शून्यगृह में राजा ने कभी प्रवेश भी नहीं किया था ॥

प्रतिहारीत्यथोवाच संत्रस्ता सुकृताञ्जलिः ।
देवदेवी भृशंक्रुद्धा क्रोधागारमभिद्रुता ॥ ७ ॥

अर्थ—राजा के पूछने पर प्रतिहारी=द्वारपालिका भयभीत हुई हाथ जोड़कर बोली कि हे देव ! देवी अत्यन्त क्रोधित होकर कोपघर में चलीगई है ॥

प्रतीहार्या वचः श्रुत्वा राजा परमदुर्मनाः ।
विषसाद पुनर्भूयो लुलितव्याकुलेन्द्रियः ॥ ८ ॥
तत्र तां पतितां भूमौ शयानामतथोचिताम् ।
प्रतप्त इव दुःखेन सोऽपश्यज्जगतीपतिः॥ ९ ॥

अर्थ—दासी के वचन सुनकर राजा दुर्मन=खिन्न मन वाला मन में बड़ा दुःखी और उसका चित्त बड़ा व्याकुल हुआ, क्योंकि एक तो न देखने का खेद और दूसरे क्रोधातुर सुनकर वह खेद और भी बढ़गया, उस समय राजा के सब इन्द्रिय खेद को प्राप्त होगये, वहां क्रोधागार में रानी को भूमि में लेटी हुई देखकर जो इस अवस्था के योग्य नहीं, राजा जलते हुए के समान अत्यन्त दुःखी हुआ ॥

स वृद्धस्तरुणीं भार्यां प्राणेभ्योपि गरीयसीम् ।
अपापः पापसंकल्पां ददर्श धरणीतले ॥ १० ॥
परिमृश्य च पाणिभ्यामभिसंत्रस्तचेतनः ।
कामी कमलपत्राक्षीमुवाच वनितामिदम् ॥ ११ ॥

अर्थ–उस निष्पाप वृद्ध राजा ने अपनी तरुण भार्या जो प्राणों से अधिक प्यारी है, पापसङ्कल्प वाली को पृथिवी के तल पर लेटे हुए देखा और दोनों हाथों से स्पर्श करके भयभीत बुद्धि वाला राजा कमलनेत्रों वाली स्त्री से बोला कि :—

न तेऽहमभिजानामि क्रोधमात्मनिसंश्रितम् ।
देवि केनाभिशप्तासि केनवाऽसि विमानिता ॥१२॥
यदिदं मम दुःखाय शेषे कल्याणि पांसुषु ।
भूमौ शेषे किमर्थं त्वं मयि कल्याणचेतसि ॥१३॥

अर्थ–हे देवि ! मैं अपने आश्रित तेरा क्रोध नहीं जानता अर्थात् मुझसे तुम्हारी कोई ऐसी अवज्ञा नहीं हुई जिससे तुम्हें क्रोध हो, तुमसे किसने कठोर कहा अथवा किसने तुम्हारा अपमान किया है, हे कल्याणि ! क्या मुझको दुःख देने के लिये तू भूमि पर लेट रही है अथवा क्या ? जब मैं तेरा सदा शुभ चाहने वाला हूं फिर यह रुदन क्यों करती है ॥

कः प्रियं लभतामद्यकोवासुमहदाप्रियम् ।
मारौत्सीर्माचकार्षीस्त्वं देविसंपरिशोषणम् ॥१४॥
अवध्यो वध्यतां कोवावध्यः कोवाविमुच्यताम् ।
दरिद्रः को भवेदाढ्यो द्रव्यवान् वाप्यकिंचनः ॥१५॥

अर्थ–हे देवि ! आज कौन प्रिय पावे और किसका अप्रिय हो, शीघ्र कहो रुदन न कर और न मुख सुखा, किस मारने योग्य का वध करूं और किस वध योग्य को छोड़ दूं, किस दरिद्र को धनवान् और किस धनवान् को दरिद्र करूं ॥

अहं च हि मदीयाश्च सर्वे तव वशानुगाः ।
न ते कंचिदभिप्रायं व्याहन्तुमहमुत्सहे ॥ १६ ॥
आत्मनो जीवितेनापि ब्रूहियन्मनसिस्थितम् ।
बलमात्मनिजानन्ती न मांशंकितुमर्हसि ॥१७॥

अर्थ—मुझ सहित मेरे सब सम्बन्धी तुम्हारे वशीभूत हैं, तुम्हारे अभिप्राय को मैं किंचिन्मात्र भी नहीं टालसकता,जो तुम्हारे मन में स्थित है वह कहो, यदि प्राण देने से भी तुम्हारा कार्य्य होगा तो मैं करूंगा, तुम मेरे स्नेह को भली भांति जानती हो जो तुम्हारे मन में है सो कहो ॥

किमायासेनते भीरु उत्तिष्ठोत्तिष्ठ शोभने ।
तत्त्वं मे ब्रूहि कैकेयि यतस्ते भयमागतम् ॥ १८ ॥
तत्तेऽव्यपनयिष्यामिनीहारमिवरश्मिवान् ।
तथोक्तासासमाश्वस्तावक्तुकामातदप्रियम् ॥ १९ ॥

अर्थ—हे भीरु ! अधिक परिश्रम से क्या अब उठो, उठो, हे शोभने ! जिस बात से तुमको भय प्राप्त हुआ है उसका सारांश कहो, जिस प्रकार सूर्य्य अन्धकार को नाश करता है इसी प्रकार मैं तेरे दुःख को नाश करूंगा, जब इस प्रकार राजा दशरथ ने आश्वासन दिया तो उस अप्रिय को कहना चाहती हुई भर्ता को अधिक दुःख देने वाला दारुण वचन बोली किः—

नास्मि विप्रकृतादेवकेनचिन्नावमानिता ।
अभिप्रायस्तु मे कश्चित्तमिच्छामित्वयाकृतम्॥२०॥

अर्थ–हे देव ! न मेरा किसी ने कुछ बिगाड़ा और न किसी ने मेरा अपमान किया है किन्तु मेरा जो अभिप्राय है वह मैं आपसे कहा चाहती हूं ॥

प्रतिज्ञां प्रतिजानीष्व यदि त्वं कर्तुमिच्छसि ।
अथ ते व्याहरिष्यामि यथाभिप्रार्थितं मया ॥२१॥
तामुवाच महाराजः कैकेयीमीषदुत्स्मयः ।
अवलिप्ते न जानासि त्वत्तः प्रियतरो मम ॥ २२ ॥
मनुजो मनुजव्याघ्राद्रामादन्यो न विद्यते ।
तेन रामेण कैकेयि शपे ते वचनक्रियाम् ॥ २३ ॥

अर्थ–यदि आप मेरा कहा करें तो प्रतिज्ञा कीजिये तब मैं अपना अभिप्राय आपसे कहूं, महाराज दशरथ ने मुसकराकर कहा कि हे कैकेयि ! तू भलेप्रकार जानती है कि मनुष्यों में श्रेष्ठ राम से बढ़कर मुझको अन्य कोई प्रिय नहीं है, हे कैकेयि ! तेरा वचन पूर्ण करने के लिये मैं उस राम की शपथ खाता हूं अर्थात् यदि मैं तेरा वचन पूरा न करूं तो मुझको राम का मुख देखना न मिले ॥

बलमात्मनि पश्यन्ती नविशंकितुमर्हसि ।
करिष्यामि तव प्रीतिं सुकृतेनापि ते शपे ॥२४॥

अर्थ–मेरा बल तुम देखती हो जो शंका करने योग्य नहीं, मैं अपने पुण्य की शपथ खाता हूं कि जिसमें तुम्हारी प्रसन्नता होगी वही करूंगा ॥

तेन वाक्येन संहृष्टा तमभिप्रायमात्मनः ।
व्याजहार महाघोरमभ्यागतमिवांतकम् ॥ २५ ॥

अर्थ—उक्त वाक्य सुनकर अपने सङ्कल्पित कार्य्य में मन लगा अति हर्षित हो शत्रु की भांति महाभयंकर अपना अभिप्राय कहने लगी कि :—

स्मर राजन्पुरावृत्तं तस्मिन्देवासुरे रणे ।
तत्र त्वाऽच्यावयच्छत्रुस्तव जीवितमन्तरा ॥ २६ ॥
तत्रचापि मयादेव यत्त्वं समभिरक्षितः ।
जाग्रत्यायतमानायास्ततो मे प्रददौ वरौ ॥ २७ ॥

अर्थ—हे राजन् ! पूर्व वृतान्त का स्मरण कर, वहां देवासुर संग्राम में रात्रि समय आपको शत्रुओं ने ऐसा घायल किया कि अल्प जीवन ही शेष रहगया था, हे देव ! वहां मैंने आपकी रक्षा की थी तब उस समय जागती और यत्न करती हुई मुझको आपने दो वर दिये थे ॥

तौ तु दत्तौ वरौ देव निक्षेपो मृगयाम्यहम् ।
तवैव पृथिवीपाल सकाशे रघुनन्दन ॥ २८ ॥
तत्प्रतिश्रुत्य धर्मेण न चेद्दास्यसि मे वरम् ।
अद्यैव हि प्रहास्यामि जीवितं त्वद्विमानिता ॥ २९ ॥

अर्थ—हे देव ! हे पृथिवीपाल ! हे सत्यप्रतिज्ञ ! वह दिये हुए दोनों वर अभी आपही के पास अमानत हैं सो अब मैं उनको लेना चाहती हूं, यदि आप धर्म से प्रतिज्ञा करके मुझको वह वर

न देंगे तो मैं आपसे अपमानित हुई आज अपना जीवन त्याग दूंगी ॥

वाङ्मात्रेण तदा राजा कैकेय्या स्ववशं कृतः ।
प्रचस्कंदविनाशाय पाशं मृग इवात्मनः ॥३०॥
ततः परमुवाचेदं वरदं काममोहितम् ।
वरौ यौ तौ त्वया देव तदा दत्तौ महीपते ॥ ३१ ॥

अर्थ–इस प्रकार कैकेयी ने राजा को वाणीमात्र से अपने वस करके फैलाये हुए जाल में मृग की न्याईं राजा को उसके नाश के लिये फसा लिया, और काम से मोहित उस वरदाता राजा से यह बोली कि हे देव ! हे महीपते ! आपने जो मुझ को दो वर दिये हैं :—

तौ तावदहमद्यैव वक्ष्यामि शृणु मे वचः ।
अभिषेक समारम्भो राघवस्योपकल्पितः ॥ ३२ ॥
अनेनैवाभिषेकेण भरतो मेऽभिषिच्यताम् ।
यो द्वितीयो वरो देव दत्तः प्रीतेन मे त्वया॥३३॥

अर्थ–वह अब मैं कहती हूं, आप मेरे बचन को सुनें, अभिषेक की तैयारी जो राम के लिये होरही है वह अभिषेक मेरे पुत्र भरत को हो, और हे देव ! आपने जो प्रीति से मुझको दूसरा वर दिया है :—

तदा देवासुरे युद्धे तस्य कालोयमागतः ।
नवपंच च वर्षाणि दण्डकारण्यमाश्रितः ॥ ३४ ॥

चीराजिनधरो धीरो रामो भवतु तापसः ।
भरतो भजतामद्ययौवराजमकण्टकम् ॥ ३५ ॥

अर्थ—उसका काल यह अब आया है, राम चीर, मृगछाला और जटाधारी तपस्वी बनकर चौदहवर्ष दण्डक वन में रहें और भरत आज ही यौवराज को प्राप्त होकर निष्कण्टक राज्य करे ॥

एष मे परमः कामो दत्तमेव वरं वृणे ।
अद्य चैव हि पश्येयं प्रयान्तं राघवं वने ॥ ३६॥
स राजराजो भव सत्यसंगरः,कुलं च
शीलं च हि रक्ष जन्म च।परत्रवासे हि
वदन्त्यनुत्तमंतपोधनाःसत्यवचोहितंनृणाम् ॥ ३७॥

अर्थ—यह मेरी परम कामना है, मैं आपसे दिया हुआ ही वर मांगती हूं, आज ही राम को वन जाता हुआ देखूं, हे महाराज आप सत्यप्रतिज्ञा वाले हैं अपने कुल, शील और जन्म=वंश की रक्षा करें, परलोक में सत्यवचन ही मनुष्यों का सब से बढ़कर हितकारी होता है, ऐसा तपस्वी पुरुष कहते हैं ॥

इति नवमः सर्गः

अथ दशमः सर्गः

ततः श्रुत्वा महाराजः कैकेय्या दारुणं वचः ।
चिन्तामभिसमापेदे मुहूर्तं प्रतताप च ॥ १ ॥

अर्थ–इसके अनन्तर महाराजा कैकेयी के दारुण वचन सुनकर चिन्ताग्रस्त हो कुछ काल के लिये मूर्छित होगये ॥

प्रतिलभ्य ततः संज्ञां कैकेयीवाक्यतापितः ।
व्यथितो विक्लवश्चैव व्याघ्रीं दृष्ट्वा यथा मृगः ॥२॥
अहो धिगिति सामर्षो वाचमुक्त्वा नराधिपः ।
मोहमापेदिवान्भूयः शोकोपहतचेतनः ॥ ३ ॥

अर्थ–मूर्छानन्तर जब राजा होश में आये तो कैकेयी के तपाये हुए वाक्यों को स्मरण कर इस प्रकार पीड़ित हुए और घबराये जैसे व्याघ्री को देखकर मृग व्याकुल होजाता है, फिर बड़े क्रोध से "शोक, धिक्कार" इतना वचन कहकर राजा शोक से नष्ट हुई चेतना वाला फिर मूर्छित होगया ॥

चिरेण तु नृपः संज्ञां प्रतिलभ्य सुदुःखितः ।
कैकेयीमब्रवीत्क्रुद्धो निर्दहन्निव तेजसा ॥ ४ ॥
नृशंसे दुष्टचारित्रे कुलस्यास्य विनाशिनि ।
किं कृतं तव रामेण पापे पापं मयापि वा ॥ ५ ॥

अर्थ–फिर चिरकालान्तर होश में आकर दुःखित हुआ राजा अग्नि से दग्ध हुए की भांति क्रोधित होकर कैकेयी से बोला कि हे दुष्टचारित्र वाली ! हे इस कुल के नाश करने वाली कैकेयि ! राम ने तेरा क्या विगाड़ा अथवा हे पापे ! मैंने क्या अपराध किया है ॥

सदा ते जननीतुल्यां वृत्तिं वहति राघवः ।
तस्यैव त्वमनर्थाय किं निमित्तमिहोद्यता ॥ ६ ॥

जीवलोको यदा सर्वो रामस्याह गुणस्तवम् ।
अपराधं कमुद्दिश्य त्यक्ष्यामीष्टमहं सुतम् ॥ ७ ॥

अर्थ–राम तेरे प्रति सदा माता के तुल्य वर्तता है तो तू उसी के अनर्थ के लिये कैसे उद्यत होगई, और जब सभी लोग एकमुख होकर राम के गुणों की स्तुति करते हैं तो मैं किस अपराध को लक्ष्य रखकर प्यारे पुत्र को बन भेजूं ॥

कौसल्यां च सुमित्रां च त्यजेयमपिवाश्रियम् ।
जीवितं चात्मानो रामं नत्वेव पितृवत्सलम् ॥८॥
परा भवति मे प्रीतिर्दृष्ट्वा तनयमग्रजम् ।
अपश्यतस्तु मे रामं नष्टं भवति चेतनम् ॥ ९ ॥

अर्थ–यदि तू कहे तो कौसल्या, सुमित्रा अथवा अपना राज्य भी छोड़दूं परन्तु पिता का भक्त राम मुझसे नहीं छोड़ा जायगा, बड़े पुत्र राम को देखकर मुझे परमप्रीति होती और न देखने से मेरी चेतनशक्ति नष्ट होजाती है ॥

तिष्ठेल्लोको विना सूर्य्यं सस्यं वा सलिलं विना ।
न तु रामं विना देहे तिष्ठेत्तु मम जीवितम् ॥१०॥

अर्थ–यह जगत् सूर्य्य के विना रहसके, खेती पानी के विना रहसके परन्तु राम के विना मेरा प्राण देह में नहीं रहसक्ता ॥

तदलं त्यजतामेष निश्चयः पापनिश्चये ।
अपि ते चरणौ मूर्ध्ना स्पृशाम्येष प्रसीद मे ॥११॥

अर्थ–सो हे पापनिश्चयवाली ! तू इस निश्चय को सर्वथा छोड़दे, तेरे पाओं पर सिर रखता हूं, यह मेरे ऊपर कृपाकर ॥

किमर्थं चिन्तितं पापे त्वया परमदारुणम् ।
अथ जिज्ञाससेमां त्वं भरतस्य प्रियाप्रिये॥ १२ ॥
अस्तु यत्तत्त्वया पूर्वं व्याहृतं राघवं प्रति ।
स मे ज्येष्ठ सुतः श्रीमान्धर्मज्येष्ठ इतीव मे ॥१३॥

अर्थ–हे पापिनि ! तेरा यह परम दारुण विचार किस अर्थ हुआ है, क्या तुम यह परीक्षा लेती हो कि भरत राजा को प्रिय है अथवा अप्रिय, सो तुम परीक्षा लो, तुम्हारे कथनानुसार भरत को ही राजा बनाये देते हैं और श्रीमान् ज्येष्ठ पुत्र रामचन्द्र ज्येष्ठ बने रहें कुछ राजकार्य्य नहीं करेंगे ॥

तत्त्वयाप्रियवादिन्या सेवार्थं कथितं भवेत् ।
तच्छ्रुत्वा शोकसंतप्ता संतापयसिमां भृशम् ॥१४॥

अर्थ–उनको अपनी वा हमारी सेवा करने के लिये घर में रहने दे, जिस राज्याभिषेक को सुन शोक से संतप्त हो मुझे भी तपा रही है वह अपनी हठ छोड़ दे ॥

इक्ष्वाकूणां कुले देवि संप्राप्तः सुमहानयम् ।
अनयोनयसम्पन्ने यत्र ते विकृतामतिः ॥ १५ ॥
नहि किंचिदयुक्तं वा विप्रियं वा पुरा मम ।
अकरोस्त्वं विशालाक्षि तेन न श्रद्दधाम्यहम् ॥१६॥

अर्थ–हे देवि ! तेरी मति इस प्रकार भ्रष्ट होने से नीति सम्पन्न इक्ष्वाकुओं के कुल में बड़ी अनीति वर्त्त रही है, हे विशाल नेत्रों वाली ! इससे पूर्व तैंने मेरा कभी अनिष्ट वा अप्रिय नहीं किया, इसलिये मैं विश्वास नहीं करता कि तू ऐसा करेगी ॥

तस्य धर्मात्मनो देवि वने वासं यशस्विनः ।
कथं रोचयसे भीरु नववर्षाणि पञ्च च ॥ १७ ॥

अर्थ–हे देवि ! तू उस धर्मात्मा यशस्वी का चौदहवर्ष वन में रहना कैसे पसन्द करती है ॥

अत्यन्त सुकुमारस्य तस्य धर्मे कृतात्मनः ।
कथं रोचयसेवासमरण्ये भृशदारुणे ॥ १८ ॥
रोचयस्यभिरामस्य रामस्य शुभलोचने ।
तव शुश्रूषमाणस्य किमर्थं विप्रवासनम् ॥ १९ ॥

अर्थ–फिर धर्मात्मा वा अत्यन्त सुकुमार रामचन्द्र का अतिदारुण वन में रहना तुमको कैसे रुचता है, हे सुन्दर नेत्रों वाली ! तेरी सेवा करने वाले उस प्रिय राम का किस प्रकार वन जाना तुझे अच्छा लगता है ॥

रामो हि भरताद्भूयस्तव शुश्रूषते सदा ।
विशेषं त्वयि तस्मात्तुभरतस्य न लक्षये ॥ २० ॥
शुश्रूषां गौरवं चैव प्रमाणं वचनाक्रियाम् ।
कस्ते भूयस्तरं कुर्यादन्यत्र पुरुषर्षभात् ॥ २१ ॥

अर्थ—राम भरत से बढ़कर सदा तुम्हारी सेवा करता है, तुम्हारे विषय में राम से भरत में कोई अधिकता नहीं देखता, राम से बढ़कर और कौन तुम्हारी सेवा, गौरव, प्रमाण और आज्ञा का पालन करेगा ॥

बहूनां स्त्रीसहस्राणां बहूनां चोपजीविनाम् ।
परिवादोपवादो वा राघवे नोपपद्यते ॥ २२ ॥
सांत्वयन्सर्वभूतानि रामः शुद्धेन चेतसा ।
गृह्णाति मनुजव्याघ्रः प्रियैर्विषयवासिनः ॥ २३ ॥

अर्थ—बहुतसी स्त्रियां और बहुत से मनुष्य जिनकी उपजीविका राम से है उनमें से एक भी यह नहीं कहता कि इसने अमुक करने योग्य काम नहीं किया अथवा यह निन्दित काम किया, राम शुद्ध चित्त से सब प्राणियों को शान्ति देता और प्रिय वचनों से सब को अनुकूल बनाता है ॥

सत्त्वेन लोकाञ्जयति द्विजान्दानेन राघवः ।
गुरूञ्छुश्रूषयावीरोधनुषायुधिशात्रवान् ॥ २४ ॥

अर्थ—और सत्य से सब लोगों को, दान से ब्राह्मणों को, गुरुओं को सेवा से और संग्राम में शत्रुओं को अपनी वीरता से वशीभूत करता है ॥

सत्यं दानं तपस्त्यागो मित्रता शौचमार्जवम् ।
विद्या च गुरुशुश्रूषा ध्रुवाण्येतानि राघवे ॥ २५ ॥
तस्मिन्नार्जवसम्पन्ने देवि देवोपमे कथम् ।

पापमाशंससे रामे महर्षिसम तेजसि ॥ २६ ॥
न स्मराम्यप्रियं वाक्यं लोकस्य प्रियवादिनः ।
स कथं त्वत्कृते रामं वक्ष्यामि प्रियमप्रियम् ॥२७॥

अर्थ–सत्य, दान, तप, त्याग, मित्रता, शुद्धि, सरलता, विद्या और गुरुओं की सेवा यह राम में अटल गुण हैं, ऐसे कोमल स्वभाव देव सम तेजस्वी राम में हे देवि ! तुम कैसे पापबुद्धि करती हो, सम्पूर्ण लोक से प्रिय बोलने वाले राम का मैं एक भी अप्रिय वाक्य स्मरण नहीं करता फिर उस प्यारे राम को तेरे अर्थ किस प्रकार अप्रिय कहूंगा ॥

क्षमा यस्मिंस्तपस्त्यागः सत्यंधर्मः कृतज्ञता ।
अप्यहिंसा च भूतानां तमृते का गतिर्मम ॥२८॥

अर्थ–जिस राम में क्षमा, तप, त्याग, सत्य, धर्म, अहिंसा, कृतज्ञता और भूतों पर दया, इत्यादि गुण हैं उससे बिना मेरी क्या दशा होगी ॥

मम वृद्धस्य कैकेयि गतान्तस्य तपस्विनः ।
दीनं लालप्यमानस्य कारुण्यंकर्तुमर्हसि ॥ २९ ॥
पृथिव्यां सागरांतायां यत्किंचिदधिगम्यते ।
तत्सर्वं तव दास्यामि मा च त्वं मृत्युमाविश॥३०॥

अर्थ–हे कैकेयि ! मैं वृद्ध जिसका अन्तसमय निकट है, दीन होकर विलाप करते हुए मुझ पर दया कर, समुद्र पर्य्यन्त पृथिवी में जितने पदार्थ हैं वह सब तुम्हें दूंगा तू मृत्यु को प्राप्त नहो ॥

अञ्जलिं कुर्मि कैकेयि पादौ चापि स्पृशामि ते।
शरणं भव रामस्य माधर्मो मामिह स्पृशेत् ॥ २१ ॥

अर्थ—हे कैकेयि ! मैं तुझे हाथ जोड़ता और तेरे पांव छूता हूं तू राम की रक्षक बन जिससे मैं अधर्म को प्राप्त न होऊं ॥

राजा का भवन में प्रवेश

कोप भवन सुन सकुचे राऊ। भयवश आगे परै न पांऊ ॥
सभय नरेश प्रियापहं गयऊ । देखिदशा दुखदारुण भयऊ ॥
भूमि शयन पट मोट पुराना। दिये डारि तनु भूषण नाना ॥
बार बार कह राउ, सुमुखि सुलोचनि पिकवचनि ॥
कारण मोहि सुनाउ, गजगामिनि निज कोपकर ॥
कहु केहि रंकहि करौं नरेशू। कहु केहि नृपहि निकारौं देशू ॥
प्रिया प्राण सुत सर्वस मोरे । परिजन प्रजा सकल वश तोरे ॥
जो कछु कहौं कपट कर तोहीं। भामिनि राम शपथ शत मोहीं ॥
भामिनि भयउ तोर मन भावा। घर घर नगर अनन्द बधावा ॥
रामहिं देहुं कालि युवराजू। सजहु सुलोचनि मंगल साजू ॥
दलकि उठी सुनि हृदय कठोरा। जनु छुइ गयउ पाक बरतोरा ॥

कैकेयी उवाच

मांग मांग पै कहहु पिय, कबहुं लेहु न देहु ॥
देन कहेउ बरदान दुइ, तेउ पावत सन्देहु ॥

दशरथ उवाच

थाती राखि न मांगेउ काऊ । बिसरि गयउ मोहिं भोर स्वभाऊ ॥
झूठहु हमहिं दोष जन देहु। दुइके चार मांगि किन लेहू ॥
रघुकुल रीति सदा चलि आई। प्राण जाहिं वरु बचन न जाई ॥
नहिं असत्य सम पातक पुंजा । गिरिसम होहिं कि कोटिक गुंजा ॥

सत्यमूल सब सुकृत सुहाये। वेद पुराण विदित मनु गाये ॥
सुनहु प्राणपति भावत जी का। देहु एकवर भरतहि टीका ॥
दूसर वर मांगा कर जोरी। पुरवहु नाथ मनोरथ मोरी ॥
तापस वेष विशेष उदासी। चौदहवर्ष राम बनवासी ॥
सुनि मृदु बचन भूप हिय शोकू। शशिकर छुअत विकल जिमि कोकू ॥
गयउ सहमि कछुकहिनहिं आवा। जनु सचान बन झपटेउ लावा ॥
विरवन भयउ निपट नरपालू। दामिनि हनेहु मनहु तरु तालू ॥
मोर मनोरथ सुरतरु फूला। फरत फिरनि जिमि हतेउ समूला॥
अवध उजारि कीन्ह कैकेई। दीन्हेसि अचल विपतिकै नेई ॥

कवने अवसर का भयउ, गयउ नारि विश्वास ॥
योगसिद्ध फल समय जिमि, यतिहि अविद्या नाश ॥

कैकेयी उवाच

जो सुनि शरसम लाग तुम्हारे। काहे न बोलेहु वचन संभारे ॥
देहु उतर अब करहु कि नाहीं। सत्यसंध तुम रघुकुल माहीं ॥
देन कहेउ अब जनि वर देहू। तजहु सत्य जग अपयश लेहू ॥
शिवि दधिचि बलि जो कछु भाषा। तनुधन तजेउ वचन प्रण राखा ॥

दशरथ उवाच

मोरे भरत राम दुहुं आंखी। सत्य कहौं करि शंकर साखी ॥
अवशि दूत मैं पठउब प्राता। ऐहहि बेग सुनत दोउ भ्राता ॥
सुदिन शोधि सब साज सजाई। देहुं भरत को राज बजाई ॥

लोभ न रामहिं राज्य कर, बहुत भरत पर प्रीति ॥
मैं बड़ छोट बिचार कर, करत रहेउं नृपनीति ॥

राम शपथशत कहौं स्वभाऊ। राम मातु कछु कहेउ न काऊ ॥
रिस परिहरि अब मंगल साजू। कछु दिन गये भरत युवराजू ॥
एकहि बात मोहिं दुख लागा। वर दूसर असमंजस मांगा ॥
जासु सुभाव अरिहु अनुकूला। सो किमि करहि मातु प्रतिकूला ॥
कहहुं स्वभाव न छल मन माहीं। जीवन मोर राम बिनु नाहीं ॥

कैकेयी उवाच

होत प्रात मुनिवेष धर, जोन राम बन जाहिं ॥
मोर मरन राउर अयश, नृप समुझिय मनमाहिं ॥

दशरथ उवाच

मांग माथ अबहीं देउं तोहीं । रामविरह जनि मारसि मोहीं ॥
चहत न भरत भूप पद भोरे । विधिवश कुमति वसी उर तोरे ॥
फिर पछितैहसि अन्त अभागी । मारसि गाय नहारू लागी ॥
द्वार भीर सेवक सचिव, कहहिं उदय रवि देख ॥
जागे अजहु न अवधपति, कारण कवन विशेष ॥

इति दशमः सर्गः

अथ एकादशः सर्गः

इति दुखाभिसंतप्तं विलपयन्तमचेतनम् ।
घूर्णमानं महाराजं शोकेन समभिप्लुतम् ॥ १ ॥
पारं शोकार्णवस्याशु प्रलपंतं पुनः पुनः ।
प्रत्युवाचाथ कैकेयी रुद्रौ रौद्रतरं वचः ॥ २ ॥

अर्थ—इस प्रकार महादुःख से सन्तप्त विलाप करते हुए और सन्ताप से जिनका शरीर घूम रहा है ऐसा शोक से घिरा हुआ महाराज जो शोकसागर से पार होने के लिये बार २ प्रार्थना कर रहे थे उनको दुष्ट कैकेयी यह दुष्टतर वचन बोली कि :—

यदि दत्वा वरौ राजन् पुनः प्रत्यनुतप्यसे ।
धार्मिकत्वं कथं वीर पृथिव्यां कथयिष्यसि ॥ ३ ॥
यदा समेता बहवस्त्वया राजर्षयः सह ।
कथयिष्यन्ति धर्मज्ञ तत्र किं प्रतिवक्ष्यसि ॥ ४ ॥

अर्थ—हे राजन् ! यदि आप वर देकर पश्चाताप करते हैं तो हे वीर ! पृथिवी पर अपना धार्मिकपन कैसे कहोगे, जब बहुत से राजऋषि तुम्हारे साथ मिलकर मेरे वर विषयक पूछेंगे तो आप क्या उत्तर देंगे ॥

यस्य प्रसादे जीवामि याच मामभ्यपालयत् ।
तस्याः कृतं मया मिथ्या कैकेय्या इति वक्ष्यासि ॥५॥
किल्विषं त्वं नरेन्द्राणां करिष्यसि नराधिप ।
यो दत्त्वा वरमद्यैव पुनरन्यानि भाषसे ॥ ६ ॥

अर्थ—क्या यह कहोगे कि जिसने मुझे बचाकर जीवन दान दिया, उस कैकेयी को दिये हुए वर मैंने मिथ्या कर दिये हैं, हे राजन् ! क्या आप अपने वंशीय राजाओं के अपयश का टीका लगा जायंगे जो वर देकर फिर उलटा कहने लगे हैं अर्थात् वर स्वीकार कर नहीं दिया चाहते ॥

सत्वं धर्मपरित्यज्य रामं राज्येभिषिच्य च ।
सह कौसल्ययानित्यंरन्तुमिच्छसि दुर्मते ॥७॥

अर्थ—हे दुर्मते राजन् ! तुम धर्म छोड़ राम को राज्य देकर कौसल्या के साथ नित्य ही प्रेमपूर्वक रहा चाहते हो ॥

भवत्वधर्मो धर्मो वा सत्यं वा यदि वानृतम् ।
यत्त्वया संश्रुतं मह्यं तस्य नास्ति व्यतिक्रमः ॥८॥
अहं हि विषमद्यैव पीत्वा बहु तवाग्रतः ।
पश्यतस्ते मरिष्यामि रामो यद्यभिषिच्यते ॥ ९ ॥

अर्थ–चाहे धर्म हो वा अधर्म, चाहे सत्य हो वा अनृत, जो आपने मेरे साथ प्रतिज्ञा की है उसका उल्लङ्घन नहीं होसक्ता, यदि राम का अभिषेक हुआ तो मैं आज ही आपके सन्मुख तुम्हारे देखते २ विष पीकर मरूंगी ॥

एकाहमपि पश्येयं यद्यहं राममातरम् ।
अंजलिं प्रतिगृह्णन्तीं श्रेयोननुमृतिर्मम ॥ १० ॥
भरतेनात्मना चाहं शपे ते मनुजाधिप ।
यथानान्येन तुष्येयमृते रामविवासनात् ॥ ११ ॥

अर्थ–जो रामाभिषेक के कारण प्रसन्नचित्त हो प्रजा का हाथ पकड़े हुए अर्थात् प्रजा का नेता बने हुए एक दिन भी कौसल्या को देखा तो मेरा मरण होजायगा फिर मरण से क्या भय, हे राजन् ! तुम्हारे सन्मुख अपनी और भरत की शपथ खाकर कहती हूं कि राम को वन में भेजने के सिवाय और किसी बात से सन्तुष्ट न होंगी ॥

एतावदुक्त्वा वचनं कैकेयी विरराम ह ।
विलपंतं च राजानं न प्रतिव्याजहारसा ॥ १२ ॥
श्रुत्वा तु राजा कैकेय्या वाक्यं परमशोभनम् ।
रामस्य च वने वासमैश्वर्य्यं भरतस्य च ॥ १३ ॥

नाभ्यभाषत कैकेयीं मुहूर्त्तं व्याकुलेन्द्रियः।
प्रैक्षतानिमिषो देवीं प्रियामप्रियवादिनीम् ॥१४॥

अर्थ—विलाप करते हुए राजा से उक्त वचन कहकर कैकेयी चुप होगई, महाराजा दशरथ भी कैकेयी के उक्त वचन सुनकर कि इसको राम का वनवास और भरत का राजा होना ही प्रिय है, कैकेयी से भाषण न करते हुए कुछ काल के लिये व्याकुलेन्द्रिय हो अपनी प्यारी अप्रियभाषण करने वाली कैकेयी को क्रोध से एकटक देखते ही रहे ॥

तां हि वज्रसमां वाचमार्कण्य हृदयाप्रियाम्।
दुःखशोकमयीं घोरां राजा न सुखितोऽभवत्॥१५॥
स देव्या व्यवसायं च घोरं च शपथं कृतम्।
ध्यात्वा रामेति निःश्वस्य च्छिन्नस्तरुरिवापतत्॥१६॥

अर्थ—उस वज्रसम, हृदय को अप्रिय तथा दुःख, शोक से भरी हुई वाणी को सुनकर राजा अति दुःखातुर हुए और वह रानी के निश्चय तथा भयंकर शपथ का ध्यान करके "राम" ऐसा कह लम्बी आह भरकर कटे हुए वृक्ष की भांति भूमि पर गिर पड़े ॥

दीनयातुरया वाचा इति होवाच कैकयीम्।
अनर्थमिममर्थाभं केन त्वमुपदेशिता ॥ १७ ॥
भूतोपहतचित्तेवब्रुवन्ती मां न लज्जसे।
शीलव्यसनमेतत्तेनाभिजानाम्यहं पुरा ॥ १८ ॥

अर्थ—और दीन होकर आतुरवाणी से बोले कि अर्थ की भांति प्रतीत होने वाला यह अनर्थ तुझको किसने सिखलाया है जो भूतोपहत=भूतों के विकारग्रस्त चित्त की भांति बोलती चली जाती है मेरी तनिक लज्जा नहीं करती, यह तेरा भ्रष्टचरित्र मैं पहले नहीं जानता था ॥

कुतो वा ते भयं जातं या त्वमेव विधंवरम् ।
राष्ट्रे भरतमासीनं वृणीषे राघवं वने ॥ १९ ॥
विरमैतेन भावेन त्वमेतेनानृतेन वा ।
यदि भर्तुः प्रियं कार्यं लोकस्य भरतस्य च ॥२०॥

अर्थ—यह तुझको ऐसा भय किससे हुआ है जो इस प्रकार वर मांगती है कि भरत राज्य पर बैठे और राम वन में जाय, यदि तुझे भर्ता, लोक और भरत का प्रिय करना है तो इस भाव अथवा इस अनृत से पृथक् होजा ॥

न कथंचिद्दते रामाद्भरतो राज्यमावसेत् ।
रामादपि हि तं मन्ये धर्मतो बलवत्तरम् ॥ २१ ॥

अर्थ—राम के बिना भरत कदापि राज्य न करेगा, मैं उसको राम से बढ़कर धर्म में बलवान् समझता हूं ॥

किं मां वक्ष्यन्ति राजानो नानादिग्भ्यः समागताः।
बालो बतायमैक्ष्वाकश्चिरं राज्यमकारयत् ॥ २२ ॥
यदा हि बहवो वृद्धा गुणवन्तो बहुश्रुताः ।
परिप्रक्ष्यन्ति काकुत्स्थं वक्ष्यामि किमहं तदा ॥२३॥

अर्थ—नाना दिशाओं से आये हुए राजा लोग मुझे क्या कहेंगे कि यह बालबुद्धि दशरथ किस प्रकार चिर तक राज्य करता रहा, जब बहुत से गुणी बहुत श्रुत वृद्ध राम के विषय में मुझसे पूछेंगे तो मैं उनसे क्या कहुंगा ॥

कैकेय्या क्लिश्यमानेन पुत्रः प्रव्राजितो मया ।
यदि सत्यं ब्रवीम्येतत्तदसत्यं भविष्यति ॥ २४ ॥
किं मां वक्ष्यति कौसल्या राघवे वनमास्थिते ।
किं चैनां प्रतिवक्ष्यामि कृत्वा विप्रियमीदृशम्॥२५॥

अर्थ—यदि यह कहूं कि कैकेयी से पीड़ित होकर मैंने राम को निकाला है तो यह सत्य होने पर राम को राज्य देने का वचन झूठ होजायगा और राम के वन जाने पर कौसल्या मुझको क्या कहेगी, मैं ऐसा अप्रिय करके उसको क्या उत्तर दूंगा ॥

विप्रकारं च रामस्य संप्रयाणं वनस्य च ।
सुमित्रा प्रेक्ष्य वै भीता कथं मे विश्वसिष्यसि॥२६॥
कृपणंबत वैदेही श्रोष्यति द्वयमप्रियम् ।
मां च पञ्चत्वमापन्नं रामं च वनमाश्रितम् ॥ २७ ॥

अर्थ—राम की राज्य हानि तिस पर भी वन जाना देखकर डरी हुई सुमित्रा मुझ पर कैसे विश्वास करेगी, हा खेद, मेरा मृत्यु को प्राप्त होना और राम का वन जाना यह दो अप्रिय विचारी सीता सुनेगी ॥

अनार्य्य इति मामार्याः पुत्रविक्रायकं ध्रुवम् ।

धिक् करिष्यन्ति रथ्यासु सुरापं ब्राह्मणं यथा॥२८॥

अर्थ—गली बाज़ारों में आर्य्यपुरुष मुझको पुत्र का वेचने वाला अर्थात् पुत्र को वेचकर स्त्री सुख मोल लेने वाला जान अनार्य्य कहकर धिक्कारेंगे, जैसे मद्यपान करने वाले ब्राह्मण को लोग धिक्कारते हैं ॥

रममाणस्त्वयासार्धंमृत्युं त्वां नाभिलक्षये ।
बालो रहसि हस्तेन कृष्णसर्पमिवास्पृशम् ॥ २९ ॥

अर्थ—तेरे साथ प्रसन्नतापूर्वक रहते हुए मैंने तुझे अपना मृत्यु नहीं समझा था, बालक की भांति एकान्त में काले सांप को हाथ से स्पर्श करता रहा ॥

तं तु मां जीवलोकोऽयं नूनमाक्रोष्टुमर्हति ।
मयाह्यपितृकः पुत्रः स महात्मा दुरात्मना ॥३०॥
वेदैश्च ब्रह्मचर्यैश्च गुरुभिश्चोपकर्षितः ।
भोग काले महत् कृच्छ्रं पुनरेव प्रपत्स्यते ॥ ३१ ॥

अर्थ—सम्पूर्ण संसार मुझ दुष्टात्मा की निन्दा करे तो कुछ अनुचित नहीं, क्योंकि मैं अपने जीते जी अपने महात्मा पुत्र को बिना पिता का किये देता हूं, वेदाध्ययन, ब्रह्मचर्य्यव्रत और गुरुकुल में वास करते हुए क्षीण शरीर वाला राम अब भोगकाल उपस्थित होने पर बड़े कष्ट में जापड़ेगा ॥

नालं द्वितीयं वचनं पुत्रो मां प्रतिभाषितुम् ।
स वनं प्रव्रजेत्युक्तो बाढमित्येव वक्ष्यति ॥ ३२ ॥

यदि मे राघवः कुर्याद्वनं गच्छेति चोदितः ।
प्रतिकूलं प्रियं मे स्यान्नतु वत्सः करिष्यति ॥ ३३ ॥

अर्थ-पुत्र राम मुझको और बात न कहसकेगा उसको वन जाने की आज्ञा दिये जाने पर "तथास्तु" ही कहेगा, यदि मुझसे वन जाने की आज्ञा होने पर राम मेरे विरुद्ध करे तो मेरा प्रिय हो पर वह वत्स ऐसा कदापि न करेगा ॥

कौसल्यां च सुमित्रां च मां च पुत्रैस्त्रिभिः सह ।
प्रक्षिप्य नरके सा त्वं कैकेयि सुखिता भव ॥३४॥
प्रियं चेद्भरतस्यैतद्रामप्रव्राजनं भवेत् ।
मास्म मे भरतः कार्षीत्प्रेतकृत्यं गतायुषः ॥३५॥

अर्थ-हे कैकेयि ! कौसल्या, सुमित्रा और तीनों पुत्रों सहित मुझको नरक में फैंककर तू सुखी हो, यदि राम का वन जाना भरत को प्रिय हो तो मेरे मरने पर वह मेरा प्रेत कृत्य=अन्त्येष्टि संस्कार मत करे ॥

मृतेमयि गते रामे वनं पुरुषपुंगवे ।
सेदानीं विधवा राज्यं सपुत्रा कारयिष्यसि॥३६॥

अर्थ-मेरे मृत्यु होने और पुरुषश्रेष्ठ राम के वन चले जाने पर तू विधवा होकर पुत्रसहित राज्य करना ॥

त्वं राजपुत्रि दैवेनन्यवसोममवेश्मनि ।
अकीर्तिश्चातुला लोके ध्रुवः परिभवश्चमे ।
सर्वभूतेषु चावज्ञा यथा पापकृतस्तथा ॥ ३७ ॥

अर्थ—तुझ राजपुत्री के रूप में मेरे खोटे कर्म ही हमारे गृह में आवसे हैं, यदि तू वस्तुतः राजपुत्री होती तो तेरे कारण सब लोगों में मेरा अनादर और पापी पुरुषों के समान अपयश न होता ॥

कथं रथैर्विभुर्यात्वा गजाश्वैश्च मुहुर्मुहुः ।
पद्भ्यां रामो महारण्ये वत्सो मे विचरिष्यति ॥३८॥

अर्थ—हाय, जो राम बार २ रथ, घोड़े, हाथी आदि वाहनों पर चढ़ राजमार्ग में घूमते थे वह हमारे वत्स राम बन में पैदल कैसे विचरेंगे ॥

यस्यचाहार समये सूताः कुण्डलधारिणः ।
अहं पूर्वाः पचंतिस्म प्रसन्नाः पान भोजनम् ॥३९॥
स कथं नु कषायाणि तिक्तानि कटुकानि च ।
भक्षयन्वन्यमाहारं सुतो मे वर्तयिष्यति ॥ ४० ॥

अर्थ—कुण्डलादि धारण किये हुए सूता=रसोइया जिस रामचन्द्र के भोजन काल में कहा करते थे कि राम के लिये मैं पहले पकाता हूं, मेरा भोजन पानकर प्रसन्न होंगे, वही राम कसैले, तिक्त और कटु आदि बन के भोजन करते हुए बन में कैसे जीवेंगे ॥

महार्हवस्त्र संबद्धो भूत्वा चिरसुखोचितः ।
काषायपरिधानस्तु कथं रामो भविष्यति ॥ ४१ ॥
कस्येदं दारुणं वाक्यमेवंविधमपीरितम् ।

रामस्यारण्य गमनं भरतस्यभिषेचनम् ॥ ४२ ॥

अर्थ–जो राम बहुमूल्य वस्त्र धारणकर नाना प्रकार के सुख भोगत थे वह गेरुआ वस्त्र पहनकर बन में कैसे विचरेंगे, न जाने किस दुष्ट ने ऐसे दारुण वचन इस दुष्टा को सिखलाये कि राम को बनवास और भरत को राज्याभिषेक हो ॥

विना हि सूर्य्येण भवेत्प्रवृत्तिरवर्षता
वज्रधरेणवापि । रामन्तुगच्छन्तमितः
समीक्ष्य जीवेन्न कश्चित्त्विति चेतनामे ॥ ४३ ॥

अर्थ–विना सूर्य्य संसार की प्रवृत्ति रहे और विना वर्षा के संसार स्थिर रहे परन्तु राम को बन जाते देखकर कोई भी न जीवेगा ॥

मया च रामेण सलक्ष्मणेन प्रशास्तु हीनो भरत-
स्त्वयासह । पुरं च राष्ट्रं च निहत्य बान्धवान्
ममाहितानां च भवाभिभाषिणी ॥ ४४ ॥

अर्थ–अच्छा राम, लक्ष्मण तथा मेरे विना तेरे साथ अयोध्या वा राज्य की रक्षा भरत करे और तू पुत्रादि बान्धवों को मार हमारे शत्रुओं से भले प्रकार वार्तालाप कर ॥

न शंसवृत्ते व्यसनप्रहारिणि प्रसह्य वाक्यं
यदिहाद्यभाषसे । न नामते तेन मुखात्प-
तन्त्यधोविशीर्यमाणादशनाःसहस्रधा ॥ ४५ ॥

अर्थ–हे निर्लज्ज ! जो तू हठवशात बार २ ऐसे कटु बचन

कहती है नजाने नीचे गिरकर तेरे दांत सहस्रों जगह से खण्ड २ क्यों नहीं होजाते ॥

न किंचिदाहाहितमप्रियं वचो न वेत्ति रामः पुरुषाणि भाषितुम् । कथं तु रामे ह्यभिरामवादिनि ब्रवीषि दोषान् गुणनित्यसंमते ॥ ४६ ॥

अर्थ–राम ने तुझ से कभी अप्रिय वचन नहीं कहा, क्योंकि वह कठोर भाषण करना जानते ही नहीं, फिर न जाने ऐसे मधुरभाषी उत्तम गुण सम्पन्न राम में तू किस प्रकार दोष आरोपित करती है ॥

प्रताम्य वा प्रज्वल वा प्रणश्य वा सहस्रशो वा स्फुटितां महींव्रज । न ते करिष्यामि वचः सुदारुणं ममाहितं कैकेयराजपांसने ॥४७॥

अर्थ–तू चाहे उदास हो, चाहे अग्नि में गिरकर भस्म हो, चाहे विष खाकर मर, चाहे शस्त्र से अपने अंगों को टुकड़े २ करदे और चाहे पृथिवी में समाजा, पर हे कैकेयि ! राजबंश में कलंक लगाने वाले तेरे अप्रिय बचनों का मैं कदापि पालन न करूंगा ॥

क्षुरोपमां नित्यमसत्प्रियंवदां प्रदुष्टभावां स्वकुलोपघातिनीम् । न जीवितुं त्वां विषहेऽमनोरमां दिधक्षमाणां हृदयं सबन्धनम् ॥४८॥

अर्थ–छुरे की धार के समान नित्य ही असत्प्रियभाषण

करने वाली, दुष्टस्वभाव, अपने कुल के नाश और प्राणों सहित मेरे हृदय को दग्ध करने वाली मैं तेरे जीवन से प्रसन्न नहीं ॥

न जीवितं मेऽस्ति कुतः पुनः सुखं विनात्मजेनात्मवतां कुतोरतिः । ममाहितं देवि न कर्तुमर्हसि स्पृशामिपादावपिते प्रसीद मे ॥ ४९ ॥

अर्थ–हे कैकेयी ! परमप्रिय पुत्र राम के विना मेरे प्राण नहीं रहसक्ते फिर सुख कहां, हे देवि ! तुझे मेरा अहित नहीं करना चाहिये, मैं तेरे पैर छूता हूं, मुझ पर दया कर ॥

स भूमिपालो विलपन्ननाथवत्स्त्रिया गृहीतो हृदयेति मात्रया । पपात देव्याश्चरणौ प्रसारिताबुभावसंप्राप्ययथातुरस्तथा ॥ ५० ॥

अर्थ–वह भूमिपाल उक्त प्रकार अनाथ की न्याईं विलाप करता हुआ, मर्यादा उल्लङ्घन कीहुई स्त्री से हृदय में पकड़ा हुआ, कैकेयी के दोनों फैलाये हुए चरणों को छूने के लिये हाथ पसारे परन्तु उनको प्राप्त न होकर आतुर के समान गिरपड़ा ॥

इति एकादशः सर्गः

अथ द्वादशः सर्गः

अतदर्हं महाराजं शयानमतथोचितम् ।
ययातिमिव पुण्यान्ते देवलोकात्परिच्युतम् ॥ १ ॥

अर्थ–राजा कैकेयी के चरण समीप ऐसे गिरे जिसके वह योग्य न थे, जैसे पुण्यनाश होने पर ययाति देवलोक=उच्च अवस्था से गिरे थे ॥

तथा विलपतस्तस्य परिभ्रमितचेतसः ।
अस्तमभ्यागमत्सूर्यो रजनी चाभ्यवर्तत ॥ २ ॥
सात्रियामातदार्तस्य चन्द्रमण्डलमण्डिता ।
राज्ञो विलपमानस्य न व्यभासत शर्वरी ॥ ३ ॥

अर्थ–इस प्रकार विलाप करते २ चञ्चल चित्त वाले राजा को सूर्य्यास्त होकर रात्रि वर्त्तमान हुई, पर आर्त्त होकर विलाप करते हुए राजा को चन्द्रमा से भूषित वह रात्रि शोभायमान न लगी ॥

सदैवोष्णं विनिःश्वस्य वृद्धो दशरथो नृपः ।
विललापार्तवद्दुःखं गगनासक्तलोचनः ॥ ४ ॥

अर्थ–वृद्ध राजा दशरथ लम्बे २ गरम श्वास भरकर आकाश की ओर ताकते हुए आर्त की भांति दुःखी होकर विलाप करते रहे ॥

ततः प्रभातां रजनीमुदिते च दिवाकरे ।
पुण्ये नक्षत्रयोगे च मुहूर्ते च समागते ॥ ५ ॥
वसिष्ठोगुणसम्पन्नः शिष्यैः परिवृतस्तथा ।
उपगृह्याशुसंभारान्प्रविवेशपुरोत्तमम् ॥ ६ ॥

अर्थ–इसके अनन्तर रात्रि के व्यतीत होने पर सूर्य्योदय

हुआ पुण्यनक्षत्र योग और अभिषेक का मुहूर्त निकट आने पर गुणसम्पन्न वसिष्ठ शिष्यों सहित अभिषेक का सब सामान लिये हुए उत्तम अयोध्यापुरी में प्रविष्ट हुए ॥

सिक्तसंमार्जितपथां पताकोत्तमभूषिताम् ।
संहृष्टमनुजोपेतां समृद्धविपणापणाम् ॥ ७ ॥
महोत्सवसमायुक्तां राघवार्थे समुत्सुकाम् ।
चन्दनागुरुधूपैश्च सर्वतः परिधूपिताम् ॥ ८ ॥

अर्थ—और देखा कि अयोध्या की सब गली कूचों में सुगन्धित जल से छिड़काव होरहा है जगह २ उत्तम ध्वजा पताकायें फहरा रही हैं, मनुष्य प्रसन्नचित्त घूम रहे हैं और बाज़ारों में सब पदार्थ धरे हैं, रामचन्द्र के अर्थ नानाप्रकार के उत्सव होरहे हैं चन्दन और गुगुल आदि सुगन्धित पदार्थ जगह २ सुगन्धि देरहे हैं ॥

तां पुरीं समतिक्रम्य पुरन्दरपुरोपमाम् ।
ददर्शान्तःपुरं श्रीमान्नानाध्वजगणायुतम् ॥ ९ ॥
पौरजानपदाकीर्णां ब्राह्मणैरुपशोभितम् ।
यष्टिमद्भिः सुसम्पूर्णं सदश्वैः परमार्चितैः ॥ १० ॥

अर्थ—उस अयोध्यापुरी को अतिक्रमण=नांघते हुए महर्षि वसिष्ठ राजमन्दिर में आय देखा कि वहां नाना प्रकार की ध्वजा पताका फहरा रही हैं और पुरवासी, देशवासी तथा सभासद लोग एकत्रित हो जगह २ घूम रहे हैं तथा यज्ञ के जानने वाले सब ब्राह्मण बैठे हैं ॥

तदन्तः पुरमासाद्य व्यतिचक्रामतं जनम् ।
वसिष्ठः परमप्रीतः परमर्षिभिरावृतः ॥ ११ ॥
सत्वपश्यद्विनिष्क्रान्तंसुमन्त्रं नाम सारथिम् ।
द्वारेमनुजसिंहस्य सचिवं प्रियदर्शनम ॥ १२ ॥

अर्थ—ऐसे राजमन्दिर के भीतर आकर वसिष्ठजी सब लोगों और बनाव को देखकर महर्षियों सहित बड़ी प्रसन्नता को प्राप्त हुए, फिर देखा कि राजा के महल के भीतरी दर्वाज़े की ओर से निकलकर प्रियदर्शन सार्थी सुमन्त्र आरहे हैं ॥

तमुवाच महातेजाः सूतपुत्रं विशारदम् ।
वसिष्ठः क्षिप्रमाचक्ष्व नृपतेमामिहागतम् ॥ १३ ॥

अर्थ—तब महातेजस्वी वसिष्ठ सुमन्त्र से बोले कि तुम शीघ्र ही राजा से कहो कि वसिष्ठ आगये हैं ॥

एतेचान्ये च बहवः प्रीयमाणाः प्रियंवदाः ।
अभिषेकाय रामस्य सहतिष्ठन्ति पार्थिवैः ॥१४॥
त्वरयस्व महाराजं यथासमुदितेऽहनि ।
पुष्येनक्षत्रयोगे च रामो राज्यमवाप्नुयात् ॥ १५ ॥

अर्थ—और बहुत से प्रसन्नचित्त लोग प्रेमी तथा मीठा बोलने वाले राजाओं के साथ अभिषेकार्थ आये हुए हैं, इसलिये महाराज से कहो कि शीघ्रता करें ताकि दिन के उदय होने पर पुष्यनक्षत्रयोग में रामचन्द्र राज्य पावें ॥

इति तस्य वचः श्रुत्वा सूतपुत्रो महाबलः ।
स्तुवन्नृपतिशार्दूलं प्रविवेश निवेशनम् ॥ १६ ॥

अर्थ–महात्मा वसिष्ठ के उक्त वचन सुनकर सुमन्त्र महाराज की स्तुति करते हुए राजमन्दिर में गये ॥

उत्तिष्ठ सुमहाराज कृतकौतुकमंगल ।
विराजमानो वपुषा मेरोरिवदिवाकरः ॥ १७ ॥
उद्यातिष्ठतरामस्यसमग्रमभिषेचनम् ।
पौरजानपदाश्चापि नैगमश्चकृतांजलिः ॥ १८ ॥
अयं वसिष्ठो भगवान् ब्राह्मणैः सहतिष्ठति ।
क्षिप्रमाज्ञाप्यतां राजन् राघवस्याभिषेचनम् ॥ १९ ॥

अर्थ–और वहां जाकर राजा से कहा कि हे महाराज प्रसन्नतापूर्वक उठकर सुमेरु पर्वत पर सूर्य्य की भांति विराजमान होओ, अब दिन का उदय होगया, जिस २ पदार्थ के लिये आज्ञा हुई थी वह सामान उपस्थित है, देश, नगर तथा पुरवासी सब लोग हाथ जोड़े द्वारपर खड़े हैं और भगवान् वसिष्ठजी सब ब्राह्मणों के सहित आये हुए हैं सो रामचन्द्र के अभिषेकार्थ शीघ्र ही आज्ञा दीजिये ॥

शोकरक्तेक्षणःश्रीमानुद्वीक्ष्योवाचधार्मिकः ।
वाक्यैस्तु खलु मर्माणि मम भूयो निकृंतसि ॥२०॥
सुमंत्रः करुणं श्रुत्वा दृष्ट्वादीनं च पार्थिवम् ।
प्रगृहीतांजलिःकिंचित्तस्माद्देशादपाक्रमत् ॥२१॥

अर्थ–तब शोक से लालनेत्र किये हुए महाराज बोले कि हे सुमन्त्र ! तुम अपने बचनों से मेरे मर्मस्थान का छेदन मत करो, सुमन्त्र महाराज के ऐसे करुणामय वचन सुन और दीन देखकर हाथ जोड़े भयभीत हो सन्मुख से हट गये ॥

यदावक्तुं स्वयंदैन्यान्नशशाकमहीपतिः ।
तदासुमंत्रं मंत्रज्ञा कैकेयी प्रत्युवाच ह ॥२२॥

अर्थ–उस समय दुःख से आतुर हुए महाराज सुमन्त्र से कुछ न बोल सके तब चतुर कैकेयी बोली कि :—

सुमंत्र राजा रजनीं रामहर्षसमुत्सुकः ।
प्रजागरपरिश्रान्तो निद्रावशमुपागतः ॥ २३ ॥

अर्थ–हे सुमन्त्र ! रामाभिषेक के हर्ष में राजा रात्रि के जागे हुए परिश्रम से थक निद्रावश होरहे हैं ॥

गच्छ त्वरितं सूत राजपुत्रं यशस्विनम् ।
राममानय भद्रं ते नात्र कार्य्या विचारणा ॥२४॥
अश्रुत्वा राजवचनं कथं गच्छामि भामिनि ।
तच्छ्रुत्वा मंत्रिणो वाक्यं राजा मंत्रिणमब्रवीत्॥२५॥

अर्थ–सो तुम शीघ्र ही यशस्वी राजकुमार राम को यहां ले आओ, इसमें विशेष विचार की आवश्यकता नहीं, यह सुन सुमन्त्र बोले कि हे भामिनि ! राजा की विना आज्ञा मैं कैसे जाऊं, मंत्री के ऐसे वचन सुनकर राजा ने कहा कि :—

सुमन्त्र रामं द्रक्ष्यामि शीघ्रमानय सुन्दरम् ।
सम्मन्यमानः कल्याणं हृदयेननननन्द च ॥ २६ ॥

अर्थ—हे सुमन्त्र ! सुन्दर राम को शीघ्र ही यहां लेआओ मैं देखना चाहता हूं तब सुमन्त्र कल्याण समझ हृदय में आनन्दित हुए ॥

इति द्वादशः सर्गः

अथ त्रयोदशः सर्गः

ते तु तां रजनीमुष्य ब्राह्मणा वेदपारगाः ।
उपतस्थुरुपस्थानं सहराजपुरोहिताः ॥ १ ॥

अर्थ—उधर राजा ने सुमन्त्र को राम के बुलाने के लिये भेजा और इधर रात्रि के व्यतीत होने पर वेदपारग ब्राह्मण महार्षि वसिष्ठ के साथ राजद्वार पर जा उपस्थित हुए ॥

अमात्या बलमुख्याश्चमुख्याये निगमस्य च ।
राघवस्याभिषेकार्थे प्रीयमाणाः सुसंगताः ॥ २ ॥

उदिते विमले सूर्ये पुष्ये चाभ्यागतेहनि ।
लग्ने कर्कटके प्राप्ते रामस्य च स्थिते ॥ ३ ॥

अर्थ—राजसेवक, सेनापति और बाज़ार में मुख्य=चौधरी, रामाभिषेक के लिये एकत्रित हुए, विमल सूर्य्य उदय हो आया

और पुष्यनक्षत्र कर्कलग्न जिसमें राम का जन्म हुआ था वह भी आन पहुंचे ॥

अभिषेकाय रामस्य द्विजेन्द्रैरुपकल्पितम् ।
कांचना जल-कुंभाश्च भद्रपीठं स्वलंकृतम् ॥ ४ ॥
रथश्च सम्यगास्तीर्णोभास्वताव्याघ्रचर्मणा ।
गंगायमुनयोःपुण्यात्संगमादाहृतं जलम् ॥ ५ ॥

अर्थ—उत्तम ब्राह्मणों ने राम के अभिषेकार्थ सब सामग्री एकत्रित की अर्थात् जल से भरे हुए सुवर्ण के कलश, भद्रपीठ=अभिषेक के लिये सुन्दर सिंहासन, व्याघ्रचर्म बिछा हुआ देदीप्यमान रथ और पवित्र गङ्गा यमुना के सङ्गम से जल मंगाया गया ॥

याश्चान्यःसरितःपुण्याह्रदाःकूपाःसरांसि च ।
प्राग्वहाश्चोर्ध्ववाहाश्चतिर्यग्वाहाश्चक्षीरिणः ॥६॥
ताभ्यश्चैवाहृतंतोयं समुद्रेभ्यश्च सर्वशः ।
क्षौद्रंदधिघृतंलाजादर्भाः सुमनसः पयः ॥ ७ ॥

अर्थ—इसके अतिरिक्त पवित्र नदी, कुण्ड, कूप और तालाब आदि से पानी लायागया जो पूर्व, पश्चिम तथा तिरछे बहने वाले हैं और समुद्रों से भी जल मंगाया, मधु, दधि, घृत, लाजा=खीलें, कुश, पुष्प, दूध—

सजलाःक्षीरिभिश्छन्ना घटाः कांचन-राजताः ॥८॥
पद्मोत्पलयुताभाति पूर्णाः परमवारिणा ।
चन्द्रांशु-विकचप्रख्यं पाण्डुरं रत्नभूषितम् ॥ ९ ॥

सज्जं तिष्ठतिरामस्यबालव्यजनमुत्तमम् ।
चन्द्रमण्डलसंकाशमातपत्रं च पाण्डुरम् ॥ १० ॥
सज्जं द्युतिकरं श्रीमदभिषेकपुरःसरम् ।
पाण्डुरश्चवृषः सज्जः पाण्डुरश्वश्चसंस्थितः ॥ ११ ॥

अर्थ—और दूध वाले वृक्षों के पत्रों से ढके हुए जल से भरे सुवर्ण, चांदी के कुम्भ=घट जो कमल पुष्प संयुक्त सुन्दर जल से शोभायमान होरहे हैं, चन्द्रमा की किरणों के समान उज्वल सुवर्ण की डंडी से रत्न जटित चमर, चन्द्रमण्डल के समान श्वेत छत्र, श्वेत बैल और श्वेत घोड़ा आदि सब शोभाप्रद पदार्थ एकत्रित किये गये ॥

वादित्राणि च सर्वाणि वन्दिनश्च तथा परे ।
इक्ष्वाकूणां यथाराज्येसंभ्रियेताभिषेचनम् ॥ १२ ॥

अर्थ—सब प्रकार के वादित्र=बाजे, सूत, मागध और वन्दिजन आये, जैसे पूर्व इक्ष्वाकुवंशियों के अभिषेक में सब सामान एकत्रित होता था :—

तथाजातीयमादाय राजपुत्राभिषेचनम् ।
तेराजवचनात्तत्रसमवेतामहीपतिम् ॥ १३ ॥

अर्थ—इसी प्रकार राजकुमार रामचन्द्र के अभिषेकार्थ राजा दशरथ की आज्ञा से सब सामग्री एकत्रित कीगई ॥

अपश्यन्तोऽब्रुवन् कोनुराज्ञो नः प्रतिवेदयेत् ।
नपश्यामश्च राजानमुदितश्चदिवाकरः ॥ १४ ॥

यौवराज्याभिषेकश्च सज्जोरामस्य धीमतः।
इति तेषु ब्रुवाणेषुसर्वांस्तांश्चमहीपतीन् ॥ १५ ॥

अर्थ–वहां यज्ञस्थान में राजा को न देखकर सब आपस में कहने लगे कि सूर्य्य उदय हो आया और राजा को नहीं देखते, न जाने बुद्धिमान् राम के अभिषेक विषयक महाराज क्या आज्ञा देते हैं ॥

स राजवचनंश्रुत्वा शिरसाप्रतिपूज्यतम्।
निर्जगाम नृपावासान्मन्यमानःप्रियं महत् ॥१६॥
प्रपन्नोराजमार्गं च पताकाध्वजशोभितम्।
हृष्टः प्रमुदितः सूतो जगामाशु विलोकयन् ॥१७॥

अर्थ–और इधर सुमन्त्र राजा का वचन सुन और उनको सिर से पूजकर=सिर झुका नमस्ते करके बड़ा प्रिय समझते हुए राजमन्दिर से बाहर निकले और ध्वजा पताकाओं से शोभायमान राजमार्ग में प्रविष्ट होकर बड़े प्रसन्न हो सब ओर निहारते हुए शीघ्र ही गये ॥

स सूतस्तत्र शुश्रावरामाधिकरणाः कथाः।
अभिषेचन संयुक्ताःसर्वलोकस्यहृष्टवत् ॥ १८ ॥
ततोददर्शरुचिरं कैलास सदृशप्रभम्।
रामवेश्मसुमन्त्रस्तुशक्रवेश्मसमप्रभम् ॥१९॥

अर्थ–और उन्होंने मार्ग में सब लोगों को आनन्दपूर्वक रामाभिषेक विषयक बातें करते हुए देखा, इसके अनन्तर कैलास

पर्वत की चोटी तुल्य इन्द्रभवन के सदृश रामभवन को प्राप्त हुए ॥

स तदन्तःपुरद्वारं समतीत्य जनाकुलम् ।
प्रविविक्तां ततः कक्ष्यामाससादपुराणवित् ॥२०॥

अर्थ—वह पुराणवेत्ता सुमन्त्र लोगों से भरे हुए अन्तःपुर=घर के द्वार को नांघकर सब से अन्तिम डेवढ़ी पर आये ॥

प्रासकार्मुकबिभ्रद्भिर्युवभिर्मृष्टकुंडलैः ।
अप्रमादिभिरेकाग्रैःस्वनुरक्तैरधिष्ठिताम् ॥ २१ ॥
अत्र काषायिणोवृद्धान्वेत्रपाणीन्स्वलंकृतान् ।
ददर्शविष्ठितान्द्वारिस्त्र्यध्यक्षान्सुसमाहितान् ॥२२॥

अर्थ—वहां डेवढ़ी पर जितने द्वारपाल थे वह सब युवावस्था को प्राप्त, मणि जटित सुवर्ण के कुण्डल पहिने, धनुष धारण किये सब एकाग्रचित्त स्वामी के कार्य्य में तत्पर थे, और इनसे आगे गेरुआ आदि रंग से रंगे हुए वस्त्र धारण किये सुलङ्कृत हाथ में वेत लिये वृद्ध लोगों को देखा जो स्त्रियों के रक्षक थे ॥

ते समीक्ष्य समायांतं रामप्रियाचिकीर्षवः ।
सहसोत्पतिताः सर्वे ह्यासनेभ्यः ससंभ्रमाः ॥२३॥

तानुवाचविनीतात्मासूतपुत्रःप्रदक्षिणः ।
क्षिप्रमाख्यातरामाय सुमन्त्रोद्वारितिष्ठति ॥ २४ ॥

अर्थ-वह द्वारपाल महात्मा सुमन्त्र को प्रसन्नचित्त आते देखकर अपने २ आसनों से उठकर खड़े होगये और सुमन्त्र की प्रदक्षिणा की, फिर सुमन्त्र ने द्वारपालों से कहा कि तुम रामचन्द्र से शीघ्र जाकर कहो कि सुमन्त्र द्वारपर खड़े हैं ॥

ते राममुपसंगम्यभर्तुःप्रियचिकीर्षवः ।
सहभार्यायरामायक्षिप्रमेवाचचक्षिरे ॥ २५॥
प्रतिवेदितमाज्ञायसूतमभ्यन्तरं पितुः ।
तत्रैवानाययामास राघवः प्रियकाम्यया ॥२६॥

अर्थ-द्वारपालों ने शीघ्र ही स्त्री सहित बैठे हुए राम से कहा कि महाराज के भेजे हुए महात्मा सुमन्त्र आपके दर्शनार्थ द्वार पर खड़े हैं क्या आज्ञा है, यह सुनकर राम ने जाना कि पिता के भेजे हुए सुमन्त्र प्रिय की इच्छा से आये हैं, राम ने आज्ञा दी कि उनको यहां बुलालाओ ॥

तं वैश्रवणसंकाशमुपविष्टस्वलंकृतम् ।
ददर्शसूतः पर्यंके सौवर्णेसोत्तरच्छदे ॥ २७ ॥

अर्थ-सुमन्त्र ने आकर देखा कि सब वस्त्राभूषणों से अलंकृत बहुमूल्य बिस्तर विछाये हुए सुवर्ण के पलंग पर कुवेर के समान सज धज कर राम विराजमान हैं ॥

स्थितयापार्श्वतश्चापिबालव्यजनहस्तया ।
उपेतं सीतयाभूयश्चित्रयाशशिनं यथा ॥२८॥

अर्थ-और समीप ही चंवर हाथ में लिये हुए बैठी हुई सीता

से युक्त राम को देखा, जैसे चित्रा नक्षत्र के साथ चन्द्रमा की शोभा होती है वैसे ही सीता के साथ राम सुशोभित थे ॥

तं तप्तमिवादित्यमुपपन्नंस्वतेजसा ।
ववन्दे वरदं वन्दी विनयज्ञो विनीतवत् ॥ २९ ॥
प्रांजलिस्तु सुखं पृष्ट्वा विहारशयनासने ।
राजपुत्रमुवाचेदं सुमन्त्रोराजसत्कृतः ॥ ३० ॥

अर्थ—अपने तेज से युक्त सूर्य्य की भांति देदीप्यमान राम को देखकर सुमन्त्र ने विनयपूर्वक स्तुति करके प्रणाम किया तथा राजा के पूज्य सुमन्त्र ने हाथ जोड़कर राम की प्रसन्नता पूछी और फिर विहारशय्या पर स्थित राम से बोले कि :—

कौसल्या सुप्रजा राम पिता त्वां द्रष्टुमिच्छति ।
महिष्या सह कैकेय्या गम्यतां तत्र मा चिरम्॥३१॥

अर्थ—हे राम ! आपके होने से कौसल्या सुप्रजावाली है, रानी कैकेयी सहित पिता आपको देखना चाहते हैं सो आप वहां चलें विलम्बब न हो ॥

एवमुक्तस्तु संहृष्टो नरसिंहो महाद्युतिः ।
ततः संमानयामास सीतामिदमुवाच ह ॥ ३२ ॥

अर्थ—यह सुनकर महातेजस्वी नरसिंह राम ने प्रसन्न होकर उक्त वचन का सन्मान किया और सीता से बोले कि :—

देवि देवश्चदेवीच समागम्यमदन्तरे ।
मन्त्रयेतेध्रुवंकिंचिदभिषेचनसंहितम् ॥ ३३ ॥

लक्षयित्वाह्यभिप्रायंप्रियकामासुदक्षिणा ।
संचोदयति राजानं मदर्थमसितेक्षणा ॥ ३४ ॥

अर्थ—हे देवि ! राजा और रानी कैकेयी मिलकर मेरे अभिषेकविषयक सम्मति कररहे हैं, हे विशालनयनी ! राजा के अभिप्राय को जानकर मेरा प्रिय चाहने वाली सरल कैकेयी निःसन्देह मेरे लिये राजा को प्रेरणा कर रही है ॥

हन्तशीघ्रमितोगत्वाद्रक्ष्यामि च महीपतिम् ।
सह त्वं परिवारेण सुखमास्वरमस्व च ॥ ३५ ॥
पतिसंमानितासीताभर्तारमसितेक्षणा ।
आ द्वारमनुवव्राजमङ्गलान्यभिदध्युषी ॥ ३६ ॥

अर्थ—अहो ! मैं शीघ्र ही जाकर राजा का दर्शन करता हूं और तू परिवार सहित सुखपूर्वक यहां बैठ, वह श्यामनयनी सीता पति से सन्मानित होकर मङ्गलचिन्तन करती हुई द्वारतक अपने प्रिय भर्ता राम के साथ आई ॥

अथ सीतामनुज्ञाप्यकृतकौतुकमङ्गलः ।
निश्चक्रामसुमन्त्रेण सह रामो निवेशनात् ॥३७॥
लक्ष्मणंद्वारिसोऽपश्यत् प्रह्वांजलिपुटं स्थितम् ।
अथ मध्यमकक्ष्यायां समागच्छत्सुहृज्जनैः॥३८॥
स सर्वानर्थिनो दृष्ट्वा समेत्य प्रतिनन्द्य च ।
ततः पावकसंकाशमारुरोहरथोत्तमम् ॥ ३९ ॥

अर्थ—इसके अनन्तर सीता रामचन्द्र की आज्ञानुसार

राजभवन में अभिषेक के उत्सव का मङ्गल करने लगी, और सुमन्त्र के सहित राम बाहर निकले, बाहर निकलते ही द्वार पर हाथ जोड़े हुए लक्ष्मण को खड़ा देखा और मध्य की डेवढ़ी में अन्य सुहृदों के साथ मिले, रामचन्द्र सब अर्थियों को देख मिल आनन्दित करके देदीप्यमान रथ पर चढ़कर चलेगये ॥

प्रययौतूर्णमास्थायराघवोज्वलितः श्रिया ।
सपर्जन्य इवाकाशे स्वनवानभिनादयन् ॥ ४० ॥
चित्रचामरपाणिस्तु लक्ष्मणो राघवानुजः ।
जुगोप भ्रातरं भ्राता रथमास्थाय पृष्ठतः ॥ ४१ ॥

अर्थ–रामचन्द्र अति वेगवाले देदीप्यमान रथ पर सवार होकर चले, जैसे आकाश में मेघ का शब्द होता है वैसे ही चलते हुए रथ का शब्द होता था और राम का छोटा भाई लक्ष्मण क्षत्र तथा चम्वर हाथ में लेकर भाई भाई का रक्षक बना हुआ रथ के पिछले भाग में बैठा था ॥

अनुजग्मुस्तथारामंशतशोथसहस्रशः ।
अग्रतश्चास्यसन्नद्धाश्चन्दनागुरुभूषिता ॥ ४२ ॥

अर्थ–और राम के रथ के पीछे बहुत से हाथी घोड़े और शूरवीर योद्धा शस्त्रों सहित चन्दनादि लेपन किये राम का यश गाते हुए चले ॥

ततो वादित्रशब्दाश्चस्तुतिशब्दाश्च वन्दिनाम् ।
सिंहनादाश्च शूराणां ततः सुश्रुविरे पथि ॥४३॥

हर्म्यवातायनस्थाभिः भूषिताभिः समन्ततः ।
कीर्यमाणाः सुपुष्पौघैर्ययौ स्त्रीभिररिन्दमः ॥४४॥

अर्थ—और मार्ग में बाजों के शब्द, बन्दियों के स्तुति शब्द और शूरवीरों के सिंहनाद तुल्य शब्द सुनाई देने लगे तथा उत्तम मन्दिरों में सजकर बैठी हुई स्त्रियों ने राम के ऊपर फूलों की वर्षा की और शत्रुओं को जीतने वाले राम से यह वचन बोलीं कि :—

नूनं नन्दति ते माता कौसल्यामातृनन्दन ।
पश्यन्ति सिद्धयात्रं त्वां पित्र्यं राज्यमवास्थितम्॥४५॥
सर्वसीमन्तिनीभ्यश्च सीता सीमन्तिनी वरा ।
अमन्यन्त हि ता नार्यो रामस्य हृदयप्रियाम्॥४६॥

अर्थ—हे मातृनन्दन राम! आज तुम्हारी माता कौसल्या को बड़ा आनन्द है जो वह तुम्हारी इस यात्रा को जिससे तू पिता के राज्य पर स्थित होगा सफल देखती है, फिर स्त्रियों ने कहा कि सब नारियों में सीता उत्तम है जो राम के हृदय की प्यारी है ॥

तया सुचरितं देव्यापुरानूनं महत्तपः ।
रोहणीवशशाङ्केन रामसंयोगमायया ॥ ४७ ॥

अर्थ—उस देवी ने पूर्वजन्म में निःसन्देह बड़ा तप किया है जो राम से संयुक्त हुई है, जैसेकि चन्द्रमा से रोहिणी संयुक्त है ॥

इति प्रासादशृंगेषु प्रमदाभिर्नरोत्तमः ।
शुश्रावराजमार्गस्थः प्रियावाच उदाहृताः ॥४८॥

अर्थ—महलों पर चढ़ी हुईं स्त्रियों के ऐसे वचन सुनते हुए रामचन्द्र राजमार्ग में प्रसन्नवदन चले जाते थे॥

स राघवस्तत्र तदा प्रलापान् शुश्रावलो-
कस्य समागतस्य। आत्माधिकाराविवि-
धाश्च वाचः प्रहृष्टरूपस्य पुरेजनस्य॥४९॥

अर्थ—स्त्रियों के अतिरिक्त राजमार्ग में राम जगह २ लोगों की कथा वा अपने अधिकार विषय में प्रियवाणी सुनते हुए जाते थे॥

एषश्रियं गच्छति राघवोऽद्यराजप्रसादा-
द्विपुलां गमिष्यन्। एते वयं सर्व समृद्ध-
कामा येषामयं नो भविता प्रशास्ता॥५०॥

अर्थ—और लोग यह भी कहते सुनाई देते थे कि आज रामचन्द्र असन्त शोभा को धारण किये हुए राजमन्दिर की ओर जारहा है, हम सब कृतार्थ होंगे, क्योंकि राम हमारा भविष्य में नेता होगा॥

आशीर्वादान् बहूञ्शृण्वन् सुहृद्भिः समुदीरितान्।
यथार्हचापिसंपूज्यसर्वानेवनरान्ययौ॥ ५१॥
पितामहैराचरितं तथैव प्रपितामहैः।
अद्योपादाय तं मार्गमभिषिक्तोऽनुपालय॥५२॥
यथास्मलालिताः पित्रा यथा पूर्वैः पितामहैः।
ततः सुखतरं सर्वे रामेवत्स्याम राजनि॥ ५३॥

अर्थ–सुहृदों से दिये हुए बहुत से आशीर्वाद सुनकर लोगों का सत्कार करता हुआ गया, किसी ने यह आशीर्वाद दिया कि जिस मार्ग पर तेरे पितामह परपितामह चले आये हैं उसी मार्ग को ग्रहण करता हुआ राजा होकर सब प्रजाओं का पालनकर, जैसे हम महाराज दशरथ और उनके पूर्वजों से लालन पालन किये गये हैं उससे बढ़कर राम के राजा होने पर सुखी बसें ॥

ततो हि नः प्रियतरं नान्यत्किंचिद्भविष्यति ।
यथाभिषेको रामस्य राज्येनामिततेजसः ॥ ५४ ॥
एताश्चान्याश्च सुहृदामुदासीनः शुभाः कथाः ।
आत्मसंपूजनीः शृण्वन्ययौ रामो महापथम् ॥५५॥

अर्थ–अपरिमित तेज वाले राम के राज्याभिषेक से बढ़कर हमारे लिये अन्य कोई प्रिय नहीं, इत्यादि अपने सुहृदों से मान करने वाली शुभकथायें उदासीन होकर सुनता हुआ राजमार्ग से गया ॥

तत्पृथिव्यां गृहवरं महेन्द्रसदनोपमम् ।
राजपुत्रः पितुर्वेश्म प्रविवेश श्रियाज्वलन् ॥ ५६ ॥
स कक्षा धन्विभिर्गुप्तास्तिस्रोऽतिक्रम्य वाजिभिः ।
पदातिरपरे कक्ष्ये द्वे जगाम नरोत्तमः ॥ ५७ ॥

अर्थ–और वह महेन्द्रभवन के तुल्य राजभवन में पहुंचकर देदीप्यमान राजपुत्र पिता के भवन में प्रविष्ट हुए, और धनुर्धा-

रियों से रक्षा कीहुई तीन डेवढ़ियों को रथ पर ही उलांघकर उतर पड़े और आगे की दो डेवढ़ी पैदल ही गये ॥

स सर्वा समतिक्रम्य कक्ष्यादशरथात्मजः ।
संनिवर्त्य जनं सर्वं शुद्धान्तःपुरमभ्यगात् ॥ ५८ ॥

अर्थ—वह दशरथ के पुत्र राम सब डेवढ़ी लंघकर शुद्ध अन्तःपुर में प्रविष्ट हुए और अन्य सबको लौटादिया ॥

तस्मिन्प्रविष्टेपितुरन्तिकं तदाजनः स सर्वो-
मुदितोनृपात्मजे । प्रतीक्षते तस्य पुनर्विनि-
र्गमं यथोदयंचन्द्रमसःसरित्पतिः ॥ ५९ ॥

अर्थ—जब वह राजपुत्र पिता के निकट गया तो सब लोग आनन्दित हुए उनके निकलने की प्रतीक्षा करने लगे, जैसे समुद्र चन्द्रमा के उदय होने की प्रतीक्षा करता है ॥

इति त्रयोदशः सर्गः

अथ चतुर्दशः सर्गः

स ददर्शासने रामो विषण्णं पितरं शुभे ।
कैकेय्या सहितं दीनं मुखेनपरिशुष्यता ॥१॥
स पितुश्चरणौपूर्वमभिवाद्यविनीतवत् ।
ततो ववन्दे चरणौ कैकेय्यास्सुसमाहितः ॥२॥

अर्थ–इसके अनन्तर महल में प्रवेश कर राम ने देखा कि महाराज कैकेयी सहित व्याकुलचित्त मुख सूखा हुआ तथा दुःखी हुए आसन पर बैठे हैं, राम ने जाते ही अति नम्रतापूर्वक पिता के चरण छुए और फिर बड़ी सावधानी से कैकेयी के चरणों को छूकर प्रणाम किया ॥

रामेत्युक्त्वा तु वचनं वाष्पपर्याकुलेक्षणः ।
शशाक नृपतिर्दीनो नेक्षितुं नाभिभाषितुम् ॥ ३ ॥
तदपूर्वं नरपतेर्दृष्ट्वारूपंभयावहम् ।
रामोपिभयमापन्नः पदास्पृष्ट्वेवपन्नगम् ॥ ४ ॥

अर्थ–राम को देखकर " राम " इतना बचन कह आंसुओं से डुबडुबाते नेत्रों वाला राजा दीन हुआ फिर न राम की ओर देखसका और न बात करसका, राजा के उस अपूर्व भयानक रूप को देखकर राम भी भय को प्राप्त हुए, जैसे कोई पाउं से सांप का स्पर्श कर भयभीत होजाता है ॥

इन्द्रियैरप्रहृष्टैस्तं शोकसंतापकर्षितम् ।
निःश्वसन्तं महाराजं व्यथिताकुलचेतसम् ॥ ५ ॥
ऊर्मिमालिनमक्षोभ्यं क्षुभ्यन्तमिवसागरम् ।
उपप्लुतमिवादित्यमुक्तानृतमृषिं यथा ॥ ६ ॥

अर्थ–राम ने महाराज को अप्रसन्न इन्द्रिय तथा शोक संताप से दुर्बल, ठंडे सांस भरते दुःख से घबराये हुए चित्तवाला देखा, जैसे अक्षोभ समुद्र क्षोभ को प्राप्त हुआ हो अथवा सूर्य्य राहु से ग्रसा हुआ हो वा जैसे किसी ऋषि से अनृतभाषण किया

गया हो, इसी प्रकार दशरथ को राम ने क्षोभ को प्राप्त देखा ॥

अचिन्त्यकल्पंनृपतेस्तं शोकमुपधारयन् ।
बभूवसंरब्धतरः समुद्रइव पर्वणि ॥ ७ ॥
चिन्तयामास चतुरो रामः पितृहिते रतः ।
किंस्विदद्यैव नृपतिर्न मां प्रत्यभिनन्दति ॥ ८ ॥

अर्थ—चिन्ता में न आने वाले पिता के शोक को सोचता हुआ राम पूर्णमासी के दिन समुद्र की भांति बहुत क्षुभित हुआ और पिता के हित में रत बुद्धिमान् राम सोचने लगा कि क्या कारण जो आज राजा मुझ पर प्रसन्न नहीं है ॥

अन्यदा मां पिता दृष्ट्वा कुपितोऽपिप्रसीदति ।
तस्यमामद्यसंप्रेक्ष्यकिमायासः प्रवर्तते ॥ ९ ॥
स दीन इव शोकार्तो विषण्णवदनद्युतिः ।
कैकेयीमभिवाद्यैव रामो वचनमब्रवीत् ॥ १० ॥

अर्थ—आगे तो पिता मुझको देखकर कुपित हुए भी प्रसन्न होजाते हैं पर आज मुझको देखकर भी क्लेश को प्राप्त होरहे हैं यह कैसा कष्ट है, फिर राम शोक से पीड़ित हुआ मलिन कान्तिवाली कैकेयी को अभिवादन कर दीन की तरह यह वचन बोला कि :—

कच्चिन्मयानापराद्धमज्ञानाद्येन मे पिता ।
कुपितस्तन्ममाचक्ष्वत्वमेवैनंप्रसादय ॥ ११ ॥

अप्रसन्नमनाः किंनुसदामांप्रतिवत्सलः ।
विषण्णवदनोदीनः सदामांप्रतिभाषते ॥ १२ ॥
शारीरोमानसोवापिकच्चिदेनं न बाधते ।
सन्तापोवाभितापोवादुर्लभंहिसदासुखम् ॥ १३ ॥

अर्थ—क्या मैंने अज्ञान से कोई अपराध तो नहीं किया जिससे मेरे पिता कुपित होरहे हैं वह मुझको कहो और तुम्हीं इनको प्रसन्न कराओ, क्योंकि जब कभी पिता अप्रसन्न भी होजाते तो मेरे प्रति प्रसन्न ही रहते थे सो आज ऐसे मलिनमुख दुःखी हैं कि मेरे प्रति बोलते ही नहीं, क्या कोई शरीर सन्ताप है वा कोई मानस शोक तो इन्हें पीड़ा नहीं देरहा, क्योंकि सुख सदा दुर्लभ है ॥

कच्चिन्नकिञ्चिद्भरते कुमारे प्रियदर्शने ।
शत्रुघ्ने वा महासत्त्वेमातॄणां वा ममाशुभम् ॥१४॥
अतोषयन्महाराजमकुर्वन्वापितुर्वचः ।
मुहूर्तमपिनेच्छेयंजीवितुंकुपितेनृपे ॥ १५ ॥

अर्थ—क्या प्रियदर्शन कुमार भरत वा महापराक्रमी शत्रुघ्न अथवा मेरी माताओं विषयक तो कोई अनिष्ट नहीं हुआ ? महाराज को सर्वप्रकार से सन्तुष्ट अथवा उनकी आज्ञा का पालन करता हुआ ही जीना चाहता हूं पिता को कुपित करके एक मुहूर्त भी जीना नहीं चाहता ॥

यतो मूलंनरः पश्येत्प्रादुर्भावमिहात्मनः ।
कथंतस्मिन्नवर्तेतप्रत्यक्षेसतिदैवते ॥ १६ ॥

अर्थ—क्योंकि जिन माता पिता से अपनी उत्पत्ति होती है उन प्रत्यक्ष देवताओं की आज्ञा को पुरुष कैसे न माने अर्थात् माता पिता की आज्ञा का पालन करना मनुष्य का परमकर्तव्य है॥

कच्चित्तेपरुषंकिंचिदभिमानात्पितामम ।
उक्तोभवत्यारोषेणयेनास्य लुलितंमनः ॥ १७ ॥
एतदाचक्ष्वमेदेवितत्त्वेनपरिपृच्छतः ।
किंनिमित्तमपूर्वोयंविकारोमनुजाधिपे ॥ १८ ॥

अर्थ—हे मात कैकेयि ! क्या तुमने तो अभिमान से कोई कठोर बात कुपित होकर नहीं कहदी जिससे पिता का मन क्षोभित होगया है, हे देवि ! मैं इसका तत्व आपसे पूछता हूं आप मुझसे कहें कि किस कारण यह अपूर्व विकार राजा में उत्पन्न हुआ है ॥

एवमुक्त्वा तु कैकेयीराघवेणमहात्मना ।
उवाचेदं सुनिर्लज्जाधृष्टमात्महितं वचः ॥ १९ ॥
न राजा कुपितो राम व्यसनं नास्य किञ्चन ।
किंञ्चिन्मनोगतंत्वस्यत्वद्भयान्नानुभाषते ॥ २० ॥

अर्थ—जब महात्मा राम ने कैकेयी को इसप्रकार कहा तब वह बड़ी निर्लज्ज होकर अपना हितवचन ढीठता से बोली कि हे राम ! राजा न कुपित हुए न इनको कोई दुःख वा विपद् है किन्तु कुछ इनके मन का अभिप्राय है जिसको तुमारे भय से नहीं कहते ॥

प्रियंत्वामप्रियं वक्तुं वाणी नास्य प्रवर्त्तते ।

तदवश्यं त्वया कार्य्यं यदनेनाश्रुतं मम ॥ २१ ॥
एष मह्यं वरं दत्त्वा पुरा मामभिपूज्य च ।
स पश्चात्तप्यते राजा यथान्यः प्राकृतस्तथा ॥२२॥

अर्थ–तुझ प्यारे पुत्र को अप्रिय कहने के लिये इनकी वाणी प्रवृत्त नहीं होती पर तुमको वह अवश्य कर्तव्य है जिसकी राजा ने मेरे साथ प्रतिज्ञा की है, यह पहले मेरा वरदान से सत्कार करके अब पश्चात्ताप कर रहे हैं, जैसे कोई सामान्य पुरुष पहले कहकर पीछे पश्चात्ताप करता है ॥

अतिसृज्यददानीति वरं मम विशांपतिः ।
स निरर्थं गतजले सेतुं बन्धितुमिच्छति ॥ २३ ॥
धर्ममूलमिदंराम विदितं च सतामपि ।
तत्सत्यं न त्यजेद्राजाकुपितस्त्वत्कृतेयथा ॥२४॥

अर्थ–"दूंगा" इस प्रकार मेरे साथ देने की प्रतिज्ञा करके अब राजा जल के चले जाने पर व्यर्थ बन्द बांधते हैं अर्थात् पहले मुझको वर दे चुके और अब उससे निवृत्त होने की चिन्ता करते हैं सो व्यर्थ है, हे राम ! यह सब सत्पुरुषों को विदित है कि यह जगत् धर्ममूलक अर्थात् इसकी जड़ धर्म ही है सो उस धर्म को राजा तेरे निमित्त कुपित होकर न त्यागें वैसा कर अर्थात् पिता को अधर्म से बचाना तेरा परमधर्म है ॥

यदि तद्वक्ष्यते राजा शुभं वा यदि वाशुभम् ।
करिष्यसि ततः सर्वमाख्यास्यामिपुनस्त्वहम् ॥२५॥

यदित्वभिहितं राज्ञा त्वयि तन्न विपत्स्यते ।
ततोऽहमभिधास्यामि नह्येषत्वयि वक्ष्यति ॥ २६ ॥

अर्थ—यदि राजा शुभ या अशुभ जो कुछ कहे वह सब करेगा यह वचन दे तब फिर सब कहूंगी, यदि राजा का कहा हुआ निष्फल न जाय अर्थात् उनका कहा हुआ तू करे तो मैं कहूं, तेरा अप्रिय होने से राजा स्वयं तुझसे नहीं कहेंगे ॥

एतत्तु वचनं श्रुत्वा कैकेय्या समुदाहृतम् ।
उवाच व्यथितो रामस्तां देवींनृपसन्निधौ ॥२७॥
अहोधिङ् नार्हसे देवी वक्तुं मामीदृशं वचः ।
अहं हिं वचनाद्राज्ञः पतेयमपि पावके ॥ २८ ॥
भक्षयेयं विषं तीक्ष्णंमज्जेयमपिचार्णवे ।
नियुक्तो गुरुणा पित्रा नृपेण च हितेन च ॥२९॥

अर्थ—कैकेयी के कहे हुए उक्त वचन को सुनकर दुःखित हुआ राम राजा के सन्मुख उस देवी से बोला कि अहोधिक् हे देवी ! पिता की आज्ञा पालन में शंका वाला वचन तू मुझसे कहने योग्य नहीं, जो मेरे गुरु,पिता,राजा और हितैषी हैं वह मुझे आज्ञा दें तो मैं अग्नि में प्रवेश करसकता हूं, तीक्ष्ण विष भक्षण करसकता और समुद्र में डूब सकता हूं ॥

तद्ब्रूहि वचनं देवि राज्ञोयदभिकांक्षितम् ।
करिष्ये प्रतिजाने च रामो द्विर्नाभिभाषते ॥३०॥

अर्थ—हे देवि ! वह वचन कहो जो राजा को अभीष्ट है, मैं

प्रतिज्ञा करता हूं कि उसका अवश्य पालन करूंगा, राम दोवार नहीं कहता अर्थात् जो कहागया वह ही होगा उसके विरुद्ध फिर नहीं कहसकता ॥

तमार्जवसमायुक्तमनार्यासत्यवादिनम् ।
उवाच रामं कैकेयी वचनं भृशदारुणम् ॥ ३१ ॥

अर्थ—उन सरलस्वभावयुक्त सत्यवादी राम को तब अनार्य्या कैकेयी यह अत्यन्त दारुण वचन बोली कि :—

पुरादेवासुरेयुद्धे पित्रा ते मम राघव ।
रक्षितेन वरौदत्तौ सशल्येन महारणे ॥ ३२ ॥
तत्र मे याचितो राजा भरतस्याभिषेचनम् ।
गमनं दण्डकारण्ये तव चाद्यैव राघव ॥ ३३ ॥

अर्थ—हे राम ! पूर्व देवासुर युद्ध में मैंने शल्य निकाल कर तेरे पिता की रक्षा की थी तब उन्होंने प्रसन्न होकर मुझको दो वर दिये थे, सो उनमें से एक वर से मैंने भरत का अभिषेक और दूसरे वर से आज ही तेरा दण्डक वन में जाना राजा से मांगा है ॥

यदि सत्यप्रतिज्ञं त्वं पितरं कर्तुमिच्छसि ।
आत्मानं च नरश्रेष्ठ मम वाक्यमिदं शृणु ॥ ३४ ॥
संनिदेशे पितुस्तिष्ठ यथानेन प्रतिश्रुतम् ।
त्वयारण्यं प्रवेष्टव्यं नववर्षाणि पञ्च च ॥ ३५ ॥

अर्थ—हे नरश्रेष्ठ ! यदि तू पिता को और अपने आपको

सत्यप्रतिज्ञ किया चाहता है तो मेरा यह वाक्य सुनकर पिता की आज्ञा में स्थिर हो, अपने पिता की प्रतिज्ञानुसार अब तुमको चौदहवर्ष वन में रहना चाहिये ॥

अभिषेकमिमं त्यक्त्वा जटाचीरधरोभव ।
भरतः कोसलपतेः प्रशास्तु वसुधामिमाम् ॥ ३६ ॥
एतेन त्वां नरेन्द्रोऽयं कारुण्येन समाप्लुतः ।
शोकैः संक्लिष्टवदनो न शक्नोति निरीक्षितुम् ॥३७॥

अर्थ–सो हे राम ! तू इस अभिषेक को त्याग जटा तथा चीर धारण कर और भरत कौसलपति राजा दशरथ की इस भूमि पर शासन करेगा, इस दयाभाव से व्याकुल हुए राजा तुम्हें देख नहीं सक्ते और इन्हीं शोकों से राजा का मुख मलिन होरहा है ॥

एतत्कुरुनरेन्द्रस्य वचनं रघुनन्दन ।
सत्येन महता राम तारयस्व नरेश्वरम् ॥ ३८ ॥

अर्थ–हे रघुनन्दन ! राजा के इस वचन को पूर्णकर, हे राम ! इस बड़े सत्य से राजा को तार अर्थात् उनको सत्यप्रतिज्ञ बना जिससे वह पाप के भागी न हों ॥

इतीव तस्यां परुषं वदन्त्यां न चैव रामः
प्रविवेश शोकम् । प्रविव्यथे चापि महानु-
भावो राजा तु पुत्रव्यसनाभितप्तः ॥ ३९ ॥

अर्थ–इस प्रकार कैकेयी के कठोर कहते हुए राम को न

शोक हुआ और न दुःख हुआ, परन्तु महानुभाव राजा पुत्र की विपद् से संतप्त होकर शोक तथा दुःख में डूबकर व्याकुल होगये॥

चितवत रहे न भाषत राजू। का सोचा का भया अकाजू॥
हम विचार कछु और ही कीन्हा। विधि ने पलट निमिष मह दीन्हा॥
मनुज करे नाना चतुराई। एक दैव बिनु चले न काई॥
बाषप वारि से कण्ठ निरुद्धा। कायर ग्रसे धीर जिमि युद्धा॥
राम राम कहि ताहि पुकारा। नृपति नयन वह अश्रुधारा॥
भूपहि तज पूछी जिन माता। कहु जननी भूपति की गाथा॥
केहि कारण मन व्याकुल राजा। क्या मोते कछु भयो अकाजा॥
गाथा सब कैकेयी गीती। भूपति औ उनमें जो बीती॥
सार यही धर तापस वेशा। राम तजे पुर अवध अशेषा॥
भरत करे धरणी पर राजू। राम बने बनवासी आजू॥
धीर राम कछु क्षोभ न कीना। जिमि सागर क्षोभे नहि मीना॥
पावक पतन करूं नहीं सोचूं। अहित्वक सम सगरो वपु मोचूं॥
मात तात की आज्ञा पाकर। अर्णव कूद परों अभि जाकर॥
तीक्ष्ण विष भक्षण करूं ऐसे। गरल ग्रसा शिव शंभु जैसे॥
मात तात की आज्ञा जोई। राम करेगा पालन सोई॥
जिमि ध्रुवपद कोउ सके न टारी। राम कहे नहिं दूसर वारी॥
सुन जननी सोइ सुत बड़ भागी। जो पितु मातु बचन अनुरागी॥
मुनिगण मिलन विशेष बन, सबहिं भांति हित मोर॥
तेहि महं पितु आयसु बहुरि, संमत जननी तोर॥

इति चतुर्दशः सर्गः

अथ पंचदशः सर्गः

तदप्रियममित्रघ्नो वचनं मरणोपमम् ।
श्रुत्वा न विव्यथे रामः कैकेयीं चेदमब्रवीत् ॥ १॥

अर्थ—शत्रुओं को हनन करने वाला राम मृत्यु के समान उस अप्रिय वचन को सुनकर दुःखी न होता हुआ कैकेयी से यह वचन बोला कि :—

एवमस्तु गमिष्यामि वनंवस्तुमहंत्वितः ।
जटाचीरधरो राज्ञः प्रतिज्ञामनुपालयन् ॥ २ ॥

अर्थ—"बहुत अच्छा" मैं शीघ्र ही जटा तथा चीर धारण करके पिता की आज्ञा पालन करता हुआ वन को जाउंगा ॥

इदं तु ज्ञातुमिच्छामि किमर्थं मां महीपतिः ।
नाभिनन्दति दुर्धर्षो यथापूर्वमरिन्दमः ॥ ३ ॥
मन्युर्नच त्वया कार्यो देवि ब्रूमि तवाग्रतः ।
यास्यामि भव सुप्रीता वनं चीरजटाधरः ॥ ४ ॥

अर्थ—परन्तु मैं यह जानना चाहता हूं कि दुर्धर्ष=शत्रुओं के दमन करने वाले पिता पूर्ववत् अभिनन्दन=प्रसन्नता के साथ मुझको स्वीकार क्यों नहीं करते, हे देवि ! तुम्हें क्रोध नहीं करना चाहिये, मैं तुम्हारे सन्मुख प्रसन्नता से कहता हूं कि मैं जटा तथा चीर धारण करके अवश्य वन को जाउंगा तुम सुप्रसन्न होओ ॥

भाष्य—हे मात ! मैं पिता से प्रसन्नतापूर्वक बात करना चाहता हूं और वह इसलिये नहीं कि उनसे प्रेमपूर्वक भाषण करने से मेरा वन जाना रुकजाय किन्तु इसलिये कि उनको घर में प्रसन्नचित्त छोडूं ताकि मेरा चित्त भी वन में प्रसन्न रहे, मेरे वन जाने विषयक तुम्हें अन्यथा शङ्का नहीं करनी चाहिये ॥

हितज्ञेन गुरुणा पित्रा कृतज्ञेन नृपेण च ।
नियुज्यमानो विस्रब्धः किं न कुर्यामहं प्रियम्॥५॥
अलीकं मानसं त्वेकं हृदयं दहतीव मे ।
स्वयंयन्नाह मां राजा भरतस्याभिषेचनम् ॥ ६ ॥

अर्थ—अपने हितैषी, गुरु, पिता, कृतज्ञ राजा से आज्ञा पाया हुआ मैं निःशंक होकर कौनसा प्रिय नहीं करसक्ता अर्थात् जो आज्ञा करें वही शिरोधार्य्य है, पर मेरे हृदय को एकही मानस दुःख दाह कर रहा है जो राजा स्वयं मुझको भरत का अभिषेक नहीं कहते हैं ॥

अहं हि सीतां राज्यं च प्राणानिष्टान्धनानि च ।
हृष्टो भ्रात्रेस्वयं दद्यां भरतस्य प्रचोदितः ॥ ७ ॥
किं पुनर्मनुजेन्द्रेण स्वयं पित्रा प्रचोदितः ।
तव च प्रिय कामार्थं प्रतिज्ञामनुपालयन् ॥ ८ ॥

अर्थ—यदि भरत मुझ से कहते तो मैं स्वयं सीता, राज्य, प्रिय प्राण और सब धन हर्षपूर्वक उनको दे देता फिर इस तुच्छ राज्य के लिये क्यों संकोच किया, और जब मैं भरत के कथना-

नुसार देने को तैयार था तो पिता के कहने से देने में क्या काठिनाई है, क्योंकि माता पिता की आज्ञा पालन करने से प्रिय अन्य कोई कार्य्य नहीं ॥

तथाश्वासयह्रीमन्तं किंन्विदं यन्महीपतिः ।
वसुधासक्तनयनोमन्दमश्रूणिमुञ्चति ॥ ९ ॥
गच्छन्तुचैवानयितुं दूताः शीघ्रजवैर्हयैः ।
भरतं मातुलकुलादद्यैव नृपशासनात् ॥ १० ॥
दण्डकारण्यमेषोऽहंगच्छाम्येव हि सत्वरः ।
अविचार्य्य पितुर्वाक्यं समा वस्तुं चतुर्दश ॥११॥

अर्थ—सो तुम राजा को आश्वासन दो कि आप ऐसा क्यों करते हैं जो पृथिवी की ओर नेत्र झुकाकर मन्द २ आंसु बहारहे हैं, राजा की आज्ञा लेकर भरत को मामा के घर से लाने के लिये दूत अभी शीघ्रगामी घोड़ों पर जावें, और मैं पिता के वाक्य को विना विचारे ही चौदहवर्ष दण्डक बन में बसने के लिये शीघ्र ही यहां से जाता हूं ॥

सा हृष्टा तस्यतद्वाक्यं श्रुत्वा रामस्य कैकैयी ।
प्रस्थानं श्रद्दधाना सा त्वरयामास राघवम् ॥१२॥
एवं भवतु यास्यन्ति दूताः शीघ्रजवैर्हयैः ।
भरतं मातुलकुलादिहावर्तयितुं नराः ॥ १३ ॥

अर्थ—राम के उक्त वाक्य सुन कर कैकैयी बड़ी प्रसन्न हुई

और उनके बन जाने का विश्वास करती हुई राम को शीघ्र ही निकालने की चेष्टा करने लगी, और बोलीकि "एवं भवतु"=ऐसा ही होगा, भरत को मामा के घर से लाने के लिये दूत अभी शीघ्र-गामी घोड़ों पर जायंगे ॥

तव त्वहं क्षमं मन्ये नोत्सुकस्य विलम्बनम् ।
राम तस्मादितः शीघ्रं वनं त्वं गन्तुमर्हसि ॥१४॥
व्रीडान्वितः स्वयं यच्च नृपस्त्वांनाभिभाषते ।
नैतत्किंचिन्नरश्रेष्ठमन्युरेषोऽपनीयताम् ॥ १५ ॥

अर्थ–हे राम ! तुम्हारा विलम्ब करना तुम्हारे उत्साहयुक्त नहीं मानती, इसलिये तुम यहां से शीघ्र ही वन जाने योग्य हो अर्थात् तुमको अब वन जाने में बिलम्ब नहीं करना चाहिये, हे श्रेष्ठ ! लज्जा से युक्त हुए राजा जो तुम्हें स्वयं नहीं कहते यह कुछ बात नहीं, इसका तुम शोक मत करो ॥

यावत्त्वं न वनं यातः पुरादस्मादतित्वरन् ।
पिता तावन्न ते राम स्नास्यते भोक्ष्यतेऽपि वा ॥१६॥
धिक्कष्टमिति निःश्वस्य राजा शोकपरिप्लुतः ।
मूर्च्छितो न्यपतत्तस्मिन्पर्यङ्के हेमभूषिते ॥ १७ ॥

अर्थ–हे राम ! जब तक तू इस पुर से शीघ्र ही वन को न चला जायगा तब तक तेरे पिता न स्नान करेंगे और न कुछ खायेंगे, यह सुनकर " धिक्कष्ट " यह कह ऊंचा श्वास भरकर शोक से घिरे हुए राजा मूर्छित हो उस सुवर्ण भूषित पलंग पर गिरपड़े ॥

रामोऽप्युत्थाप्य राजानं कैकेयाभिप्रचोदितः ।
कशयेवहतो वाजी वनं गन्तुं कृतत्वरः ॥ १८ ॥
तदप्रियमनार्याया वचनं दारुणोदयम् ।
श्रुत्वागतव्यथो रामः कैकेयीं वाक्यमब्रवीत्॥१९॥

अर्थ-राम राजा को उठाकर कैकेयी से प्रेरित हुआ चाबुक से ताड़े हुए घोड़े की न्याईं बनजाने में शीघ्रता करने लगा, अनार्या=अश्रेष्ठ कैकेयी के उस अप्रिय दारुण वचन को सुनकर राम की सब व्यथा निवृत्त होगई और वह कैकेयी से बोला कि :—

नाहमर्थपरो देवि लोकमावस्तुमुत्सहे ।
विद्धिमामृषिभिस्तुल्यं विमलंधर्ममास्थितम् ॥२०॥
यत्तत्र भवतः किंचिच्छक्यं कर्तुं प्रियं मया ।
प्राणानपि परित्यज्य सर्वथा कृतमेव तत् ॥ २१ ॥

अर्थ-हे देवि ! मैं अर्थपरायण होकर लोक में नहीं रहना चाहता, मुझको तुम्हें ऋषियों के समान विमल धर्म का आश्रय किये हुए जानना चाहिये, यदि मैं प्राणों का परित्याग करके भी अपने पूजनीय पिता का प्रिय करसकता हूं तो मैं सर्वथा करने को उद्यत हूं ॥

न ह्यतो धर्मचरणं किञ्चिदस्ति महत्तरम् ।
यथा पितरि शुश्रूषा तस्य वा वचनक्रिया ॥२२॥

अनुक्तोऽप्यत्र भवता भवत्या वचनादहम् ।
वने वत्स्यामि विजने वर्षाणीह चतुर्दश ॥ २३ ॥

अर्थ–पिता की सेवा अथवा उनका वाक्य पूर्ण करने से बढ़कर मेरी दृष्टि में कोई धर्मानुष्ठान नहीं, पूज्य पिता की आज्ञा न होने पर भी मैं तुम्हारे बचनानुसार ही चौदहवर्ष निर्जन बन में जाकर वसूंगा ॥

न नूनं मयि कैकेयि किंचिदाशंससेगुणान् ।
यद्राजानमवोचस्त्वं ममेश्वरतरासती ॥ २४ ॥

अर्थ–हे कैकेयि ! निःसन्देह तू मेरे गुणों को किंचित भी नहीं जानती, तू मेरी हरप्रकार से स्वामिनी होने पर भी तैने यह तुच्छ काम राजा से कहा ॥

यावन्मातरमापृच्छे सीतां चानुनयाम्यहम् ।
ततोऽद्यैव गमिष्यामि दण्डकानां महद्वनम् ॥२५॥
भरतः पालयेद्राज्यं शुश्रूषेच्च पितुर्यथा ।
तथा भवत्या कर्तव्यं स हि धर्मः सनातनः ॥२६॥

अर्थ–अब मैं महल में जाकर जबतक माता से आज्ञा लेता हूं और सीता को धैर्य्य देता हूं तब तक क्षमाकर, पश्चात आज ही दण्डकों के बड़े वन को चलाजाउंगा, अब भरत जैसे राज्य का पालन और पिता की सेवा करे वैसे ही तुमने करना, पिता की सेवा और राजा होकर राज्य का पालन करना सनातनधर्म है ॥

रामस्य तु वचः श्रुत्वा भृशंदुःखगतः पिता ।
शोकादशक्नुवन्वक्तुंप्ररुरोदमहास्वनम् ॥ २७ ॥

अर्थ–रामचन्द्र के इस प्रकार वचन सुनकर राजा दशरथ अति दुःखित हो शोकातुर हुए अपने आंसुओं को न रोककर मुक्तकण्ठ से रोने लगे ॥

सं०–अब राम का माता कौसल्या के समीप जाना कथन करते हैं :—

वन्दित्वा चरणौ राज्ञो विसंज्ञस्य पितुस्तदा ।
कैकेय्याश्चाप्यनार्याया निष्पपात महाद्युतिः ॥२८॥
स रामः पितरं कृत्वा कैकेयीं च प्रदक्षिणाम् ।
निष्क्रम्यान्तःपुरात्तस्मात्स्वं ददर्श सुहृज्जनम्॥२९॥

अर्थ–इसके अनन्तर राम ने रुदन करते हुए पिता के चरणों और कैकेयी के चरणों की वन्दना की और दोनों की प्रदक्षिणा करके अन्तःपुर से बाहर निकलकर अपने सुहृद्जनों को देखते हुए माता के अन्तःपुर को चले ॥

तं बाष्पपरिपूर्णाक्षः पृष्ठतोऽनुजगामह ।
लक्ष्मणः परमक्रुद्धः सुमित्रानन्दवर्धनः ॥ ३० ॥
आभिषेचनिकंभाण्डं कृत्वारामःप्रदक्षिणम् ।
शनैर्जगाम सापेक्षो दृष्टिं तत्राविचालयन् ॥३१॥

अर्थ–राम के पीछे २ सुमित्रा के आनन्द को बढ़ाने वाले लक्ष्मण परमक्रुद्ध हो आंसु बहाते हुए चले, आगे चलकर जिस पात्र में अभिषेक की सामग्री धरी थी उसको देख विदा होने की प्रदक्षिणा की और जाते हुए उस पात्र को बार २ देखा ॥

नचास्य महतीं लक्ष्मीं राज्यनाशोऽपकर्षति ।
लोककान्तस्य कान्तत्वाच्छीतरश्मेरिवक्षयः ॥३२॥
न वनं गन्तुकामस्यत्यजतश्चवसुंधराम् ।
सर्वलोकातिगस्येवलक्ष्यतेचित्तविक्रिया ॥ ३३ ॥

अर्थ–राम स्वाभाविक कान्तिवाला=तेजस्वी होने से राज्य का नाश उसके बड़े तेज को दूर नहीं करसक्ता था जैसे चन्द्रमा के कृष्णपक्ष में घटने पर भी उसकी शोभा कम नहीं होती,क्योंकि वह सबको आनन्द देने वाला है, राज्यत्यागकर वन को जाते हुए राम के चित्त में पृथिवी को छोड़ने का कोई विकार उत्पन्न नहीं हुआ, जैसे संसार को छोड़ते हुए वीतराग पुरुष के चित्त में कोई विकार उत्पन्न नहीं होता ॥

प्रतिषिध्य शुभं छत्रं व्यजने च स्वलंकृते ।
विसर्जयित्वा स्वजनं रथं पौरांस्तथा जनान् ॥३४॥

अर्थ–अभिषेक समय मिलने वाले शुभ छत्र और सुन्दर चवर को परित्याग करके अपने सुहृद् और पुरवासी जनों को छोड़ते हुए :—

सर्वोऽप्यभिजनः श्रीमाञ्श्रीमतः सत्यवादिनः ।
नालक्षयत रामस्य किंचिदाकारमानने ॥ ३५ ॥

अर्थ–बड़े परिवार वाले श्रीमान् सत्यवादी तथा शोभा वाले राम के मुख पर कोई विकार न था ॥

रामस्तु भृशमायस्तो निःश्वसन्निवकुंजरः ।

जगाम सहितो भ्रात्रा मातुरंतःपुरंवशी ॥ ३६ ॥

अर्थ—पिता के दुःख जन्य आयास से हस्ति के समान श्वास लेता हुआ जितेन्द्रिय राम भाई के साथ माता के अन्तःपुर में गया॥

सोऽपश्यत्पुरुषं तत्र वृद्धंपरमपूजितम् ।
उपविष्टंगृहद्वारितिष्ठतश्चापरान्बहून् ॥ ३७ ॥
दृष्ट्वैव तु तदारामं ते सर्वे समुपस्थिताः ।
जयेन जयतां श्रेष्ठं वर्धयन्ति स्म राघवम् ॥३८॥

अर्थ—वहां जाते ही राम ने द्वारपर बैठे हुए एक पूज्य वृद्ध और दूसरे खड़े हुए पुरुषों को देखा, वह सब राम को देखते ही सहसा उठ खड़े हुए और जीतने वालों में श्रेष्ठ राम को "जय" शब्द से बधाई देने लगे ॥

प्रविश्य प्रथमां कक्ष्यां द्वितीयायां ददर्शसः ।
ब्राह्मणांवेदसम्पन्नान्वृद्धान्राजभिसत्कृतान् ॥ ४९ ॥
प्रणम्यरामस्तान्वृद्धांस्तृतीयायां ददर्श सः ।
स्त्रियो बालाश्च वृद्धाश्चद्वाररक्षणतत्पराः ॥ ४० ॥

अर्थ—पहली डेवढ़ी से आगे दूसरी डेवढ़ी में गया और वहां उसने राज्यमान्य वेद के जानने वाले वृद्ध ब्राह्मणों को देखा, उन वृद्धों को प्रणाम करके तीसरी डेवढ़ी में गये और वहां उन्होंने बाल, वृद्ध और स्त्रियों को द्वाररक्षा में तत्पर पाया ॥

वर्धयित्वाप्रहृष्टास्ताः प्रविश्य च गृहं स्त्रियः ।
न्यवेदयन्त्त्वरितंराममातुः प्रियं तदा ॥ ४१ ॥

सा क्षौम-वसना हृष्टा नित्यंव्रतपरायणा ।
अग्निंजुहोतिस्मतदामन्त्रवत्कृतमङ्गला ॥ ४२ ॥

अर्थ—वह स्त्रियें राम को वधाई देकर बड़े हर्ष से शीघ्र ही भीतर गृह में गई और वहां राम की माता कौसल्या को राम के आगमन का प्रिय सुनाया, उस समय कौसल्या रेशमी वस्त्र धारण किये हुए हर्षपूर्वक व्रतपरायण हुई सब मङ्गल कार्य्य करके एकान्त में अग्निहोत्र कर रही थी ॥

इति पंचदशः सर्गः

अथ षोडशः सर्गः

प्रविश्य तु तदा रामो मातुरन्तःपुरं शुभम् ।
ददर्श मातरं तत्र हावयन्तीं हुताशनम् ॥ १ ॥

अर्थ—जिस समय राम ने माता के अन्तःपुर में प्रवेश किया उस समय वहां माता को अग्नि में हवन करते हुए देखा ॥

सा चिरस्यात्मजं दृष्ट्वा मातृनन्दनमागतम् ।
अभिचक्रामसंहृष्टा किशोरंवडवायथा ॥ २ ॥
स मातरमुपक्रान्तामुपसंगृह्य राघवः ।
परिष्वक्तश्च बाहुभ्यामुपघ्रातश्चमूर्धनि ॥ ३ ॥

अर्थ—कौसल्या ने चिरकाल पश्चात् मातृनन्दन=माता को आनन्द देने वाले राम को आता देख हर्षित हो उसकी ओर ऐसे चली जैसे घोड़ी अपने बछेरे की ओर जाती है, राम ने

समीप आई हुई माता के चरण ग्रहण किये और माता ने राम को दोनों भुजाओं में लेकर हृदय से लगाय उनका सिर चूमा ॥

तमुवाच दुराधर्षं राघवंसुतमात्मनः ।
कौसल्यापुत्रवात्सल्यादिदं प्रियहितं वचः ॥ ४ ॥
वृद्धानांधर्मशीलानां राजर्षीणां महात्मनाम् ।
प्राप्नुह्यायुश्चकीर्तिं च धर्मं वाप्युचितं कुले ॥ ५ ॥

अर्थ–और अपने पुत्र दुराधर्ष=कठिनता से जीतने योग्य राम को कौसल्या पुत्रस्नेह से यह प्रिय हितकर वचन बोली कि हे राम ! तू वृद्ध, धर्मशील और महात्मा राजऋषियों की आयु तथा कीर्ति और कुल में उचित धर्म को प्राप्त हो ॥

सत्यप्रतिज्ञं पितरं राजानंपश्यराघव ।
अद्यैव त्वां स धर्मात्मा यौवराज्येऽभिषेक्ष्यति ॥ ६ ॥
दत्तमासनमालभ्य भोजनेन निमंत्रितः ।
मातरं राघवः किंचित्प्रसार्याञ्जलिमब्रवीत् ॥ ७ ॥

अर्थ–हे राघव ! अपने सत्यप्रतिज्ञ पिता राजा के समीप जाकर दर्शन कर, वह धर्मात्मा तुझे आज ही यौवराज्य में अभिषेक देंगे अर्थात् तुमको युवावस्था में ही राजा बनावेंगे, फिर माता ने उनको आसन देकर कहा कि पुत्र भोजन कर तब वह आसन को स्पर्श करके हाथ जोड़कर माता से बोले ॥

स स्वभावविनीतश्चगौरवाच्चतथानतः ।
प्रस्थितोदण्डकारण्यमाप्रष्टुमुपचक्रमे ॥ ८ ॥

देवि नूनं न जानीषे महद्भयमुपस्थितम् ।
इदं तव च दुःखाय वैदेह्या लक्ष्मणस्य च ॥ ९ ॥

अर्थ—राम स्वभाव से विनीत और माता के गौरव से अति नम्र हुए दण्डकवन के प्रस्थानविषयक पूछने लगे कि हे देवि! तू नहीं जानती तुम्हारे, सीता और लक्ष्मण के दुःख के लिये बड़ा भय सन्मुख उपस्थित हुआ है ॥

गमिष्ये दण्डकारण्यं किमनेनासनेन मे ।
विष्टरासनयोग्यं हि कालोऽयं मामुपस्थितः॥१०॥
चतुर्दश हि वर्षाणि वत्स्यामि विजने वने ।
कंदमूलफलैर्जीवन्हित्वामुनिवदामिषम् ॥ ११ ॥
भरताय महाराजो यौवराज्यं प्रयच्छति ।
मां पुनर्दण्डकारण्यं विवासयति तापसम् ॥ १२ ॥

अर्थ—मैं शीघ्र ही दण्डकवन को जाउंगा, मुझको इस आसन से क्या, मेरे लिये यह समय विष्टरासन=कुशासन के योग्य उपस्थित हुआ है, मुनियों की भांति चौदहवर्ष निर्जन वन में वसुंगा और वहां भोग छोड़कर कन्द मूल से जीवन व्यतीत करुंगा, महाराज भरत को युवराज बनाते और मुझको तपस्वी बनाकर दण्डकवन में भेजते हैं ॥

सनिकृत्तेवसालस्ययष्टिःपरशुनावने ।
पपातसहसादेवीदेवतेवदिवश्च्युता ॥ १३ ॥
तामदुःखोचितांदृष्ट्वापतितां कदलीमिव ।
रामस्तूत्थापयामासमातरंगतचेतसम् ॥ १४ ॥

अर्थ–राम के उक्त वचन सुनकर वह देवी कौसल्या कुल्हाड़े से कटी हुई साल की लकड़ी की भांति शीघ्र ही गिर पड़ी, जैसे पुण्यावसान में स्वर्ग से देवता गिरता है, उस माता को जो दुःख योग्य नहीं मूर्छित होकर कदलीस्तम्भ की भांति गिरा हुआ देखकर राम ने उठाया ॥

उपावृत्त्योत्थितांदीनां वडवामिववाहिताम् ।
पांसुगुंठितसर्वांगीं विममर्श च पाणिना ॥ १५ ॥

अर्थ–कौसल्या इस प्रकार भूमि पर गिरी जैसे रथादि में बिनजुती घोड़ी छोड़ने पर थकेमा उतारने के लिये लोटती है, राम ने माता को भूमि पर से उठा अपने हाथों से पोंछकर शान्त किया ॥

सा राघवमुपासीनमसुखार्तासुखोचिता ।
उवाच पुरुषव्याघ्रमुपशृण्वति लक्ष्मणे ॥ १६ ॥
यदि पुत्र न जायेथाममम शोकाय राघव ।
न स्म दुःखमतो भूयः पश्येयमहमप्रजाः ॥ १७ ॥

अर्थ–फिर सुख के योग्य कौसल्या दुःख से पीड़ित हुई पुरुषश्रेष्ठ राम को लक्ष्मण के सुनते हुए बोली कि हे पुत्र ! यदि तू मेरे शोक के लिये जन्म न लेता तो मैं बन्ध्या हुई इससे अधिक दुःख न देखती अर्थात् बन्ध्या होने से पुत्रवियोग का दुःख मेरे सन्मुख न आता ॥

एक एव हि बन्ध्यायाः शोको भवति मानसः ।
अप्रजास्मीति सन्तापो न ह्यन्यः पुत्र विद्यते॥१८॥

न दृष्टपूर्वं कल्याणं सुखं वा पतिपौरुषे ।
अपि पुत्र विपश्येयमिति रामास्थितं मया ॥ १९ ॥

अर्थ—क्योंकि बन्ध्या को एकही मानस शोक होता है कि मेरे सन्तान नहीं, हे पुत्र ! उसको अन्य कोई सन्ताप नहीं होता, हे राम ! पति के पौरुष में जो मैंने पूर्व कल्याण वा सुख नहीं देखा वह अब पुत्र के पौरुष में देखुंगी, इस आशा पर स्थित हूं ॥

सा बहून्यमनोज्ञानि वाक्यानि हृदयच्छिदाम् ।
अहं श्रोष्ये सपत्नीनामवराणां परासती ॥ २० ॥
अतो दुःखतरं किं नु प्रमदानां भविष्यति ।
मम शोको विलापश्च यादृशोऽयमनन्तकः ॥२१॥

अर्थ—अब मैं बड़ी होकर छोटी सौतिनों के हृदय को छेदन=चीरने वाले बहुत से अप्रिय वाक्य सुनुंगी, जैसा यह सारी उमर न मिटने वाला मेरा शोक और विलाप है इससे बढ़कर स्त्रियों को और क्या दुःख होगा ॥

नित्यक्रोधतयातस्याः कथंनुखरवादिनम् ।
कैकेय्या वदनं द्रष्टुंपुत्रशक्ष्यामिदुर्गता ॥ २२ ॥
सप्तदश च वर्षाणिजातस्यतवराघव ।
अतीतानि अकांक्षंत्यामयादुःखपरिक्षयम् ॥ २३ ॥

अर्थ—हे पुत्र ! नित्य ही क्रोध से अति कठोर वचन बोलने वाली कैकेयी का मुख मैं ऐसी दुर्गति को प्राप्त कैसे

देखुंगी, हे राघव ! तुम्हारे यज्ञोपवीत समय से अभी सत्तरहवर्ष नहीं वीते और जन्म से तो पचीसवर्ष वीतचुके हैं मेरी इच्छा थी कि पुत्र युवराज होगा तब मेरे सब दुःख मिटेंगे, सो अब तुम वन को चले, फिर मुझे कैकेयी के वही दारुण वचन सहने पड़ेंगे ॥

तदक्षयं महद्दुःखंनोत्सहे सहितुं चिरात् ।
विप्रकारं सपत्नीनामेवंजीर्णापि राघव ॥ २४ ॥
अपश्यन्ती तव मुखं परिपूर्णशशिप्रभम् ।
कृपणावर्तयिष्यामि कथं कृपणजीविकाम् ॥ २५ ॥

अर्थ—हे राम ! सौतिनों से अनादर होना जो अक्षय=नाश न होने वाला दुःख है उसको अब इसप्रकार बूढ़ी होकर चिर तक नहीं सहसकती, पूर्ण चन्द्रमा के समान तेरे मुख को न देखती हुई मैं दीन होकर कृपण जीवन व्यतीत करुंगी ॥

उपवासैश्च योगैश्च बहुभिश्चपरिश्रमैः ।
दुःखं संवर्धितो मोघं त्वं हि दुर्गतया मया ॥ २६ ॥
स्थिरं नु हृदयं मन्ये ममेदं यन्न दीर्यते ।
प्रावृषीव महानद्या स्पृष्टं कूलं नवांभसा ॥ २७ ॥

अर्थ—मुझ दुर्भागिन ने उपवास, परमात्मा का ध्यान और बहुत परिश्रमों द्वारा दुःख से तुझको व्यर्थ ही बढ़ाया है अर्थात् तेरे पालन पोषण विषयक मेरे सब परिश्रम व्यर्थ ही गये, मैं अपने हृदय को वज्रसम कठोर समझती हूं जोकि फटता नहीं, जैसे वर्षाऋतु में नये पानी से स्पर्श किया हुआ बड़ी नदी का किनारा विदीर्ण नहीं होता ॥

इदं तु दुःखं यदनर्थकानि मे व्रतानि दाना-
नि च संयमाश्च हि । तपश्च तप्तं यदपत्यका-
म्यया सुनिष्फलं बीजमिवोप्तमूषरे ॥ २८ ॥

अर्थ–यह बड़े दुःख और अनर्थ की बात है मैंने जो सन्तान के कारण व्रत, दान, संयम और तप तपे हैं वह सब कालर भूमि में बोये हुए बीज की भांति निष्फल ही गये ॥

यदिह्यकाले मरणं यदृच्छया लभेतकश्चि-
द्गुरु दुःखकर्शितः । गताहमद्यैव परेतसं-
सदं विना त्वया धेनुरिवात्मजेन वै ॥ २९ ॥

अर्थ–यदि कोई महादुःख से दुःखी होकर विना समय अपनी इच्छा से मृत्यु को प्राप्त होसके तो मैं आज ही पुत्र से वियुक्त हुई धेनु की भांति तेरे विना मृत्यु को प्राप्त होजाऊं ॥

अथापि किं जीवितमद्य मे वृथा त्वयाविना
चन्द्रविभाननप्रभ । अनुव्रजिष्यामि वनं त्व-
यैवगौः सुदुर्बलावत्समिवाभिकांक्षया॥३०॥

अर्थ–हे चन्द्रसमानमुखरघुनन्दन ! यदि अकाल मृत्यु नहीं होती तो तेरे विना यहां रहकर जीना वृथा है, मैं भी तेरे साथ वन को चलूंगी, जैसे स्नेहवशात् गाय अपने बछड़े के पीछे जाती है ॥

भृशमसुखममर्षितायदाबहुविललाप-
समीक्ष्यराघवम् । व्यसनमुपनिशाम्यसा
महत्सुतमिवबद्धमवेक्ष्यकिन्नरी ॥ ३१ ॥

अर्थ–कौसल्या राम को धर्मपाश में बंधा हुआ वनगमन को तैयार देखकर अत्यन्त दुःखित हो इस प्रकार विलाप करने लगी जैसे पुण्यक्षय होने पर पृथिवी में पतित हुई किन्नरी विलाप करती है ॥

विदा मातुसन आवों मांगी । चलिहों बहुरि वनहि पगलागी ॥
अस कहि राम गमन तब कीन्हा । भूप शोकवश उतर न दीन्हा ॥
भलि बनाइ विधि बात बिगारी । जहं तहं देहिं कैकेयी गारी ॥
यहि पापिनिहि सूझि का परेऊ । छाय भवन पर पावक धरेऊ ॥
काह न पावक जारिसकै, का न समुद्र समाय ॥
का न करै अबला प्रबल, केहि जग काल न खाय ॥
का सुनाय विधि काह सुनावा । का दिखाइ चह काह दिखावां ॥
एक कहहिं भल भूप न कीन्हा । वर विचार नहिं कुमतिहि दीन्हा ॥
शिवि दधीचि हरिचन्द्र कहानी । एक एक सन कहहिं बखानी ॥
एक भरत कर सम्मत कहहीं । एक उदास भाव सुनि रहहीं ॥

कैकेयी की सखियों का कथन

करहु राम पर सहज सनेहू । केहि अपराध आजु बन देहू ॥
कौसल्या अब काह बिगारा । तुम जेहि लागि वज्रपुर पारा ॥
सीय कि पियसंग परिहरहि, लषण कि रहिहहिं धाम ॥
राज कि भूंजब भरतपुर, नृप कि जियहिं बिनु राम ॥
नाहिन राम राज्य के भूखे । धर्मधुरीण विषयरस रूखे ॥
राम सरित सुत कानन योगू । कहा कहहिं सुनि तुम कहं लोगू ॥
उठहु वेगि सोइ करहु उपाई । जेहि विधि शोक कलंक नशाई ॥

मातागृह में राम का प्रवेश

रघुकुलतिलक जोरि दोउ हाथा । मुदित मातुपद नायउ माथा ॥
बार बार मुख चूमति माता । नयन नेह जल पुलकित गाता ॥

गोद राखि पुनि हृदय लगाये । स्रवत प्रेम पद पयद सुहाये ॥
तात जाउं बलि वेगि नहाहू । जो मनभाव मधुर कछु खाहू ॥
पितु समीप तब जायहु भैया । मैं बड़िवार जाय बलि मैया ॥
धर्मधुरीण धर्मगति जानी । कहउ मातुसन अति मृदुबानी ॥
पिता दीन मोंहि कानन राजू । जहं सब भांति मोर बड़ काजू ॥
आयसु देहु मुदित मन माता । जेंहि मुद मंगल कानन जाता ॥
वर्ष चारदश विपिन वसि, करि पितु वचन प्रमान ॥
आय पांय पुनि देखिहों, मन जन करसि मलान ॥
वचन विनीत मधुर रघुवर के । शरसम लगे मातु उर करके ॥
सहमि सूखि सुनि शीतल वानी । जिमि जवास पर पावस पानी ॥
कहि न जाय कछु हृदय विशादू । मनहु मृगी सुनि केहरि नादू ॥
नयन सजल तनु थर थर कांपी । मांजहि खाय मीन जनु मापी ॥
राखि न सकहिं न कहिसक जाहू । दुहुं भांति उर दारुण दाहू ॥

इति षोडशः सर्गः

अथ सप्तदशः सर्गः

तथा तु विलपन्तीं तां कौसल्यां राममातरम् ।
उवाच लक्ष्मणो दीनस्तत्कालसदृशं वचः ॥ १ ॥

अर्थ—उक्त प्रकार विलाप करती हुई राम की माता कौसल्या से दीन हुआ लक्ष्मण देशकालानुसार यह वचन बोला कि :—

नास्यापराधंपश्यामिनापिदोषंतथाविधम् ।
येननिर्वास्यतेराष्ट्राद्वनवासाय राघवः ॥ २ ॥

न तं पश्यामहं लोके परोक्षमपि यो नरः।
स्वमित्रोऽपिनिरस्तोऽपियोऽस्यदोषमुदाहरेत्॥ ३ ॥

अर्थ—मैं भाई राम का कोई अपराध नहीं देखता और न कोई ऐसा दोष पाता हूं जिससे राम को राज्य से पृथक् कर वन में वसने के लिये भेजाजाता है, मैं राम का कोई भारी शत्रु अथवा किसी पातक के कारण उनसे निकाला हुआ ऐसा पुरुष भी नहीं देखता जो पीछे भी राम का कोई दोष कथन करने वाला हो॥

देवकल्पमृजुंदान्तं रिपूणामपिवत्सलम्।
अवेक्षमाणः को धर्मं त्यजेत्पुत्रमकारणात्॥४॥

अर्थ—देवतुल्य, सरल, दमनशील और शत्रुओं का भी जो प्रिय हो, ऐसे पुत्र का कौन धर्मपरायण अकारण त्याग करता है॥

तदिदं वचनं राज्ञः पुनर्बाल्यमुपेयुषः।
पुत्रः को हृदये कुर्याद्राजवृत्तमनुस्मरन्॥ ५ ॥
यावदेव न जानाति कश्चिदर्थमिमं नरः।
तावदेवमयासार्धमात्मस्थं कुरु शासनम्॥ ६ ॥

अर्थ—सो राजा के उक्त वचन बाल्य समान हैं अर्थात् राजा वृद्ध होकर पुनः बालकपन को प्राप्त होगये हैं, राजनीति का जानने वाला कोई पुरुष भी उनके ऐसे वचनों को अपने हृदय में स्थान नहीं देसकता, जबतक कोई पुरुष इस बात को नहीं जानता कि राजा ने राम को बनवास दिया है तावत्= उससे पूर्व ही मेरे साथ अयोध्या का शासन अपने हाथ में ले॥

मया पार्श्वेसधनुषातवगुप्तस्यराघव ।
कःसमर्थोधिकं कर्तुं कृतांतस्येवातिष्ठतः ॥ ७ ॥
निर्मनुष्यामिमांसर्वामयोध्यां मनुजर्षभ ।
करिष्यामिशरैस्तीक्ष्णैर्यदिस्थास्यतिविप्रिये ॥ ८ ॥

अर्थ–और मैं धनुषवाण लेकर तेरी हरप्रकार से रक्षा करूंगा, फिर हम से अधिक कौन ऐसा समर्थ है जो हमारे सन्मुख खड़ा हो, हे पुरुष श्रेष्ठ! यदि कोई तेरे विपक्ष में खड़ा हुआ तो मैं इस सारी अयोध्या को तीक्ष्ण तीरों से निर्जन करदूंगा ॥

भरतस्याथ पक्ष्यो वा यो वास्यहितमिच्छति ।
सर्वांस्तांश्चवधिष्यामि मृदुर्हि परिभूयते ॥ ९ ॥
प्रोत्साहितोऽयं कैकेय्यासंतुष्टो यदि नः पिता ।
अमित्रभूतो निःसंगं वध्यतां बध्यतामपि ॥ १० ॥

अर्थ–भरत के पक्ष का अथवा उसका कोई हित चाहने वाला सन्मुख आया तो सबका बध करूंगा, मीठा बोलने वाला ही दवाया जाता है, यदि कैकेयी के बहकाने से हमारा पिता भी अहित करे तो वह भी शत्रु की भांति निःसन्देह बध करने योग्य है ॥

गुरोरप्यवलिप्तस्यकार्याकार्यमजानतः ।
उत्पथंप्रतिपन्नस्याकार्यंभवतिशासनम् ॥ ११ ॥
बलमेषकिमाश्रित्य हेतुं वा पुरुषोत्तम ।
दातुमिच्छति कैकेय्यै उपस्थितमिदं तव ॥ १२ ॥

अर्थ—जो किसी व्यसन में लगा हुआ भलाई बुराई को न जानने वाला गुरु भी क्यों न हो वह भी उलटे मार्ग पर चलने के कारण दण्डनीय है, हे पुरुषोत्तम! राजा ने किसके बलपर अथवा किस कारण आपके उपस्थित होते हुए यह राज्य कैकेयी को देने की इच्छा की है ॥

त्वयाचैवमयाचैव कृत्वावैरमनुत्तमम् ।
काऽस्यशक्तिःश्रियंदातुंभरतायारिशासन ॥ १३ ॥

अर्थ—आपसे तथा मुझसे अनुत्तम वैर करके राजा की क्या शक्ति है जो भरत को राज्य देसके अर्थात् किसी तरह भी नहीं देसकते ॥

अनुरक्तोस्मिभावनेभ्रातरंदेवितत्त्वतः ।
सत्येन धनुषा चैव दत्तेनेष्टेन ते शपे ॥ १४ ॥

अर्थ—हे देवि! मैं अपने हृदय से भाई पर पूर्णतया अनुरक्त हूं, और मैं सत्य, धनुष, यज्ञ और दान की शपथ खाता हूं किः—

दीप्तमग्निमरण्यं वा यदि रामः प्रवेक्ष्यति ।
प्रविष्टं तत्र मां देवि त्वं पूर्वमवधारय ॥ १५ ॥
हरामिवीर्याद्दुःखन्ते तमः सूर्य इवोदितः ।
देवीपश्यतुमेवीर्य्यंराघवश्चैवपश्यतु ॥ १६ ॥

अर्थ—यदि राम जलती हुई अग्नि अथवा जलते हुए वन में प्रवेश करेगा तो हे देवि! मुझे वहां पहले प्रविष्ट हुआ जान, हे माता! मैं अपनी शक्ति से तेरे दुःख को इस प्रकार दूर करता

हूं जैसे उदय हुआ सूर्य्य अन्धकार को दूर करता है, तू और राम दोनों मेरी शक्ति को देखें ॥

हनिष्ये पितरंवृद्धंकैकेय्यासक्तमानसम् ।
कृपणं च स्थितंबाल्येवृद्धभावेनगर्हितम् ॥ १७ ॥

अर्थ—कैकेयी में आसक्त मन वाले वृद्ध पिता का अभी हनन करता हूं,जो वृद्धावस्था होने पर भी बाल्यभावों में स्थित है॥

एतत्तु वचनं श्रुत्वा लक्ष्मणस्य महात्मनः ।
उवाच रामं कौसल्या रुदती शोकलालसा ॥१८॥

अर्थ—महात्मा लक्ष्मण के उक्त वचन सुनकर शोक से आर्त्त हुई कौसल्या रोती हुई राम से बोली कि :—

भ्रातस्ते वदतः पुत्र लक्ष्मणस्य श्रुतंत्वया ।
यदत्रानन्तरं कार्यं कुरुष्व यदि रोचते ॥ १९ ॥
नचाधर्म्यंवचःश्रुत्वासपत्न्या मम भाषितम् ।
विहाय शोकसंतप्तां गन्तुमर्हसिमामितः ॥ २० ॥

अर्थ—हे पुत्र ! लक्ष्मण के वचन तैने सुने,अब इसके अनन्तर जो तुझे रुचता है वह कर, मेरी सौतिन कैकेयी के अधर्मयुक्त वचन सुन शोक से तपी हुई मुझको छोड़कर तुझे वन को नहीं जाना चाहिये ॥

धर्मज्ञयदिधर्मिष्ठो धर्मं चरितुमिच्छसि ।
शुश्रूषमामिहस्थस्त्वंचरधर्ममनुत्तमम् ॥ २१ ॥

शुश्रूषुर्जननीं पुत्र स्वगृहे नियतो वसन् ।
परेण तपसा युक्तः काश्यपस्त्रिदिवंगतः ॥ २२ ॥

अर्थ–हे धर्मज्ञ ! यदि तू धर्मनिष्ठ हो धर्म करना चाहता है तो मेरी सेवारूप उत्तम धर्म का आचरण कर, हे पुत्र ! अपने गृह में नियम से रहकर माता की सेवा करता हुआ परम तप से युक्त काश्यप स्वर्ग=सद्गति को प्राप्त हुआ ॥

यथैव राजा पूज्यस्ते गौरवेण तथा ह्यहम् ।
त्वां साहं नानुजानामि न गन्तव्यमितोवनम् ॥२३॥
त्वद्वियोगान्न मे कार्यं जीवितेन सुखेन च ।
त्वया सह मम श्रेयस्तृणानामपि भक्षणम् ॥२४॥
यदि त्वं यास्यसि वनं त्यक्त्वा मां शोकलालसाम् ।
अहं प्रायमिहासिष्येनचशक्ष्यामि जीवितुम् ॥ २५॥

अर्थ–जैसे राजा गौरव=गुरु होने से तेरा पूज्य है इसी प्रकार मैं भी तेरी पूज्या हूं, मैं तुझको आज्ञा देती हूं कि तू यहां से वन मत जा, तुझसे पृथक् होकर न मुझे जीवन से कुछ प्रयोजन और न सुख से प्रयोजन है, तेरे साथ शाकपात खाकर भी रहना अच्छा है, यदि तू शोक से भरी हुई मुझको छोड़कर वन जायगा तो मैं विना कुछ खाये पिये भूखों मरजाउंगी मेरा जीना कदापि नहीं होसकता ॥

सं०–अव उक्त कथन का राम उत्तर देते हैं :—

विलपन्तींतथादीनांकौसल्यांजननींततः ।
उवाच रामो धर्मात्मा वचनं धर्मसंहितम् ॥ २६ ॥

अर्थ–उक्त प्रकार दीन होकर विलाप करती हुई माता कौसल्या को देखकर धर्मात्मा राम यह धर्मयुक्त बचन बोले कि:—

नास्तिशक्तिः पितुर्वाक्यं समतिक्रमितुं मम ।
प्रसादये त्वां शिरसा गन्तुमिच्छाम्यहंवनम् ॥२७॥

अर्थ–पिता का वाक्य उल्लङ्घन करना मेरी शक्ति से वाहर है मैं तुमको सिरझुकाकर प्रसन्न करता हुआ अवश्य वन जाना चाहता हूं ॥

तदेतत्तुमयाकार्यं क्रियते भुविनान्यथा ।
पितुर्हि वचनं कुर्वन्न कश्चिन्नामहीयते ॥ २८ ॥
तामेवमुक्त्वा जननीं लक्ष्मणं पुनरब्रवीत् ।
वाक्यंवाक्यविदांश्रेष्ठःश्रेष्ठःसर्वधनुष्मताम् ॥ २९ ॥

अर्थ–मैं यह करने योग्य ही कररहा हूं, पृथिवी में मैं कोई निराला काम नहीं कर रहा, पिता का वचन पूर्ण करता हुआ कोई भी हीनता को प्राप्त नहीं होता, इस प्रकार माता से कहकर वाक्य के जानने वालों में श्रेष्ठ लक्ष्मण से सब धनुषधारियों मेंश्रेष्ठ राम फिर बोले कि :—

तव लक्ष्मण जानामि मयि स्नेहमनुत्तमम् ।
विक्रमं चैव सत्त्वं च तेजश्च सुदुरासदम् ॥ ३० ॥

अर्थ–हे लक्ष्मण ! तेरे इस अत्युत्तम स्नेह को जो मेरी ओर है भले प्रकार जानता हूं और तेरे पराक्रम, दिलेरी तथा प्रबल तेज को भी जानता हूं ॥

धर्मोहिपरमोलोकेधर्मेसत्यंप्रतिष्ठितम् ।
धर्मेसंश्रितमप्येतत्पितुर्वचनमुत्तमम् ॥ ३१ ॥

अर्थ--पर हे लक्ष्मण ! लोक में धर्म ही सब से उत्तम तथा धर्म में सत्य स्थिर है, और पिता का यह उत्तम वचन धर्म के आश्रित होने से कल्याण का हेतु है ॥

संश्रुत्य च पितुर्वाक्यं मातुर्वाब्राह्मणस्य वा ।
न कर्तव्यं वृथा वीर धर्ममाश्रित्यतिष्ठता ॥ ३२ ॥
सोऽहं न शक्ष्यामिपुनर्नियोगमतिवर्तितुम् ।
पितुर्हिवचनाद्वीर कैकेय्याहं प्रचोदितः ॥ ३३ ॥

अर्थ–हे वीर ! जो धर्म के आश्रित स्थित है उसको माता, पिता तथा ब्राह्मण का वाक्य सुनकर वृथा नहीं करना चाहिये अर्थात् उसका पालन करना ही परमधर्म है, सो हे वीर ! पिता के वचन द्वारा कैकेयी से प्रेरा हुआ मैं पिता की आज्ञा का उल्लङ्घन नहीं करसकता ॥

तदेतां विसृजानार्यांक्षत्रधर्माश्रितांमतिम् ।
धर्ममाश्रयमातैक्ष्ण्यंमद्बुद्धिरनुगम्यताम् ॥ ३४ ॥
तमेवमुक्त्वासौहार्द्राद्भ्रातरं लक्ष्मणाग्रजः ।
उवाच भूयः कौसल्यां प्राञ्जलिः शिरसानतः॥३५॥

अर्थ–सो तू भी इस क्षात्रधर्म के आश्रित अनार्या मति को त्यागकर धर्म का आश्रय ले और इस तीक्ष्णता को छोड़कर मेरी बुद्धि का अनुगामी बन, लक्ष्मण का बड़ा भाई राम अपने भाई

लक्ष्मण को सौहार्द से इस प्रकार कहकर फिर हाथ जोड़ सिर नवा माता कौसल्या से बोला कि :—

अनुमन्यस्व मां देवि गमिष्यन्तमितो वनम् ।
शापितासि मम प्राणैः कुरु स्वस्त्ययनानि मे॥३६॥

अर्थ—हे देवि ! मुझको यहां से वन जाने की आज्ञा दे तुमको मेरे प्राणों की शपथ है और मेरे लिये स्वस्त्ययन=शुभ हो, यह आशीर्वाद दें ॥

तीर्णप्रतिज्ञश्चवनात्पुनरेष्याम्यहंपुरीम् ।
ययातिरिवराजर्षिः पुराहित्वापुनर्दिवम् ॥ ३७ ॥

अर्थ—तीर्णप्रतिज्ञ=अपनी चौदहवर्ष की प्रतिज्ञा पूर्ण करके फिर मैं अयोध्या में आउंगा, जैसे राजर्षि ययाति गिरकर फिर अपनी पूर्वावस्था को प्राप्त होगये थे ॥

शोकः संधार्यतांमातर्हृदये साधु मा शुचः ।
वनवासादिहैष्यामिपुनःकृत्वापितुर्वचः ॥ ३८ ॥

अर्थ—हे माता ! शोक को हृदय में दमन कर अर्थात् शोक मत कर, मैं पिता के वचन को पूर्ण करके वन से फिर शीघ्र ही आउंगा ॥

त्वया मया च वैदेह्या लक्ष्मणेन सुमित्रया ।
पितुर्नियोगे स्थातव्यमेषधर्मः सनातनः ॥ ३९ ॥
अम्ब संहृत्य सम्भारान् दुःखं हृदिनिगृह्य च ।
वनवासकृताबुद्धिर्ममधर्म्यानुवर्त्यताम् ॥ ४० ॥

अर्थ–हे माता! तुम्हें, मुझको, सीता, लक्ष्मण और सुमित्रा देवी को सदा ही पिता की आज्ञा में रहना चाहिये, यह सनातनधर्म है, हे अम्ब! अभिषेक के सामान को रखदो और दुःख को हृदय में निग्रह=रोककर वनवास के लिये हुई मेरी धर्मयुक्त बुद्धि के अनुकूल हो॥

एतद्वचस्तस्यनिशम्य माता सुधर्म्यमव्यग्रमविक्लवं च। मृतेवसंज्ञांप्रतिलभ्यदेवीसमीक्ष्यरामंपुनरित्युवाच॥४१॥ यथैवतेपुत्रपितातथाहंगुरुःस्वधर्मेण सुहृत्तया च। नत्वा-नुजानामिनमांविहायसुदुःखितामर्हसिपुत्रगन्तुम्॥४२॥

अर्थ–माता कौसल्या पुत्र के ऐसे धर्म तथा धैर्य्ययुक्त और दिलेरी के वचन सुनकर मूर्छित होगई, फिर होश में आकर राम को देखती हुई बोली कि हे पुत्र! जैसे तेरे लिये पिता हैं वैसे ही स्वधर्मेण=पालनादि धर्म तथा स्नेह से मैं तेरी गुरु हूं, मैं तुझे जाने की आज्ञा नहीं देती, मुझ दुःखिया को इस प्रकार विलाप करती छोड़कर तुझको नहीं जाना चाहिये॥

किं जीवितेनेहविना त्वया मे लोकेन वा किं स्वधयामृतेन। श्रेयो मुहूर्तं तव सन्निधानं ममैव कृत्स्नादपि जीवलोकात्॥ ४३॥

अर्थ–तेरे बिना मेरा यहां जीवन क्या अथवा लोक में रहना क्या और स्वधा तथा अमृत से क्या, हे प्रिय! तेरे निकट थोड़ी देर रहना भी सब जीवलोक से अधिकतर है॥

नरैरिवोल्काभिरपोह्यमानो महागजोध्वांत-

मभिप्रविष्टः । भूयः प्रजज्वालविलापमेवं
निशम्य रामः करुणं जनन्याः ॥ ४४ ॥

अर्थ–माता के ऐसे करुणामय विलापयुक्त वचन सुनकर राम इस प्रकार मोह को प्राप्त होगये जैसे उलकाओं से जलाया हुआ हाथी अन्धकार में प्रवेश करता है ॥

स मातरं चैव विसंज्ञकल्पामार्तं च सौमित्रि-
मभिप्रतप्तम्। धर्मे स्थितो धर्म्यमुवाच वाक्यं
यथा स एवार्हति तत्र वक्तुम् ॥ ४५ ॥

अर्थ–विकल हुई माता और तप्त हुए दुःखी लक्ष्मण को धर्म में स्थित राम यथावसर=समय विचारकर यह धर्मयुक्त वचन बोले कि :—

अहं हि ते लक्ष्मण नित्यमेवजानामि भक्तिं
च पराक्रमं च । ममत्वभिप्रायमसंनिरीक्ष्य
मात्रा सहाभ्यर्दसि मां सुदुःखम् ॥ ४६ ॥

अर्थ–हे लक्ष्मण ! मैं तेरी भक्ति और पराक्रम को सदा जानता हूं परन्तु तू मेरे अभिप्राय को न जानकर माता के साथ मुझको बहुत पीड़ित कर रहा है ॥

धर्मार्थकामाः खलु जीवलोके समीक्षिता
धर्मफलोदयेषु । ये तत्र सर्वेस्युरसंशयं
मे भार्येववश्याभिमतासपुत्रा ॥ ४७ ॥

अर्थ–हे प्रिय ! निश्चयकरके इस लोक में धर्म, अर्थ, काम,

यह तीन जो मनुष्यजन्म के फल हैं इनमें धर्म ही मुख्य है, क्योंकि अर्थ, काम सब धर्म के ही आश्रित हैं, जैसाकि एकही पतिव्रता भार्या पुत्रादि साधनद्वारा स्वर्ग की हेतु होती है ॥

यस्मिंस्तु सर्वे स्युरसन्निविष्टा धर्मो यतः
स्यात्तदुपक्रमेत् । द्वेष्यो भवत्यर्थपरो-
हि लोके कामात्मताखल्वति न प्रशस्ता ॥४८॥

अर्थ—जिस धर्म के आश्रित मनुष्यजन्म के अन्य सब फल हैं उस धर्म का मनुष्य सब से प्रथम सेवन करे, क्योंकि अर्थपरायण पुरुष लोगों को अप्रिय होता है, इसलिये अर्थपरायण होना ठीक नहीं ॥

गुरुश्च राजा च पिता च वृद्धः क्रोधात्प्रहर्षाद-
थवापिकामात् । यद्व्यादिशेत्कार्यमवेक्ष्य
धर्मं कस्तं न कुर्यादनृशंसवृत्तिः ॥ ४९ ॥

अर्थ—गुरु, राजा, पिता और वृद्ध इन चारो की आज्ञा माननी चाहिये, चाहें वह क्रोध से कहें, हर्ष से कहें अथवा कामाना से कहें, ऐसा कौन क्रूरस्वभाव वाला पुरुष है जो धर्म को देखकर इनकी आज्ञा का पालन न करे ॥

न तेन शक्नोमि पितुः प्रतिज्ञामिमां न कर्तुं
सकलां यथावत । स ह्यावयोस्तात गुरुर्नि-
योगे देव्याश्च भर्ता स गतिः स धर्मः ॥५०॥

अर्थ—इसलिये मैं पिता की आज्ञा को अन्यथा नहीं कर

सकता, क्योंकि हे तात ! वह हम दोनों को आज्ञा देने में गुरु, माता के भर्ता और वही गति तथा वही धर्म हैं ॥

तस्मिन् पुनर्जीवति धर्मराजे विशेषतःस्वे
पथि वर्त्तमाने। देवी मया सार्धमितोऽभि-
गच्छेत् कथंस्विदन्या विधवेव नारी ॥५१॥

अर्थ–उस धर्मराज के जीवित रहने पर और विशेषतः अपने पथ पर वर्त्तमान होते हुए माता विधवा नारी के समान स्वतन्त्र-तापूर्वक किस प्रकार मेरे साथ जासकती है ॥

सामानुमन्यस्व वनं व्रजन्तं कुरुष्वनः स्व-
स्त्ययनानिदेवि। यथा समाप्ते पुनराव्रजेयं
यथा हि सत्येन पुनर्ययातिः ॥ ५२ ॥

अर्थ–हे देवि ! सो तू मुझे वन जाने की आज्ञा और मेरे कल्याणार्थ आशीर्वाद दे ताकि मैं वनवास के समाप्त होने पर फिर आऊं, जैसे सत्य से ययाति पुनः आये थे ॥

यशोह्यहं केवलराज्यकारणान्नपृष्ठतः कर्तु-
मलं महोदयम्। अदीर्घकाले नतु देवि
जीविते वृणेऽवरामद्यमहीमधर्मतः ॥५३॥

अर्थ–मैं केवल राज्य के कारण बड़े फलवाले यश को पीछे नहीं डालसक्ता अर्थात् नहीं छोड़सकता, हे देवि ! इस अदीर्घ-काल=बहुत समय तक न रहने वाले जीवन के निमित्त अधर्म से इस तुच्छ पृथिवी का अधिपति कदापि न बनुंगा ॥

प्रसादयन्नरवृषभः समातरं पराक्रमाज्जिग-
मिषुरेव दण्डकान् । अथानुजंभृशमनुशा-
स्य दर्शनं चकारतां हृदिजननींप्रदक्षिणम् ॥५४॥

अर्थ–इस भांति राम ने अपनी दृढ़ता से माता और भाई लक्ष्मण को धर्म का उपदेश कर और माता की प्रदक्षिणा करके दण्डक वन के जाने का सङ्कल्प किया ॥

इति सप्तदशः सर्गः

अथ अष्टादशः सर्गः

अथ तं व्यथया दीनं सविशेषममर्षितम् ।
सरोषमिव नागेन्द्रंरोषविस्फारितेक्षणम् ॥ १ ॥
आसाद्य रामः सौमित्रिं सुहृदं भ्रातरं प्रियम् ।
उवाचेदं स धैर्येण धारयन्सत्त्वमात्मवान् ॥ २ ॥

अर्थ–इसके अनन्तर कष्ट से अति दीन, क्रोधित हो हाथी की तरह सांस लेते हुए तथा क्रोध से फैलाये हुए लालनेत्रों वाले सुहृद् प्रिय भाई लक्ष्मण को अभिमुख करके सत्व को धारण किये हुए मननशील राम धैर्य्य से यह बचन बोले कि:—

निगृह्य रोषं शोकं च धैर्य्यमाक्रम्य केवलम् ।
अवमानं निरस्यैनं गृहीत्वा हर्षमुत्तमम् ॥ ३ ॥

उपक्लृप्तं यदेतन्मे अभिषेकार्थमुत्तमम् ।
सर्वं निवर्तयाक्षिप्रं कुरु कार्यं निरव्ययम् ॥ ४ ॥

अर्थ—इस रोष और शोक को रोककर केवल धैर्य्य का अवलम्बन कर, और बड़े हर्ष के साथ जो अभिषेक का उत्तम सामान तैयार किया है उस सब को परे हटा निर्विघ्न कार्य्य कर अर्थात् राज्य के मिलने का शोक छोड़ धीर बन और इस अपमान को भूल जा जोकि पिता ने राज्य के स्थान में वन दिया है॥

सौमित्रेयोऽभिषेकार्थं मम संभारसम्भ्रमः ।
अभिषेकनिवृत्यर्थे सोऽस्तु सम्भारसम्भ्रमः ॥५॥
यस्यामदभिषेकार्थे मानसं परितप्याति ।
माता नः सा यथा न स्यात्साविशङ्का तथा कुरु॥६॥

अर्थ—हे लक्ष्मण ! मेरे अभिषेकविषयक जो तेरा उत्साह था वही उत्साह अभिषेक की निवृत्तिरूप वनवास के लिये कर और अभिषेक के अर्थ जिसका मन संतप्त होरहा है वह हमारी माता कैकेयी जिसप्रकार निःशंक हो वैसा कर अर्थात् जिससे उसको भरत के अभिषेक विषयक कोई सन्देह उत्पन्न न हो वही तुम को करना चाहिये॥

नस्या शंकामयंदुःखं मुहूर्तमपिनोत्सहे ।
मनसि प्रतिसंजातं सौमित्रेऽहमुपेक्षितुम् ॥७॥
न बुद्धिपूर्वंनाबुद्धंस्मरामीहकदाचन ।
मातॄणां वा पितुर्वाहं कृतमल्पं च विप्रियम् ॥८॥

सत्यः सत्याभिसंधश्च नित्यं सत्यपराक्रमः।
परलोकभयाद्भीतो निर्भयोऽस्तु पिता मम ॥९॥

अर्थ–हे लक्ष्मण! कैकेयी के मन में उत्पन्न हुए शङ्कामय दुःख को मैं एक घड़ी भर भी नहीं सहसकता, मुझे स्मरण नहीं आता कि मैंने जान बूझकर अथवा विनाजाने कभी माताओं वा पिता का तनिक भी अप्रिय किया हो, मैंने उनको सदा ही प्रसन्न रखा है, मेरे सत्यप्रतिज्ञ पिता जो सदा ही सत्यपराक्रम वाले परलोक के भय से डररहे हैं वह अभय हों॥

तस्यापि हि भवेदास्मिन् कर्मण्यप्रतिसंहृतम्।
सत्यं नेति मनस्तापस्तस्य तापस्तपेच्चमाम् ॥१०॥
अभिषेकविधानन्तु तस्मात्संहृत्य लक्ष्मण।
अन्वगेवाहमिच्छामि वनं गन्तुमितःपुरः ॥११॥

अर्थ–जब तक यह कर्म समाप्त न होगा तब तक राजा के मन का यह सन्ताप "कि मेरा वरदान सत्य न हुआ" मुझको भी संतप्त करेगा, इसलिये हे लक्ष्मण! अभिषेक का विधान हटाकर मैं अभी इस नगर से वन को जाना चाहता हूं॥

बुद्धिः प्रणीता येनेयं मनश्चानुसमाहितम्।
तं तु नार्हामि संक्लेष्टुंप्रव्रजिष्यामि माचिरम्॥१२॥
कृतान्तएवसौमित्रेद्रष्टव्योमत्प्रवासने।
राज्यस्य च वितीर्णस्यपुनरेव निवर्तने॥ १३॥

अर्थ–जिसने कैकेयी की बुद्धि को प्रेरणाकर मन को दृढ़

किया है उसको मैं क्लेश नहीं देना चाहता बिना विलम्ब किये वन को जाउंगा, हे सौमित्रे ! मेरे वनगमन और विस्तृत प्राप्त राज्य के फिर लेलेने में दैव ही कारण जानना चाहिये ॥

कैकेय्याः प्रतिपत्तिर्हि कथं स्यान्मम वेदने ।
यदि तस्या न भावोऽयं कृतान्तविहितोभवेत्॥१४॥
जानासि हि यथा सौम्य न मातृषु ममान्तरम् ।
भूतपूर्वं विशेषो वा तस्या मयि सुतेऽपि वा ॥१५॥

अर्थ—यदि दैव प्रतिकूल न होता तो कैकेयी का मेरे वेदना देने में कदापि निश्चय न होता, हे सौम्य ! तुम भलेप्रकार जानते हो कि मेरा सब माताओं के साथ एक जैसा ही हित है कोई भेद नहीं और कैकेयी भी इससे पूर्व मुझमें तथा भरत में कोई भेद नहीं समझती थी ॥

सोऽभिषेकनिवृत्त्यर्थैः प्रवासार्थैश्चदुर्वचैः ।
उग्रैर्वाक्यैरहं तस्या नान्यद्दैवात्समर्थये ॥ १६ ॥
कथं प्रकृति सम्पन्ना राजपुत्री तथा गुणा ।
ब्रूयात्सा प्राकृतेव स्त्री मत्पीड्यं भर्तृसन्निधौ ॥१७॥

अर्थ—सो कैकेयी के ऐसे दुर्वचनों को जो मेरे अभिषेक निवर्त्तक बनवास के अर्थ राजा से कहे हैं मैं दैव से बिना अन्य कोई कारण नहीं समझता, यदि वह दैव से प्रेरित न होती तो श्रेष्ठ गुणों वाली राजपुत्री कैकेयी अपने पति के समीप प्राकृत स्त्री की न्याईं मुझे पीड़ा देने वाला वाक्य न कहती ॥

यदचिन्त्यन्तुतद्दैवंभूतेष्वपि न हन्यते ।
व्यक्तंमयि च तस्यां च पतितोहि विपर्ययः ॥१८॥
कश्चदैवेन सौमित्रे योद्धुमुत्सहतेपुमान् ।
यस्यानुग्रहणंकिंचित्कर्मणोन्यन्नदृश्यते ॥ १९ ॥

अर्थ–जो अचिन्त्य=चिन्ता में न आसके उसका नाम दैवयोग* है, उसको कोई प्राणी मेट नहीं सक्ता, जैसाकि प्रत्यक्ष है, कौन जानता था कि कैकेयी की मति विपरीत होजायगी और मुझे राज्य के स्थान में वन जाना पड़ेगा, हे लक्ष्मण ! कौन पुरुष दैव के साथ युद्ध करसकता है जिसका पता कर्मफल से भिन्न और कुछ नहीं दीखता ॥

सुख दुःखे भय क्रोधौ लाभालाभौ भवाभवौ ।
यस्य किंचित्तथाभूतं ननु दैवस्य कर्मतत् ॥ २० ॥
ऋषयोप्युग्रतपसो दैवेनाभिप्रचोदिताः ।
उत्सृज्यनियमांस्तीव्रान्भ्रश्यन्ते काममन्युभिः॥२१॥

अर्थ–सुख, दुःख, भय, क्रोध, लाभ, हानि, उत्पत्ति और विनाश यह सब दैवयोग=पूर्वकर्मानुसार ही होते हैं, इनमें भूतों का कुछ वस नहीं, ऋषि लोग बड़ा उग्र तप करने पर भी कर्मों से प्रेरित हुए तीव्र नियमों का परित्याग करके कामनाओं के वशीभूत हुए भ्रष्ट होजाते हैं ॥

असंकल्पितमेवेह यदकस्मात्प्रवर्तते ।
निवर्त्यारब्धमारम्भैर्ननु दैवस्य कर्म तत् ॥ २२ ॥

---

* पूर्वकर्मानुसार शुभाशुभ फलप्राप्ति का नाम "दैवयोग" है ॥

एतयातत्त्वयाबुद्ध्यासंस्तभ्यात्मानमात्मना ।
व्याहतेऽप्यभिषेके मे परितापो न विद्यते ॥ २३ ॥

अर्थ-बड़े प्रयत्न से आरम्भ किये हुए कार्य्य को पृथक् करके विना सोचा हुआ कार्य्य अकस्मात् ही प्रवृत्त होजाता है, सो यह निःसन्देह कर्मों का फल है, निश्चयकरके इस सत्य बुद्धि द्वारा ही मैंने अपने आत्मा को सन्तुष्ट किया हुआ है जिससे मुझको अभिषेक के दूर होने पर भी कोई सन्ताप नहीं ॥

तस्मादपरितापः संस्त्वमप्यनुविधायमाम् ।
प्रतिसंहारयक्षिप्रमाभिषेचनकीं क्रियाम् ॥ २४ ॥

अर्थ-इसलिये तू भी इस सन्ताप से रहित होकर मेरे अनुसार चल और इस अभिषेक के कर्म को शीघ्र ही चित्त से भुलादे ॥

एभिरेव घटैः सर्वैरभिषेचनसंभृतैः ।
मम लक्ष्मण तापस्ये व्रतस्नानं भविष्यति ॥ २५ ॥
अथवा किं ममैतेनराज्यद्रव्यमयेन तु ।
उद्धृतं मे स्वयं तोयं व्रतादेशंकरिष्यति ॥ २६ ॥

अर्थ-हे लक्ष्मण ! यह जो अभिषेक के घट भरे रखे हैं इन्हीं से तपस्वी होने पर हमारा स्नान होगा अथवा इस अभिषेक के जल से हमारा क्या प्रयोजन हम तपस्वी होने पर अपने हाथ से भरे हुए जल से स्नान करेंगे ॥

भाष्य-इस श्लोक के टीका में कई एक टीकाकार लिखते हैं " कि नाना तीर्थों के जल से भरे हुए अभिषेक

के लिये जो कलश धरे हैं" इत्यादि, रामायण का पाठ करने से ज्ञात होता है कि रामचन्द्र के समय में किसी तीर्थ का नाम न था, न उस समय प्रयाग तीर्थ माना जाता था और न काशी, मथुरा, हरिद्वार आदि स्थानों में लोगों की तीर्थभावना थी, इसी अध्याय के तेरहवें सर्ग में जहां जल लाने का प्रकरण है वहां यह लिखा है कि "**गंगायमुनयोः पुण्यात्संगमादाहृतंजलम्**"=गंगा यमुना के पवित्रसंगम से जल मंगायागया, फिर आगे लिखा है कि पवित्र नदी, कुण्ड, कूप आदि से जल लाया गया, इस प्रकरण में कहीं तीर्थ का नाम निशान नहीं फिर न जाने तीर्थवादियों ने तीर्थों का भाव यहां कहां से निकाला है ॥

मा च लक्ष्मण संतापं कार्षीर्लक्ष्म्याविपर्यये ।
राज्यं वा वनवासो वा वनवासो महोदयः ॥२७॥

अर्थ—हे लक्ष्मण ! लक्ष्मी के उलट फेर में सन्ताप मतकर यह चिरस्थायी नहीं, राज्य वा वनवास इन दोनों में से वनवास ही बड़े फल वाला है ॥

न लक्ष्मणास्मिन्ममराज्यविघ्नेमातायवी-
यस्यभिशंकितव्या । दैव्याभिपन्ना न पिता
कथंचिज्जानासि दैवं हि तथा प्रभावम् ॥२८॥

अर्थ—हे लक्ष्मण ! मेरे इस राज्यविघ्न में छोटी माता कैकेयी

और पिता पर कोई शङ्का मत कर तू भले प्रकार जानता है कि दैव=कर्मों का प्रभाव ऐसा ही होता है ॥

इति अष्टादशः सर्गः

अथ एकोनविंशः सर्गः

इति ब्रुवति रामे तु लक्ष्मणोऽवाक्शिरा इव ।
ध्यात्वा मध्यं जगामाशु सहसा दैन्यहर्षयोः ॥१॥
तथा तु बध्वा भ्रुकुटीं भ्रुवोर्मध्ये नरर्षभः ।
निशश्वास महासर्पो विलस्थ इव रोषितः ॥२॥

अर्थ—राम का उक्त उपदेश सुनकर लक्ष्मण नीचा सिर करके कुछ सोचकर दुःख और हर्ष के मध्य को प्राप्त हुआ अर्थात् राम का धर्म में धैर्य देखकर प्रसन्न हुआ और राज्य की प्राप्ति न होने से दुःख का अनुभव करता रहा, वह नरश्रेष्ठ दोनों भ्रुवों के मध्य भृकुटी डालकर इस प्रकार सांस लेने लगा जैसे क्रुद्ध हुआ महासर्प विल में बैठा हुआ फुंकारता है ॥

तस्यदुष्प्रतिवीक्ष्यंतद्भ्रुकुटीसहितंतदा ।
बभौ क्रुद्धस्य सिंहस्य मुखस्य सदृशं मुखम् ॥३॥
तिर्यगूर्ध्वं शरीरे च पातयित्वा शिरोधराम् ।
अग्राक्ष्णावीक्षमाणस्तुतिर्यग्भ्रातरमब्रवीत् ॥ ४ ॥

अर्थ—लक्ष्मण का भृकुटी चढ़ाये हुए विशालमुख जिसके सन्मुख दृष्टि नहीं ठहरसकती, क्रुद्ध हुए सिंह के मुखसदृश शोभा को प्राप्त, ग्रीवा को टेढ़ा करके ऊपर को फेरकर नेत्र के अग्र-भाग से भाई राम को तिरछा देखता हुआ बोलाकिः—

कथं ह्येतदसंभ्रातस्त्वद्विधोवक्तुमर्हसि ।
किं नाम कृपणं दैवमशक्तमभिशंससि ॥ ५ ॥
कथं त्वं कर्मणाशक्तः कैकेयीवशवर्तिनः ।
करिष्यसि पितुर्वाक्यमधर्मिष्ठंविगर्हितम् ॥६॥

अर्थ—आप जैसा पुरुष जो कभी घबराता नहीं वह कैसे विचारे असमर्थ दैव की स्तुति करता है कि जो दैव करता है वही होता है, आप कर्म से समर्थ होकर किसप्रकार कैकेयी के वशीभूत हुए पिता के अधर्मपरायण निन्दित वाक्य का पालन करेंगे ॥

यद्यपि प्रतिपत्तिस्ते दैवी चापि तयोर्मतम् ।
तथाप्युपेक्षणीयं ते न मे तदपि रोचते ॥७॥
विक्लवो वीर्यहीनो यः स दैवमनुवर्तते ।
वीराः संभावितात्मानो न दैवं पर्युपासते ॥ ८ ॥
दैवं पुरुषकारेण यः समर्थः प्रबाधितुम् ।
न दैवेन विपन्नार्थः पुरुषः सोऽवसीदति ॥ ९ ॥

अर्थ—यद्यपि आपके मतानुसार पिता की यह बुद्धि दैव

से कीहुई है तथापि आपका उपेक्षा करना अर्थात् राज्य को छोड़ देना मुझको नहीं रुचता, जो घबराने वाला तथा वीर्य्यहीन है वही दैव के पीछे चलता है, अपने आत्मिक बल पर विश्वास रखने वाले वीर पुरुष दैव २ नहीं पुकारते, जो अपने बल से दैव को परे हटाकर काम करने में समर्थ है वह दैव से अपने अर्थ की हानि करके दुःखी नहीं होता ॥

द्रक्ष्यंतित्वद्य दैवस्या पौरुषं पुरुषस्य च ।
दैवमानुषयोरद्यव्यक्ताव्यक्तिर्भविष्यति ॥१०॥
अद्य मे पौरुषहतं दैवं द्रक्ष्यान्ति वै जनाः ।
यैर्दैवादाहतंतेऽद्य दृष्टं राज्याभिषेचनम् ॥ ११ ॥
अत्यंकुशमिवोद्दामंगजंमदजलोद्धतम् ।
प्रधावितमहंदैवं पौरुषेणनिवर्तये ॥ १२ ॥

अर्थ–आज दैव और पुरुष के पौरुष का बल देखें, आज दैव और मानुष का स्वरूप प्रकट होगा, आज वही लोग मेरे पौरुष से दैव को हत हुआ देखेंगे जिन्होंने आपके राज्याभिषेक को दैव से विघ्न वाला हुआ देखा है अर्थात् जो इस अभिषेक में दैव की ओर से विघ्न बतातें हैं, अंकुस की परवाह न कर जंजीर तोड़ भागते हुए मदमत्त हाथी की भांति भागे हुए दैव को अपने पौरुष से आज लौटाता हूं ॥

अहं तदाशांधक्ष्यामि पितुस्तस्याश्च या तव ।
अभिषेकविघातेनपुत्रराज्याय वर्तते ॥ १३ ॥

अर्थ—मैं पिता और माता की उस आशा को भस्म करदूंगा जो तुम्हारे अभिषेक को हटाकर भरत के राज्यार्थ प्रवृत्त हुई है ॥

पूर्वं राजर्षिवृत्त्या हि वनवासोऽभिधीयते ।
प्रजानिक्षिप्यपुत्रेषुपुत्रवत्परिपालने ॥ १४ ॥
सचेद्राजन्यनेकाग्रेराज्यविभ्रमशंकया ।
नैवमिच्छसिधर्मात्मन्राज्यंरामत्वमात्मनि ॥ १५ ॥

अर्थ—पूर्वकाल के राजा लोगों की यह व्यवस्था चली आई है कि प्रजा का पुत्रवत् पालन करने के लिये अपने पुत्र को राज्य दे आप वृद्धावस्था में वन में वास करते थे नकि आप जैसी युवावस्था में वनवासी होते थे, यदि आप राजा के चञ्चलचित्त के कारण राज्य को भी चञ्चल समझ शासन करना स्वीकार न करेंगे तो :—

प्रतिजाने च ते वीरमाभूवंवीरलोकभाक् ।
राज्यं च तव रक्षेयमहंवेलेवसागरम् ॥ १६ ॥
मंगलैरभिषिंचस्व तत्र त्वं व्यापृतो भव ।
अहमेको महीपालानलंवारयितुंबलात् ॥ १७ ॥

अर्थ—हे वीर ! मैं प्रतिज्ञा करता हूं कि जैसे समुद्र मर्यादा का पालन करता है इसी प्रकार मैं तुम्हारे राज्य की रक्षा करूंगा, यदि ऐसा न करूं तो आप मुझको वीर न जानें, आप मङ्गलाचारपूर्वक अपने अभिषेकविषयक कार्य्य में लगें, मैं अकेला ही अपने बल से सब राजाओं के रोकने में समर्थ हूं ॥

नशोभार्थाविमौबाहू न धनुर्भूषणाय मे ।
नासिराबन्धनार्थाय न शराः स्तम्भहेतवः ॥ १८ ॥
अमित्रमथनार्थायसर्वमेतच्चतुष्टयम् ।
न चाहं कामयेऽत्यर्थं यः स्याच्छत्रुर्मतो मम ॥१९॥

अर्थ–मेरी यह भुजायें शोभा के लिये नहीं, न धनुष भूषण के लिये, न तलवार बांधने के लिये और न तीर थांभने के लिये हैं, यह चारो शत्रुओं के दमन के लिये हैं, जो मेरा शत्रु है मैं उसकी चिर तक स्थिति नहीं चाहता ॥

खड्गनिष्येषनिष्पिष्टैर्गहनादुश्चरा च मे ।
हस्त्यश्वरथिहस्तोरुशिरोभिर्भविता मही ॥ २० ॥
बद्धगोधाङ्गलित्राणेप्रगृहीतशरासने ।
कथं पुरुषमानीस्यात्पुरुषाणांमयिस्थिते ॥ २१ ॥

अर्थ–मेरी तलवार के आघातों से टुकड़े २ हुए हाथियों के सूंड, घोड़ों के जङ्घ और रथियों के सिरों से पृथिवी गहना और दुश्चरा होगी अर्थात् पृथिवी वन के समान सघन कठिनता से चलने योग्य होजायगी, गोह के चमड़े का दस्ताना पहन, धनुष हाथ में लेकर जब मैं पुरुषों के मध्य में खड़ा होउंगा तब ऐसा कौन पुरुष है जो मेरे सन्मुख आवे ॥

बहुभिश्चैकमत्यस्यन्नेकेन च बहूञ्जनान् ।
विनियोक्ष्याम्यहंबाणान्नृवाजिगजमर्मसु ॥ २२ ॥

अर्थ–यदि यह कहो कि तुम अकेले बहुत जनों को

कैसे मारोगे, मैं दृढ़ता से कहता हूं कि अकेला ही बाणों से बहुतों का हनन कर घोड़े हाथियों के मर्मस्थानों में बाण मारुंगा ॥

अद्य मेऽस्त्रप्रभावस्य प्रभावः प्रभविष्यति ।
राज्ञश्चाप्रभुतां कर्तुं प्रभुत्वं च तव प्रभो ॥ २३ ॥
अद्य चन्दनसारस्य केयूरामोक्षणस्य च ।
वसूनां च विमोक्षस्य सुहृदां पालनस्य च ॥ २४ ॥
अनुरूपाविमौ बाहू रामकर्म करिष्यतः ।
अभिषेचनविघ्नस्य कर्तॄणां ते निवारणे ॥ २५ ॥

अर्थ–हे प्रभो ! आज मेरे अस्त्रों के सामर्थ्य का प्रभाव देखें, राजा की अप्रभुता और आपकी प्रभुता स्थिर करने में मैं समर्थ होउंगा, आज चन्दन लगी हुई बाहुवन्द पहने मेरी भुजायें सुहृदों के पालन योग्य कर्म करेंगीं और तुम्हारे अभिषेक के विघ्नकारियों को पीछे हटावेंगीं ॥

ब्रवीहि कोऽद्यैव मया वियुज्यतां तवासुहृ-
त्प्राणयशः सुहृज्जनैः । यथा तवेयं वसुधा
वशाभवेत्तथैव मां शाधि तवास्मि किंकरः॥२६॥

अर्थ–आप मुझको कहें कौन तुम्हारा ऐसा शत्रु है जिसने अभिषेकविषयक विघ्न डाला है उसको प्राण, यश और सुहृदों से अभी वियुक्त करके यह पृथिवी तुम्हारे अधीन करता हूं, आप मुझको आज्ञा करें मैं आपका सेवक हूं ॥

विमृज्यबाष्पंपरिसांत्व्यचासकृत्स लक्ष्मणंराघव-

वंशवर्धनः । उवाच पित्रोर्वचने व्यवस्थितं
निबोध मामेष हि सौम्य सत्पथः ।। २७ ।।

अर्थ—यह सुनकर रघुवंश के बढ़ाने वाले राम लक्ष्मण के आंसू पोंछ बार २ तसल्ली देकर कहने लगे कि हे सौम्य ! मैं पिता के वचन में स्थिर हूं जो सत्मार्ग है ॥

इति एकोनविंशः सर्गः

अथ विंशः सर्गः

तं समीक्ष्य व्यवसितं पितुर्निर्देशपालने ।
कौसल्यावाष्पसंरुद्धा वचोधर्मिष्ठमब्रवीत् ।। १ ।।

अर्थ—धर्मात्मा राम को पिता की आज्ञापालन में तत्पर देखकर आंसुओं से रुके हुए कण्ठवाली कौसल्या यह बचन बोली कि :—

अदृष्टदुःखोधर्मात्मा सर्वभूतप्रियंवदः ।
मयिजातो दशरथात्कथमुञ्छेनवर्तयेत् ।। २ ।।
यस्यभृत्याश्चदासाश्चमृष्टान्यन्नानिभुंजते ।
कथं स भोक्ष्यतेऽनाथो वने मूलफलान्ययम् ।। ३ ।।

अर्थ—जिसने कभी दुःख नहीं देखा, धर्मात्मा, सब से मीठा बोलने वाला, दशरथ द्वारा मुझ में उत्पन्न होकर कैसे

उञ्छ=दाना २ चुनकर वन में जीविका करेगा, जिसके भृत्य और दास उत्तम बने हुए मिष्ट भोजन खाते हैं वह अनाथ की न्याईं वन में कैसे फल मूल खायगा ॥

क एतच्छ्रद्दधेच्छ्रुत्वाकस्यवानभवेद्भयम् ।
गुणवान्दयितो राज्ञः काकुत्स्थो यद्विवास्यते ॥४॥
नूनं तु बलवांल्लोके कृतान्तः सर्वमादिशन् ।
लोके रामाभिरामस्त्वं वनं यत्र गमिष्यसि ॥ ५ ॥

अर्थ-यह सुनकर कौन विश्वास करेगा अथवा यह सुनकर किसको भय न होगा कि राजा ने अपना प्रिय तथा गुणवान् पुत्र राम को वन भेजदिया है,निःसन्देह लोक में सुख दुःखादि सब दैवाधीन होते हैं, क्योंकि दैव बड़ा बलवान् है, हे सर्वप्रिय राम ! तू बन को जायगा ॥

त्वयाविहीनामिहमांशोकाग्निरतुलोमहान् ।
प्रधक्ष्याति यथा कक्ष्यं चित्रभानुर्हिमात्यये ॥ ६ ॥
कथं हि धेनुः स्वं वत्संगच्छन्तन्नानुगच्छाति ।
अहं त्वनुगमिष्याामि यत्र वत्स गमिष्यासि ॥७॥

अर्थ-तेरे बिना मुझको यहां महान् शोकाग्नि इसप्रकार दग्ध करेगी जैसे ग्रीष्म में अग्नि जंगल को जलाती है, हे पुत्र ! जैसे बछड़े के जाते हुए धेनु=गाय उसके पीछे जाती है इसी प्रकार जहां तू जायगा मैं तेरे पीछे जाउंगी ॥

यथा निगदितं मात्रा तद्वाक्यं पुरुषर्षभः ।
श्रुत्वा रामोऽब्रवीद्वाक्यं मातरंभृशदुःखिताम् ॥८॥

कैकेय्या वञ्चितो राजा मयि चारण्यमाश्रिते ।
भवत्या च परित्यक्तो न नूनं वर्तयिष्यति ॥ ९ ॥
भर्तुः पुनः परित्यागोनृशंसः केवलं स्त्रियाः ।
स भवत्या न कर्तव्यो मनसापि विगर्हितः ॥१०॥

अर्थ—माता के उक्त बचन सुनकर पुरुषश्रेष्ठ राम अत्यन्त दुःखी हुई माता से यह बचन बोले कि हे माता ! कैकेयी से वञ्चित हुए राजा को मेरे बन चले जाने पर यदि आप छोड़देंगी तो निःसन्देह राजा जीवित न रहेंगे, और भर्त्ता का त्याग स्त्री के लिये महादुष्टकर्म है, इसलिये ऐसा निन्दितकर्म तुम्हें कभी अपने मन में भी नहीं लाना चाहिये ॥

यावज्जीवति काकुत्स्थः पिता मे जगतीपतिः ।
शुश्रूषां क्रियतां तावत्सहि धर्मः सनातनः ॥११॥

अर्थ—पृथिवीपति मेरे पिता काकुत्स्थ जबतक जीवित हैं तबतक तुम्हें उन्हीं की सेवा करनी चाहिये यह सनातनधर्म है ॥

मया चैव भवत्या च कर्तव्यं वचनं पितुः ।
राजा भर्ता गुरुः श्रेष्ठ सर्वेषामीश्वरः प्रभुः ॥१२॥
इमानि तु महारण्ये विहृत्य नव पंच च ।
वर्षाणि परमप्रीत्या स्थास्यामि वचने तव ॥ १३ ॥

अर्थ—मुझको और आपको पिता की आज्ञा पालन करनी चाहिये, क्योंकि राजा भर्त्ता, गुरु, श्रेष्ठ, सबका स्वामी और

प्रभु है, यह चौदहवर्ष महावन में विचरकर फिर परमप्रीति से तुम्हारी आज्ञा में ठहरूंगा ॥

एवमुक्त्वा प्रियंपुत्रं वाष्पपूर्णाननातदा ।
उवाच परमार्ता तु कौसल्यासुतवत्सला ॥ १४ ॥

अर्थ—जब राम ने इसप्रकार कहा तब वह आंसुओं से पूर्ण मुखवाली, सुतवत्सला=पुत्र से प्यार करने वोली कौसल्या अत्यन्त दुःखित हो प्यारे पुत्र से बोली कि :—

नय मामपि काकुत्स्थ वनं वन्यांमृगीमिव ।
यदि ते गमने बुद्धिः कृता पितुरपेक्षया ॥१५॥
तां तथा रुदतीं रामोऽरुदन् वचनमब्रवीत् ।
जीवन्त्या हि स्त्रिया भर्ता दैवतं प्रभुरेव च ॥१६॥

अर्थ—हे राम ! यदि पिता की आज्ञा से तैने वनगमन का निश्चय किया है तो मुझे भी जङ्गली हरिणी की भांति वन को लेचल, इस प्रकार रोती हुई कौसल्या से धीर राम यह वचन बोला कि भर्त्ता स्त्री के जीते जी देवता और प्रभु है ॥

भवत्या मम चैवाद्य राजा प्रभवति प्रभुः ।
न ह्यनाथा वयं राज्ञा लोकनाथेनधीमता ॥१७॥
भरतश्चापि धर्मात्मा सर्वभूत प्रियंवदः ।
भवतीमनुवर्तेत स हि धर्मरतः सदा ॥ १८ ॥
यथा मयि तु निष्क्रान्ते पुत्रशोकेन पार्थिवः ।
श्रमं नावाप्नुयात्किञ्चिदप्रमत्ता तथा कुरु ॥ १९ ॥

अर्थ–राजा मेरा और तुम्हारा आज स्वामी है, उस लोकनाथ बुद्धिमान् राजा के होते हुए हम सनाथ हैं, धर्मात्मा भरत भी जो सब से प्रिय बोलने वाला है वह सदा आपके अनुसार ही चलेगा, क्योंकि वह सदा धर्म में रत है, मेरे चले जाने पर पुत्रशोक से जिसप्रकार राजा को कष्ट न हो वैसे ही तुम्हें सावधान होकर करना चाहिये ॥

दारुणश्चाप्ययं शोको यथैनं न विनाशयेत् ।
राज्ञो वृद्धस्य सततं हितं चर समाहिता ॥ २० ॥
व्रतोपवासनिरता या नारी परमोत्तमा ।
भर्तारं नानुवर्तेत सा च पापगतिर्भवेत् ॥ २१ ॥

अर्थ–राजा को यह दारुण शोक जिसप्रकार नाश न करे उसी प्रकार आप एकचित्त होकर वृद्ध राजा का हित चिन्तन करें, जो परमोत्तम नारी व्रत उपवास में लगी हुई पति के अनुसार नहीं चलती वह पापगति वाली होती है ॥

भर्तुः शुश्रूषया नारी लभतेस्वर्गमुत्तमम् ।
अपि या निर्नमस्कारा निवृत्ता देवपूजनात् ॥२२॥
शुश्रूषामेव कुर्वीत भर्तुः प्रियहिते रता ।
एष धर्मः स्त्रिया नित्यो वेदे लोके श्रुतः स्मृतः॥२३॥

अर्थ–पति की सेवा करने ही से नारी उत्तम स्वर्ग को प्राप्त होती है चाहे विद्वान्, गुरु आदिकों को नमस्कार तथा पूजन करे वा न करे, भर्ता के प्रियहित में रत होकर उसकी सेवा ही करे यह स्त्रियों का धर्म वेद और स्मृति में वर्णन किया है ॥

अग्निकार्येषु च सदा सुमनोभिश्च देवताः ।
पूज्यास्ते मत्कृते देवि ब्राह्मणाश्चैव सुव्रताः ॥२४॥

अर्थ—हे देवि ! मेरे निमित्त सदा यज्ञादिकर्म करना और चित्त की प्रसन्नताजनक वाक्यों से विद्वान् तथा अच्छे व्रतों वाले ब्राह्मणों का पूजन करना ॥

एवं कालं प्रतीक्षस्व ममागमनकांक्षिणी ।
नियता नियताहाराभर्तृशुश्रूषणे रता ॥ २५ ॥
प्राप्स्यसे परमं कामं मयि पर्यागते सति ।
यदि धर्मभृतां श्रेष्ठो धारयिष्यसि जीवितम् ॥२६॥

अर्थ—इस प्रकार नियमों वाली, नियत आहार वाली, भर्ता की सेवा में रत हुई मेरे आगमन समय की प्रतीक्षा करना, यदि धर्मधारियों में श्रेष्ठ राजा मेरे आगमन तक जीवन धारण किये रहेंगे तो मेरे लौटकर आने पर तू अपनी परमकामना को प्राप्त होगी ॥

एवमुक्त्वातुरामेणबाष्पपर्याकुलेक्षणा ।
कौसल्यापुत्रशोकार्ता रामंवचनमब्रवीत् ॥ २७ ॥

अर्थ—राम के उक्त बचन सुनकर नेत्रों में आंसु भरे हुए पुत्रशोक से दुःखित कौसल्या फिर बोली कि :—

गमने सुकृतां बुद्धिं न ते शक्नोमि पुत्रक ।
विनिवर्तयितुं वीर नूनं कालो दुरत्ययः ॥ २८ ॥

गच्छपुत्रत्वमेकाग्रो भद्रं तेऽस्तु सदाविभो ।
पुनस्त्वयिनिवृत्ते तु भविष्यामिगतक्लमा ॥ २९ ॥

अर्थ–हे पुत्र ! तुमने जो अपनी सुकृत बुद्धि से वन गमन का विचार किया है उसके मिटाने में मैं समर्थ नहीं, क्योंकि काल बड़ा बलवान् होने से उसका निवृत्त होना कठिन है वह इष्टों का संयोग वियोग सदा करता है, हे पुत्र ! अब तुम एकाग्रचित्त हो वन को जाओ, हे भद्र ! तुम्हारा सदा कल्याण हो, जब तुम फिर लौटकर आओगे तो मेरे क्लेश जाते रहेंगे ॥

प्रत्यागते महाभागे कृतार्थे चरितव्रते ।
पितुरानृण्यतां प्राप्ते स्वपिष्येपरमंसुखम् ॥ ३० ॥

अर्थ–हे महाभाग ! अब तू अपने व्रत को पूर्ण कर और पिता से अनृणी होकर कृतार्थ हो, तेरे लौटने पर मैं सुख की नींद सोउंगी ॥

गच्छेदानीं महावाहो क्षेमेण पुनरागतः ।
नन्दयिष्यसि मां पुत्र साम्नाश्लक्ष्णेन चारुणा ॥३१॥

अर्थ–हे महावाहो ! कुशलपूर्वक फिर लौट आने पर हे पुत्र ! मुझको मीठे सुन्दर वचनों से आनन्दित करना ॥

अपीदानीं सकालःस्याद्वनात्प्रत्यागतं पुनः ।
यत्त्वां पुत्रक पश्येयं जटावल्कलधारिणम् ॥ ३२ ॥

अर्थ–हे पुत्र ! अब वह समय आवे जबकि वन से लौटकर आये हुए तुझे जटावल्कल धारण किये देखूं ॥

इति विंशः सर्गः

अथ एकविंशः सर्गः

सा विनीयतमायासमुपस्पृश्यजलंशुचि ।
चकार माता रामस्य मंगलानि मनास्विनी ॥ १ ॥
न शक्यसे वारयितुं गच्छेदानीं रघूत्तम ।
शीघ्रं च विनिवर्तस्व वर्तस्व च सतांक्रमे ॥ २ ॥

अर्थ–इसके अनन्तर वह मननशील माता कौसल्या सब खेद हटाकर पवित्र जल से आचमन करके राम के लिये स्वस्तिवाचनादि मङ्गल करने लगी, हे रघुवर! मैं तुझे रोकने में समर्थ नहीं हूं अब तू जा, सत्पुरुषों के मार्ग पर चलना और फिर शीघ्र ही लौटकर आना ॥

यं पालयसि धर्मं त्वं प्रीत्या च नियमेन च ।
स वै राघवशार्दूल धर्मस्त्वामभिरक्षतु ॥ ३ ॥

अर्थ–फिर बोली कि हे पुत्र! तू प्रीति और नियम से जिस धर्म का पालन करता है, हे राघव शार्दूल! वह धर्म तेरी रक्षा करे ॥

यानि दत्तानि तेऽस्त्राणि विश्वामित्रेण धीमता ।
तानित्वामभिरक्षन्तुगुणैः समुदितं सदा ॥ ४ ॥

अर्थ–हे पुत्र! बुद्धिमान् विश्वामित्र ने जो अस्त्र तुझे दिये हैं वह सद्गुणों से युक्त तेरी सदा रक्षा करें ॥

पितृशुश्रूषया पुत्र मातृशुश्रूषया तथा ।
सत्येन च महावाहो चिरंजीवाभिरक्षितः ॥ ५ ॥

अर्थ–हे पुत्र ! पिता तथा माता कैकेयी की सेवा और सत्यपालन से रक्षा किया हुआ तू चिरंजीव=चिरकाल तक जीवन धारण कर ॥

लोकपालाश्च ते सर्वे वासवप्रमुखास्तथा ।
ऋतवः षट् च ते सर्वे मासाः सम्वत्सरः क्षपाः ॥६॥
दिनानि च मुहूर्ताश्च स्वस्ति कुर्वन्तु ते सदा ।
श्रुतिः स्मृतिश्च धर्मश्च पातु त्वां पुत्र सर्वतः ॥७॥

अर्थ–सब लोकपाल, षट् ऋतु, सब मास, वर्ष, रात, दिन और मुहूर्त यह सब सदा तेरा कल्याण करें और हे पुत्र ! वेद, स्मृति, तथा धर्म यह सब ओर से तेरी रक्षा करें ॥

आगमास्ते शिवाः सन्तु सिध्यन्तु च पराक्रमाः ।
सर्वसम्पत्तयो राम स्वस्तिमान् गच्छ पुत्रक ॥८॥

अर्थ–हे पुत्र राम ! मार्ग तेरे लिये कल्याणकारी हों, तेरे पराक्रम सिद्ध हों, तुझे सब सम्पत्तियें मिलें,हे पुत्र तू कल्याणयुक्त हुआ बन को गमन कर ॥

ज्वलनं समुपादाय ब्राह्मणेन महात्मनः ।
हावयामास विधिना राममङ्गलकारणात् ॥ ९ ॥

अर्थ–फिर अग्नि प्रज्वलित कर माता कौसल्या ने राम के मङ्गलार्थ महात्मा ब्राह्मण से विधिपूर्वक हवन कराया ॥

उपाध्यायः सविधिनाहुत्वाशान्तिमनामयम् ।
हुतहव्यावशेषेण बाह्यबलिमकल्पयत् ॥ १० ॥

अर्थ—उपाध्याय ने विधिवत् हवन करके बचे हुए शेष शाकल्प द्वारा हवन स्थान से बाहर बलिकर्म किया ॥

मधुदध्यक्षतघृतैः स्वस्तिवाच्यं द्विजांस्ततः।
वाचयामास रामस्य वने स्वस्त्ययनक्रियाम्॥११॥

अर्थ—और स्वस्तिवाचन के उद्देश्य से शहद, दधि, घृत तथा अक्षत द्वारा वन में कल्याण रहने के लिये ब्राह्मणों से राम का स्वस्तिवाचन कराया ॥

ततस्तस्मै द्विजेन्द्राय राममाता यशस्विनी।
दक्षिणां प्रददौ काम्यां राघवं चेदमब्रवीत् ॥१२॥

अर्थ—इसके अनन्तर यशस्विनी राममाता ने यज्ञ कराने वाले ब्राह्मण को यथाकाम दक्षिणा दी फिर राम को आशीर्वाद देती हुई बोली कि :—

ऋषयःसागराद्वीपावेदालोकादिशश्चताः।
मंगलानि महाबाहोदिशन्तुशुभमंगलम् ॥ १३ ॥

अर्थ—हे महाबाहो ! ऋषि, समुद्र, द्वीप, वेद, लोक और दिशा यह सब तेरे लिये मंगलप्रद हों ॥

औषधीं च सुसिद्धार्थां विशल्यकरणीं शुभाम्।
चकार रक्षां कौसल्यामन्त्रैरभिजजाप च ॥ १४ ॥

अर्थ—और उत्तमगुणकारक औषध जो तीर आदि के घाव के लिये बड़ी शुभ थी वह राम की रक्षार्थ माता ने उनको दी तथा मंत्रों के जपपूर्वक राम का कल्याण मनाया ॥

आनम्यमूर्ध्निचाघ्रायपरिष्वज्ययशस्विनी।
अवदत्पुत्रसिद्धार्थो गच्छ राम यथासुखम् ॥१५॥

अर्थ—फिर वह यशस्विनी माता राम को झुकाकर सिरपर चूम कण्ठ से लगा बोली पुत्र राम तेरे सब प्रयोजन सफल हों, अब तू सुखपूर्वक बन गमन कर ॥

मंगलैरुपसम्पन्नोवनवासादिहागतः ।
वध्वाश्चममनित्यंत्वंकामान्संवर्धयाहिभोः ॥ १६ ॥

अर्थ—हे पुत्र ! मंगलों से युक्त हुआ अब तू जा और वनवास से फिर यहां आकर मेरी वधू की कामनाओं को वर्धित कर ॥

इतीवचाश्रुप्रतिपूर्णलोचनासमाप्य च स्वस्त्य-
यनं यथाविधि । प्रदक्षिणं चापि चकारराघवं-
पुनः पुनश्चापिनिरीक्ष्यसस्वजे ॥ १७ ॥

अर्थ—इस प्रकार आंसुओं से भरे हुए नेत्रों वाली माता ने यथाविधि स्वस्त्ययन समाप्त करके राम के कल्याणार्थ उनकी प्रदक्षिणा की और उनको पुनः २ कण्ठ से लगाया ॥

तया हि देव्या च कृतप्रदक्षिणोनिपीड्यमा-
तुश्चरणौ पुनः पुनः । जगाम सीतानिलयं
महाशयाः स राघवः प्रज्वलितःस्वयाश्रिया ॥१८॥

अर्थ—उस देवी से प्रदक्षिणा किये हुए राम ने माता के चरण पकड़ पुनः२ नमस्कार करके महायशस्वी अपनी शोभा से देदीप्यमान हुआ सीता के घर गया ॥

इति एकविंशः सर्गः

अथ द्वाविंशः सर्गः

वैदेही चापि तत्सर्वं न शुश्राव तपस्विनी ।
तदेव हृदि तस्याश्च यौवराज्याभिषेचनम् ॥ १ ॥
देवकार्य्यं स्म सा कृत्वा कृतज्ञा हृष्टचेतना ।
अभिज्ञा राजधर्माणां राजपुत्री प्रतीक्षती ॥ २ ॥

अर्थ–सीता ने अभी वनविषयक सब वृत्त न सुनने के कारण उसके हृदय में पति राम का अभिषेक ही बसा हुआ था, वह सब देवकार्य्य=सन्ध्या अग्निहोत्रादि कर्म करके कृतज्ञ=परमात्मा को धन्यवाद देती हुई प्रसन्नचित्त हो राजधर्मों के जानने वाली राजपुत्री सीता अपने स्वामी की प्रतीक्षा कररही थी कि :—

प्रविवेशाथ रामस्तु स्ववेश्म सुविभूषितम् ।
प्रहृष्टजनसम्पूर्णं ह्रिया किंचिदवाङ्मुखः ॥ ३ ॥
अथ सीता समुत्पत्य वेपमाना च तं पतिम् ।
अपश्यच्छोकसंतप्तं चिन्ताव्याकुलितेन्द्रियम् ॥४॥

अर्थ–राम उस सुन्दर देदीप्यमान प्रसन्न जनों से भरे हुए महल में लज्जा से कुछ नीचा मुख किये भीतर प्रविष्ट हुए तब सीता शीघ्र ही उठकर राजचिन्ह न देख कांपती हुई पति के समीप आई और उनको शोक से संतप्त तथा चिन्ता से व्याकुल इन्द्रियों वाला देखा ॥

तां दृष्ट्वा स हि धर्मात्मा न शशाक मनोगतम् ।
तं शोकं राघवः सोढुं ततो विवृततां गतः ॥ ५ ॥

विवर्णवदनं दृष्ट्वा तं प्रस्विन्नममर्षणम् ।
आह दुःखाभिसंतप्ताकिमिदानीमिदं प्रभो ॥ ६ ॥

अर्थ–धर्मात्मा राम सीता को देखकर अपने मनोगत शोक को न सहसके और वह प्रगट होगया, सीता ने उनका कुंभिलाया तथा पसीना आया हुआ मुख और उदास मन देखकर दुःख से संतप्त हुई बोली कि हे प्रभो ! आपकी ऐसी अवस्था क्यों है॥

अद्य बार्हस्पतः श्रीमान्युक्त पुष्येण राघव ।
प्रोच्यते ब्राह्मणैः प्राज्ञैः केन त्वमसि दुर्मनाः॥७॥
न ते शतशलाकेन जलफेननिभेन च ।
आवृतं वदनंवल्गुच्छत्रेणाभिविराजते ॥ ८ ॥
व्यजनाभ्यां च मुख्याभ्यां शतपत्रनिभेक्षणम् ।
चन्द्रहंस प्रकाशाभ्यां वीज्यते न तवाननम् ॥९॥

अर्थ–आज बृहस्पति देवता वाला पुष्यनक्षत्र बुद्धिमान् ब्राह्मणों ने आपके अभिषेकार्थ नियत किया है फिर आज आपके दुर्मन होने का क्या कारण है, आज आपका सुन्दर मुख बहुत शलाकों वाले, जल की झाग के तुल्य श्वेत छत्र से नहीं ढका हुआ और न चन्द्र तथा हंस की न्याईं दो मुख्य श्वेत चवर आपके मुखकमल पर झूल रहे हैं ॥

वाग्मिनोवन्दिनश्चापि प्रहृष्टास्त्वांनरर्षभ ।
स्तुवन्तो नाद्य दृश्यन्ते मङ्गलैः सूतमागधाः॥१०॥
न त्वां प्रकृतयः सर्वाःश्रेणीमुख्याश्चभूषिताः ।
अनुव्रजितुमिच्छान्तिपौरजानपदास्तथा ॥ ११ ॥

चतुर्भिर्वेगसम्पन्नैर्हयैः काञ्चनभूषणैः ।
मुख्यःपुष्परथोयुक्तःकिंनगच्छतितेऽग्रतः ॥१२॥

अर्थ—हे नरश्रेष्ठ ! सुन्दर वाणी वाले बन्दी, सूत तथा मागध प्रसन्न हो मङ्गलों से तुम्हारी स्तुति करते हुए दृष्टिगत नहीं होते, सब राजकर्मचारी, श्रेणियों के मुखिया=सेनापति, पुर और देश के लोग सजधजकर आपके पीछे नहीं चले रहे हैं, और न सुवर्ण से भूषित बड़े वेगवाले चार घोड़ों से युक्त मुख्य पुष्परथ तुम्हारे आगे चल रहा है ॥

न हस्ती चाग्रतः श्रीमान्सर्वलक्षणपूजितः ।
प्रयाणे लक्ष्यते वीर कृष्णमेघगिरिप्रभः ॥ १३ ॥
न च काञ्चनचित्रं ते पश्यामि प्रियदर्शन ।
भद्रासनं पुरस्कृत्य यान्तं वीर पुरःसरम् ॥ १४ ॥
अभिषेको यदा सज्जः किमिदानीमिदं तव ।
अपूर्वो मुखवर्णश्च न प्रहर्षश्च लक्ष्यते ॥ १५ ॥

अर्थ—हे वीर ! शुभ लक्षणों वाला काले मेघ तथा पर्वत के तुल्य श्रीमान् हाथी प्रयाणकाल में आपके आगे क्यों नहीं चल रहा, हे प्रियदर्शन ! वीरपुरुषों से आदर किया हुआ सुवर्ण से चित्रित आपका भद्रासन उठाये हुए चलता किसी पुरुष को नहीं देखती, जब अभिषेक तैयार था तो यह आपके मुख का वर्ण अपूर्व क्यों है ? हर्ष को प्राप्त क्यों नहीं प्रतीत होता ॥

इतीव विलपन्तीं तां प्रोवाच रघुनन्दनः ।
सीते तत्रभवांस्तातः प्रव्राजयति मां वनम् ॥ १६॥

अर्थ—इस प्रकार विलाप करती हुई सीता से राम ने कहा कि हे सीते ! पूज्यपिता आज मुझको वन भेजते हैं ॥

कुलेमहति संभूते धर्मज्ञे धर्मचारिणि ।
शृणु जानकि येनेदं क्रमेणाद्यागतं मम ॥ १७ ॥

अर्थ—हे महाकुलीन, धर्मज्ञ, धर्मपथपर चलने वाली जानकि ! जिस कारण मुझको वनवास होता है वह क्रमपूर्वक सुन :—

भाष्य—राम ने सीता को वही सब पूर्ववृत्त सुनाया कि सत्यप्रतिज्ञ हमारे पिता महाराज दशरथ ने आगे कभी हमारी माता कैकेयी को दो वरदान दिये थे, सो अब जब राजा मुझको राज्य देने लगे तो कैकेयी ने धर्मज्ञ राजा को धर्मपाश में बांध अपने दोनों वर मांगे, एक वर से मुझको चौदहवर्ष वनवास और दूसरे से भरत को राज्याभिषेक मांगा, इत्यादि, सो मैं वनवास की सब तैयारी कर चुका हूं, अब केवल मिलने और तुम्हें कुछ शिक्षा देने आया हूं कि जब कभी भरत तुम्हारे समीप प्रणाम करने आया करें तो उनके सन्मुख मेरी प्रशंसा कभी मत करना, क्योंकि :—

ऋद्धियुक्ताहिपुरुषानसहन्तेपरस्तवम् ।
तस्मान्नतेगुणाः कत्थ्याभरतस्याग्रतो मम ॥ १८ ॥

अर्थ—सम्पत्तिसम्पन्न पुरुष दूसरे का स्तवन=बड़ाई नहीं सहारसकते, इस कारण भरत के आगे मेरे शूरवीरतादि गुण कभी वर्णन न करना ॥

अहं ते नानुवक्तव्यो विशेषेण कदाचन ।
अनुकूलतयाशक्यंसमीपे तस्य वर्तितुम् ॥ १९ ॥

तस्मै दत्तं नृपतिना यौवराज्यं सनातनम् ।
सप्रसाद्यस्त्वयासीते नृपतिश्चविशेषतः ॥ २० ॥

अर्थ—और यह भी आशा न करना कि भरत मुझको सब से विशेष मानें, क्योंकि सब प्रकार से अनुकूलता समीपवर्ति की ही होती है अर्थात् राजा की रानी का ही विशेष मान होता है, सो हे सीते ! तुम भरत को विशेषतः प्रसन्न रखना, क्योंकि राजा ने सनातन मर्यादानुसार उन्हीं को युवराज बनाया है ॥

अहं चापि प्रतिज्ञां तां गुरोः समनुपालयन् ।
वनमद्यैवयास्यामि स्थिरी भव मनस्विनि ॥ २१ ॥

अर्थ—मैं पिता की प्रतिज्ञापालनार्थ आज ही वन को जाता हूं और हे मननशील सीते ! तुम यहीं गृह में स्थित रहो ॥

यातेचमयिकल्याणिवनंमुनिनिषेवितम् ।
व्रतोपवासपरया भवितव्यं त्वयानघे ॥ २२ ॥

अर्थ—हे कल्याणि ! मैं मुनियों का वेशधारण कर वन जाऊंगा सो हे निष्पापे ! तुम भी यहां व्रत उपवास परायण होकर रहना ॥

कल्यमुत्थायदेवानांकृत्वापूज्यं यथाविधि ।
वन्दितव्यो दशरथः पितामम जनेश्वरः ॥ २३ ॥
माता च मम कौसल्या वृद्धासन्तापकर्शिता ।
धर्ममेवाग्रतः कृत्वा त्वत्तः संमानमर्हति ॥ २४ ॥

अर्थ-प्रातःकाल ब्रह्ममुहूर्त्त में उठ नित्यकर्म से निवृत्त हो विद्वानों का यथाविधि सत्कार करना और जनेश्वर=सब मनुष्यों के राजा मेरे पिता तथा सन्ताप से दुर्बल हुई मेरी वृद्ध माता कौसल्या का सन्मान धर्म समझकर सब से प्रथम करना ॥

वन्दितव्याश्च ते नित्यं याः शेषा मम मातरः ।
स्नेहप्रणयसंभोगैः समा हि ममभातरः ॥ २५ ॥
भ्रातृपुत्रसमौचापिद्रष्टव्यौ च विशेषतः ।
त्वया भरतशत्रुघ्नौ प्राणैः प्रियतरौ मम ॥ २६ ॥

अर्थ-इनके अनन्तर कैकेयी तथा सुमित्रा मेरी शेष माताओं का सन्मान प्रीतिपूर्वक नित्य करना, क्योंकि सब मातायें मेरे लिये समान हैं और भरत, शत्रुघ्न को भ्राता तथा पुत्र के समान विशेष रूप से देखना, क्योंकि यह दोनों भाई मुझे प्राणसम प्रिय हैं ॥

विप्रियं च न कर्तव्यं भरतश्च कदाचन ।
सहि राजा च वैदेहि देशस्य च कुलस्य च ॥२७॥
आरोधिता हि शीलेन प्रयत्नैश्चापि सेविताः ।
राजानःसंप्रसीदन्तिप्रकुप्यन्तिविपर्य्यये ॥२८॥

अर्थ-भरत के साथ कभी विगाड़ न करना, क्योंकि वह देश तथा कुल दोनों के राजा हैं, शीलपूर्वक प्रयत्न से उनका सत्कार करना, राजा लोग सन्मान से ही प्रसन्न रहते और विपरीत होने से अप्रसन्न होजाते हैं ॥

औरसानपिपुत्रान्हित्यजन्त्यहितकारिणः ।
समर्थान्संप्रगृह्णन्ति जनानपि नराधिपाः ॥ २९ ॥

अर्थ—राजा लोग अहित करने वाले अपने औरस पुत्र को भी त्याग देते और सम्बन्धी न होने पर भी समर्थ जनों को ग्रहण करते हैं ॥

सात्वं वसेह कल्याणि राज्ञः समनुवर्तिनी ।
भरतस्यरताधर्मे सत्यव्रतपरायणा ॥ ३० ॥

अर्थ—इसलिये हे कल्याणि ! तथा राजा के अनुकूल वर्तने वाली तू धर्म वा सत्यपरायण और भरत के अनुकूल रहकर यहां वस ॥

अहं गमिष्यामि महावनं प्रिये त्वया हि वस्तव्य-मिहैवभामिनि । यथाऽव्यलीकं कुरुषे न कस्य चित्तथा त्वयाकार्य्यमिदं वचो मम ॥ ३१ ॥

अर्थ—हे प्रिय ! मैं महावन को जाता हूं और तुम्हारा यहां ही रहना उचित है, हे भामिनि ! मैंने जो तुम्हें शिक्षा दी है उसका सदा प्रतिपालन करना, मेरा कोई वचन व्यर्थ न जाय ॥

भाष्य—ऊपर २३ वें श्लोक में जो राम ने सीता को देवताओं की पूजा बतलाई है वहां किसी अलौकिक देवता तथा पाषाणादि पूजन से तात्पर्य्य नहीं किन्तु जीते जागते माता पिता आदि की सेवा का तात्पर्य्य है, जैसाकि तैत्ति० शिक्षावल्ली श्लो० २२ में वर्णन किया है कि "**देवपितृ-कार्य्याभ्यां न प्रमदितव्यं, मातृदेवोभव, पितृदेवोभव,**

आचार्य्यदेवोभव, अतिथिदेवोभव "=माता, पिता, आचार्य्य और अतिथि यह देवता हैं, इनकी सेवा करने में कभी प्रमाद मत कर, क्योंकि इनकी सेवा करने से पुरुष पवित्र होता है, सो यही देवपूजन वहां राम ने सीता को बतलाया है जिसका अनुष्ठान प्रत्येक स्त्री पुरुष को परमकर्तव्य है ॥

इति द्वाविंशः सर्गः

अथ त्रयोविंशः सर्गः

एवमुक्त्वा तु वैदेही प्रियार्हाप्रियवादिनी ।
प्रणयादेव संक्रुद्धाभर्तारमिदमब्रवीत् ॥ १ ॥
किमिदं भाषसे राम वाक्यं लघुतयाध्रुवम् ।
त्वयायदपहास्यं मे श्रुत्वानरवरात्मज ॥ २ ॥

अर्थ-प्रिय बोलने वाली तथा अपने भर्ता की प्यारी वैदेही से जब राम ने उक्त प्रकार कहा तो प्रेम से क्रुद्ध हुई अपने भर्त्ता राम से बोली कि हे राम! क्या यह निश्चित लघु=हलका वाक्य कहते हो, हे श्रेष्ठ राजा के पुत्र! ऐसा वाक्य सुनकर मुझको हंसी आती है ॥

वीराणां राजपुत्राणां शस्त्रास्त्र-विदुषां नृप ।
अनर्हमयशस्यं च न श्रोतव्यंत्वयेरितम् ॥ ३ ॥

आर्य्यपुत्र पितामाताभ्रातापुत्रस्तथास्नुषा ।
स्वानि पुण्यानि भुंजानाःस्वं स्वं भाग्यमुपासते॥४॥

अर्थ—क्योंकि शस्त्र तथा अस्त्रों में निपुण, वीर राजपुत्रों के लिये राजा को ऐसे वाक्य कहने योग्य नहीं जिनके सुनने से अयश होता है, हे आर्य्यपुत्र! पिता, माता, भाई, पुत्र और पुत्रवधु अपने २ पुण्यों को भोगते हुए अपने २ भाग्य का सेवन करते हैं॥

भर्तुर्भाग्यंतुनार्येका प्राप्नोति पुरुषर्षभ ।
अतश्चैवाहमादिष्टावनेवस्तव्यमित्यपि ॥ ५ ॥
न पिता नात्मजोवात्मा न माता न सखीजनः ।
इहप्रेत्य च नारीणां पतिरेको गतिः सदा ॥ ६ ॥

अर्थ—परन्तु हे पुरुष श्रेष्ठ! ऐसी केवल एक भार्या=नारी ही है जो भर्त्ता के भाग्य को प्राप्त होती है, इसलिये वनवास की आज्ञा मुझे भी दीगई समझो, इस लोक और परलोक में स्त्री का न पिता, न पुत्र, न माता न सखीजन और न अपना आप है, इसका एकमात्र पति ही सदा कल्याण का देने वाला है॥

यदि त्वं प्रस्थितो दुर्गं वनमद्यैव राघव ।
अग्रतस्ते गमिष्यामि मृद्नन्ती कुशकण्टकान्॥७॥
प्रासादाग्रे विमानैर्वा वैहायसगतेन वा ।
सर्वावस्थागताभर्तुः पादच्छायाविशिष्यते ॥ ८ ॥

अर्थ—हे राम! यदि आप अभी दुर्गम वन को प्रस्थान

करते हैं तो मैं आपके आगे २ कुशा और कांटों को मर्दन करती हुई चलुंगी, महल की चोटी पर अथवा आकाशमार्ग द्वारा विमानों पर चढ़कर विहार करने की अपेक्षा सब अवस्थाओं में भर्त्ता की पादछाया ही स्त्री के लिये उत्तम होती है ॥

अनुशिष्टास्मि मात्रा च पिता च विविधाश्रयम् ।
नास्मि संप्रति वक्तव्या वर्तितव्यं यथा मया ॥९॥
अहं दुर्गं गमिष्यामि वनं पुरुषवर्जितम् ।
नानामृगगणाकीर्णं शार्दूलवृकसेवितम् ॥ १० ॥

अर्थ—मुझको माता पिता ने विविध सम्बन्धों के विषय में प्रथम ही शिक्षा दीहुई है सो जैसा मैंने वर्तना है उस विषय में अब मुझे कहने की आवश्यकता नहीं, मैं मनुष्यों से वर्जित= निर्जन वन में नाना मृग गणों से भरे हुए तथा चीते और भेड़ियों से सेवित दुर्गम वन में जाउंगी ॥

सुखं वने निवत्स्यामि यथैव भवनं पितुः ।
अचिन्तयन्ती त्रींल्लोकांश्चिन्तयन्तीपतिव्रतम्॥११॥
शुश्रूषमाणा ते नित्यं नियता ब्रह्मचारिणी ।
सहरंस्ये त्वया वीर वनेषु मधुगन्धिषु ॥ १२ ॥

अर्थ—पिता के घर की भांति वन में बड़े आनन्द से रहुंगी और तीनो लोकों की चिन्ता न करके केवल पतिव्रतधर्म का पालन करुंगी, हे वीर ! सदा आपकी सेवा करती हुई नियमों वाली ब्रह्मचारिणी होकर मधु से सुगन्धित वनों में तुम्हारे साथ रमण करुंगी ॥

त्वं हि कर्तुं वने शक्तो राम संपरिपालनम् ।
अन्यस्यापि जनस्येह किं पुनर्मम मानद ॥ १३ ॥
साहं त्वया गमिष्यामि वनमद्य न संशयः ।
नाहं शक्या महाभाग निवर्तयितुमुद्यता ॥ १४ ॥

अर्थ–हे राम ! आप वन में दूसरे लोगों का भी पालन करने में समर्थ हैं तो क्या हे मान देने वाले ! आप मेरा ही पालन न कर सकेंगे, मैं निःसन्देह आज आपके साथ वन को जाउंगी, हे महाभाग ! वन को तैयार हुई मुझको कोई लौटा नहीं सक्ता ॥

फलमूलाशना नित्यं भविष्यामि न संशयः ।
न ते दुःखं करिष्यामि निवसन्ती त्वया सदा॥१५॥
अग्रतस्ते गमिष्यामि भोक्ष्ये भुक्तवति त्वयि॥१६॥

अर्थ–मैं निःसन्देह नित्य फल मूल खाकर निर्वाह करुंगी, आपके साथ रहकर कभी दुःख नहीं दूंगी, आपके आगे चलुंगी और आपको खिलाकर फिर मैं खाउंगी ॥

इच्छामि सरितः शैलान्पल्वलानिसरांसि च ।
द्रष्टुं सर्वत्रनिर्भीतात्वयानाथेनधीमता ॥ १७ ॥
हंसकारंडवाकीर्णाःपद्मिनीःसाधुपुष्पिताः ।
इच्छेयं सुखिनीद्रष्टुंत्वयावीरेण संगता ॥ १८ ॥

अर्थ–आप बुद्धिमान स्वामी के साथ निर्भय होकर सर्वत्र नदियें, पर्वत,तालाव और वनों को देखना चाहती हूं,हे वीर ! हंस

और बतखों से युक्त सुन्दर फूले हुए कमलों वाली नदियों को आपके साथ मिलकर सुख से देखुंगी ॥

अभिषेकं करिष्यामि तासु नित्यमनुव्रता ।
सहत्वया विशालाक्ष रंस्ये परमनन्दिनी ॥ १९ ॥
स्वर्गेऽपि च विना वासो भविता यदि राघव ।
त्वया विना नरव्याघ्र नाहं तदपि रोचये ॥ २० ॥

अर्थ—और उन नदियों में सदा व्रतयुक्त होकर स्नान कर हे विशालनेत्र ! परम आनन्द से आपके साथ विचरुंगी, हे राघव ! यदि आपके विना स्वर्ग में भी वास हो तो वह भी मुझे रुचिकर नहीं ॥

अहं गमिष्यामिवनंसुदुर्गमंमृगायुतंवानर-
वारणैश्च । वने निवत्स्यामियथा पितु-
र्गृहे तवैवपादावुपगृह्यसंमता ॥ २१ ॥

अर्थ—मैं मृग, वानर तथा हाथियों से युक्त बड़े दुर्गम वन में जाउंगी और आपके चरणों में संयम से रहती हुई वन में इसी प्रकार रहुंगी जैसे अपने पिता के घर रहती थी ॥

अनन्यभावामनुरक्तचेतसंत्वयावियुक्तांमरणा-
यनिश्चिताम् । नयस्व मां साधु कुरुष्व या-
चनां नातो मया ते गुरुताभविष्यति ॥ २२ ॥

अर्थ—मेरी भावना आपको छोड़ अन्यत्र कहीं नहीं, और मेरा चित्त आपमें अनुरक्त है आपसे वियुक्त होकर मैं निश्चित

मरजाउंगी, सो हे भगवन् ! आप मुझको अवश्य साथ लेचलें यह मेरी विनयपूर्वक प्रार्थना है, मेरा आपको कोई बोझ नहीं होगा ॥

इति त्रयोविंशः सर्गः

अथ चतुर्विंशः सर्गः

स एवं ब्रुवतीं सीतां धर्मज्ञांधर्मवत्सलः ।
ननेतुं कुरुते बुद्धिं वने दुःखानि चिन्तयन् ॥ १ ॥

अर्थ–उक्त प्रकार कथन करती हुई धर्मज्ञ सीता को धर्मात्मा राम वन में न लेजाने की इच्छा से वहां के दुःखों का चिन्तन करने लगे ॥

सान्त्वयित्वा ततस्तां तु बाष्पदूषितलोचनाम् ।
निवर्तनार्थे धर्मात्मा वाक्यमेतदुवाच ह ॥ २ ॥

अर्थ–आंसुओं से भरे हुए नेत्रों वाली सीता को आश्वासन देकर उसको वन न लेजाने की इच्छा से धर्मात्मा राम यह वाक्य बोले कि :—

सीते महाकुलीनासि धर्मे च निरता सदा ।
इहाचरस्व धर्मं त्वं यथा मे मनसः सुखम् ॥ ३ ॥
सीते यथा त्वां वक्ष्यामि तथा कार्य्यंत्वयाऽबले ।
वने दोषाहि बहवो वसतस्तान्निबोध मे ॥ ४ ॥

अर्थ–हे सीते ! तू महाकुलीन और धर्म में रत है, इसलिये

यहां ही धर्म का आचरणकर, जैसे मेरे मन को सुख हो, हे सीते ! जैसे मैं कहता हूं वही कार्य्य तुम्हें करना चाहिये, वन जाने में बहुत दोष हैं, इसलिये तू मेरा कहना मानकर यहीं बस ॥

सीते विमुच्यतामेषा वनवासकृतामतिः ।
बहुदोषं हि कान्तारं वनमित्यभिधीयते ॥ ५ ॥
हितबुद्ध्या खलुवचोमयैतदभिधीयते ।
सदा सुखं न जानामि दुःखमेव सदा वनम् ॥६॥

अर्थ–हे सीते ! वनवास का ध्यान छोड़, गहन वन बड़े दोषों वाला कहाजाता है, मैं तुम्हें हितबुद्धि से कहता हूं वहां सदा सुख नहीं होता वन में सदा ही दुःख है ॥

गिरिनिर्झरसंभूता गिरिनिर्दरिवासिनाम् ।
सिंहानां निनदा दुःखं श्रोतुं दुःखमतो वनम् ॥७॥
सग्राहाः सरितश्चैव पङ्कवत्यस्तुदुस्तराः ।
मत्तैरपि गजैर्नित्यमतो दुःखतरं वनम् ॥ ८ ॥

अर्थ–पर्वतों की कन्दराओं में रहने वाले सिंहों की गर्ज पर्वतों के झरनों से मिलकर बढ़ी हुई सुन बड़ा दुःख होता है, इसलिये वन दुःखरूप है, तेंदुओं से भरी हुई दल २ वाली नदियें बड़ी भयानक होती हैं जो मत्त हाथियों से भी दुस्तर हैं, इसलिये वन को दुःखतर जानना चाहिये ॥

लताकण्टकसंकीर्णाः कृकवाकूपनादिताः ।
निरपाश्च सुदुःखाश्चमार्गादुःखमतोवनम् ॥ ९ ॥

सुप्यते पर्णशय्यासु स्वयंभग्नासुभूतले ।
रात्रिषुश्रमखिन्नेन तस्माद्दुःखमतो वनम् ॥ १० ॥
अहोरात्रं च संतोषः कर्तव्यो नियतात्मना ।
फलैर्वृक्षावपतितैः सीते दुःखमतोवनम् ॥ ११ ॥

अर्थ–वेल और कांटों से भरे तथा जङ्गली कुक्कटों से गूंजते हुए मार्ग जल से शून्य बड़े दुःखदायी हैं तथा रात्रि को श्रम से थककर पृथिवी पर अथवा अपने आप टूटे हुए पत्तों की शय्या वनाकर सोना होता है और नियतात्मा होकर वृक्षों से अपने आप गिरे हुए फलों पर सन्तोष करना पड़ता है, इसलिये हे सीते ! वन बड़ा दुःखरूप है ॥

उपवासश्चकर्तव्यो यथा प्राणेन मैथिलि ।
जटाभारश्चकर्तव्यो वल्कलाम्बरधारणम् ॥ १२ ॥
कार्यस्त्रिरभिषेकश्च कालेकाले च नित्यशः ।
चरतांनियमेनैवतस्माद्दुःखतरंवनम् ॥ १३ ॥
यथा लब्धेन कर्तव्यः सन्तोषस्तेनमैथिलि ।
यथाहारैर्वनचरैः सीतेदुःखमतोवनम् ॥ १४ ॥

अर्थ–हे सीते ! फल भी प्रतिदिन नहीं मिलते कभी २ उपवास भी करना पड़ता है, जटा रखना और वृक्षों की छाल भी पहरनी पड़ेगी, फिर नियम से दिन में तीन वार प्रत्येक ऋतु में स्नान करना पड़ेगा, नियम से चलना होगा और जितना आहार मिलजाय उसी में सन्तोष करना पड़ेगा, वनवासियों

को यथारुचि भोजन कभी नहीं मिलता, इससे हे सीते! वन बड़ा दुःखदायी है ॥

अतीववातस्तिमिरं बुभुक्षा चास्ति नित्यशः ।
भयानि च महान्त्यत्र अतो दुःखतरं वनम् ॥१५॥
सरीसृपाश्च बहवो बहुरूपाश्च भामिनि ।
चरन्ति पथि ते दर्पात् ततो दुःखतरं वनम् ॥१६॥
नदीनिलयनाः सर्पा नदीकुटिलगामिनः ।
तिष्ठंत्यावृत्य पन्थानमतो दुःखतरं वनम् ॥ १७ ॥

अर्थ—प्रबल वायु चलती, अन्धेरा बहुत रहता, भूख सदा लगी रहती और भी वहां बड़े भय होते हैं, हे भामिनि! वहां बहुत प्रकार के सर्प तथा विच्छू बहुत होते हैं जो मार्ग में चलते हुए आदमी को रोकते हैं और जो वन में बहने वाली नदियां होती हैं उनमें भी कुटिलगामी सर्प बहुत होते हैं जो मार्ग को रोककर खड़े होजाते हैं, इससे वन बड़ा दुःखतर है ॥

पतङ्गा वृश्चिकाः कीटादंशाश्च मशकैः सह ।
बाधन्तेनित्यमबले सर्वदुःखमतो वनम् ॥ १८ ॥
द्रुमाः कण्टकिनश्चैव कुशाः काशाश्च भामिनि ।
वने व्याकुलशाखाग्रास्तेनदुःखमतोवनम् ॥ १९ ॥
तदलं ते वनं गत्वा क्षेमं नहि वनं तव ।
विमृशन्निव पश्यामि बहुदोषकरं वनम् ॥ २० ॥

अर्थ—वहां कीट, पतङ्ग, विच्छु, डांस और मच्छर सदा

सताते हैं, हे भामिनि! वन में कांटों वाले वृक्षों की शाखायें कुशा काश के अग्रभाग से जकड़ी हुई होती हैं जिनमें से लांघना अति कठिन होजाता है, सो तुम्हें वन नहीं जाना चाहिये, वन तुम्हारे योग्य नहीं, मैं जब विचारकर देखता हूं तो तुम्हारे लिये वन को बहुत दोषों वाला पाता हूं॥

इति चतुर्विंशः सर्गः

अथ पंचविंशः सर्गः

एतत्तुवचनंश्रुत्वासीतारामस्यदुःखिता।
प्रसक्ताश्रुमुखीमन्दमिदंवचनमब्रवीत्॥ १॥

अर्थ–सीता राम के उक्त वचन सुनकर दुःखित हो मुख पर आंसु बहाती हुई धीरे से बोली कि:—

ये त्वया कीर्तिता दोषा वने वस्तव्यतां प्रति।
गुणानित्येव तान्विद्धितवस्नेहपुरस्कृता॥ २॥
मृगाः सिंहागजाश्चैव शार्दूलाः शरभास्तथा।
चमराः सृमराश्चैवयेचान्ये वनचारिणः॥ ३॥
अदृष्टपूर्वरूपत्वात्सर्वे ते तव राघव।
रूपं दृष्ट्वाऽसर्पेयुस्तवसर्वे हि बिभ्यति॥ ४॥

अर्थ–वनवासविषयक जो आपने दोष कथन किये हैं वह आपके प्रेम के आगे सब गुण ही हैं, मृग, सिंह, हाथी, चीते,

सुरैगाय, नीलगाय और जो अन्य वनचारी पशु पक्षी हैं वह हे राघव ! पहले न देखे हुए तुम्हारे मुख को देखकर सब भाग जायेंगे, क्योंकि आपके अस्त्रशस्त्रों के भय से सभी भयभीत होते हैं ॥

त्वया च सह गन्तव्यं मयागुरुजनाज्ञया ।
त्वद्वियोगेन मे राम त्यक्तव्यमिह जीवितम् ॥ ५ ॥
वनवासे हि जानामि दुःखानि बहुधा किल ।
प्राप्यन्ते नियतं वीर पुरुषैरकृतात्मभिः ॥ ६ ॥

अर्थ–मुझे गुरुजन=पिता ने शिक्षा दी थी कि तू छाया की भांति सदा भर्त्ता के अनुगत रहना, सो मैं उनकी आज्ञानुसार आपके साथ अवश्य जाउंगी, हे राम ! मैं आपके वियोग से अपना जीवन त्याग दूंगी, हे वीर ! मैं भलेप्रकार जानती हूं कि वनवास में अनेक दुःख हैं, पर वह दुःख उन्हीं पुरुषों को प्राप्त होते हैं जो जितेन्द्रिय नहीं हैं ॥

कृतक्षणाहं भद्रं ते गमनं प्रति राघव ।
वनवासस्य शूरस्य चर्या हि मम रोचते ॥ ७ ॥
शुद्धात्मन्प्रेमभावाद्धिभविष्यामिविकल्मषा ।
भर्तारमनुगच्छन्ती भर्त्ता हि मम दैवतम् ॥ ८ ॥

अर्थ–हे राघव ! आपका कल्याण हो,मैं वन गमन के लिये अति उत्साहित हूं वन में रहकर आप जैसे शूरवीर की सेवा करना ही मुझे रुचता है, हे शुद्धात्मन् राम ! मैं अपने प्रेमभाव से आपके पीछे चलती हुई निर्दोष होउंगी, क्योंकि आपही मेरे एकमात्र देवता हैं ॥

प्रेत्यभावे हि कल्याणःसंगमो मे सदात्वया ।
श्रुतिर्हि श्रूयते पुण्या ब्राह्मणानां यशस्विनाम् ॥९॥
इहलोके च पितृभिर्या स्त्री यस्य महाबल ।
अद्भिर्दत्ता स्वधर्मेण प्रेत्यभावेऽपि तस्य सा ॥१०॥

अर्थ—और मरकर पुनः जन्मधारण करने पर भी आपके साथ फिर मेरा शुभ संयोग होगा, जैसाकि यशस्वी ब्राह्मणों से श्रुति द्वारा सुना है कि इसलोक में जो स्त्री धर्ममर्यादा से पिता माता ने जिसको दी है, हे महाबल ! वह परलोक में भी उसी की भार्या होती है ॥

एवमस्मात्स्वकां नारीं सुवृत्तां हि पतिव्रताम् ।
नाभिरोचयसे नेतुं त्वं मां केनेह हेतुना ॥ ११ ॥
भक्तां पतिव्रतां दीनां मां समां सुखदुःखयोः ।
नेतुमर्हसि काकुत्स्थ समानसुखदुःखिनीम् ॥१२॥

अर्थ—जब ऐसा नियम है तो आप मुझ पतिव्रता सदाचारिणी नारी को अपने साथ क्यों नहीं ले चलते, हे काकुत्स्थ ! भक्त, पतिव्रता, दीन, सुखदुःख में सम और आपके सुख में सुखी तथा दुःख में दुःखी मुझको अवश्य साथ लेचलें ॥

यदि मां दुःखितामेव वनं नेतुं न चेच्छसि ।
विषमग्निं जलं वाहमास्थास्ये मृत्युकारणात् ॥१३॥
एवं बहुविधं तं सा याचते गमनं प्रति ।
नानुमेने महाबाहुस्तां नेतुं विजनं वनम् ॥१४॥

अर्थ–यदि मुझ दुःखिया को अपने साथ वन में न लेजाओगे तो मैं जल में डूबकर, अग्नि में जलकर अथवा विष खाकर मरजाउंगी, एवंविध अनेक प्रकार से वन जाने के लिये सीता ने याचना की परन्तु महाबाहु राम ने फिर भी उसको निर्जन वन में जाने की अनुमति न दी ॥

एवमुक्त्वा तु सा चिन्तां मैथिली समुपागता ।
स्नापयन्तीव गामुष्णैरश्रुभिर्नयनच्युतैः ॥ १५ ॥
चिन्तयन्तीं तदा तां तु निवर्तयितुमात्मवान् ।
ताम्रोष्ठीं स तदासीतांकाकुत्स्थोबहुसान्त्वयत् ॥१६॥

अर्थ–सीता को जब इस प्रकार कहते हुए बार २ रोका गया तो वह इतनी चिन्तातुर हुई कि नेत्रों से बहती हुई गर्म आंसुओं की धारा से पृथिवी भीग गई, इस प्रकार शोकातुर हुई लाल ओष्ठों वाली सीता को वनजाने से रोकने के लिये जितेन्द्रिय राम ने बहुत आश्वासन दिया ॥

इति पंचविंशः सर्गः

अथ षड्विंशः सर्गः

सांत्व्यमाना तु रामेणमैथिलीजनकात्मजा ।
वनवासनिमित्तार्थंभर्तारमिदमब्रवीत् ॥ १ ॥

अर्थ–राम के आश्वासन दिये जाने पर जनकसुता सीता वनवास के निमित्त राम से बोली ॥

सा तमुत्तमसंविग्नासीताविपुलवक्षसम् ।
प्रणयाच्चाभिमानाच्चपरिचिक्षेप राघवम् ॥ २ ॥
किं त्वामन्यत वैदेहः पिता मे मिथिलाधिपः ।
राम जामातरं प्राप्य स्त्रियं पुरुषविग्रहम् ॥ ३ ॥

अर्थ--सीता बहुत शोक को प्राप्त कांपती हुई अति स्नेह और अभिमान से विशालछाती वाले राम पर आक्षेप करती हुई बोली कि मेरे पिता मिथिलाधिपति वैदेह ने आप जैसे जामाता को पाकर कुछ और ही समझा था पर आपतो पुरुष का शरीर धारण किये हुए स्त्री हैं ॥

अनृतं बत लोकोऽयमज्ञानाद्यदिवक्ष्यति ।
तेजो नास्ति परं रामे तपतीव दिवाकरे ॥ ४ ॥
किं हि कृत्वा विषण्णस्त्वं कुतो वा भयमस्ति ते ।
यत्परित्यक्तुकामस्त्वं मामनन्यपरायणाम् ॥ ५ ॥

अर्थ--जब दुनियां यह कहेगी कि तपते हुए सूर्य्य में तेज की भांति राम तेजस्वी हैं तो क्या उनका यह कथन असत्य न होगा अर्थात् झूठ होगा, आप क्या सोचकर विषाद को प्राप्त होरहे हैं अथवा आपको किससे भय है जो आप मुझ अनन्य-परायणा=जिसका कोई अन्य आश्रय नहीं, उसको छोड़ने की कामना करते हैं ॥

द्युमत्सेनसुतं वीरं सत्यवन्तमनुव्रताम् ।
सावित्रीमिव मां विद्धि त्वमात्मवशवर्तिनीम् ॥६॥

नत्वहंमनसाप्यन्यंद्रष्टास्मित्वदृतेऽनघ।
त्वया राघव गच्छेयं यथान्या कुलपांसनी ॥ ७ ॥

अर्थ–द्युमत्सेन के वीर पुत्र सत्यवान् के पीछे चलने वाली सावित्री देवी की भांति आप मुझको जानें, हे वीर ! मैं आपके वशवर्तिनी=अधीन रहने वाली हूं, हे निष्पाप ! मैं किसी और कुलकलंकिनी की भांति नहीं हूं, आपके विना मन से भी किसी अन्य को न देखुंगी, इसलिये हे राघव ! मैं आपके साथ अवश्य जाना चाहती हूं ॥

स मामनादाय वनं न त्वं प्रस्थातुमर्हसि ।
तपो वा यदि वाऽरण्यं स्वर्गोवास्यात्त्वयासह ॥८॥
न च मे भविता तत्र कश्चित्पथिपरिश्रमः ।
पृष्ठतस्तवगच्छन्त्याविहारशयनेष्विव ॥ ९ ॥

अर्थ–सो आप मुझे साथ न लेकर वन जाने योग्य नहीं अर्थात् मुझको अवश्य साथ लेचलें, तप, वन अथवा स्वर्ग जो कुछ हो मेरा आपके साथ है, वहां मार्ग में आपके पीछे चलती हुई आराम की शय्या पर शयन की भांति मुझको कोई कष्ट न होगा ॥

कुशकाशशरेषीका ये च कण्टकिनोद्रुमाः ।
तूलाजिनसमस्पर्शामार्गेममसहत्वया ॥ १० ॥
महावातसमुद्धूतंयन्मामवकरिष्यति ।
रजोरमणंतन्मन्येपरार्ध्यमिवचन्दनम् ॥ ११ ॥

अर्थ–कुश, काश=काही, सरकण्डे और जो कांटों वाले वृक्ष हैं वह आपके साथ मार्ग में रुई और पशमीने की भांति स्पर्श वाले होंगे अर्थात् मुझको इनसे कोई कष्ट न होगा, बड़े वेग वाले पवन से उड़ी हुई धूलि जो मेरे ऊपर पड़ेगी वह उत्तम चन्दन के तुल्य आनन्ददायक होगी ॥

शाद्वलेषु यदाशिश्येवनांतर्वनगोचरा ।
कुथास्तरणयुक्तेषुकिंस्यात्सुखतरं ततः ॥ १२ ॥
पत्रंमूलंफलंयत्तु अल्पं वा यदिवा बहु ।
दास्यसेस्वयमाहृत्यतन्मेऽमृतरसोपमम् ॥ १३ ॥

अर्थ–जब मैं वन में जाकर हरीघास पर सोऊंगी तो कोमल रुई वा पशम के विस्तर वाले पलंग उससे बढ़कर क्या सुखदायक होंगे, पत्र, फल, फूल, मूल जो कुछ आप थोड़ा बहुत लाकर देंगे वह मेरे लिये अमृतरस के तुल्य होगा ॥

न मातुर्नपितुस्तत्र स्मरिष्यामि न वेश्मनः ।
आर्तवान्युपभुञ्जाना पुष्पाणि च फलानिच ॥१४॥
नचतत्रततः किंचिद्द्रष्टुमर्हसिविप्रियम् ।
मत्कृतेनच ते शोको न भविष्यामिदुर्भरा ॥ १५ ॥
यस्त्वयासहसस्वर्गोनिरयोयस्त्वयाविना ।
इतिजानन्परांप्रीतिंगच्छराममयासह ॥ १६ ॥

अर्थ–हर मौसिम के फलफूल खाती हुई वहां न माता न पिता और न कभी घर का स्मरण करूंगी, आप मेरे निमित्त

वहां वन में कुछ भी दुःख न देखेंगे और न कुछ शोक ही अनुभव करेंगे, अधिक क्या आपके साथ रहना स्वर्ग तथा आपके बिना नरक है, हे राम ! यह भलेप्रकार जानते हुए आप मेरे साथ परमप्रीति को प्राप्त हो वन को लेचलें ॥

पश्चादपिहिदुःखेनममनैवास्तिजीवितम् ।
उज्झितायास्त्वयानाथतदैवमरणंवरम् ॥ १७ ॥
इमं हि सहितुंशोकंमुहूर्तमपिनोत्सहे ।
किंपुनर्दशवर्षाणित्रीणिचैकंचदुःखिता ॥ १८ ॥

अर्थ—हे प्राणनाथ ! यदि आप मुझे यहां दुःख से विकल छोड़ जायेंगे तो पीछे जीवित न रहुंगी, इसलिये हे नाथ ! आपके सन्मुख ही प्राणत्यागना श्रेष्ठ है, हे प्राणप्रिय ! इस शोक को मैं एक मुहूर्त्त भी नहीं सहसकती फिर चौदहवर्ष दुःखित होकर रहना असम्भव है ॥

इति सा शोकसंतप्ता विलप्य करुणं बहु ।
चुक्रोशपतिमायस्ताभृशमालिंग्यसस्वरम् ॥ १९ ॥
तस्याः स्फटिकसंकाशंवारिसंतापसंभवम् ।
नेत्राभ्यांपरिसुस्रावपङ्कजाभ्यामिवोदकम् ॥ २० ॥

अर्थ—वह सीता इस प्रकार शोक से संतप्त हुई बहुत करुणा के साथ विलाप करती हुई पति को आलिङ्गन कर उच्चस्वर से रोने लगी, संताप से उत्पन्न हुआ स्फटिक की भांति निर्मल जल उसके नेत्रों से इस प्रकार बहने लगा जैसे कमलों से पानी बहता है ॥

तत्सितामलचन्द्राभंमुखमायतलोचनम् ।
पर्यशुष्यतबाष्पेणजलोद्धृतमिवांबुजम् ॥ २१ ॥

अर्थ—शोकाग्नि की बाष्प=भाफ लगने से सीता का चन्द्रसम मुख इस प्रकार कुंभिला गया जैसे जल सूख जाने पर कमल कुंभिला जाता है ॥

तां परिष्वज्य बाहुभ्यां विसंज्ञामिवदुःखिताम् ।
उवाच वचनं रामः परिविश्वासयंस्तदा ॥ २२ ॥

अर्थ—अति दुःखित अचेत सी हुई सीता को राम ने दोनों भुजाओं से आलिङ्गन करके आश्वासन दिया और फिर बोले कि :—

तव सर्वमभिप्रायमविज्ञायशुभानने ।
वासं न रोचयेऽरण्ये शक्तिमानपि रक्षणे ॥ २३ ॥
यत्सृष्टासि मया सार्धं वनवासाय मैथिलि ।
न विहातुं मया शक्या प्रीतिरात्मवता यथा ॥२४॥

अर्थ—हे सुन्दरमुखि ! रक्षा में समर्थ होने पर भी तुम्हारे अभिप्राय को बिना जाने तुम्हारा वनवास उचित नहीं समझता था, हे मैथिलि ! तुम मेरे साथ वन को चलो मैं तुम्हें आज्ञा देता हूं, मैं तुम्हें छोड़ वन को नहीं जासकता, जैसे उच्चभावों वाला पुरुष अपने यश का परित्याग नहीं करता ॥

न खल्वहं न गच्छेयं वनं जनकनन्दिनी ।
वचनं तन्नयति मां पितुः सत्योपबृंहितम् ॥ २५ ॥

एषधर्मश्च सुश्रोणि पितुर्मातुश्च वश्यता ।
अतश्च तं व्यतिक्रम्य नाहं जीवितुमुत्सहे ॥२६॥

अर्थ—हे जनकनन्दिनि ! मैं वन को न जाऊं यह नहीं होसक्ता, पिता का सत्य से पुष्ट हुआ वचन मुझे वन लेजारहा है, हे सुश्रोणि ! माता पिता के अधीन रहकर उनकी आज्ञापालन करना धर्म है, उनकी आज्ञा उल्लङ्घन करके मैं जीवित नहीं रहसकता ॥

न सत्यं दानमानौ वा यज्ञो वाप्याप्तदक्षिणः ।
तथा बलकराः सीते यथा सेवा पितुर्मता ॥ २७ ॥
स्वर्गो धनं वा धान्यं वा विद्याः पुत्राः सुखानि च ।
गुरुवृत्त्यनुरोधेन न किंचिदपिदुर्लभम् ॥ २८ ॥

अर्थ—हे सीते ! न सत्य, न दान, न मान और न पूर्ण दक्षिणा वाले यज्ञ वैसा बल उत्पन्न करते हैं जैसे पिता की सेवा हित करती है, बड़ों की मर्यादानुसार चलने से स्वर्ग=उत्तम गति, धन, धान्य, विद्या, पुत्र और सुख यह सब सुलभता से प्राप्त होते हैं ॥

देवगन्धर्वगोलोकान्ब्रह्मलोकांस्तथापरान् ।
प्राप्नुवन्ति महात्मानो मातापितृपरायणाः ॥२९॥
स मां पिता यथाशास्ति सत्यधर्मपथे स्थितः ।
तथा वर्त्तितुमिच्छामि स हि धर्मः सनातनः ॥३०॥

ममसन्नामतिः सीते नेतुं त्वां दण्डकावनम् ।
वसिष्यामीति सा त्वं मामनुयातुं सुनिश्चिता॥३१॥

अर्थ—माता पिता की आज्ञापालन करने वाले पुरुष देवलोक, गन्धर्वलोक, गोलोक और ब्रह्मलोक=मुक्ति को प्राप्त होते हैं, सो सत्यधर्म परायण पिता ने मुझे जैसी आज्ञा दी है उसी का पालन करना सनातनधर्म है, हे सीते! तुम्हें दण्डकवन को लेजाने का मेरा विचार न था पर तुम्हारा वहां वसने का विचार अवश्य है तोः—

सा हि सृष्टानवद्याङ्गि वनाय मदिरेक्षणे ।
अनुगच्छस्व मां भीरु सहधर्मचरी भव ॥ ३२ ॥
सर्वथा सदृशं सीते मम स्वस्य कुलस्य च ।
व्यवसायमनुक्रान्ता कान्ते त्वमतिशोभनम्॥३३॥

अर्थ—हे सुन्दर अंगों वाली! तुझे वन चलने की आज्ञा है, हे भीरु! तू मेरे साथ चलकर सहधर्मचरी हो, हे सीते! तू सर्वथा मेरे और अपने कुल की समानता को प्राप्त हुई है, हे कान्ते! तुम्हारा निश्चय बड़ा पवित्र शोभनीय है ॥

आरभस्व शुभश्रोणि वनवासक्षमाः क्रियाः ।
नेदानीं त्वदृते सीते स्वर्गोऽपि मम रोचते ॥ ३४ ॥
ब्राह्मणेभ्यश्च रत्नानि भिक्षुकेभ्यश्च भोजनम् ।
देहि चाशंसमानेभ्यः संत्वरस्वचमाचिरम् ॥३५॥

अर्थ—हे शुभश्रोणि! वनवास के योग्य कार्य्यों का आरम्भ

कर, हे सीते ! तेरे विना अब मुझे स्वर्ग भी नहीं रुचता, ब्राह्मणों को रत्न और भिक्षुकों को भोजन देकर शीघ्र चल विलम्ब न हो॥

भूषणानि महार्हाणि वरवस्त्राणि यानि च ।
रमणीयाश्च ये केचित्क्रीडार्थाश्चाप्युपस्कराः ॥३६॥
शयनीयानि यानानि मम चान्यानि यानि च ।
देहिस्वभृत्यवर्गस्य ब्राह्मणानामनन्तरम् ॥ ३७ ॥
अनुकूलं तु सा भर्तुर्ज्ञात्वा गमनमात्मनः ।
क्षिप्रं प्रमुदिता देवी दातुमेव प्रचक्रमे ॥ ३८ ॥

अर्थ—बहुमूल्यभूषण, उत्तमवस्त्र, रमणीयखेल के सामान, मेरे शयन की चीजें और यान=सवारी आदि जो मेरे पदार्थ हैं वह सब ब्राह्मणों के पीछे अपने भृत्यवर्ग को देदें, सीता अपना जाना पति के अनुकूल जान बड़ी प्रसन्न हो सब पदार्थ शीघ्र २ बांटने लगी ॥

कौसल्या से राम की विदा

बड़भागी बन अवध अभागी । जो रघुवंश तिलक तुम त्यागी ॥
जो सुत कहों संग मोहिं लेहू । तुम्हरे हृदय होय सन्देहू ॥
वनवासी रघुनन्दन तोहीं । पालहिं कृपा करहिं यह मोहीं ॥
चन्दनादि सब गन्ध लगाये । राम माथ महं अति मन भाये ॥

राम का सीता के प्रति वनदोष कथन

आपन मोर नीक जो चहहू । वचन हमार मान घर रहहू ॥
आयसु मोर सासु सेवकाई । सब विधि भामिनि भवन भलाई ॥
जो हठ करहु प्रेमवश वामा । तो तुम दुख पावहु परिणामा ॥

कानन कठिन भयंकर भारी। घोर घाम हिम वारि बयारी॥
कुश कंटक मग कंकर नाना। चलब पयादे बिन पद त्राना॥
चरणकमल मृदु मंजु तुम्हारे। मारग अगम भूमिधर भारे॥
कंदर खोह नदी नद नारे। अगम अगाध न जाहिं निहारे॥
भालु बाघ वृक केहरि नागा। करहिं नाद सुनि धीरज भागा॥
भूमि शयन वल्कल वसन, अशन कंद फलमूल॥
तेकि सदा सब दिन मिलहि, समय समय अनुकूल॥
लागइ अति पहाड़कर पानी। विपिन विपति नहिं जाय बखानी॥
हंसगमनि तुम नाहिं वन योगू। सुनि अपयश मोहिं देइहिं लोगू॥
रहहु भवन अस हृदय विचारी। चन्द्रवदनि दुख कानन भारी॥

सीता उवाच

सुनि मृदुवचन मनोहर पिय के। लोचन नलिन भरे जल सिय के॥
उतरु न आव विकल वैदेही। तजन चहत शुचि स्वामि सनेही॥
तनु धन धाम धरणि पुर राजू। पति विहीन सब शोक समाजू॥
भोग रोग सम भूषण भारू। यमयातना सरिस संसारू॥
प्राणनाथ तुम विनु जग माहीं। मोकहं सुखद कतहुं कोउ नाहीं॥
नाथ सकल सुख साथ तुम्हारे। शरद विमल विधु वदन निहारे॥
राखिय अवध जो अवधिलगि, रहतजानियेप्रान॥
दीनबंधु सुंदर सुखद, शील सनेह निधान॥
अस कहि सिय विकल भइभारी। वचन वियोग न सकी संभारी॥
देखि दशा रघुपति जिय जाना। हठ राखे राखै नहिं प्राना॥
कहेउ कृपालु भानुकुल नाथा। परिहरि शोच चलहु वन साथा॥
नहिं विषादकर अवसर आजू। वेगि करहु वन गमन समाजू॥
तब जानकी सासु पग लागी। सुनिय माय मैं परम अभागी॥
सेवा समय दैव दुख दीन्हा। मोर मनोरथ सफल न कीन्हा॥
वारहिंवार लाय उर लीन्हीं। धरिधीरज शिख आशिष दीन्हीं॥
अचल होउ अहि वात तुम्हारा। जब लग गंग यमुन जल धारा॥

इति षड्विंशः सर्गः

अथ सप्तविंशः सर्गः

सं०—अब लक्ष्मण का वनगमन के लिये आज्ञा मांगना कथन करते हैं :—

एवं श्रुत्वा तु संवादं लक्ष्मणः पूर्वमागतः ।
बाष्पपर्याकुलमुखः शोकं सोढुमशक्नुवन् ॥१॥
स भ्रातुश्चरणौ गाढं निपीड्यरघुनन्दनः ।
सीतामुवाचातियशा राघवं च महाव्रतम् ॥२॥

अर्थ—पूर्व आये हुए लक्ष्मण ने राम और सीता के वन जाने का सम्वाद सुनकर आंसुओं से पर्याप्तमुख शोक को न सहारता हुआ भाई के चरण पकड़कर परमयशस्वी रघुसन्तान लक्ष्मण सीता और महाव्रती राम से बोला कि :—

यदि गंतुं कृताबुद्धिर्वनंमृगगजायुतम् ।
अहंत्वाऽनुगमिष्यामि वनमग्रे धनुर्धरः ॥ ३ ॥
मया समेतोऽरण्यानि रम्याणि विचरिष्यसि ।
पक्षिभिर्मृगयूथैश्चसंघुष्टानि समंततः ॥ ४ ॥

अर्थ—यदि आपने मृग और हाथियों से भरे हुए वन को जाने का निश्चय करलिया है तो मैं धनुष पकड़कर आपके साथ आगे २ वन को चलुंगा, मेरे साथ आप बहुत वनों में विचरेगे जहां पक्षि तथा भौरों के समूह चारो ओर गूंज रहे हैं ॥

न देवलोकाक्रमणं नामरत्वमहं वृणे ।
ऐश्वर्य्यं चापि लोकानां कामये न त्वया विना ॥५॥
एवं ब्रुवाणः सौमित्रिर्वनवासायनिश्चितः ।
रामेण बहुभिः सान्त्वैर्निषिद्धः पुनरब्रवीत् ॥ ६ ॥

अर्थ–आपके विना न मैं देवलोक=उत्तम अवस्था को प्राप्त होना चाहता, न अमर होना मांगता, और न सब लोकों का ऐश्वर्य्य चाहता हूं, जब लक्ष्मण ने इस प्रकार वनवास के लिये निश्चित होकर आग्रह किया तब राम ने उसको आश्वासन देकर कहा कि आपका मेरे साथ जाना ठीक नहीं, यह सुनकर लक्ष्मण बोला किः—

अनुज्ञातस्तु भवता पूर्वमेव यदस्म्यहम् ।
किमिदानीं पुनरपिक्रियते मे निवारणम् ॥ ७ ॥
यदर्थं प्रतिषेधो मे क्रियते गंतुमिच्छतः ।
एतदिच्छामि विज्ञातुं संशयो हि ममानघ ॥ ८ ॥

अर्थ–जब आप पहले ही अनुमति देचुके हैं तो अब मुझे वन जाने से क्यों रोकते हैं, हे निष्पाप ! मैं यह जानना चाहता हूं कि वनगमन की इच्छा वाले मुझको किस अर्थ मना किया जाता है, यह संशय है ॥

ततोऽब्रवीन्महातेजा रामो लक्ष्मणमग्रतः ।
स्थितं प्राग्गामिनं धीरं याचमानंकृताञ्जलिम् ॥९॥
स्निग्धो धर्मरतो वीरः सततं सत्पथे स्थितः ।
प्रियः प्राणसमो वश्यो भ्राताचापि सखा च मे ॥१०॥

अर्थ—तब महातेजस्वी राम हाथ जोड़कर खड़े हुए आगे २ चलने की याचना करने वाले धीर लक्ष्मण से बोले कि इसमें सन्देह नहीं तू स्नेह से भरपूर, धर्म में रत, वीर, निरन्तर सन्मार्ग में स्थित, मर्मप्रिय, प्राणसमान, वशीकृतमनवाला, भाई और मेरा सखा है ॥

ममाद्य सह सौमित्रे त्वयि गच्छति तद्वनम् ।
को भजिष्यति कौसल्यांसुमित्रां वा यशस्विनीम् ॥११॥
तामार्यां स्वयमेवेह राजानुग्रहणेन वा ।
सौमित्रे भर कौसल्यामुक्तमर्थममुंचरः ॥ १२ ॥

अर्थ—परन्तु हे लक्ष्मण ! आज मेरे साथ तुम्हारे वन चले जाने से कौसल्या और यशस्विनी सुमित्रा की कौन सेवा करेगा, हे लक्ष्मण ! उस आर्या सुमित्रा और कौसल्या का आप स्वयं अथवा राजा के अनुग्रह से पालन करें, यह तुम्हारा कर्तव्य है ॥

एवं मयि च ते भक्तिर्भविष्यतिसुदर्शिता ।
धर्मज्ञ गुरुपूजायां धर्मश्चाप्यतुलो महान् ॥ १३ ॥
एवं कुरुष्व सौमित्रे मत्कृते रघुनन्दन ।
अस्माभिर्विप्रहीणाया मातुर्नो न भवेत्सुखम् ॥१४॥

अर्थ—और ऐसा करने से मुझ में तुम्हारी भक्ति पूर्णतया दिखाई देगी तथा हे धर्मज्ञ ! गुरुशुश्रूषा*करने में धर्म भी महान्

---

* यहां गुरु से तातपर्य्य माताओं का है, क्योंकि शास्त्र में माता को प्रथम गुरु लिखा है ॥

होगा, इसलिये हे लक्ष्मण ! मेरे लिये ऐसा ही कर, क्योंकि हम दोनों से वियुक्त हुई हमारी माताओं को सुख न होगा ॥

एवमुक्तस्तु रामेण लक्ष्मणः श्लक्ष्णया गिरा ।
प्रत्युवाच तदारामं वाक्यज्ञो वाक्यकोविदम् ॥१५॥
तवैव तेजसा वीर भरतः पूजयिष्यति ।
कौसल्यां च सुमित्रां च प्रयतो नास्तिसंशयः ॥१६॥

अर्थ–जब राम ने स्पष्ट प्रकार से लक्ष्मण को ऐसा कहा तब वाक्य के जानने वाला लक्ष्मण वाक्यकोविद राम से बोला कि हे वीर ! तुम्हारे तेज से ही भरत शुद्ध मन द्वारा माता कौसल्या और सुमित्रा की प्रयत्न से पूजा करेगा, इसमें संशय नहीं ॥

यदि दुःस्थो न रक्षेत भरतो राज्यमुत्तमम् ।
प्राप्यदुर्मनसावीर गर्वेण च विशेषतः ॥ १७ ॥
तमहंदुर्मतिंक्रूरंवधिष्यामिनसंशयः ।
तत्पक्षानपितान्सर्वांस्त्रैलोक्यमपिकिंतुसा ॥१८॥

अर्थ–हे वीर ! यदि उत्तम राज्य को प्राप्त कर भरत विशेषगर्व से दुर्मन=दुष्ट मन वाला हुआ दुःखी माताओं की रक्षा न करेगा तो उस दुर्मति क्रूरस्वभाव भरत का मैं अवश्य वध करूंगा, इसमें संशय नहीं, और जो उसके पक्ष में होंगे उनका भी वध करूंगा, चाहे त्रिलोकी में कोई क्यों न हो ॥

कौसल्या बिभृयादार्या सहस्रं मद्विधानपि ।
यस्याः सहस्रं ग्रामाणां संप्राप्तमुपजीविनाम् ॥१९॥

तदात्मभरणे चैव मम मातुस्तथैव च ।
पर्याप्तामद्विधानां च भरणायमनस्विनी ॥ २० ॥

अर्थ—और आर्या कौसल्या जिसके नौकरों को सहस्र गांव मिले हुए हैं वह मेरे जैसे हजारों का पालन पोषण करसकती है, वह यशस्विनी अपने पालन, मेरी माता के पालन और मेरे जैसों के पालन करने में सर्वथा समर्थ है ॥

कुरुष्वमामनुचरं वैधर्म्यं नेह विद्यते ।
कृतार्थोऽहं भविष्यामि तव चार्थः प्रकल्प्यते ॥२१॥
धनुरादाय सशरं खनित्रपिटकाधरः ।
अग्रतस्ते गमिष्यामि पन्थानं तव दर्शयन् ॥२२॥

अर्थ—सो यहां के लिये मेरी कुछ आवश्यकता नहीं, आप मुझे अपना अनुचर बनावें, इसमें कुछ वैधर्म्य=उलटापन नहीं, मैं आपकी सेवा कर कृतार्थ होउंगा, शरसहित धनुषबाण, कन्द मूल खोदने के लिये खनित्र और रखने के लिये पिटारी लिये हुए मार्ग दिखलाता हुआ आपके आगे २ चलुंगा ॥

आहरिष्यामि ते नित्यं मूलानि च फलानि च ।
वन्यानिचतथान्यानिस्वाह्याहाणितपस्विनाम्॥२३॥
भवांस्तु सह वैदेह्या गिरिसानुषु रंस्यते ।
अहं सर्वं करिष्यामि जाग्रतः स्वपतश्च ते ॥२४॥

अर्थ—मैं आपके आहारार्थ नित्य फलफूल और हवन के लिये अन्य पदार्थ जो वन में तपस्वियों के लिये होते हैं लाउंगा,

आप जानकी के साथ पर्वत की चोटियों पर रमण करें मैं आपके जागते और सोते सब कुछ करूंगा ॥

रामस्त्वनेन वाक्येन सुप्रीतः प्रत्युवाचतम् ।
व्रजापृच्छस्व सौमित्रे सर्वमेवसुहृज्जनम् ॥ २५ ॥
ये च राज्ञौ ददौ दिव्ये महात्मा वरुणः स्वयम् ।
जनकस्य महायज्ञे धनुषी रौद्रदर्शने ॥ २६ ॥

अर्थ—राम भाई के उक्त वाक्य सुनकर अति प्रसन्न हो बोले कि हे लक्ष्मण ! तुम अपने सब सुहृदजनों से आज्ञा ले आओ और वह दोनों भयङ्कर धनुष जो महात्मा वरुण ने स्वयं राजा जनक को महायज्ञ में दिये थे और :—

अभेद्ये कवच दिव्ये तूणी चाक्षय्यसायकौ ।
आदित्यविमलाभौ द्वौ खड्गौ हेमपरिष्कृतौ ॥२७॥
सत्कृत्य निहितं सर्वमेतदाचार्य्यसद्मनि ।
सर्वमायुधमादायक्षिप्रमाव्रजलक्ष्मण ॥ २८ ॥
स सुहृज्जनमामन्त्र्यवनवासाय निश्चितः ।
इक्ष्वाकुगुरुमागम्यजग्राहायुधमुत्तमम् ॥ २९ ॥

अर्थ—दोनों अभेद्य कवच, अक्षय तीरों वाले दोनों तरकस तथा सुवर्ण की मुट्ठी वालीं सूर्य्य की भांति चमकती हुई दोनों तलवार, यह सब शस्त्र सत्कारपूर्वक आचार्य्य के घर रखे हुए हैं, सो हे लक्ष्मण ! तुम यह सब शस्त्र लेकर शीघ्र ही आजाओ, सुहृदजनों से आज्ञा लेकर वनवास के लिये निश्चित सङ्कल्प वाला

हुआ लक्ष्मण सब शस्त्र लेने के लिये इक्ष्वाकुओं के गुरु समीष गया और उनसे उत्तम शस्त्र ग्रहण करके :—

तद्दिव्यं राजशार्दूलः संस्कृतं माल्यभूषितम् ।
रामायदर्शयामाससौमित्रिः सर्वमायुधम् ॥ ३० ॥
तमुवाचात्मवान् रामः प्रीत्या लक्ष्मणमागतम् ।
कालेत्वमागतः सौम्य कांक्षिते मम लक्ष्मण ॥३१॥

अर्थ–राजशार्दूल लक्ष्मण ने मालाओं से भूषित सब दिव्य शस्त्र लाकर राम को दिखलाये, तब उदारचित्त राम ने प्रीति से शीघ्र आये हुए लक्ष्मण को कहा कि हे सौम्य ! तू ठीक समय पर आगया है ॥

अहं प्रदातुमिच्छामि यदिदं मामकं धनम् ।
ब्राह्मणेभ्यस्तपस्विभ्यस्त्वया सह परंतप ॥ ३२ ॥

अर्थ–हे परंतप लक्ष्मण ! मैं अपना सब धन तेरे साथ मिलकर तपस्वी ब्राह्मणों को दान करना चाहता हूं अर्थात् आओ हम दोनों मिलकर दान करें ॥

वसन्तीह दृढं भक्त्यागुरुषु द्विजसत्तमाः ।
तेषामपि च मे भूयः सर्वेषांचोपजीविनाम् ॥३३॥

अर्थ–यहां गुरुओं के समीप दृढ़भक्ति से जो ब्राह्मण वास करते हैं उनको तथा अपने सब सेवकों और :—

वसिष्ठपुत्रं तु सुयज्ञमार्यं त्वमानयाशुप्रवरं

द्विजानाम् । अपि प्रयास्यामि वनं समस्ता-
नभ्यर्च्य शिष्टानपरान्द्विजातीन् ॥ ३४ ॥

अर्थ–महात्मा वसिष्ठ के द्विजवर आर्य्यपुत्र सुयज्ञ को यहां शीघ्र ले आओ, और भी अन्य सब ब्राह्मणों को पूजकर फिर मैं वनगमन करुंगा ॥

लक्ष्मण उवाच

मोकहं कहा कहब रघुनाथा । रखिहहिं भवन कि लेहहिं साथा ॥
राम विलोकि बन्धुकर जोरे । देह गेह सब सन तृण तोरे ॥

राम उवाच

मातु पिता गुरु स्वामि सिख, शिर धर करहिं सुभाय ॥
लहेउ लाभ तिन जन्म के,नतरु जन्म जग जाय ॥
अस जिय जानि सुनहु शिख भाई । करहु मातु पितु पद सेवकाई ॥
भवन भरत रिपुसूदन नाहीं । राउ वृद्ध मम दुख मन माहीं ॥
रहहु करहु सबकर परितोषू । नतरु तात हुई हैं बड़ दोषू ॥
जासु राज्य प्रिय प्रजा दुखारी । सो नृप अवशि नरक अधिकारी ॥
रहहु तात अस नीति विचारी । सुनत लषण भये व्याकुलभारी ॥
सियरे वचन सूखिगये कैसे । परसत तुहिन तामरस जैसे ॥

लक्ष्मण उवाच

दीन्ह मोहिं सिख नीक गुसाईं । लागी अगम अपनि कदराई ॥
मोरे सबइ एक तुम स्वामी । दीनबन्धु उर अन्तर्यामी ॥

राम उवाच

मांगहु विदा मातु सन जाई । आवहु वेगि चलहु वन भाई ॥

लक्ष्मण का माता-से आज्ञा मांगना

पूछेउ मातु मलिन मन देखी । लषण कही सब कथा विशेषी ॥
गई सहमि सुनि वचन कठोरा । मृगी देखि जनु दव चहुं ओरा ॥

धीरज धरेउ कुअवसर जानी । सहज सुहृद बोली मृदुवानी ॥
अवध तहां जहां राम निवासू । तहंइ दिवस जहं भानु प्रकाशू ॥
जो पै सीय राम वन जाहीं । अवध तुम्हार काज कछु नाहीं ॥
मातु चरण शिरनाय, चले तुरत शंकित हिये ।
वागुरुविषम तुराय, मनहु भाग मृग भागवश ॥

इति सप्तविंशः सर्गः

अथ अष्टाविंशः सर्गः

ततः शासनमाज्ञायभ्रातुः प्रियकरं हितम् ।
गत्वा स प्रविवेशाशुसुयज्ञस्यनिवेशनम् ॥ १ ॥
तं विप्रमग्न्यागारस्थंवंदित्वालक्ष्मणोऽब्रवीत् ।
सखेभ्यागच्छपश्यत्वं वेश्मदुष्करकारिणः ॥ २ ॥
ततः सन्ध्यामुपास्थायगत्वासौमित्रिणा सह ।
ऋद्धंसप्राविशल्लक्ष्म्यारम्यंरामनिवेशनम् ॥ ३ ॥

अर्थ—प्रिय भाई राम की आज्ञा पाकर भ्राता के कल्याणार्थ लक्ष्मण शीघ्र ही गुरुपुत्र सुयज्ञ के समीप गया, उस समय सुयज्ञ यज्ञशाला में सन्ध्या अग्निहोत्र कर रहे थे, वहां पहुंच लक्ष्मण ने प्रणाम कर कहा कि हे सखे ! आप वहां चलकर देखें भ्राता राम कैसा दुष्कर काम कर रहे हैं, इसके अनन्तर सुयज्ञ सन्ध्या उपासना से निवृत्त होकर शीघ्र ही लक्ष्मण के साथ चलपड़े और लक्ष्मीयुक्त रम्य राम के मन्दिर में पहुंचे ॥

तमागतं वेदविदं प्राञ्जलिः सीतया सह ।
सुयज्ञमभिचक्राम राघवोऽग्निमिवार्चितम् ॥ ४ ॥

अर्थ—जब वह वेदवित् ब्राह्मण सुयज्ञ आये तब राम ने सीता सहित हाथ जोड़ उनकी प्रदक्षिणा की, और :—

जातरूपमयैर्मुख्यैरङ्गदैःकुण्डलैः शुभैः ।
सहेमसूत्रैर्मणिभिः केयूरैर्वलयैरपि ॥ ५ ॥
अन्यैश्चरत्नैर्बहुभिः काकुत्स्थः प्रत्यपूजयत् ।
सुयज्ञं स तदोवाच रामः सीता प्रचोदितः ॥ ६ ॥
हारं च हेमसूत्रं च भार्यायै सौम्य हारय ।
रशनांचाथसासीतादातुमिच्छति ते सखे ॥ ७ ॥

अर्थ—सुवर्ण के सुन्दर बाहुबन्द, शुभ कुंडल, सुवर्ण की जंज़ीर में पुरोये हुए रत्न, केयूर, कंकण और बहुत से रत्नों से राम ने उनकी पूजा की, फिर सीता से प्रेरे हुए राम ने उनसे कहा कि हे सौम्य ! सीता का यह हार तथा हेमसूत्र अपनी स्त्री के लिये लेजाओ और हे सखे ! यह सुवर्ण की तड़ागी सीता देना चाहती है ॥

अंगदानि च चित्राणि केयूराणि शुभानि च ।
प्रयच्छति सखे तुभ्यं भार्यायै गच्छती वनम् ॥८॥
पर्यंकमग्र्यास्तरणं नानारत्नविभूषितम् ।
तमपीच्छति वैदेही प्रतिष्ठापयितुं त्वयि ॥ ९ ॥

नागः शत्रुंजयो नाम मातुलोयं ददौ मम ।
तं ते निष्कसहस्रेण ददामि द्विजपुंगव ॥१०॥
इत्युक्तः स तु रामेण सुयज्ञः प्रतिगृह्यतत् ।
रामलक्ष्मणसीतानांप्रयुयोजाशिषः शिवाः ॥११॥

अर्थ–हे सखे ! विचित्र बाहुबन्द तथा शुभ केयूर बन को जाती हुई सीता तुम्हारी भार्या को देती है, उत्तम विस्तरसहित नाना रत्नों से जटित यह पलंग भी जानकी तुम्हें देती है, हे द्विज-पुंगव ! यह शत्रुंजय नामा हाथी जो मेरे मामा ने दिया है हज़ार मोहर के साथ आपको देता हूं, इस प्रकार राम के दिये हुए दान को स्वीकार कर सुयज्ञ ने राम, लक्ष्मण और सीता को शुभ आशीर्वाद दिया ॥

अथाब्रवीद्बाष्पगलांस्तिष्ठतश्चोपजीविनः ।
स प्रदाय बहुद्रव्यमेकैकस्योपजीवनम् ॥ १२ ॥
लक्ष्मणस्य च यद्वेश्म गृहं च यदिदं मम ।
अशून्यं कार्यमेकैकं यावदागमनं मम ॥ १३ ॥

अर्थ–इसके अनन्तर समीप खड़े हुए नौकर जिनका गला आंसुओं से रुका हुआ है प्रत्येक को बहुतसा द्रव्य और उपजीविका देकर राम ने कहा कि हमारे आने तक मेरे और लक्ष्मण के घरों को कभी खाली न छोड़ना ॥

इत्युक्त्वा दुःखितं सर्वं जनं तमुपजीविनम् ।
उवाचेदं धनाध्यक्षं धनमानीयतां मम ॥ १४ ॥

अर्थ—उन सब दुःखित नौकर चाकरों को कहकर फिर धनाध्यक्ष=खज़ानची से बोले कि मेरा कोष=खज़ाना यहां लाओ॥

ततोऽस्य धनमाजह्रुःसर्व एवोपजीविनः।
स राशिः सुमहांस्तत्र दर्शनीयो ह्यदृश्यत ॥१५॥
ततः स पुरुषव्याघ्रस्तद्धनं सहलक्ष्मणः।
द्विजेभ्यो बालवृद्धेभ्यः कृपणेभ्यो ह्यदापयत् ॥१६॥

अर्थ—तब धनाध्यक्ष के साथ जाकर नौकर लोग राम का सब धन लेआये जो वहां राशि=बड़ा ढेर दर्शनीय दिखाई देता था, और उस धन को पुरुषव्याघ्र=श्रेष्ठ राम तथा लक्ष्मण ने ब्राह्मणों और दीन बाल वृद्धों को दिया॥

तत्रासीत्पिंगलोगार्ग्यस्त्रिजटोनाम वै द्विजः।
क्षतवृत्तिर्वने नित्यं फालकुद्दाललाङ्गली ॥ १७ ॥
तं वृद्धं तरुणी भार्या बालानादाय दारकान्।
अब्रवीद् ब्राह्मणं वाक्यं दारिद्र्येणाभिपीडिता॥१८॥

अर्थ—वहां पर एक भूरे रंग का गर्ग गोत्रोत्पन्न त्रिजट नामक ब्राह्मण था जो फाल=फावड़ा, कुदाल और लम्बा दण्ड लेकर वन में निर्वाह करता था, उस वृद्ध ब्राह्मण को उसकी तरुण भार्या दरिद्र से दुःखी हुई बच्चों को सन्मुख लाकर बोली कि:—

अपास्य फालं कुद्दालं कुरुष्व वचनं मम।
रामं दर्शय धर्मज्ञं यदि किञ्चिदवाप्स्यसे॥ १९ ॥

स भार्याया वचः श्रुत्वा शाटीमाच्छाद्यदुश्छदाम् ।
सप्रातिष्ठत पन्थानं यत्र राम निवेशनम् ॥ २० ॥

अर्थ—आप इस फाल तथा कुदाल को छोड़कर मेरा कहना करें, आज आप धर्मज्ञ राम के समीप जायं, यदि कुछ मिल जाय तो अच्छा है, वह ब्राह्मण भार्या के वचन सुनकर फटी पुरानी धोती पहन राम के समीप गया ॥

भृग्वङ्गिरः समं दीप्त्या त्रिजटं जनसंसदि ।
आपञ्चमायाः कक्ष्याया नैनं कश्चिदवारयत् ॥२१॥
स राममासाद्य तदा त्रिजटो वाक्यमब्रवीत् ।
निर्धनो वहुपुत्रोस्मि राजपुत्र महाबल ॥ २२ ॥

अर्थ—वह भृगु और अंगिरा के तुल्य तेजस्वी त्रिजट इतने बड़े समुदाय में से निकलकर पांचवी डेवढ़ी तक चलागया और किसी ने न रोका, वह राम के पास जाकर बोला कि हे राजपुत्र महाबल ! मैं बहुत पुत्रों वाला निर्धन हूं ॥

तमुवाच ततो रामः परिहाससमन्वितम् ॥ २३ ॥
गवां सहस्रमप्येकं नच विश्राणितं मया ।
परिक्षिपसिदण्डेन यावत्तावदवाप्स्यसे ॥ २४ ॥
स शाटीं परितः कट्यां संभ्रान्तः परिवेष्टयताम् ।
आविध्य दण्डं चिक्षेप सर्वप्राणेन वेगतः ॥ २५ ॥

अर्थ—तब राम ने उसको परिहास=हंसी से कहा कि अभी मैंने एकसहस्र गाय भी दान नहीं दी हैं सो तू अपने दण्ड को

जितनी दूर फैंक सकेगा उतनी ही गायें तेरी होंगी, यह सुनकर उस ब्राह्मण ने बड़ी आतुरता से धोती कमर में लपेट दण्ड घुमाकर पूर्ण बल से ऐसा फैंका कि :—

स तीर्त्वा सरयूपारं दण्डस्तस्यकराच्च्युतः ।
गोव्रजे बहुसाहस्रे पपातोक्षाणसन्निधौ ॥ २६ ॥
तं परिष्वज्य धर्मात्मा आवाप्य सरयूतटात् ।
आनयामास ता गावस्त्रिजटस्याश्रमंप्रति ॥ २७ ॥
उवाच च तदा रामस्तं गार्ग्यमभिसान्त्वयन् ।
मन्युर्नखलुकर्तव्यः परिहासो ह्ययं मम ॥ २८ ॥

अर्थ—उसके हाथ से छूटते ही सरयू के पार निकलकर अनेक सहस्रों वाले गोव्रज में बैलों की सन्निधि में जा गिरा, तब धर्मात्मा राम ने उसको गले लगाकर सरयू किनारे तक जितनी गायें थीं वह त्रिजट के आश्रम में पहुंचादीं, और उस गर्गगोत्रोत्पन्न ब्राह्मण को राम शान्तिदायक यह वचन बोले कि आप क्रोध न करें, क्योंकि यह एक हंसी की बात थी ॥

इदं हि तेजस्तव यद्दुरत्ययं तदेव जिज्ञासि-
तुमिच्छता मया । इमंभवानर्थमभिप्रचोदितो
वृणीष्व किं चेदपरं व्यवस्यसि ॥ २९ ॥

अर्थ—यह जो आपका बड़ा दुरत्यय तेज है इसी के जानने की इच्छा करता हुआ मैंने आपको प्रेरणा की थी, सो धेनु आपके आश्रम पर पहुंच गईं, अब जो कुछ और भी इच्छा हो सो मांगें ॥

ब्रवीमि सत्येन न ते स्म यंत्रणा धनं हि यद्यन्मम विप्रकारणात् । भवत्सु सम्यक् प्रतिपादनेन मयार्जितं चैव यशस्करं भवेत्॥३०॥

अर्थ—यह मैं तुम से सत्य कहता हूं इसमें कुछ यन्त्रणा=बनावट नहीं, मेरे पास जो धन है वह ब्राह्मणों के लिये ही है, वह मेरा अर्जित=एकत्रित किया हुआ धन ब्राह्मणों को देने से यशस्कर=कल्याणकारी होगा ॥

ततः सभार्यस्त्रिजटो महामुनिर्गवामनीकं प्रतिगृह्य मोदितः । यशो बल प्रीति सुखोप-वृंहिणीस्तदाशिषः प्रत्यवदन्महात्मनः ॥३१॥

अर्थ—तब वह स्त्री सहित महामुनि त्रिजट गौओं के समूह को लेकर प्रसन्न हुआ और महात्मा राम को यश, बल, प्रीति और सुख के बढ़ाने वाले आशीर्वाद दिये ॥

सचापि रामः प्रतिपूर्णमानसो महाधनं धर्मबलैरुपार्जितम् । नियोजयामास सुहृ-ज्जने चिराद्यथार्हसंमान वचः प्रचोदितः ॥३२॥

अर्थ—वह राम जिसका मन पूर्ण होरहा है, धर्मबल से उपार्जित किये हुए अपने बड़े धन को सन्मानपूर्वक शीघ्र ही अपने सुहृद्जनों में बांट दिया ॥

द्विजः सुहृदभृत्यजनोऽथवातदादरिद्रभिक्षा-चरणश्च यो भवेत् । नतत्रकश्चिन्नबभूवत-र्पितोयथार्हसंमाननदानसम्भ्रमैः ॥ ३३ ॥

अर्थ—ब्राह्मण, सुहृद्, भृत्यजन, दरिद्र=गरीब और भिक्षुक, इनमें से उस समय कोई ऐसा न था जिसको यथायोग्य सन्मानपूर्वक दान से तृप्त न कियागया हो ॥

इति अष्टाविंशः सर्गः

अथ एकोनत्रिंशः सर्गः

सं०—अब वनगमन समय राम का पिता के दर्शनार्थ जाना कथन करते हैं :—

दत्त्वा तु सह वैदेह्या ब्राह्मणेभ्यो धनं बहु ।
जग्मतुः पितरं द्रष्टुं सीतया सह राघवौ ॥ १ ॥

अर्थ—सीता के साथ ब्राह्मणों को बहुतसा धन देकर सीता सहित राम, लक्ष्मण पिता के दर्शनों को गये ॥

ततो गृहीतेप्रेष्याभ्यामशोभेतांतदायुधे ।
मालादामभिरासक्ते सीतयासमलंकृते ॥ २ ॥
ततः प्रासादहर्म्याणिविमानशिखराणि च ।
अभिरुह्यजनः श्रीमानुदासीनोऽव्यलोकयत् ॥३॥

अर्थ—दोनों भाइयों के धनुषबाण आदि अस्त्र शस्त्र जो सेवकों ने उठाये हुए थे जिनको सीता ने मालादिकों से अलङ्कृत किया हुआ था, मार्ग में जाते हुए उक्त तीनों को अयोध्यावासी श्रीमान् महलों के शिखर पर तथा विमानादि द्वारा उदासीनता से देखते थे ॥

नहि रथ्याः स्म शक्यन्ते गन्तुं बहुजनाकुलाः।
आरुह्यतस्मात्प्रासादान्दीनाःपश्यन्तिराघवम् ॥४॥
पदातिं सानुजं दृष्ट्वा ससीतं च जनास्तदा।
ऊचुर्बहुजना वाचः शोकोपहतचेतसः ॥ ५ ॥

अर्थ—बहुत मनुष्यों से भरी हुई गलियों में चलना कठिन था, इसलिये लोग महलों के ऊपर चढ़कर बड़े दीन हो राम को देखने लगे, लक्ष्मण और सीता के साथ राम को पैदल देखकर शोक से आवृत्त चित्त वाले सब लोग अनेक प्रकार की बातें करते थे, कि :—

यं यान्तमनुयातिस्म चतुरङ्गबलं महत्।
तमेकं सीतया सार्धमनुयातिस्म लक्ष्मणः ॥६॥
ऐश्वर्य्यस्य रसज्ञः सन्कामानां चाकरो महान्।
नेच्छत्येवानृतं कर्तुं वचनं धर्मगौरवात् ॥ ७ ॥

अर्थ—जिसके चलने पर बड़ी भारी चतुरङ्ग सेना पीछे चलती थी वह आज सीता सहित अकेला जारहा है जिसके पीछे केवल लक्ष्मण चलरहा है, ऐश्वर्य्य के तत्व का जानने वाला तथा बड़ी से बड़ी शुभ कामनाओं का करने वाला धर्म के गौरव से पिता को असत्यवादी कहलाना नहीं चाहता ॥

या न शक्या पुरा द्रष्टुं भूतैराकाशगैरपि।
तामद्य सीतां पश्यन्ति राजमार्गगता जनाः ॥८॥

अंगरागोचितां सीतां रक्तचन्दन सेविनीम् ।
वर्षमुष्णं च शीतं च नेष्यत्याशु विवर्णताम् ॥१०॥

अर्थ—जिस सीता को आकाश में उड़ने वाले पक्षी भी पहले नहीं देख सकते थे उसी सीता को आज राजमार्ग में चलते हुए लोग देख रहे हैं, अंगराग=सुगन्धित पदार्थों के लगाने योग्य, रक्तचन्दन के सेवन करनी वाली सीता के रंग को वर्षा, गरमी तथा सर्दी बदल देगी ॥

अद्यनूनं दशरथः सत्त्वमाविश्य भाषते ।
नहिराजा प्रियंपुत्रं विवासयितुमर्हति ॥ ११ ॥
निर्गुणस्यापि पुत्रस्य कथं स्याद्विनिवासनम् ।
किं पुनर्यस्य लोकोयं जितोवृत्तेन केवलम् ॥१२॥

अर्थ—आज दशरथ सचाई के आवेश में ऐसा भाषण करते हैं राजा अपने प्रिय पुत्र को वनवास नहीं देंगे, क्योंकि कोई अपने निर्गुण पुत्र को भी नहीं निकालता तो जिसने केवल अपने प्रिय स्वभाव से ही सबको वशीभूत किया हुआ है ऐसे पुत्र का कौन तिरस्कार करता है ॥

आनृशंस्यमनुक्रोशः श्रुतं शीलं दमः शमः ।
राघवं शोभयन्त्येते षड्गुणाः पुरुषर्षभम् ॥ १३ ॥
तस्मात्तस्योपघातेन प्रजाः परमपीडिताः ।
औदकानीव सत्त्वानि ग्रीष्मे सलिलसंक्षयात्॥१४॥

अर्थ—अहिंसा, दया, शास्त्र, शील, शम, दम, यह षट्गुण पुरुषश्रेष्ठ राम को शोभायमान कररहे हैं, इसलिये राम की

पीड़ा से सारी प्रजायें दुःख को प्राप्त हैं, जैसे ग्रीष्मऋतु में जल का अभाव होजाने से जल के जीव दुःखी होजाते हैं ॥

पीडया पीडितं सर्वं जगदस्य जगत्पतेः ।
मूलस्येवोपघातेन वृक्षः पुष्पफलोपगः ॥ १५ ॥

अर्थ-इस जगत्पति=अयोध्यापति की पीड़ा से हम सब पीड़ित=दुःखित होरहे हैं, जैसे मूल=जड़ पर चोट लगने से फल पुष्प सहित सारा वृक्ष पीड़ित होता है ॥

मूलं ह्येष मनुष्याणां धर्मसारो महाद्युतिः ।
पुष्पं फलं च पत्रं च शाखाश्चास्येतरेजनाः ॥१६॥

अर्थ-इसी प्रकार महातेजस्वी, धर्म के तत्त्व को जानने वाले राम हम सब के मूल और हम सब इतर पुरुष पुष्प, फल, पत्र और शाखाओं के समान हैं ॥

ते लक्ष्मण इव क्षिप्रं सपत्न्यः सहबान्धवाः ।
गच्छन्तमनुगच्छामो येन गच्छति राघवः ॥१७॥
उद्यानानि परित्यज्य क्षेत्राणि च गृहाणि च ।
एकदुःखसुखारामममनुगच्छामधार्मिकम् ॥ १८ ॥

अर्थ-सो हम सब लक्ष्मण के समान शीघ्र ही अपनी पत्नियों और बान्धवों सहित जिस मार्ग से राम जायंगे उसी मार्ग द्वारा उनके पीछे हम जावेंगे, बाग बगीचे, क्षेत्र तथा घर छोड़कर एक दुःख सुख वाले हुए धार्मिक राम के पीछे गमन करेंगे ॥

समुद्धृतनिधानानिपरिध्वस्ताजिराणि च ।
उपात्तधनधान्यानिहृतसाराणिसर्वशः ॥ १९ ॥

रजसाभ्यवकीर्णानिपरित्यक्तानि दैवतैः ।
मूषकैः परिधावद्भिरुद्बिलैरावृतानि च ॥ २० ॥

अर्थ—और सब मकान विना झाड़े पोंछे गिरे परे तथा जीर्ण हुए और विना स्वामी के सब धन वा अन्य चीज़े अस्तं व्यस्त हुईं, देवताओं से त्यागे हुए चारो ओर कूड़ा करकट से भरे, जहां तहां विल बनाय इधर उधर चूहे दौड़ते हुए तथा उद्‌विलाओं से आवृत और :—

अपेतोदक धूमानि हीनसंमार्जनानि च ।
प्रणष्टबलिकर्मेज्यामंत्रहोमजपानि च ॥ २१ ॥
दुष्कालेनेव भग्नानिभिन्नभाजनवंति च ।
अस्मत्त्यक्तानि कैकेय्या वेश्मानिप्रतिपद्यताम्॥२२॥

अर्थ—जल तथा अग्नि के विना पवित्रता से हीन, बलिकर्म, अग्निहोत्र और जप तप से शून्य, दुर्भिक्ष के समान टूटे फूटे वर्त्तन ठौर २ पड़े हुए, ऐसे हम से त्यागे हुए घरों को कैकेयी सम्भाले ॥

वनं नगरमेवास्तु येन गच्छति राघवः ।
अस्माभिश्च परित्यक्तं पुरं संपद्यतां वनम् ॥२३॥

अर्थ—वह वन नगर ही होजायगा जहां राम जायंगे और हम से छोड़ा हुआ पुर वन बनजायगा ॥

विलानिदंष्ट्रिणःसर्वेसानूनिमृगपक्षिणः ।
त्यजंत्वस्मद्भयाद्भीतागजाःसिंहावनान्यपि ॥२४॥

अस्मत्त्यक्तंप्रपद्यन्तुसेव्यमानंत्यजन्तु च ।
तृण मांस फलादानं देशंव्यालमृगद्विजम् ॥२५॥

अर्थ–हम लोगों से भयभीत होकर सर्प बिल छोड़ देंगे, सब मृग, पक्षीगण, हाथी और सिंह वन का परित्याग कर भागेंगे, सो अच्छा है हम से त्यागी हुई अयोध्या में सब वन के जीव आकर बसें, सब वन तृण, मांस तथा फलादि से हीन होजाय और देश में जगह २ सर्प, पक्षी तथा मृगगण घूमें ॥

प्रपद्यतां हि कैकेयी सपुत्रा सहबान्धवैः ।
राघवेण वयं सर्वे वने वत्स्यामनिर्वृताः ॥ २६ ॥
इत्येवं विविधा वाचो नानाजनसमीरिताः ।
शुश्राव राघवः श्रुत्वा न विचक्रेऽस्य मानसम् ॥

अर्थ–अब अपने पुत्र के सहित कैकेयी यह सब कुछ सम्भाले, हम सब बान्धवों सहित राम के साथ आनन्द से वन में रहेंगे,इत्यादि विविध प्रकार की बातें अनेक लोगों से सुनते हुए राम के मन में कोई विकार नहीं हुआ ॥

स तु वेश्म पुनर्मातुःकैलासशिखरप्रभम् ।
अभिचक्रामधर्मात्मामत्तमातंगविक्रमः ॥ २७॥
विनीत वीर पुरुषः प्रविश्यतुनृपालयम् ।
ददर्शावस्थितंदीनंसुमन्त्रमविदूरतः ॥२८॥

अर्थ–मत्त हाथी के समान पराक्रमी धर्मात्मा राम कैलाश की चोटी के तुल्य माता कैकेयी के महल को पुनः प्राप्त होकर राजा

के स्थान में पहुंचे जहां बहुत से विनीत पुरुष खड़े थे, और आगे चलकर देखा तो दुःखी हुए सुमंत्र राजा के समीप उपस्थित हैं ॥

प्रतीक्षमाणोऽभिजनंतदार्तमनार्तरूपः
प्रहसन्निवाथ । जगाम रामः पितरं
दिदृक्षुःपितुर्निदेशं विधिवच्चिकीर्षुः ॥ २९ ॥

अर्थ—सब दीन दुःखी लोगों को देखते हुए और स्वयं पीड़ित न हो हंसते हुए के समान राजा की आज्ञा विधिवत् पालन करने की इच्छा वाले राम पिता के दर्शनों को गये ॥

पितुर्निदेशेन तु धर्मवत्सलो वनप्रवेशेकृत-
बुद्धिनिश्चयः । स राघवः प्रेक्ष्य सुमन्त्रमब्र-
वीन्निवेदयस्वागमनं नृपाय मे ॥२०॥

अर्थ—धर्मप्रिय राम जिसने पिता की आज्ञा से वनवास निश्चय करलिया है वह पिता के समीप सुमन्त्र को खड़ा देखकर बोले कि राजा को मेरा आना निवेदन करदीजिये ॥

इति एकोनत्रिंशः सर्गः

अथ त्रिंशः सर्गः

स रामप्रेषितःक्षिप्रंसंतापकलुषेन्द्रियम् ।
प्रविश्य नृपतिं सूतो निःश्वन्तं ददर्श ह ॥ १ ॥

उपरक्तमिवादित्यं भस्मच्छन्नमिवानलम् ।
तटाकमिवनिस्तोयमपश्यज्जगतीपतिम् ॥ २ ॥
अबोध्य च महाप्राज्ञः परमाकुलचेतनम् ।
राममेवानुशोचन्तं सूतः प्रांजलिरब्रवीत् ॥ ३ ॥

अर्थ–राम के भेजे हुए सुमन्त्र शीघ्र ही राजा के निकट गये और राजा को संताप से व्याकुलेन्द्रिय देखा, उस समय राजा की ऐसी दशा थी जैसे राहुग्रसित सूर्य्य,भस्म=राख में दबी हुई अग्नि तथा पानी बिन तालाब की दशा होती है, इसी अवस्था में बुद्धिमान सुमन्त्र राम के वनवास काही शोक करते हुए अत्यन्त व्याकुल चित्तवाले महाराज से हाथ जोड़कर बोले कि :—

अयं स पुरुषव्याघ्रो द्वारि तिष्ठति ते सुतः ।
ब्राह्मणेभ्यो धनं दत्वा सर्वं चैवोपजीविनाम् ॥४॥
स त्वां पश्यतु भद्रं ते रामः सत्यपराक्रमः ।
सर्वान्सुहृद आपृच्छ्य त्वामिदानीं दिदृक्षते ॥५॥

अर्थ–हे महाराज ! वह आपका श्रेष्ठ पुत्र राम ब्राह्मणों और अपने उपजीवियों को अपना सम्पूर्ण धन देकर आपके द्वार पर खड़ा है, वह सत्यपराक्रमी राम अपने सब सुहृद्जनों से पूछकर अब आपका दर्शन करने के लिये आया है ॥

गमिष्यति महारण्यं तं पश्यं जगतीपते ।
वृतं राजगुणैः सर्वैरादित्यमिवरश्मिभिः ॥ ६ ॥

स सत्यवाक्यो धर्मात्मा गाम्भीर्यात्सागरोपमः।
आकाश इव निष्पंको नरेन्द्रः प्रत्युवाच तम् ॥७॥

अर्थ—हे पृथिवीपते ! अब राम महावन को जारहे हैं आप उनको देखें जो रश्मियों से सूर्य की भांति सब राजगुणसम्पन्न हैं, सुमन्त्र का यह वचन सुनकर सत्यभाषी धर्मात्मा राजा जो गंभीरता में समुद्र के तुल्य तथा आकाश की भांति निर्लेप हैं वह सुमन्त्र से बोले कि :—

सुमन्त्रानय मे दारान्ये केचिदिहमामकाः ।
दारैः परिवृतः सर्वैर्द्रष्टुमिच्छामि राघवम् ॥ ८ ॥
सोऽन्तःपुरमतीत्यैव स्त्रियस्ता वाक्यमब्रवीत् ।
आर्या ह्वयति वो राजा गम्यतां तत्र माचिरम् ॥९॥

अर्थ—हे सुमन्त्र ! मेरी स्त्रियों को यहां बुला लाओ, और जो कोई और भी वहां मेरे हित हैं उन्हें भी ले आओ, उन सब के सहित उस धार्मिक पुत्र को देखना चाहता हूं, सुमन्त्र शीघ्र ही अन्तःपुर में पहुंचकर उन सब स्त्रियों से बोले कि हे आर्याओ ! आपको राजा बुलाते हैं शीघ्र चलें, विलम्ब न हो ॥

एवमुक्ताः स्त्रियः सर्वाः सुमन्त्रेणनृपाज्ञया ।
प्रचक्रमुस्तद्भवनं भर्तुराज्ञाय शासनम् ॥ १० ॥
आगतेषु च दारेषु समवेक्ष्य महीपतिः ।
उवाच राजा तं सूतं सुमन्त्रानय मे सुतम् ॥ ११ ॥

अर्थ—सुमन्त्र द्वारा राजा की आज्ञानुसार वह सब स्त्रियें

उस भवन को गई जहां महाराज थे, स्त्रियों के पहुंचने पर राजा ने उनको देख सुमन्त्र से कहा कि अब तुम मेरे पुत्र को ले आओ ॥

स सूतो राममादाय लक्ष्मणं मैथिलीं तथा ।
जगामाभिमुखस्तूर्णं संकाशं जगतीपतेः ॥ १२ ॥
स राजापुत्रमायान्तं दृष्ट्वाचारात्कृताञ्जलिम् ।
उत्पपातासनात्तूर्णमार्तः स्त्रीजनसंवृतः ॥ १३ ॥
सोऽभिदुद्राव वेगेन रामं दृष्ट्वा विशांपतिः ।
तमसंप्राप्य दुःखार्तः पपातभुविमूर्च्छितः ॥१४॥

अर्थ—तब सुमन्त्र राम, लक्ष्मण तथा सीता को साथ लेकर शीघ्र ही राजा के सन्मुख गये, राजा अपने पुत्र राम को हाथ जोड़े निकट आता देख दुःखित हुआ शीघ्र ही स्त्रियों सहित आसन से उठकर आगे बढ़ा, पर राम के समीप पहुंचने से प्रथम ही दुःख में पीड़ित हुआ मूर्च्छित होकर पृथिवी पर गिरपड़ा ॥

तं रामोऽभ्यपतत् क्षिप्रं लक्ष्मणश्च महारथः ।
विसंज्ञमिव दुःखेन सशोकं नृपतिं तदा ॥ १५ ॥
तं परिष्वज्य बाहुभ्यां तावुभौ रामलक्ष्मणौ ।
पर्यंके सीतया सार्धं रुदन्तः समवेशयन् ॥ १६ ॥
अथ रामो मुहूर्तस्य लब्धसंज्ञंमहीपतिम् ।
उवाच प्राञ्जलिर्बाष्पशोकार्णव परिप्लुतम् ॥१७॥

अर्थ—तब राम और महारथ लक्ष्मण दुःख से अचेत से

हुए सशोक राजा के समीप पहुंचे, और दोनों भाइयों ने भुजाओं मे पकड़ राजा को गले लगा सीता सहित रोते हुओं ने पलंग पर लिटाया, कुछ काल पश्चात् शोकसागर में डूबे हुए राजा को जब होश आया तब उनसे राम बोले कि :—

आपृच्छे त्वां महाराज सर्वेषामीश्वरोऽसि नः।
प्रस्थितं दण्डकारण्यं पश्य त्वं कुशलेन माम्॥१८॥
लक्ष्मणं चानुजानीहि सीता चान्वेतु मां वनम्।
कारणैर्बहुभिस्तथ्यैर्वार्यमाणौ न चेच्छतः॥ १९॥

अर्थ—हे महाराज ! मैं आज्ञा मांगता हूं, आप हम सब के स्वामी हैं, अब दण्डक वन को जाते समय आप मुझको कल्याण की दृष्टि से देखें, और लक्ष्मण तथा सीता को भी मेरे साथ वन जाने की आज्ञा दीजिये, इनको कई प्रकार से सत्य कारण बतलाकर भी रोका गया है पर यह नहीं रुकते हैं॥

अनुजानीहि सर्वान्नः शोकमुत्सृज मानद।
लक्ष्मणं मां च सीतां च प्रजापतिरिवात्मजान्॥२०॥
प्रतीक्षमाणमव्यग्रमनुज्ञां जगतीपतेः।
उवाच राजा संप्रेक्ष्य वनवासाय राघवम्॥ २१॥

अर्थ—इसलिये अब आप शोक को छोड़कर लक्ष्मण, सीता और मुझको वन जाने की आज्ञा दीजिये, जैसे प्रजापति ने अपने पुत्रों को तप करने के लिये आज्ञा दी थी, यह कहकर राम राजा की आज्ञा की प्रतीक्षा ही करते थे कि महाराज वनवास के कुछ विपरीत ही बोले॥

अहं राघव कैकेय्या वरदानेन मोहितः ।
अयोध्यायां त्वमेवाद्य भवराजा निगृह्यमाम् ॥२२॥
एवमुक्तो नृपतिना रामोधर्मभृतांवरः ।
प्रत्युवाचांजलिंकृत्वा पितरं वाक्यकोविदः ॥२३॥
भवान्वर्षसहस्रायुः पृथिव्यानृपतेपतिः ।
अहं त्वरण्येवत्स्यामि न मे राज्यस्य कांक्षिता॥२४॥

अर्थ—हे राम ! मैं कैकेयी के वरदान से मोहित हुआ २ यही कहूंगा कि मुझको हटाकर तुम आज ही अयोध्या के राजा बनो, तब धर्मधारियों में श्रेष्ठ बुद्धिमान राम राजा के ऐसे वचन सुनकर हाथ जोड़ बोले कि हे महाराज आपकी बड़ी उमर हो और आप बहुत दिनों तक पृथिवी के राजा बने रहें, मैं तो वन में जाकर बसुंगा मुझको राज्य की आकांक्षा नहीं ॥

नव पञ्च च वर्षाणि वनवासे विहृत्य ते ।
पुनः पादौ ग्रहीष्यामि प्रतिज्ञान्ते नराधिप ॥२५॥
रुदन्नार्तः प्रियंपुत्रं सत्यपाशेन संयतः ।
कैकेय्या चोद्यमानस्तु मिथो राजा तमब्रवीत्॥२६॥

अर्थ—हे नरपते ! चौदहवर्ष वन में विचरकर प्रतिज्ञा के अंत में फिर आपके चरण ग्रहण करूंगा, कैकेयी से एकान्त में प्रेरा हुआ तथा सत्य की पाश में बंधा हुआ राजा दुःखी हो रोता हुआ प्यारे पुत्र से बोला कि :—

श्रेयसे वृद्धये तात पुनरागमनाय च ।
गच्छस्वारिष्टमव्यग्रः पन्थानमकुतोभयम् ॥२७॥

अर्थ–हे तात ! कल्याण, वृद्धि और फिर आने के लिये जाओ, तुम्हारा मार्ग तुम्हारे लिये दुःख से रहित हुआ भयप्रद नहो ॥

अद्य त्विदानीं रजनीं पुत्र मा गच्छ सर्वथा ।
एकाहं दर्शनेनापि साधु तावच्चराम्यहम् ॥२८॥
मातरं मां च संपश्यन् वसेमामद्य शर्वरीम् ।
तर्पितः सर्वकामैस्त्वं श्वः काल्ये साधयिष्यसि ॥२९॥

अर्थ–हे पुत्र ! आज की रात सर्वथा न जा, एक दिन और भी देखकर अपने दिल को शीतल करलूं, अपनी माता तथा मेरी ओर देखकर आज की रात रह, सम्पूर्ण कामनाओं से तुझे तृप्त करेंगे, कल समय पर चले जाना, आज विलम्ब भी अधिक होगया है॥

दुष्करं क्रियते पुत्र सर्वथा राघव प्रिय ।
त्वया हि मत्प्रियार्थं तु वनमेवमुपाश्रितम ॥३०॥
नचैतन्मे प्रियंपुत्रशपे सत्येन राघव ।
छन्नया चलितस्त्वस्मिस्त्रियाभस्माग्निकल्पया ॥३१॥

अर्थ–हे पुत्र ! तू बड़ा दुष्करकर्म करता है जो मेरे कल्याणार्थ वन को जारहा है, हे पुत्र ! मैं अपने सत्य की शपथ खाता हूं कि मुझको तुम्हारा वन जाना किसी प्रकार भी प्रिय नहीं, मैं छिपे हुए भाव वाली स्त्री से पतित कियागया जो भस्म में दबी हुई अग्नि के समान थी ॥

वंचनायातुलब्धामेतां त्वं निस्तर्तुमिच्छसि ।
अनयावृत्तसादिन्या कैकेय्याभिप्रचोदितः ॥३२॥
नचैतदाश्चर्यतमं यत्त्वं ज्येष्ठः सुतो मम ।
अपानृत कथं पुत्र पितरं कर्तुमिच्छसि ॥३३॥

अर्थ–कुलचरित्र के नाश करने वाली इस कैकेयी से जो मुझे वंचना मिली है अर्थात् ठगा गया हूं अथवा धोखा लगा है तू उससे मेरा निस्तारा चाहता है, सो यह कोई आश्चर्यजनक बात नहीं जो तैने ज्येष्ठ पुत्र होकर मेरे सत्य की रक्षा की है, क्योंकि तुम्हारा यह धर्म ही है ॥

अथ रामस्तदा श्रुत्वा पितुरार्तस्य भाषितम् ।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा दीनो वचनमब्रवीत् ॥३४॥
प्राप्स्यामि यानद्य गुणान्को मे श्वस्तान्प्रदास्यति ।
अपक्रमणमेवातः सर्वकामैरहं वृणे ॥ ३५ ॥

अर्थ–राम पिता के उक्त वचन सुनकर दीन हुआ भाई लक्ष्मण के सहित यह बचन बोला कि मैं आज जिन गुणों को प्राप्त होउंगा कल वह मुझे कौन देगा अर्थात् आज जाने में जो गुण है वह कल नहीं, इसलिये यहां से जाना ही सारी कामनाओं की पूर्ति है यही मैं आपसे मांगता हूं ॥

इयं स राष्ट्रा सजनाधनधान्य समाकुला ।
मयाविसृष्टा वसुधा भरताय प्रदीयताम् ॥ ३६ ॥
वनवास कृताबुद्धिर्नच मेऽद्य चलिष्यति ।
यस्तु युद्धे वरो दत्तः कैकेय्यै वरदत्वया ॥ ३७ ॥

दीयतां निखिलेनैव सत्यस्त्वं भव पार्थिव ।
अहं निदेशं भवतो यथोक्तमनुपालयन् ॥ ३८ ॥
चतुर्दश समा वत्स्ये वने वनचरैः सह ।
मा विमर्शो वसुमती भरतायप्रदीयताम् ॥ ३९ ॥

अर्थ—और यह राज्य, जन तथा धनधान्य सहित मैंने यह पृथिवी छोड़ी आप यह सब कुछ भरत को दें, आज वनवास के लिये हुई मेरी बुद्धि को चलायमान न करें, जो आपने युद्ध में कैकेयी को वर दिया है वह पूर्ण हो, हे पृथिवीपते ! आप सत्यवादी वनिये, मैं आपकी आज्ञा का यथोक्त पालन करता हुआ बनचरों के साथ चौदहवर्ष वन में रहुंगा, आप कुछ सोच न करें, यह पृथिवी भरत को दीजिये ॥

नहिमेकांक्षितं राज्यं सुखमात्मनिवाप्रियम् ।
यथा निदेशं कर्तुं वै तवैवर रघुनन्दन ॥४०॥

अर्थ—हे रघुननन्द ! मुझे राज्य की इच्छा नहीं और न अपने लिये सुख वा प्रिय की इच्छा है, मैं केवल आपकी आज्ञा पूर्ण करना चाहता हूं ॥

अपगच्छतु ते दुःखं मा भूर्बाष्पपरिप्लुतः ।
नहि क्षुभ्यति दुर्धर्षः समुद्रः सरितांपतिः ॥ ४१ ॥
नैवाहं राज्यमिच्छामि न सुखं नच मेदिनीम् ।
नैवसर्वानिमान्कामान्न स्वर्गं नच जीवितुम् ॥४२॥

अर्थ—हे महाराज आपका दुःख दूर हो, आप आंसुओं से

परिप्लुत न हों अर्थात् आंसुओं की धारा न बहायें, जैसे नदियों का पति दुर्धर्ष समुद्र कभी क्षुब्ध नहीं होता इसी प्रकार आप क्षोभ से रहित होकर रहें, न मैं राज्य चाहता हूं, न सुख, न पृथिवी, न इन सारी कामनाओं को और न स्वर्ग तथा जीवन चाहता हूं ॥

त्वामहं सत्यमिच्छामि नानृतं पुरुषर्षभ ।
प्रत्यक्षं तव सत्येन सुकृते नच्च ते शपे ॥ ४३ ॥
न च शक्यं मया तात स्थातुं क्षणमपि प्रभो ।
स शोकंधारयस्वेमं नहि मेऽस्ति विपर्ययः ॥४४॥

अर्थ—हे पुरुषश्रेष्ठ ! मैं आपके सन्मुख सत्य तथा पुण्य की शपथ खाता हूं कि मैं आपको सत्यप्रतिज्ञ किया चाहता हूं अनृतभाषी नहीं, हे तात ! हे प्रभो ! मैं यहां क्षणभर भी नहीं ठहरसक्ता, आप शोक न करें, अब मुझसे उलटा न होसकेगा ॥

अर्थितो ह्यस्मि कैकेय्या वनं गच्छाति राघव ।
मया चोक्तं व्रजामीतितत्सत्यमनुपालये ॥ ४५ ॥
मा चोत्कण्ठां कृथा देव वने रंस्यामहे वयम् ।
प्रशान्त हरिणाकीर्णे नाना शकुनि नादिते ॥४६॥

अर्थ—हे राघव ! मुझ से कैकेयी ने कहा कि " तू वन जा " और मैंने कहा कि " जाता हूं " सो मैं इस सत्य का पालन करता हूं, हे देव ! आप मेरे लिये उत्कण्ठा न करें मैं शान्त हरिणों से भरे हुए, नाना सुरीले पक्षियों से नादित अर्थात्

जिसमें नाना सुर वाले पक्षि उच्च स्वर से गान कररहे हैं ऐसे वन में आनन्द से रहुंगा ॥

पिता हि दैवतं तात देवतानामपिस्मृतम् ।
तस्माद्दैवतमित्येव करिष्यामि पितुर्वचः ॥ ४७ ॥
चतुर्दशसु वर्षेषु गतेषु नृपसत्तम ।
पुनर्द्रक्ष्यसि मां प्राप्तं संतापोऽयं विमुच्यताम् ॥४८॥

अर्थ–हे तात ! पिता देवताओं का देवता मानागया है सो मैं देवता का वचन जानकर ही पिता के वचन को पूर्ण करूंगा, हे नरश्रेष्ठ ! चौदहवर्ष व्यतीत होने पर फिर मुझे यहां आया हुआ देखेंगे, आप संताप न करें ॥

येन संस्तम्भनीयोऽयं सर्वो बाष्पगलो जनः ।
स त्वं पुरुषशार्दूल किमर्थं विक्रियां गतः ॥ ४९ ॥

अर्थ–हे पुरुषशार्दूल ! इन सब रोते हुए जनों को जिस आपने रोकना है वह आप किस कारण विकार को प्राप्त हैं, आप सावधान होकर इन सब को सम्भालें ॥

पुरं च राष्ट्रं च मही च केवलामया विसृष्टाभ-
रताय दीयताम् । अहं निदेशं भवतोऽनुपा-
लयन्वनं गमिष्यामि चिराय सेवितुम् ॥५०॥

अर्थ–मैं बार २ कहता हूं कि यह अयोध्या, राज्य अथवा यह पृथिवी मैंने प्रसन्नतापूर्वक छोड़दी आप भरत को दीजिये, मैं केवल आपकी आज्ञा सिरधारकर चिरकाल के लिये अभी वन को जाता हूं ॥

मया विसृष्टां भरतो महीमिमां स शैल खण्डा सपुरोपकाननाम् । शिवासुसीमास्वनुशास्तु केवलंत्वया यदुक्तं नृपते तथास्तु तत् ॥५१॥

अर्थ–मेरी त्याग कीहुई यह सब भूमि जिसमें पहाड़, वन और जिसकी सीमा बहुत सुन्दर है उसका पालन केवल भरत करें, हे महाराज ! आपने जो वचन कैकेयी को दिये हैं वह सत्य हों, इसलिये मैं वन जाता हूं ॥

न मे तथा पार्थिव दीयते मनो महत्सुकामेषु न चात्मनः प्रिये । यथा निदेशे तव शिष्ट-संमते व्यपैतु दुःखं तव मत्कृतेऽनघ ॥५२॥

अर्थ–हे राजन् ! मेरा मन किसी बड़े काम तथा किसी प्रिय पदार्थ में ऐसा रत नहीं जैसा तुम्हारी आज्ञापालन में लगा हुआ है, हे अनघ ! मेरे निमित्त जो आपको दुःख होरहा है उसका त्याग कीजिये ॥

तदद्यनैवानघराज्यमव्ययं न सर्व कामान्-वसुधां न मैथिलीम् । नचिंतितं त्वामनृते-नयोजयन्वृणीय सत्यंव्रतमस्तु ते तथा ॥५३॥

अर्थ–हे निष्पाप ! मैं आपको मिथ्यावादी करके निरन्तर रहने वाला राज्य, सब कामनाओं के पूर्ण करने वाली पृथिवी और सीता को नहीं चाहता, मैं आपको अनृत से निकालकर जैसे सत्यप्रतिज्ञ हों वह करना चाहता हूं ॥

फलानि मूलानि च भक्षयन् वने गिरींश्च
पश्यन् सरितः सरांसि च । वन प्रविश्यैव
विचित्रपादपं सुखी भविष्यामि तवास्तु निर्वृतिः॥५४॥

अर्थ—मैं वन में फल मूल भक्षण कर, पर्वत, नदियां और सरोवर देखता हुआ विचित्र वृक्षों वाले वन में प्रवेशकरके आनन्दपूर्वक रहुंगा, आप भी शान्त होकर सुख से वसें ॥

एवं स राजा व्यसनाभिपन्नस्तापेन दुःखेन
च पीड्यमानः । आलिंग्यपुत्रं सुविनष्ट संज्ञो
भूमिं गतो नैव विचेष्ट किंचित् ॥ ५५ ॥

अर्थ—राम के उक्त प्रकार कथन करने पर राजा दुःख से घिरा हुआ तथा शोक, संताप से मुरझाया हुआ पुत्र को आलिङ्गन कर मूर्च्छित हो पृथिवी पर गिर पड़ा और फिर कुछ चेष्टा नहीं की ॥

देव्यः समस्ता रुरुदुः समेतास्तां वर्जयित्वा
नरदेवपत्नीम् । रुदन् सुमन्त्रोऽपि जगाम-
मूर्छां हाहाकृतं तत्र बभूव सर्वम् ॥ ५६ ॥

अर्थ—तब कैकेयी के सिवाय सब रानियें रोने लगीं, सुमन्त्र भी रोते हुए मूर्छित होगये और वहां सारे भवन में हाहाकार मचगया ॥

इति त्रिंशः सर्गः

अथ एकत्रिंशः सर्गः

वाक्यवज्रैरनुपमैर्निर्भिन्दन्निवचाशुभैः ।
कैकेय्याः सर्वमर्माणि सुमन्त्रः प्रत्यभाषत ॥ १ ॥

अर्थ–इसके अनन्तर बाण समान अशुभ वाक्यों से कैकेयी के मर्म स्थानों को बींधते हुए सुमन्त्र बोले कि :—

यस्यास्तव पतिस्त्यक्तो राजा दशरथः स्वयम् ।
भर्ता सर्वस्य जगतः स्थावरस्य चरस्य च ॥ २ ॥
नह्य कार्य्यतमं किञ्चित्तव देवीह विद्यते ।
पतिघ्नीं त्वामहं मन्ये कुलघ्नीमपि चान्ततः ॥३॥

अर्थ–हे कैकेयि ! स्थावर तथा जंगम सब जगत् के भर्ता=स्वामी राजा दशरथ जो तेरे पति हैं यदि तैंने उनका स्वयं त्याग किया तो हे देवि ! तेरे लिये इस संसार में कुछ भी अकर्तव्य नहीं अर्थात् तू सब कुछ करसकती है, मैं तुझे पति का घातक और अन्ततः कुल का घात करने वाली मानता हूं ॥

यन्महेन्द्रमिवाजय्यंदुष्प्रकंप्यमिवाचलम् ।
महोदधिमिवाक्षोभ्यं संतापयसि कर्मभिः ॥ ४ ॥
मावमंस्था दशरथं भर्त्तारं वरदं पतिम् ।
भर्तुरिच्छा हि नारीणां पुत्रकोट्या विशिष्यते ॥५॥

अर्थ–जो तू इन्द्र की भांति अजीत=जिसको कोई नहीं

जीत सक्ता, पर्वत की भांति स्थिर बुद्धि वाले और समुद्र की तरह अक्षोभ=क्षोभ में न आने वाले राजा को अपने कर्मों से संतप्त कररही है, पालन पोषण कर्त्ता तथा वर के देने वाले अपने भर्त्ता=स्वामी दशरथ का अपमान न कर, स्त्रियों के लिये भर्त्ता की इच्छा पुत्र से बढ़कर है ॥

यथावयो हि राज्यानि प्राप्नुवन्ति नृपक्षये ।
इक्ष्वाकुकुलनाथेऽस्मिंस्तल्लोपयितुमिच्छसि ॥ ६ ॥
राजा भवतु ते पुत्रो भरतः शास्तु मेदिनीम् ।
वयं तत्र गमिष्यामो यत्र रामो गमिष्यति ॥ ७ ॥

अर्थ—यह प्राचीन मर्यादा चली आती है कि राजा के मरने पर आयु के अनुसार बड़ा पुत्र राज्य को प्राप्त होता है, सो तू इक्ष्वाकु कुल के नाथ के होते हुए इस मर्यादा का लोप करना चाहती है, तेरा पुत्र भरत राजा बनकर पृथिवी का शासन करे पर हम वहां जायंगे जहां राम जायगा ॥

न च ते विषये कश्चिद्ब्राह्मणो वस्तुमर्हति ।
तादृशं त्वममर्यादमद्य कर्म करिष्यसि ॥ ८ ॥
नूनं सर्वे गमिष्यामो मार्गं राम निषेवितम् ।
त्यक्ता या बान्धवैः सर्वैर्ब्राह्मणैःसाधुभिस्सदा ॥९॥
का प्रीती राज्यलाभेन तव देवि भविष्यति ।
तादृशं त्वममर्यादं कर्म कर्तुं चिकीर्षसि ॥ १० ॥

अर्थ—तेरे ऐसे अधिकृत=अधिकार वाले देश में कोई

ब्राह्मण नहीं वसेगा, जैसा वेमर्य्यादा वाला कर्म तू आज करने लगी है, यह मैं निश्चयपूर्वक कहता हूं कि हम सम्पूर्ण बान्धव, सब ब्राह्मण और साधुओं सहित तेरे राज्य का परित्याग करके हम सब वहां जावेंगे जहां राम निवास करेंगे, हे देवि! ऐसे राज्य से फिर तुझे क्या लाभ होगा जैसा तु मर्यादाहीन काम करना चाहती है ॥

आश्चर्य्यमिव पश्यामि यस्यास्तेवृत्तमीदृशम् ।
आचरन्त्या न विदृता सद्यो भवति मेदिनी ॥११॥

अर्थ—मैं आश्चर्य्य की भांति देखरहा हूं कि तेरे ऐसे आचरण करते हुए पृथिवी क्यों नहीं फटती ॥

महाब्रह्मर्षिसृष्टा वा ज्वलन्तो भीमदर्शनाः ।
धिग्वाग्दण्डा नहिं सन्ति राम प्रव्राजने स्थिताम् ॥१२॥
आम्रं छित्त्वा कुठारेण निम्ब परिचरेत्तुकः ।
यश्चेनं पयसा सिञ्चन्नैवास्य मधुरो भवेत् ॥ १३ ॥

अर्थ—महाब्रह्मऋषि वसिष्ठादि जो बड़े तेजस्वी तथा भीम दर्शन और जिनका वाक्रूप धिक्कार ही दण्ड है, वह राम के वन चले जाने पर यहां नहीं रहेंगे, और राजा को हम क्या कहें जिन्होंने आम को कुठार से काटकर निंब लगा उसकी रक्षा की है, भला निंब में दूध सिञ्चन करने से वह कभी मधुर होसक्ता है ॥

नैवं भव गृहाणेदं यदाह वसुधाधिपः ।
भर्तुरिच्छामुपास्वेह जनस्यास्य गतिर्भव ॥ १५ ॥

अर्थ–हे कैकेयि ! तू ऐसी मत हो तुझे वह करना चाहिये जो राजा कहते हैं तू भर्त्ता की इच्छा पर चलकर इन लोगों की शरण बन इसी में कल्याण है ॥

मा त्वं प्रोत्साहिता पापैर्देवराजसमप्रभम् ।
भर्तारंलोकभर्तारमसद्धर्ममुपादधाः ॥ १६ ॥
परिवादो हि ते देवि महांल्लोके चरिष्यति ।
यदि रामो वनं याति विहाय पितरं नृपम् ॥१७॥

अर्थ–हे देवि ! तू पापों से प्रेरित हुई देवराज तुल्य सब लोक के पालन करने वाले भर्त्ता से असद्धर्म का ग्रहण न करा, यदि राम पिता को घर छोड़कर वन गया तो लोक में तेरी बड़ी निन्दा फैलजायगी ॥

स्वराज्यं राघवः पातु भव त्वं विगतज्वरा ।
नहि ते राघवादन्यः क्षमः पुरवरे वसन् ॥१८॥
रामे हि यौवराज्यस्थे राजा दशरथो वनम् ।
प्रवेक्ष्यति महेष्वासः पूर्ववृत्तमनुस्मरन् ॥१९॥

अर्थ–इससे उचित यही है कि अपने राज्य को राम पावें और तू विगतज्वर=शोक से रहित हो, जैसा राम तुम्हारा हितैषी है वैसा अयोध्या में कोई तुम्हारा हितू नहीं. राम के राजा होजाने पर महाधनुर्धारी राजा दशरथ बड़ों की मर्यादानुसार वन में प्रवेश करेंगे अर्थात् वानप्रस्थी बनेंगे ॥

इति सान्त्वैश्च तीक्ष्णैश्च कैकेयीं राजसंसदि ।
भूयः संक्षोभयामास सुमन्त्रस्तु कृताञ्जलिः ॥२०॥

नैव सा क्षुभ्यते देवी नच स्म परिदूयते ।
नचास्या मुखवर्णस्य लक्ष्यते विक्रिया तदा ॥२१॥

अर्थ—इस प्रकार मधुर और तीक्ष्ण वाक्यों से राजसभा में सुमन्त्र ने हाथ जोड़कर कैकेयी को अत्यन्त क्षुब्ध किया, परन्तु वह देवी न क्षुब्ध हुई, न संतप्त हुई और न उसके मुख का रंग फीका पड़ा, वह उसी प्रकार अपनी हठ पर दृढ़ रही ॥

इति एकत्रिंशः सर्गः

अथ द्वात्रिंशः सर्गः

सं०—अब राजा सेना आदि सामान राम के साथ वन भेजने के लिये सुमन्त्र से कथन करते हैं :—

ततः सुमन्त्रमैक्ष्वाकः पीडितोऽत्र प्रतिज्ञया ।
सबाष्पमतिनिःश्वस्य जगादेदं पुनर्वचः ॥ १ ॥

अर्थ—इसके अनन्तर इक्ष्वाकुओं के राजा दशरथ अपनी प्रतिज्ञा से पीड़ित हुए आंसुओं सहित लम्बा श्वास भरकर सुमन्त्र से फिर बोले कि :—

सूत रत्नसुसम्पूर्णा चतुर्विधबला चमूः ।
राघवस्यानुयात्रार्थं क्षिप्रं प्रतिधीयताम् ॥२॥
ये चैनमुपजीवन्ति रमते यैश्च वीर्यतः ।
तेषां बहुविधं दत्त्वा तानप्यत्र नियोजय ॥३॥

अर्थ–हे सुमन्त्र ! उत्तम रत्नों से पूर्ण चारों प्रकार की सेना राम के साथ चलने के लिये शीघ्र तैयार करदें, और जो इसके नौकर चाकर अथवा इसके जो मित्र हैं जिनके साथ यह बल पराक्रम से रमण करता है उन्हें भी बहुतसा धन देकर साथ चलने की आज्ञा दें ॥

आयुधानि च मुख्यानि नागराः शकटानि च ।
अनुगच्छन्तु काकुत्स्थं व्याधाश्चारण्यकोविदाः॥४॥
धान्यकोशश्चयः कश्चिद्धनकोशश्चमामकः ।
तौ राममनुगच्छेतां वसन्तं निर्जने वने ॥ ५ ॥

अर्थ–मुख्य २ आयुध=शस्त्र,नगर वासी जन तथा गाड़ियां राम के पीछे २ चलें और वन के जानने वाले व्याध लोगों को भी साथ भेजदें, मेरा अनाज और धन का कोष भी निर्जन वन में वास करते हुए राम के साथ जावे, क्योंकि :—

यजन्पुण्येषु देशेषु विसृजंश्चाप्त दक्षिणाः ।
ऋषिभिश्चापिसंगम्यप्रवत्स्याति सुखं वने ॥ ६ ॥
भरतश्च महाबाहुरयोध्यांपालयिष्यति ।
सर्वकामैः पुनः श्रीमान् रामः संसाध्यतामिति ॥७॥

अर्थ–पुण्य स्थानों में यज्ञ करता हुआ तथा पर्याप्त=पुष्कल दक्षिणा देता हुआ ऋषियों के साथ मिलकर वन में सुख पूर्वक वास करेगा, महाबाहु भरत अयोध्या का पालन करे और श्रीमान राम को सब कामनाओं से युक्त करके वन को भेजो ॥

एवं ब्रुवति काकुत्स्थे कैकेय्या भयमागतम् ।
मुखं चाप्यगमच्छोषं स्वरश्चापि न्यरुध्यत ॥ ८ ॥
सा विषण्णा च संत्रस्त मुखेन परिशुष्यता ।
राजानमेवाभिमुखी कैकेयी वाक्यमब्रवीत् ॥ ९ ॥

अर्थ—राजा दशरथ के उक्त प्रकार कथन करने पर कैकेयी को बड़ा भय हुआ, उसका मुख शुष्क होकर स्वर रुकगया, वह उदास हो भयभीत हुई सूखते हुए मुख से राजा को अभिमुख कर बोली कि :—

राज्यंगतधनं साधो पीतमण्डां सुरामिव ।
निरास्वाद्यतमंशून्यं भरतोनाभिपत्स्यते ॥ १० ॥
कैकेय्यां मुक्तलज्जायां वदन्त्यामतिदारुणम् ।
राजा दशरथोवाक्यमुवाचायतलोचनाम् ॥ ११ ॥

अर्थ—हे राजन् ! राज्य सम्बन्धी धन तथा सेना आदि सब राम के साथ चले जावेंगे तो सुरा के सार को पान करने पश्चात् जो निस्सार द्रव्य रहजाता है उसके समान शून्य राज्य को भरत कदापि न लेगा, जब कैकेयी ने लज्जा छोड़कर ऐसे अतिदारुण वचन कहे तब राजा दशरथ उस आयतलोचना कैकेयी से बोले कि :—

वहन्तं किन्तुदासिमां नियुज्यधुरिमाहिते ।
अनार्ये कृत्यमारब्धं किन्तुपूर्वमुपारुधः ॥ १२ ॥
तस्यैतत्क्रोधसंयुक्तमुक्तंश्रुत्वावरांगना ।
कैकेयी द्विगुणं क्रुद्धा राजानमिदमब्रवीत् ॥ १३ ॥

अर्थ—हे अनार्ये ! गाड़ी में चलते हुए बैल के आर लगाकर सताने की न्यांई यह तेरा कथन है, यदि ऐसा ही करना था तो पहले ही कहती कि धन, सेना आदि सब सामान छोड़कर राम वन जायं, अब यह नहीं होसकता, इस प्रकार राजा के क्रोधयुक्त वचन सुनकर कैकेयी द्विगुण क्रोधित हो राजा से यह बोली कि:—

तवैव वंशे सगरो ज्येष्ठपुत्रमुपारुधत् ।
असमञ्ज इति ख्यातं तथायं गन्तुमर्हति ॥ १४॥
एवमुक्तो धिगित्येव राजा दशरथोऽब्रवीत् ।
व्रीडितश्च जनः सर्वः सा च तन्नावबुध्यत ॥ १५ ॥

अर्थ—आपके ही वंश में राजा सगर ने बड़े पुत्र असमञ्ज को वनवास देते समय सब भोगों से रोक दिया था वैसे ही यह राम भी जाने योग्य है, ऐसा कहने पर राजा दशरथ ने उसको बहुत धिक्कारा, कैकेयी के साथी सब लज्जित होगये पर वह न समझी ॥

तत्र वृद्धो महामात्रः सिद्धार्थो नाम नामतः ।
शुचिर्बहुमतो राज्ञः कैकेयीमिदमब्रवीत् ॥ १६ ॥
असमञ्जो गृहीत्वा तु क्रीडतः पथि दारकान् ।
सरय्वां प्रक्षिपन्नप्सु रमते तेन दुर्मतिः ॥ १७ ॥

अर्थ—तब वृद्ध प्रधानमंत्री सिद्धार्थ नामक पुरुष जो राज्य में बड़े माननीय और पवित्र थे वह कैकेयी से बोले कि असमञ्ज

मार्ग में खेलते हुए बालकों को पकड़कर सरयू के जल में फेंक प्रसन्न होता था, इसकारण वह दुर्मति था ॥

तं दृष्ट्वा नागराः सर्वे क्रुद्धा राजानमब्रुवन् ।
असमञ्जं वृणीष्वैकमस्मान्वा राष्ट्रवर्धन ॥ १८ ॥
तानुवाच ततो राजा किं निमित्तमिदं भयम् ।
ताश्चापि राज्ञा संपृष्टा वाक्यं प्रकृतयोऽब्रुवन् ॥१९॥

अर्थ—उसको देखकर सब नगर निवासी जन क्रुद्ध हुए राजा के समीप जाकर बोले हे राज्य के बढ़ाने वाले राजन्! या तो आप अकेले असमञ्ज को स्वीकार करें वा हम सबको ग्रहण करें, तब राजा ने उनसे पूछा कि यह भय आपको किसलिये है? इस प्रकार राजा के पूछने पर वह लोग बोले कि :—

क्रीडतस्त्वेष नः पुत्रान्बालानुद्भ्रान्तचेतसः ।
सरय्वांप्रक्षिपन्मौर्ख्यादतुलांप्रीतिमश्नुते ॥ २० ॥
स तासां वचनं श्रुत्वा प्रकृतीनां नराधिपः ।
तं तत्याजाहितं पुत्रं तासां प्रियचिकीर्षया ॥२१॥

अर्थ—यह हमारे खेलते हुए छोटे पुत्रों को मूर्खता से सरयू में फैंककर अतुल आनन्द मनाता है, राजा ने उन लोगों के इस प्रकार वाक्य सुन उनके प्रिय करने की इच्छा से उस अहिती पुत्र को त्याग दिया ॥

तं यानं शीघ्रमारोप्य स भार्यं स परिच्छदम् ।
यावज्जीवं विवास्योऽयमिति तानन्वशास्पिता॥२२॥

स फाल पिटकं गृह्य गिरिदुर्गाण्यलोकयत् ।
दिशः सर्वास्त्वनुचरन्स यथा पापकर्मकृत ॥२३॥

अर्थ–उसको स्त्री सहित शीघ्र ही रथ पर चढ़ा और कुछ सामान दे पिता ने सारी आयु के लिये बाहर निकालने की आज्ञा दी, वह फाल तथा पिटारी लेकर अपने पापकर्मों के अनुसार दुर्गम पर्वतों और चारो दिशाओं में घूमता रहा ॥

इत्येनमत्यजद्राजा सगरो वै सुधार्मिकः ।
रामः किमकरोत्पापं येनैवमुपरुध्यते ॥ २४ ॥

नहि कञ्चन पश्यामो राघवस्यागुणं वयम् ।
दुर्लभो ह्यस्य निरयः शशाङ्कस्येव कल्मषम् ॥२५॥

अर्थ–इस प्रकार सुधार्मिक राजा सगर ने अपने पुत्र को त्यागा था पर राम ने क्या पाप किया है जिससे इस विचारे को इस भांति सताया जाता है, राम का हम कोई अपगुण नहीं देखते, जिसप्रकार चन्द्रमा निर्मल है इसी प्रकार यह भी दोषों से सर्वथा निर्लेप है ॥

अथवा देवि त्वं कञ्चिद्दोषं पश्यसि राघवे ।
समद्य ब्रूहि तत्त्वेन तदा रामो विवास्यते ॥ २६ ॥
अदुष्टस्य हि संत्यागः सत्पथे निरतस्य च ।
निर्दहेदपि शक्रस्य द्युतिं धर्मविरोधवान् ॥ २७ ॥
तदलं देवि रामस्य श्रिया विहतया त्वया ।
लोकतोऽपि हि ते रक्ष्यः परिवादः शुभानने ॥२८॥

अर्थ—अथवा हे देवि ! यदि तू राम में कुछ दोष देखती है तो तूही ठीक २ कह जिससे राम को निकालाजाय, जो निर्दोष तथा सन्मार्ग में स्थित है उसका त्याग इन्द्र के तेज को भी भस्म करदेता है, क्योंकि वह धर्म का विरोधि है, इसलिये हे देवि ! राम की राज्यलक्ष्मी में तुझे विघ्न डालना उचित नहीं, हे शुभानने! लोक में भी निन्दा से वचना चाहिये ॥

श्रुत्वा तु सिद्धार्थ वचो राजा श्रान्ततरस्वरः ।
शोकोपहतयावाचा कैकेयीमिदमब्रवीत् ॥ २९ ॥

अर्थ—राजा अति शान्त हो मन्त्री सिद्धार्थ के वचन सुनकर शोक से घिरी हुई वाणी द्वारा कैकेयी से बोले किः—

एतद्वचो नेच्छसि पापरूपे हितं न जानासि
ममात्मनोथवा । आस्थाय मार्गं कृपणं कुचे-
ष्टा चेष्टा हि ते साधु पथादपेता ॥ ३० ॥

अर्थ—हे पापरूपे ! तू ऐसे सद्वचनों की इच्छा नहीं करती अर्थात् ऐसे वृद्ध पुरुष के बचन नहीं मानती और न हमारे हित को जानती है, इससे ज्ञात होता है कि तू सत् मार्ग से वाहर अस-त्मार्ग में स्थित है ॥

अनुव्रजिष्याम्यहमद्यरामंराज्यं परित्यज्य
सुखं धनं च । सर्वे च राज्ञा भरतेन च त्वं
यथासुखंभुंक्ष्वचिराय राज्यम् ॥ ३१ ॥

अर्थ—यदि ऐसा है तो मैं भी इसी समय राज्य, सुख

और धन का परित्याग करके राम के पीछे जाता हूं, तू तथा सब अयोध्यावासी भरत के साथ चिरकाल तक राज्य भोगो ॥

इति द्वात्रिंशः सर्गः

अथ त्रित्रिंशः सर्गः

महामंत्रि वचः श्रुत्वा रामो दशरथं तदा ।
अभ्यभाषत वाक्यं तु विनयज्ञोविनीतवत् ॥ १ ॥

अर्थ–प्रधान मन्त्री के वचन सुनकर विनयसम्पन्न राम विनीत की भांति राजा दशरथ से बोले कि :—

त्यक्त भोगस्य मे राजन्वने वन्येन जीवतः ।
किं कार्यमनुयात्रेण त्यक्तसंगस्य सर्वतः ॥ २ ॥
यो हि दत्त्वा द्विपश्रेष्ठं कक्ष्यायां कुरुते मनः ।
रज्जुस्नेहेन किं तस्य त्यजतः कुञ्जरोत्तमम् ॥ ३ ॥

अर्थ–हे राजन् ! भोग को त्यागकर वन में फल फूलों से निर्वाह करते हुए मुझे अनुयात्रा=इन सबको साथ लेने से क्या प्रयोजन जबकि सारे ही संग छोड़कर जारहा हूं, जो उत्तम हाथी देकर उसके तंग वा काठी में मन लगाता है उस उत्तम हाथी के त्यागने वाले को रस्सी के स्नेह से क्या फल अर्थात् उससे हित करना व्यर्थ है ॥

तथा मम सतां श्रेष्ठ किं ध्वजिन्या जगत्पते ।
सर्वाण्येवानुजानामि चीराण्येवानयन्तु मे ॥ ५ ॥

खनित्र पिटके चोभे समानयत गच्छत ।
चतुर्दशवने वासं वर्षाणि वसतो मम ॥ ५ ॥

अर्थ—इसी प्रकार हे जगत्पते ! मुझको सेना वा धन से क्या प्रयोजन, आप सब भलेप्रकार जानें कि मेरे लिये चीर ही लावें अन्य कुछ नहीं, मैं चौदहवर्ष वन में जाकर वसुंगा जाओ मेरे लिये खनित्र और पिटारी लाओ ॥

अथ चीराणि कैकेयी स्वयमाहृत्य राघवम् ।
उवाच परिधत्स्वेति जनौघे निरपत्रपा ॥ ६ ॥
स चीरे पुरुषव्याघ्रः कैकेय्याः प्रतिगृह्यते ।
सूक्ष्मवस्त्रमवक्षिप्य मुनिवस्त्राण्यवस्त ह ॥ ७ ॥

अर्थ—इसके अनन्तर उसी समय कैकेयी स्वयं चीर लाकर उस जनसमुदाय में निर्लज्ज हो बोली लो यह चीर पहनो, पुरुषश्रेष्ठ राम ने कैकेयी से वह दोनों चीर लेकर सूक्ष्मवस्त्रों को फैंक मुनियों के वस्त्र धारण किये ॥

लक्ष्मणश्चापि तत्रैव विहाय वसने शुभे ।
तापसाच्छादने चैव जग्राह पितुरग्रतः ॥ ८ ॥
अथात्मपरिधानार्थं सीता कौशेयवासिनी ।
संप्रेक्ष्य चीरंसंत्रस्ता पृषती वागुरामिव ॥ ९ ॥

अर्थ—लक्ष्मण ने भी वहीं अपने शुभवस्त्र त्यागकर पिता के सन्मुख ही तपस्वियों के वस्त्र पहने, और रेशमी वस्त्रधारण किये हुए सीता अपने पहनने के लिये चीर को देखकर डरगई, जैसे हरिणी अपने लिये फांस देखकर भयभीत होती है ॥

सा व्यपत्रपमाणेव प्रगृह्य च सुदुर्मनाः ।
कैकेय्याः कुश चीरं ते जानकी शुभलक्षणा ॥१०॥
अश्रुसंपूर्णनेत्रा च धर्मज्ञा धर्मदर्शिनी ।
गन्धर्वराजप्रतिमं भर्तारमिदमब्रवीत् ॥ ११ ॥

अर्थ–वह शुभलक्षणों वाली जानकी बड़ी दुर्मन और लज्जितसी हुई कैकेयी से कुश तथा चीर लेकर आंसुओं से भरे हुए नेत्रों वाली, धर्मपरायणा तथा धर्म के देखने वाली गन्धर्वराज के तुल्य भर्त्ता से बोली कि :—

कथं नु चीरं बध्नन्ति मुनियो वनवासिनः ।
इति ह्यकुशला सीता सा मुमोह मुहुर्मुहुः ॥ १२ ॥

अर्थ–हे स्वामिन् ! वनवासी मुनि लोग चीर किस तरह बांधते हैं, इस प्रकार चीर के पहनने में अनजान सीता वहां बार २ मोह को प्राप्त हुई ॥

कृत्वा कण्ठे स्म सा चीरमेकमादाय पाणिना ।
तस्थौ ह्यकुशला तत्र व्रीडिता जनकात्मजा ॥१३॥
तस्यास्तत्क्षिप्रमागत्य रामो धर्मभृतांवरः ।
चीरं बबन्ध सीतायाः कौशेयस्योपरि स्वयम्॥१४॥

अर्थ–एक चीर को कण्ठ में डाल और दूसरे को हाथ में पकड़कर अनजान जनकसुता लज्जित सी हो खड़ी की खड़ी रहगई, तब धर्मात्मा राम ने शीघ्र आकर स्वयं सीता के रेशमी वस्त्रों के ऊपर ही वह चीर बांध दिया ॥

रामंप्रेक्ष्य तु सीताया बध्नन्तं चीरमुत्तमम् ।
अन्तःपुरचरा नार्यो मुमुचुर्वारि नेत्रजम् ॥ १५ ॥
ऊचुश्च परमायत्ता रामं ज्वलिततेजसम् ।
वत्सनैवं नियुक्तेयं वनवासे मनस्विनी ॥ १६ ॥

अर्थ–सीता के चीर बांधते हुए राम को देखकर अन्तःपुर की सब स्त्रियों के नेत्रों में पानी भर आया, और सब अतिदुःखित होकर तेजस्वी राम से बोलीं कि हे वत्स! इस मनस्विनी सीता को वनवास की आज्ञा नहीं दीगई, फिर यह क्यों वन जाती है॥

पितुर्वाक्यानुरोधेन गतस्य विजनं वनम् ।
तावद्दर्शनमस्या नः सफलं भवतु प्रभो ॥ १७ ॥
लक्ष्मणेन सहायेन वनं गच्छस्व पुत्रक ।
नेयमर्हति कल्याणी वस्तुं तापसवद्वने ॥ १८ ॥

अर्थ–आप तो पिता के अनुरोध से निर्जन वन में जाते हैं, हे प्रभो! इसका दर्शन तो हमारे नेत्रों को सफल करे, हे पुत्रक! लक्ष्मण को साथ लेकर वन जाओ, यह कल्याणी तपस्वियों की भांति वन में वास करने योग्य नहीं ॥

कुरु नो याचनां पुत्र सीता तिष्ठतु भामिनि ।
धर्मनित्यः स्वयंस्थातुंनहीदानीं त्वमिच्छसि ॥१९॥
तासामेवंविधा वाचः शृण्वन्दशरथात्मजः ।
बबन्धैव तथा चीरं सीतया तुल्य शीलया ॥ २०॥

चीरे गृहीते तु तया स बाष्पो नृपतेगुरुः ।
निवार्य सीतां कैकेयीं वसिष्ठो वाक्यमब्रवीत् ॥२१॥

अर्थ—हे पुत्र ! हम तुझ से इतनी याचना करती हैं कि तू सीता को यहीं रख, तू नित्य ही धर्म में स्थित रहने के कारण हम से रोका नहीं जासकता, उन स्त्रियों की इस प्रकार विविध बातें सुनते हुए राम ने अपने समान शीलवाली सीता के चीर बांध दिया, सीता के दोनों चीर बंधे देखकर आंखों में आंसु भरे हुए राजा के गुरु वसिष्ठ सीता को रोककर कैकेयी से बोले कि :—

अति प्रवृत्त दुर्मेधे कैकेयि कुलपांसनी ।
वंचयित्वा तु राजानां न प्रमाणेऽवतिष्ठसि ॥२२॥

अर्थ—हे कैकेयि ! तू मर्यादा को उल्लङ्घन करने वाली, दुष्ट बुद्धि तथा कुल के नाश करने वाली है, राजा को वंचन करके अब तू प्रामाणिक होकर यहां नहीं ठहरसकती ॥

न गन्तव्यं वनं देव्या सीतया शीलवर्जिते ।
अनुष्ठास्यति रामस्य सीता प्रकृतमासनम् ॥२३॥
आत्मा हि दाराः सर्वेषां दारसंग्रहवर्तिनाम् ।
आत्मेयमिति रामस्य पालयिष्यति मेदिनीम्॥२४॥

अर्थ—हे शीलरहित कैकेयि ! सीता देवी वन को नहीं जायगी, वह प्राचीन मर्यादानुसार राम के प्रकृत आसन की अधिष्ठात्री होगी अर्थात् राम के पीछे सीता राज्यशासन करेगी,

सब गृहस्थों के लिये स्त्री अपना रूप होती है, सो यह सीता राम का अपना रूप होने से पृथिवी का पालन करेगी ॥

अथ यास्यति वैदेही वनं रामेण संगता ।
वयमप्यनुयास्यामः पुरं चेदं गमिष्यति ॥ २५ ॥
अंतपालाश्चयास्यंति स दारो यत्र राघवः ।
सहोपजीव्यं राष्ट्रं च पुरं च स परिच्छदम् ॥ २६ ॥
भरतश्च स शत्रुघ्नश्चीरवासा वनेचरः ।
वनं वसन्तं काकुत्स्थमनुवत्स्यति पूर्वजम् ॥ २७ ॥

अर्थ—यदि राम के साथ सीता वन को जायगी तो हम और यह सारा ही पुर उसके साथ जायगा, यह सब अन्तःपुर के संरक्षक नोकर अपनी स्त्रियों सहित जहां राम जायगा वहीं जावेंगे, सब नोकर चाकर और राज्य वा पुर के सब स्त्री पुरुष राम के पीछे चलेंगे, और भरत भी शत्रुघ्न के साथ चीर पहनकर वनचारी बन अपने बड़े भाई राम के साथ वन में जाकर बसेगा ॥

ततः शून्यां गतजनां वसुधां पादपैः सह ।
त्वमेका शाधि दुर्वृत्ता प्रजानामहिते स्थिता॥२८॥
नहि तद्भविता राष्ट्रं यत्र रामो न भूपतिः ।
तद्वनं भविता राष्ट्रं यत्र रामो निवत्स्यति ॥ २९ ॥

अर्थ—तब सब लोगों के चले जानेपर पोधों=दरख्तों के साथ इस उजाड़ पृथिवी पर अकेली शासन करना तू प्रजा का अहित

चाहने वाली बड़ी दुष्टवृत्ता है, वह राज्य नहीं जहां राम राजा न होगा और वह वन राज्य होगा जहां राम निवास करेगा ॥

नह्यदत्तां महीं पित्रा भरतः शास्तुमर्हति ।
त्वयि वा पुत्रवद्धस्तुं यदि जातो महीपतेः ॥३०॥
यद्यपि त्वं क्षितितलाद्गगनं चोत्पतिष्यसि ।
पितृवंशचरित्रज्ञः सोऽन्यथा न करिष्यति ॥३१॥

अर्थ—यदि भरत राजा का पुत्र है तो राजा से विन दीहुई पृथिवी पर कदापि शासन न करेगा और न तेरे साथ पुत्र की भांति वर्तेगा, यद्यपि तू पृथिवी से आकाश को उड़जायगी परन्तु भरत जो पिता के वंश की मर्यादा को जानने वाला है वह अन्यथा कदापि न करेगा ॥

तत्त्वया पुत्रगर्धिन्या पुत्रस्य कृतमप्रियम् ।
लोके नहि स विद्येत यो न राममनुव्रतः ॥ ३२ ॥

अर्थ—सो तैने अपने पुत्र की लालसा में उसका अप्रिय कर दिया है, लोक में कोई ऐसा नहीं जो राम के अनुकूल न हो॥

अथोत्तमान्याभरणानि देवि देहि स्नुषायै
व्यपनीय चीरम् । न चीरमस्याः प्रविधी-
यतेति न्यवारयत्तद्वसनं वसिष्ठः ॥ ३३ ॥

अर्थ—हे देवि ! चीरों को पृथक् कर अपनी स्नुषा सीता को उत्तम वस्त्र आभूषण दे चीर इसके योग्य नहीं, इस प्रकार कह सुनकर वसिष्ठजी ने जानकी का चीर पहरना रुकवाया ॥

एकस्य रामस्य वने निवासस्त्वयावृतः
केकयराजपुत्रि । विभूषितेयं प्रतिकर्म
नित्या वसत्वरण्ये सह राघवेण ॥ ३४ ॥

अर्थ—हे केकयराज की पुत्री कैकेयि ! तैंने अकेले राम के लिये वनवास मांगा है सीता के लिये नहीं, सो यह सीता सदा शृंगार करती हुई वस्त्राभूषणों से अलङ्कृत होकर राम के साथ वन में रहेगी ॥

यानैश्च मुख्यैः परिचारकैश्च सुसंवृता
गच्छतु राजपुत्री । वस्त्रैश्च सर्वैः सहितै-
र्विधानैर्नेयं वृता ते वर संप्रदाने ॥३५॥

अर्थ—यह राजपुत्री सीता मुख्य रथों, सेवकों, सब प्रकार के वस्त्रों और अन्य सब साधनों से युक्त होकर जावे, क्योंकि तैंने वरदान में सीता को नहीं वरा अर्थात् सीता के लिये वनवास नहीं दिया ॥

तस्मिंस्तथा जल्पति विप्रमुख्ये गुरौ नृप-
स्याप्रतिमप्रभावे । नैव स्म सीता विनिवृत्त-
भावा प्रियस्य भर्तुः प्रतिकारकामा ॥३६॥

अर्थ—अतुल प्रभाव वाले राजा के गुरु विप्रवर वसिष्ठ के उक्त प्रकार कथन करते हुए भी सीता ने पति का सादृश्य नहीं छोड़ा अर्थात् चीरों को छोड़कर उत्तम वस्त्राभूषणों की भावना वाली नहीं हुई ॥

इति त्रित्रिंशः सर्गः

अथ चतुस्त्रिंशः सर्गः

तस्यां चीरं वसानायां नाथवत्यामनाथवत् ।
प्रचुक्रोश जनः सर्वो धिक्त्वां दशरथं त्विति ॥१॥
तेन तत्र प्रणादेन दुःखितः स महीपतिः ।
स निःश्वस्योष्णमैक्ष्वाकस्तां भार्यामिदमब्रवीत् ॥२॥

अर्थ–जब सनाथ सीता अनाथा की भांति चीर पहन रही थी तब वहां सब लोग चिल्ला उठे कि हे दशरथ ! तुझको धिक्कार है, उस चिल्लाहट से वहां दुःखी हुआ राजा गर्म श्वास भरकर कैकेयी से बोला कि :—

सुकुमारी च बाला च सततं च सुखोचिता ।
नेयं वनस्य योग्येति सत्यमाह गुरुर्मम ॥ ३ ॥

अर्थ–यह बात मेरे गुरु वसिष्ठ ने सत्य कही है, यह सुकुमारी, बाला और सदा सुखों में पली हुई सीता वन के योग्य नहीं ॥

इयं हि कस्यापि करोति किञ्चित्तपस्विनी-
राजवरस्य पुत्री । या चीरमासाद्य जनस्य
मध्ये जाता विसंज्ञा श्रमणीव काचित् ॥ ४ ॥

अर्थ–यह बेचारी श्रेष्ठ राजा की पुत्री किसी का क्या बिगाड़ती है जिसको चीर पहनाकर भिक्षुक की भांति वन भेजा जाता है जो जनसमूह के बीच चीर को देखकर घबरा गई है॥

चीराण्यपास्याज्जनकस्य कन्या नेयं
प्रतिज्ञा मम दत्तपूर्वा। यथासुखं गच्छतु
राजपुत्री वने समग्रा सह सर्वरत्नैः॥५॥

अर्थ–जनकसुता चीरों को त्याग देवे, क्योंकि मैंने तुमसे पूर्व यह प्रतिज्ञा नहीं की कि वह चीरों को पहनकर जावे, इसलिये राजपुत्री सम्पूर्ण रत्नों के साथ जिस प्रकार उसको सुख हो वन गमन करे॥

अजीवनार्हेण मया नृशंसा कृता प्रतिज्ञा
नियमेन तावत्। त्वया हि बाल्यात्प्रतिपन्न-
मेतत्तन्मादहेद्वेणुमिवात्म पुष्पम्॥ ६ ॥

अर्थ–अपने नाश का हेतुभूत यह प्रतिज्ञा मैंने तेरे साथ की थी और तू बाल्यभाव से उसमें दृढ़ होगई, अब तू बांस के समान अपने पुष्पों का आप दाह मतकर अर्थात् मुझको मारकर विधवा हो संसार में दुर्गति से अपना जीवन निर्वाह करने के लिये कटिबद्ध नहो॥

रामेण यदि ते पापे किंचित्कृतमशोभनम्।
अपकारः क इह ते वैदेह्या दर्शितोऽधमे॥ ७॥
मृगीवोत्फुल्लनयना मृदुशीला मनस्विनी।
अपकारं कमिव ते करोति जनकात्मजा॥ ८॥

अर्थ–हे पापिनि! यदि राम ने तेरा कोई अपराध किया हो तो किया हो, हे अधमे! सीता ने तेरा क्या बिगाड़ा है,

हरिणी की भांति खिले हुए नेत्रों वाली, अतिकोमल और मननशील जानकी तेरा क्या अपकार कर रही है ॥

ननु पर्याप्तमेवं ते पापे रामविवासनम् ।
किमेभिः कृपणैर्भूयः पातकैरपि ते कृतैः ॥ ९ ॥
प्रतिज्ञातं मया तावत्त्वयोक्तं देवि शृण्वता ।
रामं यदभिषेकाय त्वमिहागतमब्रवीः ॥ १० ॥

अर्थ–हे पापिनि! अब नीच पातकों के करने से बस करजा, राम का निकालना ही तेरे लिये पर्याप्त=भारी पातक है, हे देवि! मैंने तुझसे वह तो प्रतिज्ञा कीहुई थी जो तूने अभिषेक के लिये आये हुए राम को मेरे सुनते हुए कहा था ॥

तत्त्वेतत्समतिक्रम्य निरयं गन्तुमिच्छसि ।
मैथिलीमपि या हि त्वमीक्षसे चीरवासिनीम्॥११॥
एवं ब्रुवन्तं पितरं रामः संप्रस्थितो वनम् ।
अवाक्शिरसमासीनमिदं वचनमब्रवीत् ॥ १२ ॥

अर्थ–अब उसको भी उल्लङ्घन कर नरक को प्राप्त होना चाहती है जो जानकी को भी चीर पहने हुए देखती है, पिता के ऐसा कहते हुए वन को प्रस्थान करने वाले राम नीचा सिर किये बैठे हुए उनसे बोले कि :—

इयंधार्मिक कौसल्या मम माता यशस्विनी ।
वृद्धा चाक्षुद्रशीला च न च त्वां देवगर्हते ॥१३॥

मया विहीनां वरद प्रपन्नां शोकसागरम् ।
अदृष्टपूर्वव्यसनां भूयः संमन्तुमर्हसि ॥ १४ ॥

अर्थ–यह धार्मिक यशस्विनी मेरी वृद्धामाता कौसल्या बहुत उदारशीला है अर्थात् आपकी आज्ञा से मेरे वन जाने पर भी आपकी निन्दा नहीं करती, वह भले प्रकार जानती है कि पिता की आज्ञापालन करना धर्म है, सो हे वर के देने वाले राजन् ! मुझसे बिछुड़ी हुई शोकसागर में निमग्न कौसल्या का आप अधिक सन्मान करने योग्य हैं, क्योंकि इसने पहले कभी दुःख नहीं देखा ॥

इमां महेन्द्रोपमजातगर्धिनीं तथा विधातुं जननीं ममार्हसि । यथा वनस्थे मयिशोक कर्शिता न जीवितं न्यस्य यमक्षयं व्रजेत् ॥ १५ ॥

अर्थ–हे महेन्द्रोपम राजन् ! मेरे दर्शन की अभिलाषा वाली मेरी माता कौसल्या की इस प्रकार रक्षा करें जिससे वह मेरे जाने पर शोकातुर हुई प्राण न त्याग देवे ॥

इति चतुस्त्रिंशः सर्गः

अथ पंचत्रिंशः सर्गः

रामस्य तु वचः श्रुत्वा मुनिवेषधरं च तम् ।
समीक्ष्य सह भार्याभी राजा विगतचेतनः ॥ १ ॥

अर्थ–राम के उक्त वचन सुन तथा उनको मुनिवेषधारी देखकर स्त्रियों सहित राजा अचेतन होगये ॥

संज्ञां तु प्रतिलभ्यैव मुहूर्तात्समहीपतिः ।
नेत्राभ्यामश्रुपूर्णाभ्यां सुमन्त्रमिदमब्रवीत् ॥ २ ॥

अर्थ–कुछ काल पश्चात् राजा होश में आकर आसुओं से भरे हुए नेत्रों द्वारा सुमन्त्र से बोले कि :—

औपवाह्यं रथं युक्त्वा त्वमायाहि हयोत्तमैः ।
प्रापयैनं महाभागमितो जनपदात्परम् ॥३॥
एवं मध्ये गुणवतां गुणानां फलमुच्यते ।
पित्रा मात्रा च यत्साधुर्वीरो निर्वास्यते वनम्॥४॥

अर्थ–आराम से लेजाने वाले रथ में उत्तम घोड़े जुतवाकर यहां लेआओ और इस महाभाग को जनसमूह से परे लेजाओ, जब माता पिता से पृथक् कर एक साधु वीर पुरुष वन भेजा जाता है तो मैं समझता हूं कि गुण वालों के गुणों का फल ऐसा ही कहागया होगा ॥

राज्ञो वचनमाज्ञाय सुमन्त्र शीघ्रविक्रमः ।
योजयित्वा ययौ तत्र रथमश्वैरलंकृतम् ॥ ५ ॥

अर्थ–सुमन्त्र राजा की आज्ञा पाकर शीघ्र ही घोड़ों से सजे हुए रथ को जुड़वाकर वहां लेआये ॥

राजा सत्वरमाहूयव्यापृतं वित्त संचये ।
उवाच देशकालज्ञो निश्चितं सर्वतः शुचिः ॥६॥
वासांसि च वरार्हाणि भूषणानि महांति च ।
वर्षाण्येतानि संख्याय वैदेह्याः क्षिप्रमानय ॥ ७ ॥

अर्थ-इसके अनन्तर देशकालज्ञ तथा निश्चयपूर्वक सब पदार्थों के जानने वाले कोषाध्यक्ष से राजा ने कहा कि तुम शीघ्र ही हमारा सञ्चित धन तथा वस्त्र और सब प्रकार के उत्तम २ भूषण जानकी को चौदहवर्ष=जबतक वन में रहेगी ले आओ ॥

नरेन्द्रेणैवमुक्तस्तुगत्वाकोषगृहं ततः ।
प्रायच्छत्सर्वमाहृत्य सीतायैक्षिप्रमेवतत् ॥८॥
सासुजातासुजातानि वैदेही प्रस्थितावनम् ।
भूषयामास गात्राणि तैर्विचित्रैर्विभूषणैः ॥९॥

अर्थ-महाराज की आज्ञा पाकर कोषाध्यक्ष कोषगृह को प्राप्त हो सब उत्तमोत्तम वस्त्राभूषण उन्हीं के हाथ के लाकर शीघ्र ही दिये, और जानकी ने वन को प्रस्थान करते हुए उन विचित्र वस्त्राभूषणों को धारण किया ॥

तां भुजाभ्यां परिष्वज्यश्वश्रुर्वचनमब्रवीत् ।
अनाचरन्तीं कृपणं मूर्ध्न्युपाघ्राय मैथिलीम् ॥१०॥
साध्वीनां हि स्थितानां तु शीले सत्ये श्रुते स्थिते ।
स्त्रीणां पवित्रं परमं पतिरेको विशिष्यते ॥११॥

अर्थ-तत्पश्चात् कौसल्या ने दोनों भुजाओं से आलिङ्गन कर उदार आचरणों वाली सीता को गले लगा सिर चूमकर बोली कि पतिव्रता स्त्रियें जो शील, सत्य, शास्त्र और मर्यादा में स्थित हैं उनके लिये एकमात्र पति ही परमपवित्र सब से बढ़कर है ॥

स त्वया नावमन्तव्यः पुत्रः प्रव्राजितो वनम् ।
तव दैवतमस्त्वेष निर्धनः सधनोऽपि वा ॥१२॥
विज्ञाय वचनं सीता तस्या धर्मार्थसंहितम् ।
कृत्वाञ्जलिमुवाचेदं श्वश्रूमभिमुखे स्थिता ॥ १३ ॥

अर्थ–सो वनवास दिये गये मेरे पुत्र की तैंने कभी अवज्ञा न करना, चाहे निर्धन हो चाहे धनवान हो वह तेरा देवता=पूज्य है, कौसल्या के ऐसे धर्म, अर्थ युक्त वचन सुनकर सन्मुख स्थित हुई सीता हाथ जोड़कर बोली कि :—

करिष्ये सर्वमेवाहमार्या यदनुशास्ति माम् ।
अभिज्ञास्मि यथा भर्तुर्वर्तितव्यं श्रुतं च मे ॥१४॥
न मामसज्जनेनार्या समानयितुमर्हति ।
धर्माद्विचलितुं नाहमलं चन्द्रादिव प्रभा ॥१५॥

अर्थ–हे आर्या कौसल्या ! जो आप मुझे आज्ञा देती हैं वह सब करूंगी, भर्ता से वर्तने का प्रकार मैं शास्त्र से सुनकर भले प्रकार जानती हूं, हे आर्या=श्रेष्ठ कौसल्या आप मुझे किसी असज्जन=दुष्टा की न्यांई न समझें, मैं चन्द्र से प्रभा की भांति धर्म से कभी विचल न होउंगी अर्थात् जैसे प्रभा=रोशनी का चन्द्रमा के साथ सम्बन्ध है वही मेरा राम के साथ सम्बन्ध रहेगा ॥

नातन्त्री विद्यते वीणा नाचक्रो विद्यते रथः ।
नापतिः सुखमेधेत या स्यादपि शतात्मजा ॥१६॥

मितं ददाति हि पिता मितं भ्राता मितं सुतः ।
अमितस्य तु दातारं भर्तारं का न पूजयेत् ॥१७॥

अर्थ–जिसप्रकार विना तार वीणा नहीं बजता, विना चक्र के रथ नहीं चलता इसी प्रकार विना पति के सुख नहीं होता चाहें स्त्री सौपुत्र वाली भी क्यों न हो,क्योंकि पिता प्रमाण=अल्पसुख देता, भाई प्रमाण का देता और पुत्र प्रमाण का देता है, केवल एक भर्ता ही ऐसा है जो विनाप्रमाण=अनगिनत सुख स्त्री को देता है, फिर ऐसे भर्ता को कौन नहीं पूजता ॥

साहमेवंगताश्रेष्ठ श्रुतधर्मपरावरा ।
आर्ये किमवमन्येयं स्त्रिया भर्त्ता हि दैवतम्॥१८॥

अर्थ–हे श्रेष्ठ ! मैं ऐसा जानती हूं तथा धर्म के सामान्य और विशेषरूप को मैंने भलेप्रकार सुना है, हे आर्ये ! मैं पति की कैसे अवज्ञा करसकती हूं, क्योंकि पति तो स्त्रियों का पूज्य देवता है ॥

सीताया वचनं श्रुत्वा कौसल्या हृदयंगमम् ।
शुद्धसत्वामुमोचाश्रु सहसादुःखहर्षजम् ॥ १९ ॥
तां प्राञ्जलिरभिप्रेक्ष्य मातृमध्येऽति सत्कृताम् ।
रामः परमधर्मात्मा मातरं वाक्यमब्रवीत् ॥ २० ॥

अर्थ–सीता के उक्त प्रिय वचन सुनकर शुद्ध हृदय कौसल्या के दुःख और हर्ष से उत्पन्न हुए आंसु सहसा निकल पड़े, अब परम धर्मात्मा राम हाथ जोड़कर सब माताओं के समीप

पहुंच माताओं के मध्य में अति सत्कार योग्य माता कौसल्या से यह वाक्य बोले कि :—

अम्ब मा दुःखिता भूत्वा पश्येस्त्वं पितरं मम।
क्षयोऽपि वनवासस्य क्षिप्रमेव भविष्यति ॥२१॥
सुप्तायास्ते गमिष्यन्ति नववर्षाणि पञ्च च।
समग्रामिह संप्राप्तं मां द्रक्ष्यसि सुहृद्वृतम् ॥२२॥

अर्थ—हे अम्ब ! तू दुःखी मत हो,मेरे पिता की ओर देखना, वनवास की समाप्ति शीघ्र होने पर तेरी सेवा में आता हूं, सोई हुई की भांति चौदहवर्ष बीत जायंगे और तू मुझे सब के साथ यहां आया हुआ सुहृदों के बीच स्थिर देखेगी ॥

इति पंचत्रिंशः सर्गः

अथ षट्त्रिंशः सर्गः

सं०—अब राम के वन गमन का कथन करते हैं :—

अथ रामश्च सीता च लक्ष्मणश्च कृताञ्जलिः।
उपसंगृह्य राजानं चक्रुर्दीनाः प्रदक्षिणम् ॥ १ ॥

अर्थ—इसके अनन्तर राम, लक्ष्मण और सीता ने हाथ जोड़कर राजा के चरण ग्रहण किये और दीन हुए सब ने प्रदक्षिणा की ॥

तं चापि समनुज्ञाप्य धर्मज्ञः सह सीतया।
राघवः शोकसंमूढो जननीमभ्यवादयत् ॥ २ ॥

अन्वक्षं लक्ष्मणो भ्रातुः कौसल्यामभ्यवादयत् ।
अपि मातुः सुमित्राया जग्राह चरणौ पुनः ॥ ३ ॥

अर्थ—पिता से आज्ञा लेकर शोक में संतप्त हुए राम ने सीता सहित माता को अभिवादन किया, भ्राता राम के अनन्तर लक्ष्मण ने कौसल्या को अभिवादन करके पुनः माता सुमित्रा के चरण पकड़कर वन्दना की ॥

तं वन्दमानं रुदती माता सौमित्रमब्रवीत् ।
हितकामा महबाहुंमूर्ध्न्युपाघ्राय लक्ष्मणम् ॥ ४ ॥
सृष्टस्त्वं वनवासाय स्वनुरक्तः सुहृज्जने ।
रामे प्रमादं मा कार्षीः पुत्र भ्रातरि गच्छति ॥ ५ ॥

अर्थ—वन्दना करते हुए महाबाहु लक्ष्मण को हित कामना वाली माता सिरपर चूमकर रोती हुई बोली कि हे पुत्र ! तुझे भी वनवास के लिये आज्ञा होचुकी है पर तू अपने सुहृद्जनों में पूर्ण प्रकार से अनुरक्त होने पर भी अपने भाई राम के चलते हुए कभी प्रमाद न करना अर्थात सदा सावधान होकर रहना ॥

व्यसनी वा समृद्धो वा गतिरेष तवानघः ।
एष लोके सतां धर्मो यज्ज्येष्ठवशगो भवेत् ॥ ६ ॥

अर्थ—हे निष्पाप ! विपद हो चाहे समृद्धि हो, हर हालत में यह तेरा आश्रय है, लोक में भलों का यही धर्म है कि बड़ों के अनुगामी होकर चलें ॥

इदं हि वृत्तमुचितं कुलस्यास्य सनातनम् ।
दानं दीक्षा च यज्ञेषु तनुत्यागो मृधेषु हि ॥ ७ ॥

अर्थ–यह इस कुल का उचित सनातन आचरण चला आया है कि बड़ों के अनुगामी हों और दान, यज्ञों में दीक्षा तथा युद्धों में शरीर का त्याग करें अर्थात् धर्मयुद्ध में शरीर का त्याग करना क्षत्रिय का परमधर्म है, जैसाकि गी० २ । ३१ में भी वर्णन किया है कि "धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत् क्षत्रियस्य न विद्यते"= क्षत्रिय के लिये युद्ध से श्रेष्ठ अन्य कोई धर्म नहीं ॥

रामं दशरथं विद्धि मां विद्धि जनकात्मजाम् ।
अयोध्यामटवीं विद्धि गच्छ तात यथासुखम् ॥८॥

अर्थ–हे तात ! राम को दशरथ जान, जनकसुता सीता को मुझे जान=माता जानना और वन को अयोध्या जानकर आनन्द पूर्वक रहना, हे पुत्र अब तू जा ॥

तं रथं सूर्य्यसंकाशं सीता हृष्टेन चेतसा ।
आरुरोह वरारोहा कृत्वालङ्कारमात्मनः ॥ ९ ॥
वनवासं हि संख्याय वासांस्याभरणानि च ।
भर्त्तारमनुगच्छन्त्यै सीतायै श्वसुरो ददौ ॥ १० ॥

अर्थ–इसके अनन्तर सूर्य्य सदृश उस रथ पर " जिसको सुमन्त्र लाये थे " प्रसन्न मन सीता अपना अलंकार करके आरूढ़ हुई, वनवास की गिनती करके अर्थात् चौदहवर्ष के लिये गिनकर वस्त्र तथा आभूषण भर्त्ता के पीछे जाती हुई सीता को श्वशुर दशरथ ने दिये ॥

तथैवायुध जातानि भ्रातृभ्यां कवचानि च ।
रथोपस्थे प्रविन्यस्य स चर्म कठिनं च यत् ॥ ११ ॥

अथो ज्वलनसंकाशं चामीकर विभूषितम् ।
तमारुरुहतुस्तूर्णं भ्रातरो रामलक्ष्मणौ ॥ १२ ॥

अर्थ—और दोनों भाईयों के लिये बहुत से अस्त्र, कवच, पेटी और खनित्रादि सब रथ में रखवा दिये, तत्पश्चात अग्नि के सदृश सुवर्ण से भूषित रथ पर राम और लक्ष्मण दोनों भाई चढ़े॥

सीता तृतीयानारूढान्दृष्ट्वारथमचोदयत् ।
सुमन्त्रः संमतानश्वानायुवेगसमाञ्जवे ॥ १३ ॥
प्रयाते तु महारण्यं चिररात्राय राघवे ।
बभूव नगरे मूर्च्छा बलमूर्च्छाजनस्य च ॥ १४ ॥
तत्समाकुल स भ्रान्तं मत्त संकुपितद्विपम् ।
हय सिंजित निर्घोषं पुरमासीन्महास्वनम् ॥१५॥

अर्थ—जब सुमन्त्र ने देखा कि सीता सहित तीनों रथपर सवार होगये हैं तब उसने वायु के समान उत्तम घोड़ों को बड़े वेग से चलाया, जब राम ने चिरकाल के लिये वन को पयान किया उस समय नगरवासी राम के जाने से अति व्याकुल हो मूर्च्छित से होगये तथा हाथी, घोड़े आदि पशु चीखने लगे और सारी अयोध्या में हाहाकार मचगया ॥

ततः स बालवृद्धा सा पुरी परमपीडिता ।
राममेवाभिदुद्राव घर्मार्तः सलिलं यथा ॥ १६ ॥
पार्श्वतःपृष्ठतश्चापि लम्बमानास्तदुन्मुखाः ।
बाष्पपूर्णमुखाः सर्वे तमूचुर्भृशनिःस्वनाः ॥१७॥

अर्थ—बाल वृद्धों सहित सम्पूर्ण पुरी परम पीड़ित हो राम की ओर दौड़ी, जैसे धूप से व्याकुल पुरुष जल की ओर दौड़ते हैं, दायें, बायें और पीछे की ओर दौड़ते हुए आंसुओं से पूर्ण मुखवाले लोग उच्चस्वर से सुमन्त्र को बोले कि :—

संयच्छ वाजिनां रश्मीन्सूत याहि शनैः शनैः ।
मुखं द्रक्ष्याम रामस्य दुर्दर्शं नो भविष्यति ॥१८॥
कृतकृत्या हि वैदेही छायेवानुगता पतिम् ।
न जहाति रता धर्मे मेरुमर्क प्रभा यथा ॥१९॥

अर्थ—हे सुमन्त्र ! घोड़ों को बागों से रोककर धीरे २ चला, हमको राम का मुख देखने दे जो पीछे देखना दुर्लभ होगा, सीता कृतकृत्या है जो धर्म में रत छाया की भांति पति के अनुगत हुई साथ नहीं छोड़ती, जैसे सूर्य की प्रभा सुमेरु पर्वत को कभी नहीं त्यागती ॥

अहो लक्ष्मण सिद्धार्थ सततंप्रियवादिनम् ।
भ्रातरं देवसंकाशं यस्त्वं परिचरिष्यसि ॥ २० ॥
महत्येषा हि ते बुद्धिरेष चाभ्युदयो महान् ।
एष स्वर्गस्य मार्गश्च यदेनमनुगच्छसि ॥२१॥

अर्थ—अहो लक्ष्मण तू कृतकृत्य है जो देव सदृश प्रियवादी भाई की सेवा करेगा, यह तेरी बड़ी बुद्धि तथा यह बड़ा अभ्युदय और यही स्वर्ग का मार्ग है जो तू भाई के पीछे जाता है ॥

एवं वदन्तस्ते सोढुं न शेकुर्बाष्पमागतम् ।
नरास्तमनुगच्छन्तः प्रियमिक्ष्वाकुनन्दनम् ॥२२॥
अथ राजा वृतः स्त्रीभिर्दीनाभिर्दीनचेतनः ।
निर्जगाम प्रियं पुत्रं द्रक्ष्यामीति ब्रुवन्गृहात् ॥२३॥

अर्थ—इस प्रकार कहते हुए प्यारे राम के पीछे चलने वाले लोग निकलते हुए अपने आसुओं को नहीं थाम सकते थे, इधर राजा भी स्त्रियों सहित दुःखी हुआ "प्यारे पुत्र को देखुंगा" यह कहता हुआ घर से बाहर निकला ॥

शुश्रुवेचाग्रतः स्त्रीणां रुदतीनां महास्वनम् ।
यथानादः करेणूनां बद्धे महति कुंजरे ॥ २४ ॥
पिता हि राजा काकुत्स्थः श्रीमान्सन्नस्तदाबभौ ।
परिपूर्णः शशीकाले ग्रहेणोपप्लुतो यथा ॥ २५ ॥
सच श्रीमानचिन्त्यात्मा रामोदशरथात्मजः ।
सूतं संचोदयामास त्वरितं वाह्यतामिति ॥ २६ ॥

अर्थ—उस समय राजा के आगे रुदन करती हुई स्त्रियों का शब्द ऐसा भयंकर जानपड़ता था जैसे बड़े हाथी के पकड़े जाने पर हथिनियों का चिंघाड़ होता है, श्रीमान् राजा दशरथ उस समय ऐसे मलिन उदासीन प्रतीत होते थे जैसे ग्रहण लगने पर चन्द्रमाँ निस्तेज होजाता है, दशरथ के पुत्र महानात्मा राम ने सुमन्त्र को आज्ञा दी कि रथ को शीघ्र चलाओ ॥

रामो याहीति तं सूतं तिष्ठेति च जनस्तथा ।
उभयं नाशकत्सूतः कर्तुमध्वनि चोदितः ॥ २७ ॥

अर्थ–राम सुमन्त्र को कहते थे " शीघ्र चलो " और लोग कहते थे कि " ठहरो " इस प्रकार मार्ग में प्रेरित हुए सुमन्त्र दोनों ही बातें न करसके ॥

दृष्ट्वा तु नृपतिः श्रीमानेकचित्तगतं पुरम् ।
निपपातेव दुःखेन कृत्तमूल इव द्रुमः ॥ २८ ॥
ततो हलाहलशब्दो जज्ञे रामस्य पृष्ठतः ।
नराणां प्रेक्ष्य राजानं सीदन्तं भृशदुःखितम् ॥२९॥

अर्थ–श्रीमान् नरपति दशरथ एकचित्त हो पुर को देखकर दुःखित हुए कटी हुई जड़ वाले वृक्ष की न्याई नीचे गिरपड़े, अत्यन्त दुःख से दुःखित राजा को फिसलता हुआ देखकर राम के पीछे की ओर बड़ा कोलाहल मचगया ॥

अन्वीक्षमाणो रामस्तु विषण्णं भ्रान्तचेतसम् ।
राजानं मातरं चैव ददर्शानुगतौ पथि ॥ ३० ॥
पदातिनौ च यानार्हावदुःखार्हौ सुखोचितौ ।
दृष्ट्वा संचोदयामास शीघ्रं याहीति सारथिम् ॥३१॥

अर्थ–राम ने पीछे फिरकर देखा कि उदास घबराये हुए राजा और माता दोनों मार्ग में पीछे आरहे हैं, राम ने दुःख न देखने वाले, सुखी रहने वाले तथा सवारी के योग्य माता पिता को पैदल आते हुए देखकर सारथि सुमन्त्र को आज्ञा दी कि रथ को शीघ्र ही लेचलो ॥

नहि तत्पुरुष व्याघ्रो दुःखजं दर्शनं पितुः ।
मातुश्च सहितुं शक्तस्तोत्रैर्नुन्न इव द्विपः ॥ ३२ ॥
प्रत्यागारमिवायान्ती सवत्सा वत्सकारणात् ।
बद्धवत्सा यथा धेनू राममाताभ्यधावत ॥ ३३ ॥

अर्थ—क्योंकि वह पुरुषश्रेष्ठ माता पिता को इस प्रकार रुदन करते हुए नहीं देखसकता था, वह उन्हें पीछे देख अंकुश से पीड़ित हाथी की भांति दुःखी हुआ,और रथ को दौड़ता देख राम माता रथ के पीछे इस प्रकार दौड़ी जैसे बंधे हुए बछड़े वाली गौ जहां बछड़ा बंधा है उस स्थान को दौड़ती है ॥

तथा रुदन्तीं कौसल्यां रथन्तमनुधावतीम् ।
क्रोशन्तीं रामरामेति हा सीते लक्ष्मणेति च ॥३४॥

अर्थ—हा राम, हा सीता, हा लक्ष्मण, इस प्रकार कहती हुई राममाता रथ के पीछे २ रुदन करती तथा उक्त तीनों के लिये आंसू बहाती चली जाती थी ॥

तिष्ठेति राजा चुक्रोश याहि याहीति राघवः ।
सुमन्त्रस्य बभूवात्मा चक्रयोरिव चान्तरा ॥ ३५ ॥
यमिच्छेत्पुनरायान्तं नैनं दूरमनुव्रजेत् ।
इत्यमात्या महाराजमूचुर्दशरथं वचः ॥ ३६ ॥

अर्थ—और इसी प्रकार खड़े होकर राजा राम को कहते थे ठहरो, ठहरो और सुमन्त्र को वार २ रथ खड़ा करने के लिये पुकारते थे, उस समय महाराज दशरथ को वसिष्ठादि मन्त्रियों

ने कहा कि जिसका फिर आना चाहते हो उसके पीछे दूर तक नहीं जाना चाहिये ॥

तेषां वचः सर्वगुणोपपन्नः प्रस्विन्नगात्रः
प्रविषण्ण रूपः । निशम्य राजा कृपणः
सभार्यो व्यवस्थितस्तंसुतमीक्षमाणः॥३७॥

अर्थ—उक्त मन्त्रियों के वचन सुनकर सर्वगुणोपपन्न राजा जिसके सारे अङ्गों पर पसीना आया हुआ तथा मुख मुरझाया हुआ है वह दीन हो पुत्र को देखता हुआ स्त्रियों सहित ठहर गया ॥

इति षट्त्रिंशः सर्गः

अथ सप्तत्रिंशः सर्गः

यावत्तु निर्यतस्तस्य रजोरूपमदृश्यत ।
नैवेक्ष्वकुवरस्तावत्सं जहारात्मचक्षुषी ॥ १ ॥
न पश्यति राजोऽप्यस्य यदा रामस्य भूमिपः ।
तदार्तश्च विषण्णश्च पपात धरणीतले ॥ २ ॥

अर्थ—जबतक राम के रथ की धूलि दिखाई देती रही तबतक राजा ने अपने नेत्रों को उस ओर से नहीं हटाया, परन्तु जब राजा को राम के रथ की धूलि भी दृष्टिगत न हुई तब उदास और आर्त्त होकर पृथिवी पर गिरपड़े ॥

अथ रेणु समुद्धस्तं समुत्थाप्य नराधिपम् ।
न्यवर्तत तदा देवी कौसल्या शोककर्शिता ॥ ३ ॥

अर्थ–तब धूलि से लिपटे हुए राजा को उठाकर मुरझाई हुई कौसल्या देवी महलों को लौट आई ॥

अथ गद्गद शब्दस्तु विलपन्वसुधाधिपः ।
उवाच मृदु मन्दार्थं वचनं दीनमस्वरम् ॥ ४ ॥
कौसल्याया गृहं शीघ्रं राममातुर्नयन्तु माम् ।
नह्यन्यत्र ममाश्वासो हृदयस्य भविष्यति ॥ ५ ॥

अर्थ–इसके अनन्तर राजा गद्गद वाणी से विलाप करते हुए बड़े मन्दस्वर से दीनता के साथ अस्पष्ट वचन बोले कि मुझको शीघ्र ही राम की माता कौसल्या के घर ले चलो और कहीं मेरे हृदय को शान्ति न होगी ॥

इति ब्रुवन्तं राजानमनयन्द्वारदर्शिनः ।
कौसल्याया गृहं तत्र न्यवेश्यत विनीतवत् ॥ ६ ॥
ततस्तत्र प्रविष्टस्य कौसल्याया निवेशनम् ।
अधिरुह्यापि शयनं बभूव लुलितं मनः ॥ ७ ॥

अर्थ–उक्त प्रकार कथन करने पर द्वारपाल राजा को कौसल्या के घर लेगये और उनको वहां विनीत की भांति लिटा दिया, परन्तु कौसल्या के घर पहुंच वहां पलंग पर लेटकर भी उनका मन व्याकुल ही रहा ॥

पुत्रद्वयविहीनं च स्नुषया च विवर्जितम् ।
अपश्यद्भवनं राजा नष्टचन्द्रमिवाम्बरम् ॥ ८ ॥

तच्च दृष्ट्वा महाराजो भुजमुद्यम्य वीर्यवान् ।
उच्चैः स्वरेण प्राक्रोशद्धा राम विजहासि नौ ॥९॥

अर्थ—दोनों पुत्रों और स्नुषा से रहित वह घर राजा को ऐसा दिखाई देता था जैसे चांद के छिपजाने से आकाश अन्धकारमय प्रतीत होता है, यह देखकर वीर्य्यवान् महाराज भुजा उठाकर उच्चस्वर से पुकारने लगे हा राम तुम दोनों मुझको छोड़कर कहां जाते हो ॥

सुखिता बत तं कालं जीविष्यन्ति नरोत्तमः ।
परिष्वजन्तो ये रामं द्रक्ष्यन्ति पुनरागतम् ॥१०॥
अथ रात्र्यां प्रपन्नायां कालरात्र्यामिवात्मनः ।
अर्धरात्रे दशरथः कौसल्यामिदमब्रवीत् ॥ ११ ॥

अर्थ—भाग्यशाली उत्तम पुरुष उस समय तक जीवेंगे जो गले लगा २ कर फिर राम को आया हुआ देखेंगे, इसी प्रकार विलाप करते हुए कालरात्रि के समान रात्रि आने पर आधीरात के समय दशरथ ने कौसल्या से कहा कि :—

न त्वां पश्यामि कौसल्ये साधु मां पाणिना स्पृश ।
रामं मेऽनुगता दृष्टिरद्यापि न निवर्तते ॥ १२ ॥

अर्थ—हे कौसल्ये ! तू मुझे दीखती नहीं, मेरे समीप आकर भलेप्रकार हाथ से मुझे स्पर्श कर, राम के पीछे गई हुई मेरी दृष्टि अभी तक नही लौटती है ॥

तं राममेवानुविचिन्तयन्तं समीक्ष्य देवी

शयने नरेन्द्रम्। उपोपविश्याधिकमार्तरूपा
विनिःश्वसन्तं विललाप कृच्छ्रम् ॥ १३ ॥

अर्थ–राजा को शय्या पर राम का ही चिन्तन करते हुए देखकर कौसल्या देवी अधिक पीड़ित हुई २ राजा के समीप बैठकर लम्बे श्वास ले ले २ कर विलाप करती रही, जैसाकि :—

नागराजगतिर्वीरो महाबाहुर्धनुर्धरः।
वनमाविशते नूनं सभार्यः सहलक्ष्मणः ॥ १४ ॥
वनेत्वदृष्टदुःखानां कैकेय्यानुगतेत्वया।
त्यक्तानां वनवासायकान्यवस्था भविष्यति ॥१५॥
ते रत्नहीनास्तरुणाः फलकालेविवासिता।
कथं वत्स्यति कृपणाः फलमूलैः कृताशनाः ॥१६॥

अर्थ–गजराज कीसी चालवाला धनुर्धारी वीर राम अपनी भार्या और लक्ष्मण सहित वन को चलागया, हाय कैकेयी की सम्मति से आपने वन के वह दुःख दिखाये जो उन्होंने कभी नहीं देखे थे, इससे अधिक उनको और क्या कष्ट होगा, वह तरुणावस्था को प्राप्त भूषणादिकों से रहित फलकाल में वन में जाकर बसेंगे, वह फल मूल खाकर किस प्रकार वहां रहेंगे ॥

अपीदानीं स कालः स्यान्मम शोकक्षयः शिवः।
सहभार्यं सहभ्रात्रा पश्येयमिह राघवम् ॥१७॥
कदाप्रेक्ष्य नरव्याघ्रावरण्यात्पुनरागतौ।
भविष्यति पुरी हृष्टा समुद्र इव पर्वणि ॥१८॥

अर्थ—हे परमात्मन् ! मेरे शोक के क्षय करने वाला वह शुभ समय आवे जब मैं भार्या तथा भाई सहित राम को यहां देखूं, वन से लौटकर आये हुए उन दोनों श्रेष्ठ नरों को देख कर पुरी कब प्रसन्न होगी, जैसे पूर्णमासी को समुद्र प्रसन्न होकर उमड़ता है ॥

कदाऽयोध्यां महाबाहुः पुरीं वीरःप्रवेक्ष्यति ।
पुरस्कृत्य रथे सीतां वृषभो गो वधूमिव ॥ १९ ॥
निःसंशयं मया मन्ये पुरा वीर कदर्यया ।
पातुकामेषु वत्सेषु मातॄणां शातिताः स्तनाः ॥२०॥

अर्थ—पुरस्कृत हुई सीता को रथ में बिठाकर वह महाबाहु वीर अयोध्या में कब प्रवेश करेगा, जैसे वृषभ गाय को आगे करके ग्राम में प्रवेश करता है, हे वीर स्वामिन् ! निःसन्देह मैं मानती हूं कि पूर्वजन्म में मुझ पापिन ने दूध पीना चाहने वाले बछड़ों की माताओं के स्तन काटे हैं ॥

साहं गौरिव सिंहेन विवत्सा वत्सला कृता ।
कैकेय्या पुरुषव्याघ्र बालवत्सेव गौर्बलात् ॥ २१ ॥

अर्थ—हे पुरुषव्याघ्र ! जिसप्रकार सिंह बछड़े वाली गौ का बछड़ा छीनकर उसको बछड़े से हीन करदेता है इसी प्रकार कैकेयीरूप सिंहनी ने मुझसे मेरा पुत्र छीन मुझे पुत्रहीन करदिया है ॥

नहि मे जीविते किंचित्सामर्थ्यमिह कल्प्यते ।
अपश्यंत्याः प्रियं पुत्रं लक्ष्मणं च महाबलम् ॥२२॥

अर्थ—अपने प्रिय पुत्र राम तथा महाबली लक्ष्मण के बिना देखे मेरे में जीने का किंचित् भी सामर्थ्य नहीं है ॥

विलपन्तीं तथा तां तु कौसल्यां प्रमदोत्तमाम् ।
इदं धर्मे स्थिता धर्म्यं सुमित्रा वाक्यमब्रवीत्॥२३॥

अर्थ—इसप्रकार विलाप करती हुई उत्तम नारी कौसल्या से धर्म में स्थित सुमित्रा यह धर्मयुक्त वचन बोली कि:—

तवार्ये सद्गुणैर्युक्तः स पुत्रः पुरुषोत्तमः ।
किं ते विलपिते नैवं कृपणं रुदितेन वा ॥ २४ ॥
यस्तवार्ये गतः पुत्रस्त्यक्त्वा राज्यं महाबलः ।
साधु कुर्वन्महात्मानं पितरं सत्यवादिनम् ॥२५॥

अर्थ—हे आर्ये ! तेरा पुत्र सद्गुणों से युक्त पुरुषोत्तम है, फिर तू ऐसा विलाप और दीनता से रुदन क्यों करती है, हे आर्ये! तेरा महाबली पुत्र राज्य को त्यागकर अपने महात्मा पिता को भले प्रकार सत्यवादी बनाता हुआ अर्थात् उनको सत्य में स्थिर करता हुआ वन गया है ॥

शिष्टैराचरिते सम्यक्शश्वत्प्रेत्य फलोदये ।
रामो धर्मे स्थितः श्रेष्ठो न स शोच्यः कदाचन॥२६॥

अर्थ—शिष्ट पुरुषों के आचरण ग्रहण किये हुए तथा परलोक में भलीभांति सदा फल देने वाले धर्म में स्थित श्रेष्ठ राम कदापि शोक योग्य नहीं ॥

वर्तते चोत्तमां वृत्तिं लक्ष्मणोऽस्मिन्सदानघः ।
दयावान्सर्वभूतेषु लाभस्तस्य महात्मनः ॥२७॥

अरण्यवासे यद्दुःखं जानंत्येव सुखोचिता ।
अनुगच्छति वैदेही धर्मात्मानं तवात्मजम् ॥२८॥

अर्थ—और निष्पाप लक्ष्मण भी शोचनीय नहीं, क्योंकि वह भी उत्तमवृत्ति में स्थित है, सब भूतों पर दया करने वाले उस महात्मा को बड़ा लाभ है. वनवास में जो दुःख होगा उसको वह उचित सुख ही अनुभव करेगा और वनवास के लिये गई हुई वैदेही तुम्हारे धर्मात्मा पुत्र के साथ सुख ही अनुभव करेगी ॥

कीर्तिभूतां पताकां यो लोके भ्रमयति प्रभुः ।
धर्म सत्यव्रतपरः किं न प्राप्तस्तवात्मजः ॥ २९ ॥
व्यक्तं रामस्य विज्ञाय शौचं माहात्म्यमुत्तमम् ।
न गात्रमंशुभिः सूर्यः संतापयितुमर्हति ॥ ३० ॥

अर्थ—क्या तुमको धर्म, पराक्रम तथा सत्यव्रतपरायण पुत्र नहीं मिला जो अपने यश का झंडा सारे लोक में फहरायेगा, राम को पवित्र, उत्तम तथा महात्मा जानकर सूर्य्य भी अपनी किरणों से उसके गात्र को तप्त न करेगा ॥

शिवः सर्वेषु कालेषु कननेभ्यो विनिःसृतः ।
राघवं युक्त शीतोष्णः सेविष्यति सुखोऽनिलः॥३१॥
शयानमनघं रात्रौ पितेवाभि परिष्वजन् ।
घर्मघ्नः संस्पृशन् शीतश्चन्द्रमाह्लादयिष्यति॥३२॥

अर्थ—वायु सब कालों में वनों से निकलकर शीत तथा

उष्णता से युक्त हुआ २ राम को सुख ही देगा और रात्रि को सोते समय चन्द्रमा पिता के समान रक्षा करेगा अर्थात् सब अङ्गों का स्पर्श करता हुआ अपनी शीतलता से उनको अह्लाद प्राप्त करायेगा ॥

ददौ चास्त्राणिदिव्यानि यस्मै ब्रह्ममहौजसे ।
दानवेन्द्र हतं दृष्ट्वा तिमिध्वज सुतं रणे ॥ ३३ ॥
स शूरः पुरुषव्याघ्रः स्व बाहुबलमाश्रितः ।
असंत्रस्तोह्यरण्येसौवेश्मनीव निवत्स्यते ॥ ३४ ॥

अर्थ—और तिमिध्वज के पुत्र सुबाहु के रण में दानवेन्द्र सुबाहु को मरा हुआ देखकर महापराक्रमी विश्वामित्र ने जो उसको दिव्य अस्त्र दिये हैं उनसे वह शूरवीर पुरुषव्याघ्र अपने बाहुबल द्वारा वन में सुरक्षित रहता हुआ घर के समान ही वहां निवास करेगा ॥

या श्रीः शौर्यं च रामस्य या च कल्याण सत्त्वता ।
निवृत्तारण्यवासः स्वाक्षिप्रं राज्यमवाप्स्यति ॥३५॥

अर्थ—जो रामचन्द्र ऐश्वर्य्य, तेज, बल पराक्रम और सत्यता आदि गुणों से सुशोभित है वह वनवास से निवृत्त होकर शीघ्र ही अपने राज्य को प्राप्त होगा ॥

नार्हा त्वं शोचितुं देवि यस्यास्ते राघवः सुतः ।
नहि रामात्परो लोके विद्यते सत्पथे स्थितः ॥३३॥
अभिवादयमानं तं दृष्ट्वा स सुहृदं सुतम् ।
मुदाश्रु मोक्ष्यसे क्षिप्रं मेघरेखेव वार्षिकी ॥ ३७ ॥

अर्थ-हे देवि ! जिसका पुत्र राम है वह तू शोक करने योग्य नहीं, लोक में राम से बढ़कर कोई भी सन्मार्ग में स्थिर नहीं है, वह समय बहुत दूर नहीं जब तू सुहृदों सहित अपने पुत्र को फिर अभिवादन करता हुआ देख बरसाती मेघमाला की भांति आनन्द के आंसु बहावेगी ॥

निशम्य तल्लक्ष्मणमातृवाक्यं रामस्य मातु-
र्नरदेवपत्न्याः । सद्यः शरीरेविननाश
शोकः शरद्गतो मेघ इवाल्पतोयः॥३८॥

अर्थ-लक्ष्मण की माता सुमित्रा देवी के उक्त वचन सुनकर नरदेव=मनुष्यों में श्रेष्ठ राजा दशरथ की पत्नी तथा राममाता का शोक शरदृऋतु के अल्प जल वाले मेघ की न्याईं तत्काल निवृत्त होगया ॥

इति सप्तत्रिंशः सर्गः

अथ अष्टत्रिंशः सर्गः

अनुरक्ता महात्मानं रामं सत्यपराक्रमम् ।
अनुजग्मुः प्रयान्तं तं वनवासाय मानवाः ॥ १ ॥
अयोध्यानिलयानां हि पुरुषाणां महायशाः ।
बभूवः गुणसम्पन्नः पूर्णचन्द्र इव प्रियः ॥ २ ॥

अर्थ-सत्यपराक्रम वाले महात्मा राम में अनुरक्त अयोध्या

वासी वनवास को जाते हुए उसके पीछे गये, क्योंकि गुणसम्पन्न महायशस्वी राम उनको पूर्ण चांद की न्याईं प्यारा था ॥

अवेक्ष्यमाणः सस्नेहं चक्षुषा प्रपिबन्निव ।
उवाच रामः सस्नेहं ताः प्रजाः स्वाः प्रजा इव ॥३॥
या प्रीतिर्बहुमानश्च मय्ययोध्यानिवासिनाम् ।
मत्प्रियार्थं विशेषेण भरते सा विधीयताम् ॥ ४ ॥

अर्थ—वह राम सबको स्नेह की दृष्टि से देखते हुए ऐसे प्रतीत होते थे कि मानो सबको नेत्रों से पीरहे हैं, अपने पुत्रों की तरह उन सब प्रजाओं को प्यार से बोले कि जो प्रीति और बड़ा मान्य मुझमें अयोध्यावासियों का है मेरे प्रिय के लिये इससे बढ़कर भरत से प्रीति लगाओ और उनका बहुमान करो ॥

स हि कल्याणचारित्रः कैकेय्यानन्दवर्धनः ।
करिष्यन्ति यथावद्धः प्रियाणि च हितानि च ॥५॥
ज्ञानवृद्धो वयोबालो मृदुर्वीर्यगुणान्वितः ।
अनुरूपः स वो भर्ता भविष्यति भयापहः ॥ ६ ॥

अर्थ—वह पवित्र आचरण वाला सदाचारी, कैकेयी के आनन्द को बढ़ाने वाला भरत तुम्हारा यथावत् प्रिय और हित करेगा, आयु में छोटा पर ज्ञान में बहुत बढ़ा हुआ, मृदु=मधुरभाषी तथा वीर्य=बलसम्पन्न जितेन्द्रिय, इत्यादि गुणों से युक्त तुम्हारा योग्य स्वामी आप लोगों के भय को मिटाने वाला होगा ॥

स हि राजगुणैर्युक्तो युवराजः समीक्षितः ।
अपि चापि मया शिष्टैः कार्यंवो भर्तृशासनम् ॥७॥

अर्थ–वह राजगुणों से युक्त युवराज निश्चय कियागया है जो गुणों में मुझसे बढ़कर है, आप सब अपने स्वामी भरत की आज्ञा पालन करें ॥

न संतप्येद्यथा चासौ वनवासं गतेमयि ।
महाराजस्तथा कार्यो मम प्रियचिकीर्षया ॥ ८ ॥
यथा यथा दाशरथिर्धर्म एव स्थितोऽभवत् ।
तथा तथा प्रकृतयो रामं पतिमकारयन् ॥ ९ ॥

अर्थ–मेरे वन जाने पर जिसप्रकार महाराज दुःखी नहों वैसे ही आप लोगों को करना चाहिये, इसी में मेरा विशेष हित है, ज्यों २ राम धर्म में दृढ़ता दिखलाते गये त्यों २ सब लोग यही चाहते रहे कि हमारा स्वामी राम ही हो ॥

बाष्पेणापिहितं दीनं रामः सौमित्रिणा सह ।
चकर्षेव गुणैर्बद्धं जनं पुरनिवासिनम् ॥ १० ॥
ते द्विजास्त्रिविधं वृद्धा ज्ञानेन वयसौजसा ।
वयः प्रकम्पशिरसोदूरादूचुरिदं वचः ॥ ११ ॥

अर्थ–रोते हुए पुरवासी लोगों को लक्ष्मण सहित राम मानो अपने गुणों से बांधकर खींच रहे थे, ज्ञान, तप तथा आयु इन तीनों से वृद्ध ब्राह्मण जिनके बड़ी आयु होने से सिर कांप रहे हैं वह दूर ही से बोले कि :—

वहन्तो जवना रामं भो भो जात्यास्तुरंगमाः ।
निवर्तध्वं न गन्तव्यं हिता भवत भर्तरि ॥१२॥

अर्थ–हे, हे वेग से राम को लेजाने वाले कुलीन घोड़ो लौट आओ, न ले जाओ, अपने स्वामी के हितकारी बनो ॥

एवमार्तप्रलापांस्तान्वृद्धान्प्रलपतो द्विजान् ।
अवेक्ष्य सहसा रामो रथादवततार ह ॥१३॥
पद्भ्यामेव जगामाथ ससीतः सहलक्ष्मणः ।
सन्निकृष्टपदन्यासो रामो वनपरायणः ॥१४॥

अर्थ–इस प्रकार आर्त होकर विलाप करते हुए उन वृद्ध ब्राह्मणों को देखकर राम शीघ्र ही रथ से उतर पड़े,* और सीता तथा लक्ष्मण के साथ शनैः २ पैदल गये, परन्तु उनका मुख वन ही की ओर रहा पीछे फिरकर नहीं देखा ॥

गच्छन्तमेव तं दृष्ट्वा रामं संभ्रान्तमानसाः ।
ऊचुः परमसंतप्ता रामं वाक्यमिदं द्विजाः ॥१५॥

अर्थ–राम को जाते हुए ही देखकर परम संतप्त हुए ब्राह्मण बड़े सन्मानपूर्वक यह बचन बोले किः—

ब्राह्मण्यं कृत्स्नमेतत्त्वां ब्रह्मण्यमनुगच्छति ।
द्विजस्कन्धाधिरूढास्त्वमग्नयोप्यनुयांत्वमी ॥१६॥
वाजपेय समुत्थानि छत्राण्येतानि पश्य नः ।
पृष्ठतोऽनुप्रयातानि मेघानिव जलात्यये ॥ १७ ॥

---

* रथ से उतरने का कारण यह था कि शीघ्रगामी रथ से जाने में पीछे पैदल आते हुए वृद्ध ब्राह्मणों को दुःख होगा तथा लौट कर आश्वासन देने में व्रत भंग होगा, और यह दोनों ठीक न होने से ब्राह्मणों के सन्मानार्थ पैदल होलिये ॥

अर्थ—हे ब्रह्मण्यदेव ! हम सब ब्राह्मण भी तुम्हारे साथ ही चल रहे हैं और द्विजों के कन्धों पर लदी हुई हमारी अग्निहोत्र की सामग्री भी पीछे २ आरही है, वाजपेय यज्ञ करने वालों के इन छत्रों को देख जो जल से भरे हुए बादलों की न्याईं पीछे आरहे हैं॥

अनवाप्तातपत्रस्यरश्मिसंतापितस्यते ।
एभिश्छायां करिष्यामः स्वैश्छत्रैर्वाजपेयकैः ॥१८॥
याहि नः सततं बुद्धिर्वेदमन्त्रानुसारिणी ।
त्वत्कृते साकृता वत्स वनवासानुचारिणी ॥१९॥

अर्थ—जब आपको वन में तप्त सूर्य्य अपनी रश्मियों द्वारा तपायेगा तो हम लोग इन्हीं वाजपेय यज्ञ वाले अपने छत्रों से आपकी छाया करेंगे, हे बेटा ! जो हमारी बुद्धि सदा वेद-मंत्रानुसारिणी है अर्थात् वेदों की आज्ञा पालन करने वाले हम लोगों ने तेरे कारण अपनी बुद्धि वनवास के अनुसार करली है॥

हृदयेष्ववतिष्ठन्ति वेदा ये नः परंधनम् ।
वत्स्यन्त्यपि गृहेष्वेव दाराश्चारित्ररक्षिताः ॥२०॥

अर्थ—हमारा परमधन जो वेद है वह हमारे हृदयों में [illegible]थत है और हमारी स्त्रियें अपने चारित्र से रक्षा कीहुई घरों में रहेंगी॥

एवं विक्रोशतां तेषां द्विजातीनां निवर्तते ।
ददृशे तमसा तत्र वारयन्तीव राघवम् ॥ २१ ॥

अर्थ—उक्त प्रकार ब्राह्मण लोग विलाप से पुकारते हुए चले आते थे कि उन ब्राह्मणों के लौटाने के लिये मानो राम को रोकती हुई तमसा नदी आगई॥

राम का पिता से आज्ञा लेने जाना

सचिव उठाय राउ बैठारे । कहि प्रियवचन राम पगु धारे ॥
सिय समेत दोउ तनय निहारी । व्यकुल भयउ भूमिपति भारी ॥
सकइ न बोलिं विकल नरनाहू । शोक जनित उर दारुण दाहू ॥
नाइ शीश पद अति अनुरागा । उठि रघुनाथ विदा तब मांगा ॥
पितु अशीश आयसु मोहि दीजे । हर्ष समय बिस्मय कत कीजे ॥
तात किये प्रिय प्रेम प्रमादू । यश जग जाय होय अपवादू ॥
राय राम राखन हित लागी । बहुत उपाय किये छल त्यागी ॥
लखा राम रुख रहत न जाने । धर्म धुरंधर धीर सयाने ॥
और हुं सबहि सीय समुझाई ।कहिकहिविपिनविपतिअधिकाई ॥
सचिव नारि गुरुनारि सयानी । सहित सनेह कहहिं मृदुवानी ॥
तुमकहं तो न दीन वनवासू । करहुजोकहहिं श्वशुरअरुसासु ॥
सीय सकुचवश उतर न देई । सो सुनि तमकि उठी कैकेई ।
मुनिपट भूषण भाजन आनी । आगे धर बोली मृदुवानी ॥
नृपहि प्राणप्रिय तुम रघुवीरा । शील सनेह न छाड़हिं भीरा ॥
सुकृत सुयश परलोक नशाऊ । तुमहिं जान वन कहहिं न काऊ ॥
असविचारिसोई करहु जो भावा । रामजननिसिख सुनिसुखपावा ॥
जब मुनिवसन राम तनु धारे । नरनारी लखि भये दुखारे ॥
पहरे लषण वसन तनु माहीं । सीय गई लखि सहमि तहां हीं ॥
हाथ लिये वल्कल सुकुमारी । ठाढी भई लाज उर भारी ॥
पहर न जानत मन अकुलानी । राम ओर लखि कह मृदुवानी ॥
मुनिजनकेहिविधिबांधत चीरा । सो नहिं मैं जानत रघुवीरा ॥
अस कह चल्यो नैन वहि वारी । सुनि प्रभु उठे धीर धरि भारी ॥
निज करसों पहरावन लागे । लखिं नरनारि महादुःख पागे ॥
तब वसिष्ठ उठि कियो निवारण । सिय नहि करि हैं यह पट धारण ॥

सुन्दर भूषण वसन युत, सिया चलहि प्रभु साथ ।
सुनि वसिष्ठ के वचन तब, तजे वसन रघुनाथ ॥

राम चलत अति भयउ विषादू । कहि न जाय पुर आरत नादू ॥

गई मूर्छा तब भूपति जागे। बोलि सुमन्त कहन अस लागे॥
राम जाहिं वन प्राण न जाहिं। केहि सुख लागि रहे तनु माहीं॥
पुनि धरिधीर कहे नर नाहू। ले रथ सखा संग तुम जाहू॥
तब सुमंत नृप वचन सुनाये। करि विनती रथ राम चढ़ाये॥
चढ़ि रथ सीय सहित दो भाई। चले हृदय अवधहिं शिर नाई॥
चलत राम लखि अवध अनाथा। विकल लोग लागे सब साथा॥
कृपासिन्धु बहुविधि समुझावहिं। फिरहिंप्रेमवशपुनिफिरिआवहिं॥
लागत अवध भयावनि भारी। मानहु कालराति अंधियारी॥
घोर जंतु सम पुर नर नारी। डरपहिं एकहिं एक निहारी॥
घर मशान परिजन जनु भूता। सुतहित मीत मनहुं यमदूता॥
बागन्ह विटप बेलि कुम्हिलाहीं। सरित सरोवर देखि न जाहीं॥

हय गय कोटिन्ह केलि मृग, पुर पशु चातक मोर॥
पिक रथांग शुक सारिका, सारस हंस चकोर॥

राम वियोग विकल सब ठाढ़े। जहं तहं मनहु चित्र लिखि काढ़े॥
नगर सकल जनु गहवर भारी। खग मृग विपुल सकल नरनारी॥
सहि न सके रघुवर विरहागी। चले लोग सब व्याकुल भागी॥
सबहिं विचार कीन्ह मन माहीं। रामलखण सिय विन सुखनाहीं॥
जहां राम तहं सबइ समाजू। विनु रघुवीर अवध केहिकाजू॥
चले साथ अस मंत्र दृढ़ाई। सुर दुर्लभ सुखसदन विहाई॥
रामचरण पंकज प्रिय जिनहीं। विषयभोग वशकरहिं न तिनहीं॥

बालक वृद्ध विहायगृह, लगे लोग सब साथ॥
तमसा तीर निवास किय, प्रथम दिवस रघुनाथ॥

इति अष्टत्रिंशः सर्गः

अथ एकोनचत्वारिंशः सर्गः

ततस्तु तमसातीरं रम्यमाश्रित्य राघवः।
सीतामुद्वीक्ष्य सौमित्रिमिदं वचनमब्रवीत्॥ १॥

इयमद्य निशापूर्वा सौमित्रे प्रहिता वनम् ।
वनवासस्य भद्रं ते न चोत्कण्ठितुमर्हसि ॥ २ ॥

अर्थ—इसके अनन्तर तमसा नदी के रमणीय तट पर पहुंच कर सीता तथा लक्ष्मण को देख राम बोले कि हे लक्ष्मण ! आज यह वनवास की पहली रात वन में आई है सो तुम्हें शुभ हो, अब तुम्हें पीछे का स्मरण नहीं करना चाहिये ॥

पश्य शून्यान्यरण्यानि रुदन्तीव समन्ततः ।
यथा निलयमायद्भिर्निलीनानिमृगद्विजैः ॥ ३ ॥
अद्यायोध्या तु नगरी राजधानी पितुर्मम ।
सस्त्रीपुंसा गतानस्मान्शोचिष्यति न संशयः ॥४॥

अर्थ—हे लक्ष्मण ! इस शून्याकार वन को देख जो चारो ओर से रुदन करते हुए के समान दिखाई देता है और सब पशु पक्षी तथा मृगों के गण अपने २ स्थान को आरहे हैं, आज अयोध्या नगरी जो मेरे पिता की राजधानी है वह स्त्री पुरुषों सहित हमारे लिये शोक कर रही होगी, इसमें संशय नहीं ॥

अनुरक्ता हि मनुजा राजानं बहुभिर्गुणैः ।
त्वां च मां च नरव्याघ्र शत्रुघ्नभरतौ तथा ॥ ५ ॥

अर्थ—हे नरव्याघ्र ! हमारे पिता में बहुत गुण होने के कारण वहां के सब लोग उनमें अनुरक्त हैं और मुझसे, तुमसे तथा भरत और शत्रुघ्न से भी अधिक स्नेह करते हैं ॥

पितरं चानुशोचामि मातरं च यशस्विनीम् ।
अपि नान्धौ भवेतां नौ रुदन्तौ तावभीक्ष्णशः॥६॥

भरतः खलु धर्मात्मा पितरं मातरं च मे ।
धर्मार्थकामसहितैर्वाक्यैराश्वासयिष्यति ॥ ७ ॥
भरतस्यानृशंसत्वं संचिन्त्याहं पुनः पुनः ।
नानुशोचामि पितरं मातरं च महाभुज ॥ ८ ॥

अर्थ—मुझको पिता और यशस्विनी माता का अति शोक है कि वह असन्त रुदन करते हुए अन्धे होजायंगे, पर मुझे विश्वास है कि धर्मात्मा भरत मेरे माता पिता को अवश्य धर्म, अर्थ तथा कामयुक्त वाक्यों से आश्वासन देगा, हे लक्ष्मण ! भरत के दयाभाव का पुनः २ चिन्तन करके मैं माता पिता के लिये शोक नहीं करता हूं ॥

त्वयाकार्यं नरव्याघ्रमामनुव्रजताकृतम् ।
अन्वेष्टव्या हि वैदेह्या रक्षणार्थं सहायता ॥ ९ ॥
अद्भिरेव हि सौमित्रे वत्स्याम्यद्यनिशामिमाम् ।
एतद्धि रोचते मह्यं वन्येऽपि विविधे सति ॥ १० ॥

अर्थ—हे लक्ष्मण ! यह आपने बहुत अच्छा काम किया जो मेरे साथ चले आये नहीं तो जानकी की रक्षा के लिये कोई अन्य सहायक ढूढना पड़ता, हे लक्ष्मण ! यद्यपि वन के नाना प्रकार के फल मूल भी यहां पर हैं परन्तु में आज की रात केवल जल पीकर ही रहुंगा, यही मेरी रुचि है ॥

गोकुलाकुलतीरायास्तमसायाविदूरतः ।
अवसत्तत्र तां रात्रिं रामः प्रकृतिभिः सह ॥ ११ ॥

उत्थाय च महातेजाः प्रकृतीस्ता निशाम्य च ।
अब्रवीद्भ्रातरं रामो लक्ष्मणं पुण्य लक्षणम् ॥१२॥

अर्थ–गौओं के समूहों वाले तमसा के तट से कुछ दूर पर वह रात राम अपने अयोध्यावासी लोगों के साथ सोये, वह महातेजस्वी राम ! प्रभात समय उठ उन लोगों को देखकर पुण्य लक्षणों वाले अर्थात् पुण्यात्मा भाई लक्ष्मण से बोले किः—

अस्मद्व्यपेक्षान्सौमित्रे निर्व्यपेक्षान्गृहेष्वपि ।
वृक्षमूलेषु संसुप्तान्पश्य लक्ष्मण सांप्रतम् ॥ १३ ॥
यथैते नियमं पौराःकुर्वन्त्यस्मन्निवर्तने ।
अपि प्राणानसिष्यन्ति नतु त्यक्ष्यन्ति निश्चयम्॥१४॥

अर्थ–हे लक्ष्मण ! वृक्षों के नीचे सोये हुए इन लोगों को देख जो हमारी अपेक्षा करते हुए घर से निर्पेक्ष=वे परवाह होरहे हैं, यह पुरवासी किसप्रकार हमारे लौटाने में यत्नवान् हैं, यह इतने दृढ़ हैं कि प्राणों को छोड़देंगे परन्तु अपने निश्चय को कदापि न छोड़ेंगे अर्थात् यातो हमारे साथ चलेंगे नहीं तो हम से लौटने के लिये वार २ प्रेरणा करेंगे ॥

यावदेव तु संसुप्तास्तावदेव वयं लघु ।
रथमारुह्य गच्छामः पन्थानमकुतोभयम् ॥ २५ ॥
अतो भूयोऽपि नेदानीमिक्ष्वाकुपुरवासिनः ।
स्वपेयुरनुरक्ता मां वृक्षमूलेषु संश्रिताः ॥ १६ ॥

अर्थ–इसलिये उचित यह है कि ये जब तक सोये हुए हैं तब तक अर्थात् इनके उठने से पूर्व ही हम शीघ्र रथ पर चढ़कर

निर्भय मार्ग को चलें, मेरे चले जाने पर फिर इक्ष्वाकुपुर के वासी मेरे अनुराग में वृक्षों के नीचे न सोवेंगे अर्थात् अपने २ गृह को लौटजावेंगे ॥

पौराह्यात्मकृताद्दुःखाद्विप्रमोच्या नृपात्मजैः ।
न तु खल्वात्मना योज्या दुःखेन पुरवासिनः॥१७॥
अब्रवील्लक्ष्मणो रामं साक्षाद्धर्ममिव स्थितम् ।
रोचते मे तथा प्राज्ञ क्षिप्रमारुह्यतामिति ॥ १८ ॥

अर्थ-राजपुत्रों को उचित है कि पुरवासी लोगों को दुःख से छुड़ायें नकि अपने दुःखों से उनको दुःखी करें, तब साक्षात् धर्म की भांति स्थित राम को लक्ष्मण ने यह उत्तर दिया कि हे प्राज्ञ! आपका उक्त कथन ठीक है शीघ्र ही रथ पर सवार होजायं ॥

अथ रामोऽब्रवीत्सूतं शीघ्रं संयुज्यतांरथः ।
गमिष्यामि ततोऽरण्यं गच्छशीघ्रमितः प्रभो ॥१९॥
सूतस्ततः संत्वरितः स्यन्दनं तैर्हयोत्तमैः ।
योजयित्वा तु रामस्य प्राञ्जलिः प्रत्यवेदयत् ॥२०॥

अर्थ-इसके अनन्तर राम सुमन्त्र से बोले कि रथ शीघ्र ही जोड़ो ताकि यहां से तुरन्त ही वन को चलें, राम की आज्ञा पाते ही सुमन्त्र तत्काल उत्तम घोड़ों से रथ जोड़कर लाये और हाथ जोड़कर निवेदन किया कि महाराज रथ तैयार है ॥

अयं युक्तो महाबाहो रथस्ते रथिनांवर ।
त्वरयारोह भद्रन्ते स सीतः सह लक्ष्मणः॥ २१ ॥

तं स्यन्दनमधिष्ठाय राघवः सपरिच्छदः ।
शीघ्रगामाकुलावर्तां तमसामतरन्नदीम् ॥ २२ ॥

अर्थ—हे रथियों में श्रेष्ठ महाबाहो ! आप सीता तथा लक्ष्मण सहित शीघ्र ही रथ पर सवार हों, आपका कल्याण हो, अपने सब सामान सहित राम उस रथ पर चढ़ शीघ्रगामिनी भंवरों वाली तमसा नदी से पार हुए ॥

स संतीर्य महाबाहुः श्रीमाञ्शिवमकण्टकम् ।
प्रापद्यत महामार्गमभयं भयदर्शिनाम् ॥ २३ ॥
मोहनार्थं तु पौराणां सूतं रामोऽब्रवीद्वचः ।
उदङ्मुखः प्रयाहि त्वं रथमारुह्य सारथे ॥ २४ ॥

अर्थ—वह महाबाहु श्रीमान् तमसा से पार होकर निष्कण्टक शुभ मार्ग में आये, जो भय देखने वालों के लिये भी अभय है अर्थात् डरपोक पुरुष भी जहां निडर होकर चलते हैं, ऐसे महा-मार्ग=राजमार्ग को प्राप्त हुए पुरवासी लोगों के मोहनार्थ=उनको भ्रान्ति में डालने के लिये राम ने सुमन्त्र से कहा कि हे सारथे ! तू रथ पर अकेला चढ़कर उत्तराभिमुख जा, जिससे अयोध्या वासियों को मेरे लौटने की भ्रान्ति हो और वह सब शान्तिपूर्वक अपने २ घर को चले जायं ॥

मुहूर्तं त्वरितं गत्वा निवर्तय रथं पुनः ।
यथा न विद्युः पौरा मां तथा कुरु समाहितः ॥२५॥
रामस्य तु वचः श्रुत्वा तथा चक्रे च सारथिः ।
प्रत्यागम्य च रामस्य स्यन्दनं प्रत्यवेदयत् ॥२६॥

अर्थ–कुछ काल शीघ्र चलकर फिर रथ को यहीं लौटा लाओ, तुम सावधान होकर वह काम करो जिससे पुरवासी मुझे न जानसकें और घर लौटजायं, राम के उक्त वचन सुनकर सुमन्त्र ने वैसा ही किया, और फिर वहां से लौटकर राम को रथ दिया ॥

तौ संप्रयुक्तं तु रथं समास्थितौ तदा ससीतौ रघुवंशवर्धनौ । प्रचोदयामास ततस्तुरंगमान्स सारथिर्येन यथा तपोवनम् ॥ २७ ॥

अर्थ–वह रघुवंश के बढ़ाने वाले दोनों भाई सीता सहित उस सुन्दर रथ पर सवार हुए और सारथि ने बड़े वेग वाले घोड़ों को हांककर तपोवन का मार्ग लिया ॥

इति एकोनचत्वारिंशः सर्गः

अथ चत्वारिंशः सर्गः

प्रभातायां तु शर्वर्यां पौरास्ते राघवं विना ।
शोकोपहतनिश्चेष्टा बभूवुर्हतचेतसः ॥ १ ॥
शोकजाश्रुपरिद्यूना वीक्षमाणास्ततस्ततः ।
आलोकमपि रामस्य न पश्यन्तिस्म दुःखिताः ॥२॥

अर्थ–रात्रि के व्यतीत होने पर जब प्रभात हुआ तो वहां राम को न देखकर सब पुरवासी लोगों का चित्त शोक को प्राप्त हो निश्चेष्ट=चेष्टा से रहित होगया, और शोक से आंसू

बहाते हुए इधर उधर ढूढ़ने लगे पर वहां कहीं राम का निशान भी न देखकर बहुत घबराये ॥

ते विषादार्तवदना रहितास्तेन धीमता ।
कृपणाः करुणा वाचो वदन्तिस्म मनीषिणः ॥३॥
धिगस्तु खलु निद्रां तां यथापहृत चेतसः ।
नाद्य पश्यामहे रामं पृथूरस्कं महाभुजम् ॥ ४ ॥

अर्थ–उस बुद्धिमान् से बिछुड़ने के कारण सब लोगों के मुख मुरझा गये और दीन हुए करुणामय वाणी से आपस में बातचीत करने लगे कि धिक्कार है उस निद्रा को जिससे बेहोश होकर ऐसे सोये कि हम आज उस विशाल छाती तथा बड़ी भुजाओं वाले राम को यहां नहीं देखते ॥

यो नः सदा पालयति पिता पुत्रानिवौरसान् ।
कथं रघूणां स श्रेष्ठस्त्यक्त्वा नो विपिनं गतः ॥५॥
सा नूनं नगरी दीना दृष्ट्वास्मान्राघवं विना ।
भविष्यति निरानन्दा सस्त्रीबालवयोधिका ॥६॥

अर्थ–जिस प्रकार पिता सगे पुत्रों का पालन करता है इसी प्रकार हमारा पालन पोषण करने वाला राम हमको त्यागकर कैसे वन को चलागया, वह दीन अयोध्या नगरी निःसन्देह हमको राम से विना आया हुआ देख आनन्द से रहित स्त्री, बाल, वृद्धों सहित शोक में डूबजायगी ॥

निर्यातास्तेन वीरेण सह नित्यं जितात्मना ।
विहीनास्तेन च पुनः कथं द्रक्ष्याम तां पुरीम् ॥७॥

इतीव बहुधा वाचो बाहुमुद्यम्य ते जनाः ।
विलपन्ति स्म दुःखार्ता हृत वत्सा इवाग्रयगाः॥८॥

अर्थ—उस जितात्मा वीर के साथ हम सब निकलकर आये हुए उससे विना अब हम कैसे उस पुरी को देखेंगे, इस प्रकार वह सब जनसमुदाय भुजा उठाकर बछड़ों से रहित धेनुओं की भांति दुःख से आर्त्त हुए २ अनेक प्रकार के विलाप करने लगे ॥

ततो मार्गानुसारेण गत्वा किंचित्ततः क्षणम् ।
मार्गनाशाद्विषादेन महता समभिप्लुताः ॥ ९ ॥
रथमार्गानुसारेणन्यवर्तन्त मनस्विनः ।
किमिदं किं करिष्यामो दैवेनोपहता इति ॥१०॥
तदा यथागतेनैव मार्गेण क्लान्तचेतसः ।
अयोध्यामगमन्सर्वे पुरीं व्यथितसज्जनाम् ॥११॥

अर्थ—तदनन्तर मार्ग के अनुसार अर्थात रथ के खोज=निशान पर कुछ काल चलकर फिर खोज न मिलने से बड़े विषाद=दुःख को प्राप्त हुए, और यह कहते हुए लौटे कि अब क्या करें यहां कहीं रथ के मार्ग का निशान भी नहीं मिलता यह क्या हुआ, दैव ने हमको मार दिया, तब वह सब खिन्न चित्त हुए जिस मार्ग से गये थे उसी मार्ग से अयोध्यापुरी को लौट आये जिसमें सब सज्जन अति पीड़ित होरहे हैं ॥

आलोक्य नगरीं तां च क्षय व्याकुल मानसाः ।
आवर्तयं तत्तेऽश्रूणि नयनैः शोक पीड़ितैः॥१२॥

अर्थ–उस पुरी को अतिव्याकुल देखकर शोक से पीड़ित उनके नयनों से आंसू निकल पड़े ॥

चन्द्रहीनामिवाकाशं तोयहीनमिवार्णवम् ।
अपश्यन्निहतानन्दं नगरं ते विचेतसः ॥ १३ ॥

अर्थ–जैसे चन्द्रमा से विना आकाश तथा जल से विना समुद्र सुशोभित नहीं होता इसी प्रकार राम विना आनन्द से शून्य अयोध्या को देखकर वह सब अचेत होगये ॥

ते तानि वेश्मानि महाधनानि दुःखेन दुःखो-
पहता विशन्तः । नैवप्रजग्मुः स्वजनं परं
वा निरीक्षमाणाः प्रविनष्टहर्षाः ॥ १४ ॥

अर्थ–वह सब दुःख से अतिपीड़ित बड़े धन वाले घरों में कष्ट से प्रवेश करते हुए उनको अपना पराया नहीं सूझता था, क्योंकि उनका सब हर्ष नष्ट होचुका था ॥

सं०–अब राम की दूसरे दिन की यात्रा कथन करते हैंः—

रामोऽपि रात्रिशेषेण तेनैव महदन्तरम् ।
जगाम पुरुषव्याघ्रः पितुराज्ञामनुस्मरन् ॥ १५ ॥
तथैव गच्छतस्तस्य व्यपायाद्रजनी शिवा ।
उपास्य तु शिवां सन्ध्यां विषयानत्यगाहत ॥१६॥

अर्थ–पुरुषश्रेष्ठ राम भी पिता की आज्ञा का स्मरण करते हुए उसी रात्रिशेष से बहुत दूर निकलगये, और उसी प्रकार चलते २ वह शुभ रात्रि बीतगई, फिर वह कल्याण के देने वाली सन्ध्या उपासना करके वहां से आगे को चलेगये ॥

ग्रामान्विकृष्ट सीमान्तान्पुष्पितानि वनानि च ।
पश्यन्नतिययौ शीघ्रं शनैरिव हयोत्तमैः ॥ १७ ॥
ततो वेदश्रुतिं नाम शिववारिवहां नदीम् ।
उत्तीर्याभिमुखः प्रायादगस्त्याध्युषितां दिशम्॥१८॥

अर्थ—खेतों से हरित सीमा वाले ग्रामों और फूले हुए वनों को देखते हुए उत्तम घोड़ों द्वारा अतिशीघ्र चलना भी उन्हें मन्द २ प्रतीत होता था, इस प्रकार चलते २ उत्तम जल वाली वेदश्रुति नामक नदी से पार होकर अगस्त्य के आश्रित दक्षिण दिशा की ओर गये ॥

गत्वा तु सुचिरं कालं ततः शीतवहां नदीम् ।
गोमतीं गोयुतानूपामतरत्सागरंगमाम् ॥ १९ ॥
गोमतीं चाप्यतिक्रम्य राघवः शीघ्रगैर्हयैः ।
मयूरहंसाभिरुतां ततार स्यन्दिकां नदीम् ॥ २० ॥

अर्थ—इसके अनन्तर चिरकाल तक चलकर शीतल जल वाली समुद्रगामिनी गोमती नदी से पार हुए जिसका जङ्गल गौओं से भरा हुआ था, शीघ्र बहने वाली गोमती नदी से घोड़ों द्वारा पार होकर मोर और हंसों से शोभायमान स्यन्दिका नदी से पार उतरकर :—

समहींमनुना राज्ञा दत्तामिक्ष्वाकवे पुरा ।
स्फीतां राष्ट्रवृतां रामो वैदेहीमन्वदर्शयत् ॥ २१ ॥

अर्थ—सीता को दिखलाया कि पूर्व इस पृथिवी का राजा

मनु था जिसने महाराज इक्ष्वाकु को अपनी राजधानी बनाने के लिये दी थी, इसमें नाना प्रकार के धन धान्ययुक्त देश हैं ॥

ततो धान्यधनोपेतान्दानशीलजनाञ्छिवान् ।
अकुतश्चिद्भयान्रम्यांश्चैत्ययूपसमावृतान् ॥ २२ ॥
उद्यानाम्रवणोपेतान्संपन्नसलिलाशयान् ।
तुष्टपुष्टजनाकीर्णान्गोकुलाकुलसेवितान् ॥ २३ ॥
रक्षणीयान्नरेन्द्राणां ब्रह्मघोषाभिनादितान् ।
रथेन पुरुषव्याघ्रः कोसलानत्यवर्तत ॥ २४ ॥

अर्थ—इसके अनन्तर धनधान्य से भरपूर, दानशील जनों वाले, शुभ, सब ओर से निर्भय, अति रमणीय और यज्ञस्तम्भों से युक्त, पुष्पवाटिकाओं तथा आम्र के वनसहित तड़ागों से शोभित, सन्तुष्ट वा हृष्टपुष्ट जनों से भरे हुए और गौओं के समूह जहां वास कररहे हैं, राजाओं से रक्षित, तपस्वी ब्राह्मणों द्वारा वेदध्वनि से गूंजते हुए, उन कोसल देशों को पुरुषश्रेष्ठ राम रथ पर चढ़े देखते हुए धीरे २ गये ॥

तत्र त्रिपथगां दिव्यां शीततोयामशैवलाम् ।
ददर्श राघवो गङ्गां रम्यां मुनिनिषेविताम् ॥ २५ ॥
क्वचित्तीररुहैर्वृक्षैर्मालाभिरिवशोभिताम् ।
क्वचित्फुल्लोत्पलच्छन्नांक्वचित्पद्मवनाकुलाम् ॥२६॥
समुद्रमहिषीं गङ्गां सारसक्रौञ्चनादिताम् ।
आससाद महाबाहुः शृङ्गवेरपुरं प्रति ॥ २७ ॥

अर्थ—वहीं पर राम ने शीतल जल वाली, शैवाल तथा कायी आदि से रहित और मुनियों से सेवित रमणीय गङ्गानदी को देखा, जो किनारे पर उगे हुए वृक्षों की मालाओं से शोभायमान, कहीं फूले हुए कमलों से ढकी हुई और कहीं पद्मों के वन से युक्त शोभायमान है, ऐसी समुद्र की महारानी सारस और क्रौंचों की गूंज से नादित गङ्गा पर शृङ्गवेरपुर के समीप वह महाबाहु राम पहुंचे ॥

तामूर्मिकलिलावर्तामन्ववेक्ष्यमहारथः ।
सुमन्त्रमब्रवीत्सूतमिहैवाद्य वसामहे ॥ २८ ॥
अविदूरादयं नद्या बहुपुष्पप्रवालवान् ।
सुमहानिंगुदीवृक्षो वसामोऽत्रैव सारथे ॥ २९ ॥

अर्थ—उस उत्तम लहरों और भंवरों वाली गङ्गा को देखकर राम सुमन्त्र से बोले कि आज यहीं निवास करेंगे, हे सारथे ! नदी के निकट ही यह बहुत फूलों और शाखाओं वाला महान् इंगुदी का वृक्ष है आज इसके समीप ही रहते हैं ॥

रामोऽभियाय तं रम्यं वृक्षमिक्ष्वाकुनन्दनः ।
रथादवातरत्तस्मात्सभार्यः सहलक्ष्मणः ॥ ३० ॥
सुमन्त्रोप्यवतीर्याथ मोचयित्वा हयोतमान् ।
वृक्षमूलगतं राममुपतस्थे कृताञ्जलिः ॥ ३१ ॥

अर्थ—इक्ष्वाकुनन्दन राम उस सुहावने वृक्ष के समीप जाकर पत्नी और लक्ष्मण सहित रथ से उतर पड़े, और सुमन्त्र भी रथ

से उत्तम घोड़ों को खोलकर वृक्ष के मूल में बैठे हुए राम के समीप हाथ जोड़कर उपस्थित हुए ॥

इति चत्वारिंशः सर्गः

अथ एकचत्वारिंशः सर्गः

तत्र राजा गुहो नाम रामस्यात्मसमः सखा ।
निषादजात्यो बलवान्स्थपतिश्चेति विश्रुतः ॥ १ ॥
स श्रुत्वा पुरुषव्याघ्रं रामं विषयमागतम् ।
वृद्धैः परिवृतोऽमात्यैर्ज्ञातिभिश्चाप्युपागतः ॥ २ ॥

अर्थ–वहीं पर भीलजातीय "गुह" नामक भीलों का बड़ा बलवान् राजा राम का प्राणतुल्य सखा रहता था, वह पुरुषश्रेष्ठ राम को अपने देश में आया हुआ सुनकर वृद्ध मन्त्रियों और भाई बन्धुओं के साथ उनकी सेवा में आया ॥

ततो निषादाधिपतिं दृष्ट्वा दूरादुपस्थितम् ।
सह सौमित्रिणा रामः समागच्छद्गुहेन सः ॥३॥
तमार्तः संपरिष्वज्य गुहो राघवमब्रवीत् ।
यथायोध्या तथेदं ते राम किं करवाणि ते ॥ ४ ॥

अर्थ–तब दूर से ही निषादों के अधिपति गुह को आता देखकर राम तथा लक्ष्मण उसके साथ मिले, राम को चीर पहने देखकर गुह पीड़ित हुआ और उनको गले लगाकर बोला कि

जैसे अयोध्या है वैसे ही यह पुर आपका है, मुझे आज्ञा दीजिये आपकी क्या सेवा करूं ॥

ईदृशं हि महाबाहो कः प्राप्स्यत्यतिथिं प्रियम् ।
ततो गुणवदन्नाद्यमुपादाय पृथग्विधम् ॥ ५ ॥
स्वागतं ते महाबाहो तवेयमखिला मही ।
वयं प्रेष्या भवान्भर्ता साधु राज्यं प्रशाधि नः ॥६॥

अर्थ—हे महाबाहो ! आप जैसे उत्तम प्रिय अतिथि को कौन प्राप्त होगा अर्थात् आप जैसा अतिथि मिलना दुर्लभ है, फिर उत्तम २ गुणों वाले नाना प्रकार के अन्नादि खाद्य पदार्थ तथा अर्घ्य लाकर बोला कि हे महाबाहो ! आपका आना शुभ हो, यह सम्पूर्ण पृथिवी आप ही की है,हम सेवक और आप स्वामी हैं, भलेप्रकार इस राज्य का शासन कीजिये ॥

भक्ष्यं भोज्यं च पेयं च लेह्यं चैतदुपस्थितम् ।
शयनानि च मुख्यानि वाजिनां खादनं च ते॥७॥
गुहमेवं ब्रुवाणं तु राघवः प्रत्युवाच ह ।
अर्चिताश्चैव हृष्टाश्च भवता सर्वदा वयम् ॥ ८ ॥
पद्भ्यामभिगमाच्चैव स्नेहसंदर्शनेन च ।
भुजाभ्यां सधुवृत्ताभ्यां पीडयन्वाक्यमब्रवीत् ॥९॥

अर्थ—और यह भक्ष्य भोज्य=खाने योग्य, पेय=पीने योग्य और लेह्य=चाटने योग्य सब पदार्थ उपस्थित हैं, यह उत्तम बिछोने और घोड़ों के लिये भी खाना तैयार है, गुह के इस प्रकार विनयपूर्वक कथन करने पर राम ने कहा कि आपने इस

प्रकार पैदल आकर जो हार्दिक स्नेह दिखलाया है उससे हमारा बड़ा सत्कार हुआ है, और हम आपसे सदा प्रसन्न हैं, फिर बड़े स्नेहपूर्वक उत्तम भुजाओं से राम गुह को गले लगाकर बोले कि :—

दिष्ट्या त्वां गुह पश्यामि ह्यरोगं सह बान्धवैः ।
अपि ते कुशलं राष्ट्रे मित्रेषु च वनेषु च ॥ १० ॥

अर्थ—हे गुह ! मैं बान्धवों सहित आपको आनन्दपूर्वक देखकर और आपके राज्य, मित्रों तथा वनों में कुशल देखकर अति प्रसन्न हुआ हूं ॥

यत्त्विदं भवता किंचित्प्रीत्या समुपकल्पितम् ।
सर्वं तदनुजानामि नहि वर्ते प्रतिग्रहे ॥ ११ ॥
कुशचीराजिनधरं फलमूलाशनं च माम् ।
विद्धि प्रणिहितं धर्मे तापसं वनगोचरम् ॥१२॥

अर्थ—जो कुछ आपने प्रीतिपूर्वक मेरे लिये तैयार किया है उसको मैं बड़े आदर की दृष्टि से देखता हूं पर वर्त नहीं सक्ता, आप मुझे कुश के चीर तथा मृगान पहरने वाला, फल मूल खाने वाला और धर्म में तत्पर वनचारी जानें ॥

अश्वानां खादनेनाहमर्थी नान्येव केनचित् ।
एतावतात्र भवता भविष्यामि सुपूजितः ॥ १३ ॥
एते हि दयिता राज्ञः पितुर्दशरथस्य मे ।
एतैः सुविहितैरश्वैर्भविष्याम्यहमर्चितः ॥ १४ ॥

अर्थ—मुझको यहां घोड़ों के लिये दाने चारे की आवश्य-

कता है अन्य किसी पदार्थ की नहीं, मैं इतने ही से आपके यहां परम सत्कारित होउंगा, यह घोड़े मेरे पिता राजा दशरथ के प्यारे हैं इनकी तृप्ति से मैं पूजित होउंगा अर्थात् यह मेरा ही सत्कार होगा ॥

अश्वानां प्रतिपानं च खादनं चैव सोन्वशात् ।
गुहस्तत्रैव पुरुषांस्त्वरितं दीयतामिति ॥ १५ ॥

अर्थ—यह सुनकर गुह ने अपने सेवकों को आज्ञा दी कि घोड़ों के लिये दाना घास तथा खीर महेला आदि शीघ्र ही लाकर खिलाओ पिलाओ ॥

ततश्चीरोत्तरासंगः सन्ध्यामन्वास्य पश्चिमाम् ।
जलमेवाददे भोज्यं लक्ष्मणेनाहृतं स्वयम् ॥१६॥
तस्य भूमौ शयानस्य पादौ प्रक्षाल्य लक्ष्मणः ।
सभार्यस्य ततोऽभ्येत्य तस्थौ वृक्षमुपाश्रितः॥१७॥
गुहोऽपि सह सूतेन सौमित्रिमनुभाषयन् ।
अन्वजाग्रत्ततो राममप्रमत्तो धनुर्धरः ॥ १८ ॥

अर्थ—तदनन्तर राम ने ऊपर चीर लेकर सायंकाल की सन्ध्या उपासना करके लक्ष्मण का लाया हुआ केवल जल ही पान किया, तब सीता सहित पृथिवी पर सोये हुए राम के पांव छूकर समीप ही वृक्ष के नीचे लक्ष्मण खड़ा रहा और गुह भी सुमन्त्र के साथ लक्ष्मण से बातचीत करता सावधान हो धनुष पकड़कर जागता रहा ॥

इति एकचत्वारिंशः सर्गः

अथ द्विचत्वारिंशः सर्गः

प्रभातायां तु शर्वर्यां पृथुवक्षा महायशाः ।
उवाच रामः सौमित्रिं लक्ष्मणं शुभलक्षणम् ॥१॥
भास्करोदयकालोऽसौ गता भगवती निशा ।
असौ सुकृष्णो विहगः कोकिलस्तात कूजति॥२॥

अर्थ—रात्रि के पश्चात प्रभात होने पर महायशस्वी विशाल छाती वाले राम शुभ लक्षणों से युक्त लक्ष्मण से बोले कि हे तात ! अब सूर्योदय का समय है, क्योंकि रात्रि बीतगई और वह काला पक्षी कोयल किस उत्तमता से अपनी कूक सुना रहा है ॥

बर्हिणानां च निर्घोषः श्रूयते नदतां वने ।
तराम जाह्नवीं सौम्य शीघ्रगां सागरंगमाम् ॥३॥
स तु रामस्य वचनं निशम्य प्रतिगृह्य च ।
स्थपतिस्तूर्णमाहूय सचिवानिदमब्रवीत् ॥४॥

अर्थ—और बोलते हुए मोरों की ध्वनि वन में सुनाई देती है, हे सौम्य ! समुद्राभिमुख शीघ्रगामिनी गंगा से पार हों, वह गुह राम के इस प्रकार वचन सुन मंत्रियों को शीघ्र ही बुलाकर बोला कि :—

अस्य वाहनसंयुक्तां कर्णग्राहवतीं शुभाम् ।
सुप्रतारां दृढां तीर्थे शीघ्रं नावमुपाहर ॥ ५ ॥

तं निशम्य गुहादेशं गुहामात्यो गतो महान् ।
उपोह्य रुचिरां नावं गुहाय प्रत्यवेद यत् ॥ ६ ॥

अर्थ–उत्तम चप्पुओं वाली, योग्य मल्लाहों वाली तथा सुख से पार उतारने वाली दृढ़ नौका शीघ्र ही घाट पर लाओ, यह आज्ञा पाकर मन्त्री तुरन्त ही गया और उक्त लक्षणों वाली नौका को घाट पर लगाकर फिर निषादराज के समीप आकर निवेदन किया कि महाराज नौका उपस्थित है ॥

ततः कलापान्संनह्य खड्गौ बद्ध्वा च धन्विनौ ।
जग्मतुर्येन तां गंगां सीतया सह राघवौ ॥ ७ ॥
राममेवं तु धर्मज्ञमुपागत्य विनीतवत् ।
किमहं करवाणीति सूतः प्राञ्जलिरब्रवीत् ॥ ८ ॥

अर्थ–इसके अनन्तर वह दोनों धनुर्धारी भाई कवच और तलवारें बांधकर सीता सहित गङ्गा की ओर चले, तब धर्मज्ञ सुमन्त्र राम के निकट आकर विनीत की भांति हाथ जोड़कर बोले कि मुझे क्या आज्ञा है ॥

निवर्तस्वेत्युवाचैनमेतावद्धिकृतं मम ।
रथं विहाय पद्भ्यां तु गमिष्यामो महावनम् ॥९॥
इक्ष्वाकूणां त्वया तुल्यं सुहृदं नोपलक्षये ।
यथा दशरथो राजा मां न शोचेत्तथा कुरु ॥ १० ॥

अर्थ–तब राम ने उनसे कहा कि अब आप लौटजायं मेरा कार्य्य पूर्ण होगया, अब हम रथ छोड़कर पैदल महावन में

जावेंगे, मैं आपके तुल्य इक्ष्वाकुओं का कोई सुहृद् नहीं जानता, सो जैसे राजा दशरथ मेरे लिये शोक न करें वैसे ही आपने करना॥

शोकोपहतचेताश्चवृद्धश्चजगतीपतिः ।
काम भारावसन्नश्चतस्मादेतद्ब्रवीमि ते ॥ ११ ॥
यद्यथा स महाराजो नालीकमधिगच्छति ।
नच ताम्यति शोकेन सुमन्त्र कुरुतत्तथा ॥ १२ ॥

अर्थ—क्योंकि राजा एकतो मेरे शोक से हतचित्त होगये होंगे और दूसरे वृद्ध हैं फिर उन्हीं के ऊपर राज्य के कामों का भार रहेगा,इसलिये आपसे कहता हूं कि आप उनको हरप्रकार से प्रसन्न रखें, हे सुमन्त्र ! जिसप्रकार महाराज अप्रिय न देखें और शोक से मुरझाये हुए न रहें वैसे ही आपने करना ॥

अदृष्टदुःखं राजानं वृद्धमार्यं जितेन्द्रियम् ।
ब्रूयास्त्वमभिवाद्यैव मम हेतोरिदं वचः ॥ १३ ॥
न चाहमनुशोचामि लक्ष्मणो न च शोचति ।
अयोध्यायाश्च्युताश्चेति वने वत्स्यामहेति वा ॥१४॥
चतुर्दशसु वर्षेषु निवृत्तेषु पुनः पुनः ।
लक्ष्मणं मां च सीतां च द्रक्ष्यसे शीघ्रमागतान्॥१५॥

अर्थ—जिस जितेन्द्रिय वृद्ध आर्य्य राजा ने कभी दुःख नहीं देखा उनको मेरा अभिवादन करके मेरी ओर से यह वचन कहना कि इसका न मुझे न लक्ष्मण को शोक है कि हम अयोध्या से पृथक् किये गये हैं अथवा वन में रहेंगे, चौदहवर्ष

व्यतीत होने पर शीघ्र ही मुझको, लक्ष्मण और सीता को वहां आया हुआ देखेंगे ॥

एवमुक्त्वा तु राजानं मातरं च सुमन्त्र मे ।
अन्याश्च देवीः सहिताः कैकेयीं च पुनः पुनः॥१६॥
आरोग्यं ब्रूहि कौसल्यामथ पादाभिवन्दनम् ।
सीताया मम चार्यस्य वचनाल्लक्ष्मणस्य च ॥१७॥

अर्थ—राजा को ऐसा कहकर मेरी माता कौसल्या तथा अन्य देवियों और कैकेयी को मेरा, सीता और लक्ष्मण का बार २ आरोग्य कहकर उनके पाओं में हमारी ओर से बन्दना करना ॥

ब्रूयाश्चापि महाराजं भरतं क्षिप्रमानय ।
आगतश्चापि भरतः स्थाप्यो नृपमते पदे ॥ १८ ॥
भरतं च परिष्वज्य यौवराज्येऽभिषिच्य च ।
अस्मत्संतापजं दुःखं न त्वामभिभविष्यति ॥१९॥

अर्थ—और महाराज को कहना कि भरत को शीघ्र ही मंगवालें और आते ही भरत को युवराज पद पर स्थापित करदें, भरत को गले लगाकर तथा यौवराज्य पद पर नियुक्त करके हमारे सन्ताप से उत्पन्न हुआ दुःख फिर आपको नहीं सतावेगा ॥

भरतश्चापि वक्तव्यो यथा राजनि वर्तसे ।
तथा मातृषु वर्तेथाः सर्वास्वेवाविशेषतः ॥ २० ॥
निवर्त्यमानो रामेण सुमन्त्रः प्रतिबोधितः ।
तत्सर्वं वचनंश्रुत्वा स्नेहात्काकुत्स्थमब्रवीत् ॥ २१ ॥

अर्थ–और भरत को भी कहना कि तू जिसप्रकार राजा में वर्तता है अर्थात् जैसे राजा की आज्ञा पालन करता है वैसे ही सब माताओं में अविशेषरूप से वर्तना, या यों कहो कि सब की विशेषरूप से सेवा करना, जब राम ने सुमन्त्र को लौटाते हुए इस प्रकार कहा तब सुमन्त्र सब सुनकर स्नेहपूर्वक राम से बोले कि :—

कथं हि त्वद्विहीनोऽहं प्रतियास्यामि तां पुरीम् ।
तव तात वियोगेन पुत्रशोकातुरामिव ॥ २२ ॥
स राममपितावन्मे रथं दृष्ट्वा तदाजनः ।
विना रामं रथं दृष्ट्वा विदीर्येतापि सा पुरी ॥२३॥
दैन्यं हि नगरी गच्छेद् दृष्ट्वा शून्यं मिमंरथम् ।
सूतावशेषं स्वं सैन्यं हतवीरमिवाहवे ॥ २४ ॥

अर्थ–हे तात ! मैं आपके विना अयोध्यापुरी को कैसे जाऊं, आपका वियोग पुत्रशोक की न्याईं पीड़ित करता है, जब मैं अयोध्या से रथ लाया हूं तब राम के साथ मुझको पितावत् रथ लेजाते हुए सब जनों ने देखा है अब विना राम रथ को देखकर क्या वह पुरी विदीर्ण न होजायगी, इस रथ को शून्य देखकर सम्पूर्ण नगरी दीन होजायगी, जैसे संग्राम में शूरवीर के मरने से केवल सारथि सहित रथ को देखकर लोग दुःखी होते हैं ॥

दृष्टं तद्वै त्वया राम यादृशं त्वत्प्रवासने ।
प्रजानां संकुलं वृत्तं त्वच्छोक क्लान्त चेतसाम्॥२५॥
आर्तनादो हि यः पौरैरुन्मुक्तस्त्वत्प्रवासने ।
सरथं मां निशाम्यैव कुर्युः शतगुणं ततः ॥ २६ ॥

अर्थ–हे राम! आपने भले प्रकार देखा था आपके वनवास समय शोक से व्याकुल चित्तवाली प्रजाओं को कैसी घबराहट हुई थी, और जो आर्त्तनाद पुरवासी लोगों ने उस समय किया था अब मुझे रथ सहित अकेला देखकर उससे सौगुणा करेंगे॥

अहं किं चापि वक्ष्यामि देवीं तव सुतो मया।
नीतोऽसौ मातुलकुलं संतापं मा कृथा इति ॥२७॥
असत्यमपि नैवाहं ब्रूयां वचनमीदृशम्।
कथमप्रियमेवाहं ब्रूयां सत्यमिदं वचः ॥ २८ ॥

अर्थ–और बात यह है कि मैं कौसल्या देवी को जाकर क्या कहुंगा? क्या यह कहुंगा कि तेरे पुत्र को मामा के घर पहुंचा आया हूं तू संताप न कर, पर यह असत्य होने से ऐसा वचन मैं नहीं कहसक्ता, और यदि यह कहूं कि "उनको वन में पहुंचा आया हूं" यह सत्य है परन्तु अप्रिय होने से यह भी नहीं कहसक्ता॥

तन्न शक्ष्याम्यहंगन्तुमयोध्यां त्वदृतेऽनघ।
वनवासानुयानाय मामनुज्ञातुमर्हसि ॥ २९ ॥
प्रसीदेच्छामि तेऽरण्ये भवितुं प्रत्यनन्तरः।
प्रीत्याभिहितमिच्छामि भव मे प्रत्यनन्तरः ॥३०॥
वनवासे क्षयं प्राप्ते ममैष हि मनोरथः।
यदनेन रथेनैव त्वां वहेयं पुरीं पुनः ॥ ३१ ॥

अर्थ–इसलिये हे निष्पाप! तेरे बिना मैं अयोध्या को नहीं जाउंगा, सो आप मुझे भी आज्ञा दीजिये कि मैं भी वनवास में आपके साथ जाऊं, आप प्रसन्न हों, मैं वन में आपका समीपी

होना चाहता हूं और "मेरा समीपी हो"=वन में रह, यह मैं आपसे प्रीतिपूर्वक सुनना चाहता हूं, मेरा यह पूर्ण मनोरथ है कि वनवास के समाप्त होने पर इसी रथ से फिर आपको अयोध्यापुरी में ले चलूं ॥

एवं बहुविधं दीनं याचमानं पुनः पुनः ।
रामोभृत्यानुकम्पी तु सुमन्त्रमिदमब्रवीत् ॥ ३२ ॥
जानामि परमां भक्तिमहं ते भर्तृवत्सल ।
शृणुचापि यदर्थं त्वां प्रेषयामि पुरीमितः ॥ ३३ ॥
नगरीं त्वां गतं दृष्ट्वा जननी मे यवीयसी ।
कैकेयी प्रत्ययं गच्छेदिति रामो वनं गतः ॥३४॥

अर्थ–इस प्रकार अनेकविध वार २ दीन होकर याचना करते हुए सुमन्त्र को अपने भृत्यों पर दया करने वाले राम ने यह उत्तर दिया कि हे भर्तृवत्सल ! मैं आपकी परमभक्ति को भले प्रकार जानता हूं, परन्तु आपको यहां से पुरी की ओर इसलिये भेजता हूंकि आपको नगरी में गया हुआ देखकर मेरी छोटी माता कैकेयी को पूर्ण विश्वास होजायगा कि राम वन को चलागया है ॥

विपरीते तुष्टिहीना वनवासं गते मयि ।
राजानं नातिशंकेत मिथ्यावादीतिधार्मिकम्॥३५॥
एष मे प्रथमः कल्पो यदम्बा मे यवीयसी ।
भरतारक्षितं स्फीतं पुत्रराज्यमवाप्स्यते ॥ ३६ ॥

अर्थ—ऐसा न होने से अप्रसन्न हुई कैकेयी देवी मेरे बनवास को चलेजाने पर भी धार्मिक राजा पर मिथ्यावादी होने की शङ्का करेगी, और यह मुख्य प्रयोजन है कि मेरी छोटी माता भरत से सुरक्षित होकर समृद्धिवाली हो और उसका पुत्र राज्य को प्राप्तकर ऐश्वर्य्यशाली बने ॥

मम प्रियार्थं राज्ञश्च सुमन्त्र त्वं पुरीं व्रज ।
संदिष्टश्चापि यानर्थांस्तांस्तान्ब्रूयास्तथा तथा॥३७॥
इत्युक्त्वा वचनं सूतं सान्त्वयित्वा पुनः पुनः ।
गुहं वचनमक्लीबो रामो हेतुमदब्रवीत् ॥ ३८ ॥

अर्थ—हे सुमन्त्र ! मेरे ओर राजा के कल्याणार्थ आप पुरी को जायं ओर जो २ बातें जिस २ के लिये मैंने कही हैं उनको वैसे २ ही कहना. सुमन्त्र को इस प्रकार समझा बुझा पुनः २ शान्ति देकर राम गुह से अपनी प्रतिज्ञानुसार युक्ति युक्त वचन बोले कि :—

नेदानीं गुह योग्योऽयं वासो मे सजने वने ।
अवश्यमाश्रमे वासः कर्तव्यस्तद्गतो विधिः॥३९॥
सोऽहं गृहीत्वा नियमं तपस्विजनभूषणम् ।
जटाः कृत्वा गमिष्यामि न्यग्रोधक्षीरमानय ॥४०॥

अर्थ—हे गुह ! अब मुझको सजन=जनों वाले वन में रहना योग्य नहीं, मैं अवश्य आश्रम में वास करूंगा, इसलिये वैसी ही विधि करनी चाहिये, सो मैं तपस्वियों के नियम ग्रहण करके उनका भूषण जटायें बनाकर जाउंगा आप बड़ का दूध ले आवें ॥

तत् क्षीरं राजपुत्राय गुहः क्षिप्रमुपाहरत् ।
लक्ष्मणस्यात्मनश्चैव रामस्तेना करोज्जटाः ॥४१॥
ततो वैखानसंमार्गमास्थितः सहलक्ष्मणः ।
व्रतमादिष्टवान् रामः सहायं गुहमब्रवीत् ॥४२॥

अर्थ—वह दूध गुह ने राजपुत्र राम को शीघ्र ही लाकर दिया, फिर उससे राम ने अपनी और लक्ष्मण की जटायें बनाईं, और लक्ष्मण सहित वानप्रस्थाश्रम का आश्रय करके उसके नियमों को ग्रहण कर अपने सहायक गुह से बोले कि :—

अप्रमत्तो बले कोशे दुर्गे जनपदे तथा ।
भवेथा गुह राज्यं हि दुरारक्षतमं मतम् ॥ ४३ ॥
ततस्तं समनुज्ञाप्य गुहमिक्ष्वाकुनन्दनः ।
जगाम तूर्णमव्यग्रः सभार्यः सहलक्ष्मणः ॥ ४४ ॥

अर्थ—हे गुह ! सेना, कोश, दुर्ग और देश की रक्षा में सदा सावधान रहो, राज्य की रक्षा करना बड़ा कठिन काम है, इस प्रकार गुह को उपदेश करते हुए आज्ञा देकर शान्त मन हुए २ सीता तथा लक्ष्मण सहित राम नदी के तट पर गये ॥

स तु दृष्ट्वा नदीतीरे नावमिक्ष्वाकुनन्दनः ।
तितीर्षुः शीघ्रगां गंगामिदं वचनमब्रवीत् ॥४५॥
आरोह त्वं नरव्याघ्र स्थितां नावमिमां शनैः ।
सीतां चारोपयान्वक्षं परिगृह्य मनस्विनीम् ॥४६॥

अर्थ–और वहां नदी के तट पर नौका को देखकर शीघ्र गामिनी गंगा से पार होने की इच्छा वाले राम लक्ष्मण से बोले कि हे नरश्रेष्ठ ! इस नौका को पकड़कर प्रथम धीरे से मनस्विनी सीता को चढ़ा और फिर आप चढ़ ॥

स भ्रातुः शासनं श्रुत्वा सर्वमप्रतिकूलयन् ।
आरोप्य मैथिलीं पूर्वमारुरोहात्मवांस्ततः ॥ ४७ ॥
अथारुरोह तेजस्वी स्वयं लक्ष्मणपूर्वजः ।
ब्रह्मवत् क्षत्रवच्चैव जजाप हितमात्मनः ॥४८॥

अर्थ–भाई की आज्ञानुसार लक्ष्मण प्रथम सीता को नौका पर चढ़ाकर फिर आप चढ़ा, तदनन्तर लक्ष्मण का बड़ा भाई तेजस्वी राम ब्राह्मण तथा क्षत्रिय योग्य अपने हितकारक मंत्रों का जाप करता हुआ स्वयं आरूढ़ हुआ ॥

अनुज्ञाय सुमन्त्रं च सबलं चैव तं गुहम् ।
आस्थाय नावं रामस्तु चोदयामास नाविकान्॥४९॥
तीरं तु समनुज्ञाप्य नावं हित्वा नरर्षभः ।
प्रातिष्ठत सह भ्रात्रा वैदेह्या च परंतपः ॥ ५० ॥

अर्थ–और सुमन्त्र तथा सेनासहित गुह को आज्ञा देकर नौका पर चढ़ राम ने मल्लाहों को प्रेरणा की कि शीघ्र लेचलो, दूसरे किनारे पर पहुंचकर नौका को छोड़ दिया और शत्रुओं के तपाने वाले उस नरश्रेष्ठ राम ने नौका से उतर अपने भ्राता लक्ष्मण और सीता के साथ आगे प्रस्थान किया ॥

अथाब्रवीन्महाबाहुः सुमित्रानन्दवर्धनम् ।
भव संरक्षणार्थाय सजने विजनेऽपि वा ॥ ५१ ॥
अवश्यं रक्षणं कार्यं मद्विधैर्विजने वने ।
अग्रतो गच्छ सौमित्रे सीता त्वामनुगच्छतु ॥५२॥

अर्थ–इसके अनन्तर वह महाबाहु राम सुमित्रा के आनन्द को बढ़ाने वाले लक्ष्मण से बोले कि मनुष्यों के समूह अथवा निर्जन में रक्षा के लिये हरप्रकार से सावधान रहो, हे लक्ष्मण! इस अदृष्ट निर्जन वन में अवश्य रक्षा करनी चाहिये, सो तू आगे २ चल और सीता तेरे पीछे चले ॥

पृष्ठतोऽनुगमिष्यामि सीतां त्वां चानुपालयन् ।
अन्योन्यस्य हि नो रक्षा कर्तव्या पुरुषर्षभ ॥५३॥

अर्थ–और सीता तथा तुम्हारी रक्षा करता हुआ पीछे २ मैं चलुंगा, हे नरश्रेष्ठ! यहां पर हमको आपही एक दूसरे की रक्षा करनी चाहिये ॥

नहि तावदतिक्रान्ताऽसुकरा काचनक्रिया ।
अद्य दुःखं तु वैदेही वनवासस्य वेत्स्यति ॥ ५४ ॥

अर्थ–अभीतक कोई कठिन काम नहीं आया, अब वैदेही वनवास के दुःख को देखेगी ॥

प्रणष्टजनसंबाधं क्षेत्राराम विवर्जितम् ।
विषमं च प्रपातं च वनमद्य प्रवेक्ष्यति ॥ ५५ ॥
श्रुत्वा रामस्य वचनं प्रतस्थे लक्ष्मणोऽग्रतः ।
अनन्तरं च सीताया राघवो रघुनन्दनः ॥ ५६ ॥

अर्थ–आज सीता उस वन में प्रवेश करेगी जहां जनसमुदाय नहीं, खेत तथा बगीचे नहीं, और जो बहुत ऊंचा नीचा फिसलाने वाला है, राम के उक्त वचन सुनकर आगे २ लक्ष्मण, पीछे सीता और उसके पीछे राम चले ॥

गतं तु गंगापरपारमाशु रामं सुमन्त्रः
सततं निरीक्ष्य। अध्व प्रकर्षाद्विनिवृत्त
दृष्टिर्मुमोच वाष्पं व्यथितस्तपस्वी ॥५७॥

अर्थ–राम को शीघ्र ही गङ्गा के दूसरे तट पर गया हुआ देखकर सुमन्त्र ने अपनी दृष्टि मोड़ी, क्योंकि वह दूर निकल गये थे, तब राम को न देखकर तपस्वी सुमन्त्र की आखों से आंसु बहने लगे ॥

स लोकपाल प्रतिमप्रभावस्तीर्त्वा महात्मा
वरदोमहानदीम्। ततः समृद्धाञ्शुभ सस्य-
मालिनः क्षणेन वत्स्यान्मुदितानुपागमत्॥५८॥

अर्थ–वह लोकपालों के तुल्य प्रतापवान्, वर देने वाला महात्मा राम गङ्गा नदी के पार होकर समृद्ध शुभ खेतों की मालाओं वाले अर्थात् धनधान्य से पूरित वत्स्य देश में पहुंचे ॥

भाष्य–प्रिय पाठकवृन्द ! इस स्थल में यह लिखा है कि:—

तौ तत्र हत्वा चतुरो महामृगान्वराहमृश्यं-
पृषतं महारुरुम्। आदाय मेध्यं त्वरितं
बुभुक्षितौ वासाय काले ययतुर्वनस्पतिम॥

वा० २। ५२। १०२

अर्थ—राम वत्स्य देश में पहुंचे और वहां वराह, ऋश्य, पृषत और महारुरु, इन चार मृगों को मार मेध्य=मांस को शीघ्र लेकर सायंकाल वास के लिये एक वृक्ष के नीचे गये ॥

बाल्मीकि में यह प्रसिद्ध स्थल है जहां बड़े बलपूर्वक कहा जाता है कि रामचन्द्र मांसभक्षण करते थे, हमारे विचार में यह श्लोक प्रक्षिप्त है, कारण यह कि जबतक रामचन्द्र घर रहे और विश्वामित्र के साथ वन में जा राक्षसों को मार जनक के यज्ञ में गये और वहां धनुष तोड़ सीता के साथ विवाह कर पुनः घर आये तबतक उनके मांसभक्षण का कोई पुष्ट प्रमाण नहीं मिलता, इसके अनन्तर जब उनको वनवास की आज्ञा मिली तब वह अपनी माता कौसल्या से वनवास की आज्ञा लेने गये, माता उस समय अग्निहोत्र कर रही थी वह अपने नित्यकर्म से निवृत्त हो राम के निकट आई और उनको उत्तम आसन देकर कहने लगी कि बेटा कुछ मिष्ट भोजन करके पिता के समीप जाओ वह तुम्हें आज युवराज बनावेंगे, राम ने उत्तर दिया कि मैं पिता की आज्ञानुसार शीघ्र ही दण्डक वन को जाउंगा, मुझको इस आसन से क्या प्रयोजन मेरे लिये कुशासन दे, इसके अनन्तर राम ने कहा कि :—

चतुर्दश हि वर्षाणि वत्स्यामि विजने वने ।
कन्दमूलफलैर्जीवन् हित्वा मुनिवदामिषम् ॥

वा० २ । २० । २९

अर्थ—(हि) निश्चयकरके (चतुर्दश. वर्षाणि) चौदहवर्ष (विजने. वने) निर्जन वन में (वत्स्यामि) वसुंगा और वहां (आमिषं) मांस को (हित्वा) त्यागकर (कन्दमूलफलैः) कन्द,

मूल और फलों से (मुनिवत्) मुनियों की न्याईं (जीवन) अपना जीवन व्यतीत करूंगा ॥

पाठकगण! यह उस समय का श्लोक है जब राम वन को जारहे हैं, उस समय वह मर्यादापुरुषोत्तम अपनी माता से प्रतिज्ञा करते हैं कि मैं वन में जाकर मांस नहीं खाउंगा, और जो हमारे बहुत से भाई यह कहा करते हैं कि पहले ऋषि मुनि भी मांस खाते थे, उनके इस कथन का भी परिहार होगया, क्योंकि उक्त श्लोक में स्पष्ट लिखा है कि मैं मुनियों की न्याईं कन्द, मूल, फल भोजी बनुंगा, अब यहां यह प्रश्न होता है कि राम पहले मांस खाते थे तभी उनको यह कथन करने की आवश्यकता प्रतीत हुई कि मैं वन में जाकर मांस न खाउंगा? इसका उत्तर यह है कि अप्राप्त का निषेध भी लोक में पाया जाता है,जैसाकि सुरापानादिकों का निषेध जगत में होता है, और युक्ति यह है कि विपत्तिकाल में सब मर्यादा भङ्ग होजाती है, पर उस मर्यादापुरुषोत्तम ने कहा कि मैं वन में भी फलमूलादि सात्विक पदार्थ खाकर ही जीवन व्यतीत करूंगा ॥

इसके अनन्तर जब कौसल्या देवी राम के लिये विलाप करती हैं तब वहां उनका यह कथन है कि :—

यस्य भृत्याश्च दासाश्च मृष्टान्यन्नानि भुञ्जते ।
कथं स भोक्ष्यतेऽनाथो वने मूलफलान्ययम् ॥

वा० २। २४। ३

अर्थ—जिसके भृत्य और दास उत्तम बने हुए मीठे अन्न खाते हैं वह राम वन में अनाथ की भांति कैसे फल मूल खायगा ॥

इस कथन से सिद्ध होता है कि राम के घर में भी कभी मांस नहीं पकता था, यदि मांस पकता होता तो यहां यह न

कहाजाता कि " जिसके भृत्य और दास उत्तम मिष्ट अन्न खाते हैं " प्रत्युत यह कहाजाता कि जिसके भृत्यादि " उत्तमोत्तम मांस खाते हैं " वह वन में फल मूल खायगा ॥

और बड़ा प्रमाण यह है कि जिस समय वत्स्य देश से राम भरद्वाज के आश्रम में गये वहां उन्होंने ऋषि से कहा कि :—

पित्रा नियुक्ता भगवन्प्रवेक्ष्यामस्तपोवनम् ।
धर्ममेवाचरिष्यामस्तत्र मूलफलाशनाः ॥

वा० २ । ५४ । १६

अर्थ—हे भगवन् ! हम पिता की आज्ञानुसार तपोवन में प्रवेश करके वहां फल मूल खाते हुए ही धर्म का आचरण करेंगे, इत्यादि एक नहीं रामायण में सहस्रों ऐसे प्रमाण पाये जाते हैं जिनसे स्पष्ट सिद्ध है कि मर्यादापुरुषोत्तम राम ने कभी मांस भक्षण नहीं किया ॥

यदि यह कहाजाय कि उनका कथन ऐसा था पर आवश्यकता पड़ने पर खालेते थे, यह भी ठीक नहीं, भला वह धर्मवीर, सत्यवादी राम जो एक महान् ऐश्वर्य्य का त्यागकर अपने पिता को सत्यप्रतिज्ञ बनाता हुआ अनेक प्रकार के दुःख भोगने के लिये हंसता हुआ वन को गया, वहां घने जंगलों में घूमते हुए अनेक कष्ट सहे, यहां तक कि दिन और रात्रिभर भूखों रहे परन्तु अपनी प्रतिज्ञा से नहीं हटे, वह महात्मा राम यह प्रतिज्ञा करके कि मैं वन में कन्द मूल फलों से ही निर्वाह करूंगा फिर मांस का भक्षण कैसे करसकते हैं, प्रिय पाठकवृन्द ! राम कोई साधारण पुरुषों के समान न था, जिस समय कैकेयी ने राम से कहा कि तुम्हारे पिता यह चाहते हैं कि तुम आज ही वन को चले

जाओ, उस समय राम ने बड़ी गम्भीरतापूर्वक पिता के सन्मुख कैकेयी से कहा कि बहुत अच्छा मैं आज ही वन को जाउंगा और भरत को युवराज बनावें, प्रिय रामायण के पाठको वहां पर एक श्लोक लिखा है जो मनुष्यमात्र को अपने सन्मुख रखना चाहिये, उस उच्च आदर्श वाले राम ने कैकेयी से कहा कि :—

तद्ब्रूहि वचनं देवि राज्ञोयदभिकांक्षितम् ।
करिष्ये प्रतिजाने च रामो द्विर्नाभिभाषते ॥

वा० २ । १८ । ३०

अर्थ—हे देवि ! वह वचन कहो जो राजा को अभीष्ट है, मैं प्रतिज्ञा करता हूं कि उसका अवश्य पालन करुंगा, क्योंकि "राम दो वार नहीं कहता" अर्थात् जो प्रतिज्ञा कर चुका उसी का पालन करेगा, उससे विरुद्ध नहीं कहसकता, ऐसे धर्मधुरीण सत्यप्रतिज्ञ राम से यह कभी आशा होसक्ती है कि वह अनेक स्थानों पर मांस न खाने की प्रतिज्ञा करें और फिर वन में जाकर मांस खायें, कदापि नहीं, यह मांसाहारियों ने राम के पवित्र जीवन में कलंक लगाने के लिये कई स्थानों पर ऐसे श्लोक रामायण में डाल दिये हैं जो प्रक्षिप्त होने से सर्वथा त्याज्य हैं ॥

इति द्विचत्वारिंशः सर्गः

अथ त्रिचत्वारिंशः सर्गः

सं०—अब राम का भारद्वाज मुनि के आश्रम में जाना कथन करते हैं :—

स तं वृक्षं समासाद्य सन्ध्यामन्वास्य पश्चिमाम् ।
रामो रमयतां श्रेष्ठ इति होवाच लक्ष्मणम् ॥ १ ॥
अद्येयं प्रथमा रात्रिर्याता जनपदाद्‌बहिः ॥
या सुमन्त्रेण रहिता तां नोत्कण्ठितुमर्हसि ॥ २ ॥

अर्थ–और वहां एक वृक्ष के नीचे वैठकर सायंकाल की सन्ध्या उपासना करके प्रसन्नचित्त राम लक्ष्मण से बोले कि जनसमूह से बाहर आज हमको पहली रात है जो सुमन्त्र से पृथक् होकर आई है, सो अब आपको किसी की उत्कण्ठा नहीं करनी चाहिये ॥

जागर्तव्यमतन्द्रिभ्यामद्यप्रभृति रात्रिषु ।
योगक्षेमौ हि सीताया वर्तेते लक्ष्मणावयोः ॥३॥

अर्थ–हे लक्ष्मण ! आज से लेकर हमको सारी रातें निरालस होकर जागना चाहिये और सीता का योग क्षेम भी हम दोनों के अधीन है ॥

ते तु तस्मिन्महावृक्षे उषित्वा रजनीं शुभाम् ।
विमलेऽभ्युदिते सूर्ये तस्माद्देशात्प्रतिस्थिरे ॥ ४ ॥
यत्र भागीरथी गंगां यमुनाभिप्रवर्तते ।
जग्मुस्तं देशमुदिश्य विगाह्य सुमहद्वनम् ॥५॥
ते भूमिभागान्विविधान्देशांश्चापि मनोहरान् ।
अदृष्टपूर्वान्पश्यन्तस्तत्र तत्र यशस्विनः ॥६॥

अर्थ–तब उन्होंने उस महावृक्ष के नीचे वह शुभ रात्रि

व्यतीत करके निर्मल सूर्य्य के उदय होने पर उस देश से प्रस्थान किया, जहां भागीरथी गङ्गा यमुना से मिलती है उस देश को लक्ष्य रखकर बड़े वन को लांघ करके अनेक मनोहर स्थान जिनको पहले कभी नहीं देखा था उनको देखते हुए वह यशस्वी आगे गये ॥

यथा क्षेमेण संगच्छन् पश्यंश्च विविधान्द्रुमान् ।
निवृत्तमात्रे दिवसे रामः सौमित्रिमब्रवीत् ॥ ७ ॥
प्रयागमभितः पश्य सौमित्रे धूममुत्तमम् ।
अग्नेर्भगवतः केतुं मन्ये सन्निहितो मुनिः ॥ ८ ॥
नूनं प्राप्ताः स्म संभेदं गंगायमुनयोर्वयम् ।
तथाहि श्रूयते शब्दो वारिणोर्वारिघर्षजः ॥ ९ ॥

अर्थ—राम आनन्दपूर्वक विविध वृक्षों को देखते हुए दिन के अस्त होने पर लक्ष्मण से बोले कि हे लक्ष्मण! प्रयाग की ओर ऊंचे चढ़े हुए इस धूम को देख जो भगवान अग्नि का झण्डा है, इससे मैं समझता हूं कि अब मुनि का आश्रम निकट ही है, निःसन्देह हम गङ्गा तथा यमुना के संगम समीप आन पहुंचे हैं, क्योंकि जल का जल से टकराया हुआ शब्द सुनाई देता है ॥

दारुणिपरिभिन्नानि वनजैरुपजीविभिः ।
छिन्नाश्चाप्याश्रमेचैते दृश्यं ते विविधा द्रुमाः॥१०॥

अर्थ—और वनवासी लोगों ने उपजीविका के लिये काष्ठ एकत्रित कर रखा है तथा आश्रम समीपी विविध प्रकार के वृक्ष भी कटे हुए दिखाई देते हैं, इससे ज्ञात होता है कि आश्रम समीप है ॥

धन्विनौ तौ सुखं गत्वा लम्बमाने दिवाकरे ।
गंगायमुनयोः संधौ प्रापतुर्निलयं मुनेः ॥ ११ ॥
स प्रविश्य महात्मानमृषिं शिष्यगणैर्वृतम् ।
संशितव्रतमेकाग्रं तपसा लब्धचक्षुषम् ॥ १२ ॥
हुताग्निहोत्रं दृष्ट्वैव महाभागः कृताञ्जलिः ।
रामः सौमित्रिणा सार्धं सीतया चाभ्यवादयत् ॥ १३ ॥

अर्थ—वह दोनों धनुर्धारी आनन्दपूर्वक विचरते हुए सूर्य्यास्त समय गङ्गा यमुना के सङ्गम पर मुनि के आश्रम में पहुंचे, और वहां शिष्यगणों से घिरे हुए, तीक्ष्णव्रतों वाले, एकाग्र तप से दिव्यदृष्टि सम्पन्न महात्मा तभी अग्निहोत्र करके निवृत्त हुए थे कि महाभाग राम ने सीता तथा लक्ष्मण सहित उनको हाथ जोड़कर अभिवादन किया ॥

न्यवेदयत चात्मानं तस्मै लक्ष्मणपूर्वजः ।
पुत्रौ दशरथस्यावां भगवन् रामलक्ष्मणौ ॥ १४ ॥
भार्या ममेयं कल्याणी वैदेही जनकात्मजा ।
मां चानुयाता विजनं तपोवनमनिन्दिता ॥ १५ ॥

अर्थ—और लक्ष्मण के बड़े भाई राम ने स्वयं अपने विषय में उनसे कहा कि हे भगवन् ! हम दोनों राजा दशरथ के पुत्र राम, लक्ष्मण हैं, और यह कल्याणी सीता जनक की पुत्री मेरी भार्या है, सो यह अनिन्दिता सीता मेरे पीछे इस निर्जन तपोवन में आई है ॥

पित्रा प्रव्राज्यमानं मां सौमित्रिरनुजः प्रियः ।
अयमन्वगमद्भ्राता वनमेव धृतव्रतः ॥ १६ ॥
पित्रा नियुक्ता भगवन् प्रवेक्ष्यामस्तपोवनम् ।
धर्ममेवाचरिष्यामस्तत्र मूलफलाशनाः ॥ १७ ॥

अर्थ—पिता का भेजा हुआ यह मेरा छोटा भाई लक्ष्मण व्रत धारणकर मेरे साथ वन में आया है, हे भगवन् ! पिता से आज्ञा पाये हुए हम दोनों तपोवन में प्रवेश कर वहां फल मूल खाते हुए ही धर्म का आचरण करेंगे ॥

तस्य तद्वचनंश्रुत्वा राजपुत्रस्य धीमतः ।
उपानयत धर्मात्मा गामर्घ्यमुदकं ततः ॥ १८ ॥
नानाविधानन्नरसान्वन्य मूलफलाश्रयान् ।
तेभ्यो ददौ तप्त तपावासं चैवाभ्य कल्पयत् ॥१९॥

अर्थ—उस बुद्धिमान् राजपुत्र के उक्त वचन सुनकर तपस्वी मुनि ने आये हुए धर्मात्मा राम को मुहुं हाथ धोने आदि के लिये जल दिया पश्चात् नानाप्रकार के मूल फलों का अन्नरस उनको खाने के लिये दिया और भोजनान्तर उनको वहीं अपने आश्रम में रहने के लिये स्थान दिया ॥

प्रतिगृह्य तु तामर्चामुपविष्टं स राघवम् ।
भरद्वाजोऽब्रवीद्वाक्यं धर्मयुक्तमिदं तदा ॥ २० ॥
चिरस्य खलु काकुत्स्थ पश्यम्यहमुपागतम् ।
श्रुतं तव मया चैव विवासनमकारणम् ॥ २१ ॥

अवकाशो विविक्तोऽयं महानद्योः समागमे ।
पुण्यश्च रमणीयश्च वसत्विह भवान्सुखम् ॥ २२ ॥

अर्थ—उक्त सत्कार से सन्तुष्ट हो बैठे हुए राम को भरद्वाज यह धर्मयुक्त वाक्य बोले कि हे राम ! मैं तुम्हें चिरकाल से आया हुआ देखता हूं और मैंने यह भी सुना है कि तुमको विना कारण निकाला गया है, इसलिये महानदियों के सङ्गम पर जो यह एकान्त स्थान बड़ा पवित्र और रमणीय है आप यहां सुखपूर्वक निवास करें ॥

एवमुक्तस्तु वचनं भरद्वाजेन राघवः ।
प्रत्युवाच शुभं वाक्यं रामः सर्वहितेरतः ॥ २३ ॥

अर्थ—जब भरद्वाज ने राम को इस प्रकार कहा तब सब के हित में रत अर्थात् सब के हितेच्छु राम यह शुभ वचन बोले कि :—

भगवन्नित आसन्नः पौरजानपदोजनः ।
सुदर्शमिह मां प्रेक्ष्य मन्येऽहमिममाश्रमम् ॥२४॥
आगमिष्यति वैदेहीं मां चापि प्रेक्षको जनः ।
अनेन कारणेनाहमिह वासं न रोचये ॥ २५ ॥

अर्थ—हे भगवन् ! यहां पुर और देश के लोग बहुत निकट होने से मैं समझता हूं कि इस आश्रम में मेरा देखना सुगम जान मुझको और जानकी को देखने के लिये दर्शक लोग बहुत आवेंगे, इसलिये मैं यहां रहना ठीक नहीं समझता ॥

एकान्ते पश्य भगवन्नाश्रमस्थानमुत्तमम् ।
रमते यत्र वैदेही सुखार्हा जनकात्मजा ॥ २६ ॥

अर्थ—हे भगवन् ! एकान्त में कोई उत्तम स्थान देखें जहां सुखों के योग्य जनकसुता आनन्दपूर्वक रहसके ॥

एतच्छ्रुत्वा शुभं वाक्यं भरद्वाजो महामुनेः ।
राघवस्य तु तद्वाक्यमर्थग्राहकमब्रवीत् ॥ २७ ॥
दशक्रोश इतस्तात गिरिर्यस्मिन्निवत्स्यसि ।
महर्षिसेवितः पुण्यः पर्वतः शुभदर्शनः ॥ २८ ॥

अर्थ—तब महामुनि भरद्वाज राम का उक्त शुभ वाक्य सुनकर उनके हित का साधक यह वाक्य बोले कि हे तात ! यहां से दशकोस पर महर्षियों से सेवित बड़ा रमणीय पवित्र पर्वत है वहां आप निवास करें ॥

गोलांगूलानुचरितो वानरर्क्षनिसेवितः ।
चित्रकूट इति ख्यातो गन्धमादनसंन्निभः ॥२९॥
यावता चित्रकूटस्य नरः शृङ्गाण्यवेक्षते ।
कल्याणानि समाधत्ते न मोहे कुरुते मनः ॥३०॥

अर्थ—वह लंगूर, वानर तथा रीछों से सेवित चित्रकूट नामक पर्वत है जो गन्धमादन पर्वत के तुल्य शुभदर्शन है, जब मनुष्य चित्रकूट की चोटियों को देखता है तो उसका मन शुभ सङ्कल्पों वाला होजाता है और फिर मोह को प्राप्त नहीं होता ॥

प्रविविक्तमहं मन्ये तं वासं भवतः सुखम् ।
इह वा वनवासाय वस राम मया सह ॥ ३१ ॥
सीतातृतीयः काकुत्स्थः परिश्रान्तः सुखोचितः ।
भरद्वाजाश्रमे रम्ये तां रात्रिमवसत्सुखम् ॥ ३२ ॥

अर्थ-सो वह आपके लिये बड़ा एकान्त स्थान है वहां आपका रहना मैं सुखदाई समझता हूं अथवा हे राम ! आप यहां मेरे साथ वनवास के लिये वास करें, उचित सुख के योग्य थके हुए वह तीनों उस रात रमणीय भरद्वाजाश्रम में सुखपूर्वक रहे ॥

इति त्रिचत्वारिंशः सर्गः

अथ चतुश्चत्वारिंशः सर्गः

सं०-अब राम का चित्रकूट को जाना कथन करते हैं:—

उषित्वा रजनीं तत्र राजपुत्रावरिन्दमौ ।
महर्षिमभिवाद्याथ जग्मतुस्तं गिरिं प्रति ॥१॥
तेषां स्वस्त्ययनं चैव महर्षिः स चकार ह ।
प्रस्थितान्प्रेक्ष्य तांश्चैव पिता पुत्रानिवौरसान् ॥२॥

अर्थ-शत्रुओं को तपाने वाले वह दोनों राजपुत्र वहां भरद्वाज के आश्रम में रात रहकर महर्षि को अभिवादन करके चित्रकूट पर्वत की ओर गये और उनको जाता हुआ देखकर महर्षि ने उनके कल्याणार्थ स्वस्त्ययन किया, जैसे पिता सगे पुत्रों का करता है ॥

ततः प्रचक्रमे वक्तुं वचनं स महामुनिः ।
भरद्वाजो महातेजा रामं सत्यपराक्रमम् ॥ ३ ॥

गंगायमुनयोः सन्धिमादाय मनुजर्षभौ ।
कालिन्दीमनुगच्छेतां नदीं पश्चान्मुखाश्रिताम्॥४॥
अथासाद्य तु कालिन्दीं शीघ्रस्रोतसमापगाम् ।
तस्यास्तीर्थं प्रचरितं प्रकामं प्रेक्ष्य राघवौ ॥ ५ ॥

अर्थ—इसके अनन्तर वह महातेजस्वी भरद्वाज मुनि सत्य पराक्रम वाले राम को बोले कि हे मनुष्यश्रेष्ठो ! गंगा यमुना के सङ्गम पर पहुंचकर पश्चिममुखी=पश्चिम को बहने वाली गंगा के आश्रित यमुना नदी के साथ २ जाओ, और हे राघवो ! शीघ्र-गामिनी यमुना नदी का एक प्राचीन घाट जहां पर प्रायः लोग आया जाया करते हैं उसको देखकर और :—

तत्र यूयं प्लवं कृत्वा तरतांशुमतीं नदीम् ।
ततो न्यग्रोधमासाद्य महान्तं हरितच्छदम् ॥६॥
परीतं बहुभिर्वृक्षैः श्यामं सिद्धोपसेवितम् ।
क्रोशमात्रं ततो गत्वा नीलं प्रेक्ष्य च काननम्॥७॥
स पन्थाश्चित्रकूटस्य गतः सुबहुशो मया ।
रम्यो मार्दवयुक्तश्च दावैश्चैव विवर्जितः ॥८॥

अर्थ—वहां घरनई=तमेड़ बनाकर यमुना से पार उतर हरे पत्तों वाले श्यामवट की ओर जाना, जो चारों ओर अन्य वृक्षों से घिरा हुआ है और जिसके नीचे सिद्धजन रहते हैं, फिर आगे एक कोस जाकर नील वन आवेगा, वही चित्रकूट का मार्ग है, मैं बहुत वार वहां गया हूं, सुहावना, रमणीय और वन

की अग्नि से रहित है अर्थात् वनों में जो दावानल लगा रहता है वह वहां नहीं है ॥

इति पन्थानमादिश्य महर्षिः संन्यवर्तत ।
अभिवाद्य तथेत्युक्त्वा रामेण विनिवर्तितः ॥९॥
अथासाद्य तु कालिन्दीं शीघ्रस्रोतस्विनीं नदीम् ।
चिन्तामापेदिरे सद्यो नदीजल तितीर्षवः ॥ १० ॥
तौ काष्ठ संघाटमथो चक्रतुः सुमहाप्लवम् ।
शुष्कैर्वन्यैः समास्तीर्णमुशीरैश्च समाततम् ॥११॥
ततो वैतसशाखाश्च जम्बुशाखाश्च वीर्यवान् ।
चकार लक्ष्मणश्छित्त्वा सीतायाःसुखमासनम्॥१२॥

अर्थ—उक्त प्रकार मार्ग वतलाकर महर्षि लौट गये, या यों कहो कि "तथास्तु" कहकर अभिवादन करके राम ने उनको लौटाया, फिर वह शीघ्रगामिनी यमुना नदी के तटपर पहुंच उस के पार होने की इच्छा से वह चिन्ताग्रस्त हो सोचने लगे, विचारानन्तर उन्होंने वहुतसी लकड़ियें मिलाकर एक वड़ी तमेड़ बनाई, जिसका सूखे वांसों का तला वनाया और नड़ नामक लकड़ी उसके चारो ओर लगाई, फिर वीर्य्यवान् लक्ष्मण ने वैत और जवूं की शाखायें काटकर सीता के लिये सुखदायी आसन वनाया ॥

तत्र श्रियमिवाचिन्त्यां रामो दाशरथिः प्रियाम् ।
ईषत्स लज्जमानां तामध्यारोपयत प्लवम् ॥ १३ ॥

पार्श्वे तत्र च वैदेह्या वसने भूषणानि च ।
प्लवे कठिनिकाजं च रामश्चक्रे समाहितः ॥ १४ ॥
आरोप्य सीतां प्रथमं संघाटं परिगृह्य तौ ।
ततः प्रतेरतुर्यत्तौ प्रीतौ दशरथात्मजौ ॥ १५ ॥

अर्थ-और उस पर प्रथम सुन्दरी प्रिया सीता को जो कुछ २ लज्जा को प्राप्त थी राम ने चढ़ाया तथा वहीं समीप ही तमेड़ पर सीता के वस्त्राभूषण और अपने खनित्र, पिटारी सहित शस्त्रों को रखा, सीता को पहले चढ़ाकर वह दोनों पुरुषार्थी वीर राम लक्ष्मण प्रसन्न हो तमेड़ को लेकर यमुना से पार उतर गये ॥

ते तीर्णाः प्लवमुत्सृज्य प्रस्थाय यमुनावनात् ।
श्यामंन्यग्रोधमासेदुःशीतलं हरितच्छदम् ॥ १६ ॥

अर्थ-पार उतर कर तमेड़ को वहीं छोड़दिया और आप यमुना के वन में होकर हरित पत्तों वाले शीतल श्यामवट के समीप पहुंचे ॥

विहृत्य ते बर्हिणपूगनादिते शुभे वने
वारणवानरायुते । समं नदीवप्रमुपेत्य
सत्वरं निवासमाजग्मुरदीनदर्शनाः॥१७॥

अर्थ-और मोरगणों से गूंजते हुए, वानर तथा हाथियों से युक्त, उस शुभ वन में भ्रमण करते २ उन सब ने प्रसन्नचित्त हो वहीं नदी के सुन्दर तट पर रात्रिभर वास किया ॥

तत उत्थाय ते सर्वे स्पृष्ट्वा नद्याः शिवं जलम् ।
पन्थानमृषिणादिष्टं चित्रकूटस्य तं ययुः ॥ १८ ॥
ततः संप्रस्थितः काले रामः सौमित्रिणा सह ।
सीतां कमलपत्राक्षीमिदं वचनमब्रवीत् ॥ १९ ॥

अर्थ—फिर उन सब ने प्रातःकाल उठकर नदी के पवित्र जल में स्नानादि कर सन्ध्योपासन किया और फिर ऋषि के कथनानुसार चित्रकूट के उस मार्ग को गये, उस समय लक्ष्मण के साथ चलते हुए राम कमलनयनी सीता से यह वचन बोले कि :—

आदीप्तानिव वैदेही सर्वतः पुष्पितान्नगान् ।
स्वैःपुष्पैःकिंशुकान्पश्य मालिनःशिशिरात्यये॥२०॥
पश्य भल्लातकान् बिल्वान्नरैरनुपसेवितान् ।
फल पुष्पैरवनतान्नूनं शक्ष्याम जीवितुम् ॥ २१ ॥

अर्थ—हे वैदेही ! सब ओर से फूले हुए, या यों कहो कि अग्नि की भांति दीप्तिमान इन केसुओं के फूलों को देख जो वसन्तऋतु आने पर उसके स्वागतार्थ फूलों की मालायें हाथ में लिये खड़े हैं, फिर भलावे और बेल के वृक्षों को देख जो मनुष्यों से सेवन न किये हुए किस प्रकार फल और पत्तों से झुके हुए हैं, निःसन्देह हमारा यहां निर्वाह होजायगा ॥

पश्य द्रोणप्रमाणानि लम्बमानानि लक्ष्मण ।
मधूनि मधुकारीभिः संभृतानि नगे नगे ॥ २२ ॥

अर्थ—हे लक्ष्मण ! मधुमक्खियों से तैयार किये हुए द्रोण २ जैसे शहद के छत्ते वृक्ष २ पर लटकते हुए देख ॥

एष क्रोशति नत्यूहस्तं शिखी प्रतिकूजति ।
रमणीये वनोद्देशे पुष्पसंस्तरसंकटे ॥ २३ ॥
मातङ्गयूथानुसृतं पक्षिसंघानुनादितम् ।
चित्रकूटमिमं पश्य प्रवृद्धशिखरं गिरिम् ॥ २४ ॥

अर्थ—और वन के इस सुहावने स्थान को देख जो फूलों के बिछोने से घना होरहा है, यहां एक ओर कोकिल और दूसरी और मोर बोल रहा है, ऊंची चोटियों वाले इस चित्रकूट पर्वत को देख, जिसमें हाथियों के झुंड घूम रहे और पक्षियों के समूह बोल रहे हैं ॥

समभूमितले रम्ये द्रुमैर्बहुभिरावृते ।
पुण्ये रंस्यामहेतात चित्रकूटस्य कानने ॥ २५ ॥
ततस्तौ पादचारेण गच्छन्तौ सह सीतया ।
रम्येमासेदतुःशैलं चित्रकूट मनोरमम ॥ २६ ॥

अर्थ—हे तात ! यह चित्रकूट का वन जो समभूमि वाला, सुहावना, बहुत वृक्षों से घिरा हुआ और पवित्र है, इसमें सुख से हम लोग रमण करेंगे, इसके अनन्तर सीता सहित दोनों भाई पैदल ही उस सुहावने मनोरम चित्रकूट पर्वत पर पहुंचे ॥

इति सीता च रामश्च लक्ष्मणश्चकृताञ्जलिः ।
अभिगम्याश्रमं सर्वे वाल्मीकिमभिवादयन् ॥२७॥
तान्महर्षिः प्रमुदितः पूजयामास धर्मवित् ।
आस्यतामिति चोवाच स्वागतं तं निवेद्य च॥२८॥

अर्थ–और वहां वाल्मीकि के आश्रम में पहुंचकर सीता, राम तथा लक्ष्मण सब ने हाथ जोड़कर वाल्मीकि को अभिवादन किया, उनको देखकर धर्मज्ञ महर्षि बड़े प्रसन्न हुए और सब का यथायोग्य सत्कार करके बैठने की आज्ञा दी ॥

ततोऽब्रवीन्महाबाहुर्लक्ष्मणं लक्ष्मणाग्रजः ।
सन्निवेद्य यथान्यायमात्मानमृषये प्रभुः ॥ २९ ॥
लक्ष्मणानय दारूणि दृढ़ानि च वराणि च ।
कुरुष्वावसथं सौम्य वासे मेऽभिरतं मनः ॥ ३० ॥

अर्थ–इसके अनन्तर लक्ष्मण के बड़े भाई राम ने ऋषि को अपना सब यथोचित वृत्त कहा, और उसके पीछे लक्ष्मण को बतलाया, फिर राम ने लक्ष्मण को कहा कि हे लक्ष्मण ! सुन्दर और दृढ़ लकड़ियें लाकर यहां कुटिया बना, हे सौम्य ! यहां मेरा मन प्रसन्नतापूर्वक रहने को चाहता है ॥

तस्य तद्वचनंश्रुत्वा सौमित्रिर्विविधान्द्रुमान् ।
आजहार ततश्चक्रे पर्णशालामरिन्दमः ॥ ३१ ॥
रामः स्नात्वा तु नियतो गुणवाञ्जपकोविदः ।
संग्रहेणाकरोत्सर्वान्मन्त्रान्सत्रावसानिकान् ॥३२॥

अर्थ–भाई राम के उक्त वचन सुनकर शत्रुओं को दमन करने वाला लक्ष्मण अनेक वृक्ष काट लाया और उनसे पर्णशाला= कुटिया बनाई, तब गुणवान् जप के जानने वाले राम ने स्नानकर शुद्ध हो नियमपूर्वक जप करके मन्त्रों से हवन करते हुए गृहप्रवेश संस्कार किया ॥

इष्ट्वा देवगणान्सर्वान्विवेशावसथं शुचिः ।
बभूव च मनो ह्लादो रामस्यामित तेजसः ॥३३॥

अर्थ—इसके अनन्तर वहां सब देवों=विद्वान् महात्माओं का पूजन=सत्कार करके राम कुटिया में प्रविष्ट हुए, कुटिया में प्रवेश कर उन अपरमित तेज वाले राम का मन बड़ा प्रसन्न हुआ॥

सुरम्यमासाद्य तु चित्रकूटं नदीं च तां माल्यवतीं सुतीर्थाम्। ननन्द हृष्ट्वा मृग पक्षिजुष्टां जहौ च दुःखं पुरविप्रवासात्॥ ३४ ॥

अर्थ—बड़े रमणीय=सुहावने चित्रकूट और सुदर्शन घाटवाली, मृगों तथा पक्षियों से सेवित माल्यवती नदी को प्राप्त होकर राम ऐसे प्रसन्न हुए कि पुर से पृथक् होने का सारा दुःख भूलगये ॥

भाष्य—प्रिय पाठकवृन्द ! इस स्थल में भी मांस के श्रद्धालु अपनी लीला दिखाये विना नहीं टले, यहां प्रकरण यह है कि जब राम चित्रकूट पर्वत पर पहुंचे और उसको बड़ा रमणीय देखकर वहां कुटिया बनाई, जैसाकि ऊपर वर्णन कियागया है, इसके अनन्तर जब गृहप्रवेश संस्कार करने लगे तो राम ने आज्ञा दी कि हे भाई लक्ष्मण ! कृष्ण मृग का मांस लाओ, राम की आज्ञा पाते ही लक्ष्मण मृग मारकर ले आये, फिर आज्ञा दी कि इसको पकाओ, लक्ष्मण ने उसको अङ्गों सहित पकाया और उससे सब देवताओं की पूजा कर हवन किया, अयो० का० सर्ग० ५६ । २२–२९, अब आगे चलकर इसी सर्ग के ३० । ३१

श्लोकों में लिखा है कि यज्ञ से बचे हुए फलों द्वारा राम ने बलिवैश्वदेव यज्ञ किया ॥

हमें यह देखकर आश्चर्य्य होता है कि उन भलेआदमियों को मिलावट करते हुए यह नहीं सूझा कि मांस के विरोधि श्लोकों को तो निकाल दें,और न उनको यह ध्यान रहा कि कोई समय आवेगा जब यह पुस्तकें विद्वानों के हाथ में जावेंगी और इनकी परस्पर सङ्गति लगाई जावेगी तब यह भाव कैसे छिपसकेगा, किसी ने सत्य कहा है " स्वार्थी दोषं न पश्यति "=स्वार्थपरायण पुरुष दोष नहीं देखते, वह अपना प्रयोजन ही देखते हैं, इस बात को छोटे बालक भी जानते हैं कि गृहप्रवेश संस्कार इस मतलब से किया जाता है कि मकान की दुर्गन्धित वायु निकलकर सुगन्धित वायु का प्रवेश हो, ऋषियों ने इस संस्कार की यहां तक मर्यादा रखी है कि मकान के द्वारपर और इधर उधर सर्वत्र हवन किया जाय ताकि भले प्रकार मकान सुगन्धित होकर पवित्र होजाय, और उस समय जो वेदमन्त्र पढ़े जाते हैं उनमें यह प्रार्थना कीगई है कि हे परमपिता परमात्मन् ! आप ऐसी कृपा करें कि हमारे लिये यह गृह शुभ हो, हम इस स्थल में अपने भाईयों से पूछते हैं कि मृग का मांस पकाकर आहुति देने से कौनसा प्रयोजन सिद्ध होता है, क्या इस उत्तम सुगन्धित सामग्री से वायु शुद्ध होती है ? अथवा जिस जीव का हमने हनन किया है, क्या यह कृत्य हमारे लिये शुभदायक होगा ? कदापि नहीं, प्रत्युत उलटा हानिकारक होगा, जैसाकि वेद भगवान् ने वर्णन किया है कि:—

असूर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसाऽऽवृताः।
तांस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति येके चात्महनो जनाः॥
यजु० ४०। २

अर्थ—वह पुरुष अनन्तकाल तक अंधतम=दुःखमय लोकों को प्राप्त होते हैं जो हिंसा करते हैं॥

और यह सर्व प्रसिद्ध बात है कि हिंसा से विना मांस की उपलब्धि नहीं होती, फिर न जाने इन मांस के यज्ञ करने वालों तथा मांसाहारियों को क्या सूझी है जो इतना बड़ा पाप अपने सिर पर लेकर मांस की पुष्टि करते हैं॥

प्रिय पाठको! श्री रामचन्द्र वैदिकमर्यादा के पालन करने वाले, धार्मिक, सत्यवादी, जितेन्द्रिय और आर्य्य पुरुष थे उनसे ऐसा पापकर्म कदापि नहीं होसक्ता, उक्त मन्त्र प्रत्येक काल में उनकी दृष्टि के सन्मुख था और वह धर्माधर्म के पूर्ण ज्ञाता थे,यह उन लोगों के हृदय की मलिनता है जो आर्षग्रन्थों में ऐसे क्षुद्र भाव भरकर उनको कलंकित करते और प्रजा को कुमार्ग की ओर लेजाकर पापी बनाते हैं॥

इति चतुश्चत्वारिंशःसर्गः

अथ पंचचत्वारिंशः सर्गः

सं०—अब सुमन्त्र का अयोध्या को लौटना कथन करते हैं:—

कथयित्वा तु दुःखार्तः सुमन्त्रेण चिरं सह।
रामे दक्षिणकूलस्थे जगाम स्वगृहं गुहः॥ १॥

भरद्वाजाभिगमनं प्रयागे च सभाजनम् ।
आगिरेर्गमनं तेषां तत्रस्थैरभिलक्षितम् ॥ २ ॥

अर्थ–उक्त प्रकार चित्रकूट में राम की स्थिति कथन करके अब राम के भेजे हुए सुमन्त्र का समाचार वर्णन करते हैं, राम जब गंगा के दक्षिण किनारे पर चलेगये तब गुह बड़ा दुःखी हुआ और सुमन्त्र के साथ बहुत चिर तक बातें कर अपने घर को गया, राम का प्रयाग में भरद्वाज के समीप जाना, वहां सन्मानपूर्वक रहना और वहां से चित्रकूट पर्वत को प्रस्थान करना, यह सब समाचार गुह के दूतों द्वारा सुमन्त्र ने वहीं ठहरकर ज्ञात किया ॥

अनुज्ञातः सुमन्त्रोऽथ योजयित्वा हयोत्तमान् ।
अयोध्यामेव नगरीं प्रययौगाढ़दुर्मनाः ॥ ३ ॥
ततः सायाह्नसमये द्वितीयेऽहनि सारथिः ।
अयोध्यां समनुप्राप्य निरानन्दां ददर्श ह ॥ ४ ॥

अर्थ–राम से आज्ञा पाये हुए सुमन्त्र उत्तम घोड़ों को जोड़कर अत्यन्त दुर्मन=मन में दुःखित हुए अयोध्या को ही चले, और दूसरे दिन सायंकाल अयोध्या में पहुंचकर उसको आनन्द से शून्य देखा ॥

इति चिन्तापरः सूतो वाजिभिः शीघ्रयायिभिः ।
नगरद्वारमासाद्यत्वरितः प्रविवेश ह ॥ ५ ॥
सुमन्त्रमभिधावन्तः शतशोऽथ सहस्रशः ।
क्व राम इति पृच्छन्तः सूतमभ्यद्रवन्नराः ॥ ६ ॥

तेषां शशंस गङ्गायामहमापृच्छ्य राघवम् ।
अनुज्ञातो निवृत्तोस्मि धार्मिकेण महात्मना ॥७॥

अर्थ—इस प्रकार चिन्तातुर तथा शोकातुर हुए सुमन्त्र शीघ्रगामी घोड़ों द्वारा नगर के बड़े द्वार से प्रविष्ट होकर शीघ्र ही सीधे राजमहल को गये, सुमन्त्र को जाते हुए देखकर "राम कहां हैं" इस प्रकार पूछते हुए सैकड़ों और सहस्रों लोग उनके पीछे दौड़े, तब सुमन्त्र ने उनसे कहा कि मैं राम को गङ्गा पर छोड़ उस धार्मिक महात्मा की आज्ञानुसार लौटा हूं ॥

ते तीर्ण इति विज्ञाय बाष्पपूर्णमुखा नराः ।
अहो धिगिति निःश्वस्य हा रामेति विचुक्रुशुः ॥८॥
शुश्राव च वचस्तेषां वृन्दं वृन्दं च तिष्ठताम् ।
हताःस्म खलु ये नेह पश्याम इति राघवम् ॥ ९ ॥

अर्थ—"राम गङ्गा से पार चलेगये" ऐसा जानकर आंसुओं से पूर्ण मुख वाले लोग "अहोधिक्" इस प्रकार कह लम्बा सांस भरकर "हा राम" इस भांति पुकारते हुए यूथ यूथ बनकर खड़े हुए उन लोगों के उक्त बचन सुमन्त्र ने सुने, हा हम हत होगये जो यहां पर राम को नहीं देखते ॥

दानयज्ञविवाहेषु समाजेषु महत्सु च ।
नद्रक्ष्यामः पुनर्जातु धार्मिकं राममन्तरा ॥ १० ॥
किं समर्थं जनस्यास्य किं प्रियं किं सुखावहम् ।
इति रामेण नगरं पित्रेव परिपालितम् ॥ ११ ॥

वातायनगतानां च स्त्रीणामन्वन्तरापणम् ।
राममेवाभितप्तानां शुश्राव परिदेवनाम् ॥ १२ ॥

अर्थ–हा हम अब दान, यज्ञ, विवाह और महात्माओं के समाज में धार्मिक राम को फिर कभी देखेंगे वा नहीं, किस बात में लोगों की भलाई है, इनको क्या प्रिय है अथवा किसप्रकार इनको सुखलाभ होगा, इस भांति सोचकर करते हुए राम ने नगर को पिता की न्याईं पालन किया था, और बाज़ार में जाते हुए सुमन्त्र महलों की वाड़ियों=खिड़कियों में बैठी हुई राम के शोक से संतप्त स्त्रियों की पुकार भी सुनते थे ॥

स राजमार्गमध्येन सुमन्त्रः पिहिताननः ।
यत्र राजा दशरथस्तदेवोपययौगृहम् ॥ १३ ॥
सोऽवतीर्य रथाच्छीघ्रं राजवेश्म प्रविश्य च ।
कक्ष्याः सप्ताभिचक्राम महाजनसमाकुलाः ॥१४॥

अर्थ–सुमन्त्र राजमार्ग के बीच में से मुख छिपाकर जहां राजा दशरथ थे उसी महल को गये, और शीघ्र ही रथ से उतर बहुत मनुष्यों से भरी हुई सात डेवढ़ियों को लांघकर राजमहल में प्रवेश किया ॥

स प्रविश्याष्टमीं कक्ष्यां राजानं दीनमातुरम् ।
पुत्रशोकपरिद्यूनमपश्यत्पाण्डुरे गृहे ॥१५॥
अभिगम्य तमासीनं राजानमभिवाद्य च ।
सुमन्त्रो रामवचनं यथोक्तं प्रत्यवेदयत् ॥ १६ ॥

अर्थ–फिर आठवीं डेवढ़ी में प्रवेश कर वहां धवलगृह में

दीन, आतुर तथा पुत्रशोक से मुरझाये हुए राजा को देखा, बैठे हुए राजा के समीप जाकर अभिवादन करके सुमन्त्र ने राम का वचन यथोक्त=जैसा उन्होंने कहा था वैसे ही निवेदन किया॥

स तूष्णीमेव तच्छ्रुत्वा राजा विद्रुतमानसः।
मूर्च्छितो न्यपतद्भूमौ रामशोकाभिपीड़ितः ॥१७॥
ततोऽन्तःपुरमाविद्धं मूर्च्छिते पृथिवीपतौ।
उच्छ्रित्य बाहू चुक्रोश नृपतौ पतिते क्षितौ ॥१८॥

अर्थ—राजा ने राम का कहा हुआ चुपचाप सुनकर उनके शोक से पीड़ित हुए राजा का मन असन्त गिरजाने से मूर्च्छित हो भूमि पर गिरपड़े. राजा के मूर्च्छित हो भूमि पर गिर पड़ने से सारा अन्तःपुर दुःखी हो भुजा उठाकर रोने लगा॥

सुमित्रया तु सहिता कौसल्या पतितं पतिम्।
उत्थापयामास तदावचनं चेदमब्रवीत् ॥ १९ ॥
इमं तस्य महाभाग दूतं दुष्करकारिणः।
वनवासादनुप्राप्तं कस्मान्न प्रतिभाषसे ॥ २० ॥

अर्थ—तब गिरे हुए पति को सुमित्रा सहित कौसल्या ने उठाया और यह बचन बोली कि हे महाभाग! उस दुष्कर काम करने वाले राम का जो दूत वनवास से आया है उससे आप बात चीत क्यों नहीं करते॥

देव यस्या भयाद्रामं नानुपृच्छसि सारथिम्।
नेहतिष्ठति कैकेयी विश्रब्धं प्रतिभाष्यताम् ॥२१॥

सा तथोक्त्वा महाराजं कौसल्या शोकलालसा ।
धरण्यां निपपाताशु बाष्पविप्लुतभाषिणी ॥२२॥

अर्थ—हे देव ! जिसके भय से सारथि सुमन्त्र से राम की बात नहीं पूछते हो वह कैकेयी यहां नहीं है आप निःशङ्क होकर बात करें, शोक से भरी हुई कौसल्या महाराज को इस प्रकार कह कर आंसुओं से गद्गद बोलती हुई पृथिवी पर गिरपड़ी ॥

इति पंचचत्वारिंशः सर्गः

अथ षट्चत्वारिंशः सर्गः

सं०—अब राजा सुमन्त्र से राम का वृतान्त पूछते हैं :—

प्रत्याश्वस्तो यदा राजा मोहात्प्रत्यागतस्मृतिः ।
तदाजुहाव तं सूतं रामवृत्तान्तकारणात् ॥ १ ॥
राजा तु रजसा सूतं ध्वस्तांगं समुपस्थितम् ।
अश्रुपूर्णमुखं दीनमुवाच परमार्तवत् ॥ २ ॥

अर्थ—जब राजा मूर्छित अवस्था से फिर होश में आये तब उन्होंने राम का वृतान्त जानने के लिये फिर सुमन्त्र को बुलाया, और धूल से लिपटे हुए अंगों वाले तथा आंसुओं से भरे हुए मुख वाले राजा दीन सुमन्त्र से अत्यन्त आर्त्त की भांति बोले कि :—

सुकुमार्या तपस्विन्या सुमन्त्र सह सीतया ।
राजपुत्रौ कथं पादैरवरुह्य रथाद्गतौ ॥ ३ ॥
किमुवाच वचो रामः किमुवाच च लक्ष्मणः ।
सुमन्त्र वनमासाद्य किमुवाच च मैथिली ॥ ४ ॥

इति सूतो नरेन्द्रेण चोदितः सज्जमानया ।
उवाच वाचा राजानं स बाष्पपरिबद्धया ॥ ५ ॥

अर्थ—हे सुमन्त्र ! विचारी सुकुमारी सीता सहित वह दोनों राजपुत्र रथ से उतरकर कैसे पैदल गये, हे सुमन्त्र! वन में पहुंचकर राम ने क्या कहा ? लक्ष्मण ने क्या कहा और सीता ने क्या कहा ? जब इस प्रकार गिरी हुई बाणी से राजा ने सुमन्त्र को प्रेरणा की तब बाष्प से रुकती हुई वाणी द्वारा उन्होंने राजा से कहा किः—

अब्रवीन्मे महाराज धर्ममेवानुपालयन् ।
अंजलिं राघवः कृत्वा शिरसाभिप्रणम्य च ॥ ६ ॥
सूत मद्वचनात्तस्य तातस्य विदितात्मनः ।
शिरसा वन्दनीयस्य वन्द्यौ पादौ महात्मनः ॥७॥
सर्वमन्तःपुरं वाच्यं सूत मद्वचनात्त्वया ।
आरोग्यमविशेषेण यथार्हमभिवादयन् ॥८॥

अर्थ—हे महाराज ! धर्म का पालन करते हुए राम ने आप के लिये हाथ जोड़ सिर नवा प्रणाम करके मुझ से कहा कि हे सुमन्त्र ! मेरे वचन से जगत् विख्यात, वन्दना के योग्य महात्मा पिता के चरणों पर सिर से प्रणाम करना, और हे सुमन्त्र ! पुनः सब अन्तःपुर को मेरे वचन से आरोग्य कहना तथा बिना किसी भेद के सबको यथायोग्य अभिवादन करना ॥

माता च मम कौसल्या कुशलं चाभिवादनम् ।
अप्रमादं च वक्तव्या ब्रूयाश्चैनामिदं वचः ॥ ९ ॥

धर्मनित्या यथाकालमग्न्यगारपराभव ।
देवि देवस्य पादौ च देववत्परिपालय ॥ १० ॥

अर्थ–तत्पश्चात् माता कौसल्या से कुशल कहकर अभिवादन करना तथा कहना कि कभी प्रमाद से भी धर्म का त्याग न हो, और यह भी कहना कि धर्म को प्रधान मानें, ठीक समय पर अग्निहोत्र किया करें और देवतावत् राजा के पाओं को पूजें ॥

भरतः कुशलं वाच्यो वाच्यो मद्वचनेन च ।
सर्वास्वेव यथान्यायं वृत्तिं वर्तस्व मातृषु ॥ ११ ॥
लक्ष्मणस्तु सुसंक्रुद्धो निःश्वसन्वाक्यमब्रवीत् ।
केनायमपराधेन राजपुत्रो विवासितः ॥ १२ ॥

अर्थ–भरत को कुशल कहना और मेरी ओर से यह कथन करना कि सब माताओं के साथ न्यायपूर्वक वर्तें, और हे महाराज ! लक्ष्मण तो क्रुद्ध हुए सांस भरकर यह वाक्य बोले कि यह राजपुत्र किस अपराध से निकाला गया है ॥

असमीक्ष्य समारब्धं विरुद्धं बुद्धिलाघवात् ।
जनयिष्यति संक्रोशं राघवस्य विवासनम् ॥१३॥

अर्थ–यह विरुद्ध काम बिना सोचे बुद्धि के दोष से किया गया है, राम का वनवास निन्दाप्रद होगा अर्थात् जगत् में सर्वत्र निन्दा उत्पन्न करेगा ॥

अदृष्टपूर्वव्यसना राजपुत्री यशस्विनी ।
तेनदुःखेनरुदतीनैव मां किंचिदब्रवीत् ॥१४॥

अर्थ—हे महाराज ! यशस्विनी राजपुत्री जिसने पहले कभी ऐसा दुःख नहीं देखा उस दुःख से रोती हुई ने मुझसे कुछ नहीं कहा॥

उद्वीक्षमाणा भर्त्तारं मुखेन परिशुष्यता ।
मुमोच सहसा बाष्पं प्रयान्तमुपवीक्ष्यसा ॥१५॥

अर्थ—परन्तु हां वन की ओर जाते हुए भर्त्ता को देखकर तथा मुझे लौटता देख उसका मुख सूखने लगा और एकाएक आंसू बहने लगे ॥

उभाभ्यां राजपुत्राभ्यामथ कृत्वाहमञ्जलिम् ।
प्रस्थितो रथमास्थाय तद्दुःखमुपधारयन् ॥ १६ ॥

अर्थ—तब दोनों राजपुत्रों को हाथ जोड़कर उनके वियोग का दुःख सहता हुआ रथ पर चढ़कर चला आया ॥

गुहेन सार्धं तत्रैव स्थितोऽस्मि दिवसान्बहून् ।
आशया यदि मां रामः पुनःशब्दापयेदिति ॥१७॥
प्रविशन्तमयोध्यायां न कश्चिदभिनन्दति ।
न राममपश्यन्तो निःश्वसन्ति मुहुर्मुहुः ॥१८॥

अर्थ—यह आशा करता हुआ कि कदाचित् राम मुझको फिर बुलालें गुह के साथ वहां कई दिन रहा, अयोध्या में प्रवेश करते हुए मैंने देखा कि कोई भी मेरा मान नहीं करता, लोग राम को न देखते हुए बार २ लम्बे सांस भर रहे हैं ॥

निरानन्दा महाराज रामप्रव्राजनातुरा ।
कौसल्यापुत्रहीनेव अयोध्या प्रतिभाति मे ॥१९॥

सूतस्य वचनं श्रुत्वा वाचा परमदीनया ॥
बाष्पोपहतया सूतमिदं बचनमब्रवीत् ॥२०॥

अर्थ—हे महाराज ! राम के वनवास जाने से आतुर हुई अयोध्या मुझको पुत्र से वियुक्त हुई कौसल्या के समान आनन्द से शून्य प्रतीत होती है, राजा सुमन्त्र के उक्त वचन सुनकर आंसु बहाते हुए परम दीन वाणी से बोले कि :—

भवितव्यतया नूनमिदं वा व्यसनं महत् ।
कुलस्यास्य विनाशाय प्राप्तं सूत यदृच्छया ॥२१॥
अतो नु किं दुःखतरं योऽहमिक्ष्वाकुनन्दनम् ।
इमामवस्थामापन्नो नेह पश्यामि राघवम् ॥ २२ ॥

अर्थ—हे सुमन्त्र ! दैवयोग ऐसा ही था, इस कुल के नाशार्थ अचानक ही यह बड़ा व्यसन=आपत्ति प्राप्त हुई है, इससे अधिक और क्या दुःख होगा जो मैं इस अवस्था को प्राप्त हुआ इक्ष्वाकुनन्दन राम को नहीं देखता ॥

हा राम रामानुज हा हा वैदेहि तपस्विनि ।
न मां जानीत दुःखेन म्रियमाणमनाथवत् ॥२३॥
यस्मिन्बत निमग्नोऽहं कौसल्ये राघवं विना ।
दुस्तरो जीवता देवि मयायं शोकसागरः ॥ २४ ॥

अर्थ—हा राम, हा लक्ष्मण, हा जानकी तुम अपने वियोग रूप दुःख से अनाथ की भांति मरता हुआ मुझे नहीं जानते हो, हे कौसल्ये ! मैं राम के विना जिस शोकसागर में डूब रहा हूं, हे देवि ! उससे अब जीते जी पार होना दुस्तर है ॥

इति षट्चत्वारिंशः सर्गः

अथ सप्तचत्वारिंशः सर्गः

सं०—अब कौसल्या और दशरथ दोनों का विलाप वर्णन करते हैं:—

वनं गते धर्मरते रामे रमयतांवरे ।
कौसल्या रुदती चार्ता भर्तारमिदमब्रवीत् ॥ १ ॥
यद्यपि त्रिषु लोकेषु प्रतिथं ते महद्यशः ।
सानुक्रोशो वदान्यश्च प्रियवादी च राघवः ॥ २ ॥

अर्थ—रमण करने वालों में श्रेष्ठ तथा धर्म में रत राम वन चलेगये, इसप्रकार विलाप वाली कौसल्या अति पीड़ित हो रुदन करती हुई भर्त्ता से बोली कि यद्यपि तीनों लोकों में आपका यश फैला हुआ है कि राजा दशरथ बड़ा दयावान्, उदार और प्रियवादी है ॥

यत्त्वयाऽकरुणं कर्म व्यपोह्य मम बान्धवाः ।
निरस्ताः परिधावन्ति सुखार्हाः कृपणा वने ॥ ३ ॥

अर्थ—परन्तु आपने राज्य से हटाकर वनवास भेजे हुए मेरे बन्धु जो सुखों के योग्य थे वह विचारे अब वन में दौड़ रहे हैं, यह आपने दया का काम नहीं किया ॥

गतिरेका पतिर्नार्या द्वितीया गतिरात्मजः ।
तृतीया ज्ञातयो राजंश्चतुर्थी नैव विद्यते ॥ ४ ॥
तत्र त्वं मम नैवासि रामश्च वनमाहितः ।
न वनं गन्तुमिच्छामि सर्वथा हा हता त्वया ॥५॥

अर्थ–हे राजन् ! स्त्री का आश्रय एक पति होता है, दूसरा पुत्र, तीसरे बन्धुवर्ग और चौथा कोई नहीं, सो न तो मेरे आप हुए, राम को वन भेज दिया और मैं आपको छोड़कर वन नहीं जाना चाहती, हा शोक ! आपने तो मेरा सर्वथा नाश करदिया है॥

हतं त्वया राष्ट्रमिदं स राज्यं हताःस्म सर्वाः
सह मंत्रिभिश्च । हता स पुत्रास्मि हताश्च
पौराः सुतश्च भार्या च तव प्रहृष्टौ ॥ ६ ॥

अर्थ–आपके द्वारा राज्यसहित यह नगर हत होगया, मन्त्रियों सहित सम्पूर्ण प्रजा हत होगई, हाय पुत्र सहित मैं हत होगई, यह पुरवासी भी सब व्याकुल होरहे हैं, प्रसन्नता तो केवल आपकी भार्या कैकेयी और पुत्र भरत को ही हुई है ॥

एवं तु क्रुद्धया राजा राममात्रा सशोकया ।
श्रावितः परुषं वाक्यं कौसल्यामाह दुःखितः ॥७॥
प्रसादये त्वां कौसल्ये रचितोऽयं मयाञ्जलि ।
वत्सला चानृशंसा च त्वं हि नित्यं परेष्वपि ॥८॥
भर्त्ता तु खलु नारीणां गुणवान्निर्गुणोऽपि वा ।
धर्मं विमृशमानानां प्रत्यक्षं देवि दैवतम् ॥ ९ ॥

अर्थ–जब उक्त प्रकार शोक से व्याकुल तथा क्रुद्ध हुई राममाता ने राजा को कठोर वाक्य सुनाये तब वह दुःखित होकर कौसल्या से बोले कि हे कौसल्ये ! मैं हाथ जोड़कर तुझसे क्षमा मांगता हूं, क्योंकि तू सदा अपने और दूसरों पर दया रखने

वाली तथा प्यार करने वाली है, हे देवि ! भर्त्ता चाहे गुणवान् हो, चाहे निर्गुण हो वह स्त्रियों का साक्षात् देवता होता है जो धर्म को विचारती हैं ॥

सा त्वं धर्मपरा नित्यं दृष्टलोकपरावरा ।
नार्हसे विप्रियं वक्तुं दुःखितापि सुदुःखितम् ॥१०॥
तद्वाक्यं करुणं राज्ञः श्रुत्वा दीनस्य भाषितम् ।
कौसल्या व्यसृज्यद्बाष्पं प्रणालीव नवोदकम् ॥११॥

अर्थ–सो तू सदा धर्मपरायण रहने वाली तथा लोक में जिसने सब ऊंच नीच देखा है वह तू दुःखी होकर भी मुझ दुःखिया को अप्रिय कहने योग्य नहीं, दीन हुए राजा के करुणामय वाक्य सुनकर कौसल्या के इस प्रकार आंसु बहने लगे जैसे प्रणाली=पतलाने से बरसाती पानी बहता है ॥

सा मूर्ध्नि बध्वा रुदती राज्ञः पद्ममिवाञ्जलिम् ।
संभ्रमादब्रवीत्त्रस्ता त्वरमाणाक्षरं वचः ॥ १२ ॥
प्रसीद शिरसा याचे भूमौ निपतितास्मि ते ।
याचितास्मि हता देव क्षन्तव्याहं नहि त्वया ॥१३॥

अर्थ–रोती हुई कौसल्या ने पद्मपत्र की भांति दोनों हाथ मस्तक पर जोड़कर भयभीत हुई अतीव आदर से शीघ्र ही यह वचन बोली कि हे देव ! क्षमा करो, सिर झुका पृथिवी पर झुककर प्रार्थना करती हूं, आपके क्षमा मांगने से ही मैं अभागिनी हुई हूं, आपका मुझसे क्षमा मांगना योग्य नहीं ॥

नैषा हि सा स्त्री भवति श्लाघनीयेनधीमता ।
उभयोर्लोकयोर्लोके पत्या या संप्रसाद्यते ॥ १४ ॥
जानामि धर्मं धर्मज्ञ त्वां जाने सत्यवादिनम् ।
पुत्रशोकार्तया तत्तु मया किमपि भाषितम् ॥१५॥

अर्थ–वह स्त्री नहीं है जिससे दोनों लोकों में श्लाघनीय बुद्धिमान् उसका पति लोक में क्षमा मांगता है, हे धर्मज्ञराजन् ! मैं धर्म को जानती और यह भी जानती हूं कि आप सत्यवादी हैं परन्तु पुत्रशोक से पीड़ित हुई मैंने वह सब कुछ कहा है ॥

शोको नाशयते धैर्यं शोको नाशयतेश्रुतम् ।
शोको नाशयते सर्वं नास्ति शोकसमा रिपुः॥१६॥

अर्थ–शोक धैर्य्य को नष्ट करदेता, शास्त्र को भुलादेता तथा सब कुछ नाश करदेता है, अधिक क्या शोक के तुल्य अन्य शत्रु नहीं है ॥

शक्यमापतितः सोढुं प्रहारो रिपुहस्ततः ।
सोमढ्ढापतितः शोकः सुसूक्ष्मोऽपि न शक्यते॥१७॥
वनवासाय रामस्य पंचरात्रोऽत्र गण्यते ।
यः शोकहतहर्षायाः पञ्चवर्षोपमा मम ॥ १८ ॥

अर्थ–शत्रु के हाथ से किया हुआ प्रहार पुरुष सहार सक्ता है परन्तु आया हुआ शोक अल्प=थोड़ा भी नहीं सहारा जासक्ता, आज राम को वनवास गये हुए पांच रातें व्यतीत होचुकी हैं जो शोक से हत हुए हर्ष वाली मुझको पांच वर्ष के तुल्य बीती हैं ॥

तं हि चिन्तयमानायाः शोकोऽयं हृदि वर्धते ।
नदीनामिव वेगेन समुद्रसलिलं महत् ॥ १९ ॥
एवं हि कथयन्त्यास्तु कौसल्यायाः शुभं वचः ।
मन्दरश्मिरभूत्सूर्यो रजनी चाभ्यवर्तत ॥ २० ॥
अथ प्रह्लादितो वाक्यैर्देव्या कौसल्यया नृपः ।
शोकेन च समाक्रान्तो निद्राया वशमेयिवान्॥२१॥

अर्थ—और उसी का चिन्तन करते हुए मेरे हृदय में शोक बढ़ रहा है, जैसे नदियों के वेग से समुद्र का जल बढ़ता है,इस प्रकार कौसल्या के शुभ वचन कहते २ सूर्य्य की किरणें मन्द होकर रात्रि आगई, कौसल्या देवी ने अपने मधुर वाक्यों से शोकातुर राजा को प्रसन्न किया और वह उस समय शोक से निकलकर निद्रा के वशीभूत हुआ ॥

इति सप्तचत्वारिंशः सर्गः

अथ अष्टचत्वारिंशः सर्गः

सं०—अब राजा "श्रवण" की कथा का स्मरण कर अपने को पापी मानते हुए प्राण त्यागते हैं:—

प्रतिबुद्धो मुहूर्त्तेन शोकोपहतचेतनः ।
अथ राजा दशरथः सच्चिन्तामभ्यपद्यत ॥१॥

स राजा रजनीं षष्ठीं रामे प्रव्राजिते वनम् ।
अर्धरात्रे दशरथः सोऽस्मरद्दुष्कृतं कृतम् ॥२॥

अर्थ—कुछ काल पश्चात् जब राजा की नींद खुली तब शोक से व्याकुल राजा दशरथ चिन्तातुर हुए सोचने लगे, राम को वनवास गये हुए इस छठी रात को आधी रात के समय राजा को अपना किया हुआ दुष्कर्म याद आया ॥

स राजा पुत्रशोकार्तःस्मृत्वा दुष्कृतमात्मनः ।
कौसल्यां पुत्रशोकार्तामिदं वचनमब्रवीत् ॥३॥
यदाचरति कल्याणि शुभं वा यदि वाऽशुभम् ।
तदेव लभते भद्र कर्त्ता कर्मजमात्मनः ॥४॥

अर्थ—पुत्रशोक से पीड़ित राजा अपने दुष्कर्म का स्मरण करके पुत्रशोक मे आर्त्त कौसल्या से बोले कि हे कल्याणि ! पुरुष जो शुभ वा अशुभ कर्म करता है उसका फल अवश्य ही पाता है॥

तदिदं मेऽनुसंप्राप्तं देवि दुःखं स्वयंकृतम् ।
संमोहादिह बालेन यथा स्याद्भक्षितं विषम् ॥५॥
देव्यनूढा त्वमभवो युवराजो भवाम्यहम् ।
ततः प्रावृडनुप्राप्ता मदकामविवर्धिनी ॥६॥
उष्णमन्तर्दधे सद्यः स्निग्धाददृशिरे घनाः ।
ततो जहर्षिरे सर्वे भेकसारङ्गबर्हिणः ॥ ७ ॥

अर्थ—हे देवि ! यह मुझे अपना ही उत्पन्न किया हुआ दुःख प्राप्त हुआ है, जैसे अज्ञान से कोई बालक विष भक्षण करलेता

है, हे देवि ! तू अभी व्याही न थी और मैं युवराज था, तब मद तथा काम को बढ़ाने वाली वर्षाऋतु आई, गर्मी जाती रही, जल से भरे हुए बादल दीखने लगे, तब मेंडक, पिपीहा तथा मोर आदि सब पशु पक्षी प्रसन्न हुए ॥

तस्मिन्निति सुखे काले धनुष्मानिषुमान् रथी ।
व्यायामकृतसंकल्पः सरयूमन्वगान्नदीम् ॥८॥
अथान्धकारेत्वश्रौषं जले कुम्भस्य पूर्यतः ।
अचक्षुर्विषये घोषं वारणस्येवनर्दतः ॥ ९ ॥

अर्थ—उस अति सुखदायी काल में व्यायाम के संकल्प से धनुषबाण ले रथ पर चढ़कर सन्ध्या समय सरयू नदी के तट पर आया, वहां अन्धेरे में नेत्रों की पहुंच से परे जल से भरे जाते हुए घट का शब्द मैंने इस प्रकार सुना जैसे हाथी गर्ज रहा हो ॥

ततोऽहं शरमुद्धृत्य दीप्तमाशीविषोपमम् ।
शब्दं प्रति गजप्रेप्सुरभिलक्ष्यमपातयम् ॥१०॥
तत्र वागुषसि व्यक्ता प्रादुरासीद्वनौकसः ।
हा हेति पततस्तोये वाणाद्व्यथितमर्मणः ॥११॥

अर्थ—तब मैंने हाथी को प्राप्त करने की इच्छा से सर्प के तुल्य दीप्त बाण निकालकर शब्द को लक्ष्य में रखकर फैंका, और जहां बाण गिरा वहां से दुःखित मर्म वाले, पानी में गिरते हुए वनवासी मनुष्य की हा ! हाय !! ऐसी वाणी निकली ॥

प्रविविक्तां नदीं रात्रावुदाहारोऽहमागतः ।
इषुणाभिहतः केन कस्य वापकृतं मया ॥ १२ ॥

जटाभारधरस्यैव वल्कलाजिनवाससः ।
को वधेन ममार्थी स्यात्किंवास्यापकृतं मया॥१३॥

अर्थ–रात्रि के समय एकान्त नदी पर जल लेने के लिये आये हुए मुझको किसने तीर से मारा है, किसका मैंने क्या अपराध किया था, सिर पर जटाओं का भार धारण किये हुए, शरीर पर वृक्षों की छाल तथा मृगान पहने हुए हूं, मेरे जैसे के वध से किसी का क्या अर्थ सिद्ध होगा अथवा मैंने किसी का क्या अपराध किया होगा ॥

नेमं तथानुशोचामि जीवितक्षयमात्मनः ।
मातरं पितरं चोभावनुशोचामि मद्वधे ॥ १५ ॥
तदेतन्मिथुनं वृद्धं चिरकालभृतं मया ।
मयि पंचत्वमापन्ने कां वृत्तिं वर्तयिष्यति ॥ १६ ॥

अर्थ–मैं अपने इस जीवन के क्षय का शोक नहीं करता, किन्तु इस वध में मुझको अपने माता पिता का अति शोक है, उन वृद्ध माता पिता का जोड़ा जिनकी मैंने चिरकाल तक सेवा की है वह मेरे मरने पर किस प्रकार जीवेंगे ॥

वृद्धौ च मातापितारावहं चैकेषुणा हताः ।
केन स्म निहताः सर्वे सुबालेनाकृतात्मना ॥१६॥
तां गिरं करुणं श्रुत्वा मम धर्मानुकांक्षिणः ।
कराभ्यां सशरं चापं व्यथितस्यापतद्भुवि ॥ १७ ॥

अर्थ–मेरे वृद्ध माता पिता और मुझको एक ही बाण से

मारडाला है, यह किस अजितेन्द्रिय बाल ने हम सब को मारा है, उस करुणामय वाणी को सुनकर दुःखित हुए मुझ धर्माभिलाषी के हाथों से तीर सहित बाण भूमिं पर गिर पड़ा ॥

तं देशमहमागम्य दीनसत्वः सुदुर्मनाः ।
अपश्यमिषुणा तीरे सरय्वास्तापसं हतम् ॥ १८ ॥
अवकीर्णजटाभारं प्रविद्धकलशोदकम् ।
पांसुशोणित दिग्धाङ्गं शयानं शल्यवेधितम् ॥१९॥

अर्थ—मैं उस स्थान पर आया और मैंने अत्यन्त दुर्मन= दुःखी मन तथा दीन हृदय हुए सरयू के तीर पर एक तपस्वी को मरा हुआ देखा, जिसकी जटायें बिखरी हुई, पानी का घट ऊंधा हुआ, जिसके अंग धूल तथा रुधिर से लिपटे हुए और वह शल्य से विंधा हुआ लेट रहा है ॥

स मामुद्वीक्ष्य नेत्राभ्यां त्रस्तमस्वस्थचेतनम् ।
इत्युवाच वचः क्रूरं दिधक्षन्निव तेजसा ॥२०॥
किं तवापकृतं राजन्वने निवसता मया ।
जिहीर्षुरम्भोगुर्वर्थं यदहं ताडितस्त्वया ॥ २१ ॥

अर्थ—वह मुझे अपने नेत्रों से भयभीत तथा अस्वस्थ चित्त देखकर मानो तेज से दग्ध करता हुआ यह क्रूर बचन बोला कि हे राजन ! वन में वास करते हुए मैंने तेरा क्या अपराध किया था जो माता पिता के लिये जल लेने आये हुए मुझको तैंने मारदिया है ॥

एकेन खलु बाणेन मर्मण्यभिहते मयि ।
द्वावन्धौ निहतौ वृद्धौ माता जनयिता च मे ॥२२॥

तौ नूनं दुर्बला वंधौ मत्प्रतीक्षौ पिपासितौ ।
चिरमाशां कृतां कष्टां तृष्णां संधारयिष्यतः॥२३॥

अर्थ—मेरे मर्मस्थान में एक ही बाण लगने से दो वृद्ध मेरे माता पिता अंधों को और मारा है, वह विचारे दोनों दुर्बल अन्धे प्यासे घबराये हुए मेरी प्रतीक्षा कर रहे होंगे, क्योंकि वह बहुत देर से प्यासे होने के कारण अब अधिक अशान्त हुए मेरी ओर देख रहे होंगे ॥

न नूनं तपसो वास्ति फलयोगः श्रुतस्य वा ।
पिताऽन्मां न जानीते शयानं पतितं भुवि॥२४॥
जानन्नपि च किंकुर्यादशक्तश्चापरिक्रमः ।
भिद्यमानमिवाशक्तिस्त्रातुमन्योनगोनगम् ॥२५॥

अर्थ—वह मेरी इस दशा को न योगद्वारा, न तपोबल और न शास्त्र द्वारा जानसक्ते हैं कि हमारा पुत्र भूमि पर गिरा हुआ शयन कर रहा है, और यदि वह जान भी लें तब भी सर्वथा शक्तिहीन होने से क्या करसकते हैं, जैसे कटते हुए वृक्ष की दूसरा समीपी वृक्ष कुछ रक्षा नहीं करसकता ॥

पितुस्त्वमेवमेगत्वा शीघ्रमाचक्ष्व राघव ।
नत्वामनुदहेत्क्रुद्धो वनमग्निरिवैधितः ॥ २६ ॥
इयमेकपदी राजन्यतो मे पितुराश्रमः ।
तं प्रसादय गत्वा त्वं न त्वा संकुपितः शपेत्॥२७॥

अर्थ—हे राघव ! तुम आपही मेरे पिता के समीप शीघ्र जाकर मेरा सब वृत्त उनसे कहो, नहीं तो वह तुमको क्रोध से भस्म कर

देंगे, जैसे प्रज्वलित अग्नि वन का दाह करदेती है, हे राजन्! मेरे पिता के आश्रम को जाने के लिये यह पगडंडी है, सो तू शीघ्र जाकर उनको प्रसन्न कर कहीं ऐसा नहो कि वह कुपित हुए तुझे शाप देदें, और :—

विशल्यं कुरु मां राजन् मर्म मे निशितः शरः।
रुणद्धि मृदुसोत्सेधं तीरमम्बुरयो यथा ॥ २८ ॥

अर्थ—हे राजन्! मेरे शल्य को निकाल, तीक्ष्ण तीर मेरे मर्मस्थान को पीड़ित कर रहा है, जैसे नदी का प्रवाह बालू=रेत के ऊंचे टीले को काट डालता है ॥

ब्रह्महत्याकृतं पापं हृदयादपनीयताम् ।
न द्विजातिरहं राजन् मा भूत्ते मनसो व्यथा ॥२९॥
शूद्रायामस्मि वैश्येन जातो नरवराधिप ।
इतीव वदतः कृच्छ्राद्वाणाभिहतमर्मणः ॥ ३० ॥
तस्य त्वाताम्यमानस्य तं वाणमहमुद्धरम् ।
स मामुद्वीक्ष्य संत्रस्तो जहौ प्राणांस्तपोधनः ॥३१॥

अर्थ—हे राजन्! ब्रह्महत्या किये हुए पाप का सन्ताप हृदय से दूर करदे, मैं ब्राह्मण नहीं, तेरे मन को ब्रह्महत्या की व्यथा मत हो, हे पुरुषश्रेष्ठों के स्वामी! मैं शूद्रा में वैश्य से उत्पन्न हूं, इस प्रकार बड़े क्लेश से बोलते हुए बाण से पीड़ित मर्मों वाले तथा मुरझाये हुए उस मुनिपुत्र का बाण ज्यों ही मैंने खींचकर निकाला त्यों ही मुझे देखकर भयभीत हुए उस तपस्वी ने प्राण त्याग दिये ॥

सं०—अब राजा दशरथ का श्रवण के माता पिता के समीप जाना और उनको उसका वृतान्त सुनाना कथन करते हैं :—

ततस्तं घटमादाय पूर्णं परमवारिणा ।
आश्रमं तमहं प्राप्य यथाख्यातपथं गतः ॥ ३२ ॥
तत्राहं दुर्बलावन्धौ वृद्धाव परिणायकौ ।
अपश्यं तस्य पितरौ लूनपक्षाविवद्विजौ ॥ ३३ ॥

अर्थ—इसके अनन्तर मैं उस घट को उत्तम जल से भरकर जैसे पूर्व बतलाया था उसी मार्ग द्वारा उनके आश्रम को गया वहां मैंने दुर्बल, अन्धे, वृद्ध, कोई सहारा न रखने वाले श्रवण के माता पिता को देखा, जैसे बिना पक्षों=पंखों वाले दो पक्षी हों ॥

शोकोपहत चित्तश्च भयसंत्रस्तचेतनः ।
तच्चाश्रमपदंगत्वा भूयः शोकमहं गतः ॥ ३४ ॥
पदशब्दं तु मे श्रुत्वा मुनिर्वाक्यमभाषत ।
किं चिरायसि मे पुत्र पानीयं क्षिप्रमानय ॥३५॥

अर्थ—मेरा चित्त प्रथम ही शोक से पीड़ित हो भयभीत हुआ २ व्याकुल होरहा था कि मैं उस आश्रम में पहुंचकर बहुत ही शोक को प्राप्त हुआ, मेरे पाओं का शब्द=आहट सुनकर मुनि बोले कि बेटा ! इतना विलम्ब क्यों किया, पानी शीघ्र ला ॥

यन्निमित्तमिदं तात सलिले क्रीडितं त्वया ।
उत्कण्ठिता ते मातेयं प्रविश क्षिप्रमाश्रमम् ॥३६॥

त्वं गतिस्त्वगतीनां च चक्षुस्त्वं हीनचक्षुषाम् ।
समासक्तास्त्वयि प्राणाःकथं त्वं नाभिभाषसे॥३७॥
मनसः कर्म चेष्टाभिरभिसंस्तभ्य वाग्बलम् ।
आचचक्षे त्वहं तस्मै पुत्रव्यसनजं भयम् ॥३८॥

अर्थ—जल में तेरे इतने काल खेलते रहने पर तेरी माता बड़ी उत्कण्ठित हुई है तू शीघ्र आश्रम में आ, तू ही हम असमर्थों का सहारा और तू ही नेत्रहीनों का नेत्र है, हमारे प्राण तेरे में प्रविष्ट हैं तू बोलता क्यों नहीं, इस प्रकार मुनि के कथन करने पर मैंने अपने मन के शोक को बाहर की चेष्टाओं से रोककर अपनी वाणी द्वारा मुनि को उनके पुत्र की विपत्ति से उत्पन्न हुआ भय बतलाया कि:—

क्षत्रियोऽहं दशरथो नाहं पुत्रो महात्मनः ।
सज्जनावमतं दुःखमिदं प्राप्तं स्वकर्मजम् ॥ ३९ ॥

अर्थ—मैं क्षत्रिय दशरथ हूं, आपका पुत्र नहीं, और सज्जनों से निन्दित यह दुःख मैंने अपने कर्म से प्राप्त किया है ॥

भगवंश्चापहस्तोऽहं सरयूतीरमागतः ।
जिघांसुः श्वापदं किंचिन्निपाने वागतं गजम्॥४०॥
ततः श्रुतो मया शब्दो जले कुम्भस्य पूर्यतः ।
द्विपोऽयमिति मत्वायं वाणेनाभिहतो मया ॥४१॥

अर्थ—हे भगवन ! मैं धनुष हाथ में लेकर किसी हिंसक पशु वा हाथी को मारने की इच्छा से सरयू के तटपर आया, और वहां मैंने जल भरते हुए घट का शब्द सुन हाथी जानकर उसको वाण से मार दिया ॥

गत्वा तस्यास्ततस्तीरमपश्यमिषुणाहृदि ॥
विनिर्भिन्नं गतप्राणं शयानं भुवि तापसम् ॥४२॥
ततस्तस्यैव वचनादुपेत्य परितप्यतः ।
स मया सहसा बाण उद्धृतो मर्मतस्तदा ॥४३॥
स चोद्धृतेन बाणेन सहसा स्वर्गमास्थितः ।
भगवन्तावुभौ शोचन्नन्धाविति विलप्य च ॥४४॥

अर्थ—तत्पश्चात् मैंने तट पर जाकर तीर से बिंधे हुए, भूमि पर लेटे हुए तथा मृत्यु को प्राप्त एक तपस्वी को देखा, तब दुःख से तप्त हुए उसी तपस्वी के कहने से उसके समीप जाकर वह बाण मैंने शीघ्र ही उसके मर्म स्थान से निकाला, हे भगवन्तो! वह तपस्वी बाण के निकालते ही आप दोनों नेत्रहीनों का शोक तथा विलाप करता हुआ स्वर्ग को चलागया ॥

अज्ञानाद्भवतः पुत्रः सहसाभिहतो मया ।
शेषमेवं गते यत्स्यात्तत्प्रसीदतु मे मुनिः ॥४५॥
स बाष्पपूर्ण वदनो निःश्वसञ्शोक मूर्छितः ।
मामुवाच महातेजाः कृताञ्जलिमुपस्थितम् ॥४६॥

अर्थ—मैंने अज्ञान से सहसा आपके पुत्र को मारा है, हे मुनि! इस अवस्था में जो आज्ञा हो वह मुझपर अनुग्रह करके कहें, यह सुनते ही उन महात्मा के मुख पर आंसु बरसने लगे और वह लम्बा श्वास भरकर शोक से मूर्छित होगये,फिर वह महा-तेजस्वी हाथ जोड़कर सन्मुख खड़े हुए मुझसे बोले कि :—

यद्येतदशुभंकर्म न स्म मे कथयेः स्वयम् ।
फलेन्मूर्धास्म ते राजन् सद्यः शतसहस्रधा ॥४७॥
क्षत्रियेण वधो राजन् वानप्रस्थे विशेषतः ।
ज्ञानपूर्वं कृतः स्थानाच्च्यावयेदपिवज्रिणम् ॥४८॥
सप्तधा तु भवेन्मूर्धा मुनौ तपसि तिष्ठति ।
ज्ञानाद्विसृजतः शस्त्रं तादृशे ब्रह्मवादिनि ॥ ४९ ॥

अर्थ—हे राजन् ! यदि यह अशुभ कर्म तू मुझे स्वयं आकर न कहता तो तेरा सिर सैकड़ों हज़ारों टुकड़े होकर गिर जाता, हे राजन् ! जो क्षत्रिय होकर वानप्रस्थी तपस्वी का जान बूझकर वध करता है वह चाहे इन्द्र के समान भी क्यों न हो अवश्य पतित होजाता है, तप में स्थित ऐसे ब्रह्मवादी मुनि पर यदि तैंने जानकर शस्त्रप्रहार किया होता तो तेरा सिर सात टुकड़े होकर गिर जाता ॥

अज्ञानाद्धि कृतं यस्मादिदं ते तेन जीवसे ।
अपिह्य कुशलं न स्याद्राघवाणां कुतो भवान् ॥५०॥
नय नौ नृप तं देशमिति मां चाभ्यभाषत ।
अद्य तं द्रष्टुमिच्छावः पुत्रं पश्चिमदर्शनम् ॥ ५१ ॥

अर्थ—यह कर्म तैंने अज्ञान से किया है इसीलिये तू जीता है नहीं तो तेरी तो कथा ही क्या रघुवंशियों का वंश ही नाश होजाता, और फिर उन्होंने मुझसे कहा कि हे राजन् ! तू मुझे उस स्थान पर लेचल आज मैं उस अन्तिम दर्शनवाले अपने पुत्र को देखना चाहता हूं ॥

इति अष्टचत्वारिंशः सर्गः

अथ एकोनपंचाशःसर्गः

सं०—अब राजा का उन दोनों माता पिता को पुत्र के समीप लेजाने का वर्णन करते हैं :—

अथाहमेकस्तं देशं नीत्वा तौ भृशदुःखितौ ।
अस्पर्शयमहं पुत्रं तं मुनिं सहभार्यया ॥१॥
तौ पुत्रमात्मानः स्पृष्ट्वा तमासाद्य तपस्विनौ ।
निपेततुः शरीरेऽस्य पिता चैनमुवाच ह ॥२॥

अर्थ—तत्पश्चात् मैंने उन दोनों असन्त दुःखियों को वहां लेजाकर भार्या सहित मुनि को उनके पुत्र का स्पर्श कराया, वह दोनों तपस्वी अपने पुत्र का स्पर्श करके उसके शरीर पर गिरपड़े और पिता उसको बोला कि :—

नाभिवादयसे माद्य न च मामभिभाषसे ।
किं च शेषे तु भूमौ त्वं वत्स किं कुपितो ह्यसि ॥३॥
नन्वहं ते प्रियः पुत्र मातरं पश्य धार्मिक ।
किं च नालिंगसे पुत्र सुकुमार वचो वद ॥ ४ ॥

अर्थ—हे वत्स ! तू आज मुझे न अभिवादन करता और न मुझसे बात करता है, तू भूमि पर क्यों लेट रहा है, क्या तू आज कुपित होगया है, हे पुत्र ! मैं तेरा प्यारा पिता हूं, हे धार्मिक ! अपनी माता को देख, हे पुत्र ! तू मुझे आलिङ्गन क्यों नहीं करता, हे सुकुमार ! तू कुछ बचन तो बोल ॥

कस्य वा पररात्रेऽहं श्रोष्यामि हृदयं गमम् ।
अधीयानस्य मधुरं शास्त्रं वान्यद्विशेषतः ॥ ५ ॥

अर्थ–अब पिछली रात पढ़ते हुए मधुर षट्शास्त्र अथवा वेदादि किससे सुनुंगा ॥

को मां सन्ध्यामुपास्यैव स्नात्वा हुतहुताशनः ।
श्लाघयिष्यत्युपासीनः पुत्रशोकभयार्दितम् ॥६॥

अर्थ–कौन स्नानकर तथा सन्ध्या अग्निहोत्र करके मेरे समीप बैठे पुत्र के शोक और भय से पीड़ित मुझे स्नान करायेगा ॥

भाष्य–प्रिय पाठकवृन्द ! उक्त पांचवें श्लोक में जो "विशेषतः" कहा है उसका अर्थ विशेषकर "वेद" का सुनाना ही होसकता है, क्योंकि शास्त्रों से बढ़कर वेद ही है, और आगे के छठे श्लोक में उसका सन्ध्योपासन तथा अग्निहोत्र करना भी लिखा है, यहां यह शङ्का होती है कि शूद्रा में उत्पन्न होने के कारण उसका वेद पढ़ना तथा सन्ध्या अग्निहोत्रादि कर्म करना नहीं बनसक्ता ? इसका उत्तर यह है कि प्राचीन उदार हृदय आर्य्यों का यह मन्तव्य न था, उस समय गुणकर्मानुसार पठन पाठन तथा कर्म करने की मर्यादा प्रचलित थी अर्थात् उस समय मनुष्यमात्र को वेद पढ़ने पढ़ाने तथा सुनने सुनाने का अधिकार था, जैसाकि वेद में स्पष्ट पाया जाता है कि :—

यथेमां वाचं कल्याणी मा वदानि जनेभ्यः ।
ब्रह्म राजन्यभ्याꣳशूद्राय चार्य्याय च स्वायचारणाय॥

यजु० २६ । २

अर्थ-हे मनुष्यो ! जिस प्रकार मैं तुमको चारो वेदों का उपदेश करता हूं इसी प्रकार तुम भी उनको पढ़कर सब मनुष्यों को पढ़ाया सुनाया करो, क्योंकि यह वेदरूप वाणी सबके लिये कल्याणप्रद है अर्थात् इसका अधिकार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, भृत्य और अतिशूद्र सबको समान है, इत्यादि, अधिक क्या वैदिक समय में वेद से सीधा शिक्षाग्रहण करने का अधिकार सब स्त्री पुरुषों को समान था, यह अनधिकार का प्रश्न लोगों ने पीछे खड़ा किया है, प्राचीन काल में शूद्रा से उत्पन्न हुआ ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य का पुत्र वेद का अधिकारी मानाजाता था, जैसाकि छान्दोग्य० चतुर्थ प्रपाठक चतुर्थखण्ड में "सत्यकाम-जाबाल" की गाथा स्पष्ट है कि जब सत्यकाम गौमत गोत्रोत्पन्न हारिद्रुमत ऋषि के निकट गया कि महाराज मुझको ब्रह्मचर्य्य पूर्वक वेदाध्ययन करावें तब ऋषि ने पूछा कि तुम्हारा गोत्र क्या है ? सत्यकाम ने कहा कि मैंने अपनी माता से पूछा था कि मेरा गोत्र क्या है ? उन्होंने यह उत्तर दिया कि मैंने युवावस्था में बहुत सेवा करते हुए तुझ पुत्र को प्राप्त किया है सो मुझको तेरा गोत्र ठीक याद नहीं, तू ऋषि से यही कहना कि मेरी माता का नाम जबाला और मेरा नाम सत्यकाम है अर्थात् मैं सत्यकामजाबाल हूं, बस ऋषि ने उसकी माता और उसको सत्यभाषण करने ही से जान लिया कि यह शूद्रा से उत्पन्न होने पर भी वेदाध्ययन का अधिकारी है, फिर ऋषि ने उसका संस्कार करके वेदाध्ययन कराया ॥

और इससे पूर्व सर्ग में श्रवण को स्पष्ट ब्रह्मवादी= वेदवक्ता कहा है, फिर इसमें सन्देह के लिये अवकाश ही कहां

होसकता है कि उसको वेद सुनने सुनाने का अधिकार न था, और महर्षि बाल्मीकि ने भी यहां शूद्रा के पुत्र को वेदाध्ययन तथा सन्ध्योपासन एक साधारण बात की न्याईं लिख दिया कोई आश्चर्य नहीं माना, क्योंकि प्राचीन काल में ऐसा होता था, शूद्रा से उत्पन्न हुआ इलूष ऋषि का पुत्र "कवष" वेद मन्त्रों का द्रष्टा ऋषि हुआ है जिसका वर्णन ऐत० ब्राह्म० २।३।१ में स्पष्ट है, इत्यादि अनेक प्रमाणों से सिद्ध है कि शूद्रा से उत्पन्न हुए पुत्र को वेदाध्ययन का अधिकार स्पष्ट पाये जाने से श्रवण विषयक उक्त शङ्का करना सर्वथा निर्मूल है ॥

कन्दमूलफलं हृत्वा यो मां प्रियमिवातिथिम् ।
भोजयिष्यत्यकर्मण्यमपरिग्रहमपरिनायकम् ॥७॥
इमामन्धां च वृद्धां च मातरं ते तपस्विनीम् ।
कथं पुत्र भरिष्यामि कृपणां पुत्र गर्धिनीम् ॥ ८ ॥
उभावपि च शोकार्तावनाथौ कृपणौ वने ।
क्षिप्रमेवं गमिष्यावस्त्वया हीनौ यमक्षयम् ॥९॥

अर्थ–कुछ काम न करने वाले, कुछ पास न रखने वाले हम अनाथों को अब कौन कन्द, मूल, फल लाकर प्रिय अतिथि की भांति भोजन करावेगा, हे पुत्र ! मैं अन्धा और वृद्ध इसीप्रकार तेरी तपस्विनी माता अन्ध और पंगु होने से उसका भरण पोषण कैसे होगा, क्योंकि वह रात्रिदिवस कृपणों की भांति तुम्हारा ही नाम रटा करेगी, हम दोनों ही शोक से पीड़ित अनाथ तथा दीन हुए तेरे बिना शीघ्र ही मृत्यु को प्राप्त होंगे ॥

यां हि शूरा गतिं यान्ति संग्रामेष्वनिवर्तिनः ।
हतास्त्वभिमुखाः पुत्र गतिं तां परमां व्रज ॥ १० ॥
यां गतिं सगरः शैब्यो दिलीपो जनमेजयः ।
नहुषो धुन्धुमारश्च प्राप्तास्तां गच्छ पुत्रक ॥ ११ ॥

अर्थ—हे पुत्र ! संग्रामों में पीठ न दिखाकर युद्ध में सन्मुख लड़ते हुए शूरबीर जिस गति को प्राप्त होते हैं उसी उत्तम गति को प्राप्त हो, हे पुत्र ! जिस गति को सगर, शैब्य, दिलीप, जन्मेजय, नहुष और धुन्धुमार प्राप्त हुए हैं उसी गति को तू प्राप्त हो ॥

या गतिः सर्वभूतानां स्वाध्यायात्तपसश्च या ।
भूमिदस्याहिताग्नेश्च एकपत्नी व्रतस्य च ॥ १२ ॥
गो सहस्रप्रदातॄणां गुरुसेवाभृतामपि ।
देहन्यासकृतां या च तां गतिं गच्छ पुत्रक ॥१३॥

अर्थ—हे पुत्र ! जो सब भूतों की गति है, जो गति स्वाध्याय तथा तप से मिलती है, जो भूमिदान करने, यज्ञादि कर्म करने और एक स्त्रीव्रत वाले को जो गति प्राप्त होती है वही तुझे हो, सहस्र गौ दान करने वाला, गुरु सेवा करने वाला तथा देहत्याग करने वाला जिस गति को प्राप्त होता है, हे पुत्रक ! वही गति तुझे प्राप्त हो ॥

एवं स कृपणं तत्र पर्यदेवयतासकृत् ।
तथोक्त्वा कर्तुमुदकं प्रवृत्तः सहभार्यया ॥ १४ ॥
स कृत्वाथोदकं तूर्णं तापसः सहभार्यया ।
मामुवाच महातेजाः कृताञ्जलिमुपस्थितम् ॥१५॥

अर्थ—वह महात्मा वहां उक्त प्रकार बार २ दीन हो रुदन करते हुए अपनी भार्या सहित उदककर्म=पुत्र को न्हिलाने में प्रवृत्त हुए, वह तपस्वी, महातेजस्वी भार्या सहित उदककर्म करके हाथ जोड़कर सन्मुख खड़े हुए मुझसे बोला कि :—

अद्यैव जहि मां राजन्मरणे नास्ति मे व्यथा ।
यः शरेणैकपुत्रं मां त्वमकार्षीरपुत्रकम् ॥१६॥
पुत्रव्यसनजं दुःखं यदेतन्मम साम्प्रतम् ।
एवं त्वं पुत्रशोकेन राजन्कालं करिष्यसि ॥१७॥

अर्थ—हे राजन ! तैने जिस तीर द्वारा मेरे एकमात्र पुत्र से मुझे पुत्रहीन करदिया है उसी तीर से इसी समय मुझे भी मार मुझे मरने में पीड़ा नहीं होगी, हे राजन ! जैसा इस समय मुझे पुत्र-वियोग से दुःख हुआ है इसी प्रकार तू भी पुत्र के शोक से मृत्यु को प्राप्त होगा ॥

एवं शापं मयिन्यस्य विलप्य करुणं बहु ।
चितामारोप्य देहं तन्मिथुनं स्वर्गमभ्ययात् ॥१८॥
तदेतच्चिन्तयानेन स्मृतं पापं मया स्वयम् ।
तदा बाल्यात्कृतं देवि शब्दवेध्यनुकर्षिणी ॥१९॥

अर्थ—इस प्रकार मुझे शाप देकर और बहुत करुणामय विलाप करता हुआ वह जोड़ा अपने देह को चिता पर चढ़ाकर स्वर्ग=उत्तम अवस्था को प्राप्त हुआ, हे देवि ! उक्त वृत्त सोचते हुए मुझे अपने पाप का स्मरण हो आया है जो उस समय शब्द-वेधी बाण को खींचकर मैंने बाल्यावस्था में किया था ॥

तस्यायं कर्मणो देवि विपाकः समुपस्थितः ।
अपथ्यैः सह संभुक्ते व्याधिरन्नरसे यथा ॥ २० ॥

अर्थ-हे देवि ! उस कर्म का यह फल उपस्थित हुआ है, जैसे अपथ्य पदार्थों के साथ खाये हुए अन्नरस से रोग उत्पन्न होता है ॥

तस्मान्मामागतं भद्रे तस्योदारस्य तद्वचः ।
यदहं पुत्रशोकेन संत्यजिष्यामि जीवितम् ॥२१॥
न तन्मे सदृशं देवि यन्मया राघवे कृतम् ।
सदृशं तत्तु तस्यैव यदनेन कृतं मयि ॥२२॥

अर्थ-हे भद्रे ! उस उदार पुरुष का वह वचन अब मेरे सन्मुख आया है, मैं आज पुत्रशोक से अवश्य जीवन त्याग दूंगा, हे देवि ! मैंने जो राम के साथ किया है वह मेरे योग्य न था और जो राम ने मेरे साथ किया है वह उसी के योग्य था ॥

सुगन्धि मम रामस्य धन्या द्रक्ष्यन्ति ये मुखम् ।
निवृत्त वनवासं तमयोध्यायां पुनरागतम् ॥२३॥
वेदये नच संयुक्तान् शब्दस्पर्शरसानहम् ।
चित्तनाशाद्विपद्यन्तेसर्वाण्येवेन्द्रियाणि मे ॥ २४ ॥

अर्थ-वह लोग धन्य होंगे जो वनवास से निवृत्त होकर फिर अयोध्या में आये हुए मेरे राम के सुगन्धित मुख को देखेंगे, अब मैं अपने इन्द्रियों से संयुक्त हुए शब्द, स्पर्श तथा रसों को नहीं जानता हूं और चित्त के नाश होने से मेरे सब इन्द्रिय शिथिल होरहे हैं ॥

अयमात्म भवः शोको मामनाथमचेतगम् ।
संसाधयति वेगेन यथा कूलं नदीरयः ॥ २५॥
हा राघव महावाहो हा ममायासनाशन।
हा पितृप्रिय मे नाथ हा ममासि गतः सुत ॥२६॥
हा कौसल्ये न पश्यामि हा सुमित्रे तपस्विनि ।
हा नृशंसे ममामित्रे कैकेयि कुलपांसिनि ॥२७॥

अर्थ—यह मेरे भीतर से उत्पन्न हुआ शोक मुझ अनाथ तथा अचेतन को बड़े वेग से नाश कररहा है, जैसे नदी का वेग किनारे को काटकर नाश करदेता है, हा राघव महावाहो !! हा मेरे क्लेशों के मिटाने वाले !! हा पिता के प्यारे मेरे नाथ !! हा मेरे पुत्र राम !!! तू कहां चला गया है, हा कौसल्ये !! तू मुझे नहीं दीखती, हा तपस्विनि सुमित्रे !! तू कहां है, हा कैकेयि !! मेरी शत्रु कुलकलंकिनी ॥

इति मातुश्च रामस्य सुमित्रायाश्च सन्निधौ ।
राजा दशरथः शोचञ्जीवितान्तमुपागमत् ॥ २८ ॥

अर्थ—इस प्रकार राम की माता और सुमित्रा के समीप राजा दशरथ शोक करते हुए जीवन के अन्त को प्राप्त हुए ॥

तथा तु दीनः कथयन्निराधिपः प्रियस्य पुत्र-
स्य विवासनातुरः । गतेऽर्धे रात्रे भृशदुःखपी-
डितस्तदा जहौ प्राणमुदारदर्शनः ॥ २९ ॥

अर्थ—प्यारे पुत्र के वनवाससे आतुर हो वैसी ही दीन बातें

कहते हुए उदारदृष्टि महाराज ने अत्यन्त दुःख से पीड़ित हो आधीरात व्यतीत होने पर प्राण त्याग दिये ॥

इति एकोनपंचाशःसर्गः

अथ पंचाशः सर्गः

सं०—अब कौसल्या का विलाप कथन करते हैं :—

कौसल्या च सुमित्रा च दृष्ट्वा स्पृष्ट्वा च पार्थिवम् ।
हा भर्तेति परिक्रुश्य पेततुर्धरणी तले ॥ १ ॥
ततः सर्वा नरेन्द्रस्य कैकेयी प्रमुखाः स्त्रियः ।
रुदन्त्यः शोकसंतप्ता निपेतुर्गतचेतनाः ॥ २ ॥

अर्थ—कौसल्या तथा सुमित्रा राजा को देखकर और स्पर्श करके हा भर्ता !! हा भर्ता !! पुकारती हुई पृथिवी तल पर गिर पड़ीं, तदनन्तर कैकेयी और सब दासियें रोती हुईं शोक से संतप्त व्याकुल होकर पृथिवी पर गिर पड़ीं ॥

ताभिः स बलवान्नादः क्रोशन्तीभिरनुद्रुतः ।
येन स्फीतीकृतो भूयस्तद्गृहं समनादयत् ॥३॥
सद्योनिपतितानन्दं दीनं विक्लवदर्शनम् ।
बभूव नरदेवस्य सद्म दिष्टान्तमीयुषः ॥ ४ ॥

अर्थ—उन कौसल्यादि प्रथम रुदन करती हुई स्त्रियों का आर्तनाद पीछे कैकेयी के साथ आई हुई स्त्रियों के नाद से मिल-

कर इतना बढ़ा कि सारा महल भरगया, मृत्यु को प्राप्त हुए राजा का मन्दिर तत्क्षण आनन्द से शून्य होकर दीन तथा विक्लव=शोभारहित होगया ॥

तमग्निमिवसंशान्तमम्बुहीनमिवार्णवम् ।
हतप्रभमिवादित्यं स्वर्गस्थं प्रेक्ष्य भूमिपम् ॥ ५ ॥
कौसल्या बाष्पपूर्णाक्षी विविधंशोककर्शिता ।
उपगृह्य शिरो राज्ञः कैकेयी प्रत्यभाषत ॥६॥

अर्थ—बुझी हुई अग्नि की भांति, विना जल समुद्र की भांति तथा नष्ट हुई प्रभा वाले सूर्य्य की भांति, उस स्वर्गवासी राजा को देखकर आसुओं से भरे हुए मुखवाली कौसल्या विविध प्रकार के शोक से दुर्बल हुई राजा के सिर को पकड़कर कैकेयी से बोली कि :—

सकामा भव कैकेयि भुङ्क्ष्व राज्यमकण्टकम् ।
त्यक्त्वा राजानमेकाग्रा नृशंसे दुष्टचारिणि ॥७॥
विहाय मां गतो रामो भर्ता च स्वर्गतो मम ।
विपथे सार्थहीनेव नाहं जीवितुमुत्सहे ॥ ८ ॥

अर्थ—हे कैकेयि ! तेरी कामना पूर्ण हो, हे निन्दित दुष्टचारित्र वाली कैकेयि ! राजा को मारकर अब एक चित्त हो निष्कण्टक राज्य भोग, राम मुझे छोड़कर वन चलागया और मेरा भर्ता स्वर्ग को गया, अब मैं बिखड़े हुए मार्ग में साथ से विछुड़ी हुई के समान जीना नहीं चाहती ॥

भर्तारं तु परित्यज्य का स्त्री दैवतमात्मनः ।
इच्छेज्जीवितुमन्यत्र कैकेय्यास्त्यक्तधर्मणः ॥ ९ ॥
न लुब्धो बुध्यते दोषान् किंपाकमिव भक्षयन् ।
कुब्जानिमित्तं कैकेय्या राघवाणां कुलं हतम् ॥१०॥

अर्थ—धर्म का त्याग कीहुई कैकेयी से भिन्न ऐसी स्त्री कौन होगी जो अपने देवता=पूज्य भर्ता को त्यागकर जीना चाहे, लुब्ध=लोभी किंपाक=विषभक्षण करते हुए के समान दोषों को नहीं देखता, इसीप्रकार कुब्जा=मन्थरा के पीछे लगकर कैकेयी ने राघवों के कुल का नाश कर दिया है ॥

अनियोगे नियुक्तेन राज्ञा रामं विवासितम् ।
स भार्यं जनकः श्रुत्वा परितप्स्यत्यहं यथा ॥११॥
स मामनाथां विधवां नाद्य जानाति धार्मिकः ।
रामः कमलपत्राक्षो जीवन्नाशमितो गतः ॥१२॥

अर्थ—जब राजा जनक यह सुनेंगे कि कैकेयी की प्रेरणा से राजा ने सीता सहित राम को वनवास दिया है तो वह भी हमारी भांति अत्यन्त परिताप करेंगे, वह धार्मिक कमलनेत्र राम आज मुझे अनाथा विधवा हुई नहीं जानता, क्योंकि वह यहां से जीवित ही नाश को प्राप्त होगया है ॥

तां ततः संपरिष्वज्य विलपन्तीं तपस्विनीम् ।
व्यपनिन्युः सुदुःखार्तां कौसल्यां व्यावहारिकाः॥१३॥
तैलद्रोण्यां तदामात्याः संवेश्य जगतीपतिम् ।
राज्ञः सर्वाण्यथादिष्टाश्चक्रुः कर्माण्यनन्तरम् ॥१४॥

अर्थ–भर्त्ता का आलिङ्गन कर उक्त प्रकार विलाप करती हुई दुःख से अत्यन्त पीड़ित तपस्विनी कौसल्या को राजा से छुड़ाकर अधिकारी लोग पृथक् लेगये, तदन्तर मन्त्री जनों ने तैल के कड़ाहे में राजा के शव को रखकर वसिष्ठादि की आज्ञानुसार अन्य कर्तव्य कर्म करने में प्रवृत्त हुए ॥

न तु संकालनं राज्ञो विना पुत्रेण मन्त्रिणः ।
सर्वज्ञा कर्तुमीषुस्ते ततो रक्षन्ति भूमिपम् ॥ १५ ॥
निशा नक्षत्रहीनेव स्त्रीव भर्तृविवर्जिता ।
पुरीनाराजतायोध्या हीनाराज्ञा महात्मना ॥१६॥

अर्थ–सम्पूर्ण व्यवहार के जानने वाले मन्त्रियों ने पुत्र के विना राजा का अन्त्येष्टिसंस्कार करना उचित न जानकर वहीं महल में उनको रक्षापूर्वक रखा, जिसप्रकार नक्षत्रों से हीन रात्रि तथा भर्त्ता से हीन नारी शोभा को प्राप्त नहीं होती इसी प्रकार महात्मा राजा दशरथ से बिना अयोध्यापुरी भयंकर प्रतीत होने लगी ॥

इति पंचाशः सर्गः

अथ एकपंचाशः सर्गः

सं०–अब प्रजा का राजा न होने में दोष कथन करते हैं:—

आक्रंदिता निरानन्दा सास्रकण्ठ जनाविला ।
अयोध्यायामवनतासा व्यतीताया शर्वरी ॥ १ ॥

व्यतीतायां तु शर्वर्यामादित्यस्योदये ततः।
समेत्य राजकर्तारः सभामीयुर्द्विजातयः ॥ २ ॥

अर्थ—अयोध्यावासी प्रजा की वह रात्रि रुदन करते हुए बड़े कष्ट से आनन्दरहित व्यतीत हुई; अब रात्रि के व्यतीत होते ही सूर्य्य उदय होने पर राजकर्मचारियों सहित सब ब्राह्मण एकत्रित हुए ॥

मार्कण्डेयोऽथ मौद्गल्यो वामदेवश्च कश्यपः ।
कात्यायनो गौतमश्च जाबालिश्च महायशाः ॥३॥
एते द्विजः सहामात्यैः पृथग्वाचमुदीरयन् ।
वसिष्ठमेवाभिमुखाः श्रेष्ठं राजपुरोहितम् ॥ ४ ॥

अर्थ—मार्कण्डेय, मौद्गल्य, वामदेव, कश्यप, कात्यायन, गौतम और महायशस्वी जाबालि, यह सब ब्राह्मण मन्त्रियों सहित राजपुरोहित वसिष्ठ को अभिमुख करके बोले कि :—

अतीता शर्वरी दुःखं यानो वर्षशतोपमा ।
अस्मिन्पंचत्वमापन्ने पुत्रशोकेन पार्थिवे ॥ ५ ॥
स्वर्गस्थश्च महाराजो रामश्चारण्यमाश्रितः ।
लक्ष्मणश्चापि तेजस्वी रामेणैव गतः सह ॥ ६ ॥
उभौ भरतशत्रुघ्नौ केकयेषु परंतपौ ।
पुरे राजगृहे रम्ये मातामह निवेशने ॥ ७ ॥

अर्थ—पुत्रशोक से राजा के इस पंचत्व को प्राप्त होने पर यह रात्रि बड़े कष्ट से सैकड़ों वर्ष के समान व्यतीत हुई है,

महाराज स्वर्ग को प्राप्त हुए, राम वन में जावसे तथा तेजस्वी लक्ष्मण भी राम के साथ ही गया, और तपस्वी भरत तथा शत्रुघ्न दोनों केकयदेश में नाना के घर हैं, इस रम्य राजगृह तथा पुर में मातायें निवास करती हैं, इसलिये उचित यह है कि :—

इक्ष्वाकूणामिहाद्यैव कश्चिद्राजा विधीयताम् ।
अराजकं हि नो राष्ट्रं विनाशं समवाप्नुयात् ॥८॥
नाराजके जनपदे विद्युन्माली महास्वनः ।
अभिवर्षति पर्जन्यो महीं दिव्येन वारिणा ॥९॥

अर्थ—अतिशीघ्र इक्ष्वाकुओं में से कोई राजा बनाना चाहिये, क्योंकि विना राजा के हमारा देश विनाश को प्राप्त होजायगा, राजा के विना देश में विजुली की चमक वाला बड़ा गर्जता हुआ मेघ भी दिव्य जल से पृथिवी पर नहीं बरसता अर्थात् धार्मिक राजा के विना देश में सुकाल नहीं होता ॥

नाराजके जनपदे बीजमुष्ठिः प्रकीर्यते ।
नाराजके पितुः पुत्रो भार्या वा वर्तते वशे ॥१०॥
अराजके धनं नास्ति नास्ति भार्याप्यराजके ।
इदमत्याहितं चान्यत्कुतः सत्यमराजके ॥११॥

अर्थ—राजा के विना देश में बीज की मुट्ठी क्षेत्र में नहीं बिखेरी जाती, और न राजा के विना पिता के पुत्र तथा पति के भार्या अधीन रहती है, राजा के विना न धन रहता, न भार्या रहती और इनके अतिरिक्त यह बड़ा उपद्रव होता है कि लोग अराज में सत्य का आश्रय छोड़ देते हैं ॥

नाराजके जनपदे कारयन्ति सभा नराः ।
उद्यानानि च रम्याणि हृष्टाः पुण्य गृहाणि च ॥१२॥
नाराजके जनपदे महायज्ञेषु यज्वनः ।
ब्राह्मणा वसु सम्पूर्णा विसृजन्त्याप्त दक्षिणाः॥१३॥

अर्थ–राजा के न होने से लोग देश में न सभायें बनाते न रमणीय गृह बनाते, न बाग बगीचे बनाते, न प्रसन्नता के लिये कोई स्थान नियत करते और न पुण्यगृह बनाते हैं, राजा के न होने से देश में बड़े यज्ञ करने वाले यजमान ब्राह्मणों को धन से पूर्ण दक्षिणायें नहीं देते, इसलिये बड़े यज्ञ भी नहीं होसक्ते॥

नाराजके जनपदे प्रहृष्टनटनर्तकाः ।
उत्सवाश्च समाजाश्च वर्धन्ते राष्ट्रवर्धनाः ॥१४॥
नाराजके जनपदे सिद्धार्था व्यवहारिणः ।
कथाभिरभिरज्यन्ते कथाशीलाः कथाप्रियैः ॥१५॥

अर्थ–राजा के न होने से देश में प्रसन्न हुए नट नर्तकों वाले मेले और देश को बढ़ाने वाले सभा समाज वृद्धि को प्राप्त नहीं होसकते,और राजा के विना धन होते हुए भी व्यापारी लोग कोई व्यापार नहीं करसक्ते, और न कथाशील=उपदेशक लोग अपने उत्तम उपदेश और कथाओं से प्रजा को प्रसन्न करसक्ते हैं॥

नाराजके जनपदे तूद्यानानि समागताः ।
सायान्हे क्रीडितुं यान्ति कुमार्यो हेमभूषिताः ॥१६॥
नाराजके जनपदे धनवन्तः सुरक्षिताः ।
शेरते विवृतद्वारा कृषिगोरक्षजीविनः ॥ १७ ॥

अर्थ—राजा के न होने से देश में सुवर्ण से भूषित कुमारियें मिलकर सायंकाल को बगीचों में खेलने नहीं जासकतीं, राजा के न होने से धनवान् सुरक्षित नहीं रहते और न खेती तथा गोरक्षा से जीविका करने वाले द्वार खोलकर शयन करसक्ते हैं॥

नाराजके जनपदे वणिजो दूरगामिनः ।
गच्छन्ति क्षेममध्वानं बहुपण्यसमाचिताः॥१८॥
नाराजके जनपदे चरत्येकचरो वशी ।
भावयन्नात्मनात्मानं यत्रसायंगृहो मुनिः ॥१९॥

अर्थ—राजा के विना व्यापारी लोग बहुत पदार्थ लेकर दूर देश में कुशलपूर्वक नहीं आ जा सकते, देश में एकाकी विचारने वाला, परमात्म चिन्तन करता हुआ मुनि जहां सायंकाल हो वहां ही जिसका घर है अर्थात् कोई नियत स्थान न रखने वाला मुनि राजा के विना निर्भय होकर नहीं विचरसकता॥

यथाह्यनुदका नद्यो यथा वाप्यतृणं वनम् ।
अगोपाला यथा गावस्तथा राष्ट्रमराजकम् ॥२०॥
नाराजके जनपदे स्वकं भवति कस्यचित् ।
मत्स्या इव जनानित्यं भक्षयन्ति परस्परम् ॥२१॥

अर्थ—जैसे विना जल के नदियें, विन घास के वन, विना गोपाल के गौयें हों वैसे ही राजा के विना देश होता है, राजा के विना देश में किसी पदार्थ पर किसी का कुछ स्वत्व नहीं होता, मछलियों की भांति लोग सदा एक दूसरे का भक्षण करते रहते हैं॥

यथा दृष्टिः शरीरस्य नित्यमेव प्रवर्तते ।
तथा नरेन्द्रो राष्ट्रस्य प्रभवः सत्यधर्मयोः ॥ २२ ॥
राजा सत्यं च धर्मश्च राजा कुलवतां कुलम् ।
राजा मातापिता चैव राजा हितकरो नृणाम् ॥२३॥
अहो तम इवेदं स्यान्न प्रज्ञायेत किञ्चन ।
राजा चेन्न भवेल्लोके विभजन्साध्व साधुनी ॥२४॥

अर्थ–जैसे दृष्टि शरीर के हित साधन और अहित निवारण में सदा प्रवृत्त होती है अर्थात् वह सदा ही शरीर का शुभ सोचती है इसी प्रकार राजा सत्य और धर्म के प्रकट कराने में समर्थ होता है, राजा सत्य तथा धर्म है, कुलीनों का कुल है, राजा माता पिता और सब मनुष्यों का हितकारी है, अहो ! यदि लोक में भले बुरे का विवेक करने वाला राजा न हो तो यह सब अन्धकारमय होजाय किसी का कुछ पता ही न लगे ॥

द्विजवर्य वृत्तं नृपं विना राष्ट्रमरण्यभूतम् ।
कुमारमिक्ष्वाकुसुतं तथान्यं त्वमेव राजा
नमिहाभिषेचय ॥ २५ ॥

अर्थ–हे द्विजवर्य्य ! यह सम्पूर्ण वृत्त जानकर राजा के विना यह देश वन सदृश होजायगा, अतएव परमावश्यक है कि इक्ष्वाकुवंशीय राजकुमार अथवा किसी अन्य को आप लोग शीघ्र ही युवराज बनावें ॥

इति एकपंचाशः सर्गः

अथ द्विपंचाशः सर्गः

सं०-अब भरत के लाने को दूतों का भेजना कथन करते हैं:—

तेषां तद्वचनं श्रुत्वा वसिष्ठः प्रत्युवाच ह ।
मित्रामात्यजनान्सर्वान् ब्राह्मणांस्तानिदं वचः॥१॥
यदसौ मातुलकुले दत्तराज्यः परंसुखी ।
भरतो वसतिभ्रात्रा शत्रुघ्नेनमुदान्वितः ॥ २ ॥

अर्थ-उन ब्राह्मणों के उक्त वचन सुनकर गुरु वसिष्ठ ने मित्रों सहित मन्त्रियों और ब्राह्मणों को कहा कि जिसको राज्य दिया गया है वह भरत प्रसन्नतापूर्वक भाई शत्रुघ्न के सहित मातुलकुल=मामा के घर निवास करता है॥

तच्छीघ्रं जवना दूता गच्छन्तु त्वरितं हयैः।
आनेतुं भ्रातरौ वीरौ किं समीक्षामहे वयम् ॥३॥
गच्छन्त्वित्यति ततः सर्वे वसिष्ठं वाक्यमब्रवीत् ।
तेषां तद्वचनं श्रुत्वा वसिष्ठो वाक्यमब्रुवन् ॥ ४ ॥

अर्थ-अतएव अभी शीघ्रगामी घोड़ों से दूत वहां जायं और उन दोनों वीर भाइयों को यहां ले आवें, हम क्या विचारते हैं अर्थात् भरत का राजा होना तो प्रथम ही निश्चय होचुका है, तब वह सभी वसिष्ठ से बोले कि हां ठीक है दूत शीघ्र वहां जायं, उनके इस वचन को सुनकर वसिष्ठ बोले कि :—

एहि सिद्धार्थ विजय जयन्ताशोकनन्दनः ।
श्रूयतामिति कर्तव्यं सर्वानेव ब्रवीमि वः ॥ ५ ॥
पुरं राजगृहं गत्वा शीघ्रं शीघ्रजवैर्हयैः ।
त्यक्तशोकैरिदं वाच्यः शासनाद्भरतो मम ॥ ६ ॥

अर्थ—हे सिद्धार्थ, विजय, जयन्त तथा अशोकनन्दन आप सबको कहता हूं आप लोग अपना कर्तव्य सुनें. शोक को त्यागकर शीघ्रगामी घोड़ों पर तुरन्त ही राजगृह में प्रवेश करके मेरी ओर से भरत को यह कहें कि :—

पुरोहितस्त्वां कुशलं प्राह सर्वे च मन्त्रिणः ।
त्वरमाणश्च निर्याहि कृत्यमात्ययिकं त्वया ॥७॥
मा चास्मै प्रोषितं रामं मा चास्मै पितरं मृतम् ।
भवन्तः शंसिषुर्गत्वा राघवाणामितः क्षयम् ॥८॥

अर्थ—पुरोहित तथा सब मन्त्रियों ने तेरे लिये कुशल कहकर तुम्हारे साथ आवश्यक कार्य्य होने से तुम्हें शीघ्र ही बुलाया है. अभी चल, राम का वन जाना, पिता का मृत्यु को प्राप्त होना तथा राघवों का नाश यह सब आपने उसको नहीं बतलाना ॥

कौशेयानि च वस्त्राणि भूषणानि वराणि च ।
क्षिप्रमादाय राज्ञश्च भरतस्य च गच्छत ॥ ९ ॥
ततः प्रास्थानिकं कृत्वा कार्यशेषमनन्तरम् ।
वसिष्ठेनाभ्यनुज्ञाता दूता संत्वरितं ययुः ॥ १० ॥

अर्थ—केकयराज और भरत के लिये रेशमी वस्त्र तथा उत्तम

भूषण लेकर शीघ्र ही जाओ, तदनन्तर प्रस्थान सम्बन्धी सब तैयारी करके वसिष्ठ से आज्ञा पाये हुए दूत शीघ्र ही चले गये ॥

न्यन्तेनापरतालस्य प्रलम्बस्योत्तरं प्रति ।
निषेवमाणास्ते जग्मुर्नदीं मध्येन मालिनीम् ॥११॥
ते हास्तिनपुरे गङ्गां तीर्त्वा प्रत्यङ्मुखाः ययुः ।
पंचालदेशमासाद्य मध्येन कुरुजांगलम् ॥ १२ ॥
सरांसि च सुफुल्लानि नदीश्च विमलोदकाः ।
निरीक्षमाणा जग्मुस्ते दूताःकार्यवशाद्द्रुतम् ॥१३॥

अर्थ-वह दूत अपरताल देश जिसको अब तराई के नाम से पुकारते हैं उसके पश्चिम से प्रलम्ब देश=पश्चिमोत्तरदेश के उत्तर भाग को प्राप्त हो उसके मध्य में बहती हुई मालिनी नदी का सेवन करते हुए हास्तिनपुर=हस्तनापुर में गङ्गा से पार हो पश्चिम मुख हुए २ कुरुजांगल=कुरुक्षेत्र के मध्य में से पञ्चाल=पञ्जाब देश में पहुंचे, फूले हुए सरोवरों और निर्मल जलवाली नदियों को देखते हुए वह दूत कार्य्यवशात् शीघ्र ही गये ॥

ते प्रसन्नोदकां दिव्यां नानाविहगसेविताम् ।
उपातिजग्मुर्वेगेन शरदण्डां जलाकुलाम् ॥ १४ ॥
अभिकालं ततः प्राप्य तेनोभिभवनाच्च्युताः ।
पितृपैतामहीं पुण्यां तेरुरिक्षुमतीं नदीम् ॥ १५ ॥

अर्थ-वह दूत निर्मल जलवाली, अनेक पक्षियों से सेवित, जल से भरी हुई दिव्य शरदण्डा नदी से शीघ्र ही पार होकर

अभिकाल ग्राम में पहुंचे, फिर तेजोऽभिभवन ग्राम से निकलकर इक्ष्वाकुओं की पिता पितामह सम्बन्धी पवित्र इक्षुमती नदी से पार हुए ॥

अवेक्ष्यांजलिपानांश्च ब्राह्मणान्वेदपारगान् ।
ययुर्मध्येन बाह्लीकान् सुदामानं च पर्वतम् ॥१६॥
विष्णोः पदं प्रेक्षमाणा विपाशां चापि शाल्मलीम् ।
नदीर्वापीस्तटाकानि पल्वलानि सरांसि च ॥१७॥

अर्थ—बाह्लीक के मध्य से वेदपारंगत अञ्जलिपान=अञ्जलि से पानी पीने वाले ब्राह्मणों को देखकर सुदामापर्वत पर पहुंचे, और सुदामापर्वत पर विष्णुपाद को देखते हुए विपाशा, शाल्मली तथा अन्य नदियें और बावड़ी, तालाब, सरोवरों और :—

पश्यन्तो विविधांश्चापि सिंहान्व्याघ्रान्मृगान्द्विपान्।
ययुः पथातिमहता शासनं भर्तुरीप्सवः ॥ १८ ॥
ते श्रान्तवाहना दूता विकृष्टेन सता पथा ।
गिरिव्रजं पुरवरं शीघ्रमासेदुरञ्जसा ॥ १९ ॥

अर्थ—अनेक प्रकार के सिंह, बाघ, मृग और हाथियों को देखते हुए महात्मा वसिष्ठ की आज्ञानुसार बड़े मार्ग से गये, वह थके हुए घोड़ों वाले दूत लम्बे श्रेष्ठ मार्गद्वारा पुरवर=श्रेष्ठ पुर को प्राप्त हो गिरिव्रज=राजगृह में पहुंचे ॥

इति द्विपंचाशः सर्गः

अथ त्रिपंचाशः सर्गः

सं०—अब दूतों का वहां पहुंचना और भरत का उनके साथ आना कथन करते हैं :—

समागम्य च राज्ञाते राजपुत्रेण चार्चिताः ।
राज्ञः पादौ गृहीत्वा च तमूचुर्भरतं वचः ॥१॥

अर्थ—वह दूत वहां पहुंचकर राजा केकय और राजपुत्र युधाजित् से मिल सत्कृत हुए राजा के पाओं पकड़कर भरत से बोले कि :—

पुरोहितस्त्वां कुशलं प्राह सर्वे च मन्त्रिणः ।
त्वरमाणश्च निर्याहि कृत्यमात्यायकं त्वया ॥ २ ॥
इमानि च महार्हाणि वस्त्राण्याभरणानि च ।
प्रतिगृह्य विशालाक्ष मातुलस्य च दापय ॥ ३ ॥

अर्थ—पुरोहित तथा सब मन्त्रियों ने आपको कुशल कहा है और आप शीघ्र चलें आवश्यक कार्य्य है, और हे विशाल नेत्र ! यह बहुमूल्य वस्त्र तथा आभूषण जो हम लाये हैं इन्हें अपने मामा को दें ॥

प्रतिगृह्य तु तत्सर्वं स्वनुरक्तः सुहृज्जने ।
दूतानुवाच भरतः कामैः संप्रतिपूज्यतान् ॥४॥
कच्चित्स कुशली राजा पिता दशरथो मम ।
कच्चिदारोग्यता रामे लक्ष्मणे च महात्मनि ॥५॥

आर्या च धर्मनिरता धर्मज्ञा धर्मवादिनी ।
अरोगा चापि कौसल्या माता रामस्य धीमतः॥६॥

अर्थ–वह सब सामान लेकर अपने सुहृदजनों से प्रेम करने वाला भरत यथायोग्य पदार्थों से उनका सत्कार कर बाला कि मेरे पिता महाराज दशरथ तो कुशलपूर्वक हैं, राम तथा महात्मा लक्ष्मण तो नीरोग हैं, और धर्म में रत, धर्म के जानने वाली तथा धर्मानुसार ही कहने वाली बुद्धिमती राममाता आर्या कौसल्या तो सर्वथा प्रसन्न है ॥

कच्चित्ससुमित्रा धर्मज्ञा जननी लक्ष्मणस्य या ।
शत्रुघ्नस्य च वीरस्य अरोगा चापि मध्यमा ॥७॥
अरोगा चापि मे माता कैकेयी किमुवाच ह ॥८॥
एवमुक्तास्तु ते दूता भरतेन महात्मना ।
ऊचुः संप्रश्रितं वाक्यमिदं ते भरतं तदा ॥९॥

अर्थ–धर्म के जानने वाला लक्ष्मण और वीर शत्रुघ्न की माता सुमित्रा सर्वथा आनन्दित है, और मेरी माता कैकेयी तो सब प्रकार से प्रसन्न है और उन्होंने मेरे लिये क्या कहा है ? महात्मा भरत के इस प्रकार पूछने पर वह दूत नम्रतापूर्वक भरत से बोले कि :—

कुशलास्ते नरव्याघ्र येषां कुशलमिच्छसि ।
श्रीश्च त्वां वृणुते पद्मा युज्यतां चापि ते रथः॥१०॥
भरतश्चापि तान्दूतानेवमुक्तोऽभ्यभाषत ।
आपृच्छेऽहं महाराजं दूताः संत्वरयन्ति माम् ॥११॥

अर्थ—हे नरव्याघ्र! वह सब कुशल से हैं जिनका आप कुशल चाहते हैं, हे पद्मों के समान शोभा वाले भरत आप अपना शीघ्र ही रथ तैयार करायें, दूतों के इस प्रकार कथन करने पर भरत ने उनसे कहा कि मैं महाराज से अभी आज्ञा लेता हूं कि दूत मुझको शीघ्र ही ले जाना चाहते हैं ॥

एवमुक्त्वा तु तान् दूतान् भरतः पार्थिवात्मजः ।
दूतैः संचोदितो वाक्यं मातामहमुवाच ह ॥१२॥
राजन्पितुर्गमिष्यामि सकाशं दूतचोदितः ।
पुनरप्यहमेष्यामि यदा मे त्वं स्मरिष्यसि ॥१३॥

अर्थ—राजपुत्र भरत दूतों से उक्त प्रकार कहकर उनसे प्रेरा हुआ अपने मातामह=नाना से बोला कि हे राजन्! मैं पिता के समीप जाता हूं, क्योंकि दूत मुझे शीघ्र लेजाने के लिये प्रेरणा करते हैं, फिर जब कभी आप स्मरण करेंगे तभी आजाउंगा ॥

भरते नैवमुक्तस्तु नृपो मातामहस्तदा ।
तमुवाच शुभं वाक्यं शिरस्याघ्राय राघवम् ॥१४॥
गच्छ तातानुजाने त्वां कैकयी सुप्रजास्त्वया ।
मातरं कुशलं ब्रूयाः पितरं च परंतप ॥ १५ ॥

अर्थ—भरत के उक्त प्रकार कथन करने पर मातामह राजा केकय प्यार से भरत को सिरपर चूमकर यह शुभ वाक्य बोले कि हे तात! जाओ तुम्हें आज्ञा है, तुम्हारे जैसे पुत्र से कैकेयी उत्तम सन्तान वाली है,हे परंतप! माता तथा पिता को कुशल कहना॥

पुरोहितं च कुशलं ये चान्ये द्विजसत्तमाः ।
तौ च तात महेष्वासौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥१६॥
तस्मै हस्त्युत्तमांश्चित्रान्कम्बलानजिनानि च ।
सत्कृत्य केकयो राजा भरताय ददौ धनम् ॥१७॥

अर्थ—और पुरोहित तथा अन्य उत्तम ब्राह्मणों और महा धनुर्धारी राम लक्ष्मण को भी कुशल कहना, राजा केकय ने गमन समय भरत को उत्तम हाथी, विचित्र कंबल, मृगान आर बहुतसा धन सत्कारपूर्वक दिया ॥

अन्तःपुरेऽतिसंवृद्धान्व्याघ्रवीर्य्यबलोपमान् ।
दंष्ट्रायुक्तान्महाकायाञ्शुनश्चोपायनं ददौ ॥१८॥

रुक्मनिष्कसहस्रे द्वे षोडशाश्वशतानि च ।
सत्कृत्य केकयीपुत्रं केकयो धनमादिशत् ॥१९॥

अर्थ—और अन्तःपुर में पले हुए बाघ के तुल्य बलवाले, बड़ी २ दाढ़ों वाले तथा बड़े शरीर वाले कुत्ते दिये, दो सहस्र मुहरें और सोलहसो घोड़े, यह सब धन राजा ने सत्कारपूर्वक कैकेयी के पुत्र भरत को दिया ॥

तदामात्यानभिप्रेतान्विश्वास्यांश्च गुणान्वितान् ।
ददावश्वपतिः शीघ्रं भरतायानुयायिनः ॥ २० ॥
ऐरावतानैन्द्रशिरान्नागान् वै प्रियदर्शनान् ।
खरान्शीघ्रान्सुसंयुक्तान्मातुलोऽस्मैधनंददौ ॥२१॥

स मातामहमापृच्छ्य मातुलं च युधाजितम् ।
रथमारुह्य भरतः शत्रुघ्नसहितो ययौ ॥ २२ ॥

अर्थ—तदनन्तर अश्वपति ने भरत के साथ जाने के लिये अपने अभिमत विश्वासपात्र तथा उत्तम गुणों वाले मन्त्री दिये और मामा ने इरावत तथा इन्द्रशिर पर्वतों के उत्तम हाथी और शीघ्र गामी खच्चरें दीं, फिर मातामह और मामा युधाजित से आज्ञा लेकर भरत शत्रुघ्नसहित रथ पर चढ़ अयोध्या की ओर चला ॥

इति त्रिपंचाशः सर्गः

अथ चतुष्पंचाशः सर्गः

सं०—अब केकयदेश से अयोध्या को आते हुए भरत की यात्रा कथन करते हैं :—

स प्राङ्मुखो राजगृहादभिनिर्यायवीर्यवान् ।
ततः सुदामां द्युतिमान्संतीर्यावेक्ष्य तां नदीम्॥१॥
ह्लादिनीं दूरपारां च प्रत्यक्स्रोतस्तरंगिणीम् ।
शतद्रुमतरच्छ्रीमान्नदीमिक्ष्वाकुनन्दनः ॥ २ ॥

अर्थ—वह वीर्य्यवान् भरत राजगृह से पूर्व की ओर निकलकर सुन्दर बहती हुई सुदामा नदी को देख उससे पार होकर दूर किनारे वाली पश्चिम को बहती हुई ह्लादिनी नदी से पार हुए और फिर वह श्रीमान् इक्ष्वाकुनन्दन शतद्रु=शतलुज से पार होकर :—

ऐलधाने नदीं तीर्त्वा प्राप्य चापरपर्वतान् ।
शिलामाकुर्वतीं तीर्त्वा आग्नेयं शल्यकर्षणम् ॥३॥
सत्यसंधः शुचिर्भूत्वा प्रेक्षमाणाः शिलावहाम् ।
अभ्यगात्स महाशैलान्वनं चैत्ररथं प्रति ॥ ४ ॥
सरस्वतीं च गंगा च युग्मेन प्रतिपद्य च ।
उत्तरान्वीरमत्स्यानां भारुण्डं प्राविशद्वनम् ॥ ५ ॥

अर्थ–ऐलधान ग्राम में नदी से पार हो अपरपर्वत देश में पहुंचकर शिला और आकुर्वती नदी से पार हुए, फिर आग्नेय और शल्यकर्षण इन दो ग्रामों के मध्य में बहती हुई शिलावहा नदी को देखते हुए सत्यप्रतिज्ञ भरत ऊंचे पर्वतों को लांघकर चैत्ररथ वन को गये और वहां सरस्वती तथा गङ्गा दोनों के संगम को प्राप्त होकर वीरमत्स्यों के उत्तर भारुण्ड वन में पहुंचे ॥

वेगिनीं कुलिङ्गाख्यां ह्लादिनीं पर्वतावृताम् ।
यमुनां प्राप्य संतीर्णो बलमाश्वासयत्तदा ॥ ६ ॥
राजपुत्रो महारण्यमनभीक्ष्णोपसेवितम् ।
भद्रो भद्रेण यानेन मारुतः खमिवात्यगात् ॥ ७ ॥
भागीरथीं दुष्प्रतरां सोंऽशुधाने महानदीम् ।
उपायाद्राघवस्तूर्णं प्राग्वटे विश्रुते पुरे ॥ ८ ॥
स गंगां प्राग्वटे तीर्त्वा समायात्कुटिकोष्टिकाम् ।
सबलस्तां स तीर्त्वाथ समगाद्धर्मवर्धनम् ॥ ९ ॥

अर्थ—और वहां वेगवाली तथा बहुत शब्द करने वाली पर्वतों से घिरी हुई कुलिङ्गा नदी से पार होकर यमुना नदी पर पहुंच सेना को विश्राम दिया, तदनन्तर वह भद्र उस महावन से जिसमें मनुष्य कभी २ प्रवेश करते थे उसमें से आकाश से वायु की भांति उस उत्तम रथ द्वारा पार हुए,वह राघव अंशुधान ग्राम में महानदी गङ्गा से पार उतरना कठिन जान शीघ्र ही विख्यातपुर प्राग्वट को चले गये, वहां प्राग्वट में गङ्गा से पार होकर कुटकोष्टिका नदी पर पहुंचे, फिर सेना सहित उससे पार होकर धर्मवर्धन ग्राम में आये ॥

तोरणं दक्षिणार्धेन जम्बूप्रस्थं समागमत् ।
वरूथं च ययौ रम्यं ग्रामं दशरथात्मजः ॥ १० ॥
तत्र रम्ये वने वासं कृत्वासौ प्राङ्मुखो ययौ ।
उद्यानमुज्जिहानायाः प्रियका यत्र पादपाः ॥११॥

अर्थ—फिर तोरणग्राम के दक्षिण ओर से जम्बूप्रस्थ में आये, वहां से सुहावने वरुथ ग्राम में गये, और वहां रमणीय वन में वास करके पूर्वाभिमुख हुए उज्जिहाना नगरी के बाग को गये जिसमें प्रियक नामा वृक्ष थे ॥

स तांस्तु प्रियकान्प्राप्य शीघ्रानास्थाय वाजिनः ।
अनुज्ञाप्याथ भरतो वाहिनीं त्वरितो ययौ ॥ १२ ॥
वासं कृत्वा सर्वतीर्थे तीर्त्वा चोत्तरगां नदीम् ।
अन्या नदीश्च विविधैः पार्वतीयैस्तुरगमैः ॥१३॥

अर्थ–वह सब उन वृक्षों को प्राप्त हो वहां भरत शीघ्रगामी घोड़ों पर सवार हुए और सेना को पीछे धीरे २ आने की आज्ञा देकर आप शीघ्र ही अयोध्या को चले, मार्ग में सर्वतीर्थ ग्राम में वास करके उत्तरगा नदी और अन्य कई नदियों तथा पर्वतों से घोड़ों द्वारा पार होकर :—

अयोध्यां मनुना राज्ञानिर्मितां स ददर्श ह ।
तां पुरीं पुरुषव्याघ्रः सप्तरात्रोषितः पथि ॥ १४ ॥
अयोध्यामग्रतो दृष्ट्वा सारथिं चेदमब्रवीत् ।
एषा नातिप्रतीता मे पुण्योद्याना यशस्विनी ॥१५॥

अर्थ–पुरुषव्याघ्र भरत ने मार्ग में सात रात्रि व्यतीत कर राजा मनु की निर्माण कीहुई अयोध्या नगरी को देखा, और देखकर सारथि से बोला कि यह पवित्र बगीचों वाली तथा यश वाली पुरी आज बहुत प्रसन्न नहीं है ॥

अयोध्यायां पुराशब्दः श्रूयते तुमुलो महान् ।
समन्तान्नरनारीणां तमद्य न शृणोम्यहम् ॥ १६ ॥
नह्यत्रयानैर्दृश्यन्ते न गजैर्न च वाजिभिः ।
निर्यान्तो वाभियान्तो वा नरमुख्या यथा पुरा॥१७॥

अर्थ–अयोध्या में जो चारो ओर नर नारियों का तुमुल शब्द सुनाई देता था वह आज नहीं सुनता, और न आज यानों, रथों तथा घोड़ों से आते जाते पुरुष दीखते हैं जैसे पहले देखता था॥

उद्यानानि पुराभांतिमत्तप्रमुदितानि च ।
जनानां रतिसंयोगेष्वत्यन्तगुणवन्ति च ॥१८॥

तान्येतान्य पश्यामि निरानन्दानि सर्वशः ।
स्रस्तपर्णैरनुपथं विक्रोशद्भिरिवद्रुमैः ॥ १९ ॥
चन्दनागुरुसंपृक्त धूपसंमूर्च्छितोमलः ।
प्रवाति पवनः श्रीमान् किंनुनाद्य यथापुरा ॥२०॥

अर्थ—और अयोध्या के बाग बगीचे जैसे पहले प्रफुल्लित मत्त तथा जनों की प्रीति से अति हर्षित देखता था वह अब प्रतीत नहीं होते, यह सब पुष्पवाटिका आज सब प्रकार से आनन्द रहित देखता हूं, क्योंकि मार्गों में जगह २ पत्ते आदि पड़े होने से ऐसा प्रतीत होता है कि मानो वृक्ष रोरहे हैं, और चन्दन तथा धूप मिश्रित सुगन्धित प्रभात का पवन भी आज नहीं बहता, जैसाकि पूर्व बहता था ॥

भेरी मृदंग वीणानां कोण संघटितः पुनः ।
किमद्यशब्दो विरतः सदा दीनगतिः पुरा ॥२१॥
अनिष्टानि च पापानि पश्यामि विविधानि च ।
निमित्तान्यमनोज्ञानि तेन सीदति मे मनः ॥२२॥

अर्थ—फिर भेरी, मृदंग तथा वीणा आदि वाद्य जो नित्य बजा करते थे उनकी ध्वनि आज क्यों सुनाई नहीं देती, आज पुर सर्वथा दीन गति को प्राप्त हुआ प्रतीत होता है, अधिक क्या आज मैं अनेक प्रकार के अनिष्ट देखता और निमित्तों को भी विपरीत देखता हूं इससे मेरा मन गिररहा है ॥

सर्वथा कुशलं सूत दुर्लभं मम बन्धुषु ।
तथाह्यसति संमोहे हृदयं सीदतीव मे ॥२३॥

विषण्णः श्रान्तहृदयस्त्रस्तः संलुलितेन्द्रियः ।
भरतः प्रविवेशाशु पुरीमिक्ष्वाकुपालिताम् ॥२४॥

अर्थ-हे सूत ! मेरे बन्धुओं में सर्वथा कुशल दुर्लभ है, जैसाकि विना व्याकुल हुए ही मेरा हृदय गिरने के समान होरहा है, इस प्रकार खिन्नचित्त, भीत, मुरझाये हुए इन्द्रियों वाला भरत इक्ष्वाकुओं से पालित पुरी में प्रविष्ट हुआ ॥

द्वारेण वैजयन्तेन प्राविशच्छ्रान्तवाहनः ।
द्वाःस्थैरुत्थाय विजयं पृष्टस्तैः सहितो ययौ ॥२५॥

अर्थ-भरत थके हुए घोड़ों द्वारा वैजयन्त द्वार से प्रविष्ट हुआ, द्वारपालों ने खड़े होकर विजय पूछा और फिर उनके साथ २ होलिये ॥

तां शून्य शृंगाटक वेश्मरथ्यां रजोरुण-
द्वारकवाटयन्त्राम् । दृष्ट्वा पुरीमिन्द्र-
पुरीप्रकाशां दुःखेन सम्पूर्णतरो बभूव॥२६॥

अर्थ-आज इन्द्रपुरी के सदृश अयोध्यापुरी के चौरस्ते, मन्दिर और गलियें शून्य तथा द्वारों के फाटक और यन्त्रों पर धूलि पड़ी देखकर चित्त में अधिक खेद हुआ ॥

बभूव पश्यन्मनसोऽप्रियाणि यान्यन्यदा-
नास्य पुरे बभूवुः । अवाक्शिरा दीनमना
न हृष्टः पितुर्महात्मा प्रविवेश वेश्म ॥२७॥

अर्थ-उक्त अप्रिय बातें जिनको देखकर भरत का मन अति

खिन्न हुआ, क्योंकि इससे पहले ऐसा कभी नहीं देखा था, यह सब दृश्य देखता हुआ महात्मा भरत सिर नीचा किये हुए दीन, अप्रसन्न मन हुआ २ पिता के मन्दिर में गया ॥

इति चतुष्पंचाशः सर्गः

अथ पंचपंचाशः सर्गः

सं०—अब भरत का माता कैकेयी से पिता की मृत्यु तथा राम का वनवास सुनना कथन करते हैं :—

अपश्यंस्तु ततस्तत्र पितरं पितुरालये ।
जगाम भरतो द्रष्टुं मातरं मातुरालये ॥१॥
अनुप्राप्तं तु तं दृष्ट्वा कैकेयी प्रोषितं सुतम् ।
उत्पपात तदा हृष्टा त्यक्त्वा सौवर्णमासनम् ॥२॥

अर्थ—और वहां पिता के गृह में उनको न देखकर भरत माता के गृह में उनके दर्शनार्थ गया, उस अपने पुत्र को नाना के घर से आया देखकर कैकेयी प्रसन्न हो सुवर्ण के आसन से उठ खड़ी हुई ॥

स प्रविश्यैव धर्मात्मा स्वगृहं श्री विवर्जितम् ।
भरतः प्रेक्ष्य जग्राह जनन्याश्चरणौ शुभौ ॥३॥
तं मूर्ध्नि समुपाघ्राय परिष्वज्य यशस्विनम् ।
अंके भरतमारोप्य प्रष्टुं समुपचक्रमे ॥ ४ ॥

अर्थ—उस धर्मात्मा भरत ने शोभाहीन अपने गृह में प्रविष्ट होते ही माता के शुभचरणों को ग्रहण किया, और माता ने उस यशस्वी पुत्र के माथे पर चूमकर तथा उसको आलिङ्गन करके गोद में बिठाकर पूछने लगी कि:—

अद्य ते कतिचिद्रात्र्यश्च्युतस्यार्यकवेश्मनः ।
अपि नाध्वश्रमः शीघ्रं रथेनापततस्तव ॥ ५ ॥
आर्यकस्ते सुकुशली युधाजिन्मातुलस्तव ।
प्रवासाच्च सुखं पुत्र सर्वं मे वक्तुमर्हसि ॥ ६ ॥

अर्थ—हे पुत्र ! आज तुझे नाना का घर छोड़े हुए कितनी रातें बीती हैं ? रथ द्वारा शीघ्र आते हुए तुझको मार्ग में विशेष परिश्रम तो नहीं हुआ; हे आर्य्य ! तेरा नाना और युधाजित तेरा मामा तो कुशलपूर्वक हैं ? वहां नाना के गृह में जो तुझे सुख हुआ हो वह सब मुझसे कह ॥

एवं पृष्टस्तु कैकेय्या प्रियं पार्थिवनन्दनः ।
आचष्ट भरतः सर्वं मात्रे राजीवलोचनः ॥ ७ ॥
अद्य मे सप्तमी रात्रिश्च्युतस्यार्यकवेश्मनः ।
अम्बायाः कुशली तातो युधाजिन्मातुलश्च मे॥८॥
यन्मे धनं च रत्नं च ददौ राजा परंतपः।
परिश्रान्तंपथ्यभवत्ततोऽहं पूर्वमागतः ॥ ९ ॥

अर्थ—उक्त प्रकार कैकेयी के पूछने पर उस कमलनेत्र राजपुत्र भरत ने माता को सम्पूर्ण वृत्त बतलाया कि नाना का घर छोड़े हुए आज मुझे सातवीं रात है, मेरा नाना और मामा

युधाजित् सब प्रकार से कुशलपूर्वक हैं,और उन्होंने मुझको जो धन तथा रत्न दिये हैं वह अभी थकावट के कारण मार्ग में हैं और मैं उन सब से प्रथम ही आगया हूं ॥

राजवाक्यहरैर्दूतैस्त्वर्यमाणोऽहमागतः ।
यदहं प्रष्टुमिच्छामि तदम्ब वक्तुमर्हसि ॥ १० ॥

अर्थ–राज्य का संदेश लेजाने वाले दूतों की शीघ्रता से मैं तुरन्त ही यहां आया हूं, हे अम्ब ! जो कुछ मैं पूछना चाहता हूं उसको आप कृपाकरके मुझे बतलावें ॥

राजा भवति भूयिष्ठमिहाम्बाया निवेशने ।
तमहं नाद्य पश्यामि द्रष्टुमिच्छन्निहागतः ॥११॥
पितुर्ग्रहीष्ये पादौ च तं ममाख्याहि पृच्छतः ।
अहोस्विदम्बाज्येष्ठायाः कौसल्याया निवेशने॥१२॥

अर्थ–राजा विशेषकर यहां तुम्हारे ही महल में अधिक निवास किया करते हैं सो मैंने आज उनको अभी तक यहां नहीं देखा और मैं उनके दर्शनों की इच्छा से ही यहां आया हूं, मैं पिताजी के चरण ग्रहण करूंगा, आप मुझको उनका पता वतायें क्या वह वड़ी माता कौसल्या के महल में हैं ॥

तं प्रत्युवाच कैकेयी प्रियवद्घोरमप्रियम् ।
अजानन्तं प्रजानन्ती राजलोभेन मोहिता ॥१३॥
या गतिः सर्वभूतानां तां गतिं ते पिता गतः ।
राजा महात्मा तेजस्वी यायजूकः सतां गतिः॥१४॥

अर्थ—राज्य के लोभ से मोहित हुई कैकेयी भरत के प्रति भयंकर अप्रिय वाक्य प्रिय की भांति जानती हुई न जानते हुए भरत से बोली कि सब भूतों की जो अन्तिम गति है उसी गति को महातेजस्वी, यज्ञशील सत्पुरुषों का आश्रय महात्मा तेरे पिता प्राप्त हुए हैं ॥

तच्छ्रुत्वा भरतो वाक्यं धर्माभिजनवाञ्छुचिः ।
पपात सहसा भूमौ पितृशोक बलार्दितः ॥ १५ ॥
बाष्पमुत्सृज्य कण्ठेन स्वात्मना परिपीडितः ।
जननीं प्रत्युवाचेदं शोकैर्बहुभिरावृतः ॥ १६ ॥

अर्थ—धार्मिक वंश वाला पवित्र भरत माता के वचन सुनकर पितृशोक के आवेश से महान् दुःख को प्राप्त हुआ सहसा भूमि पर गिर पड़ा, और कण्ठस्वर के साथ वाष्प जुड़गया अर्थात् बहुत दुःखी होने के कारण भीतर की बाष्प से कण्ठ रुकने लगा, और मन से पीड़ित तथा बहुत शोकों से युक्त हुआ भरत माता से बोला कि :—

अभिषेक्ष्यति रामं तु राजा यज्ञं नु यक्ष्यते ।
इत्यहं कृतसंकल्पो हृष्टो यात्रा मयासिषम् ॥१७॥
तदिदं ह्यन्यथाभूतं व्यवदीर्णं मनो मम ।
पितरं यो न पश्यामि नित्यं प्रियहिते रतम् ॥१८॥

अर्थ—राम को राजा तिलक देंगे और यज्ञ करेंगे, यह मन में सङ्कल्प कर प्रसन्न हुआ मैं इस यात्रा में चला था, यह मेरा

विचार ही अन्यथा=उलटा होगया, मेरा मन विदीर्ण=टुकड़े २ होरहा है जो मैं प्रियहित में रत हुए पिता को नहीं देखता हूं ॥

अम्ब केनात्यगाद्राजा व्याधिना मय्यनागते ।
धन्या रामादयः सर्वे यैः पिता संस्कृतःस्वयम्॥१९॥
न नूनं मां महाराजः प्राप्तं जानाति कीर्तिमान् ।
उपजिघ्रेत्तु मां मूर्ध्नि तातः सेनाम्य सत्वरम् ॥२०॥

अर्थ—हे अम्ब ! मेरे पहुंचने से प्रथम ही राजा किस रोग से मृत्यु को प्राप्त हुए, राम आदि सब धन्य हैं जिन्होंने अपने हाथों से पिता का संस्कार किया, निःसन्देह कीर्तिमान् महाराज मुझको आया हुआ नहीं जानते नहीं तो अतिशीघ्र मुझको झुकाकर सिर चूमते हुए प्यार करते ॥

क्व स पाणिः सुखस्पर्शस्तातस्याक्लिष्टकर्मणः ।
यो हि मां रजसा ध्वस्तमभीक्ष्णं परिमार्जति ॥२१॥
यो मे भ्राता पिता बन्धुर्यस्य दासोऽस्मि संमतः ।
तस्य मां शीघ्रमाख्याहि रामस्याक्लिष्टकर्मणः ॥२२॥

अर्थ—उन शुभकर्मों वाले तात का सुखस्पर्श वाला वह हाथ कहा हैं जो धूल से लिपटे हुए मुझको बार २ पोंछते थे, और पिता तुल्य मेरा बड़ा भाई राम कहां हैं जिसका मैं माना हुआ दास हूं, उस शुभकर्मों वाले राम का मुझको शीघ्र ही पता दें ॥

पिता हि भवति ज्येष्ठो धर्ममार्यस्य जानतः ।
तस्य पादौ ग्रहीष्यामि स हीदानीं गतिर्मम ॥२३॥

धर्मविद्धर्मशीलश्च महाभागो दृढव्रतः ।
आर्ये किमब्रवीद्राजा पिता मे सत्यविक्रमः ॥२४॥
पश्चिमं साधुसंदेशमिच्छामि श्रोतुमात्मनः ।
इति पृष्टा यथातत्त्वं कैकेयी वाक्यमब्रवीत् ॥२५॥

अर्थ—धर्म के जानने वाले आर्य्य पुरुष का बड़ा भाई वास्तव में पितावत् ही होता है, सो मैं अपने बड़े भाई राम के चरण पकड़ुंगा, क्योंकि अब वही मेरा आश्रय है, हे आर्ये! धर्मज्ञ, धर्मशील तथा सत्यपराक्रम वाले दृढ़व्रती मेरे पिता राजा ने क्या कहा? मैं अपने लिये उस अन्तिम पवित्र सन्देश को सुनना चाहता हूं, इस प्रकार भरत के पूछने पर कैकेयी याथातथ्य=ठीक २ यह वाक्य बोली कि :—

रामेति राजा विलपन् हा सीते लक्ष्मणेति च ।
स महात्मा परं लोकं गतो मतिमतां वरः ॥ २६ ॥
इतीमां पश्चिमां वाचं व्याजहार पिता तव ।
कालधर्मं परिक्षिप्तः पाशैरिव महागजः ॥ २७ ॥

अर्थ—हे भरत! तेरे पिता हा राम!! हा सीता!! हा लक्ष्मण!! इस प्रकार विलाप करते हुए वह बुद्धिमानों में श्रेष्ठ महात्मा परलोक को गये, और कोई विशेष सन्देश नहीं कहा, हां पाशों में बन्धे हुए महागज की न्याईं कालधर्म को प्राप्त होते हुए तेरे पिता यह अन्तिम वचन बोले कि :—

सिद्धार्थास्तु नरा राममागतं सह सीतया ।
लक्ष्मणं च महाबाहुं द्रक्ष्यन्ति पुनरागतम् ॥२८॥

तच्छ्रुत्वा विषसादैव द्वितीयाप्रियशंसनात् ।
विषण्णवदनो भूत्वा भूयः पप्रच्छ मातरम् ॥२९॥

अर्थ—वह लोग कृतकृत्य होंगे जो सीता सहित राम तथा महाबाहु लक्ष्मण को फिर आया हुआ देखेंगे,जब भरत ने यह दूसरा अप्रिय सुना तब उसका मन अत्यन्त गिरगया, चेहरा मुरझागया, और फिर माता से बोला कि:—

क्व चेदानीं स धर्मात्मा कौसल्यानन्दवर्धनः ।
लक्ष्मणेन सह भ्राता सीतया च समागतः ॥३०॥
तथा पृष्टा यथान्यायमाख्यातुमुपचक्रमे ।
मातास्य युगपद्वाक्यं विप्रियं प्रियशंकया ॥३१॥

अर्थ—धर्मात्मा भ्राता राम जो कौसल्या का आनन्द बढ़ाने वाला है वह सीता तथा लक्ष्मण के साथ कहां गया है ? इस प्रकार पूछने पर उसकी माता कैकेयी भरत को ठीक २ बात प्रिय के भ्रम से अप्रिय कहने लगी कि :—

स हि राजसुतः पुत्र चीरवासा महावनम् ।
दण्डकान्सह वैदेह्या लक्ष्मणानुचरो गतः ॥३२॥

अर्थ—हे पुत्र ! वह राजपुत्र राम चीर पहन सीता और लक्ष्मण के साथ दण्डक महावन को गया है ॥

तच्छ्रुत्वा भरतस्त्रस्तो भ्रातुश्चारित्र शंकया ।
स्वस्य वंशस्य माहात्म्यात्प्रष्टुं समुपचक्रमे ॥३३॥
कच्चिन्न ब्राह्मणधनं हृतं रामेण कस्यचित् ।
कच्चिन्नाढ्यो दरिद्रो वा तेनापापो विहिंसितः ॥३४॥

कच्चिन्न परदारान्वा राजपुत्रोऽभिमन्यते ।
कस्मात्स दण्डकारण्ये भ्राता रामो विवासितः॥३५॥

अर्थ–यह सुनकर भाई के चरित्र=आचरण की शङ्का से डरा हुआ भरत अपने वंश के माहात्म्य=वंश में कोई असदाचार न आने से पूछने लगा कि क्या राम ने किसी ब्राह्मण का धन तो नहीं छीना अथवा उन्होंने किसी निरपराध धनी वा निर्धन को तो नहीं मारडाला अथवा राम ने किसी परनारी की इच्छा तो नहीं की, वह मेरा भ्राता राम दण्डक वन में किस कारण भेजा गया है ॥

एवमुक्ता तु कैकेयी भरतेन महात्मना ।
उवाच वचनं हृष्टा वृथापण्डितमानिनी ॥३६॥
न ब्राह्मणधनं किंचिद्धृतं रामेण कस्यचित् ।
कश्चिन्नाढ्यो दरिद्रो वा तेन पापो विहिंसितः॥३७॥
न रामः परदारान्स चक्षुर्भ्यामपि पश्यति ॥३८॥
मया तु पुत्र श्रुत्वैव रामस्येहाभिषेचनम् ।
याचितस्ते पिता राज्यं रामस्य च विवासनम्॥३९॥

अर्थ–महात्मा भरत ने जब इस प्रकार कहा तब अपने आपको पण्डिता मानने वाली मूढ़ कैकेयी प्रसन्न होकर बोली कि राम ने किसी ब्राह्मण का धन नहीं छीना न उसने कोई निरपराध धनी वा निर्धन मारा है, और परनारी को तो राम कभी नेत्रों से भी नहीं देखता, हे पुत्र ! राम का अभिषेक सुनकर

मैंने तेरे पिता से यह दो वर मांगे कि भरत राजा हो और राम को वनवास के लिये भेजा जाय ॥

स स्ववृत्तिं समास्थाय पिता ते तत्तथाकरोत् ।
रामस्तु सहसौमित्रिः प्रेषितः सहसीतया ॥४०॥
तमपश्यन् प्रियं पुत्रं महीपालो महायशाः ।
पुत्रशोक परिद्यूनः पंचत्वमुपपेदिवान् ॥ ४१॥

अर्थ–सो तेरे पिता ने अपने धर्म का पालन करते हुए वैसा ही किया कि राम को सीता तथा लक्ष्मण के साथ वन भेजदिया, और महायशस्वी राजा ने जब अपने प्रियपुत्र को न देखा तब वह पुत्रशोक से व्याकुल होकर पंचत्व को प्राप्त होगये ॥

त्वया त्विदानीं धर्मज्ञ राजत्वमवलम्ब्यताम् ।
त्वत्कृते हि मया सर्वमिदमेवंविधं कृतम् ॥४२॥
मा शोकं मा च संतापं धैर्यमाश्रय पुत्रक ।
त्वदधीना हि नगरी राज्यं चैतदनामयम् ॥४३॥

अर्थ–हे धर्मज्ञ ! अब तुझे राज्य का अवलम्बन करना चाहिये, मैंने तेरे अर्थ ही यह सब कुछ इस प्रकार किया है, हे पुत्रक ! तू कुछ शोक सन्ताप न करके धैर्य्य को धारण कर, यह अयोध्या नगरी और यह निरुपद्रव राज्य तेरे ही अधीन है ॥

तत्पुत्र शीघ्रं विधिनाविधिज्ञैर्वसिष्ठ मुख्यैः

सहितोद्विजेन्द्रैः। संकाल्य राजानमदीन-
सत्त्वमात्मनमुर्व्यामभिषेचयस्व ॥ ४४ ॥

अर्थ—अब तेरा कर्तव्य यह है कि हे पुत्र! कर्तव्याकर्तव्य को जानने वाले वसिष्ठादि ब्राह्मणों सहित राजा का संस्कार कर और इस उदासीनता को चित्त से पृथक् करके पृथिवी का राजा बन॥

इति पंचपंचाशः सर्गः

अथ षट्पंचाशः सर्गः

सं०—अब भरत का विलाप कथन करते हैं :—

श्रुत्वा तु पितरं वृत्तं भ्रातरौ च विवासितौ।
भरतो दुःखसंतप्त इदं वचनमब्रवीत् ॥ १ ॥

अर्थ—पिता की मृत्यु और भाइयों का वनवास सुनकर दुःख से संतप्त हुआ भरत बोला कि :—

किं नु कार्यं हतस्येह मम राज्येन शोचतः।
विहीनस्याथ पित्रा च भ्राता पितृसमेन च ॥२॥
दुःखे मे दुःखमकरोर्व्रणे क्षारमिवाददाः।
राजानं प्रेतभावस्थं कृत्वा रामं च तापसम् ॥३॥

अर्थ—मुझ मन्दभाग्य को यहां राज्य से क्या प्रयोजन जो पिता तथा पितृवत् भाई से विहीन हुआ मैं यहां शोक में पड़ा हूं, हे मात! राजा को मार और राम को तपस्वी बनाकर व्रण=

जखम पर नमक छिड़कने की भांति तैने मेरे लिये दुःख पर दुःख उत्पन्न करदिया है ॥

त्वां प्राप्य हि पिता मेऽद्य सत्यसन्धो महायशाः ।
तीव्रदुःखाभिसंतप्तो वृद्धो दशरथो नृपः ॥४॥
कौसल्या च सुमित्रा च पुत्रशोकाभिपीडिते ।
दुष्करं यदि जीवेतां प्राप्य त्वां जननीं मम ॥५॥

अर्थ–हे मात ! महायशस्वी, सत्यप्रतिज्ञ मेरा वृद्ध पिता राजा दशरथ तुझे पाकर तीव्र दुःख मे संतप्त होकर मरा है, और तुझ मेरी जननी को पाकर पुत्रशोक मे पीड़ित हुई कौसल्या तथा सुमित्रा का जीवित रहना बड़ा दुष्कर है ॥

नन्वार्योऽपि च धर्मात्मा त्वयि वृत्तिमनुत्तमाम् ।
वर्तते गुरुवृत्तिज्ञो यथा मातरि वर्तते ॥ ६ ॥
तथा ज्येष्ठो हि मे माता कौसल्या दीर्घदर्शिनी ।
त्वयि धर्मं समास्थाय भगिन्यामिव वर्तते ॥७॥

अर्थ–गुरुओं के साथ वर्ताव जानने वाला आर्य्य राम तुझसे भी तो अपनी माता के तुल्य ही उत्तम प्रकार से वर्तता था, और वैसे ही दीर्घदर्शिनी मेरी बड़ी माता कौसल्या धर्म का आश्रय किये हुए तुझसे वहिन की न्याईं वर्तती थी ॥

तस्याः पुत्रं महात्मानं चीरवल्कलवाससम् ।
प्रस्थाप्य वनवासाय कथं पापे न शोचसे ॥ ८ ॥

अपापदर्शिनं शूरं कृतात्मानं यशस्विनम् ।
प्रव्राज्य चीरवसनं किं नु पश्यसि कारणम् ॥ ९ ॥

अर्थ–हे पापे ! उसके महात्मा पुत्र को चीर और वल्कल के वस्त्र पहना वनवास के लिये भेजकर तुझे किस प्रकार शोक नहीं होता, जिसके सन्मुख कभी पाप नहीं आया अर्थात् जिसने कभी किसी की बुराई नहीं की ऐसे यशस्वी, जितेन्द्रिय तथा शूरबीर राम को चीर पहना वनवास भेजकर तू क्या लाभ देखती है ॥

लुब्धाया विदितो मन्ये न तेऽहं राघवं यथा ।
तथा ह्यनर्थो राज्यार्थं त्वया नीतो महानयम् ॥१०॥
अहं हि पुरुषव्याघ्रावपश्यन् रामलक्ष्मणौ ।
केन शक्तिप्रभावेण राज्यं रक्षितुमुत्सहे ॥ ११ ॥

अर्थ–जैसा मेरा राम के साथ हित=प्यार है वैसा तुझ लुब्धक=लोभन ने नहीं समझा, जिससे तैने राज्य के अर्थ यह बड़ा अनर्थ करडाला है, मैं पुरुष श्रेष्ठ राम लक्ष्मण को न देखकर किस शक्तिबल से राज्य की रक्षा करसकता हूं ॥

तं हि नित्यं महाराजो बलवंत महौजसम् ।
उपाश्रितोऽभूद्धर्मात्मा मेरुर्मेरुवनं यथा ॥ १२ ॥
सोहं कथमिमं भारं महाधुर्य समुद्यतम् ।
दम्योधुरमिवासाद्य सहेयं केनचौजसा ॥ १३ ॥

अर्थ–बलवान् महापराक्रमी राम की सहायता से ही महाराज नित्य राज्य की रक्षा करते तथा शोभायमान थे, जैसे सुमेरुपर्वत समीपवर्त्ती वन के आश्रय से सुशोभित होता है,सो मैं अकेला इस

राज्यभार को कैसे उठासकूंगा, जैसे बड़ी गाड़ी की धुरी को छोटा बछडा नहीं उठासक्ता ॥

अथवा मे भवेच्छक्तिर्योगैर्बुद्धिबलेन वा ।
सकामां न करिष्यामि त्वामहं पुत्रगार्धिनीम् ॥१४॥
न मे विकांक्षा जायेत त्यक्तुं त्वां पापनिश्चयाम् ।
यदि रामस्य नावेक्षा त्वयि स्यान्मातृवत्सदा॥१५॥

अर्थ–अथवा अनेक उपायों तथा बुद्धिबल से मेरी शक्ति राज्यभार उठाने की हो भी तब भी धर्म छोड़ पुत्र की लालसा वाली कैकेयी तेरी कामना पूर्ण नहीं करसकता, हे पापनिश्चय वाली यदि राम की माता के समान तुझ में सदा दृष्टि न होती तो तुझको त्यागने की मेरी इच्छा कदापि न होती ॥

उत्पन्ना तु कथं बुद्धिस्तवेयं पापदर्शिनी ।
साधुचारित्र विभ्रष्टे पूर्वेषां नो विगर्हिता ॥ १६ ॥
अस्मिन्कुले हि सर्वेषां ज्येष्ठो राज्येऽभिषिच्यते ।
अपरे भ्रातरस्तस्मिन्प्रवर्तन्ते समाहिताः ॥ १७ ॥

अर्थ–हे उत्तम चरित्र से गिरी हुई कैकेयी यह पापदर्शिनी=पाप को देखने वाली बुद्धि तुझ में कैसे उत्पन्न हुई जो हमारे पूर्वजों=बड़ों से सर्वथा निन्दित है, इस कुल में सब से बड़े भाई को राज्याभिषेक होता और दूसरे छोटे भाई उसके साथ सावधान होकर रहते हैं ॥

नाहि मन्ये नृशंसे त्वं राजधर्ममवेक्षसे ।
गतिं वा न विजानासि राजवृत्तस्य शाश्वतीम्॥१८॥

सततं राजपुत्रेषु ज्येष्ठो राज्याभिषिच्यते ।
राज्ञामेतत्समं तत्स्यादिक्ष्वाकूणां विशेषतः ॥१९॥

अर्थ—मैं नहीं जानता कि तैने कौनसा राजधर्म देखा है अथवा तू राजधर्म की निरन्तर गति ही नहीं जानती, राजपुत्रों में से सदा बड़े को राज्याभिषेक होना सब राजाओं में समान है और इसकी इक्ष्वाकुओं में विशेषता पाई जाती है अर्थात् हमारे कुल में तो अवश्य ही बड़ा भाई राज्य का स्वामी होता है ॥

तेषां धर्मैकरक्षाणां कुलचारित्रशोभिनाम् ।
अद्य चारित्रशौटीर्यं त्वां प्राप्य विनिवर्तितम् ॥२०॥
तवापि सुमहाभागा जनेन्द्रः कुलपूर्वकाः ।
बुद्धिमोहः कथमयं संभूतस्त्वयि गर्हितः ॥ २१ ॥

अर्थ—केवल धर्म की रक्षा करने वाले, कुल के चरित्र से शोभायमान इक्ष्वाकुओं का तुझको पाकर चरित्र का अभिमान टूटगया, तेरे कुल में भी बड़े २ भाग्यशाली राजा हुए हैं फिर न जाने यह निन्दित बुद्धिमोह तुझे कैसे उत्पन्न हुआ ॥

न तु कामं करिष्यामि तवाहं पापनिश्चये ।
यथा व्यसनमारब्धं जीवितान्तकरं मम ॥२२॥
एष त्विदानीमेवाहमप्रियार्थं तवानघे ।
निवर्तयिष्यामि वनाद्भ्रातरं स्वजनप्रियम् ॥२३॥
निवर्तयित्वा रामं च तस्याहं दीप्ततेजसः ।
दास भूतो भविष्यामि सुस्थितेनान्तरात्मना॥२४॥

अर्थ–हे पापनिश्चयवाली कैकेयि ! मैं तेरी कामना को कदापि पूर्ण न करूंगा जिसने मेरे जीवन का अन्त करने वाली विपत्ति सन्मुख खड़ी करदी है, मैं अभी शीघ्र जाकर अपने प्यारे निरपराध भाई को वन से लौटा लाउंगा और लौटाये हुए उस तेजस्वी राम का प्रसन्न मन से सदा दास होकर रहुंगा ॥

तां तथा गर्हयित्वा तु मातरं भरतस्तदा ।
रोषेण महताविष्टः पुनरेवाब्रवीद्वचः ॥ २५ ॥

अर्थ–भरत माता कैकेयी को इस प्रकार निन्दकर बड़े रोष से भरा हुआ फिर बोला कि :—

किं नु तेऽदूषयद्रामो राजा वा भृशधार्मिकः।
ययोर्मृत्युर्विवासश्च त्वत्कृते तुल्यमागतौ ॥२६॥
त्वत्कृते मे पिता वृत्तो रामश्चारण्यमाश्रितः ।
अयशो जीवलोके च त्वयाहं प्रतिपादितः ॥२७॥

अर्थ– हे मात ! राम और निरन्तर धार्मिक राजा ने तेरा क्या बिगाड़ा था जिनका मरण और वनवास तेरे कारण एक ही साथ हुआ, तेरे ही अर्थ मेरे पिता मृत्यु को प्राप्त हुए और राम वन को गया, तैने जीवलोक में मेरा बड़ा अपयश कराया है ॥

कौसल्यां धर्मसंयुक्तां वियुक्तां पापनिश्चये ।
कृत्वा कं प्राप्यसे ह्यद्य लोकं निरयगामिनी ॥२८॥
एकपुत्रा च साध्वी च विवत्सेयं त्वयाकृता ।
तस्मात्त्वं सततं दुःखं प्रेत्य चेह च लप्स्यसे ॥२९॥

अर्थ–हे पापनिश्चय वाली ! तू धार्मिक कौसल्या को राम से वियुक्त करके अवश्य नरकगामिनी होगी, एक पुत्रवाली पतिव्रता कौसल्या को तैने विना पुत्र के कर दिया है, इसलिये तू इस लोक और परलोक में भी अवश्य दुःख पावेगी ॥

अहं त्वपचितिं भ्रातुः पितुश्च सकलामिमाम् ।
वर्धनं यशसश्चापि करिष्यामि न संशयः ॥३०॥
आनाय्य च महाबाहुं कोशलेन्द्रं महाबलम् ।
स्वयमेव प्रवेक्ष्यामि वनं मुनिनिषेवितम् ॥ ३१ ॥
नह्यहं पापसंकल्पे पापे पापं त्वया कृतम् ।
शक्तो धारयितुं पौरैरश्रुकण्ठैर्निरीक्षितः ॥ ३२ ॥

अर्थ–और मैं तो भाई तथा पिता की पूर्ण प्रकार से पूजा=आज्ञा पालन कर उनके यश को बढ़ाउंगा इसमें संशय नहीं, कोशल देश के स्वामी महाबाहु महाबली राम को यहां लाकर राजा बनाउंगा और मैं स्वयमेव मुनियों से सेवित वन में प्रवेश करूंगा, हे पापे पापसंकल्प वाली कैकेयि ! तेरे किये हुए पाप को मैं उठा नहीं सकता, देख पुर के सब लोग बाष्प भरे कण्ठों से मेरी ओर देख रहे हैं ॥

इति नाग इवारण्ये तोमरांकुशतोदितः ।
पपात भुवि संक्रुद्धो निःश्वसन्निवपन्नगः ॥३३॥

अर्थ–जंगल में तोमर और अंकुश से पीड़ित हाथी की न्याईं दुःखित हुआ भरत अतिक्रुद्ध हो सर्प की भांति सांस लेता हुआ पृथिवी पर गिर पड़ा ॥

इति षट्पंचाशः सर्गः

अथ सप्तपंचाशः सर्गः

सं०—अब भरत कौसल्या के सन्मुख शपथ=सौगन्दें खाते हैं:—

दीर्घकालात्समुत्थाय संज्ञां लब्ध्वा स वीर्य्यवान्।
नेत्राभ्यामश्रुपूर्णाभ्यां दीनामुद्वीक्ष्य मातरम्॥१॥
सोऽमात्यमध्ये भरतो जननीमभ्यकुत्सयत्।
राज्यं न कामये जातु मन्त्रये नापि मातरम् ॥२॥

अर्थ—वह शक्तिसम्पन्न भरत बहुत काल पश्चात् उठकर होश में आये और आंसु भरे हुए नेत्रों से दीन माता की ओर देखकर मन्त्रियों के मध्य में माता को निन्दते हुए बोले कि मैंने राज्य की कभी कामना नहीं की, इसमें माता से मेरी सम्मति नहीं है॥

अभिषेकं न जानामि योऽभूद्राज्ञा समीक्षितः।
विप्रकृष्टे ह्ययं देशे शत्रुघ्नसहितोऽभवम् ॥३॥
वनवासं न जानामि रामस्याहं महात्मनः।
विवासनं च सौमित्रेः सीतायाश्च यथाभवत् ॥४॥

अर्थ—मैं शत्रुघ्न सहित दूरदेश में होने के कारण उस अभिषेक को नहीं जानता था जो राजा ने निश्चय किया था, और जिस प्रकार महात्मा राम, लक्ष्मण तथा सीता को वनवास हुआ है वह भी मैं नहीं जानता॥

तथैव क्रोशतस्तस्य भरतस्य महात्मनः।
कौसल्या शब्दमाज्ञाय सुमित्रां चेदमब्रवीत् ॥५॥

आगतः क्रूरकार्यायाः कैकेय्या भरतः सुतः।
तमहं द्रष्टुमिच्छामि भरतं दीर्घदर्शिनम् ॥६॥
एवमुक्त्वा सुमित्रां तां विवर्णवदना कृशा ।
प्रतस्थे भरतो यत्र वेपमाना विचेतना ॥७॥

अर्थ—महात्मा भरत के उक्त प्रकार चिल्लाकर कहते हुए कौसल्या उसके शब्द को सुनकर सुमित्रा से बोली कि दुष्ट कर्म वाली कैकेयी का पुत्र भरत आगया है मैं उस दीर्घदर्शी भरत को देखना चाहती हूं, सुमित्रा से इस प्रकार कहकर मुरझाये हुए मुखवाली, दुर्बल कांपती हुई व्याकुल कौसल्या ने भरत की ओर प्रस्थान किया ॥

स तु राजात्मजश्चापि शत्रुघ्नसहितस्तदा ।
प्रतस्थे भरतो येन कौसल्याया निवेशनम् ॥८॥
ततः शत्रुघ्नभरतौ कौसल्यां प्रेक्ष्य दुःखितौ ।
पर्यष्वजेतां दुःखार्तां पतितां नष्टचेतनाम् ॥९॥

अर्थ—और उधर वह राजपुत्र भरत भी शत्रुघ्न के सहित कौसल्या के घर आया, तब भरत और शत्रुघ्न कौसल्या देवी को देखकर अति दुःखित हुए और दुःख से पीड़ित व्याकुल हो भूमि पर गिरी हुई माता के दोनों गले लगे ॥

रुदन्तौ रुदती दुःखात्समेत्यार्या मनस्विनी।
भरतं प्रत्युवाचेदं कौसल्या भृशदुःखिता ॥१०॥

इदं ते राज्यकामस्य राज्यंप्राप्तमकण्टकम् ।
संप्राप्तं बत कैकेय्या शीघ्रं क्रूरेण कर्मणा ॥११॥

अर्थ—दुःख से रोती हुई उस मनास्विनी आर्या कौसल्या ने रोते हुओं को गले लगाकर अत्यन्त दुःखित हो भरत से बोली कि शोक राज्य की कामना वाले तेरे लिये यह अकण्टक राज्य कैकेयी ने बड़े क्रूर कर्म से शीघ्र ही प्राप्त किया है ॥

प्रस्थाप्य चीरवसनं पुत्रं मे वनवासिनम् ।
कैकेयी कं गुणं तत्र पश्यति क्रूरदर्शिनी ॥ १२ ॥
क्षिप्रं मामपि कैकेयी प्रस्थापयितुमर्हति ।
हिरण्यनाभो यत्रास्ते सुतो मे सुमहायशाः ॥ १३ ॥
अथवा स्वयमेवाहं सुमित्रानुचरा सुखम् ।
अग्निहोत्रं पुरस्कृत्य प्रस्थास्ये येन राघवः ॥ १४ ॥

अर्थ—मेरे पुत्र को चीर पहना वन में वास करने के लिये निकालकर न जाने क्रूरदर्शिनी कैकेयी इसमें क्या गुण देखती है, कैकेयी मुझे भी शीघ्र ही वहीं भेजने की कृपा करे जहां सुनहरी नाभिवाला, महायशस्वी मेरा पुत्र है अथवा आपही सुमित्रा के साथ अग्निहोत्र को साथ लेकर सुख से वहां जाउंगी जहां मेरा प्यारा राघव है ॥

कामं वा स्वयमेवाद्य तत्र मां नेतुमर्हसि ।
यत्रासौ पुरुषव्याघ्रस्तप्स्यते मे सुतस्ततः ॥१५॥
इदं हि तव विस्तीर्णं धनधान्यसमाचितम् ।
हस्त्यश्वरथसम्पूर्णं राज्यं निर्यातितं तया ॥ १६ ॥

एवं विलपमानां तां प्राञ्जलिर्भरतस्तदा ।
कौसल्यां प्रत्युवाचेदं शोकैर्बहुभिरावृताम् ॥१७॥

अर्थ—वा तूही मुझे वहां लेचल जहां वह पुरुषव्याघ्र मेरा पुत्र तप कर रहा है, धनधान्य से भरपूर, हाथी, घोड़े, रथादि से युक्त विस्तीर्ण राज्य कैकेयी ने तुझको दिलाया है सो भोग, इस प्रकार विलाप करती हुई, अनेक शोकों से व्याकुल घबराई हुई कौसल्या से भरत हाथ जोड़कर बोले कि :—

आर्ये कस्मादजानन्तं गर्हसे मामकल्मषम् ।
विपुलां च मम प्रीतिंस्थितां जानासि राघवे ॥१८॥
कृतशास्त्रानुगा बुद्धिर्माभूत्तस्य कदाचन ।
सत्यसन्धः सतां श्रेष्ठो यस्यार्योऽनुमते गतः॥१९॥

अर्थ—हे आर्ये ! तू राम में मेरी स्थित बड़ी दृढ़ प्रीति जानकर भी मुझ अनजान=अज्ञात निरपराध को क्यों निन्दती है, वह सत्यप्रतिज्ञ, सत्पुरुषों में श्रेष्ठ आर्य्य राम जिसकी सम्मति से वन गया है उसकी बुद्धि पठित शास्त्र के अनुसार कभी न हो ॥

प्रैष्यं पापीयसां यातु सूर्यं च प्रति मेहतु ।
हन्तुं पादेन गां सुप्तां यस्यार्योऽनुमते गतः ॥ २० ॥

अर्थ—वह पापियों की नोकरी करे, सूर्य्य की ओर मुखकर के पिशाव करे, सोई हुई गौ को पाओं से हनन करे जिसकी सम्मति से आर्य्य राम वन गया हो ॥

कारयित्वा महत्कर्म भर्त्ता भृत्यमनर्थकम् ।
अधर्मो योऽस्य सोऽस्यास्तु यस्यार्योऽनुमतेगतः॥२१॥

अर्थ—भृत्य से बड़ा कर्म कराकर अर्थात् चाकरी कराके उसको वेतन न देने से जो पाप स्वामी को होता है वह पाप उसको लगे जिसकी अनुमति से आर्य्य राम वन गया हो ॥

परिपालयमानस्य राज्ञो भूतानि पुत्रवत् ।
ततस्तुद्रुह्यतां पापं यस्यार्योऽनुमते गतः ॥२२॥

अर्थ—लोगों का पुत्रवत् पालन करते हुए राजा से द्रोह करने वालों को जो पाप होता है वह उसको हो जिसकी अनुमति से आर्य्य राम वन गया हो ॥

बलिषड्भागमुद्धृत्य नृपस्यारक्षितुः प्रजाः ।
अधर्मो योऽस्य सोऽस्यास्तु यस्यार्योऽनुमते गतः॥२३॥

अर्थ—छठाभाग कर=लगान लेकर प्रजा की रक्षा न करने वाले राजा को जो पाप होता है वह पाप उसको हो जिसकी अनुमति से आर्य्य राम वन गया हो ॥

संश्रुत्य च तपस्विभ्यः सत्रे वै यज्ञ दक्षिणाम् ।
तां चापलपतां पापं यस्यार्योऽनुमते गतः ॥ २४ ॥

अर्थ—यज्ञकर्त्ता तपस्वी ब्राह्मणों को यज्ञ के समाप्त होने पर दक्षिणा न देने वाले यजमान को जो पाप होता है वह पाप उसको हो जिसकी अनुमति से राम वन गया हो ॥

हस्त्यश्वरथसंबाधे युद्धे शस्त्र समाकुले ।
मास्म कार्षीत्सतां धर्मं यस्यार्योऽनुमते गतः ॥२५॥

अर्थ—हाथी, घोड़े, रथ और शस्त्रों से युक्त युद्ध में सन्मुख

न लड़ने वाले पुरुष को जो पाप होता है वही पाप उसको हो जिसकी अनुमति से राम वन गये हों ॥

उपदिष्टं सुसूक्ष्मार्थं शास्त्रं यत्नेन धीमता ।
स नाशयतु दुष्टात्मा यस्यार्योऽनुमते गतः ॥ २६ ॥

अर्थ—जो बुद्धिमान् सकल शास्त्रों के सूक्ष्म अर्थों को यत्न से पढ़कर भुला देता है उस दुष्टात्मा को जो पाप लगता है वही पाप उसको लगे जिसकी सम्मति से राम वन गये हों ॥

गवा स्पृशति पादेन गुरून्परिवदेत च ।
मित्रे द्रुह्येत सोऽत्यर्थं यस्यार्योऽनुमते गतः ॥ २७ ॥

अर्थ—गौ को पाओं से स्पर्श करने, माता, पिता तथा गुरु को कुवाच्य बोलने और मित्र के साथ द्रोह करने से जो पाप होता है वह पाप उसको लगे जिसकी अनुमति से राम वन गये हों ॥

विश्वासात्कथितं किंचित्परिवादं मिथः क्वचित् ।
विवृणोतु स दुष्टात्मा यस्यार्योऽनुमते गतः ॥२८॥

अर्थ—विश्वास से एकान्त में कही हुई बात को प्रगट करने वाले दुष्टात्मा को जो पाप लगता है वही पाप उसको लगे जिसकी सम्मति से राम वन गये हों ॥

अकर्त्ता चाकृतज्ञश्च त्यक्तश्च निरपत्रपः ।
लोके भवतु विद्विष्टो यस्यार्योऽनुमते गतः ॥ २९ ॥

अर्थ—स्वयं किसी पर उपकार न करनेवाला दूसरे के किये उपकार को न मानने वाला, सज्जनों से त्यागा हुआ, लज्जारहित और लोक में घृणा की दृष्टि से देखे जाने वाला जिस गति

को प्राप्त होता है वही पाप उसको लगे जिसकी सम्मति से राम वन को गये हों ॥

पुत्रैर्दासैश्च भृत्यैश्च स्वगृहे परिवारितः ।
स एको मृष्टमश्नातु यस्यार्योऽनुमते गतः ॥३०॥

अर्थ—अपने गृह में पुत्रों, दासों और अन्य सम्बन्धी जनों के होते हुए अकेले ही स्वादु अन्न खाने वाले को जो पाप लगता है वही पाप उसको लगे जिसकी अनुमति से राम वन को गया हो ॥

अप्राप्य सदृशान्दारानपत्यः प्रमीयताम् ।
अनवाप्य क्रियां धर्म्यां यस्यार्योऽनुमते गतः ॥३१॥

अर्थ—गुण कर्मानुसार सदृश स्त्री को प्राप्त होकर वह पुरुष निःसन्तान मरे और धर्मकार्य्य=यज्ञादि कर्म किये विना ही मृत्यु को प्राप्त हो जिसकी अनुमति आर्य्य राम के वन जाने में हो ॥

मात्मनः सन्ततिं द्राक्षीत्स्वेषु दारेषु दुःखितः ।
आयुःसमग्रमप्राप्य यस्यार्योऽनुमते गतः ॥३२॥

अर्थ—वह पुरुष अपनी स्त्रियों में सन्तति का मुख न देखे, सदा दुःखी रहे और अल्पायु हो जिसकी सम्मति से राम वन को गये हों ॥

राजस्त्रीबालवृद्धानां वधे यत्पापमुच्यते ।
भृत्य त्यागे च यत्पापं तत्पापं प्रतिपद्यताम् ॥३३॥

अर्थ–राजा, स्त्री, बालक और वृद्ध के वध करने में जो पाप कहाजाता है और पोष्य सम्बन्धीवर्ग के त्याग में जो पाप है उसी पाप को वह प्राप्त हो जिसकी अनुमति से राम वन गये हों ॥

लाक्षया मधुमांसेन लोहेन च विषेण च ।
सदैव बिभृयाद्भृत्यान्यस्यार्योऽनुमते गतः ॥३४॥

अर्थ–लाक्षा=लाख, मधु=मदिरा, मांस, लोह और विष बेचकर सदैव अपने कुटुम्ब का पालन करने वाले को जो पाप होता है वही पाप उसको लगे जिसकी अनुमति मे राम वन गया हो ॥

संग्रामे समुपोढे च शत्रुपक्षभयंकरे ।
पलायमानो बध्येत यस्यार्योऽनुमते गतः ॥३५॥

अर्थ–शत्रुपक्ष की ओर से भयङ्कर संग्राम उपस्थित होने पर भागते हुए प्राण त्यागने वाले को जो पाप होता है उसी पाप का वह भागी हो जिसकी अनुमति राम के वन जाने में हो ॥

कपालपाणिः पृथिवीमटतां चीरसंवृतः ।
भिक्षमाणो यथोन्मत्तो यस्यार्योऽनुमते गतः ॥३६॥

अर्थ–वह पुरुष हाथ में खप्पर ले चीर पहन दर २ मांगता हुआ उन्मत्त की न्याईं पृथिवी पर फिरे जिसकी अनुमति से राम वन गया हो ॥

मद्यप्रसक्तो भवतु स्त्रीष्वक्षेषु च नित्यशः ।
कामक्रोधाभिभूतश्च यस्यार्योऽनुमते गतः ॥३७॥

अर्थ—वह पुरुष मद्य, स्त्रियें तथा जुए में सदा आसक्त रहे और सदा ही काम क्रोध के वशीभूत रहे जिसकी अनुमति से राम वन गया हो ॥

मास्यधर्मे मनो भूयादधर्मं स निषेवताम् ।
अपात्रवर्षी भवतु यस्यार्योऽनुमते गतः ॥ ३८ ॥

अर्थ—वह पुरुष धर्म छोड़ अधर्म सेवन करने वाला हो, वह अपात्र को दान देने वाला हो, जिसकी अनुमति से राम वन गया हो ॥

उभे सन्ध्ये शयानस्य यत्पापं परिकल्प्यते ।
तच्च पापं भवेत्तस्य यस्यार्योऽनुमते गतः ॥३९॥

अर्थ—सायं प्रातः दोनों कालों की सन्ध्याओं में सोने वाले को जो पाप होता है वह पाप उसको हो जिसकी सम्मति से आर्य्यवर राम वन गया हो ॥

यदग्निदायके पापं यत्पापं गुरुतल्पगे ।
मित्रद्रोहे च यत्पापं तत्पापं प्रतिपद्यताम् ॥४०॥
देवतानां पितृणां च मातापित्रोस्तथैव च ।
मा स्म कार्षीत्स शुश्रूषां यस्यार्योऽनुमते गतः॥४१॥

अर्थ—अग्नि लगाने वाले तथा गुरुस्त्रीगामी और मित्र-द्रोही को जो पाप होता है वही पाप उसको लगे जिसकी अनुमति से राम वन गया हो, और वह देवता, पितर तथा माता पिता की सेवा न करे जिसकी सम्मति राम के वन जाने में हो ॥

सतां लोकात्सतां कीर्त्याः सज्जुष्टात्कर्मणस्तथा ।
भ्रश्यतु क्षिप्रमद्यैव यस्यार्योऽनुमते गतः ॥४२॥

अर्थ—वह सत्पुरुषों की उत्तम अवस्था, सत्पुरुषों की कीर्ति और सत्पुरुषों के सेवन करने योग्य कर्मों से भ्रष्ट हो जिसकी अनुमति से राम वन गया हो ॥

अपास्य मातृशुश्रूषामनर्थे सोऽवतिष्ठताम् ।
दीर्घबाहुर्महावक्षा यस्यार्योऽनुमते गतः ॥ ४३ ॥

अर्थ—वह माता की सेवा छोड़कर अनर्थ का सेवन करने वाला अर्थात् कुमार्गगामी हो जिसकी अनुमति से बड़ी भुजाओं तथा विशाल छाती वाले राम वन गये हों ॥

बहुभृत्यो दरिद्रश्च ज्वररोगसमन्वितः ।
समायात्सततं क्लेशं यस्यार्योऽनुमते गतः ॥४४॥

अर्थ—वह बहुत कुटुंब वाला होकर दरिद्र=निर्धन और ज्वर रोग से पीड़ित हुआ निरन्तर क्लेश को प्राप्त हो, जिसकी अनुमति से राम वन को गये हों ॥

आशामाशंसमानानां दीनानामूर्ध्वचक्षुषाम् ।
अर्थिनां वितथां कुर्याद्यस्यार्योऽनुमते गतः ॥४५॥

अर्थ—वह सदा ऊपर को नेत्र उठाये हुए दीन अर्थी पुरुषों की आशा पूर्ण करने वाला न हो जिसकी अनुमति से राम वन गये हों ॥

मायया रमतां नित्यं पुरुषः पिशुनोऽशुचिः ।
राज्ञोभीतस्त्वधर्मात्मा यस्यार्योऽनुमते गतः ॥४६॥

अर्थ—वह दुर्जन, अशुचि, राजा से भयभीत हुआ धर्मरहित होकर सदा छल कपट पूर्वक विचरे, जिसकी अनुमति राम के वन जाने में हो ॥

विप्रलुप्तप्रजातस्य दुष्कृतं ब्राह्मणस्य यत् ।
तदेतत्प्रतिपद्येत यस्यार्योऽनुमते गतः ॥ ४७ ॥

अर्थ—दुष्ट सन्तान वाले ब्राह्मण को जो पाप होता है वही पाप उसको लगे जिसकी अनुमति मे राम वन गये हों ॥

ब्राह्मणायोद्यतां पूजां विहन्तु कलुषेन्द्रियः ।
बालवत्सां च गां दोग्धुर्यस्यार्योऽनुमते गतः॥४८॥

अर्थ—ब्राह्मण के लिये तैयार कीहुई पूजा का वह मलिन इन्द्रियों वाला नाश करे और जो पाप बालबछड़े वाली गौ का सम्पूर्ण दूध दोहलेने वाले को होता है वही पाप उसको हो जिसकी राम के वन जाने में अनुमति हो ॥

धर्मदारान्परित्यज्य परदारान्निषेवताम् ।
त्यक्तधर्मरतिर्मूढो यस्यार्योऽनुमते गतः ॥ ४९ ॥

अर्थ—वह पुरुष अपनी धर्मपत्नी को त्यागकर परस्त्रीगमन करे तथा धर्म को सदा परित्याग करके रहे, जिसकी अनुमति से राम वन गये हों ॥

पानीयदूषके पापं तथैव विषदायके ।
यत्तदेकः स लभतां यस्यार्योऽनुमते गतः ॥ ५० ॥

अर्थ—पानी बिगाड़ने वाले तथा विष देने वाले को जो पाप होता है उस पाप को वही अकेला प्राप्त हो, जिसकी अनुमति से राम वन गये हों ॥

तृषार्तं सति पानीये विप्रलम्भेन योजयन् ।
यत्पापं लभते तत्स्याद्यस्यार्योऽनुमते गतः ॥ ५१ ॥

अर्थ—पानी होते हुए प्यास से आतुर को धोखा देकर न पिलाने वाले को जो पाप होता है वही पाप उसको हो जिसकी सम्मति राम के वन भेजने में हो ॥

भक्त्या विवदमानेषु मार्गमाश्रित्य पश्यतः ।
तेन पापेन युज्येत यस्यार्योऽनुमते गतः ॥ ५२ ॥

अर्थ—जो मध्यस्थ न्याय न कर एकपक्षी को पक्षपात से जिताने का यत्न करके जिस पाप से युक्त होता है वही पाप उसको लगे जिसकी अनुमति राम के वन जाने में हो ॥

एवमाश्वासयन्नेव दुःखार्तोऽनुपपात ह ।
विहीनां पतिपुत्राभ्यां कौसल्यां पार्थिवात्मजः॥५३॥

अर्थ—उक्त प्रकार शपथ खाकर विश्वास दिलाता हुआ वह राजपुत्र भरत दुःख से पीड़ित हुआ पति तथा पुत्र से हीन कौसल्या के सन्मुख गिरपड़ा ॥

तदा तं शपथैः कष्टैः शपमानमचेतनम् ।
भरतं शोकसंतप्तं कौसल्या वाक्यमब्रवीत् ॥५४॥

अर्थ—तब बड़ी कठिन शपथ खाने वाले, शोक से संतप्त तथा व्याकुल हुए भरत को कौसल्या बोली कि :—

मम दुःखमिदं पुत्र भूयः समुपजायते ।
शपथैः शपमानो हि प्राणानुपरुणत्सि मे ॥५५॥
दिष्ट्या न चलितो धर्मादात्मा ते सहलक्षणः ।
वत्स सत्यप्रतिज्ञा हि सतां लोकानवाप्स्यसि॥५६॥

अर्थ—हे पुत्र ! तेरी इन बातों से मुझे और भी अधिक दुःख होता है, क्योंकि तेरी ऐसी शपथें खाते हुए मेरे श्वास रुकते हैं, हे वत्स ! भाग्य से शुभलक्षणों वाला तेरा अन्तःकरण धर्म से विचल नहीं हुआ, सत्यप्रतिज्ञा वाला तू सत्पुरुषों की उत्तम अवस्था को प्राप्त होगा ॥

इत्युक्त्वा चांकमानीय भरतं भ्रातृवत्सलम् ।
परिष्वज्य महाबाहुं रुरोद भृशदुःखिता ॥ ५७ ॥

अर्थ—यह कहकर भ्राता राम के प्यारे महाबाहु भरत को गले लगाकर अत्यन्त दुःखित हो रोने लगी ॥

लालप्यमानस्य विचेतनस्य प्रनष्टबुद्धेः
पतितस्य भूमौ। मुहुर्मुहुर्निःश्वसतश्च
दीर्घं सा तस्य शोकेन जगाम रात्रिः॥५८॥

अर्थ—उक्त प्रकार अत्यन्त विलाप करते हुए, नष्ट बुद्धि वाले, अचेत हो भूमि पर गिरे हुए भरत को बार २ लम्बे श्वास भरते हुए वह रात्रि शोक से व्यतीत हुई ॥

इति सप्तपंचाशः सर्गः

अथ अष्टपंचाशः सर्गः

सं०—अब दशरथ के अन्त्येष्टि संस्कार का वर्णन करते हैं:—

तमेवं शोक संतप्तं भरतं कैकेयी सुतम् ।
उवाच वद तां श्रेष्ठो वसिष्ठः श्रेष्ठवागृषिः ॥ १ ॥
अलं शोकेन भद्रं ते राजपुत्र महायशः ।
प्राप्तकालं नरपतेः कुरु संयानमुत्तमम् ॥ २ ॥

अर्थ—उक्त प्रकार शोक से संतप्त कैकेयी के पुत्र भरत से बोलने वालों में श्रेष्ठ उत्तम वाणी वाले ऋषि वसिष्ठ बोले कि हे महायशस्वी राजपुत्र ! तेरा कल्याण हो, अब तू शोक छोड़कर इस समय राजा का उत्तम संयान कर अर्थात् उसको भलेप्रकार बाहर निकाल ॥

वसिष्ठस्य वचः श्रुत्वा भरतो धरणीं गतः ।
प्रेतकृत्यानि सर्वाणि कारयामास धर्मवित् ॥ ३ ॥
उद्धृत्य तैल संसेकात्स तु भूमौ निवेशितम् ।
आपीतवर्णवदनं प्रसुप्तमिव भूमिपम् ॥४॥
संवेश्य शयने चाग्र्ये नानारत्नपरिष्कृते ।
ततो दशरथं पुत्रो विललाप सुदुःखितः॥५॥

अर्थ—वसिष्ठ के उक्त वचन सुनकर भरत भूमि पर गिरपड़ा फिर सचेत होकर उस धर्मवित् भरत ने राजा के सम्पूर्ण प्रेत कर्म

कराये, तैल के कड़ाहे से निकाल कर भूमि पर रखे हुए पीत-वर्ण मुख वाले राजा ऐसे प्रतीत होते थे कि मानो गहरी नींद में सोरहे हैं, तदनन्तर राजा को नाना रत्नों से भूषित उत्तम शय्या पर लिटाकर अत्यन्त पीड़ित हुआ पुत्र विलाप करने लगा कि:—

क्व यास्यसे महाराज हित्वेमं दुःखितं जनम् ।
हीनं पुरुषसिंहेन रामेणाक्लिष्टकर्मणा ॥ ६ ॥
योगक्षेमं तु तेऽव्यग्रं कोऽस्मिन्कल्पयिता पुरे ।
त्वयि प्रयाते स्वस्तात रामे च वनमाश्रिते ॥ ७ ॥
एवं विलपमानं तं भरतं दीनमानसम् ।
अब्रवीद्वचनं भूयो वसिष्ठस्तु महामुनिः ॥ ८ ॥

अर्थ—हे महाराज शुभकर्मों वाले पुरुषश्रेष्ठ ! राम से विहीन इस दुःखित जनसमुदाय को छोड़कर कहां जाते हैं, हे महाराज ! आपके इस पुर में प्रजाओं का योगक्षेम कौन करेगा, हे तात ! आप स्वर्ग को चले और राम वन में हैं, इस प्रकार विलाप करते हुए दुःखी मन वाले भरत को महामुनि वसिष्ठ पुनः बोले कि :—

प्रेतकार्याणि यान्यस्य कर्तव्यानि विशांपतेः ।
तान्यव्यग्रं महाबाहो क्रियतामविचारितम् ॥९॥
तथेति भरतो वाक्यं वसिष्ठस्याभिपूज्य तत् ।
ऋत्विक् पुरोहिताचार्यांस्त्वरयामास सर्वशः ॥१०॥

अर्थ–हे महाबाहो ! राजा के जो प्रेतकार्य्य करने योग्य हैं उनको सावधान होकर विना विचारे कर, वसिष्ठ के इस प्रकार वाक्य सुन भरत ने " तथास्तु " कहकर ऋषि के वाक्यों का आदर करते हुए ऋत्विक्, पुरोहित और आचार्य्य को शीघ्र ही संस्कार करने की आज्ञा दी ॥

शिबिकायामथारोप्य राजानं गतचेतनम् ।
बाष्पकण्ठा विमनसस्तमूचुः परिचारकाः ॥११॥
हिरण्यं च सुवर्णं च वासांसि विविधानि च ।
प्रकिरन्तो जना मार्गे नृपतेरग्रतो ययुः ॥१२॥

अर्थ–तदनन्तर मृत राजा की शव को पालकी में रखकर बाष्प से रुके हुए कण्ठों वाले परिचारक खिन्न मन हुए राजा को उठाकर ले चले, और सोना, चांदी तथा अनेक प्रकार के वस्त्र मार्ग में राजा के आगे बिखेरते गये ॥

चन्दनागुरुनिर्यासान्सरलं पद्मकं तथा ।
देवदारूणि चाहृत्य क्षेपयन्ति तथापरे ॥ १३ ॥
गन्धानुच्चावचांश्चान्यांस्तत्र गत्वाथ भूमिपम् ।
तत्र संवेशयामासुश्चितामध्ये तमृत्विजः ॥१४॥

अर्थ–चन्दन, अगर, गुग्गल, पद्मकाष्ठ, देवदार और अनेक प्रकार के सुगन्धित पदार्थ राजा की चिता पर रखकर तदनन्तर ऋत्विजों ने राजा की शव को चिता के मध्य में रखवाया ॥

तदा हुताशनं हुत्वा जेपुस्तस्य तमृत्विजः ।
जगुश्च ते यथाशास्त्रं तत्र सामानि सामगाः ॥१५॥

शिविकाभिश्च यानैश्च यथार्हं तस्य योषितः ।
नगरान्निर्ययुस्तत्र वृद्धैः परिवृतास्तथा ॥ १६ ॥
प्रसव्यं चापि तं चक्रुर्ऋत्विजोऽग्निचितं नृपम् ।
स्त्रियश्च शोकसंतप्ता कौसल्याप्रमुखास्तदा ॥१७॥

अर्थ—तत्पश्चात् अग्नि को प्रज्वलित कर ऋत्विजों ने पैतृमेधिक मंत्रों का जप करते हुए आहुति दीं और पीछे सामगान करने वालों ने शास्त्रानुसार सामगान किया, तदनन्तर यथायोग्य पालकियों तथा यानों में वृद्धों से सुरक्षित बैठी हुई स्त्रियां बाहर निकलीं, और अग्निचयनकर्त्ता ऋत्विक् तथा शोक से संतप्त कौसल्यादि स्त्रियों ने राजा की चिता के चारो ओर परिक्रमा की॥

ततो रुदन्त्यो विवशा विलप्य च पुनः पुनः ।
यानेभ्यः सरयूतीरमवतेरुर्नृपाङ्गनाः ॥ १८ ॥

अर्थ— तदनन्तर विवश हो पुनः २ विलाप कर रोती हुई राजा की स्त्रियां यानों द्वारा सरयू के तीर पर गईं ॥

कृत्वोदकं ते भरतेन सार्धं नृपांगना मन्त्रि-
पुरोहिताश्च । पुरं प्रविश्याश्रुपरीतनेत्रा भूमौ
दशाहं व्यनयन्त दुःखम् ॥ १९ ॥

अर्थ—राजा की स्त्रियें, मन्त्री और पुरोहित ने भरत के साथ उदक कर्म करके आंसुओं से भरे हुए नेत्रों वाले उन सब ने पुर में प्रवेश कर शोकनिवारणार्थ सब सम्बन्धीवर्ग ने दशदिन तक भूमिपर ही वास करके शोक मिटाया ॥

सं०—अब राजा का अस्थिचयन तथा भस्म उठाने का वर्णन करते हैं:—

ततो दशाहेऽतिगते कृतशौचो नृपात्मजः ।
ब्राह्मणेभ्यो धनं रत्नं ददावन्नं च पुष्कलम् ॥२०॥

अर्थ—तत्पश्चात् दश दिन व्यतीत होने पर ग्यारहवें दिन शुद्ध होकर भरत ने ब्राह्मणों को धन,रत्न और पुष्कल अन्न दिया॥

ततः प्रभात समये दिवसे च त्रयोदशे ।
विललाप महाबाहुर्भरतः शोकमूर्च्छितः ॥ २१ ॥
शब्दापिहित कण्ठश्च शोधनार्थमुपागतः ।
चितामूले पितुर्वाक्यमिदमाह सुदुःखितः ॥ २२ ॥

अर्थ—पश्चात् भरत तेरहवें दिन प्रभात समय भूमि शोधन=अस्थिसिंचन तथा भस्म उठाने के लिये आया, और वह महाबाहु शोक से व्याकुल तथा शब्द से रुके हुए कण्ठवाला पिता की चिता के समीप बैठ विलाप करता हुआ असन्त पीड़ित होकर बोला कि:—

तात यस्मिन्निसृष्टोऽहं त्वया भ्रातरि राघवे ।
तस्मिन्वनं प्रव्राजिते शून्ये त्यक्तोऽस्म्यहं त्वया ॥२३॥
यस्यागतिरनाथायाः पुत्रः प्रव्राजितो वनम् ।
तामम्बां तात कौसल्यां त्यक्त्वा त्वं क्व गतो नृप ॥२४॥

अर्थ—हे तात ! आपने मुझे मेरे जिस भाई के अधीन किया था उस राघव को वन भेजकर मुझे शून्य में त्यागदिया है, हे तात ! आपने जिस अनाथा का आश्रय पुत्र वन को भेज दिया है उस माता कौसल्या को छोड़कर आप कहां चलेगये हैं॥

शत्रुघ्नश्चापि भरतं दृष्ट्वा शोकपरिप्लुतम् ।
विसंज्ञो न्यपतद्भूमौ भूमिपालमनुस्मरन् ॥ २५ ॥
उन्मत्त इव निश्चित्तो विललाप सुदुःखितः ।
स्मृत्वा पितुर्गुणांगानि तानि तानि तदा तदा॥२६॥

अर्थ–भरत को शोक से आतुर देखकर शत्रुघ्न भी राजा का स्मरण करता हुआ व्याकुल हो पृथिवी पर गिर पड़ा और उन्मत्त की न्याईं व्याकुल चित्त वाला हुआ २ पिता के उन २ गुणों का स्मरण करके अत्यन्त दुःखित हो विलाप करने लगा ॥

तयोर्विलपितं श्रुत्वा व्यसनं चाप्यवेक्ष्य तत् ।
भृशमार्ततरा भूयः सर्व एवानुगामिनः ॥ २७ ॥
ततः प्रकृतिमान्वैद्यः पितुरेषां पुरोहितः ।
वसिष्ठो भरतं वाक्यमुत्थाप्य तमुवाच ह ॥ २८ ॥

अर्थ–उन दोनों का विलाप सुनकर और इस व्यसन=विपत्ति को देखकर सब साथी पुनः अति दुःखित हुए, तब प्रकृति में स्थित=शोकरूप विकार से रहित, सब व्यवहार के ज्ञाता, दशरथ के पुरोहित वसिष्ठ भरत को उठाकर बोले कि :—

त्रयोदशोऽयं दिवसः पितुर्वृत्तस्य ते विभो ।
सावशेषास्थिनिचये किमिह त्वं विलम्बसे ॥२९॥
त्रीणि द्वन्द्वानि भूतेषु प्रवृत्तान्यविशेषतः ।
तेषु चापरिहार्येषु नैवं भवितुमर्हसि ॥ ३० ॥

अर्थ—हे तात! तेरे पिता का दाह किये हुए आज यह तेरहवां दिन है, अस्थिसञ्चयन कर्म अभी सब शेष है सो तुम विलम्ब न करो, तीन द्वन्द्व=सुख दुःख, हानि लाभ और जन्म मरण सब जीवों में समान प्रवृत्त होते हैं, यह निश्चित सिद्धान्त है, सो तुमको इनमें विशेषता से व्याकुल नहीं होना चाहिये ॥

सुमन्त्रश्चापि शत्रुघ्नमुत्थाप्याभिप्रसाद्य च ।
श्रावयामास तत्त्वज्ञः सर्वभूतभवाभवौ ॥ ३१ ॥
उत्थितौ तौ नरव्याघ्रौ प्रकाशेते यशस्विनौ ।
वर्षातपपरिग्लानौ पृथगिन्द्रध्वजाविव ॥ ३२ ॥
अश्रूणिपरिमृद्नन्तौ रक्ताक्षौ दीनभाषिणौ ।
अमात्यास्त्वरयन्तिस्म तनयौ चापराः क्रियाः॥३३॥

अर्थ—इसी प्रकार सुमन्त्र ने शत्रुघ्न को उठाकर शोक दूर करके सब जीवों की उत्पत्ति विनाश का विषय उसको भलेप्रकार श्रवण कराया, फिर वह उठे हुए दोनों यशस्वी नरश्रेष्ठ वर्षा और धूप से मलिन हुई पृथक् २ दो इन्द्रध्वजों की भांति प्रतीत होते थे, तदनन्तर आंसु पोंछते हुए, लालनेत्रों वाले तथा दीन बोलने वाले उन दोनों पुत्रों से कर्मकर्त्ता मन्त्री आदिकों ने अस्थि-चयनादि शीघ्र ही कराया ॥

वसिष्ठ का भरत को उपदेश

तात हृदय धीरज धरहु, करहु जो अवसर आज ॥
उठे भरत गुरु वचन सुनि, करन कहेउ सब काज॥
नृप तनु वेदविहित अन्हवावा । परम विचित्र विमान बनावा ॥
चन्दन अगर भार बहु आये । अमित अनेक सुगन्ध सुहाये ॥

सरयूतट रचि चिता बनाई । जनु सुरपुर सोपान सुहाई ॥
याविधि दाहक्रिया कर लोगू । उदककर्म कर भये वियोगू ॥
जहं जस मुनिवर आयसु दीन्हा । तहं तस सहस भांति सब कीन्हा ॥

सिंहासन भूषण बसन, अन्न धरणि धन धाम ॥
दिये भरत लहि भूमिसुर, भे परिपूर्ण काम ॥

पितुहित भरत कीन्ह जस करणी । सो मुख लाख जाइ नहिं बरणी ॥
सुदिन शोधि मुनिवर तहं आये । सकल महाजन सचिव बुलाये ॥
बैठे राजसभा सब जाई । पठये बोलि भरत दोउ भाई ॥
भरत वसिष्ठ निकट बैठारे । नीति धर्ममय वचन उचारे ॥

सुनहु भरत भावी प्रबल, विलखि कहेउ मुनिनाथ ॥
हानि लाभ जीवन मरण, यश अपयश विधि हाथ ॥

अस विचारि केहि दीजिय दोषू । व्यर्थ काहि पर कीजिय रोषू ॥
तात विचार करहु मन माहीं । शोचयोग दशरथ नृप नाहीं ॥
शोचिय विप्र जो वेद विहीना । तजि निजधर्म विषय लयलीना ॥
शोचिय नृपहि जो नीति न जाना । जेहि न प्रजा प्रिय प्राणसमाना ॥
शोचिय वैश्य कृपण धनवानू । जो न अतिथि हरिभक्ति सुजानू ॥
शोचिय शूद्र विप्र अपमानी । मुखर मानप्रिय ज्ञानगुमानी ॥
शोचिय पुनि पतिवंचक नारी । कुटिल कलहप्रिय इच्छाचारी ॥
शोचिय बटु निजव्रत परिहरई । जो नहिं गुरु आयसु अनुसरई ॥

शोचिय गृही जो मोहवश, करे धर्मपथ त्याग ॥
शोचिय यती प्रपंच रत, विगत विवेक विराग ॥

वैखानस सोई शोचन योगू । तप विहाय जेहि भावे भोगू ॥
शोचिय पिशुन अकारण क्रोधी । जननि जनक गुरु बन्धु विरोधी ॥
सबविधि शोचिय पर अपकारी । निजतनुपोषक निर्दय भारी ॥
शोचिय लोभनिरत रत कामी । सुर श्रुति निन्दक परधन स्वामी ॥
शोचनीय सबही विधि सोई । जो न छांडि छल हरिजन होई ॥
शोचनीय नहिं कोशलराऊ । भुवन चारिदश प्रकट प्रभाऊ ॥
सब प्रकार भूपति बड़भागी । वाद विषाद करिय तेहि लागी ॥

अनुचित उचित विचार तजि, जे पालहिं पितु बैन ॥
ते भाजन सुख सुयश के, बसहिं अमरपति ऐन ॥

इति अष्टपंचाशः सर्गः

अथ एकोनषष्टितमः सर्गः

सं०—अब भरत का राम को लौटाने का निश्चय कथन करते हैं:—

ततः प्रभातसमये दिवसेऽथ चतुर्दशे ।
समेत्य राजकर्त्तारो भरतं वाक्यमब्रुवन् ॥ १ ॥
गतो दशरथः स्वर्गं यो नो गुरुतरो गुरुः ।
रामं प्रव्राज्य वै श्रेष्ठं लक्ष्मणं च महाबलम् ॥ २ ॥

अर्थ—इसके अनन्तर चौदहवें दिन प्रभात समय सब राजकर्मचारी मिलकर भरत से बोले कि महाराज दशरथ जो हमारे माननीय बड़े थे वह ज्येष्ठ पुत्र राम और महाबली लक्ष्मण को वन भेजकर स्वर्ग को चलेगये, इसलिये उचित्त है कि:—

त्वमद्य भव नो राजा राजपुत्र महायशः ।
संगत्यानापराध्नोति राज्यमेतदनायकम् ॥३॥
आभिषेचनिकं सर्वमिदमादाय राघव ।
प्रतीक्षते त्वां स्वजनः श्रेणयश्च नृपात्मज ॥४॥

अर्थ-हे महायशस्वी राजपुत्र ! अब आप हमारे राजा हों, क्योंकि यह बिना स्वामी का राज्य तुम्हें प्राप्त होने से अपवाद का कारण नहीं, हे राजपुत्र भरत ! हम सब मन्त्री आदि तेरे जन और पुर के लोग अभिषेक की सामग्री लेकर आपकी प्रतीक्षा में हैं॥

आभिषेचनिकं भाण्डं कृत्वा सर्वं प्रदक्षिणम् ।
भरतस्तं जनं सर्वं प्रत्युवाच धृतव्रतः ॥५॥
ज्येष्ठस्य राजता नित्यमुचिता हि कुलस्य नः ।
नैवं भवन्तो मां वक्तुमर्हन्ति कुशला जनाः ॥६॥

अर्थ-अभिषेक के पात्रों की प्रदक्षिणा करके व्रतधारी भरत उन सब लोगों से बोले कि हमारे कुल में सदा से बड़े भाई का राजा होना चला आया है जिसको आप लोग भी भले प्रकार जानेत हैं, इसलिये आप मुझे ऐसा कहने योग्य नहीं कि तू राजा बन ॥

रामः पूर्वो हि नो भ्राता भविष्यति महीपतिः ।
अहं त्वरण्ये वत्स्यामि वर्षाणि नव पंच च ॥७॥
युज्यतां महती सेना चतुरंगमहाबला ।
आनयिष्याम्यहं ज्येष्ठं भ्रातरं राघवं वनात् ॥८॥

अर्थ-मेरा बड़ा भाई राम ही पृथिवी का पति=राजा होगा, और मैं राम का प्रतिनिधि होकर चौदहवर्ष वन में रहूंगा, चतुरङ्ग=चार अङ्गों वाली बड़ी सेना को तैयार करो मैं शीघ्र ही वहां जाकर अपने बड़े भाई राम को वन से लाउंगा ॥

आभिषेचनिकं चैव सर्वमेतदुपस्कृतम् ।
पुरस्कृत्य गमिष्यामि रामहेतोर्वनं प्रति ॥९॥
तत्रैव तं नरव्याघ्रमभिषिच्य पुरस्कृतम् ।
आनयिष्यामि वै रामं हव्यवाहमिवाध्वरात् ॥१०॥

अर्थ—यह अभिषेक का सब सामान जो विधिपूर्वक रखा है इसको आगे करके राम के हेतु वन को जाउंगा, और वहीं उस नरश्रेष्ठ का अभिषेक करके उनको आदरपूर्वक यहां लाउंगा, जैसे यज्ञशाला से पूज्य अग्नि लाई जाती है ॥

क्रियतां शिल्पिभिः पन्थाः समानि विषमाणि च ।
रक्षिणश्चानुसंयान्तु पथि दुर्गविचारकाः ॥ ११॥
एवं संभाषमाणं तं रामहेतोर्नृपात्मजम् ।
प्रत्युवाच जनः सर्वः श्रीमद्वाक्यमनुत्तमम् ॥१२॥
एवं ते भाषमाणस्य पद्मा श्रीरुपतिष्ठताम् ।
यस्त्वं ज्येष्ठे नृपसुते पृथिवीं दातुमिच्छसि ॥१३॥

अर्थ—शिल्पी लोग ऊंचे नीचे स्थानों को सम करके मार्ग बनावें, और कठिन बिखड़े हुए स्थानों के जानकार लोग रक्षक बनकर हमारे साथ चलें, राम के हेतु भरत का इस प्रकार विचार सुनकर सब लोग राजपुत्र को यह कल्याणप्रद उत्तम वाक्य बोले कि धन्य हो! इस प्रकार भाषण करते हुए आपको सब प्रकार का ऐश्वर्य्य प्राप्त हो जो आप बड़े राजपुत्र को इस पृथिवी का राज्य देना चाहते हैं ॥

अनुत्तमं तद्वचनं नृपात्मजाः प्रभाषितं संश्र-
वणे निशम्य च । प्रहर्षजास्तं प्रति बाष्पबि-
न्दवो निपेतुरार्याननेत्र संभवाः ॥ १४ ॥

अर्थ—राजपुत्र भरत का राम के लाने विषयक सर्वोत्तम विचार सुनकर परमहर्ष से सब के रोमांच खड़े होगये और सब आर्य्यजनों के नेत्रों से आंसुओं की बूंदें निकलकर उनके मुखों पर आ गिरीं ॥

सं०—अब मार्ग बनाने वालों का जाना कथन करते हैं :—

अथ भूमिप्रदेशज्ञाः सूत्रकर्मविशारदाः ।
स्वकर्माभिरताः शूराः खनका यन्त्रकास्तथा॥१५॥
कर्मान्तिकाः स्थपतयः पुरुषा यन्त्रकोविदाः ।
तथा वर्धकयश्चैव मार्गिणो वृक्षतक्षकाः ॥१६॥
सूपकारासुधाकारावंशचर्मकृतस्तथा ।
समर्था ये च द्रष्टारः पुरतश्च प्रतस्थिरे ॥ १७ ॥

अर्थ—इसके अनन्तर भरत ने आज्ञा दी कि भूमिप्रदेशों के जानने वाले, सूत्रकर्म=मापकर बनाने में चतुर, खोदने वाले शूरबीर तथा यन्त्र=पुल आदि बनाने वाले, मज़दूर, स्थपति=इञ्जिनियर लोग जो सब प्रकार के यन्त्र बनाने में विशारद, बढ़ई, मार्ग बनाने वाले, वृक्षों के काटने वाले, रसोइया, चूना बनाने वाले, बांस तथा चमड़े का काम करने वाले और इन सब कामों के देखने में समर्थ, यह सब आगे चलें ॥

ते स्वभारं समास्थाय वर्त्मकर्मणि कोविदाः ।
कारणैर्विविधोपेतैः पुरस्तात्संप्रतस्थिरे ॥ १८ ॥

अर्थ—भरत की आज्ञा पाते ही मार्ग को सीधा करने में निपुण कारीगरों ने अपने सब प्रकार के साधन लेकर अपने २ समूह में मिल आगे प्रस्थान किया ॥

लता बल्ली गुल्माश्च स्थाणूनश्मन एव च ।
जनास्ते चक्रिरे मार्गं छिन्दन्तो विविधान्द्रुमान् ॥१९॥
बबन्धुर्बन्धनीयांश्च क्षोद्यान्संचुक्षुदुस्तथा ।
बिभिदुर्भेदनीयांश्च तांस्तान्देशान्नरास्तदा ॥२०॥

अर्थ—और वह लता, बेलें, छोटे वृक्ष, स्थाणु=ठूंठ, पत्थर आदि विविधवृक्षों को काट २ कर मार्ग बनाते हुए तथा पुल बांधने योग्य स्थानों में पुल बांधते हुए और समचौरस कर कूट पीस के मार्ग को साफ करते हुए आगे गये ॥

अचिरेण तु कालेन परिवाहान्बहूदकान् ।
चक्रुर्बहुविधाकारान्सागरप्रतिमान्बहून् ॥२१॥
निर्जलेषु च देशेषु खानयामासुरुत्तमान् ।
उदपानान्बहुविधान् वेदिकापरिमण्डितान् ॥२२॥

अर्थ—जिन नदियों की कई धारें थीं उनके जल की बड़ी एकधार करके मार्ग बनाया, और निर्जल देशों में अनेक प्रकार के शोभायमान कूप,बावड़ी आदि जलाशय खुदवाकर बना दिये ॥

स सुधाकुट्टिमतलः प्रपुष्पितमहीरुहः ।
मत्तोद्घुष्टद्विजगणः पताकाभिरलंकृतः ॥२३॥

चन्दनोदकसंसिक्तो नानाकुसुमभूषितः ।
वह्वशोभत सेनायाः पन्थाः सुरपथोपमः ॥ २४ ॥

अर्थ—सेना के मार्ग में ठहरने के स्थानों पर चूने आदि का फर्श करके नाना पुष्पों से शोभित मत्त पक्षियों की गूंजवाले शोभायमान स्थानों पर झण्डियें लगादीं, और चन्दन के जल से छिड़काव कराके नानाप्रकार के पुष्पों से सुशोभित कर सेना का मार्ग देवपथ के तुल्य बहुत शोभायमान बनाया ॥

आज्ञाप्याथ यथाज्ञप्ति युक्तास्तेऽधिकृता नराः ।
रमणीयेषु देशेषु बहुस्वादु फलेषु च ॥ २५ ॥
यो निवेशस्त्वभिप्रेतो भरतस्य महात्मनः ।
भूयस्तं शोभयामासुर्भूषाभिर्भूषणोपमम् ॥ २६ ॥

अर्थ—इसके अनन्तर छावनियों के अधिकार प्राप्त लोगों ने दूसरों को आज्ञा देकर बहुत स्वादु फलों वाले रमणीय देशों में जैसी भरत को अभिमत थीं वैसी ही शोभायमान भूषण के तुल्य सजाकर छावनीं बनाईं ॥

स चन्द्रतारागणमण्डितं यथा नभः क्षपाया-
ममलं विराजते । नरेन्द्र मार्गः स तदाऽव्यरा-
जत क्रमेण रम्यः शुभशिल्पिनिर्मितः ॥२७॥

अर्थ—जिस प्रकार रात्रि में चन्द्र तथा तारागणों से भूषित निर्मल आकाश शोभायमान होता है इसी प्रकार उत्तम शिल्पियों से बनाया हुआ राजमार्ग देदीप्यमान प्रतीत होता था ॥

इति एकोनषष्टितमः सर्गः

अथ षष्टितमः सर्गः

सं०—अब भरत की यात्रा का वर्णन करते हैं :—

ततः समुत्थितः कल्यमास्थाय स्यन्दनोत्तमम् ।
प्रययौ भरतः शीघ्रं रामदर्शनकाम्यया ॥ १ ॥
अग्रतः प्रययुस्तस्य सर्वे मन्त्रिपुरोहिताः ॥ २ ॥

अर्थ—तत्पश्चात् भरत प्रातःकाल उठकर उत्तम रथ पर सवार हो राम के दर्शन की कामना से शीघ्र ही वन की ओर चले, और उनके आगे २ सब मन्त्री तथा पुरोहित उत्तम घोड़ों युक्त रथों पर सवार होकर गये ॥

कैकेयी च सुमित्रा च कौसल्या च यशस्विनी ।
रामानयनसंतुष्टा ययुर्यानेन भास्वता ॥३॥
प्रयाताश्चार्य्यसंघाता रामं द्रष्टुं सलक्ष्मणम् ।
तस्यैव च कथाश्चित्राः कुर्वाणा हृष्टमानसाः ॥४॥

अर्थ—कैकेयी, सुमित्रा तथा यशस्विनी कौसल्या प्रसन्न हुई राम को लेने के लिये सुन्दर यानों द्वारा गईं, और लक्ष्मण सहित राम के दर्शनार्थ आर्य्य समुदाय प्रसन्न मन हो उन्हीं की विचित्र कथायें कहते हुए गये ॥

ते गत्वा दूरमध्वानं रथयानाश्व कुञ्जरैः ।
समासेदुस्ततो गंगां शृंगवेरपुरं प्रति ॥५॥

यत्र रामसखा वीरो गुहो ज्ञातिगणैर्वृतः ।
निवसत्यप्रमादेन देशं तं परिपालयन् ॥ ६ ॥

अर्थ—वह सब रथ, यान, घोड़े और हाथियों पर सवार हुए दूर मार्ग जाकर श्रृंगवेरपुर में गङ्गा पर पहुंचे, जहां राम का सखा वीर गुह अपने बान्धवों सहित प्रमादरहित होकर अपने देश को पालता हुआ निवास करता था ॥

उपेत्य तीरं गंगायाश्चक्रवाकैरलंकृतम् ।
व्यवतिष्ठत सा सेना भरतस्यानुयायिनी ॥ ७ ॥
निरीक्ष्यानुत्थितां सेनां तां च गंगां शिवोदकाम् ।
भरतः सचिवान्सर्वानब्रवीद्वाक्यकोविदः ॥ ८ ॥
निवेशयत मे सैन्यमभिप्रायेणसर्वतः ।
विश्रान्ताः प्रतरिष्यामः श्वः इमां सागरं गमाम्॥९॥

अर्थ—चकवों से सुशोभित गङ्गातट को प्राप्त होकर भरत की अनुयायिनी सेना मर्यादापूर्वक स्थित होगई, उत्तम जल वाली गङ्गा पर उस सेना को उतरी हुई देखकर वाक्य के जानने वाले भरत सब मन्त्रियों से बोले कि आज सब सेना को यहीं ठहराओ प्रातःकाल समुद्रगामिनी गङ्गा से पार उतरेंगे ॥

ततो निविष्टां ध्वजिनीं गंगामन्वाश्रितां नदीम् ।
निषादराजो दृष्ट्वैव ज्ञातीन्स परितोऽब्रवीत् ॥१०॥
भर्ता चैव सखा चैव रामो दाशरथिर्मम ।
तस्यार्थकामाः संनद्धा गंगांनूपेऽत्र तिष्ठत ॥११॥

अर्थ—तत्पश्चात गङ्गा नदी पर छावनी डालकर पड़ी सेना

को देख निषादराज गुह अपने सम्बन्धियों से बोला कि दशरथ का पुत्र राम मेरा स्वामी तथा सखा है उसके हितार्थ तुम तैयार होकर गङ्गा के बेले में यहां छिपे रहो ॥

नावां शतानां पञ्चानां कैवर्तानां शतं शतम् ।
संनद्धानां तथा यूनां तिष्ठन्त्वित्यभ्यचोदयत् ॥१२॥
यदि तुष्टस्तु भरतो रामस्येह भविष्यति ।
इयं स्वस्तिमती सेना गंगामद्य तरिष्यति ॥१३॥

अर्थ—और फिर उनको प्रेरणा की कि पांचसौ नौकाओं में सौ २ बीर भील अस्त्र शस्त्र से तैयार होकर स्थित रहें, यदि भरत राम के विषय में शुद्ध हृदय होगा तो उसकी यह सेना कल्याण से गङ्गा पार उतर जायगी, नहीं तो सब सेना का यहीं हनन करेंगे ॥

अभिचक्राम भरतं निषादाधिपतिर्गुहः ।
तमायांतं तु संप्रेक्ष्य सूतपुत्रः प्रतापवान् ।
भरतायाचचक्षेऽथ समयज्ञो विनीतवत् ॥ १४ ॥
एष ज्ञातिसहस्रेण स्थपतिः परिवारितः ।
कुशलो दण्डकारण्ये वृद्धो भ्रातुश्च ते सखा ॥१५॥
तस्मात्पश्यतु काकुत्स्थ त्वां निषादाधिपो गुहः ।
अशंसयं विजानीते यत्र तौ रामलक्ष्मणौ ॥ १६ ॥

अर्थ—इसके अनन्तर निषादों का अधिपति गुह भरत से मिलने के लिये गया, गुह को आता देखकर देशकालज्ञ=देश काल को जानने वाले सुमन्त्र ने विनयपूर्वक भरत से कहा कि

यह बहुत सम्बन्धियों वाला निषादपति=भीलों का राजा, दण्डक वन को भलेप्रकार जानने वाला वृद्ध आपके भाई राम का सखा है, हे राघव ! यह भीलों का अधिपति गुह आपके दर्शनार्थ यहां आया है और यह जहां राम लक्ष्मण हैं उस स्थान को निःसन्देह जानता है ॥

एतत्तु वचनं श्रुत्वा सुमन्त्राद्भरतः शुभम् ।
उवाच वचनं शीघ्रं गुहः पश्यतु मामिति ॥१७॥
लब्ध्वानुज्ञां संप्रहृष्टो ज्ञातिभिः परिवारितः ।
आगम्य भरतं प्रह्वो गुहो वचनमब्रवीत् ॥१८॥

अर्थ–सुमन्त्र के उक्त प्रकार कथन करने पर भरत सुमन्त्र से यह शुभ वचन बोले कि आप गुह को मुझसे शीघ्र मिलावें, तब भरत की आज्ञानुसार सम्बन्धियों सहित प्रसन्न हुआ गुह उनके समीप आकर झुक करके भरत से बोला कि :—

निष्कुटश्चैव देशोऽयं वञ्चिताश्चापि ते वयम् ।
निवेदयाम ते सर्वं स्वके दाशगृहे वस ॥ १९ ॥
आशंसे स्वाशिता सेना वत्स्यत्येनां विभावरीम् ।
अर्चितो विविधैःकामैःश्वःससैन्यो गमिष्यसि॥२०॥

अर्थ–यह उत्तम देश घर के बाग की न्याईं सुरक्षित आपकी भेट है, आप अपने इस दासगृह में निवास करें, और प्रार्थना यह है कि आपकी थकी हुई सेना भोजन करके आज रात्रिभर यहीं निवास करे और अनेक कामनाओं से पूजित हुए आप कल सेना समेत जायं ॥

इति षष्ठितमः सर्गः

अथ एकषष्ठितमः सर्गः

सं०–अब भरत और गुह का वार्त्तालाप कथन करते हैं :—

एवमुक्तस्तु भरतो निषादाधिपतिं गुहम् ।
प्रत्युवाच महाप्राज्ञो वाक्यं हेत्वर्थसंहितम् ॥१॥
ऊर्जितः खलु ते कामः कृतो मम गुरोः सखे ।
यो मे त्वमीदृशीं सेनामभ्यर्चयितुमिच्छसि ॥ २ ॥

अर्थ–गुह के उक्त प्रकार कथन करने पर महाप्राज्ञ भरत गुह से युक्ति युक्त वचन बोला कि हे मेरे बड़े भाई के मित्र गुह ! जो आप मेरी इतनी बड़ी सेना का सत्कार करना चाहते हैं, इससे ही आपने अपनी उदार कामना को पूर्ण किया है अर्थात् आपने हम से इतना वाक्य कहकर जो अपना प्रेम दर्शाया है उसीसे हम सत्कृत्य हुए बड़े प्रसन्न हैं ॥

इत्युक्त्वा स महातेजा गुहं वचनमुत्तमम् ।
अब्रवीद्भरतः श्रीमान्पन्थानं दर्शयन्पुनः ॥३॥
कतरेण गमिष्यामि भरद्वाजाश्रमं पथा ।
गहनोऽयं भृशं देशो गंगानूपो दुरत्ययः ॥४॥

अर्थ–वह तेजस्वी श्रीमान् भरत गुह से उक्त प्रकार कहकर फिर आगे जाने वाले मार्ग की ओर अंगुली निर्देश करके पूछने लगे कि हम किस मार्ग से भरद्वाज के आश्रम को जायंगे ? क्योंकि गंगातट के इस अत्यन्त सघन देश से पार होना कठिन है ॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा राजपुत्रस्य धीमतः ।
अब्रवीत्प्राञ्जलिर्भूत्वा गुहोगहनगोचरः ॥ ५ ॥
दाशास्त्वनुगमिष्यन्ति देशज्ञाः सुसमाहिताः ।
अहं चानुगमिष्यामि राजपुत्र महाबल ॥६॥
कच्चिन्न दुष्टो व्रजसि रामस्याक्लिष्ट कर्मणः ।
इयं ते महती सेना शङ्कां जनयतीव मे ॥७॥

अर्थ—बुद्धिमान् राजपुत्र भरत के उक्त वचन सुनकर वन के जानने वाला गुह हाथ जोड़कर बोला कि हे महाबली राजपुत्र! इस देश को जानने वाले भील सावधान होकर आपके साथ जायेंगे और मैं भी साथ चलुंगा, परन्तु आपकी इस बड़ी सेना को देखकर मुझको यह सन्देह उत्पन्न होता है कि आप शुभ कर्मों वाले राम की ओर कुछ अनिष्ट सोचकर तो नहीं जाते ? ॥

तमेवमभिभाषन्तमाकाश इव निर्मलः ।
भरतः श्लक्ष्णया वाचा गुहं बचनमब्रवीत् ॥८॥
मा भूत्स कालो यत्कष्टं न मां शंकितुमर्हसि ।
राघवः स हि मे भ्राता ज्येष्ठः पितृसमो मतः ॥९॥
तं निवर्तयितुं यामि काकुत्स्थं वनवासिनम् ।
बुद्धिरन्या न मे कार्य्या गुह सत्यं ब्रवीमि ते॥१०॥

अर्थ—गुह के उक्त कथन करने पर आकाश की भांति निर्मल हृदय वाला भरत स्पष्टतया यह वचन बोला कि हा कष्ट वह समय न आवे, मुझे आप कदापि शंका की दृष्टि से न देखें, वह मेरा

ज्येष्ठ भ्राता राम मेरे पिता के तुल्य है, हे गुह ! मैं तुम्हें सत्य कहता हूं कि मैं उस वनवासी राम को लौटाने के लिये जारहा हूं आपको मेरे विषय में और बुद्धि नहीं करनी चाहिये ॥

स तु संहृष्टवदनः श्रुत्वा भरतभाषितम् ।
पुनरेवाब्रवीद्वाक्यं भरतं प्रति हर्षितः ॥ ११ ॥
धन्यस्त्वं न त्वया तुल्यं पश्यामि जगती तले ।
अयत्नादागतं राज्यं यस्त्वं त्यक्तुमिहेच्छसि ॥१२॥

अर्थ–भरत के वचन सुनकर गुह अति प्रसन्न हुआ और बड़े हर्ष से पुनः बोला कि हे भरत ! आप धन्य हैं, आपके तुल्य पृथिवी पर मैं कोई जन नहीं देखता जो आप विना प्रयत्न से मिले हुए इतने विस्तृत राज्य को त्यागना चाहते हैं ॥

शाश्वती खलु ते कीर्तिर्लोकाननुचरिष्यति ।
यस्त्वं कृच्छ्रगतं रामं प्रत्यानयितुमिच्छसि ॥ १३ ॥
एवं संभाषमाणस्य गुहस्य भरतं तदा ।
वभौ नष्टप्रभः सूर्यो रजनी चाभ्यवर्तत ॥ १४ ॥

अर्थ–आपकी कीर्ति लोक में सदा स्थिर रहेगी जो आप अनेक कष्ट उठाकर फिर राम के लाने की इच्छा करते हैं, गुह और भरत का उक्त प्रकार संभाषण होते २ सूर्य्य अस्त होकर रात्रि आगई ॥

सं०–अब गुह भरत से लक्ष्मण के भ्रातृप्रेम का वर्णन करते हैं:–

आचचक्षेऽथ सद्भावं लक्ष्मणस्य महात्मनः ।
भरतायाप्रमेयाय गुहो गहनगोचरः ॥ १५ ॥

तं जाग्रतं गुणैर्युक्तं वरचापेषुधारिणम् ।
भ्रातृगुप्त्यर्थमत्यन्तमहं लक्ष्मणमब्रवम् ॥ १६ ॥

अर्थ—इसके अनन्तर वन के जानने वाले गुह ने उदारचित्त भरत से महात्मा लक्ष्मण का सद्भाव कथन किया कि वह गुणवान् लक्ष्मण जब अपने भाई राम की रक्षार्थ उत्तम धनुषबाण लेकर जागरहे थे तब मैंने उनसे कहा कि :—

इयं तात सुखा शय्या त्वदर्थमुपकल्पिता ।
प्रत्याश्वसिहि शेष्वास्यां सुखं राघवनन्दन ॥१७॥
उचितोऽयं जनः सर्वो दुःखानां त्वं सुखोचितः ।
धर्मात्मंस्तस्य गुप्त्यर्थं जागरिष्यामहे वयम् ॥१८॥

अर्थ—हे तात ! यह सुखशय्या आपके लिये तैयार है, आप निश्चिन्त होकर इस पर आराम करें, हे धर्मात्मन् ! हम सब दुःखों का अभ्यास किये हुए हैं और आप सुख के योग्य हैं, आप शयन करें और हम लोग राम की रक्षार्थ जागेंगे ॥

नहि रामात्प्रियतरो ममास्ति भुवि कश्चन ।
अस्य प्रसादादाशंसे लोकेऽस्मिन्सुमहद्यशः ॥१९॥
सोऽहं प्रियसखं रामं शयानं सह सीतया ।
रक्षिष्यामि धनुष्पाणिः सर्वैःस्वैर्ज्ञातिभिःसह॥२०॥

अर्थ—राम से बढ़कर मुझे पृथिवी में कोई प्यारा नहीं, राम की ही कृपा से मैं इस लोक में बहुत बड़े यश की आशा रखता हूं, अतएव सीता सहित सोये हुए अपने प्रिय सखा राम की मैं धनुष हाथ में लेकर अपने सब बान्धवों सहित रक्षा करूंगा ॥

नहि मेऽविदितं किंचिद्वनेऽस्मिंश्चरतःसदा ।
चतुरंगं ह्यपि बलं प्रसहेम वयं युधि ॥ २१ ॥
एवमस्माभिरुक्तेन लक्ष्मणेन महात्मना ।
अनुनीता वयं सर्वे धर्ममेवानुपश्यता ॥ २२ ॥

अर्थ—इस वन में सदा विचरते हुए मुझे सब कुछ विदित होने से चतुरङ्ग सेना को भी युद्ध में जीतसक्ता हूं, इस प्रकार मेरे कथन करने पर महात्मा लक्ष्मण ने धर्म पर ही दृष्टि रखते हुए हम सब को आश्वासन दिया कि :—

कथं दाशरथौ भूमौ शयाने सह सीतया ।
शक्या निद्रा मया लब्धुं जीवितानि सुखानि वा॥२३
यो न देवासुरैः सर्वैः शक्यः प्रसहितुं युधि ।
तं पश्य गुहसंविष्टं तृणेषु सह सीतया ॥ २४ ॥

अर्थ—सीता सहित राम के भूमि पर शयन किये हुए मैं नींद अथवा सुखपूर्वक जीवन किस प्रकार प्राप्त करसकता हूं, हे गुह ! जिसको सब देवता तथा दैत्य युद्ध में नहीं सहार सकते उसको देख सीता सहित तृणों पर लेट रहा है ॥

महता तपसा लब्धो विविधैश्च परिश्रमैः ।
एको दशरथस्यैष पुत्रः सदृशलक्षणः ॥ २५ ॥
अस्मिन्प्रव्राजिते राजा न चिरं वर्तयिष्यति ।
विधवा मेदिनी नूनं क्षिप्रमेव भविष्यति ॥ २६ ॥

अर्थ–बड़े तप तथा अनेक परिश्रमों से महाराज दशरथ को यह एक ही पुत्र अपने सदृश लक्षणों वाला मिला है, इसके वन जाने पर राजा चिर तक जीवित नहीं रहेंगे, निःसन्देह पृथिवी शीघ्र ही विधवा होजायगी ॥

परिदेवयमानस्य तस्यैव हि महात्मनः ।
तिष्ठतो राजपुत्रस्य शर्वरी सात्यवर्तत ॥ २७ ॥
प्रभाते विमले सूर्ये कारयित्वा जटा उभौ ।
अस्मिन्भागीरथी तीरे सुखं संतारितौ मया ॥२८॥

अर्थ–उस राजपुत्र लक्ष्मण को शोक की बातें कहते हुए खड़े २ ही वह रात्रि बीतगई, प्रातःकाल निर्मल सूर्य्य के उदय होते ही उन दोनों भाइयों ने यहां जटा बनाई और मैंने उनको सुखपूर्वक पार उतार दिया ॥

जटाधरौ तौ द्रुमचीरवाससौ महाबलौ
कुंजरयूथपोपमौ । वरेषुधी चापधरौ
परंतपौ व्यपेक्षमाणौ सहसीतयागतौ॥२९॥

अर्थ–वह जटाधारी वृक्षों के वल्कल=वसन पहने हुए दोनों महाबलवान् हाथी के बल की उपमा वाले बुद्धिमान् राम लक्ष्मण परंतपस्वी परस्पर देखते हुए सीता सहित दण्डकवन को चलेगये ॥

इति एकषष्ठितमः सर्गः

अथ द्विषष्टितमः सर्गः

सं०—अब भरत का शोक से मूर्छित होना कथन करते हैं:—

गुहस्य वचनं श्रुत्वा भरतो भृशमप्रियम् ।
ध्यानं जगाम तत्रैव यत्र तच्छ्रुतमप्रियम् ॥ १ ॥
सुकुमारो महासत्त्वः सिंहस्कन्धो महाभुजः ।
पुण्डरीकविशालाक्षस्तरुणः प्रियदर्शनः ॥ २ ॥
प्रत्याश्वस्य मुहूर्तं तु कालं परमदुर्मनाः ।
ससाद सहसा तोत्रैर्हृदि विद्ध इव द्विपः ॥ ३ ॥

अर्थ—गुह के अत्यन्त अप्रिय वचन सुनकर भरत वहीं निस्तब्ध=ठिठुर गया जहां यह अप्रिय सुना था, सुकुमार, धैर्यशाली, सिंह-स्कन्ध, बड़ी भुजाओं वाला, कमल के समान विशाल नेत्रों वाला, तरुणावस्था को प्राप्त तथा प्रियदर्शन भरत अत्यन्त दुर्मन हुआ कुछकाल लम्बा सांस भरकर अंकुश से हृदय में बींधे हुए हाथी के समान सहसा मूर्छित होगया ॥

भरतं मूर्च्छितं दृष्ट्वा विवर्णवदनो गुहः ।
बभूव व्यथितस्तत्र भूमिकम्पे यथा द्रुमः ॥४॥
तदवस्थं तु भरतं शत्रुघ्नोऽनन्तर स्थितः ।
परिष्वज्यरुरोदोच्चैर्विसंज्ञः शोककर्शितः ॥५॥

अर्थ—भरत को मूर्च्छित देखकर गुह का मुख मुरझा गया

और वह इस प्रकार कांपने लगा जैसे भूकम्प में वृक्ष कांपता है. भरत को इस अवस्था में देखकर समीप बैठा हुआ शत्रुघ्न शोक से दुर्बल हुआ अचेतन सा हो भरत को गले लगाकर उच्च स्वर से रोने लगा ॥

ततः सर्वाः समपेतुर्मातरो भरतस्य ताः ।
उपवासकृशा दीना भर्तृव्यसन कर्शिताः ॥६॥
ताश्च तं पतितं भूमौ रुदत्यः पर्यवारयन् ।
कौसल्या त्वनुसृत्यैनं दुर्मनाः परिषस्वजे ॥७॥

अर्थ–तब भरत की सब मातायें उपवास से दुर्बल, दीन तथा पति की मृत्यु से अति कृश हुई वहां आकर एकत्रित होगईं और वह भूमि पर गिरे हुए भरत के चारो ओर हो रुदन करने लगी, और अतीव दुर्मन हुई कौसल्या ने उसको गले लगा लिया ॥

वत्सला स्वं यथा वत्समुपगुह्य तपस्विनी ।
परिपप्रच्छ भरतं रुदती शोकलालसा ॥८॥
पुत्र व्याधिर्न ते कच्चिच्छरीरं प्रतिबाधते ।
अस्य राजकुलस्याद्य त्वदधीनं हि जीवितम् ॥९॥
त्वां दृष्ट्वा पुत्र जीवामि रामे सभ्रातृके गते ।
वृत्ते दशरथे राज्ञि नाथ एकस्त्वमद्य नः ॥१०॥

अर्थ–और प्यार से भरी हुई अपनी कुक्षी से उत्पन्न हुए की भांति छाती से लगाकर शोक से दुर्बल रोती हुई भरत से पूछने लगी कि हे पुत्र ! तेरे शरीर में कोई व्याधि तो तुझे

दुःख नहीं दे रही, आज इस राजकुल के प्राण तेरे ही अधीन हैं, और हे पुत्र ! भाई लक्ष्मण सहित राम के वन चले जाने पर मैं तो तुझे ही देखकर जीती हूं, राजा के मृत्यु को प्राप्त होने पर आज एकमात्र तू ही हमारा नाथ है ॥

कच्चिन्न लक्ष्मणे पुत्र श्रुतं ते किंचिदप्रियम् ।
पुत्रे वा ह्येकपुत्रायाः सहभार्ये वनं गते ॥११॥
स मुहूर्तं समाश्वास्य रुदन्नेव महायशाः ।
कौसल्यां परिसांत्व्येदं गुहं वचनमब्रवीत् ॥१२॥

अर्थ—हे पुत्र ! क्या लक्ष्मण के विषय में तो कुछ अप्रिय नहीं सुना अथवा मुझ एक बेटे वाली के बेटे विषयक तो कुछ नहीं सुना जो भार्या सहित वन गया है, फिर लम्बे श्वास भरकर कुछ काल रोता हुआ महायशस्वी भरत कौसल्या को आश्वासन देकर गुह से बोला कि :—

भ्राता मे क्वावसद्रात्रिं क्व सीता क्व च लक्ष्मणः ।
अस्वपच्छयने कस्मिन्किंभुक्त्वागुहशंस मे॥१३॥
सोऽब्रवीद्भरतं हृष्टो निषादाधिपतिर्गुहः ।
यद्विधं प्रतिपेदे च रामे प्रियहितेऽतिथौ ॥ १४ ॥

अर्थ—हे गुह ! मुझे यह बतलाओ कि मेरा भाई राम रात कहां रहा, कहां सीता रही तथा लक्ष्मण कहां खड़ा रहा ? और क्या खाकर किस शय्या पर शयन किया था ? भरत का सच्चा प्रेम देखकर गुह ने प्रिय अतिथि राम के साथ जैसा व्यवहार किया था वह सब यथावत् भरत को बतलाया कि :—

अन्नमुच्चावचं भक्ष्याः फलानि विविधानि च ।
रामायाभ्यवहारार्थं बहुशोऽपहृतं मया ॥१५॥
तत्सर्वं प्रत्यनुज्ञासीद्रामः सत्यपराक्रमः ।
नहि तत्प्रत्यगृह्णात्स क्षत्रधर्ममनुस्मरन् ॥ १६ ॥

अर्थ—मैं अनेक प्रकार का अन्न तथा विविध प्रकार के फल राम के भोजनार्थ लाया, परन्तु उस सत्यपराक्रम वाले राम ने वह सब स्वीकार करके लौटा दिये अर्थात् अपनी प्रतिज्ञा का स्मरण करते हुए उन्होंने उस भोजन को स्वीकार नहीं किया ॥

नह्यस्माभिः प्रतिग्राह्यं सखे देयं तु सर्वदा ।
इति तेन वयं सर्वे अनुनीता महात्मना ॥१७॥
लक्ष्मणेन यदानीतं पीतं वारि महात्मना ।
औपवास्यं तदाकार्षीद्राघवः सह सीतया ॥१८॥
ततस्तु जलशेषेण लक्ष्मणोऽप्यकरोत्तदा ।
वाग्यतास्ते त्रयः सन्ध्यां समुपासन्त संहिताः॥१९॥

अर्थ—और कहा कि हे सखे ! हम लोग क्षत्रियों का यही धर्म है कि सर्वदा दानशील हों, किसी का दान न लें, यह कहकर उन्होंने अनुग्रह किया, और लक्ष्मण के लाये हुए जल को महात्मा राम ने पीकर सीता सहित उस रात उपवास किया, तथा शेष रहा जल पीकर लक्ष्मण ने भी उपवास किया, फिर उन तीनों ने मौनधारण कर सन्ध्या उपासना की ॥

सौमित्रिस्तु ततः पश्चादकरोत्स्वास्तरं शुभम् ।
स्वयमानीय बर्हींषि क्षिप्रं राघवकारणात् ॥२०॥

तस्मिन्समाविशद्रामः स्वास्तरे सह सीतया ।
प्रक्षाल्य च तयोः पादौ व्यपाक्रामत्सलक्ष्मणः ॥२१॥
एतत्तदिंगुदीमूलमिदमेव च तत्तृणम् ।
अस्मिन्रामश्चसीता च रात्रिं तां शयितावुभौ॥२२॥

अर्थ–तदनन्तर लक्ष्मण ने स्वयं कुशा लाकर राम के लिये शुभ साथरी=शयनस्थान बनाया, उस पर सीता सहित राम ने शयन किया और लक्ष्मण उनके पांव प्रक्षालन कर पृथक् जा खड़े हुए, यह वही बड़ का वृक्ष और यह वही तृण हैं जिन पर राम और सीता दोनों ने उस रात शयन किया था ॥

निशम्यपृष्ठेतुतलांगुलित्रवाञ्शरैःसुपूर्णा विषुधी परंतपः । महद्धनुःसज्जमुपोह्य लक्ष्मणो निशामतिष्ठत्परितोस्य केवलम् ॥ ३२ ॥

अर्थ–जब राम शयन करने लगे तो लक्ष्मण धनुष पर प्रत्यञ्चा चढ़ा, तरकसों में तीर भर तथा दस्ताना पहनकर राम की रक्षार्थ रात्रिभर चारो ओर घूमते रहे॥

ततस्त्वहं चोत्तम बाण चाप भृत्स्थितो भवं तत्र सयत्र लक्ष्मणः । अतन्द्रितैर्ज्ञातिभिरात्तकार्मुकै-र्महेन्द्रकल्पं परिपालयंस्तदा ॥ २४ ॥

अर्थ–जहां लक्ष्मण धनुष लेकर स्थित थे वहीं पर मैं भी धनुषबाण लिये बैठा रहा और मेरे साथ मेरे अन्य बन्धु भी कई प्रकार के शस्त्रास्त्र लिये हुए आलस्य रहित होकर खड़े रहे, इस

प्रकार लक्ष्मण ने हमारे साथ उस रात्रि इन्द्र के तुल्य राम की रक्षा की ॥

इति द्विषष्ठितमः सर्गः

अथ त्रिषष्ठितमः सर्गः

सं०—अब भरत का शोक कथन करते हैं :—

तच्छ्रुत्वा निपुणं सर्वं भरतः सह मन्त्रिभिः ।
इङ्गुदीमूलमागम्य रामशय्यामवैक्षत ॥ १ ॥
अब्रवीज्जननीः सर्वा इह तस्य महात्मनः ।
शर्वरी शयिता भूमाविदमस्य विमर्दितम् ॥२॥

अर्थ—उक्त सब वृत्तान्त सुनकर भरत मन्त्रियों सहित उस बड़ के नीचे आये और राम की शय्या को देखकर सब माताओं से बोले कि वह महात्मा राम रात्रि को यहां भूमि पर सोया था, यह उसके अङ्गों से मर्दन किया हुआ स्थान है ॥

अजिनोत्तर संस्तीर्णे वरास्तरणसंचये ।
शयित्वा पुरुषव्याघ्रः कथं शेते महीतले ॥ ३ ॥
न नूनं दैवतं किंचित्कालेन बलवत्तरम् ।
यत्र दाशरथी रामो भूमावेवमशेत सः ॥ ४ ॥
यस्मिन्विदेहराजस्य सुता च प्रियदर्शना ।
दयिता शयिता भूमौ स्नुषा दशरथस्य च ॥ ५ ॥

अर्थ–गलीचों के ऊपर बिछे हुए उत्तम बिस्तरों पर सोने वाला वह पुरुषश्रेष्ठ कैसे भूमि तल पर सोया होगा, मैं जानता हूं दैवयोग बड़ा प्रबल है जबकि राम जैसा महात्मा इस प्रकार भूमि पर सोता है, और जनकसुता महाराज दशरथ की प्यारी स्नुषा प्रियदर्शन सीता भूमि पर शयन करती है ॥

हा हतोऽस्मि नृशंसोऽस्मि यत्सभार्यः कृते मम ।
ईदृशीं राघवः शय्यामधिशेते ह्यनाथवत् ॥ ६ ॥
धन्यः खलु महाभागो लक्ष्मणःशुभलक्षणः ।
भ्रातरं विषमे काले यो राममनुवर्तते ॥ ७ ॥
सिद्धार्था खलु वैदेही पतिं यानुगता वनम् ।
वयं संशयिताः सर्वे हीनास्तेन महात्मना ॥ ८ ॥

अर्थ–हा !! मैं बड़ा दुर्भाग्य तथा निर्दय हूं जो मेरे कारण सीतासहित राम इस प्रकार अनाथ की न्याईं सोये, शुभ लक्षणों वाला महाभाग लक्ष्मण धन्य है जो विपत्काल में भाई का साथ देरहा है, और निश्चय करके वैदेही बड़ी कृतकृत्या है जो पति के पीछे वन को गई है, हम सब के बड़े मन्दभाग्य हैं जो उस महात्मा से हीन हुए संशय में पड़े हैं ॥

अकर्णधारा पृथिवी शून्येव प्रतिभाति मे ।
गते दशरथे स्वर्गं रामे चारण्यमाश्रिते ॥ ९ ॥
अद्यप्रभृति भूमौ तु शयिष्येऽहं तृणेषु वा ।
फलमूलाशनो नित्यं जटाचीराणि धारयन् ॥१०॥

अर्थ—महाराज दशरथ के स्वर्ग को चले जाने और राम के वन का आश्रय लेने पर मुझको सारी पृथिवी विन मल्लाह की नौका समान प्रतीत होती है, मैं भी आज से जटा चीर धारण कर नित्यप्रति फल मूल खाता हुआ सदा भूमि पर तृण विछाकर ही सोऊंगा ॥

तस्याहमुत्तरं कालं निवत्स्यामि सुखं वने ।
तत्प्रतिश्रुतमार्यस्य नैव मिथ्या भविष्यति ॥११॥
अभिषेक्ष्यन्ति काकुत्स्थमयोध्यायां द्विजातयः ।
अपि मे देवताः कुर्युरिमं सत्यं मनोरथम् ॥ १२ ॥

अर्थ—और उनका वनवास का अगला समय मैं आनन्द पूर्वक वन में रहुंगा, जिससे उस आर्य्य पुरुष की वनवास के लिये कीहुई प्रतिज्ञा मिथ्या न हो, राम को अयोध्या में द्विजाति अभिषेक देगें, परमात्मा ऐसी कृपा करें कि मेरा यह मनोरथ सत्य हो ॥

प्रसाद्यमानः शिरसा मया स्वयं बहुप्रकारं
यदि न प्रपत्स्यते। ततोऽनुवत्स्यामिचिराय
राघवं वनेचरं नार्हति मामुपेक्षितुम् ॥१३॥

अर्थ—मैं राम को सिर नवाकर स्वयं बहुत प्रकार से प्रसन्न करुंगा, यदि वह अयोध्या को न लौटेंगे तो मैं भी उनके साथ ही चिरकाल तक वन में वसुंगा और वन में वास करते हुए मुझको वह कदापि न त्यागेंगे ॥

सं०—अब भरत का गङ्गा से पार उतरना कथन करते हैं:—

व्युष्य रात्रिं तु तत्रैव गंगाकूले स राघवः ।
कल्यमुत्थाय शत्रुघ्नमिदं वचनमब्रवीत् ॥ १४ ॥

शत्रुघ्नोत्तिष्ठ किं शेषे निषादाधिपतिं गुहम्।
शीघ्रमानय भद्रं ते तारयिष्यति वाहिनीम् ॥१५॥

अर्थ—उस रात्रि वहीं गङ्गातट पर वास करके भरत प्रातः काल उठकर शत्रुघ्न से बोले कि हे शत्रुघ्न! उठ तेरा कल्याण हो, तुम शीघ्र जाकर गुह को यहां बुलालाओ ताकि वह सेना को पार उतारे ॥

जागर्मि नाहं स्वपिमि तथैवार्य्यं विचिन्तयन् ।
इत्येवमब्रवीद्भ्राता शत्रुघ्नो विप्रचोदितः ॥ १६ ॥
इति संवदतोरेवमन्योन्यं नरसिंहयोः ।
आगम्य प्राञ्जलिः काले गुहो वचनमब्रवीत् ॥१७॥

अर्थ—भाई से प्रेरा हुआ शत्रुघ्न बोला मैं जागता हूं, उसी प्रकार भाई राम का चिन्तन करते हुए मुझको नींद नहीं आती, इस प्रकार उन दोनों वीर भाईयों के बात चीत करते हुए ही अपने नियत समय पर गुह आगया और हाथ जोड़कर बोला किः—

कच्चित्सुखं नदीतीरेऽवात्सीः काकुत्स्थ शर्वरीम् ।
कच्चिच्च सहसैन्यस्य तव नित्यमनानयम् ॥ १८ ॥
गुहस्य तत्तु वचनं श्रुत्वा स्नेहादुदीरितम् ।
रामस्यानुवशो वाक्यं भरतोऽपीदमब्रवीत् ॥१९॥

अर्थ—हे राघव! नदी के तीर पर रात सुख से सोये तथा सेनासहित आप सर्वथा नीरोग तो हैं, स्नेह से कहे हुए गुह के इस वाक्य को सुनकर रामाधीन भरत बोले कि :—

सुखा नः शर्वरी धीमन्पूजिताश्चापि ते वयम् ।
गंगां तु नौभिर्बह्वीभिर्दाशाः सन्तारयन्तु नः ॥२०॥
ततः स्वस्तिकविज्ञेयां पाण्डुकम्बलसंवृताम् ।
सनन्दिघोषां कल्याणीं गुहो नावमुपाहरत् ॥ २१ ॥

अर्थ–हे बुद्धिमान् गुह हम यहां रात्रि सुखपूर्वक रहे,आपने बड़ी कृपा की जो हमारा बड़ा सन्मान किया है,अब कृपाकरके बहुतसी नौकायें मल्लाहों के सहित दें जो हमें गंगा से पार उतारें, तब स्वास्तिक नामा उत्तम नौका श्वेत गलीचों से ढकी हुई उत्सव के वाद्यों से युक्त गुह भरत के लिये लाया ॥

तामारुरोह भरतः शत्रुघ्नश्च महाबलः ।
कौसल्या च सुमित्रा च याश्चान्या राजयोषितः॥२२॥
पताकिन्यस्तु ता नावः स्वयं दाशैरधिष्ठिताः ।
वहन्त्यो जनमारूढं तदा संपेतुराशुगाः ॥ २३ ॥

अर्थ–उस पर भरत महाबली शत्रुघ्न, कौसल्या,सुमित्रा और दूसरी अन्य राजस्त्रियें आरूढ़ हुईं,मल्लाहों से युक्त झण्डियों वाली सब नौकायें सवार हुए लोगों को लेजाने वाली एकत्रित होकर शीघ्रता से चल पड़ीं ॥

नावश्चारुरुहुस्त्वन्ये प्लवैस्तेरुस्तथापरे ।
अन्ये कुम्भघटैस्तेरुरन्ये तेरुश्च बाहुभिः ॥२४॥
सा पुण्या ध्वजिनी गंगां दाशैः सन्तारिता स्वयम् ।
मैत्रे मुहुर्ते प्रययौ प्रयागवनमुत्तमम् ॥२५॥

अर्थ-बहुत से नौकाओं पर सवार हुए, कई तमेडों द्वारा तर गये, कई घटों द्वारा तरे और कई भुजाओं से ही तरकर पार उतर गये, उस पवित्र सेना को भीलों ने गंगा से पार उतारा और वह सब चार घड़ी दिन चढ़े तक प्रयाग में पहुंच गये ॥

इति त्रिषष्ठितमः सर्गः

अथ चतुःषष्ठितमः सर्गः

सं०-अब भरत का भरद्वाज के आश्रम में जाना कथन करते हैंः-

भरद्वाजाश्रमं गत्वा क्रोशादेव नरर्षभः ।
जनं सर्वमवस्थाप्य जगाम सह मंत्रिभिः ॥१॥
ततः संदर्शने तस्य भरद्वाजस्य राघवः ।
मन्त्रिणस्तानवस्थाप्य जगामानुपुरोहितम् ॥२॥
वसिष्ठमथ दृष्ट्वैव भरद्वाजो महातपाः ।
संचचालासनात्तूर्णं शिष्यानर्घ्यमिति ब्रुवन् ॥३॥

अर्थ-वह नरश्रेष्ठ भरत भरद्वाज के आश्रम को प्राप्त होकर एक कोस परे ही सब सेना को ठहराकर आप मन्त्रियों सहित उनकी सेवा में गया, और भरद्वाज के दर्शन समय उन मन्त्रियों को भी ठहराकर पुरोहित वसिष्ठ को आगे करके आप पीछे २ चला, महातपस्वी भरद्वाज वसिष्ठ को देखते ही आसन से उठ खड़े हुए और शिष्यों को अर्घ्य लाने की आज्ञा दी॥

समागम्य वसिष्ठेन भरतेनाभिवादितः ।
अबुध्यत महातेजाः सुतं दशरथस्य तम् ॥ ४ ॥

ताभ्यामर्घ्यं च पाद्यं च दत्त्वा पश्चात्फलानि च ।
आनुपूर्व्याच्च धर्मज्ञः पप्रच्छ कुशलं कुले ॥ ५ ॥
अयोध्यायां बलं कोशे मित्रेष्वपि च मन्त्रिषु ।
जानन्दशरथं वृत्तं न राजानमुदाहरत् ॥६॥

अर्थ–वसिष्ठ से मिलने के पीछे भरत से अभिवादित हुए २ महातेजस्वी भरद्वाज भरत को दशरथ का पुत्र जानकर उन दोनों को अर्घ्य, पाद्य और पीछे फल देकर मर्यादा के जानने वाले तपस्वी ने प्रथम ब्राह्मण और पीछे क्षत्रिय भरत से कुशल पूछा कि अयोध्या, सेना, कोश, मित्रों और मन्त्रियों में तो सब प्रकार कुशल है ? और महाराज दशरथ का मरना जानते थे इस लिये उनका नाम नहीं लिया ॥

वसिष्ठो भरतश्चैनं पप्रच्छतुरनामयम् ।
शरीरेऽग्निषु शिष्येषु वृक्षेषु मृगपक्षिषु ॥ ७ ॥
तथेति तु प्रतिज्ञाय भरद्वाजो महायशाः ।
भरतं प्रत्युवाचेदं राघवस्नेहबन्धनात् ॥ ८ ॥

अर्थ–तदनन्तर वसिष्ठ तथा भरत ने महात्मा भरद्वाज से उनके शरीर, अग्नियों, शिष्यों, वृक्षों और मृग तथा पक्षियों में कुशल पूछा, तब महात्मा ने कहा हां सब कुशल है, फिर महायशस्वी भरद्वाज राम के स्नेह से भरत को बोले कि:—

किमिहागमने कार्यं तव राज्यं प्रशासतः ।
एतदाचक्ष्व सर्वं मे न हि मे शुध्यते मनः ॥९॥

एवमुक्तोभरद्वाजं भरतः प्रत्युवाच ह ।
पर्यश्रुनयनोदुःखाद्वाचा संसृज्यमानया ॥१०॥
हतोऽस्मि यदि मामेवं भगवानपि मन्यते ।
मत्तो न दोषमाशङ्क मैवं मामनुशाधि हि ॥११॥

अर्थ–राज्य का शासन करते हुए आप यहां किस प्रयोजन से आये हैं यह सब मुझसे कहें, क्योंकि तुम्हारे विषय में मेरा मन शुद्ध नहीं है, भरद्वाज के इस प्रकार कथन करने पर दुःख से रुकती हुई वाणी द्वारा अश्रुपूर्ण नेत्रों से भरत बोले कि मैं बड़ा मन्दभाग्य हूं जो आप भी मुझे ऐसा ही समझते हैं, मेरे विषय में दोष की शंका न करके आप मुझसे ऐसा कथन न करें ॥

न चैतदिष्टं माता मे यदवोचन्मदन्तरे ।
नाहमेतेन तुष्टश्च तद्वचनमाददे ॥ १२ ॥
अहं तु तं नरव्याघ्रमुपयातः प्रसादकः ।
प्रतिनेतुमयोध्यायां पादौ चास्याभिवन्दितुम्॥१३॥
वसिष्ठादिभिर्ऋत्विग्भिर्याचितो भगवांस्ततः ।
उवाच तं भरद्वाजः प्रसादाद्भरतं वचः ॥१४॥

अर्थ–मुझे वह इष्ट नहीं जो माता ने मेरे लिये किया है, मैं उससे प्रसन्न नहीं और न उसके वचन को स्वीकार करता हूं, मैं उस नरश्रेष्ठ भ्राता राम को प्रसन्न कर अयोध्या लेजाने के लिये और उनकी पादवन्दना करने के लिये यहां आया हूं, वसिष्ठादि ऋत्विजों ने भी भगवान् भरद्वाज से कहा कि महाराज यह सर्वथा निर्दोष है, फिर भरद्वाज प्रसन्नतापूर्वक भरत से बोले कि :—

त्वय्येतत्पुरुषव्याघ्र युक्तं राघववंशजे ।
गुरुवृत्तिर्दमश्चैव साधूनां चानुयायिता ॥१५॥
जाने चैतन्मनस्थं ते दृढीकरणमस्त्विति ।
अपृच्छं त्वां तवात्यर्थं कीर्तिं समभिवर्धयन् ॥१६॥

अर्थ—हे पुरुषश्रेष्ठ ! राघववंश में उत्पन्न हुआ तू गुरु सेवा, अपने को वश में रखना और श्रेष्ठ पुरुषों का अनुयायी होना, इत्यादि गुणों से युक्त ही है और मैं भी तेरे मन के इन भावों को जानता हूं. तुझे दृढ़ करने और तेरी कीर्ति को अत्यन्त बढ़ाते हुए मैंने तुझसे इस प्रकार पूछा है ॥

जाने च रामं धर्मज्ञं ससीतं सह लक्ष्मणम् ।
अयं वसति ते भ्राता चित्रकूटे महागिरौ ॥१७॥
श्वस्तु गन्तासि तं देशं वसाद्य सहमन्त्रिभिः ।
एतं मे कुरु सुप्राज्ञ कामं कामार्थकोविद ॥१८॥

अर्थ—और तुम्हारे धर्मज्ञ भ्राता राम, लक्ष्मण तथा सीता को जानता हूं, वह तेरा भाई यहां चित्रकूट पर्वत पर वास करता है, हे काम अर्थ के जानने वाले भरत ! आज मन्त्रियों सहित यहां ही रहकर मेरी कामना को पूर्ण कर कल वहां जाना ॥

ततस्तथेत्येवमुदारदर्शनः प्रतीतरूपो भरतो
ब्रवीद्वचः । चकारबुद्धिं च महाश्रमे तदा-
निशानिवासाय नराधिपात्मजः ॥ १९ ॥

अर्थ–तब उदारदर्शन तथा विश्वासपात्र भरत ने "तथास्तु" कह भरद्वाज के आश्रम में रहने का संकल्प कर उस रात्रि वहीं निवास किया ॥

इति चतुःषष्ठितमः सर्गः

अथ पंचषष्ठितमः सर्गः

सं०–अब भरत का भरद्वाज से विदा होकर चित्रकूट को जाना कथन करते हैं :—

ततस्तां रजनीं व्युष्य भरतः सपरिच्छदः ।
कृतातिथ्यो भरद्वाजं कामादभिजगाम ह ॥ १ ॥
तमुवाचाञ्जलिं कृत्वा भरतोऽभिप्रणम्य च ।
आश्रमादुपनिष्क्रान्तमृषिमुत्तमतेजसम् ॥ २ ॥

अर्थ–इसके अनन्तर आतिथ्य सत्कार से सत्कृत हुआ भरत भरद्वाज के आश्रम में सपरिवार रात्रिभर निवास करके राम से मिलने की कामना वाला भरत प्रातःकाल भरद्वाज के समीप गया, और आश्रम से निकलते हुए उन तेजस्वी ऋषि को हाथ जोड़ प्रणाम कर बोला कि :—

सुखोषितोऽस्मि भगवन्समग्र बलवाहनः ।
बलवत्तर्पितश्चाहं बलवान् भगवंस्त्वया ॥ ३ ॥
आमन्त्रयेऽहं भगवन्कामं त्वामृषिसत्तम ।
समीपं प्रस्थितं भ्रातुर्मैत्रेणेक्षस्व चक्षुषा ॥ ४ ॥

अर्थ–हे भगवन् ! मैं समग्र सेना और वाहनों के साथ यहां आश्रम में सुखपूर्वक रहा हूं और आपने मन्त्रियों सहित मेरा उत्तम सत्कार करके अत्यन्त तृप्त किया है, हे ऋषिवर ! अब मैं आपसे आज्ञा मांगता हूं, भाई राम के समीप प्रस्थान करते हुए मुझको आप मित्र की दृष्टि से देखें ॥

आश्रमं तस्य धर्मज्ञ धार्मिकस्य महात्मनः ।
आचक्ष्व कतमो मार्गः कियानिति च शंस मे ॥५॥
इति पृष्टस्तु भरतं भ्रातुर्दर्शनलालसम् ।
प्रत्युवाच महातेजा भरद्वाजो महातपाः ॥ ६ ॥

अर्थ–और हे धार्मिक महात्मन् ! कृपाकरके धर्मात्मा भाई राम का आश्रम बतावें कि यहां से कौनसा मार्ग जाता है और वह कितनी दूर है, भ्राता के दर्शनों की लालसा वाले भरत को महातेजस्वी भरद्वाज बोले कि :—

भरतार्धतृतीयेषु योजनेष्वजने वने ।
चित्रकूट गिरिस्तत्ररम्यनिर्दरकाननः ॥ ७ ॥
उत्तरं पार्श्वमासाद्य तस्य मंदाकिनीनदी ।
पुष्पितद्रुमसंछन्नारम्यपुष्पित कानना ॥ ८ ॥
अनन्तरं तत्सरितश्चित्रकूटं च पर्वतम् ।
तयोः पर्णकुटीं तात तत्र तौ वसतो ध्रुवम् ॥ ९ ॥

अर्थ–हे भरत ! यहां से ढ़ाईयोजन=दश कोस पर दुष्टजन रहित वन में चित्रकूट नाम पर्वत बड़ा रमणीय है, उस पर्वत के उत्तर की ओर मन्दाकिनी नाम नदी है जिसके दोनों किनारे पर

अति सघन पुष्पित वृक्ष तथा वहां ही रमणीय पुष्पित वन है, हे तात ! उसी नदी से मिला हुआ चित्रकूट पर्वत है और वहीं पर्णकुटी बना दोनों भाई निवास करते हैं ॥

दक्षिणेन च मार्गेण सव्यदक्षिणमेव च
गज वाजि समाकीर्णां वाहिनीं वाहिनीपते ।
वाहयस्व महाभाग ततो द्रक्ष्यासि राघवम् ॥१०॥

अर्थ–हे वाहिनीपते ! यहां से यमुना के दक्षिण ओर अर्थात् उत्तर के किनारे २ हाथी, घोड़े आदि सब सेना लेजायं, फिर बाईं ओर दक्षिण को मार्ग मिलेगा, वहां से चित्रकूट अति निकट है, हे महाभाग ! इस प्रकार जाने से शीघ्र ही राम को देखोगे ॥

प्रयाणमिति च श्रुत्वा राजराजस्य योषितः ।
हित्वा यानानि यानार्हा ब्राह्मणं पर्यवारयन् ॥११॥
तत्र पप्रच्छ भरतं भरद्वाजो महामुनिः ।
विशेषं ज्ञातुमिच्छामि मातॄणां तव राघव ॥ १२ ॥

अर्थ–आगे को गमन सुनकर महाराज दशरथ की स्त्रियों ने यानों को छोड़ ब्राह्मण भरद्राज की प्रदक्षिणा की, तब महामुनि भरद्वाज ने भरत से कहा कि हे राघव ! मैं तुम्हारी माताओं को विशेषरूप से जानना चाहता हूं ॥

एवमुक्तस्तु भरतो भरद्वाजेन धार्मिकः ।
उवाच प्राञ्जलिर्भूत्वा वाक्यं वचनकोविदः ॥१३॥
यामिमां भगवन्दीनां शोकानशनकर्शिताम् ।
पितुर्हि महिषीं देवीं देवतामिव पश्यसि ॥ १४ ॥

एषा तं पुरुषव्याघ्रं सिंहविक्रान्तगामिनम् ।
कौसल्या सुषुवे रामं धातारमदितिर्यथा ॥ १५ ॥

अर्थ—भरद्वाज के उक्त प्रकार पूछने पर वाक्य के जानने वाला धार्मिक भरत हाथ जोड़कर बोला कि हे भगवन् ! यह जो आप दीन, शोक तथा विना खाये हुए दुर्बल और देवता की भांति देखते हैं यह कौसल्या देवी मेरे पिता की पटरानी है जिसने सिंह की चाल वाले पुरुषश्रेष्ठ राम को जन्म दिया है, जैसे अदिति से धाता का जन्म हुआ था ॥

अस्या वामभुजं श्लिष्टा या सा तिष्ठति दुर्मनाः ।
इयं सुमित्रा दुःखार्ता देवी राज्ञश्च मध्यमा ॥ १६ ॥
एतस्यास्तौ सुतौ देव्याः कुमारौ देववर्णिनौ ।
उभौ लक्ष्मण शत्रुघ्नौ वीरौ सत्यपराक्रमौ ॥ १७ ॥

अर्थ—और इनकी बांई भुजा के साथ लगी हुई जो यह दुःखी मन वाली खड़ी है यह दुःखार्ता सुमित्रा राजा की मध्यमा रानी है, इन्हीं देवी के सत्यपराक्रमी, देवसम तथा बड़े वीर लक्ष्मण और शत्रुघ्न दो पुत्र हैं ॥

यस्याकृते नरव्याघ्रौ जीवनाशमितो गतौ ।
राजा पुत्रविहीनश्च स्वर्गं दशरथो गतः ॥१८॥
ममैतां मातरं विद्धि नृशंसां पापनिश्चयाम् ।
यतो मूलं हि पश्यामि व्यसनं महदात्मनः॥१९॥

अर्थ—और जिसके कारण राम, लक्ष्मण दोनों नरश्रेष्ठ यहां से जीवनाश=मृत्यु के समान वन को गये तथा महाराज दशरथ पुत्रहीन

हो स्वर्ग को सिधारे हैं, इस क्रूरस्वभाव तथा पापनिश्चयवाली को मेरी माता कैकेयी जानें जिसकी मूल में मैं भारी विपद् देखता हूं ॥

भरद्वाजो महर्षिस्तं ब्रुवन्तं भरतं तदा ।
प्रत्युवाच महाबुद्धिरिदं वचनमर्थवित् ॥२०॥
न दोषेणावगन्तव्या कैकेयी भरत त्वया ।
राम प्रव्राजनं ह्येतत्सुखोदर्कं भविष्यति ॥२१॥

अर्थ—भरत के उक्त प्रकार कथन करने पर महाबुद्धि महर्षि भरद्वाज यह सार्थक वचन बोले कि हे भरत ! कैकेयी को तुझे दोषदृष्टि से नहीं देखना चाहिये, यह राम का वनवास उत्तम परिणाम वाला होगा ॥

देवानां दानवानां च ऋषीणां भावितात्मनाम् ।
हितमेव भविष्यद्धि रामप्रव्राजनादिह ॥२२॥
अभिवाद्य तु संसिद्धः कृत्वा चैनं प्रदक्षिणम् ।
आमंत्र्य भरतः सैन्यं युज्यतामिति चाब्रवीत्॥२३॥

अर्थ—राम के वनवास से शुद्धात्मा देवता, दानव और ऋषियों का भविष्यत् में हित होगा, इस आशीर्वाद को पाकर अभिवादन तथा प्रदक्षिणा करके भरत ने ऋषि से आज्ञा लेकर सेना के मुखिया लोगों से कहा कि शीघ्र ही तैयार होजाओ ॥

गजकन्या गजाश्चैव हेमकक्ष्याः पताकिनः ।
जीमूता इव घर्मान्ते सघोषाः संप्रतस्थिरे ॥२४॥

विविधान्यपि यानानि महान्ति च लघूनि च ।
प्रययुः सु महार्हाणि पादैरपि पदातयः ॥२५॥

अर्थ—भरत की आज्ञा पाते ही सुवर्ण के हौदों वाले हाथी हथिनियें बरसात में मेघों की न्याईं शब्द करते हुए चल पड़े, छोटे बड़े सब प्रकार के यान तथा बहुत बड़ों के योग्य यान, रथादि और प्यादे पैदल ही चल पड़े ॥

तया महत्या यायिन्या ध्वजिन्या वनवासिनः ।
अर्दिता यूथपामत्ताः सयूथाः संप्रदुद्रुवुः ॥ २६ ॥
स गत्वा दूरमध्वानं सं परिश्रान्तवाहनः ।
उवाच वचनं श्रीमान्वसिष्ठं मन्त्रिणां वरम् ॥२७॥
यादृशं लक्ष्यते रूपं यथा चैव मया श्रुतम् ।
व्यक्तं प्राप्ताःस्म तं देशं भरद्वाजोयमब्रवीत् ॥२८॥

अर्थ—उस चलती हुई बड़ी सेना में से वनवासी यूथपति मत्त हाथी पीडित हुए यूथों के सहित भागगये, शीघ्रगामी घोड़ों द्वारा दूर जाकर थके हुए वाहनों वाला श्रीमान् भरत मन्त्रीवर वसिष्ठ से बोला कि जैसा यह रूप दीखता है और जैसा सुना था, निःसन्देह हम उस स्थान पर आगये हैं जो महर्षि भरद्वाज ने बतलाया था ॥

अयं गिरिश्चित्रकूटस्तथा मन्दाकिनी नदी ।
एतत् प्रकाशते दूरान्नीलमेघनिभं वनम् ॥२९॥
मुञ्चन्ति कुसमान्येते नगाः पर्वतसानुषु ।
नीला इवातपापाये तोयं तोयधराघनाः ॥३०॥

अर्थ—यह चित्रकूट पर्वत, यह मन्दाकिनी नदी और यह दूर से ही नीलमेघ के सदृश वन दिखाई देता है, यह वृक्ष पर्वत की चोटियों पर मानो फूल बरसा रहे हैं, जैसे वर्षाऋतु में नील मेघ जल बरसाते हैं ॥

अतिमात्रमयं देशो मनोज्ञः प्रतिभाति मे ।
तापसानां निवासोऽयं व्यक्तं स्वर्गपथोऽनघ ॥३१॥
साधु सैन्याः प्रतिष्ठन्तां विचिन्वन्तु च काननम् ।
यथा तौ पुरुषव्याघ्रौ दृश्येते रामलक्ष्मणौ ॥३२॥

अर्थ—हे निष्पाप ! यह अति सुन्दर देश मुझे बड़ा प्रिय लगता है, यह तपस्वियों का निवासस्थान होने से निःसन्देह स्वर्ग का मार्ग है, अब सैनिक लोग इधर उधर वन में जाकर पुरुषश्रेष्ठ राम लक्ष्मण का पता लगायें ॥

भरतस्य वचः श्रुत्वा पुरुषाः शस्त्रपाणयः ।
विविशुस्तद्वनं शूरा धूमाग्रं ददृशुस्ततः ॥३३॥
ते समालोक्य धूमाग्रमूचुर्भरतमागताः ।
नामनुष्ये भवत्यग्निर्व्यक्तमत्रैव राघवौ ॥३४॥
अथ नात्र नरव्याघ्रौ राजपुत्रौ परंतपौ ।
अन्ये रामोपमाः सन्ति व्यक्तमत्र तपस्विनः ॥३५॥

अर्थ—भरत की आज्ञा पाते ही शस्त्रधारी शूरवीर उस वन में प्रविष्ट हो इधर उधर धूम की शिखा देखने लगे, और धूम को देख भरत के समीप आकर बोले कि मनुष्य के विना अग्नि नहीं होती, निःसन्देह यहीं राघव हैं, और यदि वह परंतप नरश्रेष्ठ राजपुत्र

राम यहां न हुए तब भी राम के तुल्य कोई अन्य तपस्वी यहां अवश्य होंगे ॥

तच्छ्रुत्वा भरतस्तेषां वचनं साधुसम्मतम् ।
सैन्यानुवाच सर्वांस्तानमित्रबलमर्दनः ॥ ३६ ॥
यत्ता भवन्तस्तिष्ठंतुनेतो गंतव्यमग्रतः ।
अहमेव गमिष्यामि सुमन्त्रो धृतिरेव च ॥३७॥

अर्थ—उन लोगों के साधु वचन सुनकर भरत सब सैनिक लोगों से बोले कि तुम लोग सावधान होकर यहीं ठहरो, मैं सुमन्त्र और धृति के साथ स्वयं ही वहां जाउंगा ॥

एवमुक्त्वा ततः सैन्यास्तत्रतस्थुः समंततः ।
भरतो यत्र धूमाग्रं तत्र दृष्टिं समादधत् ॥३८॥

अर्थ—भरत के कथनानुसार सैनिक लोग जहां के तहां ठहर गये और भरत जहां धूम दिखाई देता था उसी ओर को चल पड़े॥

इति पंचषष्ठितमः सर्गः

अथ षट्षष्ठितमः सर्गः

सं०—अब राम का सीता को पर्वतीय तथा नदी का दृश्य दिखलाना कथन करते है :—

दीर्घकालोषितस्तस्मिन्गिरौ गिरिवराप्रियः ।
वैदेह्याः प्रियमाकांक्षन्स्वं च चित्तं विलोभयन् ॥१॥

अथ दाशरथिश्चित्रं चित्रकूटमदर्शयत्।
भार्याममरसंकाशः शचीमिव पुरन्दरः ॥ २ ॥

अर्थ–और इधर, बहुकाल से उस पर्वत में रहते हुए, पर्वतों से प्यार करने वाले, देवतुल्य राम जानकी का प्रिय चाहते तथा अपने चित्त को बहलाते हुए आश्चर्यमय चित्रकूट अपनी प्रिया सीता को दिखलाने लगे, जैसे इन्द्र शची को दिखलाता है ॥

न राज्यभ्रंशनं भद्रे न सुहृद्भिर्विनाभवः।
मनो मे बाधते दृष्ट्वा रमणीयमिमं गिरिम् ॥ ३ ॥
पश्येममचलं भद्रे नानाद्विजगणायुतम्।
शिखरैः खमिवोद्विद्धैर्धातुमद्भिर्विभूषितम् ॥ ४ ॥

अर्थ–हे भद्रे! इस रमणीय पर्वत को देखकर राज्य से च्युत होना तथा सुहृदों से पृथक् होना मेरे मन को पीड़ा नहीं देता, हे भद्रे! इस पर्वत को देख जो नाना पक्षिगणों से युक्त मानो आकाश को वींधकर ऊंची निकली हुई धातुओं वाली चोटियों से सुशोभित है ॥

केचिद्रजत संकाशाः केचित्क्षतजसन्निभाः।
पीतमांजिष्ठ वर्णाश्च केचिन्मणिवर प्रभाः ॥ ५ ॥
पुष्पार्ककेतकाभाश्च केचिज्ज्योतीरस प्रभाः।
विराजन्तेऽचलेन्द्रस्यदेशाधातु विभूषिताः ॥ ६ ॥
नानामृगगणैर्द्वीपितरक्ष्वृक्षगणैर्वृतः।
अदुष्टैर्भात्ययं शैलो बहुपक्षि समाकुलः ॥ ७ ॥

अर्थ–देख इस पर्वत के कोई २ स्थान तो चांदी के समान चमकते, कोई रुधिर समान लाल, कोई मंजीठ रङ्ग के पीले और कोई उत्तम मणि जैसे नील रङ्ग के चमकते हैं, कोई मदार के फूल समान, कोई केतकी और कोई उज्वल ज्योति तथा पारे के रङ्ग समान दृष्टिगत होते हैं, नाना भांति के मृगगण, व्याघ्र, चीते, ऋक्षादि और इस पर पक्षी भी भांति २ के हैं जो अपनी हिंसारूप दुष्टता छोड़कर पर्वत को सुशोभित कर रहे हैं ॥

आम्रजंब्वसनैर्लोध्रैः प्रियालैः पनसैर्धवैः ।
अंकोलैर्भव्यतिनिशैर्बिल्वतिंदुकवेणुभिः ॥ ८ ॥
काश्मर्यारिष्टवरणैर्मधूकैस्तिलकैरपि ।
बदर्यामलकैर्नीपैर्वेत्रधन्वनबीजकैः ॥ ९ ॥
पुष्पवद्भिः फलोपेतैश्छायावद्भिर्मनोरमैः ।
एवमादिभिराकीर्णः श्रियंपुष्यत्ययं गिरिः ॥ १० ॥

अर्थ–और आम्र, जामुन, असना, लोध, चिरोंजी, कटहर, अंकुहर, तिमिश, विल्व, तेंदुआ, बांस, काश्मरी, नींब, बरुण, महुआ, तिलक, बेर, आमला, कदम्ब, बेंत और बिजौरा नीबू आदि फल फूलों वाले तथा छाया वाले मनोरम वृक्षों से भरा हुआ यह पर्वत सुशोभित है ॥

गुहासमीरणो गन्धान्नानापुष्प भवान्बहून् ।
घ्राणतर्पणमभ्येत्य कं नरं न प्रहर्षयेत् ॥ ११ ॥
यदीह शरदोऽनेकास्त्वया सार्धमनिन्दिते ।
लक्ष्मणेन च वत्स्यामि न मां शोकः प्रधर्षति ॥ १२ ॥

अर्थ-गुहा=गुफा से निकला हुआ वायु नाना पुष्पों से गन्धों को लाकर घ्राण को तृप्त करता हुआ किसको आनन्दित नहीं करता अर्थात् कैसा आनन्ददायक प्रतीत होता है, हे अनिन्दिते ! यहां तेरे और लक्ष्मण के साथ अनेक वर्ष रहकर भी मुझे कोई शोक न होगा ॥

बहुपुष्प फले रम्ये नाना द्विजगणायुते ।
विचित्रशिखरेह्यस्मिन्रतवानास्मि भामिनि ॥ १३ ॥

अर्थ-हे भामिनि ! यह पर्वत बहुत पुष्प, फल तथा नाना पक्षियों से युक्त कैसा रमणीय प्रतीत होता है और इसके विचित्र शिखर को देखकर मेरा मन यहां वास करने को बहुत चाहता है ॥

अनेन वनवासेन मम प्राप्तं फलद्वयम् ।
पितुश्चानृण्यता धर्मे भरतस्य प्रियं तथा ॥ १४ ॥
इदमेवामृतं प्राहू राज्ञि राजर्षयः परे ।
वनवासं भवार्थाय प्रेत्य मे प्रपितामहाः ॥ १५ ॥

अर्थ-हे प्रिये ! मैंने इस वनवास से पिता की अनृणता और भरत का हित, यह दो फल प्राप्त किये हैं अर्थात् पिता के ऋण से मुक्त होगया,और भरत राज्यशासन कर आनन्द को प्राप्त होगा, हे सीते ! यह वही वनवास है जिसको मेरे पूर्वज राजऋषि अमृतप्राप्ति का साधन कहगये हैं ॥

शिला शैलस्य शोभन्ते विशालाःशतशोऽभितः ।
बहुलाः बहुलैर्वर्णैर्नीलपीतसितारुणैः ॥१६॥

निशि भान्त्यचलेन्द्रस्य हुताशनशिखा इव ।
ओषध्यः स्वप्रभालक्ष्म्या भ्राजमानाः सहस्रशः ॥१७॥
केचित्क्षयनिभा देशाः केचिदुद्यानसन्निभाः ।
केचिदेकशिलाः भान्ति पर्वतस्यास्य भामिनि ॥१८॥

अर्थ—इस पर्वत के चारो ओर सैकड़ों शिलायें नील, पीत, श्वेत तथा लाल आदि अनेक प्रकार के रंगों से शोभा देरही हैं, और रात्रि के समय इस पर्वत की अनेक ओषधियें अपनी प्रभा की शोभा से चमकती हुई अग्निशिखा की भांति प्रतीत होती हैं, हे भामिनि ! इस पर्वत के कई भाग गृह तुल्य, कई बगीचों के सदृश और कई भाग लम्बी एक शिला वाले हैं ॥

भित्त्वेव वसुधां भाति चित्रकूटः समुत्थितः ।
चित्रकूटस्य कूटोऽयं दृश्यते सर्वतः शुभः ॥१९॥

अर्थ—यह चित्रकूट पर्वत मानो पृथिवी को फोड़कर निकला हुआ प्रतीत होता है, और इसकी यह चोटी जिसपर हम हैं सब ओर से कैसी उत्तम शोभावाली है ॥

अथ शैलाद्विनिष्क्रम्य मैथिलीं कोशलेश्वरः ।
अदर्शयच्छुभजलां रम्यां मन्दाकिनीं नदीम् ॥२०॥
विचित्र पुलिनां रम्यां हंससारससेविताम् ।
कुसुमैरुपसम्पन्नां पश्य मन्दाकिनीं नदीम् ॥२१॥

अर्थ—तदनन्तर पर्वत के दृश्य से दृष्टि हटाकर वह कोशलाधिपति मैथिली को शुभ जल वाली रम्य मन्दाकिनी नदी का दृश्य दिखलाने लगे कि हे मिथिलेशकुमारी ! विचित्र किनारों

वाली, हंस, सारसों से सेवित और किनारों पर फूलों से सुशोभित मन्दाकिनी नदी को देख ॥

जटाजिनधराः काले वल्कलोत्तरवाससः ।
ऋषयस्त्ववगाहन्ते नदीं मन्दाकिनीं प्रिये ॥२२॥
मारुतोद्धूतशिखरैः प्रनृत्त इव पर्वतः ।
पादपैः पुष्पपत्राणि सृजद्भिरभितो नदीम् ॥२३॥
निर्धूतान्वायुना पश्य विततान्पुष्पसंचयान् ।
पोप्लूयमानानपरान्पश्य त्वं तनुमध्यमे ॥२४॥

अर्थ—हे प्रिये! जिसमें ऋषि लोग जटा धारण किये तथा मृगान पहने और वल्कलों की चादरें ओढ़े हुए समय पर स्नान करते हैं, और मानो नदी के दोनों ओर वायु से हिलाये हुए शिखरों वाले पर्वत नृत्य करते और वृक्ष पुष्प तथा पत्र बिखेर रहे हैं, हे कृशोदरि! यह फूलों के गुच्छे वायु से कम्पाये हुए वृक्षों से गिरकर बार २ जल में डूबते और ऊपर आते हुओं को देख, कैसे शोभायमान प्रतीत होते हैं ॥

पश्यैतद्वल्गुवचसो रथाङ्गाह्वयना द्विजाः ।
अधिरोहन्तिकल्याणिनिष्कूजन्तःशुभागिरः ॥२५॥
दर्शनं चित्रकूटस्यमन्दाकिन्याश्च शोभने ।
अधिकं पुरवासाच्च मन्ये तव च दर्शनात् ॥२६॥
विधूतकल्मषैः सिद्धैस्तपोदमशमन्वितैः ।
नित्याविक्षोभितजलां विगाहस्व मया सह ॥२७॥

अर्थ–हे कल्याणि! देख यह मधुरध्वनि वाले चकवे कैसी सुहावनी बोली बोलते हुए किनारे पर बैठे हैं, हे शोभने! चित्रकूट पर्वत का देखना तथा मन्दाकिनी नदी का दर्शन और तेरा दर्शन पुर के वास से अधिक समझता हूं, हे प्रिये! इस नदी में जिसमें तप, दान और शम से युक्त निष्पाप सिद्धजन सदा स्नान करते हैं तुम भी मेरे साथ स्नान किया करो॥

त्वं पौरजन वद्व्यालानयोध्यामिव पर्वतम्।
मन्यस्व वनिते नित्यं सरयू वदिमां नदीम्॥२८॥
लक्ष्मणश्चैव धर्मात्मा मन्निदेशे व्यवस्थितः।
त्वं चानुकूला वैदेहि प्रीतिं जनयती मम॥२९॥
उपस्पृशं स्त्रिषवणं मधुमूलफलाशनः।
नायोध्यायै न राज्याय स्पृहये च त्वया सह॥३०॥

अर्थ–हे वनिते! तू हाथियों को पुरवासी लोगों के समान, पर्वत को अयोध्या के तुल्य और इस नदी को सरयू की न्याईं समझ, हे वैदेहि! धर्मात्मा लक्ष्मण मेरे समीप स्थित और तू मेरी प्रीति को उत्पन्न करती हुई मेरे अनुकूल है, सो मैं तेरे साथ तीनों सवनों में स्नान करके मधु, मूल तथा फल खाता हुआ न अयोध्या और न राज्य की इच्छा करता हूं॥

इति षट्षष्ठितमः सर्गः

अथ सप्तषष्ठितमः सर्गः

सं०–अब भरत की सेना देखकर लक्ष्मण के क्रोध का वर्णन करते हैं:–

एतस्मिन्नन्तरे त्रस्ताः शब्देन महता ततः ।
अर्दिता यूथपा मत्ताः स्वयूथाद्दुद्रुवुर्दिशः ॥१॥
स तं सैन्यसमुद्भूतं शब्दं शुश्राव राघवः ।
तांश्च विप्रद्रुतान्सर्वान्यूथपानन्ववैक्षत ॥२॥
तांश्च विप्रद्रुतान्दृष्ट्वा तं च श्रुत्वा महास्वनम्।
उवाच रामः सौमित्रिं लक्ष्मणं दीप्ततेजसम् ॥३॥

अर्थ—इसी अवसर में भरत की सेना के महान् शब्द से भयभीत हुए मत्त हाथी अपने २ यूथ से पृथक् होकर इधर उधर भागने लगे, राम ने उन सब भागते हुए हाथियों को देखा और सैनिकों से उत्पन्न हुए शब्द को सुना,उन भागते हुए हाथियों को देखकर और उस बड़े शब्द को सुनकर राम ने सुमित्रा के पुत्र तेजस्वी लक्ष्मण से कहा किः—

हन्त लक्ष्मण पश्येह सुमित्रा सुप्रजास्त्वया ।
भीमस्तनितगम्भीरं तुमुलः श्रूयते स्वनः ॥४॥
राजा वा राजपुत्रो वा मृगयामटते वने ।
अन्यद्वा श्वापदं किंचित्सौमित्रे ज्ञातुमर्हसि ॥५॥

अर्थ—हे लक्ष्मण ! तुम से सुमित्रा उत्तम सन्तान वाली है, तू देख यह भयंकर गर्ज के समान गम्भीर ध्वनि कहां से सुनाई देती है,हे लक्ष्मण ! यह कोई राजा वा राजपुत्र वन में आखेट=शिकार खेलता है अथवा कोई श्वापद=सिंहादि है जिसके भय से सब वन के पशु भाग रहे हैं, इसको जानना चाहिये ॥

स लक्ष्मणः संत्वरितः सालमारुह्य पुष्पितम् ।
प्रेक्षमाणो दिशः सर्वाः पूर्वां दिशमवैक्षत ॥ ६ ॥
उदङ्मुखः प्रेक्षमाणो ददर्श महतीं चमूम् ।
गजाश्वरथसंबाधां यत्तैर्युक्तां पदातिभिः ॥ ७ ॥
तामश्वरथसम्पूर्णां रथध्वजविभूषिताम् ।
शशंस सेनां रामाय वचनं चेदमब्रवीत् ॥ ८ ॥

अर्थ—वह लक्ष्मण राम की आज्ञा पाते ही तुरन्त फूले हुए साल के वृक्ष पर चढ़गया और सब ओर देखते हुए उन्होंने प्रथम पूर्वदिशा को देखा, फिर उत्तर की ओर देखते हुए उन्होंने बड़ी भारी सेना देखी जो हाथी, घोड़े तथा रथों से भरपूर और सजे हुए प्यादों से युक्त है, घोड़े तथा रथों से पूर्ण और रथों के झुण्डों से शोभायमान उस बड़ी सेना को देखकर लक्ष्मण ने राम से कहा कि :—

अग्निं संशमयत्वार्यः सीता च भजतां गुहाम् ।
सज्जं कुरुष्व चापं च शरांश्च कवचं तथा ॥ ९ ॥
तं रामः पुरुषव्याघ्रो लक्ष्मणं प्रत्युवाच ह ।
अङ्गावेक्षस्व सौमित्रे कस्येमां मन्यसे चमूम् ॥१०॥

अर्थ—हे आर्य्य राम ! अग्नि को ठण्डा करदें=कर्मकाण्ड छोड़दें तथा सीता गुफा में चलीजाय और आप धनुष, बाण तथा कवच को सम्भालें, फिर पुरुषश्रेष्ठ राम ने लक्ष्मण से पूछा कि हे प्रिय लक्ष्मण ! ध्यानपूर्वक देख यह किसकी सेना प्रतीत होती है ॥

एवमुक्तस्तु रामेण लक्ष्मणो वाक्यमब्रवीत् ।
दिधक्षन्निव तां सेनां रुषितः पावको यथा ॥ ११ ॥
सम्पन्नं राज्यमिच्छंस्तु व्यक्तं प्राप्याभिषेचनम् ।
आवां हन्तु समभ्येति कैकेय्या भरतः सुतः ॥१२॥

अर्थ–राम के उक्त प्रकार कथन करते पर लक्ष्मण उस सेना को मानो अग्नि की भांति दग्ध करने की इच्छा वाला हुआ २ क्रुद्ध होकर बोला कि अभिषेक को प्राप्त होकर पूर्णराज्य की कामना वाला कैकेयी का पुत्र भरत निःसन्देह हम दोनों को सेना लेकर मारने के लिये आया है ॥

एष वै सुमहाञ्छ्रीमान्विपटी संप्रकाशते ।
विराजत्युत्युज्वलस्कन्धः कोविदारध्वजो रथे ॥१३॥
गृहीतधनुषावावां गिरिं वीर श्रयावहे ।
अथ वेहैव तिष्ठावः सन्नद्धावुद्यतायुधौ ॥ १४ ॥
अपि नौ वशमागच्छेत्कोविदारध्वजो रणे ।
अपि द्रक्ष्यामि भरतं यत्कृते व्यसनं महत् ॥ १५ ॥

अर्थ–आप देखें, यह जो फल फूलादिकों से युक्त उज्वल स्कन्धों वाला बहुत ऊंचा शोभायमान वृक्ष है, इसके सन्मुख रथ पर कोविदार झण्डे वाला भरत है, हे वीर ! अब उचित यह है कि हम धनुष पकड़कर पर्वत का आश्रय लें अथवा यहां ही शस्त्र उठाकर युद्ध के लिये सन्नद्ध हो खड़े रहें, और ऐसा यत्न करें कि यह कोविदार झण्डा रण में हमारे हाथ लगे, मैं उस भरत को देखुंगा जिसके कारण आपको यह भारी विपद् प्राप्त हुई है॥

अद्येमं संयतं क्रोधमसत्कारं च मानद ।
मोक्ष्यामि शत्रुसैन्येषु कक्षेष्विव हुताशनम् ॥१६॥
अद्यैव चित्रकूटस्य काननं निशितैः शरैः ।
छिन्दञ्छत्रुशरीराणि करिष्ये शोणितोक्षितम् ॥१७॥
शरैर्निर्भिन्न हृदयान्कुंजरांस्तुरगांस्तथा ।
श्वापदाः परिकर्षन्तु नरांश्च निहतान्मया ॥१८॥

अर्थ–हे मान के देने वाले राम! अपने में निरुद्ध=रोके हुए क्रोध तथा अपमान से इस सेना को इस प्रकार दग्ध करूंगा जैसे अग्नि फूस को जलाती है, तीक्ष्ण तीरों से शत्रुओं के शरीरों को छेदता हुआ अभी चित्रकूट के वन को रुधिर से सिञ्चन कर दूंगा, और मेरे तीरों से दग्ध हुए हृदय वाले हाथी, घोड़े तथा मुझसे मारे हुए मनुष्यों को श्वापद=कुत्ते खींच २ कर लेजावेंगे॥

शराणां धनुषश्चाहमनृणोऽस्मिन्महावने ।
स सैन्यं भरतं हत्वा भविष्यामि न संशयः ॥१९॥

अर्थ–इस महावन में मैं शर तथा धनुष से सेनासहित भरत को मार उऋण होऊंगा, इसमें संशय नहीं ॥

इति सप्तषष्ठितमः सर्गः

अथ अष्टषष्ठितमः सर्गः

सं०–अब राम का लक्ष्मण को आश्वासन देना कथन करते हैंः—

सुसंरब्धं तु भरतं लक्ष्मणं क्रोधमूर्च्छितम् ।
रामः परिसांत्व्याथ वचनं चेदमब्रवीत् ॥ १ ॥

अर्थ–भरत के साथ युद्ध के लिये संनद्ध हुए क्रोध से मूर्छित लक्ष्मण को राम आश्वासन देते हुए बोले कि :—

किमत्र धनुषा कार्यमसिनावासचर्मणा ।
महाबले महोत्साहे भरते स्वयमागते ॥ २ ॥
पितुः सत्य प्रतिश्रुत्य हत्वा भरतमाहवे ।
किं करिष्यामि राज्येन सापवादेन लक्ष्मण ॥३॥
यद्द्रव्यं बान्धवानां वा मित्राणां वा क्षये भवेत् ।
नाहं तत्प्रतिगृह्णीयां भक्ष्यान्विषकृतानिव ॥ ४ ॥

अर्थ–हे लक्ष्मण ! यहां धनुष तथा ढ़ाल सहित तलवार का क्या प्रयोजन जब महाबली परमोत्साही भरत स्वयं आया है, "पिता को सत्यप्रतिज्ञ बनाउंगा " यह प्रतिज्ञा करके अब मैं भरत को युद्ध में मारकर अपवाद वाले राज्य को कैसे भोगुंगा, बान्धवों तथा मित्रों के क्षय से प्राप्त हुए धन को विषयुक्त भक्ष्य की भांति कदापि स्वीकार न करुंगा ॥

धर्ममर्थं च कामं च पृथिवीं चापि लक्ष्मण ।
इच्छामि भवतामर्थे एतत्प्रतिशृणोमि ते ॥ ५ ॥
भ्रातृणां संग्रहार्थं च सुखार्थं चापि लक्ष्मण ।
राज्यमप्यहमिच्छामि सत्येनायुधमालभे ॥ ६ ॥
नेयं मम मही सौम्य दुर्लभा सागराम्बरा ।
नहीच्छेयमधर्मेण शक्रत्वमपि लक्ष्मण ॥ ७ ॥

अर्थ–हे लक्ष्मण ! मेरी यह प्रतिज्ञा सुन, मैं धर्म, अर्थ, काम और पृथिवी को आप सबके लिये चाहता हूं अपने ही लिये

नहीं, हे लक्ष्मण ! मैं इस आयुध=शस्त्र को छूकर सत्य कहता हूं कि राज्य भी आप सब भाइयों के सुख के लिये ही चाहता हूं, हे सौम्य ! समुद्र से ढकी हुई यह पृथिवी मेरे लिये दुर्लभ नहीं, परन्तु मैं अधर्म से इन्द्रासन को भी ग्रहण नहीं करना चाहता ॥

यद्विना भरतं त्वां च शत्रुघ्नं चापि मानद ।
भवेन्मम सुखं किंचिद्भस्म तत्कुरुतां शिखी ॥८॥
मन्येऽहमागतोऽयोध्यां भरतो भ्रातृवत्सलः ।
मम प्राणै प्रियतरः कुलधर्ममनुस्मरन् ॥९॥
श्रुत्वा प्रव्राजितं मां हि जटावल्कलधारिणम् ।
जानक्या सहितं वीर त्वया च पुरुषोत्तम ॥१०॥

अर्थ—हे मान के देने वाले लक्ष्मण ! जो सुख तुम्हारे, भरत और शत्रुघ्न के विना हो उसको अग्नि भस्म करदे, मैं समझता हूं कि भ्रातृवत्सल=भाई से प्यार करने वाला भरत अयोध्या में आया और वहां प्राणों से प्रियतर मुझे न देखकर अपने कुल तथा धर्म का स्मरण करता हुआ, तथा मुझको जटा वल्कल धारण कर जानकी और तुम्हारे सहित वन को गया हुआ सुनकर यहां आया है ॥

स्नेहेनाक्रान्तहृदयः शोकेनाकुलितेन्द्रियः ।
द्रष्टुमभ्यागतो ह्येष भरतो नान्यथागतः ॥११॥
अम्बां च केकयीं रुष्य भरतश्चाप्रियं वदन् ।
प्रसाद्य पितरं श्रीमान् राज्यं मे दातुमागतः ॥१२॥

प्राप्तकालं यथैषोऽस्मान्भरतो द्रष्टुमर्हति ।
अस्मासु मनसाप्येष नाहितं किंचिदाचरेत् ॥१३॥

अर्थ—स्नेह से भरे हुए हृदय तथा शोक से आकुल इन्द्रियों वाला भरत हमको यहां देखने के लिये आया है अन्यथा नहीं, माता कैकेयी को अप्रिय कह रुष्ट करके और पिता को प्रसन्न करता हुआ श्रीमान् भरत मुझको राज्य देने की इच्छा से आया है, भरत हमको देखने योग्य है अर्थात् उससे हमको मिलना उचित है, मुझे विश्वास है कि वह हमारे विषय में कभी मन से भी अनिष्ट चिन्तन न करेगा॥

विप्रियं कृतपूर्वं ते भरतेन कदानु किम् ।
ईदृशं वा भयं तेऽद्य भरतं यद्विशङ्कसे ॥१४॥
नहि ते निष्ठुरं वाच्यो भरतो नाप्रियं वचः ।
अहं ह्यप्रियमुक्तः स्यां भरतस्याप्रिये कृते ॥१५॥
कथं नु पुत्राः पितरं हन्युः कस्यांचिदापदि ।
भ्राता वा भ्रातरं हन्यात्सौमित्रे प्राणमात्मनः॥१६॥

अर्थ—क्या भरत ने कभी कोई तेरा अहित किया है अथवा तेरे लिये कभी भयरूप हुआ है जो तू आज भरत पर शङ्का करता है, भरत को तुम्हें कठोर न कहना चाहिये और न अप्रिय बोलना चाहिये, यदि तू भरत को अप्रिय कहेगा तो वह मानो तैने मुझे ही कहा, हे लक्ष्मण ! क्या पुत्र कभी किसी विपत्ति में पिता का हनन करसक्ते हैं अथवा अपना प्राणप्रिय भ्राता भाई को कभी मार सकता है, कदापि नहीं ॥

यदि राज्यस्य हेतोस्त्वमिमां वाचं प्रभाषसे ।
वक्ष्यामि भरतं दृष्ट्वा राज्यमस्मै प्रदीयताम् ॥१७॥
उच्यमानो हि भरतो मया लक्ष्मण तद्वचः ।
राज्यमस्मै प्रयच्छेति बाढमित्येव मंस्यते ॥१८॥
तथोक्तो धर्मशीलेन भ्राता तस्य हिते रतः ।
लक्ष्मणः प्रविवेशेव स्वानि गात्राणि लज्जया॥१९॥

अर्थ–यदि तू राज्य के कारण इस प्रकार बोलता है तो मैं भरत को मिलकर कहूंगा कि इसको राज्य दे दें, हे लक्ष्मण ! मुझे विश्वास है कि जब मैंने भरत को तुम्हें राज्य देने के लिये कहा तो वह "बहुत अच्छा देदुंगा" ऐसा ही मानेगा, धर्मशील राम ने जब भरत के हित में रत हुए उक्त प्रकार कहा तब लक्ष्मण लज्जा से मानो अपने अंगों में प्रविष्ट हुआ अर्थात् शान्त होगया ॥

तद्वाक्यं लक्ष्मणः श्रुत्वा व्रीडितः प्रत्युवाच ह ।
त्वा मन्ये द्रष्टुमायातः पिता दशरथः स्वयम्॥२०॥
व्रीडितं लक्ष्मणं दृष्ट्वा राघवः प्रत्युवाच ह ।
एष मन्ये महाबाहुरिहास्मान्द्रष्टुमागतः ॥ २१ ॥

अर्थ–राम के उक्त वाक्य सुनकर लज्जित हुआ लक्ष्मण बोला कि मैं जानता हूं आपको देखने के लिये स्वयं पिता दशरथ आये हैं, लक्ष्मण को लज्जित हुआ देखकर राम ने कहा सम्भव है महाबाहु राजा हमको देखने आये हों ॥

एतौ तौ संप्रकाशेते गोत्रवन्तौ मनोरमौ ।
वायुवेग समौ वीरौ जवनौ तुरगोत्तमौ ॥ २२ ॥

स एष सुमहाकायः कम्पते वाहिनीमुखे ।
नागःशत्रुंजयो नाम वृद्धस्तातस्य धीमतः ॥२३॥
न तु पश्यामि तच्छत्रं पाण्डुरं लोकविश्रुतम् ।
पितुर्दिव्यं महाभाग संशयो भवतीह मे ॥२४॥

अर्थ—वह दोनों वायु के वेग समान वेग वाले, मन को प्रिय उच्चकुल के उत्तम घोड़े प्रतीत होते हैं, वह बहुत बड़े शरीर वाला शत्रुंजय नामा पिता का वृद्ध हाथी सेना के आगे झूमता हुआ आरहा है, परन्तु हे महाभाग ! लोकप्रसिद्ध पिता का वह दिव्य श्वेत छत्र नहीं देखता इससे मुझे पिता के होने में संशय है॥

वृक्षाग्रादवरोह त्वं कुरु लक्ष्मण मद्वचः ।
इतीव रामो धर्मात्मा सौमित्रिं तमुवाच ह ॥२५॥
अवतीर्य तु सालाग्रात्तस्मात्स समितिञ्जयः ।
लक्ष्मणः प्राञ्जलिर्भूत्वातस्थौ रामस्य पार्श्वतः॥२६॥

अर्थ—यह सुनकर धर्मात्मा राम लक्ष्मण से बोले कि हे लक्ष्मण ! तू मेरा कहा कर वृक्ष से नीचे उतर आ, तब युद्धविशारद लक्ष्मण उस साल के वृक्ष से नीचे उतर हाथ जोड़कर राम के समीप आ खड़ा हुआ ॥

इति अष्टषष्ठितमः सर्गः

अथ एकोनसप्ततितमः सर्गः

सं०—अब भरत का राम को मिलना कथन करते हैं :—

भरतेनाथ संदिष्टा संमर्दो न भवेदिति ।
समन्तात्तस्य शैलस्य सेना वासमकल्पयत् ॥ १ ॥
अध्यर्धमिक्ष्वाकुचमूर्योजनं पर्वतस्य ह ।
पार्श्वे न्यविशदावृत्तगजवाजिनराकुला ॥ २ ॥
निविष्टायां तु सेनायामुत्सुको भरतस्ततः ।
जगाम भ्रातरं द्रष्टुं शत्रुघ्नमनुदर्शयन् ॥ ३ ॥

अर्थ–राम का आश्रम मर्दन न हो, यह विचारकर भरत ने सैनिक लोगों को आज्ञा दी कि आश्रम से दूर इस पर्वत के चारो ओर सेना अपने डेरे जमावे, भरत की आज्ञानुसार उस हाथी, घोड़े, रथ तथा मनुष्यों से भीड़ वाली इक्ष्वाकुओं की सेना ने पर्वत के किनारे २ छः कोस में डेरे डाल दिये, सेना के डेरे डालने पर राम के दर्शन की उत्कण्ठा वाला भरत शत्रुघ्न को आश्रम के चिन्हादि दिखलाता हुआ भाई की खोज में गया ॥

ऋषिं वसिष्ठं संदिश्य मातॄर्मे शीघ्रमानय ।
इति त्वरितमग्रे स जगाम गुरुवत्सलः ॥ ४ ॥
सुमन्त्रस्त्वपि शत्रुघ्नमदूरादन्ववर्त्तत ।
रामदर्शनजस्तर्षो भरतस्येव तस्य च ॥ ५ ॥

अर्थ–गुरुओं का प्यारा भरत ऋषि वसिष्ठ को संदेशा देकर कि आप मेरी माताओं को शीघ्र ही ले आवें, आप पहले ही चलपड़ा, और सुमन्त्र भी शत्रुघ्न के साथ २ ही चल पड़े, क्योंकि भरत की भांति उनको भी शीघ्र ही राम के दर्शन की अभिलाषा थी ॥

गच्छन्नेवाथ भरतस्तापसालयसंस्थिताम् ।
भ्रातुः पर्णकुटी श्रीमानुटजं च ददर्श ह ॥ ६ ॥
स लक्ष्मणस्य रामस्य ददर्शाश्रममेयुषः ।
कृतं वृक्षेष्वभिज्ञानं कुशचीरैः क्वचित्क्वचित् ॥ ७ ॥

अर्थ–इसके अनन्तर चलते २ भरत ने तपस्वियों के घरों की न्याईं बनी हुई भाई राम की पर्णकुटी और सीता के निवासार्थ उटज=सुरक्षित कुटिया देखी, और आश्रम में जाने आने के लिये राम लक्ष्मण ने जो कहीं २ वृक्षों पर कुश और चीरों के निशान लगा रखे थे वह भी देखे ॥

गच्छन्नेव महाबाहुर्द्युतिमान्भरतस्तदा ।
शत्रुघ्नं चाब्रवीद्धृष्टस्तानमात्यांश्च सर्वशः ॥ ८ ॥
उच्चैर्बद्धानि चीराणि लक्ष्मणेन भवेदयम् ।
अभिज्ञातकृतः पन्था विकाले गन्तुमिच्छता ॥९॥

अर्थ–और महाबाहु तेजस्वी भरत ने चलते २ ही प्रसन्न होकर शत्रुघ्न और मन्त्रियों से कहा कि यहां ऊंचे २ चीर विकाल=अन्धेरे में जाने आने के लिये लक्ष्मण ने निशान बांध दिये हैं ॥

यमेवाधातुमिच्छन्ति तापसाः सततं वने ।
तस्यासौ दृश्यते धूमः संकुलः कृष्णवर्त्मनः ॥१०॥
अत्राहं पुरुषव्याघ्रं गुरुसत्कारकारिणम् ।
आर्यं द्रक्ष्यामि संहृष्टं महर्षिमिव राघवम् ॥ ११ ॥

प्रागुदक्प्रवणां वेदिं विशालां दीप्तपावकाम् ।
ददर्श भरस्तत्र पुण्यां रामनिवेशने ॥ १२ ॥

अर्थ—तपस्वी जन जिस अग्नि को वन में निरन्तर स्थापन करने की इच्छा रखते हैं उसी अग्नि का यह धूमपुंज दिखाई देता है, मैं यहां गुरुओं का सत्कार करने वाले, महर्षि की भांति प्रसन्न आर्य्य राम को अवश्य देखुंगा, इस प्रकार विचार करते हुए वहां राम की कुटी में भरत ने पूर्व तथा उत्तर की ओर झुकी हुई प्रज्वलित अग्नि वाली विशाल पवित्र वेदी को देखा ॥

निरीक्ष्य स मुहूर्तं तु ददर्श भरतो गुरुम् ।
उटजे राममासीनं जटामण्डलधारिणम् ॥ १३ ॥
कृष्णजिनधरं तं तु चीरवल्कलवाससम् ।
सिंहस्कन्धं महाबाहुं पुण्डरीकनिभेक्षणम् ॥१४॥
तं दृष्ट्वा भरतः श्रीमान्दुःखमोहपरिप्लुतः ।
अभ्यधावत धर्मात्मा भरतः केकयी सुतः ॥१५॥

अर्थ—और वेदी के देखने से कुछ काल पीछे भरत ने उस कुटिया में बैठे हुए जटामण्डलधारी गुरु राम को देखा, जो कृष्णमृग का मृगान धारण किये हुए, चीर तथा वल्कल के वस्त्र पहने हुए, सिंह के तुल्य कन्धों वाले, बड़ी भुजाओं वाले और कमलसदृश नेत्रों वाले वहां विराजमान थे, राम को देखकर कैकेयीसुत धर्मात्मा भरत दुःख तथा मोह से आकुल हुआ तुरन्त ही भागकर उनके निकट गया ॥

दुःखाभितप्तो भरतो राजपुत्रो महाबलः ।
उक्त्वार्येति सकृद्दीनं पुनर्नोवाच किंचन ॥१६॥

शत्रुघ्नश्चापि रामस्य ववन्दे चरणौ रुदन् ।
तावुभौ च समालिंग्य रामोऽप्यश्रूण्यवर्तयत् ॥१७॥

अर्थ—और दुःख से तप्त हुए महाबली राजपुत्र भरत ने एकवार दीनस्वर से "आर्य्य" कहकर फिर कुछ नहीं बोल सका, शत्रुघ्न ने भी रुदन करते हुए राम के चरणों की बन्दना की और उन दोनों को आलिङ्गन कर राम के आंसु बहने लगे॥

इति एकोनसप्ततितमः सर्गः

अथ सप्ततितमः सर्गः

सं०—अब राम का भरत से कुशल पूछना और भरत की राम के प्रति याचना कथन करते हैं:—

जटिलं चीरवसनं प्राञ्जलिं पतितं भुवि ।
भ्रातरं भरतं रामः परिजग्राह वाणिना ॥ १ ॥
आघ्राय रामस्तं मूर्ध्नि परिष्वज्य च राघवम् ।
अंकेभरतमारोप्य पर्यपृच्छत सादरम् ॥ २ ॥

अर्थ—जटाधारी चीर पहने तथा हाथ जोड़े पृथिवी पर गिरे हुए भाई भरत को राम ने हाथ से पकड़कर उठाया, और उसके सिर को चूमकर गले लगा लिया, फिर गोद में लेकर सादर पूछने लगे कि:—

कच्चिच्छुश्रूषसे तात पितुः सत्यपराक्रम ।
कच्चिद्दशरथो राजा कुशली सत्यसंगरः ॥ ३ ॥

स कच्चिद्ब्राह्मणो विद्वान्धर्मनित्यो महाद्युतिः।
इक्ष्वाकूणामुपाध्यायो यथावत्तात पूज्यते ॥ ४ ॥

अर्थ–हे तात ! तुम सत्यपराक्रमयुक्त पिता की भले प्रकार सेवा करते हो ? और वह सत्यप्रतिज्ञ महाराज दशरथ कुशल-पूर्वक हैं ? और हे तात ! धर्मप्रधान महातेजस्वी ब्राह्मण वसिष्ठ जो इक्ष्वाकुओं के उपाध्याय=गुरु हैं, उनका यथावत् सन्मान करते हो ? ॥

तात कच्चिच्च कौसल्या सुमित्रा च प्रजावती।
सुखिनी कच्चिदार्या च देवी नन्दति कैकयी॥५॥
कच्चिद्विनयसम्पन्नः कुलपुत्रो बहुश्रुतः।
अनसूयुरनुद्रष्टा सत्कृतस्ते पुरोहितः॥६॥

अर्थ–हे तात ! कौसल्या, उत्तम सन्तान वाली सुमित्रा और आर्या कैकेयी देवी आनन्दपूर्वक हैं ? और विनयसम्पन्न, बहुश्रुत अनसूय=निन्दा से रहित, अनुद्रष्टा=तुम्हारे धर्म का देखने वाला कुलपुत्र=वसिष्ठ के पुत्र अपने पुरोहित का तो सत्कार करते हो ?॥

कच्चिदग्निषु ते युक्तो विधिज्ञो मतिमानृजुः।
हुतं च होष्यमाणं च कालेवेदयते सदा॥७॥
कच्चिद्देवान्पितृन्भृत्यान्गुरून्पितृ समानपि।
वृद्धांश्च तात वैद्यांश्चब्राह्मणांश्चाभिमन्यसे॥८॥

अर्थ–और हे तात ! जो अग्निहोत्रादि कर्मों की विधि जानने वाला बुद्धिमान् पुरोहित तुमने नियत किया है, वह नियत समय पर हवन करके तुमको यज्ञादिकों की विधि सदा बतलाता

है ? हे तात ! देवता, पितर, भृत्य और पिता के समान गुरु, वृद्ध, वैद्य और ब्राह्मणों का तो तुम विधिपूर्वक मान करते हो ? ॥

इष्वस्त्रवरसम्पन्नमर्थशास्त्रविशारदम् ।
सुधन्वानमुपाध्यायं कच्चित्त्वं तात मन्यसे ॥९॥
कच्चिदात्मसमाः शूराः श्रुतवन्तो जितेन्द्रियाः ।
कुलीनाश्चेंगितज्ञाश्चकृतास्ते तातमन्त्रिणः ॥१०॥

अर्थ—और हे तात ! तीक्ष्ण तीर और अस्त्रों से सम्पन्न अर्थशास्त्र में निपुण उपाध्याय=धनुर्वेदाचार्य्य सुधन्वा का तो मान्य करते हो, हे तात ! अपने समान शूरवीर, शास्त्रअध्ययन किये हुए, जितेन्द्रिय, कुलीन तथा मन की बात जानने वाले मंत्री आपने नियत किये हैं ? ॥

मन्त्रो विजयमूलं हि राज्ञां भवति राघव ।
सुसंवृतो मन्त्रि धुरैरमत्यैः शास्त्रकोविदैः ॥११॥
कच्चिन्निद्रावशंनैषिकच्चित्कालेवबुध्यसे ।
कच्चिच्चापररात्रेषुचिंयतस्यर्थं नैपुणम् ॥१२॥

अर्थ—हे राघव ! राजाओं के लिये मंत्र ही विजय का मूल होता है, इसलिये राजा को चाहिये कि शास्त्रों को जानने वाले पण्डित मन्त्रियों से सदा मन्त्र=गुप्त विचार किया करे, सन्ध्याकाल में शयन तो नहीं करते, समय पर जागते हो और पिछली रात ब्रह्ममुहूर्त्त में उठकर अपना अर्थ सिद्ध होने की रीति विचारते हो ? ॥

कच्चिन्मंत्रयसेनैकः कच्चिन्न बहुभिः सह ।
कच्चित्ते मंत्रितो मन्त्रो राष्ट्रं न परिधावति ॥१३॥

कच्चिदर्थं विनिश्चित्य लघुमंत्र महोदयम् ।
क्षिप्रमारभसे कर्म न दीर्घयसि राघव ॥ १४ ॥

अर्थ–गुप्त विचार एक के साथ करते हो बहुतों के साथ तो नहीं करते जो तुम्हारा मन्त्र राज्यभर में घूमता फिरे, जो कार्य्य करना हो उसका प्रथम ही निश्चय करके थोड़े उपाय में बड़े फल वाले कार्य्य को शीघ्र प्रारम्भ करदेते हो बहुत विलम्ब तो नहीं करते ? ॥

कच्चिन्नुसुकृतान्येव कृतरूपाणि वा पुनः ।
विदुस्तेसर्वकार्य्याणि न कर्त्तव्यानिपार्थिवाः ॥१५॥

अर्थ–जो कोई उत्तम कर्म जिनको तुम करते अथवा करने की इच्छा करते हो तो उन सब कर्तव्य कर्मों को मण्डलेश्वर=छोटे २ राजा जो तुम्हारे राज्य में हैं वह तो नहीं जान लेते ॥

कच्चिन्न तर्कैर्युक्त्या वा ये चाप्य परिकीर्त्तिताः ।
त्वयावातववामात्यै बुध्यं ते तात मंत्रितम् ॥१६॥
कच्चित्सहस्रैर्मूर्खाणामेकमिच्छसि पण्डितम् ।
पण्डितो ह्यर्थकृच्छ्रेषु कुर्यान्निःश्रेयसंमहत् ॥१७॥

अर्थ–हे तात ! तुम्हारे विना कहे सुने तर्क द्वारा तथा अन्य युक्ति से कोई तुम्हारे अभिप्राय को तो नहीं जान लेता और तुम अथवा तुम्हारे मन्त्री तो दूसरे के मन्त्र को युक्तिपूर्वक जान लेते हैं ? और तुम सहस्र मूर्खों को छोड़ एक पण्डित को चाहते हो वा नहीं, क्योंकि अर्थ का ज्ञाता पण्डित ही कर्तव्याकर्तव्य को जानकर कल्याणकारक उपदेश करता है ॥

सहस्राण्यपि मूर्खाणां यद्युपास्ते महीपतिः।
अथवाप्य युतान्येव नास्ति तेषु सहायता ॥१८॥
एकोऽप्यमात्यो मेधावी शूरो दक्षो विचक्षणः।
राजानं राजपुत्रं वा प्रापयेन्महतीं श्रियम् ॥१९॥
कच्चिन्मुख्यामहत्स्वेव मध्यमेषु च मध्यमः।
जघन्याश्च जघन्येषु भृत्यास्ते तात योजिताः॥२०॥
आमात्यानुपधातीतान्पितृपैतामहाञ्शुचीन्।
श्रेष्ठाञ्छ्रेष्ठेषु कच्चित्त्वं नियोजयसि कर्मसु॥२१॥

अर्थ—जो राजा सहस्र अथवा दशसहस्र मूर्खों का आदर कर उनको अपने समीप रखता है उनसे उसको कुछ भी सहायता नहीं मिलती और बुद्धिमान्, शूरवीर तथा प्रत्येक कार्य्य करने में चतुर एक ही मन्त्री राजा वा राजपुत्र को महान् ऐश्वर्य्य प्राप्त कराता है, हे तात ! राजा को चाहिये कि महत्कार्य्यार्थ उत्तम कर्मचारी, मध्यम कार्य्य के लिये मध्यम कर्मचारी और लघु= छोटे कार्य्यार्थ सामान्य कर्मचारी नियत करे, सो आप ऐसा करते हैं वा नहीं, और जो सुपरीक्षित पुराने पितापितामहादिकों के कपटरहित श्रेष्ठ मन्त्री हैं उनको बड़े कामों में नियोजित करते हो वा नहीं ? उनसे अवश्य सम्मति लेनी चाहिये ॥

कच्चिद्धृष्टश्च शूरश्चधृतिमान्मतिमाञ्छुचिः।
कुलीनश्चानुरक्तश्च दक्षः सेनापतिः कृतः ॥२२॥
बलवंतश्चकच्चित्तेमुख्यायुद्धविशारदाः।
दृष्टापदानाविक्रान्तास्त्वयासत्कृत्यमानिताः॥२३॥

कच्चिद्बलस्य भक्तं च वेतनं च यथोचितम् ।
संप्राप्तकालं दातव्यं ददासि न विलम्ब से ॥२४॥

अर्थ—और तुमने सेनापति तो प्रसन्नवदन,शूरवीर, बुद्धिमान्, धैर्य्यवान्, पवित्रान्तःकरण, कुलीन, स्वामी के कार्य्य में सदैव तत्पर और चतुर नियत किया है, तथा जो युद्ध में विशारद मुखिया योद्धा लोग हैं उनका प्रिय वचनों तथा दान से सत्कार करते हो वा नहीं, छोटे बड़े सब सैनिक लोगों को वेतन तो यथायोग्य देते हो, और उनका वेतन ठीक तिथि को देदेते हो विलम्ब तो नहीं करते ॥

कच्चिज्जानपदेविद्वान् दक्षिणः प्रतिभानवान् ।
यथोक्तवादी दूतस्ते कृतो भरत पण्डितः ॥ २५ ॥
कच्चिदष्टादशान्येषु स्वपक्षेदशपंच च ।
त्रिभिस्त्रिभिरविज्ञातैर्वेत्सितीर्थानि चारणैः ॥ २६ ॥

अर्थ—हे भरत ! कोई राजनीति का जानने वाला विद्वान्, चतुर, प्रतिभाशाली, यथोक्तवादी=ज्यों का त्यों सन्देश कहने वाला पण्डित दूत नियत किया है, और स्वपक्ष=अपने पक्ष के पन्द्रा तथा दूसरे पक्ष के अठारह*अधिकारी नियत कर उनके

* (१) मन्त्री (२) पुरोहित (३) युवराज (४) सेनापति (५) द्वारपाल (६) अन्तःपुर के रक्षक (७) बन्धनागाराधिपति=जेलखाने का दारोगा (८] कोषाध्यक्ष (९) राजा की आज्ञानुसार अन्यों पर शासन करने वाला (१०) राजकीय वकील (११) धर्माध्यक्ष (१२) व्यवहारों का निर्णेता(१३) वेतन बांटने वाला(१४)नगराध्यक्ष=कोतवाल (१५) शिल्पी मकान आदि बनाने वाला (१६) दुष्टों को दण्डदाता=जज आदि(१७)राज्यसीमा रक्षक(१८)जल,पर्वत,वन तथा स्थल के किलों का रक्षक और मन्त्री, पुरोहित तथा युवराज को छोड़कर अपने पक्ष के शेष पन्द्रा ॥

लिये तीन २ दूत रखते हो जो उनके कामों का निरीक्षण करते रहें॥

कच्चिद्व्यपास्तानहितान्प्रतियातांश्च सर्वदा ।
दुर्बलाननवज्ञाय वर्तसे रिपुसूदन ॥ २७ ॥
कच्चिन्न लोकायतिकान्ब्राह्मणांस्तात सेवसे ।
अनर्थ कुशला ह्येते बालाः पण्डितमानिनः ॥२८॥

अर्थ–हे रिपुसूदन ! राज्य का सर्वदा अनहित करने वाले जिनको देश से बाह्य करादिया है उनको दुर्बल देखकर फिर उनके साथ वर्तते तो नहीं, और हे तात ! केवल तर्क का ही अवलम्बन करने वाले नास्तिक जो परलोक को नहीं मानते उन ब्राह्मणों की तो सेवा नहीं करते, क्योंकि ऐसे अनर्थग्राही लोग अपने को पण्डित मानते हैं परन्तु वास्तव में बाला=मूर्ख होते हैं ? ॥

कच्चित्तेदयिताः सर्वे कृषि गोरक्ष्य जीविनः ।
वार्तायां साम्प्रतं तात लोकोयं सुखमेधते ॥ २९ ॥

अर्थ–हे तात ! खेती करने वाले तथा गौओं के रक्षक और वाणिज्यादि से उपजीविका करने वाले तो देश में सुखपूर्वक वास करते हैं ॥

आयस्ते विपुलः कच्चित्कच्चिदल्पतरो व्ययः ।
अपात्रेषु न ते कच्चित्कोशो गच्छति राघव ॥३०॥

अर्थ–हे भरत ! तेरी आय=बड़ी आमदनी से व्यय तो अल्पतर=बहुत थोड़ा है और वह व्यय का कोष कहीं अपात्रों तो नहीं जाता अर्थात् कुमार्ग में तो खर्च नहीं होता ॥

अच्चिदार्योऽपि शुद्धात्मा क्षारितश्चापकर्मणा ।
अदृष्टः शास्त्रकुशलैर्न लोभाद्बध्यते शुचिः ॥३१॥

अर्थ—हे भरत ? तुम्हारे राज्य में जो पुरुष आर्य्य, शुद्धान्तःकरण हैं तथा जिन्होंने जान बूझकर कोई अपकर्म=निन्दित काम नहीं किया, न उधर देखा है और जो शास्त्रज्ञ हैं, ऐसे पवित्र पुरुषों को कहीं लोभवशात् बांध तो नहीं लेते॥

गृहीतश्चैव पृष्ठश्च कालेदृष्टः सकारणः ।
कच्चिन्नमुच्यते चोरो धनलोभान्नरर्षभ ॥ ३२ ॥

अर्थ—हे नरर्षभ ! चोर को चोरी काल में देखकर, पूछने पर स्वीकार करलेने और उसके सब कारण भी विदित होजाने पर पकड़े हुए किसी चोर को धन के लोभ से छोड़ तो नहीं देते॥

व्यसने कच्चिदाढ्यस्य दुर्बलस्य च राघव ।
अर्थं विरागाः पश्यन्ति तवामात्या बहुश्रुताः॥३३॥
यानि मिथ्याभिशस्तानां पतंत्यश्रूणि राघव ।
तानिपुत्रपशून्घ्नन्ति प्रीत्यर्थमनुशासतः ॥ ३४ ॥

अर्थ—हे राघव ! जब कभी किसी धनाढ्य अथवा निर्धन को कोई क्लेश होता है तब तुम्हारे बहुश्रुत आमात्य=राजकर्मचारी निर्लोभ होकर रक्षा करते हैं, हे राघव ! किसी निरपराध को दण्ड देने से जो उसके आंसु बहते हैं वह उस दण्डदाता के पुत्र तथा पशुओं का हनन कर देते हैं, यह मैं प्यार से तुमको शिक्षा देता हू ॥

नास्तिक्यमनृतंक्रोधं प्रमादं दीर्घसूत्रताम् ।
अदर्शनंज्ञानवतामालस्यं पंचवृत्तिताम् ॥ ३५ ॥
एकचिन्तनमर्थानामनर्थज्ञैश्चमंत्रणम् ।
निश्चितानामनारम्भं मंत्रस्यापरिरक्षणम् ॥ ३६ ॥
मंगलाद्य प्रयोगं च प्रत्युत्थानं च सर्वतः ।
कच्चित्त्वं वर्जयस्येतान् राजदोषांश्चतुर्दश ॥३७॥

अर्थ—और (१) नास्तिकता (२) अनृतभाषण (३) क्रोध (४) अहङ्कार(५)दीर्घसूत्रता(६)विद्वानों से न मिलना (७) आलस्य (८) दर्शन, श्रवण, सूंघना, खाना और स्पर्श इनके वशीभूत होना (९) राजकार्य्यों को अकेले ही विचारना (१०) अज्ञ पुरुषों से सलाह लेना (११) तिथि निश्चितकर कार्य्य का आरम्भ न करना (१२) मन्त्र को रक्षापूर्वक न रखना (१३) प्रातःकाल उठकर कोई अनुष्ठान न करना (१४) सब के लिये उठखड़े होना, यह जो राजाओं के चौदह दोष कथन किये हैं तुम तो इनसे वर्जित हो ? ॥

दशपंचचतुर्वर्गान्सप्तवर्गं च तत्त्वतः ।
अष्टवर्गं त्रिवर्गं च विद्यास्तिस्रश्च राघव ॥ ३८ ॥
इन्द्रियाणां जयं बुद्ध्या षाड्गुण्यं दैवमानुषम् ।
कृत्यं विंशति वर्गं च तथा प्रकृति मण्डलम् ॥३९॥

अर्थ—हे राघव ! दशवर्ग, पांचवर्ग,चारवर्ग, सातवर्ग,आठवर्ग, तीनवर्ग और तीन विद्या, इन्द्रियों का जीतना, षट्वर्ग, देवता और मनुष्यों से दुःख, बीसवर्ग, पांच प्रकृति और बारह मण्डल, इनको यथावत् मानते हो ॥

भाष्य-दशवर्ग=(१) मृगया=शिकार खेलना (२) जुआ खेलना (३) दिन को सोना (४) बात को बढ़ाकर कहना (५) स्त्रियों का संग (६) मादक पदार्थों का सेवन (७) नाच देखना (८) गाना सुनना (९) बाजा सुनना (१०) विना प्रयोजन घूमना ॥

पांचवर्ग=(१) नदी तालाब आदिकों के बीच किला बनाना (२) पर्वत पर बनाना (३) वृक्षों के बीच बनाना (४) ऊसर भूमि में बनाना (५) शस्त्रों का किला बनाना ॥

चारवर्ग=(१) साम=समझाना (२) दाम=कुछ देकर शत्रु को वशीभूत करना (३) दण्ड देना (४) भेद=शत्रुओं में तोड़ फोड़ करादेना ॥

सातवर्ग=(१) स्वामी (२) मन्त्री (३) देश (४) किला बनाना (५) कोष रखना (६) सेना रखना (७) मित्र रखना, जो राज्य के अंग हैं ॥

आठवर्ग=(१) चुगली (२) साहस (३) द्रोह करना (४) दूसरे के गुणों को न सहारना (५) निन्दा करना (६) किसी के कहे हुए अर्थ में दोष कहना (७) कठोर वचन बोलना (८) दण्ड देना, यह आठो क्रोध से उत्पन्न होते हैं ॥

तीनवर्ग=(१) धर्म करना (२) अपने अर्थ धन संचय करना (३) कामनाओं की पूर्ति करना ॥

तीनविद्या=(१) वेदों का पढ़ना (२) कृषि वाणिज्यादि करना (३) राजनीति जानना ॥

षट्वर्ग=(१) मिलाप करना (२) बैर करना (३) चढ़ाई करना (४) अपने किले में बैठे रहना (५) शत्रुओं से पृथक् रहना (६) भागकर कहीं अन्यत्र जावसना ॥

देवताओं से दुःख=अग्नि लगना, अति जल वरसना, महामारी आदि रोग और दुर्भिक्ष होना ॥

मनुष्यों से दुःख=राजकर्मचारी, चोर, शत्रु, राजा के सम्बन्धी और राजा के लालची होने का दुःख ॥

बीसवर्ग=(१) बालक (२) वृद्ध (३) रोगी (४) जाति से पृथक् किया हुआ (५) डरपोक (६) औरों को डराने वाला (७) अतिलोभी (८) लोभी का सम्बन्धी (९) विरक्त प्रकृति (१०) अति विषयी (११) अनस्थिर चित्त वाला (१२) देवता वा ब्राह्मणों का निन्दक (१३) भाग्य हीन (१४) भाग्याधीन रहने वाला (१५) दुर्भिक्ष से पीड़ित (१६)जो वृथा अभिमानी हो(१७)जिसका देश उसके प्रतिकूल हो (१८) जिसके बहुत बैरी हों (१९) जो मृत्युप्रायः हो (२०) जो असत्य भाषण करने वाला हो, राजा को चाहिये कि इनके साथ मित्रता न करे ॥

पांचप्रकृति=(१) मन्त्री (२) देशवासी (३) किला (४) कोष (५) दण्ड देना ॥

बारह मण्डल=(१) शत्रु (२) मित्र (३) शत्रु का

मित्र (४) मित्र का शत्रु (५) मित्र के शत्रु का मित्र (६) जय करने वाले के आगे चलने वाला (७) विगृह्ययान=सेनापतियों को साथ लेकर बड़ी वीरता से यात्रा करना (८) सन्धाययान=जिस शत्रु के ऊपर चढ़ाई हो उससे सन्धि करना (९) सम्भूययान=वीरों को साथ लेकर जय करना (१०) असंगतोयान=युद्ध की तैयारी तो शत्रु के लिये कीजाय और बीच में अन्य पर चढ़ाई करना (११) उपेक्ष्ययान= शत्रु को प्रबल जानकर उस पर चढ़ाई न करना (१२) दण्डविधान=सेना की रचना, हे भरत ! इन सब का तुम्हें पूर्ण बोध है॥

कच्चित्ते सफला वेदाः कच्चित्ते सफलाः क्रियाः ।
कच्चित्ते सफला दाराःकच्चित्ते सफलं श्रुतम्॥४०॥

अर्थ–हे भरत ! क्या तुम वेदानुकूल आचरण करते हो,क्या तुम्हारे सब कर्म वेदानुकूल हैं, क्या तुम्हारी स्त्रियां वेदानुकूल वर्तती हैं और तुमने शास्त्र के श्रवण को सफल किया है ?॥

यावृत्तिं वर्त्तते तातो यां च नः प्रपितामहः ।
तां वृतिं वर्तसे कच्चिद्या च सत्पथगा शुभा ॥४१॥

अर्थ–जिस प्रकार हमारे पितामह प्रपितामह वर्त्तते थे उसी समीचीन शुभ वृत्ति को तुम वर्त्तते हो, इस प्रकार सब वृतान्त पूछकर फिर राम बोले किः—

यन्निमित्तमिमं देशं कृष्णाजिनजटाधरः ।
हित्वा राज्यं प्रविष्टस्त्वं तत्सर्वं वक्तुमर्हसि ॥४२॥

अर्थ–तुम राज्य को छोड़ मृगान तथा जटा धारण कर जिस निमित्त यहां आये हो वह सब वृत्त कहो ॥

इत्युक्तः केकयीपुत्रः काकुत्स्थेन महात्मना ।
प्रगृह्य बलवद्भूयः प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत् ॥४३॥

अर्थ—जब महात्मा राम ने भरत से उक्त प्रकार कहा तब वह कैकेयी सुत बड़े बलपूर्वक अपने आपको थांभ हाथ जोड़-कर बोला कि :—

आर्य्यं तातः परित्यज्य कृत्वा कर्म सुदुष्करम् ।
गतः स्वर्गं महाबाहुः पुत्रशोकाभिपीड़ितः ॥४४॥

अर्थ—हे तात ! महाबाहु पिता हमको छोड़कर और बड़ा कठिन कर्म करके पुत्रशोक से पीड़ित हुए स्वर्ग को चले गये ॥

स्त्रियानियुक्तः कैकेय्या मम मात्रा परंतप ।
चकार सा महत्पापमिदमात्मयशोहरम् ॥ ४५ ॥
सा राज्यफलमप्राप्य विधवा शोककर्शिता ।
पतिष्यति महाघोरे नरके जननी मम ॥ ४६ ॥

अर्थ—हे परंतप ! मेरी माता कैकेयी से प्रेरणा किये हुए महाराज ने अपने यश के हरण करने वाला यह भारी पाप किया, वह मेरी माता कैकेयी राज्यफल को प्राप्त न होकर विधवा हुई शोक से दुर्बल हो महाभयंकर नरक में पड़ेगी ॥

तस्य मे दासभूतस्य प्रसादं कर्तुमर्हसि ।
अभिषिञ्चस्व चाद्यैव राज्येन मघवानिव ॥४७॥
इमाः प्रकृतयः सर्वा विधवा मातरश्चयाः ।
त्वत्सकाशमनुप्राप्ताः प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥४८॥

अर्थ–हे तात ! अब आप मुझ दास पर कृपा करने योग्य हैं, कृपाकरके आप अभी अभिषिक्त=राजा बनकर इन्द्र के तुल्य राज्यशासन करें, यह सम्पूर्ण प्रकृतियें=राजकर्मचारी, प्रजाजन और मेरी सब विधवा मातायें आपके निकट आई हैं कृपाकरके हमारी कामना को पूर्ण करें ॥

तथानुपूर्व्या युक्तश्च युक्तं चात्मनि मानद ।
राज्यं प्राप्नुहि धर्मेण सकामान्सुहृदयान् कुरु॥४९॥
भवत्व विधवाभूमिः समग्रापतिना त्वया ।
शशिना विमलेनेव शारदी रजनी यथा ॥ ५० ॥
एभिश्च सचिवैः सार्धं शिरसा याचितो मया ।
भ्रातुः शिष्यस्य दासस्य प्रसादंकर्तुमर्हसि ॥५१॥

अर्थ–हे मानद ! आप आनुपूर्वी=परम्पराप्राप्त मर्यादानुसार राज्य के अधिकारी होने से आपका अभिषेक युक्त है,सो आप धर्मपूर्वक राज्य को प्राप्त होकर अपने सुहृदों की कामनाओं को पूर्ण करें, और इस पृथिवी के स्वामी बनकर इसको सौभाग्यवती करें, जैसे विमल चन्द्रमा के उदय होने पर शरदऋतु की रात्रि सुभगा होती है, मैं इन सब मन्त्रियों सहित आपको सिरझुकाकर याचना करता हूं, मैं आपका भाई, शिष्य और दास हूं आप मुझ पर कृपा करने योग्य हैं ॥

तादिदं शाश्वतं पित्र्यं सर्वं सचिवमण्डलम् ।
पूजितं पुरुषव्याघ्र नातिक्रमितुमर्हसि ॥ ५२ ॥
एवमुक्त्वा महाबाहुः सबाष्पः कैकयीसुतः ।
रामस्य शिरसा पादौ जग्राह भरतः पुनः ॥५३॥

अर्थ-हे पुरुषव्याघ्र ! परम्पराप्राप्त=सदा से पिता पितामह के पूजित मन्त्रीवर्ग के वचनों का आप उल्लङ्घन करने योग्य नहीं, महावाहु कैकेयीसुत भरत ने यह कहकर रोते हुए पुनः भाई के चरणों पर सिर धर के वार २ यही प्रार्थना की ॥

इति सप्ततितमः सर्गः

अथ एकसप्ततितमः सर्गः

सं०-अब भरत के प्रति राम का शोकमय कथन वर्णन करते हैं:—

तं मत्तमिव मातङ्गं निःश्वसन्तं पुनः पुनः ।
भ्रातरं भरतं रामः परिष्वज्येदमब्रवीत् ॥ १ ॥
कुलीनः सत्त्वसंपन्नस्तेजस्वी चरितव्रतः ।
राज्यहेतोः कथं पापमाचरेन्मद्विधो जनः ॥ २ ॥

अर्थ-राम वार २ मत्त हाथी की भांति सांस लेते हुए भाई भरत को गले लगाकर बोले कि हे भ्राता भरत ! कुलीन,दृढ़संकल्प, तेजस्वी और ब्रह्मचर्य्य व्रत को पूर्ण किये हुए मेरा जैसा पुरुष राज्य के अर्थ पाप का आचरण कैसे करसकता है ॥

न दोषं त्वयि पश्यामि सूक्ष्ममप्यरिसूदन ।
न चापि जननीं बाल्यात्त्वं विगर्हितुमर्हसि ॥३॥
कामकारो महाप्राज्ञ गुरूणां सर्वदानघ ।
उपपन्नेषु दारेषु पुत्रेषु च विधीयते ॥ ४ ॥

वने वा चीरवसनं सौम्य कृष्णाजिनाम्बरम् ।
राज्ये वापि महाराजो मां वासयितुमीश्वरः ॥५॥

अर्थ–हे अरिसूदन ! मैं तेरा किञ्चित भी दोष नहीं देखता और न तुझे माता को निन्दना चाहिये, माता को निन्दना तुम्हारा बालकपन है, हे निष्पाप ! हे महाप्राज्ञ भरत ! गुरुओं=पति वा पिता की अपनी सम्मति स्त्रियों और पुत्रों के लिये स्वतन्त्र होती है अर्थात् गुरु लोगों को शास्त्र की आज्ञा है कि स्त्री पुत्रादि अपने से छोटों को जैसे चाहें आज्ञा दें, हे सौम्य ! इसी प्रकार महाराज मुझे चीर तथा मृगान पहनाकर वन में भेजने अथवा राज्य में वास देने में स्वतन्त्र स्वामी थे ॥

यावत् पितरि धर्मज्ञ गौरवं लोकसत्कृते ।
तावद्धर्मकृतां श्रेष्ठ जनन्यामपि गौरवम् ॥ ६ ॥
एताभ्यां धर्मशीलाभ्यां वनं गच्छेति राघव ।
मातापितृभ्यामुक्तोऽहं कथमन्यत्समाचरे ॥ ७ ॥
त्वया राज्यमयोध्यायां प्राप्तव्यं लोकसत्कृतम् ।
वस्तव्यं दण्डकारण्ये मया वल्कलवाससा ॥ ८ ॥

अर्थ–हे धर्मज्ञ ! लोकमाननीय पिता की मेरे मन में जितनी प्रतिष्ठा है उतनी ही धार्मिकों में श्रेष्ठ माता कैकेयी की मैं प्रतिष्ठा करता हूं, सो हे राघव ! जब इन दोनों धर्मशील माता पिता ने मुझको वन जाने की आज्ञा दी है कि तू वन को जा तो फिर मैं उनकी आज्ञा से विरुद्ध आचरण कैसे करसकता हूं, तुम्हें अयोध्या में लोगों से सत्कारपूर्वक राज्य प्राप्त करना चाहिये और मेरा

कर्तव्य यही है कि मैं चीर वल्कल पहनकर दण्डक वन में निवास करूं ॥

एवमुक्त्वा महाराजो विभागं लोकसन्निधौ ।
व्यादिश्य च महाराजो दिवं दशरथो गतः ॥९॥
स च प्रमाणं धर्मात्मा राजा लोकगुरुस्तव ।
पित्रा दत्तं यथा भागमुपभोक्तुं त्वमर्हसि ॥ १० ॥

अर्थ—मेरे पिता महाराज दशरथ लोकसन्निधि=लोगों के सन्मुख उक्त प्रकार विभाग करके स्वर्ग को पधारे हैं, और उन लोकगुरु धर्मात्मा महाराज की आज्ञा मुझे प्रमाण है, सो तुम पिता के दिये हुए अपने भाग को भोगने योग्य हो ॥

किं करिष्याम्ययोध्यायां ताते दिष्टांगतिं गते ।
कस्तां राजवराद्धीनामयोध्यां पालयिष्यति ॥११॥
किं नु तस्य मया कार्यं दुर्जातेन महात्मनः ।
यो मृतो मम शोकेन स मया नच संस्कृतः॥१२॥
अहो भरत सिद्धार्थो येन राजा त्वयानघ ।
शत्रुघ्नेन च सर्वेषु प्रेतकृत्येषु सत्कृतः ॥ १३ ॥

अर्थ—हा शोक !! मैं अयोध्या में जाकर क्या करूंगा जब मेरे प्रिय पिता दैवगति=स्वर्ग को प्राप्त होगये हैं, अब महाराज से हीन उस अयोध्या का पालन कौन करेगा, वृथा जन्म धारण किये हुए मैंने उस महात्मा का क्या कार्य्य करना है जब कि वह मेरे शोक से मरे और मैं उनका संस्कार भी नहीं करने पाया, अहो ! निष्पाप भरत तू कृतकृत्य है जो तैने और शत्रुघ्न ने सब प्रेत कार्य्यों में राजा का सत्कार किया ॥

समाप्तवनवासं मामयोध्यायां परंतप ।
कोऽनुशासिष्यति पुनस्ताते लोकान्तरे गते ॥१४॥
पुरा प्रेक्ष्य सुवृत्तं मां पिता यान्याह सान्त्वयन् ।
वाक्यानितानिश्रोष्यामिकुतःकर्णसुखान्यहम् ।१५।

अर्थ–हे परंतप ! जब पिता लोकान्तर=अवस्थाविशेष को प्राप्त होगये तो अब वनवास को समाप्त कर अयोध्या में आये हुए मुझको कौन अनुशासन करेगा, और मुझको शुद्धाचारी देखकर पिता आश्वासन देते हुए जो वाक्य कहा करते थे वह कानों के आनन्ददायक वाक्य अब किससे सुनूंगा ॥

एवमुक्त्वाथ भरतं भार्यामभ्येत्य राघवः ।
उवाच शोकसंतप्तः पूर्णचन्द्रनिभाननाम् ॥१६॥
सीते मृतस्ते श्वशुरः पितृहीनोऽसि लक्ष्मण ।
भरतोदुःखमाचष्टे स्वर्गतिं पृथिवीपतेः ॥ १७ ॥

अर्थ–भरत को उक्त प्रकार कहकर राम अपनी भार्या सीता के समीप आकर शोक से तप्त हुए उस पूर्णचन्द्र तुल्य मुखवाली जानकी से बोले कि हे सीते ! तेरे श्वशुर स्वर्ग को प्राप्त होगये, हे लक्ष्मण ! तू पिता से हीन होगया, भरत दुःख से महाराज का स्वर्गवास सुनाता है ॥

ततो बहुगुणं तेषां बाष्पं नेत्रेष्वजायत ।
तथा ब्रुवति काकुत्स्थे कुमाराणां यशस्विनाम् ॥१८॥

अर्थ–तब राम का उक्त प्रकार अशुभ कथन सुनकर उन सब यशस्वी कुमारों के नेत्रों से अश्रुधारा बहने लगी ॥

सा सीता स्वर्गतं श्रुत्वा श्वशुरं तं महानृपम् ।
नेत्राभ्यामश्रुपूर्णाभ्यां न शशाकेक्षितुं प्रियम्॥१९॥
तेषां तु रुदितां शब्दात अतिशब्दो भवद्गिरौ ।
भ्रातृणां सह वैदेह्या सिंहानां नर्दतामिव ॥२०॥
विज्ञाय तुमुलं शब्दं त्रस्ता भरत सैनिका ।
अब्रुवंश्चापि रामेण भरतः संगतो ध्रुवम् ॥२१॥
अथ वाहन परित्यज्य तं सर्वेभिमुखास्वनम् ।
अप्येक मनसो जगमुर्यथास्थानं प्रधाविता ॥२२॥
हयैरन्ये गजैरन्ये रथैरन्ये स्वलंकृतैः ।
सुकुमारास्तथैवान्ये पद्भिरेव नरा ययौ ॥ २३ ॥

अर्थ—वह सीता श्वशुर का स्वर्गवास सुनकर आंसुओं से भरे नेत्रों द्वारा अपने प्रिय पति को नहीं देखसकी, सीता सहित उन सब भाईयों के रुदन से उस पर्वत में सिंहों के नाद समान ऐसी प्रतिध्वनि हुई कि उस रुदनरूप महाशब्द को सुनकर चकित हुए भरत के सैनिकों ने कहा कि भरत राम से जा मिले, तत्पश्चात अपने २ वाहनों को छोड़कर सब सैनिक लोग उस शब्द के अभिमुख हुए एकमत हो उस स्थान को देखने के लिये चले, सुकुमार लोग घोड़े, हाथी तथा अलंकृत रथों पर और अन्य लोग पैदल ही चलकर :—

अचिरप्रोषितं रामं चिरविप्रोषितं यथा ।
द्रष्टुकामो जनः सर्वो जगाम सहसाश्रमम् ॥२४॥

तान्नरान्बाष्पपूर्णाक्षान्समीक्ष्याथ सुदुःखितान् ।
पर्यष्वजत धर्मज्ञः पितृवन्मातृवच्च सः ॥ २५ ॥

अर्थ–उस थोड़े दिन के आये हुए प्रदेशी राम को चिर-काल के प्रदेशी की भांति बड़े उत्साह से देखने की इच्छा वाले सभी लोग शीघ्र ही राम के आश्रम में आये, और आसुओं से पूर्ण नेत्रों वाले अत्यन्त दुःखित उन लोगों को देखकर उस धर्मज्ञ राम ने सबको पिता माता के तुल्य गले लगाया ॥

भाष्य–प्रिय पाठकवृन्द ! इस स्थल में यह लिखा है कि जब भरत ने राम को सुनाया कि हमारे पिता स्वर्गवास होगये तब राम, लक्ष्मण और सीता अति शोकग्रस्त हो रुदन करने लगे, फिर राम ने लक्ष्मण से कहा कि :—

आनयेंगुदिपिण्याकं चीरमाहर चोत्तरम् ।
जलक्रियार्थं तातस्य गमिष्यामि महात्मनः ॥

अर्थ–हे लक्ष्मण ! इंगुदी का चूर्ण और उत्तरचीर ला, मैं महात्मा पिता की जलक्रिया के लिये जाऊंगा ॥

ततो मन्दाकिनीतीरं प्रत्युत्तीर्य स राघवः ।
पितुश्चकार तेजस्वी निर्वापं भ्रातृभिःसह ॥

अर्थ–इसके अनन्तर मन्दाकिनी नदी के तट पर जाकर उस तेजस्वी राम ने भाइयों के साथ पिता का निर्वाप=जल और पिण्ड दान किया, इत्यादि लेखों से पाया जाता है कि राम मृतक के लिये पिण्डदानादि कर्म मानते थे,हमारे विचार में अन्य लेखों की भांति यह लेख भी प्रक्षिप्त है,कारण यह कि रामायण के प्रत्येक

स्थल में राम को वेदानुयायी लिखा है और वास्तव में ऐसा दृढ़ तथा सत्यसङ्कल्प पुरुष कदापि वेदविरुद्ध आचरण नहीं करसक्ता, प्रत्युत जब भरत राम से मिले तब राम ने भरत से पूछा कि:—

कच्चित्ते सफला वेदाः कच्चित्ते सफलाः क्रियाः ।
कच्चित्ते सफला दाराः कच्चित्ते सफलं श्रुतम् ॥

अर्थ-हे भरत! क्या तुम वेदानुकूल आचरण करते हो? क्या तुम्हारे सब कर्म वेदानुकूल हैं? क्या तुम्हारी स्त्रियां वेदानुकूल वर्तती हैं? और क्या तुम ने शास्त्र के श्रवण को सफल किया है, इत्यादि लेखों से स्पष्ट सिद्ध है कि राम के घर में सब कर्म वेदानुकूल होते थे, अधिक क्या महाराज दशरथ का सब अन्त्येष्टि संस्कार भरत ने वेदानुकूल ही किया था, जैसाकि पीछे स्पष्टतया लिख आये हैं, फिर ऐसे दृढ़ वेदानुयायी राम मृतक को पिण्ड दानादि देनारूप कर्म कैसे करसक्ते थे, रामायण में बहुत स्थल प्रक्षिप्त हैं जिनको हमीं नहीं मानते प्रत्युत रामायण के टीकाकार सनातनी भी प्रक्षिप्त मानते हैं, जैसाकि इसी काण्ड के ९५ वे सर्ग और अन्य स्थलों को उन्होंने भी प्रक्षिप्त माना है, अतएव यह विषय भी प्रक्षिप्त होने से ग्राह्य नहीं ॥

इति एकसप्ततितमः सर्गः

अथ द्विसप्ततितमः सर्गः

सं०-अब भरत की माताओं को साथ लेकर वसिष्ठ का राम के निकट पहुंचना कथन करते हैं:—

वसिष्ठः पुरतः कृत्वा दारान्दशरथस्य च ।
अभिचक्राम तं देशं रामदर्शनतर्षितः ॥१॥
राजपत्न्यश्च गच्छन्त्यो मन्दं मन्दाकिनीं प्रति ।
ददृशुस्तत्र तत्तीर्थं रामलक्ष्मणसेवितम् ॥२॥

अर्थ—राम के देखने की अभिलाषा वाले वसिष्ठ महाराज दशरथ की पत्नियों को आगे करके उनके आश्रम में आये, आते हुए मार्ग में उन राजपत्नियों ने धीरे २ मन्दाकिनी नदी पर पहुंचकर राम, लक्ष्मण से सेवित उस घाट को देखा ॥

कौसल्याबाष्पपूर्णेन मुखेन परिशुष्यता ।
सुमित्रामब्रवीद्दीनां याश्चान्या राजयोषितः ॥३॥
इदं तेषामनाथानां क्लिष्टमक्लिष्टकर्मणाम् ।
वने प्राक्कलनं तीर्थं ये ते निर्विषयीकृताः ॥ ४ ॥

अर्थ—और आंसुओं से पूर्ण सूखते हुए मुख से कौसल्या दीन सुमित्रा और दूसरी राजस्त्रियों से कहने लगी कि यह उन कठिन से कठिन व्रतधारी अर्थात् शुभकर्म करने वाले अनाथों का वन में छोटासा पहला स्थान है जो देश से निदेश किये गये हैं ॥

इतः सुमित्रे पुत्रस्ते सदा जलमतन्द्रितः ।
स्वयं हरति सौमित्रिर्मम पुत्रस्य कारणात् ॥ ५ ॥
जघन्यमपि ते पुत्रः कृतवान्न तु गर्हितः ।
भ्रातुर्यदर्थरहितं सर्वं तद्गर्हितं गुणैः ॥ ६ ॥

अर्थ—हे सुमित्रे ! तेरा पुत्र मेरे पुत्र के लिये सदा यहां से

निरालस=आलस छोड़कर स्वयं जल लेजाता है, तेरा पुत्र भाई के अर्थ छोटा कर्म करता हुआ भी निन्दित नहीं होता, भाई के अर्थ से रहित अर्थात् भाई की सेवा न करने वाला ही सवगुणसम्पन्न होते हुए भी निन्दित होता है ॥

एवमार्तां सपत्न्यस्ता जग्मुराश्वास्य तां तदा ।
ददृशुश्चाश्रमे रामं स्वर्गच्युतमिवामरम् ॥ ७ ॥
तं भोगैः संपरित्यक्तं रामं संप्रेक्ष्यमारतः ।
आर्तामुमुचुरश्रूणि सस्वरं शोककर्शिताः ॥ ८ ॥
तासां रामः समुत्थाय जग्राह चरणाम्बुजान् ।
मातणां मनुजव्याघ्रः सर्वासां सत्यसंगरः ॥ ९ ॥

अर्थ-इस प्रकार आर्त=दुःखित कौसल्या को अन्य सब स्त्रियें आश्वासन देती हुई आश्रम में गई और वहां स्वर्ग से आये हुए देवता की भांति राम को स्थित देखा, भोगों से पृथक् हुए राम को देखकर दुःखित तथा शोक से दुर्बल हुई सब मातायें आंसु बहाने लगीं, तब उस सत्यप्रतिज्ञ पुरुषश्रेष्ठ राम ने उठकर उन सब माताओं के कमलरूपी चरणों का स्पर्श किया ॥

ताः पाणिभिः सुखस्पर्शैर्मृद्वङ्गुलितलैः शुभैः ।
प्रममार्जूरजः पृष्ठाद्रामस्यायतलोचनाः ॥ १० ॥
सौमित्रिरपि ताः सर्वा मातॄः संप्रेक्ष्य दुःखितः ।
अभ्यवादयदासक्तं शनै रामादनन्तरम् ॥ ११ ॥

अर्थ-और उन विशाल नेत्रों वाली माताओं ने सुखस्पर्श वाले शुभ हाथों द्वारा राम की पीठ से धूल पोंछी, और सुमित्रा

के पुत्र लक्ष्मण ने उन सब माताओं को दुःखी देखकर पीड़ित हो राम के पीछे स्नेह से धीरे २ सब माताओं को प्रणाम किया ॥

यथा रामे तथा तस्मिन्सर्वावव्रृतिरे स्त्रियः ।
वृत्तिं दशरथाज्जाते लक्ष्मणे शुभलक्षणे ॥ १२ ॥
सीतापि चरणांस्तासामुपसंगृह्य दुःखिता ।
श्वश्रूणामश्रुपूर्णाक्षी संबभूवाग्रतः स्थिता ॥ १३ ॥

अर्थ—और उन सब स्त्रियों ने भी दशरथ से उत्पन्न हुए शुभ लक्षणों वाले लक्ष्मण से भी राम के तुल्य ही वर्ताव किया, तदनन्तर सीता ने भी उनके पांव छुए और दुःखित हुई आंसुओं से भरे हुए नेत्रों वाली अपनी सासों के सन्मुख खड़ी होगई ॥

तां परिष्वज्य दुःखार्ता माता दुहितरं यथा ।
वनवासकृतां दीनां कौसल्या वाक्यमब्रवीत् ॥१४॥
वैदेहराजन्य सुता स्नुषा दशरथस्य च ।
रामपत्नी कथं दुःखंसंप्राप्ता विजने वने ॥ १५ ॥
पद्ममातपसंतप्तं परिक्लिष्टमिवोत्पलम् ।
कांचनंरजसा ध्वस्तं क्लिष्टं चन्द्रमिवाम्बुदैः ॥१६॥

अर्थ—तब अपनी कुक्षी से उत्पन्न हुई कन्या की भांति सीता को गले लगाकर दुःख से पीड़ित कौसल्या वनवास से दुःखी हुई सीता से बोली कि वैदेहराज की कन्या, महाराज दशरथ की स्नुषा और राम की पत्नी तू कैसे निर्जन वन में दुःख भोग रही है, धूप से मुरझाये हुए पद्म की भांति, मर्दन

हुए लाल कमल के समान, धूल से मैले हुए सुवर्ण की भांति तथा बहुत मेघों से निष्क्रान्त हुए चन्द्रमा के समान :—

मुखं ते प्रेक्ष्य मां शोको दहत्यग्निरिवाश्रयम् ।
भृशं मनसि वैदेहि व्यसनारणि संभवः ॥ १७ ॥
ब्रुवन्त्यामेवमार्तायां जनन्यां भरताग्रजः ।
पादावासाद्य जग्राह वसिष्ठस्य च राघवः ॥ १८ ॥

अर्थ—तेरे मुख को देखकर विपद् की अरणि से उत्पन्न हुआ शोक मेरे मन को बड़े वेग से दग्ध कर रहा है, जैसे अग्नि अपने आश्रित पदार्थों को भस्म करती है, अति दुःखित हुई माता के उक्त प्रकार कहते हुए भरत के बड़े भाई राम ने आकर वसिष्ठ के पाद ग्रहण किये और :—

पुरोहितस्याग्निसमस्य तस्य वै बृहस्पतेरिन्द्र
इवामराधिपः । प्रगृह्यपादौसुसमृद्धतेजसः
सहैव तेनोपविवेश राघवः ॥ १९ ॥

अर्थ—जिसप्रकार देवताओं का अधिपति इन्द्र बृहस्पति के चरणस्पर्श करता है इसी प्रकार राम तेजस्वी पुरोहित वसिष्ठ के चरण ग्रहण कर उनके समीप ही बैठगये ॥

ततो जघन्यं सहितैः स्वमन्त्रिभिः पुरप्रधानैश्च
तथैव सैनिकैः । जनेन धर्मज्ञतमेन धर्मवानु-
पोपविष्टो भरतस्तदाग्रजम् ॥ २० ॥

अर्थ—और धर्मात्मा भरत अपने धर्मज्ञ मन्त्री, पुर के प्रधान लोगों और सैनिकों के साथ राम के पीछे बैठगया ॥

स राघवः सत्यधृतिश्च लक्ष्मणो महानुभावो
भरतश्चधार्मिकः । वृताः सुहृद्भिश्च विरेजिरेऽ
ध्वरे यथा सदस्यैः सहितास्त्रयोऽग्नयः॥२१॥

अर्थ–वह सत्य तथा धैर्य्यसम्पन्न राम महानुभाव लक्ष्मण और धार्मिक भरत सुहृदों के बीच ऐसे शोभायमान प्रतीत होते थे जैसे यज्ञ में सदस्य=ऋत्विगादिकों के सहित तीनो अग्नियें सुशोभित होती हैं ॥

इति द्विसप्ततितमः सर्गः

अथ त्रिसप्ततितमः सर्गः

सं०–अब राम को राज्य देने के लिये भरत की याचना और राम का उसको उपदेश कथन करते हैं :—

ततः पुरुषसिंहानां वृतानां तैः सुहृद्गणैः ।
शोचतामेव रजनी दुःखेन व्यत्यवर्तत॥ १ ॥
रजन्यां सुप्रभातायां भ्रातरस्ते सुहृदवृताः ।
मन्दाकिन्यां हुतं जप्यं कृत्वा राममुपागमन् ॥२॥

अर्थ–तदनन्तर सुहृदूगणों से घिरे हुए उन पुरुषसिंह चारो भाइयों को शोक करते हुए ही वह रात्रि दुःख से व्यतीत हुई, फिर प्रभात होने पर सुहृदों से युक्त वह भाई मन्दाकिनी नदी पर सन्ध्या, अग्निहोत्र तथा स्वाध्याय करके फिर राम के समीप आये ॥

तूष्णीं ते समुपासीना न कश्चित्किंचिदब्रवीत् ।
भरतस्तु सुहृन्मध्ये रामं वचनमब्रवीत् ॥ ३ ॥
सान्त्विता मामिका माता दत्तं राज्यमिदं मम ।
तद्ददामि तवैवाहं भुङ्क्ष्व राज्यमकण्टकम् ॥४॥

अर्थ—और सब चुपचाप बैठगये, कोई कुछ न बोला, फिर भरत उन सब सुहृदों के बीच राम से बोले कि राजा ने मेरी माता को राज्य देकर उसको आश्वासन दिया और माता ने वह राज्य मुझे दे दिया है, सो अब मैं उस राज्य को आपही के अर्पण करता हूं. आप इस अकण्टक राज्य को भोगें ॥

महतेवांबु वेगेन भिन्नःसेतुर्जलागमे ।
दुरावरं त्वदन्येन राज्यखण्डमिदं महत् ॥ ५ ॥
श्रेणयस्त्वां महाराज पश्यन्त्वग्र्याश्च सर्वशः ।
प्रतंपन्तमिवादित्यं राज्यास्थितमरिंदमम् ॥६॥
तस्य साध्वनुमन्यन्त नागरा विविधाजनाः ।
भरतस्य वचः श्रुत्वा रामं प्रत्यनुयाचतः ॥ ७ ॥

अर्थ—बड़े जल के वेग से टूटे हुए पुल की भांति जो यह बड़ा राज्य खण्ड २ होरहा है इसको आपके विना अन्य कोई नहीं सम्भाल सकता, सो हे महाराज ! सब मुख्य २ लोगों के समूह आपको सूर्य्य की न्याईं राज्य पर स्थित देखना चाहते हैं, इस प्रकार राम के प्रति याचना करते हुए भरत के वचन सुनकर सब नगर निवासी जन साधु २ कहने लगे ॥

तमेवं दुःखितं प्रेक्ष्य विलपन्तं यशस्विनम् ।
रामः कृतात्मा भरतं समाश्वास यदात्मवान् ॥८॥
नात्मनः कामकारो हि पुरुषोऽयमनीश्वरः ।
इतश्चेतरतश्चैनं कृतान्तः परिकर्षति ॥ ९ ॥

अर्थ–उस यशस्वी भरत को उक्त प्रकार दुःखित हो विलाप करते हुए देखकर शुद्धहृदय जितेन्द्रिय राम उसको आश्वासन देते हुए बोले कि हे भरत! यह जीव स्वेच्छाचारी न होने से अपने मन का सङ्कल्प पूर्ण करने में सर्वथा असमर्थ है, क्योंकि इसको अपने किये कर्मों का फल इधर उधर खींचकर लेजाता है ॥

सर्वे क्षयान्ता निचयाःपतनान्ताः समुच्छ्रयाः ।
संयोगा विप्रयोगान्ता मरणान्तं च जीवितम्॥१०॥

अर्थ–संसार में संग्रह किये पदार्थों का नाश होता है, जो चीज़ अत्यन्त ऊंचाई को पहुंचेगी वह अवश्य गिरेगी, जिसका संयोग है उसका वियोग अवश्य होगा और जिसका जन्म हुआ है वह अवश्य मरेगा ॥

यथा फलानां पक्वानां नान्यत्र पतनाद्भयम् ।
एवं नरस्य जातस्य नान्यत्र मरणाद्भयम् ॥११॥
यथागारं दृढस्थूणं जीर्णं भूत्वोपसीदति ।
तथावसीदन्ति नरा जरामृत्युवशंगता ॥ १२ ॥

अर्थ–जिसप्रकार पके हुए फलों का गिरना अवश्यंभावी है, इसी प्रकार जन्मे हुए मनुष्य का मृत्यु भी अवश्य है, जैसे दृढ़ खम्भों वाला घर भी जीर्ण होकर गिरपड़ता है इसी प्रकार मनुष्य जरा तथा मृत्यु को प्राप्त होकर गिरते हैं ॥

अत्येति रजनी या तु सा न प्रतिनिवर्तते ।
यात्येव यमुना पूर्णसमुद्रमुदकार्णवम् ॥ १३ ॥
अहोरात्राणि गच्छन्ति सर्वेषां प्राणिनामिह ।
आयूंषि क्षपयन्त्याशु ग्रीष्मे जलमिवांशवः ॥१४॥

अर्थ–जो रात चली गई वह फिर नहीं आती,जैसे यमुना नदी जल से भरे समुद्र को प्राप्त होकर फिर पीछे नहीं लौटती,दिन और रातें सब मनुष्यों के आयु को क्षीण करते हुए चले जा रहे हैं, जैसे ग्रीष्मऋतु में सूर्य्य की किरणें जल को खींचकर लेजाती हैं ॥

आत्मानमनुशोच त्वं किमन्यमनुशोचसि ।
आयुस्तु हीयते यस्य स्थितस्याथ गतस्य च॥१५॥
सहैव मृत्युर्व्रजति सह मृत्युर्निषीदति ।
गत्वा सुदीर्घमध्वानं सह मृत्युर्निवर्तते ॥ १६ ॥

अर्थ–तू किसी और पर क्या शोक करता है अपने आप पर शोक कर जिसका आयु बैठते उठते चलते फिरते क्षीण हो रहा है, मृत्यु तेरे साथ ही चलता फिरता तथा उठता बैठता और बहुत बड़ा मार्ग चलकर साथ ही लौटता है ॥

गात्रेषु वलयः प्राप्ताः श्वेताश्चैवशिरोरुहाः ।
जरया पुरुषो जीर्णः किं हि कृत्वा प्रभावयेत्॥१७॥

अर्थ–जब सब अङ्गों की त्वचा सिकुड़ गई,शिर के सब बाल पककर श्वेत होगये, जरा से सब देह जर्जर होगई, फिर यह पुरुष क्या करसकेगा ॥

नन्दंत्युदित्य आदित्ये नन्दंत्यस्तमितेहनि ।
आत्मनो नावबुध्यन्ते मनुष्या जीवित क्षयम्॥१८॥
हृष्यंत्यृतुमुखं दृष्ट्वा नवंनवमिवागतम् ।
ऋतूनां परिवर्तेन प्राणिनां प्राणसंक्षयः ॥१९॥

अर्थ—सब प्राणी सूर्य्य के उदय अस्त होने पर आनन्दित होते हैं पर वह अबुद्ध यह नहीं जानते कि सूर्य्य के उदय अस्त होने से हमारी आयु क्षीण होरही है, नये २ ऋतु आते देखकर मनुष्य प्रसन्न होते हैं परन्तु ऋतुओं के परिवर्तन से प्राणियों के आयुष नाश को प्राप्त होरहे हैं ॥

यथा काष्ठं च काष्ठं च समे यातां महार्णवे ।
समेत्य तु व्यपेयातां कालमासाद्य कंचन ॥२०॥
एवं भार्या च पुत्राश्च ज्ञातयश्च वसूनि च ।
समेत्य व्यवधावन्ति ध्रुवो ह्येषां विनाभवः ॥२१॥

अर्थ—जैसे बड़े समुद्र में दो काष्ठ डाले हुए मिलजायं और कुछ काल मिलकर अलग होजायं, इसी प्रकार स्त्री, पुत्र, भाई बन्धु और धन मिलकर पृथक् होजाते हैं, इनका पृथक् होना अटल है ॥

यथा हि सार्थं गच्छन्तं ब्रूयात्कश्चित्पथि स्थितः ।
अहमप्यागमिष्यामि पृष्ठतो भवतामिति ॥ २२ ॥
एवं पूर्वैर्गतो मार्गः पैतृपितामहैर्ध्रुवः ।
तमापन्नः कथं शोचेद्यस्य नास्ति व्यतिक्रमः ॥२३॥

अर्थ—जैसे कोई मार्ग में जाता हुआ पुरुष अपने साथी को कहे कि मैं भी आपके पीछे आऊंगा, इसी प्रकार अपने पूर्वज पितापितामह के गये हुए मार्ग पर चलता हुआ कैसे शोक करे जिसका उल्लङ्घन नहीं होसकता ॥

वयसः पतमानस्य स्रोतसो वानिवर्तिनः ।
आत्मा सुखे नियोक्तव्यःसुखभाजःप्रजाःस्मृताः।२४।
धर्मात्मा सुशुभैः कृत्स्नैः क्रतुभिश्चाप्त दक्षिणैः ।
न स शोच्यःपिता तात स्वर्गतःसत्कृतःसताम्॥२५॥

अर्थ—न लौटने वाले प्रवाह की भांति आयु क्षीण होरही है, इसलिये आत्मा को उस सत्य सुखस्वरूप में जोड़ना चाहिये, क्योंकि मनुष्यमात्र उस सुख का भागी मानागया है, हे तात ! हमारे धार्मिक पिता जिन्होंने पूर्ण दक्षिणा वाले सम्पूर्ण यज्ञ किये थे वह सत्पुरुषों के माननीय स्वर्ग को प्राप्त हुए शोक के योग्य नहीं ॥

स जीर्णमानुषं देहं परित्यज्य पिता हि नः ।
दैवीमृद्धिमनुप्राप्तो ब्रह्मलोकविहारिणीम् ॥ २६ ॥
तं तु नैवंविधं कश्चित्प्राज्ञः शोचितुमर्हति ।
त्वद्विधो मद्विधश्चापि श्रुतवान्बुद्धिमत्तरः ॥ २७ ॥

अर्थ—हे भरत ! हमारे पिता जीर्ण मानुषदेह को त्यागकर ब्रह्मलोक में विहार के योग्य परमैश्वर्य्य को प्राप्त हुए हैं, अतएव उनके लिये तुम जैसा अथवा मेरे जैसा बुद्धिमान् शास्त्रज्ञ शोक करने योग्य नहीं ॥

एते बहुविधाः शोका विलाप रुदिते तदा ।
वर्जनीया हि धीरेण सर्वावस्थासु धीमता ॥२८॥
स स्वस्थो भव मा शोको यात्वा चावस तां पुरीम् ।
तथा पित्रा नियुक्तोऽसि वशिना वदतांवर ॥२९॥

अर्थ–आप लोग जो नानाप्रकार के शोक, विलाप तथा रुदन कर रहे हैं यह बुद्धिमान् धीर पुरुष को सब अवस्थाओं में वर्जित हैं, हे बोलने वालों में श्रेष्ठ भरत ! तू स्वस्थ हो, शोक मत कर और उस पुरी में उसी प्रकार जाकर वासकर जैसे जितेन्द्रिय पिता तुम्हें नियुक्त करगये हैं ॥

यत्राहमपि तेनैव नियुक्तः पुण्यकर्मणा ।
तत्रैवाहं करिष्यामि पितुरार्यस्य शासनम् ॥ ३० ॥
न मया शासनं तस्य त्यक्तुं न्याय्य मरिंदम ।
स त्वयापि सदा मान्यःस वै बन्धुः स नः पिता ॥३१॥

अर्थ–और उसी पुण्यकर्मा ने मुझको जहां नियुक्त किया है वहीं पर आर्य्य पिता की आज्ञा पालन करूंगा, हे शत्रुओं को तपाने वाले भरत ! मैं पिता की आज्ञा उल्लङ्घन नहीं करसकता और तुम्हें भी पिता सदा माननीय हैं, क्योंकि वह हमारे बन्धु तथा पिता हैं ॥

तद्वचः पितुरेवाहं संमतं धर्मचारिणाम् ।
कर्मणा पालयिष्यामि वनवासेन राघव ॥ ३२ ॥
धार्मिकेणानृशंसेन नरेण गुरुवर्तिना ।
भवितव्यं नरव्याघ्र परलोकं जिगीषता ॥ ३३ ॥

अर्थ—हे राघव ! मैं पिता के वचन को जो धर्म पर चलने वालों के सम्मत है वनवास द्वारा ही पालन करूंगा, हे नरश्रेष्ठ ! परलोक को जय करने वाले पुरुष के लिये उचित है कि वह धार्मिक, दयालु गुरुओं=माता, पिता तथा आचार्य्य का आज्ञाकारी हो ॥

आत्मानमनुतिष्ठत्वं स्वभावेन नरर्षभ ।
निशाम्य तु शुभं वृत्तं पितुर्दशरथस्य नः ॥ ३४ ॥

अर्थ—इसलिये हे नरर्षभ ! तुम पिता दशरथ के सत्यप्रतिज्ञादि शुभगुणों को धारण कर अपने उत्तम स्वभाव से राज्यशासन करो॥

इति त्रिसप्ततितमः सर्गः

अथ चतुःसप्ततितमः सर्गः

सं०—अब भरत पुनः राम से याचना करते हैं :—

एवमुक्त्वा तु विरते रामे वचनमर्थवत् ।
उवाच भरतश्चित्रं धार्मिको धार्मिकं वचः ॥ १ ॥
को हि स्यादीदृशो लोके यादृशत्वमरिंदम ।
न त्वां प्रव्यथयेद्दुःखं प्रीतिर्वा न प्रहर्षयत् ॥ २ ॥

अर्थ—जब राम अर्थ से युक्त=भराहुआ उक्त वचन कहकर चुप होगये तब धार्मिक भरत धर्मयुक्त यह विचित्र वचन बोले कि हे शत्रुओं के तपाने वाले ! आपके समान लोक में कौन होसक्ता है जो आप न दुःख से दुःखी होते और न सुख से हर्ष को प्राप्त होते हैं ॥

अमरोपमसत्त्वस्त्वं महात्मा सत्यसंगरः ।
सर्वज्ञः सर्वदर्शी च न बुद्धिमांश्चासि राघव ॥३॥
प्रोषिते मयि यत्पापं मात्रा मत्कारणात्कृतम् ।
क्षुद्रया तदनिष्टं मे प्रसीदतु भवान्मम ॥ ४ ॥

अर्थ–देवताओं के तुल्य धैर्यवाले, सत्यप्रतिज्ञ महात्मा आप सर्वज्ञ तथा सर्वदर्शी बुद्धिमान् हैं, मेरे प्रदेश जाने पर जो मेरे अर्थ क्षुद्रबुद्धि वाली माता ने पाप किया है वह मेरे लिये बड़ा अनिष्ट है सो आप कृपाकरके मुझ पर प्रसन्न हों ॥

कथं दशरथाज्जातः शुभाभिजनकर्मणः ।
जानन्धर्ममधर्मं च कुर्यां कर्म जुगुप्सितम् ॥ ५ ॥
कैकेयी मां च तातं च सुहृदो बान्धवांश्च नः ।
पौरजानपदान्सर्वांस्त्रातुं सर्वमिदं भवान् ॥ ६ ॥
क्वचारण्यं क्व च क्षात्रं क्व जटाः क्व च पालनम् ।
ईदृतं व्याहतं कर्म न भवान्कर्तुमर्हति ॥ ७ ॥

अर्थ–शुभकर्मों वाले दशरथ से उत्तम कुल में उत्पन्न हुआ मैं धर्माधर्म को जानता हुआ किस प्रकार ऐसा निन्दित कर्म करसकता हूं, हे आर्य्य ! कृपाकरके कैकेयी, मुझे, पिता को, हमारे सुहृदों, बान्धवों और सम्पूर्ण पुर तथा देश के लोगों को आप मृत्यु से बचाने योग्य हैं अर्थात् राज्य को ग्रहण कर आप हम सब की रक्षा करें, कहां वनवास, कहां क्षात्रधर्म, कहां जटा और कहां प्रजा का पालन, ऐसा परस्पर विरुद्ध कर्म आपको नहीं करना चाहिये ॥

एष हि प्रथमो धर्मः क्षात्रयस्याभिषेचनम् ।
येन शक्यं महाप्राज्ञ प्रजानां परिपालनम् ॥८॥
अथ क्लेशजमेव त्वं धर्मं चरितुमिच्छसि ।
धर्मेण चतुरो वर्णान्पालयन्क्लेशमाप्नुहि ॥ ९ ॥

अर्थ–हे महाप्राज्ञ ! क्षत्रिय का सब से पहला धर्म अभिषेक ही है जिसके द्वारा प्रजाओं का भले प्रकार पालन होसकता है, और यदि आप क्लेशसाध्य धर्म का ही आचरण करना चाहते हैं तो धर्मपूर्वक चारो वर्णों का पालन करते हुए क्लेश को प्राप्त हों ॥

चतुर्णामाश्रमाणां हि गार्हस्थ्यं श्रेष्ठमुत्तमम् ।
आहुर्धर्मज्ञधर्मज्ञास्तं कथं त्यक्तुमिच्छसि ॥ १० ॥

अर्थ–हे धर्मज्ञ ! धर्म के जाननेवाले कहते हैं कि चारो आश्रमों में गृहस्थाश्रम श्रेष्ठ है, सो आप ऐसे उत्तम आश्रम के त्यागने की कैसे इच्छा करते हैं ॥

श्रुतेन बालः स्थानेन जन्मना भवतो ह्यहम् ।
स कथं पालयिष्यामि भूमिं भवति तिष्ठति ॥११॥
इदं निखिलमप्यग्र्यं राज्यं पित्र्यमकण्टकम् ।
अनुशाधि स्वधर्मेण धर्मज्ञः सह बान्धवैः ॥ १२ ॥

अर्थ–मैं आपसे शास्त्र, स्थान और जन्म से छोटा होने पर आपकी विद्यमानता में कैसे भूमि का पालन करसक्ता हूं, सो इस पूर्ण निष्कण्टक उत्तम राज्य का जो पिता पितामह से प्राप्त है आप बान्धवों के साथ धर्मपूर्वक शासन करें ॥

इहैव त्वाभिषिञ्चन्तु सर्वाः प्रकृतयः सह ।
ऋत्विजः सवसिष्ठाश्च मन्त्रविन्मन्त्रकोविदाः ॥१३॥
अद्यार्य मुदिताः सन्तु सुहृदस्तेऽभिषेचने ।
अद्य भीताः पलायन्तु दुष्प्रदास्ते दिशो दश॥१४॥

अर्थ—हे मन्त्रवित् ! यहां ही सब प्रकृतिजन=राजकर्मचारी तथा बन्धुवर्ग, मन्त्रद्रष्टा=वेदवित् ऋत्विज् और पुरोहित वसिष्ठ आपका अभिषेक करें, हे आर्य्य ! आज आपके अभिषेक होने पर सब सुहृद्जन आनन्दित हों और आपके शत्रु भयभीत हो दशो दिशाओं को भागजायं ॥

आक्रोशं मम मातुश्च प्रमृज्य पुरुषर्षभ ।
अद्य तत्रभवन्तं च पितरं रक्ष किल्बिषात् ॥१५॥
शिरसा त्वाभियाचेऽहं कुरुष्व करुणां मयि ।
बान्धवेषु च सर्वेषु भूतेष्विव महेश्वरः ॥ १६ ॥

अर्थ—हे पुरुषश्रेष्ठ ! आज मेरी माता की निन्दा को मिटाकर पूजनीय पिता की पाप से रक्षा करें, मैं सिर नवाकर आपसे याचना करता हूं कि मुझपर तथा सब बान्धवों पर कृपा करें, जैसे सब भूतों पर परमात्मा दया करते हैं ॥

अथवा पृष्ठतः कृत्वा वनमेव भवानितः ।
गमिष्यति गमिष्यामि भवता सार्धमप्यहम् ॥१७॥

अर्थ—अथवा मेरी इस प्रार्थना को स्वीकार करें कि जब आप यहां से महावन को जायं तो मुझे भी अपने साथ लेचलें ॥

तथाभिरामो भरतेन ताम्यता प्रसाद्यमानः सिरसा महीपतिः । न चैव चक्रे गमनाय सत्त्ववान्मतिं पितुस्तद्वचने प्रतिष्ठितः॥१८॥

अर्थ–इस प्रकार पीडित हुए भरत ने सिर नवाकर अनेक प्रकार से राम को प्रसन्न किया परन्तु वह महीपति पिता के उसी वचन पर खड़ा रहा और अयोध्या की ओर जाने का मन में तनिक भी सङ्कल्प न किया ॥

तदद्भुतं स्थैर्यमवेक्ष्य राघवे समं जनो हर्षमवाप दुःखितः । न यात्ययोध्यामिति दुःखितोऽभवत् स्थिर प्रतिज्ञत्वमवेक्ष्य हर्षितः ॥ १९ ॥

अर्थ–राम में इस अद्भुत स्थिरता को देखकर दुःखित हुए लोग साथ ही हर्ष को भी प्राप्त हुए अर्थात् लोग अयोध्या का न जाना सुनकर दुःखित हुए और स्थिर प्रतिज्ञा वाला देखकर हर्षित हुए ॥

तमृत्विजो नैगमयूथवल्लभास्तथा विसंज्ञाश्रुकलाश्च मातरः । तथा ब्रुवाणं भरतं प्रतुष्टुवुः प्रणम्य रामं च ययाचिरे सह ॥ २० ॥

अर्थ–तदनन्तर ऋत्विज, सेनापति, मन्त्री आदि और मूर्छित आंसु बहाती हुई मातायें, यह सब भरत की प्रशंसा करते हुए प्रणाम करके भरत के साथी बन राम से अयोध्या जाने के लिये याचना करने लगे ॥

इति चतुःसप्ततितमः सर्गः

अथ पंचसप्ततितमः सर्गः

सं०—अब भरत के उपरोक्त कथन का राम उत्तर देते हैंः—

पुनरेवं ब्रुवाणं तं भरतं लक्ष्मणाग्रजः ।
प्रत्युवाच ततः श्रीमान् ज्ञातिमध्ये सुसत्कृतः ॥१॥
उपपन्नमिदं वाक्यं यस्त्वमेवमभाषथाः ।
जातः पुत्रो दशरथात्कैकेय्यां राजसत्तमात् ॥२॥

अर्थ—भरत के उक्त प्रकार कथन करने पर बान्धवों में सत्कार योग्य श्रीमान् लक्ष्मण के बड़े भाई राम फिर बोले कि राजश्रेष्ठ दशरथ द्वारा कैकेयी से उत्पन्न भरत यह जो तैने "अयोध्या के राज्य विषयक" उक्त वाक्य कहा है वह तेरे ही योग्य है ॥

देवासुरे च संग्रामे जनन्यै तव पार्थिवः ।
संप्रहृष्टो ददौ राजा वरमाराधितः प्रभुः ॥ ३ ॥
ततः सा संप्रतिश्राव्य तव माता यशस्विनी ।
अयाचत नरश्रेष्ठं द्वौ वरौ वरवर्णिनी ॥ ४ ॥
तव राज्यं नरव्याघ्र मम प्रव्राजनं तथा ।
तच्च राजा तथा तस्यै नियुक्तः प्रददौ वरम् ॥५॥

अर्थ—हे भरत ! सुन, देवासुरसंग्राम में आराधित=सिद्ध किये हुए पृथिवीपति महाराज ने प्रसन्न होकर तुम्हारी माता को वर दिया था, उस यशस्विनी तुम्हारी माता ने "मेरे अभिषेक समय"

प्रतिज्ञा कराकर नरश्रेष्ठ महाराज से दो वर मांग लिये, हे नरश्रेष्ठ ! एक से तेरा राज्य और दूसरे से मेरा वनवास, सो प्रेरित हुए राजा ने यह दोनों वर उसको देदिये ॥

तेन पित्राहमप्यत्र नियुक्तः पुरुषर्षभ ।
चतुर्दश वने वासं वर्षाणि वरदानिकम् ॥ ६ ॥
सोऽहं वनमिदं प्राप्तो निर्जनं लक्ष्मणान्वितः ।
सीतया चाप्रतिद्वन्द्वः सत्यवादे स्थितः पितुः ॥७॥
भवानपि तथेत्येव पितरं सत्यवादिनम् ।
कर्तुमर्हसि राजेन्द्र क्षिप्रमेवाभिषेचनात् ॥ ८ ॥

अर्थ-हे नरश्रेष्ठ ! उस वरदान के कारण पिता ने मुझको चौदहवर्ष वन में रहने की आज्ञा दी है, सो मैं सीता तथा लक्ष्मण के साथ इस निर्जन वन में आया हूं और पिता को सत्यवादी ठहराता हुआ अप्रतिद्वन्द्व हूं अर्थात् किसी अन्य को अपने निकट नहीं रखता, हे राजेन्द्र ! आपभी इसी प्रकार शीघ्र ही अपने अभिषेक से पिता को सत्यवादी बनाने योग्य हैं अर्थात् आपभी शीघ्र ही राजा बनकर पिता को सत्यप्रतिज्ञ बनावें ॥

ऋणान्मोचय राजानं मत्कृते भरत प्रभुम् ।
पितरं त्राहि धर्मज्ञ मातरं चाभिनन्दय ॥ ९ ॥
अयोध्यायां गच्छ भरत प्रकृतीरुपरञ्जय ।
शत्रुघ्नसहितो वीर सह सर्वैर्द्विजातिभिः ॥ १० ॥

अर्थ-हे भरत ! ऐश्वर्य्यसम्पन्न राजा को ऋण से मुक्तकर,

हे धर्मज्ञ! पिता की रक्षा और माता को आनन्दित कर, हे भरत! बीर शत्रुघ्न और द्विजातियों=मन्त्री आदिकों के साहित अयोध्या में जाकर सबको प्रसन्न करता हुआ राज्य कर,और:—

प्रवेक्ष्ये दण्डकारण्यमहमप्यविलम्बयन् ।
आभ्यां तु सहितो वीर वैदेह्या लक्ष्मणेन च ॥११॥

अर्थ—हे वीर! मैं भी सीता तथा लक्ष्मण सहित शीघ्र ही दण्डकारण्य में प्रवेश करूंगा ॥

त्वं राजा भरत भव स्वयं नराणां वन्याना-
महमपि राजराण्मृगाणाम्। गच्छ त्वं पुरवरमद्य
संप्रहृष्टः संहृष्टस्त्वहमपि दण्डकान्प्रवेक्ष्ये॥१२॥

अर्थ—हे भरत! तू मनुष्यों का राजा बन, मैं भी जङ्गली मृगों का राजराट्=महाराजा हूं, अब तू प्रसन्न होकर श्रेष्ठ अयोध्यापुरी को जा और अब प्रसन्न हुआ मैं भी दण्डकवन में प्रवेश करूंगा ॥

छायान्ते दिनकरभाः प्रबाधमानं वर्षत्रं भरत
करोतु मूर्ध्नि शीताम्। एतेषामहमपि कानन-
द्रुमाणां छायां तामतिशयनीं शनैःश्रयिष्ये॥१३॥

अर्थ—हे भरत! सूर्य्य की किरणों को रोकता हुआ छत्र तेरे सिर पर ठण्डी छाया करे, और मैं भी इन जङ्गली वृक्षों की अत्युत्तम छाया का धीरे २ आश्रय लूंगा ॥

शत्रुघ्नस्त्वतुलमतिस्तु ते सहायः सौमित्रिर्मम
विदितः प्रधानमित्रम्। चत्वारस्तनयवरावयं
नरेन्द्रं सत्यस्थं भरत च राम मा विषीद॥१४॥

अर्थ–हे भरत ! तू खिन्न मत हो, अतुल बुद्धि शत्रुघ्न तेरा सहायक और मैं भले प्रकार जानता हूं कि लक्ष्मण मेरा प्रधान मित्र है, सो हम चारो श्रेष्ठ पुत्र राजा को सत्यप्रतिज्ञ बनावें, यह हमारा परमकर्तव्य है ॥

इति पंचसप्ततितमः सर्गः

अथ षट्सप्ततितमः सर्गः

सं०–अब जाबालि का राम को उपदेश करना कथन करते हैं:—

आश्वासयन्तं भरतं जाबालिर्ब्राह्मणोत्तमः ।
उवाच रामं धर्मज्ञं धर्मापेतमिदं वचः ॥ १ ॥
साधु राघव मा भूत्ते बुद्धिरेवं निरर्थिका ।
प्राकृतस्य नरस्येव ह्यार्यबुद्धेस्तपस्विनः ॥ २ ॥

अर्थ–उत्तम ब्राह्मण जाबालि भरत को आश्वासन देते हुए धर्मज्ञ राम से यह धर्मविरुद्ध वचन बोले कि हे श्रेष्ठ राघव ! तुम आर्य्यबुद्धि वाले तपस्वी को यह प्राकृत पुरुषों की भांति निरर्थक बुद्धि मत हो ॥

कः कस्य पुरुषो बन्धुः किमाप्यं कस्य केनचित् ।
एको हि जायते जन्तुरेक एव विनश्यति ॥ ३ ॥
तस्मान्माता पिता चेति राम सज्जेत यो नरः ।
उन्मत्त इव स ज्ञेयो नास्ति कश्चिद्धि कस्यचित्॥४॥

अर्थ-हे राम ! कौन किसका बन्धु तथा किससे किसी ने क्या पाना है, जीव अकेला ही उत्पन्न होता और अकेला ही मरता है, हे राम ! जो पुरुष "यह माता है, यह पिता है" इस बन्धन में आजाता है उसको उन्मत्तसदृश जानना चाहिये, वास्तव में कोई किसी का नहीं ॥

यथा ग्रामान्तरं गच्छन्नरः कश्चिद्बहिर्वसेत् ।
उत्सृज्य च तमावासं प्रतिष्ठेतापरेऽहनि ॥ ५ ॥
एवमेव मनुष्याणां पितामाता गृहं वसु ।
आवासमात्रं काकुत्स्थसज्जन्ते नात्र सज्जनाः ॥६॥

अर्थ-जैसे कोई पुरुष किसी गांव को जाता हुआ किसी सराय में ठहरजाय और अगले दिन उस सराय को छोड़कर चल पड़े, इसी प्रकार मनुष्यों के माता, पिता, गृह और धन आदि ठीक सराय के मेल की भांति हैं, बुद्धिमान् सज्जन इनमें नहीं फसते ॥

पित्र्यं राज्यं समुत्सृज्य स नार्हसि नरोत्तम ।
आस्थातुं कापथं दुःखं विषमं बहुकण्टकम् ॥७॥
समृद्धायामयोध्यायामात्मानमभिषेचय ।
एकवेणीधराहित्वा नगरी संप्रतीक्षते ॥८॥
राजभोगाननुभवन्महार्हान्पार्थिवात्मज ।
विहरत्वमयोध्यायां यथाशक्रस्त्रिविष्टपे ॥ ९ ॥

अर्थ-सो हे नरोत्तम ! तू पिता के राज्य को छोड़कर बहुत

कांटों वाले विषम दुःखदाई मार्ग का अवलम्बन करने योग्य नहीं, तू सम्पूर्ण धन धान्य से युक्त अयोध्यापुरी में जाकर अपना अभिषेक करा, क्योंकि पति से हीन अयोध्या तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही है, हे राजकुमार ! अमूल्य राजभोगों को भोगता हुआ अयोध्या में विचर, जैसे इन्द्र स्वर्ग में विहार करते हैं ॥

न ते कश्चिद्दशरथस्त्वं च तस्य न कश्चन ।
अन्योराजा त्वमन्यस्तु तस्मात्कुरु यदुच्यते ॥१०॥
बीजमात्रं पिता जन्तोः शुक्रशोणितमेव च ।
संयुक्तमृतुमन्मात्रा पुरुषस्येह जन्म तत् ॥ ११ ॥

अर्थ–न कोई तेरा दशरथ था न तू उसका कुछ है वह अन्य राजा और तू अन्य है, इसलिये तू वह कर जो तुझ से कहा है, इस जीव की उत्पत्ति विषय में पिता बीजमात्र है अर्थात् ऋतुमती माता का रक्त और पुरुष का वीर्य्य इन दोनों के मिलने से मनुष्य का जन्म होता है, सो तू पिता के वचन पालनरूप इस झूठे अभिनिवेश को छोड़कर अयोध्या को चल ॥

गतः स नृपतिस्तत्र गन्तव्यं यत्र तेन वै ।
प्रवृत्तिरेषा भूतानां त्वं तु मिथ्या विहन्यसे ॥१२॥
अर्थधर्मपरायेयेतांस्ताञ्शोचामिनेतरान् ।
तेहिदुःखमिहप्राप्यविनाशंप्रेत्यलेभिरे ॥ १३ ॥

अर्थ–वह राजा वहां चलागया जहां उसने जाना था, सब भूतों की यही गति है, अब तू अपने आपको व्यर्थ क्यों मारता है, जो लोग अर्थ वा धर्म सञ्चय करने में श्रम कर रहे हैं वह

शोक योग्य हैं, क्योंकि वह यहां इनके सञ्चय करने में अनेक कष्ट उठाते और मृत्यु को प्राप्त होने पर केवल उनको श्रम ही लाभ होता है ॥

अष्टकापितृदेवत्यामित्ययं प्रसृतो जनः ।
अन्नस्योपद्रवं पश्य मृतो हि किमशिष्यति ॥१४॥
यदि भुक्त मिहान्येनदेहमन्यस्य गच्छति ।
दद्यात्प्रवसतां श्राद्धं न तत्पथ्यशनं भवेत् ॥१५॥

अर्थ—और जो लोग यह कहते हैं कि अष्टकादि श्राद्ध के पितर देवता हैं, इसलिये उनके अर्थ मृतकश्राद्ध करना चाहिये, यह उनके लिये देना तो अन्न को विगाड़ना ही है, क्योंकि मरे हुए क्या खायंगे, यदि किसी अन्य के खिलाने से दूसरे को पहुंचता है तो विदेश में जाने वाले के लिये खाद्य पदार्थ लेजाने व्यर्थ हैं, दूसरे किसी ब्राह्मणादि को देने अथवा खिलाने से स्वयं उसके पास पहुंच जायंगे ॥

स नास्ति परमित्येतत्कुरु बुद्धिं महामते ।
प्रत्यक्षं यत्तदातिष्ठ परोक्षं पृष्ठतः कुरु ॥ १६ ॥

अर्थ—सो हे महामते ! परलोक का विचार छोड़कर यह निश्चय कर कि जो प्रत्यक्ष है उसका सेवन और परोक्ष को पीछे छोड़ अर्थात् परोक्ष के लिये चिन्तन करना व्यर्थ है ॥

इति षट्सप्ततितमः सर्गः

अथ सप्तसप्ततितमः सर्गः

सं०—अब राम जाबालि के उक्त कथन का उत्तर देते हैं:—

जाबालेस्तु वचः श्रुत्वा रामः सत्यपराक्रमः ।
उवाच परया भक्त्या बुद्ध्याविप्रतिपन्नया ॥ १ ॥
भवान्मे प्रियकामार्थं वचनं यदिहोक्तवान् ।
अकार्यं कार्यसंकाशमपथ्यं पथ्यसन्निभम् ॥ २ ॥

अर्थ—जाबालि के उक्त वचन सुनकर सत्यपराक्रमी राम शास्त्र में अटल श्रद्धा और विचल न होने वाली बुद्धि से बोले कि आपने जो मेरे हित के लिये यह वचन कहे हैं सो यह कार्य्य के समान अकार्य्य और पथ्य के समान अपथ्य है अर्थात् यों तो साधारण दृष्टि से अच्छे प्रतीत होते हैं परन्तु वास्तव में अहितकारी हैं ॥

निर्मर्यादस्तुपुरुषः पापाचारसमन्वितः ।
मानं न लभते सत्सु भिन्नचारित्रदर्शनः ॥ ३ ॥
कुलीनमकुलीनं वा वीरं पुरुषमानिनम् ।
चारित्रमेवव्याख्यातिशुचिंवायदिवाशुचिम् ॥४॥

अर्थ—मर्यादा से हीन, पापाचारयुक्त और सदाचार की मर्यादा को तोड़ने वाला पुरुष सत्पुरुषों में मान नहीं पाता, पुरुष का आचार ही उसको कुलीन, अकुलीन, वीर अथवा माननीय पुरुष और पवित्र वा अपवित्र प्रकट करता है ॥

अनार्य्यस्त्वार्य्य संस्थानः शौचाद्धीनस्तथाशुचिः ।
लक्षण्यवदलक्षण्यो दुःशीलः शीलवानिव ॥ ५ ॥

अधर्मं धर्मवेषेण यद्यहं लोकसंकरम् ।
अभिपत्स्ये शुभं हित्वा क्रियां विधिविवर्जिताम् ॥६॥
कश्चेतयानः पुरुषः कार्य्याकार्य्य विचक्षणः ।
बहु मन्येत मां लोके दुर्वृत्तं लोकदूषणम् ॥ ७ ॥

अर्थ–और मर्यादा न रहने पर अनार्य्य आर्य्यों के समान, पवित्रता से हीन हुए पवित्रों के समान, शुभ आचरणों वाला न होकर सदाचारियों के समान और शीलवान् न होकर शीलवानों के समान प्रतीत होंगे, यदि मैं शुभमार्ग को त्यागकर वेदविरुद्ध करूं तो लोग अधर्म को धर्म के वेश में स्वीकार करेंगे, फिर कौन कार्य्याकार्य्य को जानने वाला निपुण धार्मिक पुरुष लोक के विगाड़ने वाले मुझ दुर्बुद्धि को बहुत मानेगा ॥

कस्य यास्याम्यहं वृत्तं केन वा स्वर्गमाप्नुयाम् ।
अनया वर्तमानोऽहं वृत्त्या हीनप्रतिज्ञया ॥ ८ ॥
कामवृत्तोन्वयं लोकः कृत्स्नः समुपवर्तते ।
यद्वृत्ताःसन्ति राजानस्तद्वृत्ताःसन्ति हि प्रजाः॥९॥

अर्थ–मैं इस हीन प्रतिज्ञा वाले वर्ताव द्वारा वर्तता हुआ किसके आचरण पर चलूं अर्थात् इस वनवासविषयक प्रतिज्ञा को छोड़कर फिर कौनसा श्रेष्ठ आचरण है जिसको ग्रहण कर उच्च अवस्था को प्राप्त होऊं, यदि आपके कथनानुसार आचरण करने लगें तो यह सारा ही लोक कामवृत्त=मनमाना होजाय, क्योंकि जैसे आचरण वाला राजा होता है वैसे ही आचरण वाले प्रजाजन होजाते हैं ॥

सत्यमेवानृशंसं च राजवृत्तं सनातनम् ।
तस्मात्सत्यात्मकं राज्यं सत्ये लोकः प्रतिष्ठितः ॥१०॥
ऋषयश्चैव देवाश्च सत्यमेव हि मेनिरे ।
सत्यवादी हि लोकेऽस्मिन्परं गच्छति चाक्षयम्॥११॥

अर्थ–सत्यपरायणता और दयाभाव ही सनातन राजवृत्त=राजमर्यादा है, यह राज्य सत्य पर स्थित और सत्य पर ही सब लोक स्थित हैं, ऋषि तथा देवता सत्य का ही मान करते और सत्यवादी ही इस लोक में परमात्मा को प्राप्त होता है ॥

उद्विजन्ते यथा सर्पान्नरादनृतवादिनः ।
धर्मः सत्यपरो लोके मूलं सर्वस्य चोच्यते ॥१२॥
सत्यमेवेश्वरो लोके सत्ये धर्मः सदाश्रितः ।
सत्यमूलानि सर्वाणि सत्यान्नास्ति परं पदम् ॥१३॥
दत्तमिष्टं हुतं चैव तप्तानि च तपांसि च ।
वेदाः सत्यप्रतिष्ठानास्तस्मात्सत्यपरो भवेत् ॥१४॥

अर्थ–असत्यभाषण करने वाले पुरुष से लोग सर्प की न्याईं भयभीत होते हैं, सत्यप्रधान धर्म ही लोक में सबका मूल कहाजाता है, सत्य ही लोक का ईश्वर, धर्म सदा सत्य के आश्रित और यह सब कुछ सारा जगत् ही सत्यमूलक है, अधिक क्या सत्य से परे कोई पद नहीं, दिया हुआ दान, अग्निहोत्रादि यज्ञ, तपे हुए तप और वेदाध्ययन, यह सब सत्य पर स्थिर हैं, इसलिये पुरुष को उचित है कि सत्यपरायण हो ॥

एकः पालयते लोकमेकः पालयते कुलम् ।
मज्जत्येको हि निरय एकः स्वर्गे महीयते ॥ १५ ॥
सोऽहं पितुर्निदेशं तु किमर्थं नानुपालये ।
सत्यप्रतिश्रवः सत्यं सत्येन समयीकृतम् ॥ १६ ॥

अर्थ-एक ही लोक का पालन करता, एक ही कुल का पालन करता, अकेला ही नरक में गिरता और अकेला ही सद्गति को प्राप्त होता है, सो मैं सत्यप्रतिज्ञ होकर पिता की आज्ञा का कैसे पालन न करूं, क्योंकि सत्यप्रतिज्ञ राजा ने अपना सत्य ही पालन करने के लिये मुझे वन भेजा है ॥

नैव लोभान्न मोहाद्वा नचाज्ञानात्तमोन्वितः ।
सेतुं सत्यस्य भेत्स्यामि गुरोः सत्यप्रतिश्रवः ॥१७॥
असत्यसंधस्य सतश्चालस्यास्थिरचेतसः ।
नैव देवा न पितरः प्रतीच्छन्तीति नः श्रुतम्॥१८॥
प्रत्यगात्ममिमं धर्मं सत्यं पश्याम्यहं ध्रुवम् ।
भारः सत्पुरुषैश्चीर्णस्तदर्थमभिनन्द्यते ॥ १९ ॥

अर्थ-मैं सत्यप्रतिज्ञ होकर अब न लोभ से, न मोह से और न अज्ञान से तमोगुणयुक्त हुआ पिता की सत्यरूप मर्यादा का उल्लङ्घन करुंगा, और यह मैंने सुना है कि जो असत्यवादी, चञ्चलचित्त तथा अस्थिर मन वाला है उसको न देवता=शिष्ट पुरुष और न पिता अङ्गीकार करते हैं, प्रत्येक पुरुष के लिये इस सत्यरूप धर्म को अटल देखता हूं, पर यह सत्यपालनरूप भार सत्पुरुषों से ही उठाया जाता है, इसलिये इसकी मैं प्रशंसा करता हूं ॥

भूमिः कीर्तिर्यशो लक्ष्मीः पुरुषं प्रार्थयन्ति हि ।
सत्यं समनुवर्तन्ते सत्यमेव भजेत्ततः ॥ २० ॥
श्रेष्ठंह्यनार्य्यमेवस्याद्यद्भवानवधार्य माम् ।
आह युक्ति करैर्वाक्यैरिदं भद्रं कुरुष्वह ॥ २१ ॥

अर्थ–भूमि, कीर्ति, यश और लक्ष्मी यह सत्यवादी पुरुष को ही प्राप्त होते हैं, इसलिये पुरुष को चाहिये कि वह सदा सत्य का ही सेवन करे, आपने जो मुझको बनावटी युक्तिवाले वाक्यों द्वारा निश्चय करके कहा है कि यह श्रेष्ठ मार्ग है इसी का पालन कर, परन्तु वह आपका कथन अनार्य्यपन का है जिसको शिष्टपुरुष ग्रहण नहीं करते ॥

कथं ह्यहं प्रतिज्ञाय वनवासमिमं गुरोः ।
भरतस्य करिष्यामि वचो हित्वा गुरोर्वचः ॥२२॥
स्थिरा मया प्रतिज्ञाता प्रतिज्ञा गुरुसन्निधौ ।
प्रहृष्टमानसा देवी कैकेयी चाभवत्तदा ॥२३॥

अर्थ–मैंने पिता के सन्मुख जो वनवास की प्रतिज्ञा की है अब पिता के उस वचन को त्यागकर भरत का कहा कैसे मानूं, गुरुओं के सन्मुख जब मैंने वनवास की स्थिर प्रतिज्ञा की थी तब उस समय कैकेयी देवी भी प्रसन्न मन हुई थी ॥

वनवासं वसन्नेव शुचिर्नियतभोजनः ।
मूलपुष्पफलैः पुण्यैः पितॄन्देवांश्च तर्पयन् ॥२४॥
सन्तुष्टपंचवर्गोऽहं लोकयात्रां प्रवाह ये ।
अकुहः श्रद्दधानः सन्कार्य्याकार्य्यविचक्षणः ॥२५॥

अर्थ—सो अब वन में रहकर पवित्र हो नियत आहार करता हुआ शुद्ध मूल,पुष्प तथा फलों से देवता और पितरों को तृप्त कर अपनी पांचो इन्द्रियों को सन्तुष्ट करने वाला मैं बिना छल कपट के कार्य्य अकार्य्य में निपुण आस्तिकभाव से लोकयात्रा को पूर्ण करूंगा ॥

सत्यं च धर्मं च पराक्रमं च भूतानुकम्पां
प्रियवादितां च। द्विजातिदेवातिथि पूजनं
च पन्थानमाहुस्त्रिदिवस्य सन्तः ॥ २६ ॥

अर्थ—सत्य का पालन, धर्म, पराक्रम, भूतों पर दया, प्रिय बोलना, ब्राह्मण, देवता और अतिथियों का सत्कार करना, इस को सत्पुरुष स्वर्ग का मार्ग कथन करते हैं ॥

निन्दाम्यहं कर्म कृतं पितुस्तद्यस्त्वाम गृह्णा-
द्विषमस्थ बुद्धिम्। बुद्धयानयैवं विधया
चरंतं सुनास्तिकं धर्म पथादपेतम् ॥ २७ ॥

अर्थ—मैं पिता के किये इस कर्म को निन्दता हूं जिन्होंने आप जैसे विषम बुद्धि वाले पुरुष को ग्रहण किया, जो उक्त भाववाली बुद्धि रखता हुआ धर्मपथ से पतित पूरा नास्तिक है ॥

इति ब्रुवन्तंवचनंसदोषंराममहात्मानमदीनसत्त्वम्।
उवाचपथ्यंपुनरास्तिकंचसत्यंवचःसानुनयंचविप्रः।२८।

अर्थ—महात्मा राम ने जब इस प्रकार जाबालि विषयक दोषयुक्त वचन कहा तब वह ब्राह्मण फिर नम्रतापूर्वक पथ्य वालाआस्तिक सत्य वचन बोला कि :—

नास्तिकानां वचनं ब्रवीम्यहं न नास्तिकोऽहं
न च नास्ति किंचन। समीक्ष्य कालं पुनरास्ति-
कोऽभवं भवेय काले पुनरेव नास्तिकः ॥२९॥

अर्थ—हे राम ! मैं नास्तिकों के वचन नहीं कह रहा और न मैं नास्तिक हूं, न मैं यह मानता हूं कि परलोकादि कुछ नहीं, मैं समय देखकर आस्तिक और नास्तिक होजाता हूं ॥

स चापि कालोऽयमुपागतः शनैर्यथा मया
नास्तिकवागुदीरिता। निवर्तनार्थं तव राम
कारणात्प्रसादनार्थं च मयैतदीरितम् ॥३०॥

अर्थ—हे राम ! यह ऐसा ही समय था जिससे मैंने धीरे से नास्तिकपन के वचन कहे थे अर्थात् आपके अयोध्या लौटने के लिये मैंने ऐसा कहा था और आपकी प्रसन्नतार्थ अब यह कहा है ॥

इति सप्तसप्ततितमः सर्गः

अथ अष्टसप्ततितमः सर्गः

अर्थ—अब राम भरत को पुनः उपदेश करते हैं :—

आसीनस्त्वेव भरतः पौरजानपदं जनम् ।
उवाच सर्वतः प्रेक्ष्य किमार्यं नानुशासथ ॥१॥
तं तदोचुर्महात्मानं पौरजानपदा जनाः ।
काकुत्स्थमभिजानीमः सम्यग्वदति राघवः ॥२॥

अर्थ–राम के समीप बैठा हुआ भरत चारो ओर देखकर पुर तथा देश के लोगों से बोला कि आप लोग अयोध्या चलने के लिये राम से क्यों नहीं कहते, तब वह लोग महात्मा भरत से बोले कि हम राम के हृदय को जानते हैं वह ठीक कह रहे हैं ॥

एषोऽपि हि महाभागः पितुर्वचसि तिष्ठति ।
अतएव न शक्ताः स्म व्यावर्तयितुमञ्जसा ॥३॥
तेषामाज्ञाय वचनं भरतो वाक्यमब्रवीत् ।
शृण्वन्तु मे परिषदो मन्त्रिणःशृणुयुस्तथा ॥४॥

अर्थ–राम अपने महाभाग पिता के वचन पर स्थित होने से हम इनके साक्षात् लौटाने में सर्वथा असमर्थ हैं, उन लोगों के यह वचन सुनकर भरत बोले कि आप सब सभासद और मन्त्री मेरे कथन को सुनें :—

न याचे पितरं राज्यं नानुशासामि मातरम् ।
एवं परमधर्मज्ञं नानुजानामि राघवम् ॥ ५ ॥
यदि त्ववश्यं वस्तव्यं कर्तव्यं च पितुर्वचः ।
अहमेव निवत्स्यामि चतुर्दश वने समाः ॥६॥

अर्थ–मैंने पिता से राज्य की याचना नहीं की और न कुछ माता से कहा, इसी प्रकार परमधर्मज्ञ राम के वनवास विषयक मुझे कुछ ज्ञात नहीं, सो यदि राम ने अवश्य ही वन में रहकर पिता का वचन पूर्ण करना है तो मैं भी चौदहवर्ष वन में रहूंगा ॥

धर्मात्मा तस्य सत्येन भ्रातुर्वाक्येन विस्मितः ।
उवाच रामः संप्रेक्ष्य पौरजानपदं जनम् ॥७॥
विक्रीतमाहितं क्रीतं यत्पित्रा जीवता मम ।
न तल्लोपयितुं शक्यं मया वा भरतेन वा ॥ ८ ॥
उपाधिर्न मया कार्यो वनवासे जुगुप्सितः ।
युक्तमुक्तं च कैकेय्या पित्रा मे सुकृतं कृतम् ॥९॥

अर्थ—भरत के ऐसा कहने पर धर्मात्मा राम भाई के सत्य-वाक्य से आश्चर्य्ययुक्त हो पुर तथा देश के लोगों की ओर देखकर बोले कि मेरे जीवित पिता ने जो कुछ बेच दिया अथवा धरोहर=अमानत रखा है उसको मैं वा भरत उलट नहीं सकते, मैं वनवास के लिये अपना कोई प्रतिनिधि नहीं बना सकता, यह मेरा कर्तव्य निन्दनीय है, कैकेयी के कथनानुसार जो पिता ने किया है वह ठीक है ॥

जानामि भरतं क्षान्तं गुरुसत्कारकारिणम् ।
सर्वमेवात्र कल्याणं सत्यसन्धे महात्मनि ॥ १० ॥
अनेनधर्मशीलेन वनात्प्रत्यागतः पुनः ।
भ्रात्रा सह भविष्यामि पृथिव्याः पतिरुत्तम ॥११॥
वृतो राजा हि कैकेय्या मया तद्वचनं कृतम् ।
अनृतान्मोचयानेन पितरं तं महीपतिम् ॥ १२ ॥

अर्थ—और मैं जानता हूं की भरत क्षमाशील तथा गुरुओं का सत्कार करने वाला है, अधिक क्या सत्यप्रतिज्ञ महात्मा भरत में सभी शुभगुण हैं, मैं वनवास से लौटकर जाने

पर अपने धर्मशील भाई भरत के साथ फिर पृथिवी का उत्तम स्वामी बनूंगा, हे भरत कैकेयी! ने राजा से वर मांगा और मैंने उनका वचन पूर्ण किया, अब तुम्हारा भी यही कर्तव्य है कि मेरे वनवास में रहने के कारण आप राजा बनकर उन पृथिवीपति पिता को सत्यप्रतिज्ञ सिद्ध करें ॥

इति अष्टसप्ततितमः सर्गः

अथ एकोनाशीतितमः सर्गः

सं०—अब राम की चरणपादुक=खड़ाऊं लेकर भरत का लौटना कथन करते हैं :—

तमप्रतिमतेजोभ्यां भ्रातृभ्यां रोमहर्षणम् ।
विस्मिताः संगमं प्रेक्ष्य समुपेता महर्षयः ॥ १ ॥
अन्तर्हिता मुनिगणाः स्थिताश्च परमर्षयः ।
तौ भ्रातरौ महाभागौ काकुत्स्थौ प्रशशंसिरे ॥२॥

अर्थ—उन महातेजस्वी भाइयों के रोमहर्षण संगम को देख कर वहां एकत्रित हुए सब महर्षि विस्मित होगये, उनमें से मुनिगण परोक्ष में और ऋषि लोग प्रत्यक्ष में महाभाग दोनों भाइयों की प्रशंसा करने लगे ॥

त्रस्तगात्रस्तु भरतः स वाचा सज्जमानया ।
कृताञ्जलिरिदं वाक्यं राघवं पुनरब्रवीत ॥ ३ ॥

अर्थ—परन्तु भरत के अङ्ग शिथिल होगये और वह हाथ जोड़कर गिरी हुई बाणी द्वारा पुनः राम से बोला कि :—

राम धर्ममिमं प्रेक्ष्य कुलधर्मानुसंततम् ।
कर्तुमर्हसि काकुत्स्थ मम मातुश्च याचनम् ॥४॥
रक्षितुं सुमहद्राजमहमेकस्तु नोत्सहे ।
पौरजानपदांश्चापि रक्तान् रञ्जयितुं तदा ॥ ५ ॥

अर्थ—हे राम ! सदा से चले आने वाले इस कुलधर्म*को देखकर मेरी और मेरी माता कैकेयी की याचना को आप पूर्ण करने योग्य हैं, इस बहुत बड़े राज्य की मैं अकेला रक्षा नहीं करसकता और न मैं आपमें अनुरक्त पुर तथा देशवासियों को प्रसन्न करसक्ता हूं ॥

ज्ञातयश्चापि योधाश्च मित्राणि सुहृदश्च नः ।
त्वामेव हि प्रतीक्षन्ते पर्जन्यमिव कर्षकाः ॥ ६ ॥
इदं राज्यं महाप्राज्ञ स्थापय प्रतिपद्य हि ।
शक्तिमान् स हि काकुत्स्थ लोकस्य परिपालने॥७॥

अर्थ—हमारे सम्बन्धी, योधा, मित्र और सुहृद् सब आप ही की इस प्रकार प्रतीक्षा कर रहे हैं जैसे किसान लोग मेघ की प्रतीक्षा करते हैं, हे महाप्राज्ञ ! इस राज्य को अङ्गीकार करके स्थापन करें, क्योंकि लोक के पालन पोषण में आपही सर्वथा समर्थ हैं ॥

एवमुक्त्वापतद्भ्रातुः पादयोर्भरतस्तदा ।
भृशं संप्रार्थयामास राघवेऽतिप्रियं वदन् ॥ ८ ॥

---

* बड़े भाई को राज्याभिषेक होने की रीति ॥

तमङ्के भ्रातरं कृत्वा रामो वचनमब्रवीत्।
श्यामं नलिनपत्राक्षं मत्त हंसस्वरः स्वयम् ॥९॥

अर्थ-यह कहकर भरत भ्राता राम के पाओं पर गिरपड़ा और अति प्रियभाषण करता हुआ बार २ प्रार्थना करने लगा, तब उस कमलसदृश नेत्रों वाले युवा भाई को स्वयं राम गोद में बिठालकर मत्त हंस के स्वर की भांति बोले कि :—

आगता त्वामिमं बुद्धिः स्वजा वैनयिकी च या।
भृशमुत्सहसे तात रक्षितुं पृथिवीमपि ॥ १० ॥
अमात्यैश्च सुहृद्भिश्च बुद्धिमद्भिश्च मन्त्रिभिः।
सर्वकार्याणि संमंत्र्य महान्त्यपि हि कारय ॥११॥

अर्थ-हे तात ! तेरे में जो स्वार्थत्याग की बुद्धि स्वभाव और शिक्षा से आई हुई है इससे तू सम्पूर्ण पृथिवी की रक्षा करने में पूर्ण प्रकार से समर्थ है, बुद्धिमान् आमात्य=राजकर्म्मचारी, सुहृद् और मन्त्रियों के साथ तू सब साधारण और बड़े कार्य्यों को भी करसक्ता है ॥

लक्ष्मीश्चन्द्रादपेयाद्वा हिमवान्वा हिमं त्यजेत्।
अतीयात्सागरो वेलां न प्रतिज्ञामहं पितुः॥ १२ ॥
कामाद्वा तात लोभाद्वा मात्रा तुभ्यमिदं कृतम्।
न तन्मनसि कर्तव्यं वर्तितव्यं च मातृवत् ॥१३॥

अर्थ-शोभा चन्द्रमा को छोड़दे, हिमालय हिम को त्यागदे, समुद्र मर्यादा को तोड़दे, परन्तु मैं पिता से कीहुई प्रतिज्ञा का कदापि त्याग न करूंगा, हे तात ! स्नेह वा लोभवशात् माता ने

जो तेरे लिये किया है उसको कभी मन में न लाना और उनके साथ वैसे ही वर्तना जैसे माता से वर्तते हैं ॥

एवं ब्रुवाणं भरतः कौसल्यासुतमब्रवीत् ।
तेजसादित्यसंकाशं प्रतिपच्चन्द्रदर्शनम् ॥ १४ ॥
अभिरोहार्यपादाभ्यां पादुके हेमभूषिते ।
एते हि सर्वलोकस्य योगक्षेमं विधास्यतः ॥१५॥

अर्थ—राम के उक्त प्रकार कहने पर सूर्य्य के तुल्य तेजस्वी और प्रतिपदा के चन्द्र तुल्य दर्शन वाले कौसल्यासुत से भरत बोले कि हे आर्य्य ! इन सुवर्णभूषित पादुकों पर पाओं से चढ़ यह सब लोक का योगक्षेम पूर्ण करेंगीं ॥

सोऽधिरुह्य नरव्याघ्रः पादुके व्यवमुच्य च ।
प्रायच्छत्सु महातेजा भरताय महात्मने ॥ १६ ॥
स पादुके संप्रणम्य रामं वचनमब्रवीत् ।
चतुर्दश हि वर्षाणि जटाचीरधरो ह्यहम् ॥ १७ ॥
फलमूलाशनो वीर भवेयं रघुनन्दन ।
तवागमनमाकांक्षन्वसन्वै नगराद्बहिः ॥ १८ ॥

अर्थ—फिर उस नरश्रेष्ठ राम ने पादुकों पर चढ़ और उतार कर महातेजस्वी भरत को दीं, और भरत उन पादुकों को प्रणाम कर राम से बोले कि हे वीर रघुनन्दन ! मैं चौदहवर्ष जटा तथा चीर धारण कर फल मूल खाउंगा और आपके आने की प्रतीक्षा करता हुआ नगर से बाहिर रहुंगा ॥

तव पादुकयोर्न्यस्य राज्यतन्त्रं परंतप ।
चतुर्दश-हि सम्पूर्णे वर्षेऽहनि रघूत्तम ॥ १९ ॥
न द्रक्ष्यामि यदि त्वां तु प्रवेक्ष्यामि हुताशनम् ।
तथेति च प्रतिज्ञाय तं परिष्वज्य सादरम् ॥२०॥
शत्रुघ्नं च प्रतिष्वज्य वचनं चेदमब्रवीत् ।
मातरं रक्ष्य कैकेयीं मा रोषं कुरु तां प्रति ॥ २१ ॥

अर्थ—और हे परंतप ! तुम्हारी इन पादुकाओं पर राज्य-भार धरकर कार्य्य करुंगा, यदि चौदहवें वर्ष का अन्तिम दिन पूर्ण होजाने पर आपको अयोध्या में न देखुंगा तो अग्नि में प्रवेश कर जल मरुगा, राम ने "तथास्तु" कह उस दिन पहुंचने की प्रतिज्ञा की, तदनन्तर भरत और शत्रुघ्न को गले लगाकर राम ने कहा कि तुमने माता कैकेयी की रक्षा करते हुए रहना, उस पर रोष कभी मत करना ॥

मया च सीतया चैव शप्तोऽसि रघुनन्दन ।
इत्युक्त्वाश्रुपरीताक्षो भ्रातरं विससर्ज ह ॥२२॥
स पादुके ते भरतः स्वलंकृते महाज्वले
संपरिगृह्यधर्मवित् । प्रदक्षिणं चैव चकार
राघवं चकार चैवोत्तमनागमूर्धनि ॥२३॥

अर्थ—तुम्हें मेरी और सीता की शपथ है, यह कहकर आंसूओं से भरे हुए नेत्रों वाले राम ने भाई को विदा किया, तदनन्तर उस धर्मज्ञ भरत ने उन उज्वल तथा सुशोभित पादुकों

को ग्रहण कर राम की प्रदक्षिणा की और उन पादुकों को उत्तम हाथी के मूर्द्धा पर रखदिया ॥

अथानुपूर्व्या प्रतिपूज्य तं जनं गुरुंश्च मंत्रीन्
प्रकृतीस्तथानुजौ । व्यसर्जं यद्राघववंशवर्धनः
स्थितः स्वधर्मे हिमवानिवाचलः ॥ २४ ॥

अर्थ—तत्पश्चात् रघुवंश के बढ़ाने वाले, अपने धर्म में स्थित, हिमालय की भांति अचल राम ने क्रमपूर्वक गुरुओं, मन्त्रियों प्रकृती=राजकर्मचारियों और दोनों छोटे भाइयों का सत्कार कर उनको विदा किया ॥

तं मातरो बाष्पगृहीत कण्ठयो दुःखेन
नामन्त्रयितुं हि शेकुः । स चैव मातॄर-
भिवाद्य सर्वा रुदन्कुटीं स्वां प्रविवेश रामः ॥२५॥

अर्थ—बाष्प से रुके हुए कण्ठ वाली मातायें दुःख से कुछ न कहसकीं, तब वह राम सब माताओं को अभिवादन कर रोता हुआ अपनी कुटी में प्रविष्ट हुआ ॥

इति एकोनाशीतितमः सर्गः

अथ अशीतितमः सर्गः

सं०—अब भरत का अयोध्या को लौटना कथन करते हैं:—

ततः शिरसि कृत्वा तु पादुके भरतस्तदा ।
आरुरोह रथं हृष्टः शत्रुघ्नसहितस्तदा ॥१॥

वसिष्ठोवामदेवश्च जाबालिश्च दृढव्रतः ।
अग्रतः प्रययुः सर्वे मन्त्रिणो मन्त्रपूजिताः ॥२॥

अर्थ—तदनन्तर "हाथी के मस्तक से उतार" भरत उन पादुकों को सिरपर धरकर प्रसन्न मुख शत्रुघ्न सहित रथ पर आरूढ़ हुआ, और वसिष्ठ, वामदेव तथा जाबालि आदि दृढ़व्रतधारी सब मन्त्री लोग वेद मन्त्रों से स्वस्त्ययन करते हुए आगे चले ॥

मन्दाकिनी नदीं रम्यां प्राङ्मुखास्ते ययुस्तदा ।
प्रदक्षिणं च कुर्वाणाश्चित्रकूटं महागिरिम् ॥ ३ ॥
पश्यन्धातु सहस्राणि रम्याणि विविधानि च ।
प्रययौ तस्य पार्श्वेन ससैन्यो भरतस्तदा ॥ ४ ॥

अर्थ—वह सब पूर्वाभिमुख हो रमणीय मन्दाकिनी नदी तथा महापर्वत चित्रकूट की प्रदक्षिणा कर विविध प्रकार की सहस्रों रमणीय धातुओं को देखते हुए पर्वत के समीप से सब सेना लेकर भरत चले ॥

स तमाश्रममागम्य भरद्वाजस्य वीर्यवान् ।
अवतीर्य रथात्पादौ ववन्दे कुलनन्दनः ॥ ५ ॥
ततो हृष्टो भरद्वाजो भरतं वाक्यमब्रवीत् ।
अपि कृत्यं कृतं तात रामेण च समागतम् ॥६॥

अर्थ—और उस वीर्यवान् कुलनन्दन भरत ने भरद्वाज के आश्रम पर पहुंच रथ से उतरकर ऋषि की पादवन्दना की, फिर

भरद्वाज ने प्रसन्न हो भरत से पूछा कि हे तात ! कार्य्य होगया, राम के साथ मिलाप तो हुआ ॥

एवमुक्तः स तु ततो भरद्वाजेन धीमता ।
प्रत्युवाच भरद्वाजं भरतो धर्मवत्सलः ॥७॥
स याच्यमानो गुरुणा मया च दृढविक्रमः ।
राघवः परमप्रीतो वसिष्ठं वाक्यमब्रवीत् ॥ ८ ॥

अर्थ—बुद्धिमान् भरद्वाज के उक्त प्रकार पूछने पर धर्मप्रिय भरत ने उनको यह उत्तर दिया कि उन दृढ़ पराक्रमी राम से जब मैंने और गुरु वसिष्ठ ने अयोध्या को लौटने के लिये याचना की तब वह परम प्रसन्न होकर वसिष्ठ से बोले कि :—

पितुः प्रतिज्ञां तामेव पालयिष्यामि तत्त्वतः ।
चतुर्दश हि वर्षाणि या प्रतिज्ञा पितुर्मम ॥ ९ ॥
एवमुक्तो महाप्राज्ञो वसिष्ठः प्रत्युवाच ह ।
वाक्यज्ञो वाक्यकुशलं राघवं वचनं महत् ॥१०॥
एते प्रयच्छ संहृष्टः पादुके हेमभूषिते ।
अयोध्यायां महाप्राज्ञ योगक्षेमकरो भव ॥११॥

अर्थ—मैं पिता की उसी प्रतिज्ञा का भलेप्रकार पालन करूंगा जो उनकी चौदहवर्ष की मेरे लिये प्रतिज्ञा है, राम के इस प्रकार कथन करने पर वाक्य के जानने वाले महाप्राज्ञ वसिष्ठ ने वाक्य कुशल=बोलने में चतुर राम को यह गम्भीर वचन कहा कि यह हेमभूषित पादुक प्रसन्नतापूर्वक देकर अयोध्या में सब योगक्षेम के निर्वाह करने वाला हो ॥

एवमुक्तो वसिष्ठेन राघवः प्राङ्मुखः स्थितः ।
पादुके हेमविकृते मम राज्याय ते ददौ ॥ १२ ॥
निवृत्तोऽहमनुज्ञातो रामेण सुमहात्मना ।
अयोध्यामेव गच्छामि गृहीत्वा पादुके शुभे॥१३॥

अर्थ—वसिष्ठ के उक्त प्रकार कहने पर राम ने पूर्वाभिमुख स्थित हो सुवर्णभूषित पादुक मेरे राज्य के लिये दिये, तब मैं महात्मा राम से आज्ञा पाया हुआ उन शुभ पादुकों को लेकर लौट आया और अयोध्या को ही जारहा हूं ॥

एतच्छ्रुत्वा शुभं वाक्यं भरतस्य महात्मनः ।
भरद्वाजः शुभतरं मुनिर्वाक्यमुदाहरत् ॥ १४ ॥
नैतच्चित्रं नरव्याघ्रे शीलवृत्तविदांवरे ।
यदार्यं त्वयि तिष्ठत्तु निम्नोत्सृष्टमिवोदकम्॥१५॥

अर्थ—महात्मा भरत के इस शुभ वाक्य को सुनकर भरद्वाज मुनि यह शुभ वचन बोले कि शील तथा वृत्त के जानने वालों में श्रेष्ठ भरत जैसे नीचे स्थान में जल जाकर स्थित होता है इसी प्रकार श्रेष्ठ चरित्र तुझ में ठहरे हुए हैं ॥

अनृणः स महाबाहुः पिता दशरथस्तव ।
यस्य त्वमीदृशः पुत्रो धर्मात्मा धर्मवत्सलः ॥१६॥
ततः प्रदक्षिणं कृत्वा भरद्वाजं पुनः पुनः ।
भरतस्तु ययौ श्रीमानयोध्यां सह मन्त्रिभिः ॥१७॥

अर्थ—वह तेरा पिता महाबाहु दशरथ अनृण है जिसका तू ऐसा धर्मात्मा धर्मवत्सल पुत्र है, फिर वह श्रीमान् भरत महात्मा भरद्वाज की पुनः २ प्रदक्षिणा करके मन्त्रियों सहित अयोध्या को लौट आया ॥

यानैश्च शकटैश्चैव हयैर्नागैश्चसाचमूः ।
पुनर्निवृत्ता विस्तीर्णा भरतस्यानुयायिनी ॥१८॥
ततस्ते यमुनां दिव्यां नदीं तीर्त्वोर्मिमालिनीम् ।
ददृशुस्तां पुनः सर्वे गगां शिवजलां नदीम् ॥१९॥
तां रम्यजलसम्पूर्णां संतीर्य सहबान्धवः ।
शृङ्गवेरपुरंरम्यं प्रविवेश स सैनिकः ॥ २० ॥
शृंगवेरपुराद्भूय अयोध्यां संददर्श ह ।
अयोध्यां तु तदा दृष्ट्वा पित्राभ्रात्राविवर्जिताम् ॥२१॥

अर्थ—और भरत के पीछे उनकी विस्तीर्ण सेना यानों, रथों, घोड़े और हाथियों पर चली, तदनन्तर उस बड़ी सेना ने प्रथम परमदिव्य लहरों वाली यमुना नदी से पार होकर अति निर्मल जलयुक्त गङ्गा नदी को देखा, फिर जल से परिपूर्ण रमणीय गङ्गा से सेना तथा बान्धवों सहित पार होकर अतिरम्य शृङ्गवेरपुर में पहुंचे, फिर शृङ्गवेरपुर से प्रस्थान करके पिता तथा भ्राता से हीन अयोध्यापुरी को देखा ॥

इति अशीतितमः सर्गः

अथ एकाशीतितमः सर्गः

सं०-अब भरत का अयोध्या में पहुंचना कथन करते हैं:—

स्निग्धगम्भीरघोषेण स्यन्दनेनोपयान्प्रभुः ।
अयोध्यां भरतः क्षिप्रं प्रविवेश महायशाः ॥ १ ॥
भरतस्तु रथस्थः सञ्श्रीमान्दशरथात्मजः ।
वाहयन्तं रथश्रेष्ठं सारथिं वाक्यमब्रवीत् ॥ २ ॥

अर्थ-स्निग्ध=कानों को प्रिय तथा गम्भीर ध्वनि वाले रथ पर आरूढ़ हुए महायशस्वी भरत शीघ्र ही अयोध्या में पहुंचे, रथ पर बैठे हुए दशरथसुत श्रीमान् भरत श्रेष्ठरथ को चलाते हुए सारथि से बोले कि :—

किं नु खल्वद्य गम्भीरो मूर्च्छितो न निशाम्यते ।
यथापुरमयोध्यायां गीतवादित्र निःस्वनः ॥ ३ ॥
यानप्रवरघोषश्चसुस्निग्धहयनिःस्वनः ।
प्रमत्तगजनादश्च महांश्च रथ निःस्वनः ॥ ४ ॥
नेदानीं श्रूयते पुर्यामस्यां रामे विवासिते ।
चन्दनागुरुगन्धांश्च महार्हाश्च वनस्रजः ॥ ५ ॥

अर्थ-आज अयोध्या में पहले की भांति गम्भीर ध्वनि वाले वाद्यों का शब्द सुनाई नहीं देता और न अन्य गाना बजाना सुनता हूं, यानों की प्रवर ध्वनि, घोड़ों की स्निग्ध हिनहनाहट, मत्त हाथियों की चिंघाड़ और रथों की बड़ी ध्वनि, राम के

वनवास से इस पुरी में सुनाई नहीं देती, न अगर तथा चन्दन के गन्ध और बहुमूल्य मालायें दृष्टिगत होती हैं ॥

गते रामे हि तरुणाः संतप्ता नोपभुञ्जते ।
बहिर्यात्रां न गच्छन्ति चित्रमाल्यधरा नराः ॥६॥
नोत्सवाः संप्रवर्तन्ते रामशोकार्दिते पुरे ।
साहि नूनं मम भ्रात्रा पुरस्यास्य द्युतिर्गता ॥७॥
कदा नु खलु मे भ्राता महोत्सव इवागतः ।
जनयिष्यत्ययोध्यायां हर्षं ग्रीष्म इवाम्बुदः ॥८॥

अर्थ—राम के वनवास जाने पर युवा पुरुष संतप्त हुए भोग नहीं भोगते, न विचित्र मालाओं को धारणकर पुरुष भ्रमण को जाते हैं, और न राम के शोक से पीड़ित पुर में उत्सव होते हैं, निःसन्देह इस पुर की शोभा मेरे भाई के साथ ही चली गई है, अब कब मेरा भाई महोत्सव की भांति आया हुआ फिर अयोध्या में हर्ष उत्पन्न करेगा, जैसे ग्रीष्मऋतु में मेघ आकर सबको आनन्दित करते हैं ॥

तरुणैश्चारुवेषैश्च नरैरुन्नतगामिभिः ।
संपतद्भिरयोध्यायां नाभिभांति महापथाः ॥ ९ ॥
इतिब्रुवन्सारथिना दुःखितो भरतस्तदा ।
अयोध्यायां संप्रविश्यैव विवेश वसतिं पितुः ।
तेन हीनां नरेन्द्रेण सिंहहीनां गुहामिव ॥ १० ॥

अर्थ—और न सुन्दर वेषों वाले साथ हो मिलकर चलते हुए युवा पुरुषों से अयोध्या के महापथ=विस्तीर्ण मार्ग शोभायमान

हैं, इस प्रकार दुःखित हुए भरत सारथि से बातें करते हुए अयोध्या में प्रवेश कर पिता के मन्दिर में गये जो सिंह से हीन गुफा की भांति नरेन्द्र से विना सूना पड़ा था ॥

सं०—अब भरत के राज्यव्यवहार विषयक कथन करते हैं:—

ततो निक्षिप्यमातृस्ता अयोध्यायां दृढव्रतः ।
भरतः शोकसंतप्तो गुरूनिदमथाब्रवीत् ॥ ११ ॥
नन्दिग्रामं गमिष्यामि सर्वानामन्त्रयेऽत्र वः ।
तत्र दुःखमिदं सर्वं सहिष्ये राघवं विना ॥ १२ ॥
गतश्चाहो दिवं राजा वनस्थः स गुरुर्मम ।
रामं प्रतीक्षे राज्याय स हि राजा महायशाः ॥१३॥

अर्थ—तत्पश्चात् माताओं को अयोध्या में छोड़कर शोक से संतप्त दृढ़व्रतधारी भरत गुरुओं से बोला कि मैं नन्दिग्राम को जाऊंगा, आप सब से आज्ञा मांगता हूं और वहां पर राम के बिना इस सारे दुःख को सहन करूंगा, राजा का स्वर्गवास होगया और मेरा बड़ा भाई वन में स्थित है, मैं राज्य के लिये उसी की प्रतीक्षा करूंगा, क्योंकि वही महायशस्वी राजा है ॥

एतच्छ्रुत्वा शुभंवाक्यं भरतस्य महात्मनः ।
अब्रुवन्मन्त्रिणः सर्वे वसिष्ठश्च पुरोहितः ॥ १४ ॥
सुभृशं श्लाघनीयं च यदुक्तं भरत त्वया ।
वचनं भ्रातृवात्सल्यादनुरूपं तवैव तत् ॥ १५ ॥

अर्थ—महात्मा भरत के उक्त शुभ वचन सुनकर सब मन्त्री और पुरोहित वसिष्ठ बोले कि हे भरत ! तैने भाई के प्रेम से यह अतिश्लाघनीय=प्रशंसित वचन कहा है जो तेरे योग्य है ॥

मन्त्रिणां वचनं श्रुत्वा यथाभिलषितं प्रियम् ।
अब्रवीत्सारथिं वाक्यं रथो मे युज्यतामिति ॥१६॥
प्रहृष्टवदनः सर्वा मातृः समभिभाष्य च ।
आरुरोहरथं श्रीमान्शत्रुघ्नेन समन्वितः ॥ १७ ॥
अग्रते गुरवः सर्वे वसिष्ठप्रमुखाद्विजाः ।
प्रययुः प्राङ्मुखाः सर्वे नन्दिग्रामो यतो भवेत्॥१८॥

अर्थ–तदनन्तर मन्त्रियों से अपने मनोवांच्छित प्रियवचन सुनकर भरत सारथि से बोले कि मेरा रथ शीघ्र ही तैयार करो, फिर प्रसन्न वदन भरत सब माताओं से कहसुनकर विदा हो शत्रुघ्न सहित रथ पर आरुढ़ हुए, आगे २ गुरु वसिष्ठ सहित सब ब्राह्मणों ने पूर्वाभिमुख प्रस्थान किया जिधर नन्दिग्राम था ॥

रथस्थः स तु धर्मात्मा भरतो भ्रातृवत्सलः ।
नन्दिग्रामं ययौ तूर्णं शिरस्यादाय पादुके ॥१९॥
भरतस्तु ततः क्षिप्रं नन्दिग्रामं प्रविश्य सः ।
अवतीर्य रथात्तूर्णं गुरुनिदमभाषत ॥२०॥

अर्थ–भाई का प्यारा धर्मात्मा भरत रथपर बैठ पादुकों को सिरपर धर नन्दिग्राम में पहुंचे, और नन्दिग्राम में प्रवेशकर शीघ्र ही रथ से उतर गुरुओं से बोले कि :—

एतद्राज्यं मम भ्रात्रा दत्तं संन्यासमुत्तमम् ।
योगक्षेमवहेचेमे पादुके हेमभूषिते ॥२१॥

भरतः शिरसा कृत्वा संन्यासं पादुके ततः ।
अब्रवीद्दुःखसंतप्तः सर्वं प्रकृतिमण्डलम् ॥ २२ ॥

अर्थ–यह उत्तम राज्य मुझको भाई ने धरोहर=अमानत दिया है जिसके योगक्षेम का निर्वाह करने वाले यह सुवर्ण भूषित पादुक हैं, फिर उन पादुकों को सिर पर धर दुःख से सन्तप्त हुआ भरत सब प्रकृतिमण्डल=राजकर्मचारी तथा मन्त्री आदिकों से बोला कि :—

छत्रंधारयत क्षिप्रमार्यपादाविमौ मतौ ।
आभ्यांराज्ये स्थितो धर्मः पादुकाभ्यांगुरोर्मम ॥२३॥
भ्रात्रा तु मयि संन्यासो निक्षिप्तः सौहृदादयम् ।
तमिमं पालयिष्यामि राघवागमनं प्रति ॥ २४ ॥

अर्थ–इन पादुकों पर छत्र धारण करो, यह श्रेष्ठपादुक राजा की जगह हैं, मेरे बड़े भाई राम का धर्म इन पादुकों द्वारा राज्य पर स्थित है अर्थात् इन पादुकाओं के राज्य पर स्थित होने से सब राज्यव्यवहार धर्मानुकूल होगा, यह पादुक मुझको भाई ने सौहार्द=स्नेहपूर्वक अमानत दी हैं,सो मैं राम के आगमन पर्य्यन्त इन्हीं के द्वारा राज्य का पालन करूंगा ॥

क्षिप्रं संयोजयित्वा तु राघवस्य पुनः स्वयम् ।
चरणौ तौ तु रामस्य द्रक्ष्यामि सह पादुकौ ॥२५॥
ततो निक्षिप्त भारोऽहं राघवेण समागतः ।
निवेद्यगुरुवे राज्यं भजिष्ये गुरुवर्तिताम् ॥ २६ ॥

अर्थ–फिर राम के आने पर शीघ्र ही इन पादुकों को उनके

सन्मुख रख पादुकों सहित उनके चरणों का दर्शन करके पश्चात् इस राज्यभार को उतारकर अपने बड़े भाई राम से राज्य के लिये निवेदन करूंगा अर्थात् उनको राज्य देकर उन्हीं की सेवा में प्रवृत्त रहुंगा ॥

राघवाय च संन्यासं दत्वेमे वरपादुके ।
राज्यं चेदमयोध्यां च धूत पापो भवाम्यहम् ॥२७॥
स वल्कल जटाधारी मुनिवेषधरः प्रभुः ।
नन्दिग्रामेऽवसद्धीरः ससैन्यो भरतस्तदा ॥ २८ ॥

अर्थ—यह श्रेष्ठ पादुक और अयोध्या का राज्य उनको देकर मैं पाप से उऋण होउंगा, इस प्रकार सङ्कल्प वाला धीर भरत जटा तथा वल्कल धारणकर मुनिवेषधारी हो सेना सहित नन्दीग्राम में रहा ॥

ततस्तु भरतः श्रीमानभिषिच्यार्यपादुके ।
तदधीनस्तदा राज्यं कारयामास सर्वदा ॥२९॥

अर्थ—तब श्रीमान् भरत उन श्रेष्ठ पादुकों का अभिषेककर अर्थात् उनको राजा के स्थान पर स्थापित करके उनके अधीन हो राज्य करने लगा ॥

तदा हि यत्कार्य्यमुपैति किंचिदुपायनं चोप-
हृतं महार्हम् । स पादुकाभ्यां प्रथमं निवेद्य
चकार पश्चाद्भरतो यथावत् ॥ ३० ॥

अर्थ—भरत जो कोई राज्यकार्य्य करते अथवा कोई बहुमूल्य

भेंट आती तो प्रथम पादुकों के सन्मुख निवेदन कर पश्चात् यथायोग्य करते थे ॥

इति एकाशीतितमः सर्गः

अथ द्व्यशीतितमः सर्गः

सं०—अब राम का चित्रकूट मे आगे अत्रिऋषि के आश्रम में आना कथन करते हैं :—

राघवस्त्वपयातेषु सर्वेष्वनुविचिन्तयन् ।
न तत्रारोचयद्वासं कारणैर्बहुभिस्तदा ॥१॥
इह मे भरतो दृष्टो मातरश्च सनागराः ।
सा च मे स्मृतिरन्वेति तान्नित्यमनुशोचतः ॥२॥

अर्थ—चित्रकूट निवासी सब ऋषियों के चलेजाने पर और कई कारणों से राम ने सोचा कि यहां रहना ठीक नहीं, यहां मैंने भरत, मातायें और नगर के सब लोगों को देखा है सो वह सब जैसे मेरे लिये शोक में थे वह स्मृति मुझे भूलती नहीं ॥

तस्मादन्यत्र गच्छाम इति संचिन्त्य राघवः ।
प्रातिष्ठत स वैदेह्या लक्ष्मणेन च संगतः ॥ ३ ॥
सोऽत्रेराश्रममासाद्य तं ववन्दे महायशाः ।
तं चापि भगवानत्रिः पुत्रवत्प्रत्यपद्यत ॥ ४ ॥

अर्थ—इसलिये यहां से कहीं अन्यत्र चलना चाहिये, यह

सोचकर सीता तथा लक्ष्मण के साहित राम ने प्रस्थान कर अत्रि ऋषि के आश्रम में पहुंच उनको प्रणाम किया और भगवान् अत्रि ने भी उन्हें पुत्र की दृष्टि से देखा॥

स्वयमातिथ्यमादिश्य सर्वमस्य सुसत्कृतम् ।
सौमित्रिं च महाभागं सीतां च समसान्त्वयत् ॥५॥

अर्थ–और बड़े आदर से ऋषि ने उनका स्वयं आतिथ्य-सत्कार कर महाभाग लक्ष्मण तथा सीता को भी आश्वासन दिया॥

अनसूयां महाभागां तापसीं धर्मचारिणीम् ।
प्रतिगृह्णीष्व वैदेहीमब्रवीदृषिसत्तमः ॥ ६ ॥

अर्थ–और फिर उस श्रेष्ठऋषि ने महाभागा=भाग्यवती, तपस्विनी तथा धर्मचारिणी अपनी अनसूया पत्नी से कहा कि आप सीता को ग्रहण करें ॥

तां तु सीता महाभागामनसूयां पतिव्रताम् ।
अभ्यवादयदव्यग्रा स्वं नाम समुदाहरत् ॥ ७ ॥
ततः सीतां महाभागां दृष्ट्वा तां धर्मचारिणीम् ।
सान्त्वयन्त्यब्रवीद् वृद्धा दिष्ट्या धर्ममवेक्षसे ॥८॥

अर्थ–फिर उन महाभागा, पतिव्रता अनसूया को सीता ने सावधानी से अपना नाम लेकर अभिवादन किया, तदनन्तर पति के समान धर्म का आचरण करने वाली महाभागा सीता को आश्वासन देकर वह वृद्धा सीता से बोली कि तू बड़ी भाग्यवती है जो धर्म के अनुकूल बर्तती है ॥

त्यक्त्वा ज्ञातिजनं सीते मानवृद्धिं च मानिनि ।
अवरुद्धं वने रामं दिष्ट्या त्वमनुगच्छसि ॥ ९ ॥
नगरस्थो वनस्थो वा शुभो वा यदि वाशुभः ।
यासां स्त्रीणां प्रियो भर्ता तासां लोका महोदयाः॥१०॥

अर्थ–हे सीते ! तू बड़े भाग्यवाली है जो अपने बान्धवों और मानवृद्धि को छोड़कर वनवास के लिये अवरुद्ध=लाचार हुए राम के पीछे आई है, नगर में हो वा वन में हो, अनुकूल वा प्रतिकूल हो, जिन स्त्रियों को भर्ता प्यारा है उनको बड़े उच्च लोक प्राप्त होते हैं अर्थात् वह उच्च अवस्था को प्राप्त होती हैं ॥

दुःशीलः कामवृत्तो वा धनैर्वापरिवर्जितः ।
स्त्रीणामार्यस्वभावानां परमं दैवतं पतिः ॥ ११ ॥
त्वद्विधास्तुगुणैर्युक्ता दृष्टलोक परावराः ।
स्त्रियः स्वर्गेचरिष्यन्ति यथा पुण्य कृतस्तथा ॥१२॥

अर्थ–कठोर स्वभाव वाला, अपनी इच्छानुसार चलने वाला अथवा धनों से रहित पति भी श्रेष्ठस्वभाव वाली स्त्रियों के लिये परम देवता होता है, जो स्त्री तुम्हारे समान पतिव्रत आदि गुणों से पूर्ण परलोक की गति जानने वाली हैं वह स्वर्ग को प्राप्त होती हैं, जैसे पुण्यवान् पुरुष स्वर्ग=उत्तम अवस्था को प्राप्त होते हैं ॥

तदेवमेतं त्वमनुव्रता सती पतिप्रधाना
समयानुवर्तिनी । भव स्वभर्तुः सहधर्म-
चारिणी यशश्च धर्मं च ततःसमाप्स्यसि॥१३॥

अर्थ—सो इसी प्रकार तू भी अपने भर्ता राम की सहगामिनी होकर पतिप्रधान=पति को ही सर्वोत्तम मानने वाली हो और धर्ममर्यादा का पालन करती हुई अपने भर्ता की सहधर्मचारिणी होकर यश तथा धर्म को लाभ कर ॥

इति द्व्यशीतितमः सर्गः

अथ त्र्यशीतितमः सर्गः

सं०—अब अत्रि के आश्रम में सीता का सन्मान तथा वहां से आगे की यात्रा का वर्णन करते हैं :—

सा त्वेवमुक्ता वैदेही त्वनसूयानसूयया ।
प्रतिपूज्य वचो मन्दं प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥ १ ॥

नैतदाश्चर्य्यमार्यायां यन्मां त्वमनुभाषसे ।
विदितं तु ममाप्येतद्यथा नार्याः पतिर्गुरुः ॥ २ ॥

अर्थ—जब निन्दा से रहित सीता को अनसूया ने उक्त प्रकार कहा तब वह उनके वचनों का आदर करती हुई नम्रतापूर्वक बोली कि आपके लिये यह आश्चर्य्य नहीं जो आप मुझे उपदेश करती हैं, यह मुझे भी भलेप्रकार विदित है कि नारी का पति गुरु=पूज्य होता है ॥

आगच्छन्त्याश्च विजनं वनमेवं भयावहम् ।
समाहितं हि मे श्वश्र्वा हृदये यत्स्थिरं मम ॥३॥

पाणिप्रदानकाले च यत्पुरा त्वग्निसन्निधौ ।
अनुशिष्टं जनन्या मे वाक्यं तदपि मे धृतम्॥४॥
न विस्मृतं तु मे सर्वं वाक्यैः स्वैर्धर्मचारिणि ।
पति शुश्रूषणान्नार्यास्तपो नान्यद्विधीयते ॥ ५ ॥

अर्थ–और इस प्रकार के भयानक निर्जन वन को आते समय जो मुझे सास ने उपदेश किया था वह भी मेरे हृदय में स्थिर है, तथा इससे भी पूर्व पाणिग्रहण समय अग्नि की सन्निधि में जो माता ने मुझे उपदेश किया था वह भी याद है, हे धर्मचारिणि ! मेरी माता आदि ने मुझको विस्तारपूर्वक शिक्षा दी है कि स्त्री के लिये पतिसेवा से बढ़कर और कोई तप नहीं ॥

सावित्री पतिशुश्रूषां कृत्वा स्वर्गे महीयते ।
तथावृत्तिश्च याता त्वं पतिशुश्रूषया दिवम् ॥ ६ ॥
एवंविधाश्च प्रवराः स्त्रियो भर्तृदृढव्रताः ।
देवलोके महीयन्ते पुण्येन स्वेन कर्मणा ॥ ७ ॥

अर्थ–सावित्री देवी अपने पति की सेवा करके स्वर्ग=उच्च अवस्था को प्राप्त हुई तथा धर्मानुकूल वर्तने वाली आप भी पतिसेवा से स्वर्ग को हस्तगत किये हुए हैं, इसी प्रकार बहुतसी पतिव्रता स्त्रियां अपने पति में दृढ़भक्ति के कारण स्वर्ग को प्राप्त हो पूजित हुई हैं ॥

ततोऽनसूया संहृष्टा श्रुत्वोक्तं सीतया वचः ।
शिरस्याघ्राय चोवाच मैथिलीं हर्षयन्त्युत ॥ ८ ॥
उपपन्नं च युक्तं च वचनं तव मैथिलि ।
प्रीता चास्म्युचितां सीते करवाणि प्रियं च किम्॥९॥

अर्थ–तब सीता के उक्त वचन सुनकर प्रसन्न हुई अनसूया सीता के सिर को चूमकर उसको प्रसन्न करती हुई बोली कि हे मैथिलि! तू सत्य कहती है, तेरा कथन बहुत युक्त है, मैं तेरे वचन सुनकर अति प्रसन्न हुई हूं, हे सीते! कहो मैं तेरा क्या हित करूं ॥

तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा विस्मिता मन्दविस्मया।
कृतमित्यब्रवीत्सीता तपोबलसमन्विताम् ॥ १० ॥
सात्वेवमुक्तधर्मज्ञा तया प्रीततराभवत्।
सफलं च प्रहर्षं ते हन्त सीते करोम्यहम् ॥ ११ ॥

अर्थ–उक्त वचन सुनकर सीता विस्मित हो मन्द २ मुस्कराती हुई उस तपोबलयुक्त अनसूया से बोली कि आपके अनुग्रह से ही यह सब कियागया है, जब सीता ने उस धर्मज्ञा अनसूया को इस प्रकार कहा तब वह और भी अधिक प्रसन्न होकर बोली कि हे सीते! मैं तेरे इस प्रहर्ष=आनन्द को सफल करती हूं ॥

इदं दिव्यं वरं माल्यं वस्त्रमाभरणानि च।
अंगरागं च वैदेहि महार्हमनुलेपनम् ॥ १२ ॥
मया दत्तमिदं सीते तव गात्राणि शोभयेत्।
अनुरूपमसं क्लिष्टं नित्यमेव भविष्यति ॥ १३ ॥

अर्थ–हे वैदेहि! यह दिव्य सुन्दर माला, वस्त्र, आभूषण और अङ्गराग=अङ्गों को रङ्ग देने वाला और यह अत्युत्तम सुगन्धित अनुलेपन=अङ्गों पर मर्दन करने वाला पदार्थ, हे सीते! मुझसे दिया हुआ तेरे अङ्गों को सुशोभित करे, यह तेरे अङ्गों

का रूप बढ़ाता हुआ सदा नया ही प्रतीत होगा अर्थात् सदा लगा रहेगा ॥

सा वस्त्रमङ्गरागं च भूषणानि स्रजस्तथा ।
मैथिली प्रतिजग्राह प्रीतिदानमनुत्तमम् ॥ १४ ॥
सा तदा समलंकृत्य सीता सुरसुतोपमा ।
प्रणम्य शिरसा पादौ रामं त्वभिमुखी ययौ ॥१५॥
न्यवेदयत्ततः सर्वं सीता रामाय मैथिली ।
प्रीतिदानं तपस्विन्या वसनाभरणस्रजाम् ॥ १६ ॥

अर्थ—अनसूया के दिये हुए वस्त्र, अङ्गराग, भूषण और मालायें जो सर्वोत्तम प्रीतिदान था उसको सीता ने स्वीकार किया, और सब प्रकार से अलंकृत हो देवकन्या तुल्य सीता ने अनसूया के पाओं पर प्रणाम करके राम के सन्मुख गई, और तपस्विनी अनसूया के दिये हुए वस्त्र, आभूषण तथा मालाओं का प्रीतिदान सब सीता ने राम को सुनाया ॥

प्रहृष्टस्त्वभवद्रामो लक्ष्मणश्च महारथः ।
मैथिल्याः सत्क्रियां दृष्ट्वा मानुषेषु सुदुर्लभाम्॥१७॥
ततः स शर्वरीं प्रीतः पुण्यां शशिनिभाननाम् ।
अर्चितस्तापसैः सर्वैरुवास रघुनन्दनः ॥ १८ ॥

अर्थ—सीता के इतने बड़े मान को देखकर जो मनुष्यों में बहुत दुर्लभ है राम और महारथी लक्ष्मण अति प्रसन्न हुए, तदनन्तर उन सब तपस्वियों से पूजित हुए राम अति प्रसन्न हो चन्द्रमा से सुशोभित उस पवित्र रात्रिभर वहां रहे ॥

तस्यां रात्र्यां व्यतीतायामभिषिच्य हुताग्निकान् ।
आपृच्छेतां नरव्याघ्रौ तापसान्वनगोचरान् ॥१९॥
तावूचुस्ते वनचरास्तापसा धर्मचारिणः ।
वनस्य तस्य संचारं राक्षसैः समभिप्लुतम् ॥२०॥

अर्थ–उस रात्रि के व्यतीत होने पर स्नान के अनन्तर अग्निहोत्र करके वनवासी तपस्वियों से उन दोनों श्रेष्ठ नरों ने आगे जाने के लिये आज्ञा मांगी, तब उन वनचारी धर्मात्मा तपस्वियों ने उनसे कहा कि राक्षसों के उपद्रव से इस वन में फिरना कठिन होगा अर्थात् इस वन में राक्षस लोग तपस्वियों को बहुत दुःख देते हैं ॥

रक्षांसि पुरुषादानिनानारूपाणि राघव ।
वसन्त्यस्मिन्महारण्ये व्यालाश्च रुधिराशनाः ॥२१॥
उच्छिष्टं वा प्रमत्तं वा तापसं ब्रह्मचारिणम् ।
अदन्त्यस्मिन्महारण्ये तान्निवारय राघव ॥ २२ ॥

अर्थ–हे राघव ! नानारूपधारी मनुष्यों के भक्षक राक्षस और रुधिरपान करने वाले सर्प, इस महावन में बहुत वास करते हैं, हे राघव ! इस वन में जो ब्रह्मचारी तप छोड़ प्रमादयुक्त अथवा अपवित्र रहते हैं उनको राक्षस लोग भक्षण करलेते हैं सो आप उन राक्षसों का निवारण करें ॥

एष पन्था महर्षीणां फलान्याहरतां वने ।
अनेन तु वनं दुर्गं गन्तुं राघव ते क्षमम् ॥ २३ ॥

अर्थ–हे राघव ! यह मार्ग है जिस मार्ग द्वारा महर्षि लोग

वन में फल फूल लेने जाते हैं, इसी मार्ग से आपको इस दुर्गम वन में जाना चाहिये ॥

इतीरितः प्राञ्जलिभिस्तपस्विभिर्द्विजैः कृत-
स्वस्त्ययनः परंतपः । वनं सभार्यः प्रविवेश
राघवः स लक्ष्मणः सूर्य इवाभ्रमण्डलम् ॥ २४ ॥

अर्थ—उन तपस्वी ब्राह्मणों ने उक्त प्रकार राम से कहा और हाथ जोड़कर उनके लिये स्वस्त्ययन किया, तदनन्तर सीता तथा लक्ष्मण सहित उस परंतप राम ने मेघमण्डल में सूर्य्य की भांति उस सघन वन में प्रवेश किया ॥

इति त्र्यशीतितमः सर्गः

समाप्तश्चेदं अयोध्याकाण्डम्

ओ३म्

अथ अरण्यकाण्डं प्रारभ्यते
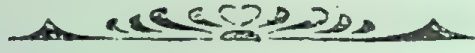
प्रविश्य तु महारण्यं दण्डकारण्यमात्मवान् ।
रामो ददर्श दुर्धर्षस्तापसाश्रममण्डलम् ॥ १ ॥

अर्थ–उस महावन दण्डकारण्य में दुर्धर्ष=कठिनता से जीतने योग्य आत्मवान् राम ने प्रवेशकर तपस्वियों का आश्रममण्डल देखा॥

शरण्यं सर्वभूतानां सुसंमृष्टाजिरं सदा ।
मृगैर्बहुभिराकीर्णं पक्षिसंघैः समावृतम् ॥ २ ॥
समिद्भिस्तोयकलशैः फलफूलैश्चशोभितम् ।
आरण्यैश्च महावृक्षैः पुण्यैः स्वादुफलैर्वृतम् ॥ ३ ॥

अर्थ–जो सदा शुद्ध पवित्र, सुशोभित आंगनों वाला, सब जीवों के वास योग्य, अनेक प्रकार के मृग तथा पक्षियों से भरा हुआ, समिधा, जल के कलश और फल फूलादिकों से सुशोभित, और जो स्वादु फल वाले पवित्र वन के बड़े २ वृक्षों से युक्त था ॥

बलिहोमार्चितं पुण्यं ब्रह्मघोष निनादितम् ।
पुष्पैश्चान्यैः परिक्षिप्तं पद्मिन्या च सपद्मया ॥ ४ ॥
फलमूलाशनैर्दान्तैश्चीरकृष्णाजिनाम्बरैः ।
सूर्यवैश्वानराभैश्च पुराणैर्मुनिभिर्युतम् ॥ ५ ॥

अर्थ—नाना प्रकार के बलि, होमादिकों से अर्चित, पवित्र वेदपाठ से शब्दायमान, इधर उधर बिखरे हुए पुष्पों तथा फूले हुए कमलों वाले तालावों से सुशोभित और जो फल, मूल भक्षण करने वाले जितेन्द्रिय, चीर तथा काले मृगान के वस्त्रों वाले और सूर्य्य तथा अग्नि के तुल्य देदीप्यमान वृद्धमुनियों से भरा हुआ था ॥

पुण्यैश्च नियताहारैः शोभितं परमर्षिभिः ।
तद्ब्रह्मभवनप्रख्यं ब्रह्मघोषनिनादितम् ॥ ६ ॥
ब्रह्मविद्भिर्महाभागैर्ब्राह्मणैरुपशोभितम् ।
तद्दृष्ट्वा राघवः श्रीमांस्तापसाश्रममण्डलम् ॥७॥
अभ्यगच्छन्महातेजा विज्यं कृत्वा महद्धनुः ।
दिव्यज्ञानोपपन्नास्ते रामं दृष्ट्वा महर्षयः ॥ ८ ॥

अर्थ—नियत आहार करने वाले पुण्यात्मा महर्षियों से युक्त ब्रह्मभवन के तुल्य वेदध्वनि से गूंजता हुआ, वेद के जानने वाले महाभाग ब्राह्मणों से सुशोभित तपस्वियों के आश्रममण्डल को देखकर महातेजस्वी श्रीमान् राम धनुष को नीचा कर वहां प्रविष्ट हुए, प्रवेश करते ही दिव्यज्ञान से युक्त महर्षि लोग राम और :—

अभिजग्मुस्तदाप्रीता वैदेहीं च यशस्विनीम् ।
ते तु सोममिवोद्यन्तं दृष्ट्वा वैधर्मचारिणम् ॥ ९ ॥
लक्ष्मणं चैव दृष्ट्वातु वैदेहीं च यशस्विनीम् ।
मंगलानि प्रयुंजानाः प्रत्यगृह्णन्दृढव्रताः ॥ १० ॥

अर्थ—यशस्विनी सीता को देखकर परमप्रीति से उनकी ओर चले, फिर चन्द्रमा के उदय समान धर्मचारी राम, लक्ष्मण और सीता को देखकर वेदमन्त्रों से आशीर्वाद देते हुए दृढ़-व्रती मुनियों ने उनको स्वीकार किया ॥

रूपसंहननं लक्ष्मीं सौकुमार्य्यं सुवेषताम् ।
ददृशुर्विस्मिताकारा रामस्य वनवासिनः ॥ ११ ॥
वैदेहीं लक्ष्मणं रामं नेत्रैरनिमिषैरिव ।
आश्चर्य्यभूतान्ददृशुः सर्वे ते वनवासिनः ॥१२॥

अर्थ—तदनन्तर वह मुनिलोग आश्चर्य्य से वनवासी राम के अङ्गों की संगठन,लावण्य,कोमलता तथा सुन्दरवेष देखकर राम, लक्ष्मण और सीता को एकटक आश्चर्य्य की भांति देखते रहे ॥

अत्रैनं हि महाभागाः सर्वभूतहिते रताः ।
अतिथिं पर्णशालायां राघवं संन्यवेशयन् ॥१३॥
मंगलानि प्रयुञ्जानामुदा परमया युता ।
मूलं पुष्पं फलं सर्वमाश्रमं च महात्मनः ॥ १४ ॥
निवेदयित्वा धर्मज्ञास्ते तु प्राञ्जलयोऽब्रुवन् ।
नगरस्थो वनस्थो वा त्वं नो राजा जनेश्वरः॥१५॥
न्यस्तदण्डा वयं राजन् जितक्रोधा जितेन्द्रियाः ।
रक्षणीयास्त्वयाशश्वद्गर्भभूतास्तपोधनाः ॥ २६ ॥

अर्थ—सब भूतों के हित में रत उन महाभागों ने पर्णशाला में अतिथि राम को ठहराया, और आशीर्वाद देते हुए परम हर्ष

से युक्त सब आश्रमवासी महात्माओं ने उनको मूल, फल तथा पुष्प भेट धर हाथ जोड़कर निवेदन किया कि चाहें आप नगर अथवा वन में कहीं स्थित हों आप हमारे राजा ही हैं, हे राजन् ! हम सब दण्डधारण करना छोड़कर जितक्रोध तथा जितेन्द्रिय होगये हैं, सो आप हमारी निरन्तर रक्षा करें, जैसे गर्भ में स्थित बालक की माता रक्षा करती है ॥

इति प्रथमः सर्गः

अथ द्वितीयः सर्गः

सं०—अब वहां वन में विराध नामक राक्षस के वध का कथन करते हैं :—

कृतातिथ्योऽथ रामस्तु सूर्यस्योदयनं प्रति ।
आमन्त्र्य स मुनीन्सर्वान्वनमेवान्वगाहत ॥१॥
सीतया सह काकुस्थस्तस्मिन्घोरमृगायुते ।
ददर्श गिरिशृंगाभं पुरुषादं महास्वनम् ॥२॥

अर्थ—इसके अनन्तर उन तीनों ने उक्त आश्रम में आतिथ्य सत्कार पाकर सूर्य्योदय के समय राम मुनियों से आज्ञा लेकर वन में प्रविष्ट हुए, तब वहां भयंकर मृगों से युक्त वन में सीता के सहित राम ने बड़ी ध्वनि वाला तथा बहुत बड़ा पुरुष-भक्षी एक राक्षस देखा ॥

वसानं चर्म वैयाघ्रं वसार्द्रं रुधिरोक्षितम् ।
त्रासनं सर्वभूतानां व्यादितास्य मिवांतकम् ॥३॥
स कृत्वा भैरवं नादं चालयन्निव मेदिनीम् ।
अंकेनादाय वैदेहीमपक्रम्य तदाब्रवीत् ॥४॥

अर्थ–जो बाघ की खाल पहने हुए, चर्बी तथा रुधिर से लिपटा हुआ, मुख फाड़कर सन्मुख आते हुए काल की भांति सब भूतों को भयभीत करने वाला, वह भयंकर नाद करके मानो पृथिवी को कम्पाता हुआ सीता को कमर से पकड़कर उठा कन्धों पर रख पीछे हटकर बोला कि :—

कथं तापसयोर्वां च वासः प्रमदया सह ।
अधर्मचारिणौ पापौ कौ युवां मुनिदूषकौ ॥५॥
अहं वनमिदं दुर्गं विराधो नाम राक्षसः ।
चरामि सायुधो नित्यमृषिमांसानि भक्षयन् ॥६॥
इयं नारी वरारोहा मम भार्या भविष्यति ।
युवयोः पापयोश्चाहं पास्यामि रुधिरं मृधे ॥७॥

अर्थ–कैसे तुम दोनों तपस्वी बनकर एक स्त्री के साथ रहते हो, तुम दोनों युवावस्था को प्राप्त, अधर्मचारी, पापी कौन हो जो मुनियों को दूषित करते हो, मैं विराध नामक राक्षस इस दुर्गम वन में सदा ऋषियों का मांस खाता हुआ शस्त्र सहित विचरता हूं, यह उत्तम नारी मेरी भार्या होगी और तुम दोनों पापियों का युद्ध में रुधिर पीऊंगा ॥

श्रुत्वा सगर्वितं वाक्यं संभ्रान्ता जनकात्मजा ।
सीता प्रवेपितोद्वेगात्प्रवाते कदली यथा ॥ ८ ॥
ततः सज्यं धनुः कृत्वा रामः सुनिशिताञ्शरान् ।
सुशीघ्रमभिसंधाय राक्षसं निजघान ह ॥९॥
स विद्धो न्यस्य वैदेहीं शूलमुद्यम्य राक्षसः ।
अभ्यद्रवत्सुसंक्रुद्धस्तदा रामं सलक्ष्मणम् ॥१०॥

अर्थ–विराध के ऐसे गर्वयुक्त वाक्य सुनकर जनकसुता प्रबल वायु में कदली=केला की भांति बड़े वेग से कांपने लगी, तत्पश्चात् राम ने धनुष पर चिल्ला चढ़ा और उसमें तीक्ष्ण तीर जोड़कर बड़ी शीघ्रता से उस राक्षस को वींध दिया, तीरों से विंधा हुआ वह राक्षस सीता को छोड़ त्रिशूल उठाकर क्रुद्ध हुआ राम लक्ष्मण की ओर दौड़ा ॥

तच्छूलं वज्रसंकाशं गगने ज्वलनोपमम् ।
द्वाभ्यांशराभ्यांचिच्छेद रामः शस्त्रभृतांवरः ॥११॥
स वध्यमानः सुभृशं भुजाभ्यां परिगृह्य तौ ।
अप्रकम्प्यौ नरव्याघ्रौ रौद्रः प्रस्थातुमैच्छत् ॥१२॥

अर्थ–तब आकाश में बिजुली के समान चमकते हुए उसके वज्रतुल्य त्रिशूल के शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ राम ने दो तीरों से टुकड़े २ कर दिये और उन दोनो वीरों से मार खाता हुआ वह भयंकर राक्षस दोनों निर्भय नरश्रेष्ठों को दोनों भुजाओं से उठाकर भागने लगा ॥

तस्य रौद्रस्य सौमित्रिः सव्यं बाहुं बभंज ह ।
रामस्तु दक्षिणं बाहुं तरसा तस्य रक्षसः ॥१३॥
स भग्नबाहुः संविग्नः पपाताशु विमूर्छितः ।
धरण्यां मेघसंकाशो वज्रभिन्न इवाचलः ॥१४॥
स विद्धो बहुभिर्बाणैः खड्गाभ्यां च परिक्षतः ।
इदं प्रोवाच काकुत्स्थं विराधः पुरुषर्षभम् ॥१५॥

अर्थ-तब उस भयंकर राक्षस की बांई भुजा लक्ष्मण ने और दांई राम ने बलपूर्वक तोड़दी, भुजाओं के टूट जाने से वह घबराकर मूर्छित हुआ मेघसमान पृथिवी पर गिर पड़ा, जैसे वज्रप्रहार से पर्वत गिरता है,बहुत बाणों से विंधा हुआ तथा तलवारों से क्षत=ज़खमी हुआ विराध पुरुषश्रेष्ठ राम से बोला किः—

हतोऽहं पुरुषव्याघ्र शक्रतुल्यबलेन वै ।
अवटे चापि मां राम निक्षिप्य कुशली व्रज ॥१६॥
रक्षसां गतसत्त्वानामेष धर्मः सनातनः ।
अवटे ये निधीयन्ते तेषां लोकाः सनातनाः॥१७॥
एवमुक्त्वा तु काकुत्स्थं विराधः शरपीडितः ।
बभूव स्वर्गसंप्राप्तो न्यस्तदेहो महाबलः ॥१८॥

अर्थ-हे पुरुषव्याघ्र ! इन्द्र समान बलवाले आपने मुझे मार कर प्राणों से वियुक्त करदिया है, सो अब आप मुझे गढ़े में फैंककर कुशलपूर्वक जायं, गढ़े में डालना मरे हुए राक्षसों की सनातन मर्यादा है जिससे उनको सनातनलोक=पूर्वावस्था प्राप्त

होती है, राम को उक्त प्रकार कहकर तीरों से विंधा हुआ पीड़ित महाबली विराध देह त्यागकर मृत्यु को प्राप्त हुआ ॥

तच्छ्रुत्वा राघवो वाक्यं लक्ष्मणं व्यादिदेश ह ।
वनेऽस्मिन्स्तु महाञ्छ्वभ्रः खन्यतां रौद्रकर्मणः ॥१९॥

अर्थ—विराध का उक्त कथन सुनकर राम ने लक्ष्मण से कहा कि इस वन में भयङ्कर कर्मों वाले इस राक्षस के लिये गढ़ा खोद ॥

प्रहृष्टरूपाविव रामलक्ष्मणौ विराधमुर्व्यां
प्रदरे निपात्य तम् । ननन्दतुर्वीतभयौ
महावने दिवि स्थितौ चन्द्रदिवाकराविव॥२०॥

अर्थ—तब राम लक्ष्मण ने प्रसन्न होकर उस राक्षस विराध को गढ़े में फैंक, आकाश में स्थित सूर्य्य चन्द्रमा के समान दोनों भाई भयरहित होकर उस महावन में आनन्दपूर्वक विचरने लगे ॥

इति द्वितीयः सर्गः

अथ तृतीयः सर्गः

सं०—अब राम का शरभङ्ग मुनि के आश्रम में जाकर ऋषियों से मिलाप कथन करते हैं :—

हत्वा तु तं भीमबलं विराधं राक्षसं वने ।
आश्रमं शरभंगस्य राघवोऽभिजगाम ह॥१॥

तस्य पादौ च संगृह्य रामः सीता च लक्ष्मणः ।
निषेदुस्तदनुज्ञाता लब्धवासा निमन्त्रिताः ॥ २ ॥

अर्थ—उस बड़े बलवाले विराध नामा राक्षस को वन में मारकर राम शरभङ्ग मुनि के आश्रम में गये, और राम, लक्ष्मण तथा सीता ने उनके चरण स्पर्श किये, फिर आज्ञा पाकर तीनों वहां बैठे गये, पश्चात् मुनि ने उनको निवासस्थान तथा भोजन दिया ॥

सर्वे ब्राह्मया श्रियायुक्ता दृढयोगसमाहिताः ।
शरभङ्गाश्रमे राममभिजग्मुश्च तापसाः ॥ ३ ॥
अभिगम्य च धर्मज्ञा रामं धर्मभृतांवरम् ।
ऊचुः परमधर्मज्ञमृषिसंघाः समागताः ॥ ४ ॥

अर्थ—तत्पश्चात् सब ब्रह्मनिष्ठ, श्रीमान्, दृढ़योगाभ्यासी ऋषि लोग तपस्वी शरभङ्ग के आश्रम में राम के दर्शनार्थ आये, और धर्मधारियों में श्रेष्ठ राम को प्रणाम कर वह सब ऋषि परमधर्मज्ञ राम से बोले कि :—

यत्करोति परमं धर्मं मुनिर्मूलफलाशनः ।
तत्र राज्ञश्चतुर्भागः प्रजाधर्मेण रक्षतः ॥ ५ ॥
सोऽहं ब्राह्मणभूयिष्ठो वानप्रस्थगणो महान् ।
त्वं नाथोऽनाथवद्राम राक्षसैर्हन्यते भृशम् ॥ ६ ॥

अर्थ—जो मुनिजन मूल, फल खाकर यहां धर्मानुष्ठान करते हैं उसमें धर्मपूर्वक प्रजा की रक्षा करते हुए राजा का चौथा भाग होता है अर्थात् धर्म से रक्षा करने वाले राजा को चौथा भाग मिलना चाहिये, "सो आप लें" और यह वानप्रस्थियों का

बड़ा समूह जिसमें अधिकतर ब्राह्मण हैं, इनकी रक्षा करें, यह सब आप जैसे नाथ की विद्यमानता में अनाथ की भांति राक्षसों से अत्यन्त दुःखी हैं ॥

पम्पानदीनिवासानामनुमन्दाकिनीमपि ।
चित्रकूटालयानां च क्रियते कदनं महत् ॥ ७ ॥
एवं वयं न मृष्यामो विप्रकारं तपस्विनाम् ।
क्रियमाणं वने घोरं रक्षोभिर्भीमकर्मभिः ॥ ८ ॥
ततस्त्वां शरणार्थं च शरण्यं समुपस्थिताः ।
परिपालय नो राम वध्यमानान्निशाचरैः ॥ ९ ॥

अर्थ–पम्पा नदी पर रहने वाले, मन्दाकिनी नदी पर रहने वाले और चित्रकूट पर्वत पर वास करने वाले तपस्वियों को राक्षस बहुत दुःख देते हैं, इस प्रकार वन में बड़े भयानक कर्म करने वाले राक्षसों से किया हुआ तपस्वियों का इतना घोर अनादर हम नहीं सहसक्ते, सो आप शरण के योग्य होने से हम सब आपकी शरण को प्राप्त हैं, हे राम! राक्षसों से वध किये जाते हमको आप बचावें ॥

एतच्छ्रुत्वा तु काकुत्स्थस्तापसानां तपस्विनाम् ।
इदं प्रोवाच धर्मात्मा सर्वानेव तपस्विनः ॥ १० ॥
नैवमर्हथ मां वक्तुमाज्ञाप्योऽहं तपस्विनाम् ।
केवलेन स्वकार्येण प्रवेष्टव्यं वनं मया ॥ ११ ॥

अर्थ–तपस्वी और ऋषियों के उक्त वचन सुनकर धर्मात्मा राम उनसे बोले कि आप मुझसे इस प्रकार प्रार्थनापूर्वक कहने

योग्य नहीं, मैं तपस्वियों का आज्ञाकारी हूं, मैंने केवल अपने कार्य्यार्थ वन में प्रवेश किया है और तुम्हारा कार्य्य भी मेरा अपना ही कार्य्य है ॥

विप्रकारमपाक्रष्टुं राक्षसैर्भवतामिमम् ।
पितुस्तु निर्देशकरः प्रविष्टोऽहमिदं वनम् ॥ १२ ॥
भवतामर्थ सिद्ध्यर्थमागतोऽहं यदृच्छया ।
तस्य मेऽयं वने वासो भविष्यति महाफलः ॥१३॥

अर्थ—राक्षसों से आपके इस निरादर को मिटाने के लिये पिता की आज्ञानुसार इस वन में आया हूं, मैं अचानक ही आपकी अर्थसिद्धि के लिये यहां आगया हूं, सो इस वन में मेरा वास बहुत फलदायक होगा ॥

तपस्विनां रणे शत्रून्हन्तुमिच्छामि राक्षसान् ।
पश्यन्तु वीर्य्यमृषयः स भ्रातुर्मे तपोधनाः ॥१४॥

अर्थ—मैं तपस्वियों के शत्रु राक्षसों को रण में हनन करने की इच्छा करता हूं, हे तपोधन ऋषियो ! आप भ्राता के सहित मेरे बल को देखें ॥

इति तृतीयः सर्गः

अथ चतुर्थः सर्गः

सं०—अब राम का सुतीक्ष्णमुनि के आश्रम में जाना कथन करते हैं :—

रामस्तु सहितो भ्रात्रा सीतया च परंतपः ।
सुतीक्ष्णस्याश्रमपदं जगाम सह तैर्द्विजैः ॥ १ ॥
प्रविष्टस्तु वनं घोरं बहुपुष्पफलद्रुमम् ।
ददर्शाश्रममेकान्ते चीरमालापरिष्कृतम् ॥ २ ॥

अर्थ—तदनन्तर लक्ष्मण, सीता और उस द्विजसमूह के सहित राम सुतीक्ष्ण मुनि के आश्रम पर गये, और बहुत पुष्प तथा फलों के वृक्षों वाले उस घोर वन में प्रविष्ट होकर एकान्त में चीरमालाओं से सुशोभित एक आश्रम देखा ॥

तत्र तापसमासीनं मलपङ्कजधारिणम् ।
रामः सुतीक्ष्णं विधिवत्तपोधनमभाषत ॥ ३ ॥
रामोऽहमस्मि भगवन्भवन्तं द्रष्टुमागतः ।
तन्माभिवद धर्मज्ञ महर्षे सत्यविक्रम ॥ ४ ॥
स निरीक्ष्य ततो धीरो रामं धर्मभृतांवरम् ।
समाश्लिष्य च बाहुभ्यामिदं वचनमब्रवीत् ॥५॥

अर्थ—और जहां पद्मासन लगाकर तपस्वी सुतीक्ष्ण बैठे हुए थे उनके समीप विधिवत् जाकर राम बोले कि हे भगवन् ! मैं राम हूं और आपके दर्शनार्थ यहां आया हूं, सो हे धर्मज्ञ, सत्यपराक्रमयुक्त महर्षि ! मैं आपसे कुछ वार्तालाप करना चाहता हूं, तब वह महर्षि धर्मधारियों में श्रेष्ठ राम को देखकर भुजाओं से आलिङ्गन करके बोले कि :—

स्वागतं ते रघुश्रेष्ठ राम सत्यभृतांवर ।
आश्रमोऽयं त्वयाक्रान्तः सनाथइवसाम्प्रतम् ॥६॥

अन्वास्य पश्चिमां सन्ध्यां तत्र वासमकल्पयत् ।
सुतीक्ष्णस्याश्रमे रम्ये सीतया लक्ष्मणेन च ॥ ७ ॥

अर्थ–हे धर्मधारियों में श्रेष्ठ ! हे रघुश्रेष्ठ राम ! तुम्हारा आना शुभ हो, आपके आगमन से यह आश्रम अब सनाथ हुआ है, फिर सायंकाल की सन्ध्या उपासना करके वहीं सुतीक्ष्ण के रमणीय आश्रम में सीता तथा लक्ष्मण सहित राम ने निवास किया ॥

रामस्तु सहसौमित्रिः सुतीक्ष्णेनाभिपूजितः ।
परिणाम्य निशां तत्र प्रभाते प्रत्यबुध्यत ॥ ८ ॥
उत्थाय च यथाकालं राघवः सह सीतया ।
उपस्पृश्य सुशीतेन तोयेनोत्पलगन्धिना ॥९॥
उदयन्तं दिनकरं दृष्ट्वा विगतकल्मषः ।
सुतीक्ष्णमभिगम्येदं श्लक्ष्णं वचनमब्रुवन् ॥ १० ॥

अर्थ–लक्ष्मण सहित राम सुतीक्ष्ण से सत्कृत हुए वहां रात्रि व्यतीत कर प्रभात समय उठे, ठीक समय पर=ब्रह्ममुहूर्त्त में उठकर सीता सहित राम ने कमल की गन्धवाले शीतल जल में स्नानकर सन्ध्योपासन किया, फिर वह पापरहित तीनों सूर्य्य को उदय होता देखकर सुतीक्ष्ण मुनि के समीप जाकर यह मधुर वचन बोले कि :—

सुखोषिताः स्म भगवंस्त्वया पूज्येन पूजिताः ।
आपृच्छामः प्रयास्यामो मुनयस्त्वरयन्ति नः ॥११॥

त्वरामहे वयं द्रष्टुं कृत्स्नमाश्रममण्डलम् ।
ऋषीणां पुण्यशीलानां दण्डकारण्यवासिनाम्॥१२॥
अभ्यनुज्ञातुमिच्छामः सहैभिर्मुनि पुंगवैः ।
अविषह्यातपो यावत्सूर्यो नातिविराजते ॥ १३ ॥

अर्थ—हे भगवान ! आप हमारे पूज्य हैं, आपसे सत्कार पाकर हम यहां रात आनन्दपूर्वक रहे हैं, अब हम जाना चाहते हैं कृपाकरके आज्ञा दें, मुनि लोग बहुत शीघ्रता करा रहे हैं, और दण्डकारण्य में रहने वाले पुण्यशील ऋषियों के सम्पूर्ण आश्रम-मण्डल देखने की हमारी भी बड़ी रुचि है, जब तक असह्य धूपवाला सूर्य्य नहीं तपता उससे प्रथम ही इन श्रेष्ठ मुनियों के सहित जाना चाहता हूं, सो आप कृपाकरके हम सब को आज्ञा दें ॥

तावदिच्छामहे गन्तुमित्युक्त्वा चरणौ मुनेः ।
ववन्दे सहसौमित्रिः सीतया-सह राघवः ॥१४॥
तौ संस्पृशन्तौ चरणावुत्थाप्य मुनिपुंगवः ।
गाढ़माश्लिष्य सस्नेहमिदं वचनमब्रवीत् ॥१५॥

अर्थ—उक्त प्रकार प्रार्थनापूर्वक निवेदन करते हुए लक्ष्मण तथा सीता सहित राम ने मुनि की चरणवन्दना की, चरणों का स्पर्श करते हुए मुनिश्रेष्ठ ने दोनों भाइयों को गले लगाकर बड़े प्रेमपूर्वक कहा कि :—

अरिष्टं गच्छ पन्थानं राम सौमित्रिणा सह ।
सीतया चानया सार्धं छाययेवानुवृत्तया ॥ १६ ॥

पश्याश्रमपदं रम्यं दण्डकारण्यवासिनाम् ।
एषां तपस्विनां वीर तपसा भावितात्मनाम् ॥१७॥
सुप्राज्यफलमूलानि पुष्पितानि वनानि च ।
प्रशस्तमृगयूथानि शान्तपक्षिगणानि च ॥१८॥

अर्थ–हे राम ! लक्ष्मण और छाया के समान साथ चलती हुई सीता सहित तुम्हारा मार्ग निरुपद्रव हो, हे वीर ! तप से शुद्धात्मा दण्डकारण्य निवासी इन तपस्वियों के पवित्र आश्रमों को देख, जो बहुत फल फूल वाले, फूले हुए वृक्षों वाले और जिनमें उत्तम मृगयूथ तथा शान्त पक्षीगण निवास करते हैं ॥

फुल्लपङ्कजखण्डानि प्रसन्नसलिलानि च ।
कारण्डवविकीर्णानि तटाकानि सरांसि च ॥१९॥
द्रक्ष्यसे दृष्टिरम्याणि गिरिप्रस्रवणानि च ।
रमणीयान्यरण्यानि मयूराभिरुतानि च ॥ २० ॥
गम्यतां वत्स सौमित्रे भवानपि च गच्छतु ।
आगन्तव्यं च ते दृष्ट्वा पुनरेवाश्रमं प्रति ॥२१॥

अर्थ–और वहां फूले हुए कमलों वाले, निर्मल जल वाले तथा पक्षिगणों से युक्त तालाब तथा सरोवर बड़े रमणीय हैं, आप पर्वतों के शोभायमान झरने तथा रमणीय वन देखेंगे और मोरों के शब्द सुनकर बड़े प्रसन्न होंगे, हे वत्स=बेटा जाओ और लक्ष्मण तुम भी जाओ, वह सब दृश्य देखकर फिर इस आश्रम में आवें ॥

एवमुक्तस्तथेत्युक्त्वा काकुत्स्थः सहलक्ष्मणः ॥
प्रदक्षिणं मुनिं कृत्वा प्रस्थातुमुपचक्रमे ॥ २२ ॥
ततः शुभतरे तूणी धनुषी चायतेक्षणा ।
ददौ सीतातयोर्भ्रात्राःखड्गौ च विमलौ ततः॥२३॥
आबध्य च शुभे तूणी चापे चादाय सस्वने ।
निष्क्रान्तावाश्रमाद्गन्तुमुभौ तौ रामलक्ष्मणौ ॥२४॥

अर्थ–मुनि के उक्त प्रकार कथन करने पर"तथास्तु"कहकर लक्ष्मण सहित राम मुनि की प्रदक्षिणा करके चलने को तैयार हुए तब विशाल नेत्रों वाली सीता ने दोनों शुभ तर्कश, दोनों धनुष और चमकती हुई दोनों तलवारें उन दोनों भाइयों को दीं, राम लक्ष्मण दोनों उन तर्कश, धनुष और तलवारों को बांधकर आगे यात्रा के लिये आश्रम से चल पड़े ॥

इति चतुर्थः सर्गः

अथ पंचमः सर्गः

सं०–अब सीता का राम के प्रति हितकारक उपदेश कथन करते हैं :—

सुतीक्ष्णेनाभ्यनुज्ञातं प्रस्थितं रघुनन्दनम् ।
हृद्यया स्निग्धया वाचा भर्तारमिदमब्रवीत् ॥ १ ॥
त्रीण्येव व्यसनान्यत्र कामजानि भवन्त्युत ।
मिथ्यावाक्यं तु परमं तस्माद्गुरुतरावुभौ ॥ २ ॥

अर्थ–जब राम सुतीक्ष्णमुनि से आज्ञा लेकर चल पड़े तब सीता हर्षयुक्त स्नेहभरी वाणी द्वारा भर्ता राम से बोली कि काम से उत्पन्न हुए तीन व्यसन होते हैं जिनमें मिथ्याभाषण करना बड़ा व्यसन है और निम्नलिखित दूसरे दो इससे बढ़कर हैं ॥

परदाराभिगमनं विना वैरं च रौद्रता ।
मिथ्यावाक्यं न ते भूतं न भविष्यति राघव ॥३॥
कुतोऽभिलषणं स्त्रीणां परेषां धर्मनाशनम् ।
तव नास्ति मनुष्येन्द्र नचाभूत्ते कदाचन ॥ ४ ॥
मनस्यपि यथा राम न चैतद्विद्यते क्वचित् ।
स्वदारनिरतश्चैव नित्यमेव नृपात्मज ॥ ५ ॥

अर्थ–दूसरा परस्त्रीगमन और तीसरा रुद्रभाव=विना वैर दूसरे प्राणियों की हिंसा करना, हे राघव ! इनमें से "मिथ्याभाषण" तो न आपने कभी किया और न आगे करेंगे, और हे मनुष्येन्द्र ! धर्म का नाश करने वाली "परस्त्री" की तो आपमें कभी अभिलाषा ही नहीं हुई और न है, हे राम ! परस्त्रीगमन का भाव कभी आपके मन में भी विद्यमान नहीं होसकता, क्योंकि आप सदा स्वदार=अपनी ही स्त्री से प्रेम करने वाले हैं ॥

धर्मिष्ठः सत्यसंधश्च पितुर्निर्देश कारकः ।
त्वयि धर्मश्च सत्यं च त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥६॥
तृतीयं यदिदं रौद्रं परप्राणाभिहिंसनम् ।
निर्वैरं क्रियते मोहात्तच्च ते समुपस्थितम् ॥ ७ ॥

प्रतिज्ञातस्त्वया वीर दण्डकारण्यवासिनाम् ।
ऋषिणां रक्षणार्थाय वधः संयति रक्षसाम् ॥ ८ ॥

अर्थ-आप धर्मिष्ठ, सत्यप्रतिज्ञ तथा पिता के आज्ञाकारी होने से आपमें धर्म तथा सत्य स्थिर है, और इनके होने से आपमें सब कुछ स्थित है, पर तीसरा यह "रुद्रभाव" जो दूसरे के प्राणों की हिंसा है वह विना बैर मोह से आपके सन्मुख स्थित है जो दण्डकारण्यवासी ऋषियों की रक्षार्थ आपने युद्ध में राक्षसों के बध की प्रतिज्ञा की है ॥

एतन्निमित्तं च वनं दण्डका इति विश्रुतम् ।
प्रस्थितस्त्वं सह भ्रात्रा धृतबाणशरासनः ॥ ९ ॥
ततस्त्वां प्रस्थितं दृष्ट्वा मम चिन्ताकुलं मनः ।
त्वद्वृत्तं चिन्तयन्त्या वै भवेन्निःश्रेयसं हितम्॥१०॥

अर्थ-और इसी निमित्त आप धनुषबाण धारण करके भाई सहित दण्डकवन को जारहे हैं, इस प्रकार आपको जाते देख और आपके स्वभाव का चिन्तनकर कल्याण तथा हित चाहने वाली मैं चिन्ता से व्याकुल होरही हूं ॥

नहि मे रोचते वीर गमनं दण्डकान्प्रति ।
कारणं तत्र वक्ष्यामि वदन्त्याः श्रूयतां मम ॥ ११ ॥
त्वं हि बाणधनुष्पाणिर्भ्रात्रा सह वनं गतः ।
दृष्ट्वा वनचरान्सर्वान्कच्चित्कुर्याः शरव्ययम् ॥१२॥

अर्थ-हे वीर ! मुझको दण्डकवन की ओर जाना नहीं रुचता, न जाने में मैं कारण कहती हूं सो आप सुनें, आप

धनुषबाण लेकर भाई सहित वन में भ्रमण करते हुए वनचारियों को देखकर अवश्य तीर व्यय करेंगे अर्थात् उन पर तीर छोड़ेंगे॥

क्षत्रियाणामिह धनुर्हुताशस्येन्धनानि च ।
समीपतः स्थितं तेजो बलमुच्छ्रयते भृशम् ॥१३॥
स्नेहाच्च बहुमानाच्च स्मारये त्वां न शिक्षये ।
न कथंचन सा कार्या गृहीतधनुषा त्वया ॥१४॥
बुद्धिर्वैरं विना हन्तुं राक्षसान्दण्डकाश्रितान् ।
अपराधं विना हन्तुं लोको वीर न मंस्यते ॥१५॥

अर्थ–क्षत्रियों के समीप धनुष और अग्नि के समीप इन्धन स्थित हुआ बल तथा तेज को अत्यन्त बढ़ा देता है, मैं स्नेह और मानपूर्वक आपको स्मरण कराती हूं शिक्षा नहीं देती, आपको धनुष पकड़कर हिंसा नहीं करनी चाहिये, हे वीर ! विना बैर दण्डकवन में रहने वाले राक्षसों को तुम्हें नहीं मारना चाहिये, और विना अपराध मारना लोग भी अच्छा नहीं समझेंगे॥

क्षत्रियाणां तु वीराणां वनेषु नियतात्मनाम् ।
धनुषा कार्यमेतावदार्तानामभिरक्षणम् ॥ १६ ॥
क्व च शस्त्रं क्व च वनं क्व च क्षात्रं तपः क्व च ।
व्याविद्धमिदमस्माभिर्देशधर्मस्तुपूज्यताम् ॥१७॥

अर्थ–नियतात्मा क्षत्रिय वीरों को वन में धनुष से इतना ही प्रयोजन है कि वह दुःखी जीवों की रक्षा करें, कहां शस्त्र, कहां वन, कहां क्षात्रधर्म और कहां तप, मुझे तो यह परस्पर विरुद्ध प्रतीत होता है, सो आपको अपना तपरूप धर्म सेवन करना चाहिये, क्योंकि :—

धर्मादर्थः प्रभवति धर्मात्प्रभवते सुखम् ।
धर्मेण लभते सर्वं धर्मसारमिदं जगत् ॥ १८ ॥
आत्मानं नियमैस्तैस्तैः कर्षयित्वा प्रयत्नतः ।
प्राप्यते निपुणैर्धर्मो न सुखाल्लभते सुखम् ।
नित्य शुचिमतिः सौम्य चरधर्मं तपोवने ॥ १९ ॥

अर्थ—धर्म ही से अर्थ होता, धर्म ही से सुख होता, धर्म ही से सब कुछ मिलता और इस जगत् में धर्म ही सार है, बुद्धिमान् पुरुष प्रयत्न से उन २ नियमों द्वारा अपने आपको तपस्वी बनाकर धर्म का लाभ करते हुए सुख को प्राप्त होते हैं, सुख से सुख नहीं मिलता, सो हे सौम्य ! आप सदा शुद्धमति होकर तपोवन में धर्माचरण करें ॥

स्त्रीचापलादेतदुपाहृतं मे धर्मं च वक्तुं
तव कः समर्थः । विचार्यबुद्ध्यातुसहानुजेन
यद्रोचते तत्कुरु माचिरेण ॥ २० ॥

अर्थ—हे वीर ! मैंने स्त्रीपन की चपलता से यह कथन किया है, आपको धर्मोपदेश करने के लिये कौन समर्थ है, अपने छोटे भाई के साथ बुद्धिपूर्वक विचार कर जो रुचे वह शीघ्र ही करें ॥

इति पंचमः सर्गः

अथ षष्ठः सर्गः

सं०—अब सीता के उक्त कथन का राम उत्तर देते हैं :—

वाक्यमेतत्तु वैदेह्या व्याहृतं भर्तृभक्तया ।
श्रुत्वाधर्मेस्थितो रामः प्रत्युवाचाथ जानकीम् ॥१॥
हितमुक्तं त्वया देवि स्निग्धया सदृशं वचः ।
कुलं व्यपदिशन्त्या च धर्मज्ञे जनकात्मजे ॥२॥

अर्थ—पतिभक्ति से सीता के कहे हुए उक्त वचन सुनकर धर्म में स्थित राम जानकी से बोले कि हे देवि ! स्नेहयुक्त तैने जो मेरे हितकर वचन कहे हैं और हे धर्मज्ञ ! अपने कुल की मर्यादा कहते हुए तैने दुःखियों की रक्षा करना क्षत्रियों का धर्म कथन किया है ॥

किं नु वक्ष्याम्यहं देवि त्वयैवोक्तमिदं वचः ।
क्षत्रियैर्धार्यते चापो नार्तशब्दो भवेदिति ॥३॥
ते चार्ता दण्डकारण्ये मुनयः संशितव्रताः ।
मां सीते स्वयमागम्य शरण्यं शरणं गताः ॥४॥
वसन्तः कालकालेषु वने मूलफलाशनाः ।
न लभन्ते सुखं भीरु राक्षसैः क्रूरकर्मभिः ॥५॥

अर्थ—सो हे देवि ! मैं क्या कहूं, तैने ही यह वचन कहदिया है कि क्षत्रिय आर्तों की रक्षा के लिये धनुष धारण करते हैं, हे सीते ! यह दण्डकारण्य निवासी तीक्ष्णव्रतों वाले मुनि दुःखी होकर स्वयं मेरे समीप आये हैं और मुझे शरण के योग्य जान यह सब मेरी शरणागत हुए हैं, हे भीरु ! यह सदा वन में फलमूल खाकर वास करते हुए भी बड़े क्रूरकर्म करने वाले राक्षसों से महान् दुःख भोग रहे हैं ॥

मया तु वचनं श्रुत्वा तेषामेवं मुखाच्च्युतम् ।
कृत्वा वचन शुश्रूषां वाक्यमेतदुदाहृतम् ॥ ६ ॥
प्रसीदन्तु भवन्तो मेऽह्रीरेषा तु ममातुला ।
यदीदृशैरहं विप्रैरुपस्थेयैरुपस्थितः ॥ ७ ॥
किं करोमीति च मया व्याहृतं द्विजसन्निधौ ।
सर्वैरेव समागम्य वागियं समुदाहृता ॥८॥

अर्थ—सो मैंने इन्हीं के मुख से निकले हुए वाक्य सुनकर उन का आदर करते हुए यह वाक्य कहा कि आप मुझ पर प्रसन्न हों, मेरे लिये यह बड़ी निन्दनीय बात है जो आप ऐसे तपस्वी ब्राह्मण मेरे समीप आये हैं जिनके निकट मुझे जाना चाहिये था, फिर मैंने उन सब ब्राह्मणों की सन्निधि=उपस्थिति में कहा कि मेरे लिये क्या आज्ञा है ? तिस पर उन सब ने मिलकर कहा कि :—

राक्षसैर्दण्डकारण्ये बहुभिः कामरूपिभिः ।
अर्दिताः स्म भृशं राम भवान्नस्तत्र रक्षतु ॥ ९ ॥
मया चैतद्वचः श्रुत्वा कात्स्न्र्येन परिपालनम् ।
ऋषीणां दण्डकारण्ये संश्रुतं जनकात्मजे ॥१०॥
संश्रुत्य च न शक्ष्यामि जीवमानः प्रतिश्रवम् ।
मुनीनामन्यथा कर्तुं सत्यमिष्टं हि मे सदा ॥११॥

अर्थ—हे राम ! दण्डकारण्य में कामरूप बहुत से राक्षसों से हम पीड़ित होरहे हैं सो कृपाकरके आप उन राक्षसों से हमारी रक्षा करें, हे सीते ! उन ऋषियों का मैंने यह वचन

सुनकर दण्डकारण्य में उनकी रक्षा करने का पूर्ण प्रण किया है,सो मैं प्रतिज्ञा करके जीते जी मुनियों से किये प्रण को अन्यथा नहीं करसक्ता, क्योंकि मुझको सत्य सदा प्रिय है ॥

अप्यहं जीवितं जह्यां त्वां वा सीते सलक्ष्मणम् ।
न तु प्रतिज्ञां संश्रुत्य ब्राह्मणेभ्यो विशेषतः ॥१२॥
तदवश्यं मया कार्यमृषीणां परिपालनम् ।
अनुक्तेनापि वैदेहि प्रतिज्ञाय कथं पुनः ॥ १३ ॥

अर्थ–हे सीते ! मैं अपने जीवन को त्याग दूं, तुझको भी लक्ष्मण सहित त्याग दूं, पर कीहुई प्रतिज्ञा का कदापि त्याग नहीं करसक्ता, और विशेषकर ब्राह्मणों से किये प्रण का अवश्य निर्वाह करुंगा, हे वैदेहि ! मुझको ऋषियों का पालन विना कहे हीं अवश्य करना चाहिये, फिर प्रतिज्ञा करके पीछे हटना क्या ॥

मम स्नेहाच्च सौहार्दादिदमुक्तं त्वया वचः ।
परितुष्टोऽस्म्यहं सीते न ह्यनिष्टोऽनुशास्यते ॥१४॥
सदृशं चानुरूपं च कुलस्य तव शोभने ।
सहधर्मचारिणी मे त्वं प्राणेभ्योऽपि गरीयसी॥१५॥

अर्थ–हे सीते ! तैने मेरे स्नेह और सौहार्द से उक्त वचन कहा है सो मैं तुम से अति प्रसन्न हूं, क्योंकि प्यारे को ही शिक्षा दीजाती है, हे शोभने ! आपने जो वचन कहे हैं वह तुम्हारे कुल के योग्य ही हैं तू मेरी सहधर्मचारिणी मुझे प्राणों से अधिक प्रिय है ॥

इत्येवमुक्त्वा वचनं महात्मा सीतां प्रियां मैथिलराजपुत्रीम् । रामो धनुष्मान्सह लक्ष्मणेन जगाम रम्याणि तपोवनानि ॥ १६ ॥

अर्थ—मैथिलराज जनक की सुता तथा अपनी प्यारी सीता को यह वचन कहकर धनुर्धारी महात्मा राम भाई लक्ष्मण सहित रमणीय तपोवन को चले गये ॥

इति षष्ठः सर्गः

अथ सप्तमः सर्गः

सं०—अब राम का अगस्त्यमुनि के दर्शनों की अभिलाषा प्रकट करना कथन करते हैं :—

अग्रतः प्रययौ रामः सीता मध्ये सुशोभना ।
पृष्ठतस्तु धनुष्पाणिर्लक्ष्मणोऽनुजगाम ह ॥ १ ॥
जगाम चाश्रमांस्तेषां पर्यायेण तपस्विनाम् ।
येषामुषितवान्पूर्वं सकाशे स महास्त्रवित् ॥ २ ॥

अर्थ—आगे २ राम चले, मध्य में शोभायमान सीता और धनुषबाण हाथ में लेकर पीछे २ लक्ष्मण चले, और बारी २ से उन तपस्वियों के आश्रमों में गये जिनके समीप वह बड़े अस्त्रों के जानने वाले राम पहले रहे थे ॥

क्वचित्परिदशान्मासानेकसंवत्सरं क्वचित् ।
क्वचिच्च चतुरो मासान्पञ्च षट् च परान्क्वचित्॥३॥

अपरत्राधिकान्मासानध्यर्धमधिकं क्वचित् ।
त्रीन्मासानष्टमासांश्च राघवो न्यवसत्सुखम् ॥४॥
तत्र संवसतस्तस्य मुनीनामाश्रमेषु वै ।
रमतश्चानुकूल्येन ययुः संवत्सरा दश॥ ५ ॥

अर्थ–कहीं दश मास, कहीं एकवर्ष, कहीं चारमास, कहीं पांच मास, कहीं छ मास और कहीं इससे भी अधिक आधा २ महीना, कहीं तीन मास, कहीं आठ मास और कहीं इससे भी न्यूनाधिक वहां मुनियों के आश्रमों में सुखपूर्वक वास और सब प्रकार की अनुकूलता से रमण करते हुए उनको वहां दशवर्ष बीत गये ॥

परिसृत्य च धर्मज्ञो राघवः सहसीतया ।
सुतीक्ष्णस्याश्रमपदं पुनरेवाजगाम ह ॥ ६ ॥
स तमाश्रममागम्य मुनिभिः परिपूजितः ।
तत्रापि न्यवसद्रामः किंचित्कालमरिंदमः ॥७॥

अर्थ–तत्पश्चात् वह धर्मज्ञ राम फिर लौटकर सीतासहित सुतीक्ष्ण के आश्रम में आये, और वहां मुनियों से सत्कार पाकर शत्रुओं के तपाने वाले राम ने वहां भी कुछ काल निवास किया ॥

अथाश्रमस्थो विनयात्कदाचितं महामुनिम् ।
उपासीनः स काकुत्स्थः सुतीक्ष्णमिदमब्रवीत् ॥८॥
अस्मिन्नरण्येभगवन्नगस्त्यो मुनिसत्तमः ।
वसतीति मया नित्यं कथाः कथयतां श्रुतम् ॥९॥

न तु जानामि तं देशं वनस्यास्य महत्तया ।
कुत्राश्रमपदं रम्यं महर्षेस्तस्य धीमतः ॥ १० ॥

अर्थ—तदनन्तर एक दिन आश्रम में मुनिवर सुतीक्ष्ण के समीप बैठे हुए राम विनयपूर्वक उनसे बोले कि हे मुनिवर ! इस वन में अगस्त्य ऋषि रहते हैं, क्योंकि मैं सदा उनकी कथा कहते हुए लोगों से सुनता हूं, पर इस वन के बड़े होने के कारण जहां उन बुद्धिमान् महर्षि का सुहावना आश्रम है उस स्थान को मैं नहीं जानता ॥

अगस्त्यमभिगच्छेयमभिवादयितुंमुनिम् ।
मनोरथो महानेष हृदि संपरिवर्तते ॥ ११ ॥
इति रामस्य स मुनिः श्रुत्वा धर्मात्मनो वचः ।
सुतीक्ष्ण प्रत्युवाचेदं प्रीतो दशरथात्मजम् ॥१२॥
अहमप्येतदेव त्वां वक्तुकामः सलक्ष्मणम् ।
अगस्त्यमभिगच्छेति सीतया सह राघव ॥१३॥

अर्थ—और अगस्त्यमुनि को अभिवादन करने के लिये उनके समीप जाने की मेरे हृदय में उत्कट इच्छा है, तब वह मुनि धर्मात्मा राम के उक्त वचन सुन प्रसन्न होकर उनसे बोले कि हे राघव ! मैं भी आपसे कहना चाहता था कि लक्ष्मण तथा सीता सहित आप अगस्त्यमुनि के भी दर्शन करें ॥

दिष्ट्यात्विदानीमर्थेऽस्मिन्स्वयमेव ब्रवीषि माम् ।
अयमाख्यामि ते राम यत्रागस्त्यो महामुनिः॥१४॥

योजनान्याश्रमात्तात याहि चत्वारि वै ततः ।
दक्षिणेन महाञ्छ्रीमानगस्त्य भ्रातुराश्रमः ॥ १५ ॥

अर्थ–सो हे राम ! भाग्यवशात् आपने स्वयं ही मुझसे कहा है, अब जहां अगस्त्यमुनि हैं वह आश्रम तुम्हें बतलाता हूं, हे तात ! यहां से चार योजन दक्षिण की ओर अगस्त्यमुनि के श्रीमान् भाई का बड़ा शोभायमान आश्रम है वहां जायं ॥

स्थलीप्रायवनोद्देशे पिप्पलीवनशोभिते ।
बहुपुष्पफलैरम्ये नानाविहगनादिते ॥ १६ ॥
पद्मिन्यो विविधास्तत्र प्रसन्नसलिलाशयाः ।
हंसकारण्डवाकीर्णाश्चक्रवाकोपशोभिताः ॥ १७ ॥
तत्रैकां रजनीं व्युष्य प्रभाते राम गम्यताम् ।
दक्षिणां दिशमास्थाय वनखण्डस्य पार्श्वतः ॥१८॥

अर्थ–वह आश्रम वन के बहुत उत्तम देश में है जो पिप्पल के वृक्षों से शोभायमान, बहुत पुष्प तथा फलों वाला, और नानाप्रकार के पक्षियों से गूंजता हुआ बड़ा रमणीय है, वहां अनेकप्रकार के कमल और हंस, चकवों तथा अन्य पक्षियों से शोभायमान बड़े निर्मल स्थान हैं, हे राम ! उस स्थान पर एक रात्रि निवास करके दक्षिण दिशा का आश्रय लिये हुए वन समूह के किनारे २ जाना ॥

तत्रागस्त्याश्रमपदं गत्वा योजनमन्तरम् ।
रमणीये वनोद्देशे बहुपादपशोभिते ॥ १९ ॥

रंस्यते तत्र वैदेही लक्ष्मणश्च त्वया सह ।
स हि रम्यो वनोद्देशो बहुपादपसंयुतः ॥ २० ॥

अर्थ–वहां से एक योजन दूर पर बहुत वृक्षों से सुशोभित, वन के रमणीय स्थान में अगस्त्यमुनि का आश्रम है, उस पवित्र स्थान पर तुम्हारे साथ सीता तथा लक्ष्मण बड़े आनन्दपूर्वक रहेंगे, क्योंकि वह वन का भाग बहुत वृक्षों वाला होने से बड़ा सुहावना है ॥

यदि बुद्धिः कृताद्रष्टुमगस्त्यन्तं महामुनिम् ।
अद्यैव गमने बुद्धिं रोचयस्व महामते ॥ २१ ॥

अर्थ–हे महामते ! जो मुनिवर अगस्त्य के दर्शनों का आपने विचार किया है तो आज ही वहां जाने का संकल्प करें ॥

इति सप्तमः सर्गः

अथ अष्टमः सर्गः

सं०–अब राम का अगस्त्यमुनि के आश्रम को जाना कथन करते हैं :—

इति रामो मुनेः श्रुत्वा सह भ्रात्राभिवाद्य च ।
प्रतस्थेऽगस्त्यमुद्दिश्य सानुजः सह सीतया ॥१॥
पश्यन्वनानि चित्राणि पर्वतांश्चाभ्रसंन्निभान् ।
सरांसि सरितश्चैव पथि मार्गवशानुगान ॥२॥

सुतीक्ष्णेनोपदिष्टेन गत्वा तेन पथा सुखम् ।
इदं परमसंहृष्टो वाक्यं लक्ष्मणमब्रवीत् ॥३॥

अर्थ–राम ने सुतीक्ष्णमुनि से वहां का सब वृत्त सुनकर भाई सहित मुनि को अभिवादन करके लक्ष्मण और सीता के साथ अगस्त्यमुनि के दर्शनों को प्रस्थान किया, मार्ग में क्रम से आये हुए विचित्र वन, अभ्र=मेघ के तुल्य पर्वत, सरोवर और नदियों को देखते हुए सुतीक्ष्णमुनि के बतलाये मार्ग द्वारा आनन्द पूर्वक आगे गये और मार्ग में जाते हुए परमप्रसन्न होकर लक्ष्मण से बोले कि :—

एतदेवाश्रमपदं नूनं तस्य महात्मनः ।
अगस्त्यस्यमुनेर्भ्रातुर्दृश्यते पुण्यकर्मणः ॥४॥
यथा हीमे वनस्यास्य ज्ञाताः पथि सहस्रशः ।
संनताः फलभारेण पुष्पभारेण च द्रुमाः ॥ ५ ॥
पिप्पलीनां च पक्वानां वनादस्मादुपागतः ।
गन्धोयं पवनोत्क्षिप्तः सहसा कटुकोदयः ॥६॥
तत्र तत्र च दृश्यन्ते संक्षिप्ताः काष्ठसञ्चयाः ।
लूनाश्च परिदृश्यन्ते दर्भा वैदूर्य वर्चसः ॥ ७ ॥

अर्थ–अगस्त्यमुनि के पुण्यकर्मा महात्मा भाई का यह आश्रम दीखता है, इस वन के मार्ग में सहस्रों प्रसिद्ध वृक्ष फलभार तथा पुष्पभार से झुके हुए हैं, पकी हुई पिप्पलियों का कटु=कड़वा गन्ध पवन से उड़ा हुआ इस वन से आरहा है, और जहां तहां एकत्रित किये हुए लकड़ियों के ढ़ेर तथा हरित मणि के तुल्य कटी हुई कुशायें दृष्टिगत होती हैं ॥

एतच्च वनमध्यस्थं कृष्णाभ्रशिखरोपमम् ।
पावकस्याश्रमस्थस्य धूमाग्रं संप्रदृश्यते ॥ ८ ॥
ततः सुतीक्ष्णस्य वचनं यथा सौम्य मयाश्रुतम् ।
अगस्त्यस्याश्रमो भ्रातुर्नूनमेष भविष्यति ॥ ९ ॥
एवं कथयमानस्य तस्य सौमित्रिणा सह ।
रामस्यास्तं गतः सूर्यः सन्ध्याकालोऽभ्यवर्तत॥१०॥

अर्थ—और यह देखो वन के मध्य में आश्रमस्थ अग्नि के धूम की शिखा काले बादल के शिखर समान कैसी शोभायमान दिखाई देती है, हे सौम्य ! जैसा मैंने सुतीक्ष्ण से सुना था उसके अनुसार निःसन्देह यही अगस्त्यमुनि के भाई का आश्रम है, इत्यादि लक्ष्मण के साथ वार्तालाप करते हुए सूर्य्य अस्त होकर सन्ध्या उपासना का समय आगया ॥

उपास्य पश्चिमां सन्ध्यां सहभ्रात्रा यथाविधि ।
प्रविवेशाश्रमपदं तमृषिं चाभ्यवादयत् ॥ ११ ॥
सम्यक् प्रतिगृहीतस्तु मुनिना तेन राघवः ।
न्यवसत्तां निशामेकां प्राश्य मूलफलानि च ॥१२॥
तस्यां रात्र्यां व्यतीतायामुदिते रविमण्डले ।
भ्रातरं तमगस्त्यस्या आमन्त्रयत राघवः ॥१३॥

अर्थ—भाई लक्ष्मण के सहित यथाविधि सायंकाल की सन्ध्या उपासना करके अगस्त्यमुनि के भाई के आश्रम में प्रविष्ट होकर ऋषि को अभिवादन किया, और उन्होंने प्रेमपूर्वक स्वीकार

कर राम का फल,मूल से सत्कार किया फिर वह रात्रिभर वहां रहे, रात्रि के व्यतीत होने पर सूर्यमण्डल के उदय होते ही आगे जाने के लिये रामने अगस्त्यमुनि के भाई से आज्ञा मांगी कि:—

अभिवादये त्वा भगवन् सुखमस्म्युषितो निशाम् ।
आमन्त्रये त्वां गच्छामि गुरुं ते द्रष्टुमग्रजम्॥१४॥
गम्यतामिति तेनोक्तो जगाम रघुनन्दनः ।
यथादिष्टेन मार्गेण वनं तच्चावलोकयन् ॥१५॥
नीवारान्पनसान्सालान्वंजुलांस्तिनिशांस्तथा ।
चिरिबिल्वान्मधूकांश्च बिल्वानथ च तिंदुकान्॥१६॥
पुष्पितान्पुष्पिताग्राभिर्लताभिरुपशोभितान् ।
ददर्श रामः शतशस्तत्र कांतारपादपान् ॥१७॥

अर्थ—हे भगवन् ! आपको अभिवादन करता हूं, मैं रात्रिभर यहां बड़े सुखपूर्वक रहा, अब आज्ञा दें, आपके बड़े भाई के दर्शनों को जाता हूं, तब मुनि से आज्ञा पाकर बतलाये हुए मार्ग द्वारा उस वन को देखते हुए आगे गये, जिसमें कदम्ब, कटहर, साखू, अशोक, धवई, किरवार, महुआ, बेल तथा तेंदुआ आदि बहुत से वृक्ष फूलों से लदी हुई बेलों से सजे हुए तथा स्वयं भी फूले हुए थे ॥

हस्तिहस्तैर्विमृदितान्वानरैरुपशोभितान् ।
मत्तैःशकुनिसंघैश्च शतशः प्रतिनादितान् ॥१८॥
ततोऽब्रवीत्समीपस्थं रामो राजीवलोचनः ।
पृष्ठतोऽनुगतं वीरं लक्ष्मणं लक्ष्मिवर्धनम् ॥१९॥

स्निग्धपत्रा यथा वृक्षा यथा क्षान्ता मृगद्विजाः ।
आश्रमो नातिदूरस्थो महर्षेर्भावितात्मनः ॥२०॥

अर्थ–बहुत से हाथियों की सूड़ों से तोड़े हुए, बहुत से बानरों से शोभायमान तथा बहुत से वृक्ष सैकड़ों मत्त पक्षियों से गूंजते हुए देखे, तदनन्तर कमल सदृश नेत्रों वाले राम ने अपने समीप पीछे चलते हुए लक्ष्मिवर्धन बीर लक्ष्मण से कहा कि यहां पर अब जैसे वृक्ष चिकने पत्तों वाले और मृग तथा पक्षी शान्त प्रतीत होते हैं इससे जान पड़ता है कि उस शुद्धात्मा महर्षि का आश्रम अब निकट आगया है ॥

अगस्त्या इति विख्यातो लोके स्वे नैव कर्मणा ।
आश्रमो दृश्यते तस्य परिश्रान्त श्रमापहः ॥२१॥
प्राज्यधूमाकुलवनश्चीरमाला परिष्कृतः ।
प्रशान्त मृगयूथश्च नानाशकुनिनादितः ॥ २२ ॥
निगृह्य तरसा मृत्युं लोकानां हितकाम्यया ।
दक्षिणादिक्कृता येन शरण्या पुण्यकर्मणा ॥२३॥

अर्थ–इनका अगस्त्य नाम इन्हीं के कर्मों से लोक में प्रसिद्ध है, परिश्रान्त=थके हुए लोगों के श्रम का नाशक यह उन्हीं का आश्रम है जो दिखाई देरहा है, देखो इस वन में यज्ञ का धूआं कैसा छारहा है, चीरों की मालायें वृक्षों पर लटक रही हैं और मृगगण कैसे शान्त हुए बैठे हैं तथा नाना प्रकार के पक्षी कैसी मधुरध्वनि से बोल रहे हैं, यह वह महात्मा अगस्त्य मुनि हैं जिन्होंने लोगों के हित की कामना से अपने बल द्वारा आर्यों के मृत्युरूप राक्षसों को छिन्न भिन्न करके दक्षिण दिशा शरण लेने योग्य बनादी है ॥

तस्येदमाश्रमपदं प्रभावाद्यस्य राक्षसैः ।
दिगियं दक्षिणा त्रासाद्दृश्यते नोपभुज्यते ॥२४॥
यदा प्रभृति चाक्रान्ता दिगियं पुण्यकर्मणा ।
तदा प्रभृति निर्वैराः प्रशान्ता रजनीचराः ॥२५॥
अयं दीर्घायुषस्तस्य लोके विश्रुतकर्मणाः ।
अगस्त्यस्याश्रमः श्रीमान्विनीतमृगसेवितः॥२६॥
एष लोकार्चितः साधुर्हिते नित्यं रतः सताम् ।
अस्मानधिगतानेष श्रेयसा योजयिष्यसि ॥२७॥

अर्थ–उनका यह आश्रम है जिनके प्रभाव से राक्षस भयभीत हुए दक्षिण दिशा को देखते हुए भोग नहीं सक्ते, जब से इन पुण्यकर्मा मुनि ने यह दिशा अपने अधीन की है तभी से राक्षस लोग वैर त्यागकर शान्त होगये हैं, लोकविख्यात श्रेष्ठ कर्मों वाले दीर्घायु अगस्त्यमुनि का यह सुहावना आश्रम है जहां के सब पशु पक्षी शान्तस्वभाव वाले हैं, यह महात्मा लोक में पूजित और सदा सत्पुरुषों के हित में रत हैं, आशा है अपने समीप आये हुए हमको भी कल्याण से युक्त करेंगे अर्थात् शुभ आशीर्वाद देंगे ॥

आराधयिष्याम्यत्राहमगस्त्यं तं महामुनिम् ।
शेषं च वनवासस्य सौम्यवत्स्याम्यहं प्रभो ॥२८॥
अत्र देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः ।
अगस्त्यं नियताहाराः सततं पर्युपासते ॥ २९ ॥

अर्थ—हे सौम्य ! मैं वनवास का शेष समय यहीं व्यतीत करता हुआ महामुनि अगस्त्य की आराधना करूंगा, यहां पर देव, गन्धर्व, सिद्ध तथा महर्षि लोग नियत आहार करते हुए निरन्तर अगस्त्यमुनि की उपासना=सेवा टहल करते हैं ॥

नात्र जीवेन्मृषावादी क्रूरो वा यदि वा शठः ।
नृशंसः पापवृत्तो वा मुनिरेष तथाविधः ॥ ३० ॥
यत्र देवाश्च यक्षाश्च नागाश्च पतगैः सह ।
वसन्तिनियताहारा धर्ममाराधयिष्णवः ॥ ३१ ॥
आगताः स्माश्रमपदं सौमित्रे प्रविशाग्रतः ।
निवेदयेह मां प्राप्तमृषये सह सीतया ॥ ३२ ॥

अर्थ—यह मुनि ऐसे प्रतापशाली हैं कि यहां झूठ बोलने वाला, निर्दय, धूर्त्त, निर्लज्ज और पापाचरण करने वाला पुरुष जीवित नहीं रहसकता और देवता, यक्ष, नाग तथा पतग नियत आहार करके धर्मसेवन की इच्छा से यहां वास करते हैं, हे लक्ष्मण ! अब हम आश्रम में आगये हैं, सो तुम आगे बढ़कर आश्रम में जाओ और सीता सहित मेरा आगमन ऋषि के प्रति निवेदन करो ॥

इति अष्टमः सर्गः

अथ नवमः सर्गः

सं०—अब राम का अगस्त्यमुनि से मिलाप कथन करते हैं:—

स प्रविश्याश्रमपदं लक्ष्मणो राघवानुजः ।
अगस्त्यशिष्यमासाद्य वाक्यमेतदुवाच ह ॥ १ ॥
राजा दशरथो नाम ज्येष्ठस्तस्य सुतो बली ।
रामः प्राप्तो मुनिं द्रष्टुं भार्यया सह सीतया ॥ २ ॥
लक्ष्मणो नाम तस्याहं भ्राता त्ववरजोहितः ।
द्रष्टुमिच्छामहे सर्वे भगवन्तं निवेद्यताम् ॥३॥

अर्थ—तत्पश्चात् राम का छोटा भाई लक्ष्मण आश्रम में प्रवेशकर अगस्त्यमुनि के शिष्य से बोला कि राजा दशरथ का बड़ा पुत्र बलवान् राम अपनी भार्या सीतासहित मुनि के दर्शनों को आये हैं, मैं उनका हितेच्छुक छोटा भाई लक्ष्मण हूं, हम सब भगवान् मुनि के दर्शन करना चाहते हैं, सो यह उनकी सेवा में निवेदन करदीजिये ॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा लक्ष्मणस्य तपोधनः ।
तथेत्युक्त्वाग्निशरणं प्रविवेश निवेदितुम् ॥ ४ ॥
स प्रविश्य मुनिश्रेष्ठं तपसा दुष्प्रधर्षणम् ।
कृताञ्जलिरुवाचेदं रामागमनमञ्जसा ॥ ५ ॥
यथोक्तं लक्ष्मणे नैव शिष्योऽगस्त्यस्य संमतः ।
पुत्रौ दशरथस्येमौ रामो लक्ष्मण एव च ॥ ६ ॥
प्रविष्टावाश्रमपदं सीतया सह भार्यया ।
द्रष्टुं भवन्तमायातौ शुश्रूषार्थमरिंदमौ ॥ ७ ॥

अर्थ—लक्ष्मण के उक्त वचन सुनकर वह तपोधन शिष्य

"तथास्तु" कहकर मुनि से निवेदन करने के लिये अग्निगृह में गया, और वहां उन उग्र तप करने वाले महातेजस्वी मुनिश्रेष्ठ के समीप जाकर हाथ जोड़ राम का आगमन जैसे लक्ष्मण ने कहा था वैसे ही शिष्य ने कथन किया कि राजा दशरथ के पुत्र राम तथा लक्ष्मण आश्रम में आये हैं और साथ में राम की भार्या सीता है, वह शत्रुओं के दमन करने वाले दोनों भगवान् के दर्शन और शुश्रूषार्थ आये हैं ॥

ततः शिष्यादुपश्रुत्यं प्राप्तं रामं सलक्ष्मणम् ।
वैदेहीं च महाभागामिदं वचनमब्रवीत् ॥ ८ ॥
दिष्ट्या रामश्चिरस्याद्य द्रष्टुं मां समुपागतः ।
मनसा कांक्षितं ह्यस्य मयाप्यागमनं प्रति ॥ ९ ॥
गम्यतां सत्कृतो रामः सभार्यः सहलक्ष्मणः ।
प्रवेश्यतां समीपं मे किमयं न प्रवेशितः ॥१०॥

अर्थ—तब लक्ष्मण सहित राम और महाभागा सीता का आगमन सुनकर मुनिवर शिष्य से बोले कि चिरकाल से प्रतीक्षा करते हुए आज राम मुझसे मिलने को आये हैं मुझे भी उनसे मिलने की बड़ी उत्कण्ठा है, सो जाओ बड़े सन्मानपूर्वक लक्ष्मण और भार्या सहित राम को मेरे समीप लेआओ, उनका प्रवेश पहिले ही क्यों न करादिया ॥

तदा निष्क्रम्य संभ्रान्तः शिष्यो लक्ष्मणमब्रवीत् ।
कोऽसौ रामो मुनिं द्रष्टुमेतु प्रविशतु स्वयम् ॥११॥

अर्थ—तदनन्तर शिष्य आश्रम से निकलकर बड़े आदरपूर्वक लक्ष्मण से बोला कि राम कहां हैं मुनि के दर्शनार्थ आश्रम में प्रवेश करें ॥

प्रविवेश ततो रामः सीतया सह लक्ष्मणः ।
प्रशान्त हरिणा कीर्णमाश्रमं ह्यवलोकयन् ॥१२॥
ततः शिष्यैः परिवृतो मुनिरप्यभिनिष्पतत् ।
तं ददर्शाग्रतो रामो मुनीनां दीप्ततेजसाम् ॥१३॥
अब्रवीद्वचनं वीरो लक्ष्मणं लक्ष्मिवर्धनम् ।
वहिर्लक्ष्मण निष्क्रामत्यगस्त्यो भगवानृषिः ॥१४॥

अर्थ—तदनन्तर सीता तथा लक्ष्मण सहित राम शान्त हरिणों से भरे आश्रम को देखते हुए भीतर प्रविष्ट हुए, और उधर शिष्यों से घिरे हुए मुनि भी अग्न्यागार से बाहर निकले, तब मुनियों सहित सन्मुख आते हुए उन तेजस्वी अगस्त्यमुनि के राम ने दर्शन किये, और उस वीर ने लक्ष्मिवर्धन=लक्ष्मी के बढ़ाने वाले लक्ष्मण से कहा कि हे लक्ष्मण ! वह भगवान् अगस्त्य ऋषि हैं जो बाहर निकले हैं ॥

एवमुक्त्वा महावाहुरगस्त्यं सूर्यवर्चसम् ।
जग्राहापततस्तस्य पादौ च रघुनन्दनः ॥१५॥
अभिवाद्य तु धर्मात्मा तस्थौ रामः कृताञ्जलिः ।
सीतया सह वैदेह्या तदा रामः सलक्ष्मणः ॥१६॥
प्रतिगृह्य च काकुत्स्थमर्चयित्वा सनोदकैः ।
कुशलप्रश्नमुक्त्वा च आस्यतामितिसोऽब्रवीत् ॥१७॥
अग्निं हुत्वा प्रदायार्घ्यमतिथीन्प्रतिपूज्य च ।
वानप्रस्थेन धर्मेण स तेषां भोजनं ददौ ॥१८॥

अर्थ—यह कहकर महाबाहु राम ने सूर्य्यतुल्य तेजस्वी मुनि के आते हुए पादग्रहण किये, और अभिवादन करके सीता तथा लक्ष्मण के सहित धर्मात्मा राम हाथ जोड़कर खड़े होगये, तब मुनि ने राम को ग्रहण कर आसन तथा जल से सत्कार किया और कुशल पूछते हुए उनको बैठने की आज्ञा दी, तत्पश्चात् बलिवैश्वदेव होम करके अर्घ्य दिया और फिर तीनों अतिथियों को सत्कारपूर्वक वानप्रस्थ धर्म के अनुसार भोजन दिया ॥

प्रथमं चोपदिश्याथ धर्मज्ञोमुनिपुंगवः ।
उवाच राममासीनं प्राञ्जलिं धर्मकोविदम् ॥१९॥
अन्यथा खलु काकुत्स्थ तपस्वी समुदाचरन् ।
दुःसाक्षीव परेलोके स्वानि मांसानि भक्षयेत्॥२०॥

अर्थ—तदनन्तर धर्म के जानने वाले हाथ जोड़कर बैठे हुए राम से धर्मज्ञ मुनिश्रेष्ठ बोले कि हे राम ! जो तपस्वी होकर अतिथि का सत्कार नहीं करता वह झूठी साक्षी=गवाही देने वाले पुरुष के समान परलोक=दूसरे जन्म में अपना मांस खाता है ॥

राजा सर्वस्य लोकस्य धर्मचारी महारथः ।
पूजनीयश्च मान्यश्च भवान्प्राप्त प्रियातिथिः ॥२१॥
एवमुक्त्वा फलैर्मूलैः पुष्पैश्चान्यैश्च राघवम् ।
पूजयित्वा यथाकामं ततोऽगस्त्यस्तमब्रवीत् ॥२२॥

अर्थ—हे राम ! आप सब के राजा, धर्मज्ञ, महारथी और पूजनीय तथा माननीय प्रिय अतिथि प्राप्त हुए हैं, यह कहकर और फल, मूल, पुष्पों से यथारुचि सत्कार करके फिर अगस्त्य मुनि बोले कि :—

इदं दिव्यं महच्चापं हेमवज्रविभूषितम् ।
वैष्णवं पुरुषव्याघ्र निर्मितं विश्वकर्मणा ॥२३॥
अमोघः सूर्यसंकाशो ब्रह्मदत्तः शरोत्तमः ।
दत्तो मम महेन्द्रेण तूणीचाक्षय्यसायकौ ॥२४॥
सम्पूर्णौ निशितैर्बाणैर्ज्वलद्भिरिव पावकैः ।
महारजत कोशोऽयमसिर्हेमविभूषितः ॥ २५ ॥

अर्थ–हे पुरुषव्याघ्र ! यह दिव्य वैष्णव महाधनुष जो सुवर्ण तथा वज्र से भूषित और जिसको विश्वकर्मा ने वनाया है, यह ब्रह्मा से दिया हुआ सूर्य्य समान अमोघ तीर और यह महेन्द्र के दिये हुए अक्षय=बहुत तीरों वाले दो सायक=तरकस, जो अग्नि की भांति तेज वाले तीक्ष्ण बाणों से भरे हैं, और यह सुवर्ण से भूषित चांदी के मियान वाली तलवार है ॥

तद्धनुस्तौ च तूणी च शरं खड्गं च मानद ।
जयाय प्रतिगृह्णीष्व वज्रं वज्रधरो यथा ॥२६॥
एवमुक्त्वा महातेजाः समस्तं तद्वरायुधम् ।
दत्वा रामाय भगवानगस्त्यः पुनरब्रवीत् ॥२७॥

अर्थ–हे मान के देने वाले राम ! यह धनुष, दोनों तरकस, तीर और खड्ग=तलवार इनको इन्द्र की न्याई विजय के लिये स्वीकार कर, यह कहकर महातेजस्वी अगस्त्यमुनि ने वह सब उत्तम शस्त्र राम को देकर कहा कि:—

राम प्रीतोऽस्मि भद्रं ते परितुष्टोऽस्मि लक्ष्मण ।
अभिवादयितुं यन्मां प्राप्तौस्थः सह सीतया ॥२८॥

अर्थ—हे राम ! तेरा कल्याण हो, मैं तुम से बहुत प्रसन्न हूं और हे लक्ष्मण ! तुम पर भी बहुत सन्तुष्ट=प्रसन्न हूं जो सीतासहित अभिवादन करने के लिये मेरे समीप आये हो ॥

अध्वश्रमेण वां खेदो बाधते प्रचुरश्रमः ।
व्यक्तमुत्कण्ठते वापि मैथिली जनकात्मजा ॥२९॥
एषा च सुकुमारी च खेदैश्च न विमानिता ।
प्राज्यदोषं वनं प्राप्ता भर्तृस्नेह प्रचोदिता ॥३०॥
यथैषा रमते राम इह सीता तथा कुरु ।
दुष्करं कृतवत्येषा वने त्वामभिगच्छती ॥३१॥

अर्थ—बहुत थक जाने के कारण आप दोनों को मार्ग का श्रम अधिक पीड़ा देरहा है और सीता को भी बहुत कष्ट होने के कारण यह विश्राम चाहती है, यह सुकुमारी इससे पूर्व ऐसे खेदों से कभी पीड़ित नहीं हुई, अब भर्ता के स्नेह से प्रेरित हुई इस बड़े दोषों वाले वन में आई है, हे राम ! जिसप्रकार यह वन में सुखपूर्वक रहे वैसा कीजिये, आपके साथ वन में आगमन सम्बन्धी इसने बड़ा दुष्कर=कठिन काम किया है ॥

अलंकृतोऽयं देशश्च यत्र सौमित्रिणा सह ।
वैदेह्या चानया राम वत्स्यसि त्वमरिन्दम् ॥३२॥
एवमुक्तस्तु मुनिना राघवः संयताञ्जलिः ।
उवाच प्रश्रितं वाक्यमृषिं दीप्तमिमानलम् ॥३३॥

अर्थ—हे शत्रुओं के तपाने वाले राम ! आप लक्ष्मण तथा

सीता सहित यहां निवास करें, आपके यहां रहने से यह देश बड़ा सुशोभित होगा, मुनि के उक्त प्रकार कथन करने पर अग्नि की भांति देदीप्यमान राम उन ऋषि से हाथ जोड़कर बोले कि:—

धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि यस्य मे मुनिपुंगवः ।
गुणैः सभ्रातृभार्यस्य गुरुर्नः परितुष्यति ॥ ३४ ॥
किं तु व्यादिश मे देशं सोदकं बहुकाननम् ।
यत्राश्रमपदं कृत्वा वसेयं निरतः सुखम् ॥ ३५ ॥
ततोऽब्रवीन्मुनिश्रेष्ठः श्रुत्वा रामस्यभाषितम् ।
ध्यात्वा मुहूर्तं धर्मात्मा तदोवाच वचः शुभम्॥३६॥
इतो द्वियोजने तात बहुमूलफलोदकः ।
देशो बहुमृगः श्रीमान्पंचवट्यभिविश्रुतः ॥३७॥

अर्थ–मैं धन्य हूं, अनुग्रहीत हूं, जो भ्राता तथा भार्या सहित मेरे गुणों से आप हमारे गुरु बहुत प्रसन्न हुए हैं, आप मुझे कोई ऐसा स्थान बतलायें जो बहुत वृक्षों वाला तथा जल वाला हो जहां आश्रम बनाकर हम सब सुखपूर्वक रहें, पत्पश्चात् वह धर्मात्मा मुनिश्रेष्ठ राम का उक्त वाक्य सुन कुछ काल विचारकर यह शुभ वचन बोले कि हे तात ! यहां से दो योजन पर बहुत मूल, फल तथा जल वाला और बहुत मृगों वाला शोभायमान स्थान पञ्चवटी नाम से विख्यात है ॥

तत्र गत्वाश्रमपदं कृत्वा सौमित्रिणा सह ।
रमस्व त्वं पितुर्वाक्यं यथोक्तमनुपालनम् ॥ ३८ ॥

हृदयस्थं च ते छन्दो विज्ञातं तपसा मया ।
अतश्च त्वामहं ब्रूमि गच्छ पंचवटीमिति ॥ ३९ ॥

अर्थ—वहां जाकर आश्रम बनाओ और पिता के वचन का यथावत् पालन करते हुए लक्ष्मण सहित आनन्दपूर्वक रहो, तुम्हारे हृदय का अभिप्राय मैंने तप द्वारा ज्ञात किया है, इसलिये तुम्हें पञ्चवटी में निवास करने की सम्मति देता हूं ॥

स देशः श्लाघनीयश्च नातिदूरे च राघव ।
गोदावर्याः समीपे च मैथिली तत्र रंस्यते ॥४०॥
प्राज्य मूल फलैश्चैव नानाद्विजगणैर्युतः ।
विविक्तश्च महाबाहो पुण्यो रम्यस्तथैव च ॥४१॥
भवानपि सदाचारः शक्तश्च परिरक्षणे ।
अपि चात्र वसन्नाम तापसान्पालयिष्यति ॥४२॥
एतदालक्ष्यते वीर मधूकानां महावनम् ।
उत्तरेणास्य गन्तव्यं न्यग्रोधमपि गच्छता ॥४३॥

अर्थ—हे राम ! वह स्थान अति सुहावना तथा बहुत दूर भी नहीं और गोदावरी नदी के समीप है, सो वहां सीता बड़े आनन्दपूर्वक विचरेंगी, हे महाबाहो ! वह स्थान बहुत मूल, फल तथा नानाप्रकार के पक्षिगणों से युक्त, एकान्त, पवित्र और रमणीय है, आप सदाचारी तथा रक्षा करने में समर्थ होने के कारण वहां वास करते हुए तपस्वियों का भी पालन करें, हे वीर ! यह जो महुओं का महावन दिखाई देता है इसके उत्तर की ओर से जाना और यही मार्ग न्यग्रोध आश्रम को भी जाता है॥

ततः स्थलमुपारुह्य पर्वतस्याविदूरतः ।
ख्यातः पञ्चवटीत्येव नित्य पुष्पितकाननः ॥४४॥
अगस्त्येनैवमुक्तस्तु रामः सौमित्रिणा सह ।
सत्कृत्यामन्त्रयामास तमृषिं सत्यवादिनम् ॥४५॥
तौ तु तेनाभ्यानुज्ञातौ कृतपादाभिवन्दनौ ।
तमाश्रमं पंचवटीं जग्मतुः सह सीतया ॥ ४६ ॥

अर्थ—उससे आगे ऊपर की ओर स्थल पर चढ़कर पर्वत के निकट ही पञ्चवटी प्रसिद्ध है जहां पर वन के वृक्ष सदा फूले रहते हैं, अगस्त्यमुनि के इस प्रकार कथन करने पर उन सत्यवादी ऋषि का यथावत् पूजन करके लक्ष्मण सहित राम ने उनसे आज्ञा मांगी, तत्पश्चात् मुनि से आज्ञा प्राप्त कर दोनों भाइयों ने उनकी पादवन्दना करके सीता सहित पञ्चवटी आश्रम को प्रस्थान किया ॥

इति नवमः सर्गः

अथ दशमः सर्गः

सं०—अब राम का पञ्चवटी में जाना और वहां आश्रम बनाकर रहना कथन करते हैं :—

अथ पंचवटीं गच्छन्नन्तरा रघुनन्दनः ।
आससाद महाकायं गृध्रं भीमपराक्रमम् ॥ १ ॥

तं दृष्ट्वा तौ महाभागौ वनस्थं रामलक्ष्मणौ ।
मेनाते राक्षसं पक्षिं ब्रुवाणौ को भवानिति ॥ २ ॥

अर्थ–तदनन्तर पञ्चवटी को जाते हुए राम ने मार्ग में एक बहुत पराक्रम वाला तथा महाकाय=बड़े शरीर वाला गृध्र देखा, उस वनचारी गृध्र को देखकर महाभाग राम तथा लक्ष्मण ने उसको राक्षस समझकर उससे पूछा कि आप कौन हैं ? ॥

ततो मधुरया वाचा सौम्यया प्रीणयन्निव ।
उवाच वत्स मां विद्धि वयस्वं पितुरात्मनः ॥ ३ ॥
स तं पितृसखं मत्वा पूजयामास राघवः ।
स तस्य कुलमव्यग्रमथ पप्रच्छ नाम च ॥ ४ ॥
रामस्य वचनं श्रुत्वा कुलमात्मानमेव च ।
आचचक्षे द्विजस्तस्मै सर्वभूत समुद्भवम् ॥ ५ ॥
जटायुरिति मां विद्धि श्येनीपुत्र मरिंदम ।
सोऽहं वाससहायस्ते भविष्यामि यदीच्छसि ॥ ६ ॥

अर्थ–तत्पश्चात् वह गृध्र मधुरवाणी द्वारा तृप्त करता हुआ बोला कि बेटा मैं तेरे पिता दशरथ का सखा हूं, राम ने उसको अपने पिता का सखा मान उसका सत्कार किया और फिर उसका कुल तथा नाम पूछा, राम का वचन सुनकर उस द्विज ने उनको अपना कुल तथा सब भूतों की उत्पत्ति बतलाई, और फिर कहा कि हे शत्रुओं के तपाने वाले राम ! मैं श्येनी का पुत्र जटायु नामा हूं, यदि आपकी इच्छा होतो मैं आपके साथ रहूं॥

भाष्य–प्रिय पाठकगण ! हमारे बहुत से भाई यह कहा करते हैं कि जटायु एक पक्षी था जो राम का बड़ा भक्त और जिसने सीता को लेजाते हुए रावण को रोका था, उनका यह कथन सर्वथा निर्मूल है, यह जटायु एक पुरुषविशेष था जिसकी माता का नाम श्येनी, भाई का नाम सम्पाती और राजा दशरथ का सखा था,यह उस समय की मर्यादानुसार घरवार छोड़ तप करता हुआ वन में विचरता था,अधिक क्या उसने जो अपनी वंशावली बतलाई और राम के साथ जो इसका वार्तालाप हुआ है उस से स्पष्ट विदित है कि पशु पक्षी इस प्रकार स्पष्ट बातचीत नहीं करसकते और न पुरुष तथा पक्षियों में सखाभाव होसकता है, यह पुरुषों में ही विशेषता है जो अपने भाव को बुद्धिपूर्वक प्रकाशित करसकते हैं, इत्यादि कारणों से उसको मनुष्य मानना ही समीचीन है पक्षी नहीं ॥

स तत्र सीतां परिदाय मैथिलीं सहैव तेनाति-
बलेन पक्षिणा । जगाम तां पंचवटीं सलक्ष्मणो
रिपून्दिधक्षन्सवनानिपालयन् ॥ ७ ॥

अर्थ–तब राम ने कहा बहुत अच्छा आप सीता की रक्षा करते रहें, यह कह बलवान् जटायु को साथ लेकर शत्रुओं को तपाते और तपस्वी महात्माओं की रक्षा करते हुए सीता तथा लक्ष्मण सहित राम पंचवटी में पहुंचे ॥

ततः पंचवटीं गत्वा नानाव्यालमृगायुताम् ।
उवाच लक्ष्मणं रामो भ्रातरं दीप्ततेजसम् ॥८॥

अयं देशः समः श्रीमान्पुष्पितैस्तरुभिर्वृतः ।
इहाश्रमपदं रम्यं यथावत्कर्तुमर्हसि ॥ ९ ॥
इयमादित्यसंकाशैः पद्मैः सुरभिगन्धिभिः ।
अदूरे दृश्यते रम्या पद्मिनीपद्म शोभिता ॥१०॥
यथाख्यातमगस्त्येन मुनिना भावितात्मना ।
इयं गोदावरी रम्या पुष्पितैस्तरुभिवृता ॥११॥

अर्थ–तदनन्तर अनेक व्याल और मृगों से युक्त पंचवटी में जाकर राम ने तेजस्वी भाई लक्ष्मण से कहा कि यह देश समानाकर, शोभायमान और फूले हुए वृक्षों से घिरा हुआ बड़ा उत्तम है, सो तुम यहां यथावत् रमणीय आश्रम बनाओ, यह सूर्य के समान प्रकाशित उत्तम गन्धवाले कमलों से सुशोभित तालाब कैसे रमणीय दिखाई देते हैं, जैसा शुद्धात्मा अगस्त्यमुनि ने कहा था वैसी ही फूले हुए वृक्षों से घिरी हुई यह रमणीय गोदावरी नदी है ॥

हंसकारण्यवाकीर्णा चक्रवाकोपशोभिता ।
नातिदूरे न चासन्ने मृगयूथनिपीडिता ॥ १२ ॥
मयूरनादिता रम्याः प्रांशवो बहुकन्दराः ।
दृश्यन्ते गिरयः सौम्याःफुल्लैस्तरुभिरावृताः ॥१३॥
इदं पुण्यामिदं रम्यमिदं बहुमृगद्विजम् ।
इह वत्स्याम सौमित्रे सार्धमेतेन पक्षिणा ॥१४॥
एवमुक्तस्तु रामेण लक्ष्मणः परवीरहा ।
अचिरेणाश्रमं भ्रातुश्चकार सुमहाबलः ॥ १५ ॥

अर्थ—जो हंस, सारस तथा चकवों से शोभायमान, न बहुत दूर न बहुत निकट मृगसमूहों से पीड़ित, और यह सुहावने पर्वत मोरों से गूंजते हुए ऊंचे, बहुत कन्दराओं वाले तथा फूले हुए वृक्षों से घिरे हुए दीखते हैं, हे लक्ष्मण ! यह बहुत रमणीय पवित्र स्थान है यहां बहुत से मृग तथा पक्षी हैं, यहां इस जटायु के साथ निवास करें, राम के उक्त प्रकार कथन करने पर शत्रुवीरों के हनन करने वाले महाबली लक्ष्मण ने शीघ्र ही भाई राम के लिये आश्रम बनाया ॥

पर्णशालां सुविपुलां तत्र संघातमृत्तिकाम् ।
सुस्तंभां मस्करैर्दीर्घैः कृतवंशां सुशोभनाम् ॥१६॥
शमीशाखाभिरास्तीर्य दृढपाशावपाशिताम् ।
कुशकाशशरैः पर्णैः सुपरिच्छादितां तथा ॥१७॥

अर्थ—बड़ी विशाल पर्णशाला बनाई जिसमें प्रशस्त मिट्टी डाली, उत्तम खंभे लगाये और लम्बे २ बांस लगाकर भले प्रकार सुशोभित किया, फिर शमी वृक्ष की शाखायें ऊपर बिछाकर दृढ़ बांध दीं और उसको कुशा, काही, शर तथा पत्तों से भले प्रकार ढक दिया ॥

तस्मिन्देशे बहुफले न्यवसत्स सुखं सुखी ।
कञ्चित्कालं स धर्मात्मा सीतया लक्ष्मणेन च ॥१८॥

अर्थ—तब उस बहुत फलों वाले देश में सीता तथा लक्ष्मण के साथ धर्मात्मा राम कुछ काल बड़े सुखपूर्वक रहे ॥

इति दशमः सर्गः

अथ एकादशः सर्गः

सं०—अब राम, लक्ष्मण पंचवटी में निवास करते हुए वहां के दृश्यपूर्वक हिमऋतु का वर्णन करते हैं :—

वसतस्तस्य तु सुखं राघवस्य महात्मनः ।
शरद्व्यपाये हेमन्तऋतुरिष्टः प्रवर्तते ॥ १ ॥
स कदाचित्प्रभातायां शर्वर्यां रघुनन्दनः ।
प्रययावभिषेकार्थं रम्यां गोदावरीं नदीम् ॥२॥

अर्थ—महात्मा राम को सुखपूर्वक पंचवटी में वास करते हुए वहीं शरदऋतु व्यतीत होकर प्रिय हेमन्त ऋतु आगई, तब एक दिन वह रघुनन्दन प्रातःकाल रमणीय गोदावरी नदी पर स्नान करने के लिये गये ॥

प्रह्वःकलशहस्तस्तु सीतया सह वीर्यवान् ।
पृष्ठतोऽनुव्रजन्भ्राता सौमित्रिरिदमब्रवीत् ॥३॥
अयं स कालः संप्राप्तः प्रियो यस्ते प्रियंवद ।
अलंकृत इवाभाति येन संवत्सरः शुभः ॥४॥
नीहारपुरुषो लोकः पृथिवी सस्यमालिनी ।
जलान्यनुपभोग्यानि सुभगो हव्यवाहनः ॥५॥

अर्थ—और पीछे २ सीता तथा वीर्यवान् भ्राता लक्ष्मण हाथ में कलश लेकर चलते हुए नम्रतापूर्वक राम से बोले कि हे प्रियंवद ! यह वह समय आया है जो आपको बहुत प्रिय है, इस ऋतु में यह सम्वत्सर कैसा शोभायमान प्रतीत होरहा है, पृथिवी

खेती रूप मालावाली होने से कैसी सुशोभित है, इस ऋतु में जल शीतल होने के कारण अधिक काल तक उपभोग करने के योग्य नहीं और अग्नि सुहावनी मतीत होती है ॥

प्राज्यकामा जनपदाः सम्पन्नतरगोरसाः ।
विचरन्ति महीपाला यात्रार्थं विजिगीषवः ॥ ६ ॥
सेवमाने दृढं सूर्ये दिशमन्तकसेविताम् ।
विहीनतिलकेव स्त्री नोत्तरादिक् प्रकाशते ॥७॥
अत्यन्तसुखसंचारा मध्यान्हे स्पर्शतः सुखाः ।
दिवसाः सुभगादित्याश्छाया सलिलदुर्भगाः ॥८॥
मृदुसूर्याः सुनीहाराः पटुशीताः समाहिताः।
शून्यारण्या हिमध्वस्ता दिवसा भांति साम्प्रतम्॥९॥

अर्थ–इस समय सारा देश अन्नों और गोरस से भरपूर होने के कारण विजय की इच्छावाले महीपाल यात्रा करते हुए विचर रहे हैं,इस समय सूर्य दक्षिण दिशा का सेवन कर रहा है, और उत्तर दिशा तिलकहीना=शृङ्गार से हीन स्त्री की भांति शोभायमान मतीत नहीं होती, अब सूर्य्य की धूप मध्यान्ह में सुखमद होने के कारण दिन चलने में असन्त सुखदायी है, सूर्य्य सुहावना मतीत होता और छाया तथा जल असेवनीय होगये हैं, कुहर पड़ने से सूर्य्य बड़ा प्यारा मतीत होता तथा सब ओर से शीत की अधिकता है, हिम=पाले से सब वन सूखकर शोभा से हीन होरहे हैं और इस समय दिन में भी सूर्य्य की मभा तीक्ष्ण नहीं होती ॥

निवृत्ताकाशशयनाः पुष्यनीता हिमारुणाः ।
शीतवृद्धतरा यामास्त्रियामा यान्ति साम्प्रतम्॥१०॥
रविसंक्रान्तसौभाग्यस्तुषारारुणमण्डलः ।
निःश्वासान्ध इवादर्शश्चन्द्रमा न प्रकाशते ॥ ११ ॥
ज्योत्स्ना तुषारमलिना पौर्णमास्यां न राजते।
सीतेव चातपश्यामा लक्ष्यते नच शोभते ॥१२॥
प्रकृत्या शीतलस्पर्शो हिमविद्धिश्च साम्प्रतम् ।
प्रवाती पश्चिमो वायुः काले द्विगुण शीतलः॥१३॥

अर्थ–अब रात्रि के समय आकाश के नीचे=खुले मैदान में सोना बन्द होगया है, हिम से रातें धुन्धली होगई हैं, पुष्य नक्षत्र से रात्रिकाल का परिमाण ज्ञात होता है, और शीत से त्रियामा=रात्रि के पहर बहुत बढ़गये हैं, अब चन्द्रमा का सौभाग्य सूर्य्य में चलेजाने से चन्द्रमण्डल कुहर से धुन्धला पड़गया है, जैसे श्वास से दर्पण धुन्धला होजाता है, इसी प्रकार आजकल चन्द्रमा सुशोभित नहीं होता, पौर्णमासी को चांदनी कुहर से धुन्धली हुई धूप से श्याम हुई सीता की भांति प्रतीत होती है शोभायमान नहीं लगती, स्वभाव से ही शीतल स्पर्श वाला पश्चिमी वायु अब हिम से विंधा हुआ दुगुना शीतल होकर समय पर बहता है ॥

मयूखैरुपसर्पद्भिर्हिमनीहारसंवृतैः ।
दूरमभ्युदितः सूर्यः शशाङ्क इव लक्ष्यते ॥ १४ ॥

अग्राह्यवीर्यः पूर्वाह्णे मध्यान्हे स्पर्शतः सुखः ।
संसक्तः किंचिदापांडुरातपः शोभतेक्षितौ ॥१५॥
अवश्यायनिपातेन किंचित्प्रक्लिन्नशाद्वला ।
वनानां शोभते भूमिर्निविष्ट तरुणातपा ॥ १६ ॥
स्पृशन्सुविपुलं शीतमुदकं द्विरदः सुखम् ।
अत्यन्त तृषितो वन्यः प्रतिसंहरते करम् ॥१७॥

अर्थ—और दूर उदय हुए सूर्य्य की फैली हुई किरणें कुहर से ढकी हुई होने के कारण सूर्य्य भी चन्द्रमा की भांति प्रतीत होता है, बलहीन सूर्य्य की धूप का तेज पूर्वाह्ण में प्रतीत नहीं होता और मध्यान्ह में स्पर्श करने से सुख होता है फिर कुछ धूप में पीलापन होकर उससे पृथिवी शोभित होती है, ओस पड़ने से भीगी हुई खेती वाली वनभूमि तरुण धूप से सुशोभित होती है, अत्यन्त प्यासा जङ्गली हाथी सुख से बड़े ठंडे जल को स्पर्श करके सूंड को मोड़ लेता है ॥

एते हि समुपासीना विहगा जलचारिणः ।
नावगाहन्ति सलिलमप्रगल्भ इवाहवम् ॥ १८ ॥
अवश्याय तमो नद्धा नीहार तमसावृताः ।
प्रसुप्ता इव लक्ष्यन्ते विपुष्पावनराजयः ॥ १९ ॥
बाष्पसंछन्न सलिलां रुतविज्ञेयसारसाः ।
हिमार्द्रवालुकास्तीरैः सरितो भान्ति साम्प्रतम्॥२०॥
तुषारपतनाच्चैव मृदुत्वाद्भास्करस्य च ।
शैत्यादगाग्रस्थमपि प्रायेण रसवज्जलम् ॥ २१ ॥

अर्थ-जलचारी पक्षी जो बहुधा जल ही में रहते हैं वह भी इस शीतकाल में पानी में डुबकी नहीं लगाते, जैसे कायर पुरुष संग्राम से पृथक् रहते हैं, ओस पड़ने और कुहर की अंधियारी से बिना फूल वनश्रेणी सोई हुई सी प्रतीत होतीं हैं, कुहर से ढके हुए नदियों के जल का पता सारसों की उच्च ध्वनि, किनारों और ओस से भीगे हुए रेत से लगता है, तुषार=वर्फ के गिरने, सूर्य्य के मृदु होने और शीत के कारण पर्वतों के अग्रभाग का स्थित जल भी प्रायः रसवाला है ॥

जराझर्झरितैः पत्रैः शीर्णकेसरकर्णिकैः ।
नालशेषा हिमध्वस्ता न भान्ति कमलाकराः॥२२॥
अस्मिंस्तु पुरुषव्याघ्र काले दुःखसमन्वितः ।
तपश्चरति धर्मात्मा त्वद्भक्त्या भरतः पुरे ॥ २३ ॥
त्यक्त्वा राज्यं च मानं च भोगांश्च विविधान्बहून् ।
तपस्वी नियताहारः शेते शीते महीतले ॥२४॥

अर्थ-सरोवरों में कमलों के पत्र जरा=बुढ़ापे से झर्झर कर रहे हैं, फूलों के केसर तथा कर्णिक=छिलका झड़कर केवल नाल ही शेष रहजाने के कारण वह हिम से ध्वस्त=मरे हुए शोभा को प्राप्त नहीं होते, हे पुरुषव्याघ्र! इस कठिन काल में दुःख से युक्त धर्मात्मा भरत तुम्हारी भक्ति से पुर में तपश्चर्या द्वारा जीवन व्यतीत कर रहा होगा, और राज्य, मान तथा अनेक प्रकार के भोगों को त्यागकर नियत आहार करता हुआ तपस्वी बन शीतल महीतल पर सोता होगा ॥

सोऽपि वेलामिमां नूनमभिषेकार्थमुद्यतः ।
वृतः प्रकृतिभिर्नित्यं प्रयाति सरयूं नदीम् ॥ २५ ॥
पद्मपत्रेक्षणः श्यामः श्रीमान्निरुदरो महान् ।
धर्मज्ञः सत्यवादी च ह्रीनिषेधो जितेन्द्रियः ॥२६॥
प्रियाभिभाषी मधुरो दीर्घबाहुररिंदमः ।
संत्यज्य विविधान सौख्यानार्यंसर्वात्मनाश्रितः॥२७॥

अर्थ—और वह भी इस समय निःसन्देह स्नान के लिये तैयार हो प्रकृतियों को साथ लेकर नित्य सरयू नदी पर जाता होगा, कमलसदृश नेत्रों वाला, युवा, श्रीमान्, पतले पेट वाला, धर्मज्ञ, सत्यवादी, लज्जावान्, जितेन्द्रिय, प्रिय मधुरभाषी, बड़ी भुजा और शत्रुओं का तपाने वाला भरत अनेक प्रकार के सुखों को त्यागकर सर्वात्मा=सब प्रकार से आपके आश्रित है ॥

जितःस्वर्गस्तव भ्रात्रा भरतेन महात्मना ।
वनस्थमपि तापस्ये यस्त्वामनुविधीयते ॥२८॥
न पित्र्यमनुवर्तन्ते मातृकं द्विपदा इति ।
ख्यातो लोकप्रवादोऽयं भरतेनान्यथा कृतः ॥२९॥
भर्त्ता दशरथो यस्याः साधुश्च भरतः सुतः ।
कथं नु साम्बा कैकेयी तादृशी क्रूरदर्शिनी ॥३०॥
इत्येवं लक्ष्मणे वाक्यं स्नेहाद्वदति धार्मिके ।
परिवादं जनन्यास्तमसहन् राघवोऽब्रवीत् ॥३१॥

अर्थ—आपके भाई महात्मा भरत ने स्वर्ग को जीत लिया है जो तपस्विपन में आप वनवासी के पीछे चलरहा है, मनुष्य

पिता के अनुगामी न होकर माता का अनुसरण करते हैं, यह प्रसिद्ध लोकोक्ति भरत ने अन्यथा कर दिखलाई है, दशरथ जैसे भर्ता वाली तथा भरत जैसे साधु पुत्र वाली माता कैकेयी न जाने कैसे क्रूर दृष्टिवाली है, जब धार्मिक लक्ष्मण ने स्नेह से यह कहा तब माता की निन्दा न सहारते हुए राम बोले कि :—

न तेऽम्बा मध्यमा तात गर्हितव्या कदाचन ।
तामेवेक्ष्वाकुनाथस्य भरतस्य कथां कुरु ॥३२॥
संस्मराम्यस्य वाक्यानि प्रियाणि मधुराणि च ।
हृद्यान्यमृतकल्पानि मनः प्रह्लादनानि च ॥३३॥
कदा ह्यहं समेष्यामि भरतेन महात्मना ।
शत्रुघ्नेन च वीरेण त्वया च रघुनन्दन ॥ ३४॥
इत्येवं विलपंस्तत्र प्राप्य गोदावरीं नदीम् ।
चक्रेऽभिषेकं काकुत्स्थः सानुजः सहसीतया ॥३५॥

अर्थ—हे तात ! तुम्हें मध्यमा माता की निन्दा नहीं करनी चाहिये, वही इक्ष्वाकुनाथ भरत की पूर्व कथा कहो, भरत का शुद्ध हृदय और मन को प्रसन्न करने वाले प्रिय अमृत तुल्य वाक्य मुझको बहुत याद आते हैं, हे रघुनन्दन ! महात्मा भरत, वीर शत्रुघ्न, मैं और आप कब एकत्रित हो मिलेंगे, इस प्रकार वार्तालाप करते हुए गोदावरी नदी पर पहुंचकर राम ने लक्ष्मण तथा सीता सहित स्नान किया ॥

इति एकादशः सर्गः

अथ द्वादशः सर्गः

सं०—अब शूर्पणखा का राम के समीप आना और लक्ष्मण द्वारा उसके नाक कान कटने का कथन करते हैं :—

कृताभिषेको रामस्तु सीता सौमित्रिरेव च ।
तस्माद्गोदावरीतीरात्ततो जग्मुः स्वमाश्रमम् ॥१॥
आश्रमं तदुपागम्य राघवः सहलक्ष्मणः ।
कृत्वा पौर्वाह्णिकं कर्म पर्णशालामुपागमत् ॥२॥
तदासीनस्य रामस्य कथासंसक्त चेतसः ।
तं देशं राक्षसी काचिदाजगाम यदृच्छया ॥

अर्थ—राम, सीता तथा लक्ष्मण तीनों स्नान करके उस गोदावरी नदी के तट से अपने आश्रम को गये, आश्रम में पहुंचकर लक्ष्मण सहित राम पौर्वाह्णिक=प्रातःकाल के सन्ध्या अग्निहोत्रादि कर्म करके बाहर पर्णशाला में आये, और वहां बैठे हुए राम कुछ वार्त्तालाप कर रहे थे कि इतने में ही एक राक्षसी अपनी इच्छा से वहां अचानक आई ॥

सा तु शूर्पणखा नाम दशग्रीवस्य रक्षसः ।
भगिनी राममासाद्य ददर्श त्रिदशोपमम् ॥४॥
दीप्तास्यं च महाबाहुं पद्मपत्रायतेक्षणम् ।
गजविक्रान्तगमनं जटामण्डलधारिणम् ॥५॥

सुकुमारं महासत्त्वं पार्थिव व्यञ्जनान्वितम् ।
राममिन्दीवरश्यामं कदर्पसदृशप्रभम् ॥६॥
बभूवेन्द्रोपमं दृष्ट्वा राक्षसी काममोहिता ।
सुमुखं दुर्मुखी रामं वृत्तमध्यं महोदरी ॥७॥

अर्थ—और उस शूर्पणखा नामवाली राक्षस दशग्रीव=रावण की भगिनी ने निकट आकर देवतुल्य राम को देखा, जिसका मुख कान्ति वाला, जो विशाल भुजाओं वाला, कमलपत्र के समान वड़ी आंखों वाला, गजेन्द्र की चाल वाला और जो जटामण्डल धारण किये हुए था, जो सुकुमार, दिलावर, राजा के चिन्हों से युक्त, नील कमल की भांति श्याम और जो काम के तुल्य कान्ति वाला था, उस इन्द्र तुल्य राम को देखकर काम से मोहित हुई राक्षसी उस सुन्दर मुख वाले राम को दुर्मुख वाली, पतले पेटवाले को वड़े पेटवाली, और:—

विशालाक्षं विरूपाक्षी सुकेशं ताम्रमूर्धजा ।
प्रियरूपं विरूपा स सुस्वरं भैरवस्वना ॥ ८ ॥
तरुणं दारुणा वृद्धा दक्षिणं वामभाषिणी ।
न्यायवृत्तं सुदुर्वृत्ता प्रियमप्रियदर्शना ॥ ९ ॥
शरीरजसमाविष्टा राक्षसी राममब्रवीत् ।
जटातापसवेषेण सभार्यः शरचापधृक् ॥ १० ॥
आगतस्त्वमिमंदेशं कथं राक्षससेवितम् ।
किमागमन कृत्यं ते तत्त्वमाख्यातुमर्हसि ॥११॥

अर्थ–विशाल नेत्रों वाले को विरूप नेत्रों वाली, सुन्दर केशों वाले को लाल केशों वाली, स्वरूप वाले को कुरूप वाली, सुन्दर स्वर वाले को भयंकर स्वर वाली, तरुण को दारुण वृद्धा, सरलभाषी को कुटिल भाषण करने वाली, धर्माचार वाले को अधर्माचार वाली, प्रियदर्शन को अप्रियदर्शन वाली राक्षसी कामान्ध हुई राम को देखकर उनसे बोली कि तपस्वी के वेष वाले, जटाधारण किये हुए और साथ ही धनुषबाण लिये हुए स्त्री सहित आप कैसे राक्षसों से सेवित इस देश में आये हैं? आपके आगमन का क्या अभिप्राय है? आप मुझे ठीक २ कहें॥

एवमुक्तस्तु राक्षस्या शूर्पणख्या परंतपः।
ऋजुबुद्धितया सर्वमाख्यातुमुपचक्रमे ॥ १२ ॥
आसीद्दशरथो नाम राजा त्रिदशविक्रमः।
तस्याहमग्रजः पुत्रो रामो नाम जनैः श्रुतः ॥१३॥
भ्रातायं लक्ष्मणो नाम यवीयान्मामनुव्रतः।
इयं भार्या च वैदेही मम सीतेति विश्रुता ॥१४॥

अर्थ–राक्षसी शूर्पणखा के उक्त प्रकार पूछने पर परंतप राम सरल बुद्धि होने के कारण अपना सब वृत्त कहने लगे, कि देवतुल्य महापराक्रमी राजा दशरथ का मैं बड़ा पुत्र लोगों में राम नाम से प्रसिद्ध हूं, यह मेरा छोटा भाई लक्ष्मण मेरे साथ है और यह विदेहराज की कन्या सीता नाम से प्रसिद्ध मेरी पत्नी है॥

नियोगात्तु नरेन्द्रस्य पितुर्मातुश्च यन्त्रितः।
धर्मार्थं धर्मकांक्षी च वनं वस्तुमिहागतः ॥ १५ ॥

त्वां तु वेदितुमिच्छामि कस्य त्वं कासि कस्य वा।
साब्रवीद्वचनं श्रुत्वा राक्षसी मदनार्दिता ॥ १६ ॥
अहं शूर्पणखा नाम राक्षसी कामरूपिणी।
अरण्यं विचारामीदमेका सर्वभयंकरा ॥ १७ ॥
रावणो नाम मे भ्राता यदि ते श्रोत्रमागतः।
प्रवृद्धनिद्रश्च सदा कुम्भकर्णो महाबलः ॥ १८ ॥

अर्थ—मैं अपने नरेन्द्र पिता तथा माता की आज्ञानुसार नियम धारण करके धर्म की अभिलाषा वाला धर्म सम्पादनार्थ वन में वास करने को आया हूं, अब मैं तुम्हें जानना चाहता हूं कि तुम किसकी कन्या, किसकी भार्या अथवा कौन हो? तब उक्त वाक्य सुनकर काम से पीड़ित वह राक्षसी बोली कि मैं शूर्पणखा नाम कामरूपिणी राक्षसी सबको भयप्रद हुई अकेली ही वन में विचरती हूं, आपने सुने होंगे रावण और बड़ी गहरी नींद सोने वाला महाबली कुम्भकर्ण मेरे भाई हैं॥

विभीषणस्तु धर्मात्मा न तु राक्षस चेष्टितः।
प्रख्यातवीर्य्यौ च रणे भ्रातरौ खरदूषणौ ॥ १९ ॥
तानहं समतिक्रान्ता रामत्वापूर्वदर्शनात्।
समुपेतास्मिभावेन भर्तारं पुरुषोत्तमम् ॥ २० ॥
अहं प्रभाव सम्पन्ना स्वच्छन्दबलगामिनी।
चिराय भव भर्ता मे सीतया किं करिष्यसि ॥२१॥

अर्थ—और धर्मात्मा विभीषण भी मेरा भाई है पर उसकी

चेष्टा राक्षसों कीसी नहीं, और खर तथा दूषण दो भाई मेरे और हैं जिनका रण में बल विख्यात है, और मैं बल में उनसे भी अधिक हूं, सो हे राम ! तुम्हें अपूर्व देखकर अपने हार्दिकभाव से तुम्हें भर्ता बनाने के लिये यहां आई हूं, मैं बड़ी प्रभुता वाली और मेरा बल सर्वत्र विख्यात है, सो आप चिरकाल के लिये मेरे भर्ता बनें सीता क्या करेगी ॥

तां तु शूर्पणखां रामः कामपाशावपाशिताम् ।
स्वेच्छया श्लक्ष्णया वाचास्मितपूर्वमथाब्रवीत्॥२२॥
कृतदारोऽस्मि भवति भार्येयं दयिता मम ।
त्वद्विधानां तु नारीणां सुदुःखाससपत्नता ॥२३॥

अर्थ–कामपाश में बन्धी हुई स्वेच्छाचारिणी शूर्पणखा के उक्त वचन सुनकर राम मुस्कराकर स्पष्ट बाणी द्वारा बोले कि मैं विवाहित हूं, यह मेरी धर्मपत्नी है और सपत्नी=सौतिन का होना तेरी जैसी स्त्रियों के लिये बड़ा दुःखदायी है ॥

अनुजस्त्वेष मे भ्राता शीलवान्प्रियदर्शनः ।
श्रीमानकृतदारश्च लक्ष्मणो नाम वीर्यवान् ॥२४॥
एनं भज विशालाक्षि भर्तारं भ्रातरं मम ।
असपत्ना वरारोहे मेरुमर्क प्रभा यथा ॥२५॥

अर्थ–यह मेरा छोटा भाई शीलवान् तथा रूपवान् विना स्त्री वाला है सो तू इसको अपना भर्ता बना, हे विशाल नेत्रों वाली ! तू इस मेरे भाई को भर्ता बनाकर बिना सौतिन के रह, जैसे सूर्य्य की प्रभा सुमेरुपर्वत पर अकेली ही रहती है ॥

इति रामेण सा प्रोक्ता राक्षसी काममोहिता ।
विसृज्य रामं सहसा ततो लक्ष्मणमब्रवीत् ॥२६॥
अस्य रूपस्य ते युक्ता भार्याहं वरवर्णिनी ।
मया सह सुखं सर्वान् दण्डकान्विचरिष्यसि॥२७॥
एवमुक्तस्तु सौमित्रि राक्षस्या वाक्यकोविदः ।
ततः शूर्पणखीं स्मित्वा लक्ष्मणो युक्तमब्रवीत्॥२८॥

अर्थ—राम के उक्त प्रकार कथन करने पर काम से मोहित वह राक्षसी राम को छोड़कर शीघ्र ही लक्ष्मण से बोली कि हे लक्ष्मण ! तुम्हारे इस रूप के मैं शोभावाली पत्नी होने योग्य हूं आप मेरे साथ सुखपूर्वक इस सारे दण्डक वन में विचरें, उस राक्षसी का यह वचन सुनकर वाक्य के जानने वाला लक्ष्मण मुस्कराकर शूर्पणखा से बोला कि :—

कथं दासस्य मे दासी भार्या भवितुमिच्छसि ।
आर्यस्य त्वं विशालाक्षि भार्या भव यवीयसी ॥२९॥
इति सा लक्ष्मणेनोक्ता कराला निर्णतोदरी ।
मन्यते तद्वचः सत्यं परिहासाविचक्षणा ॥३०॥
सा रामं पर्णशालायामुपविष्टं परंतपम् ।
सीतया सह दुर्धर्षमब्रवीत्काममोहिता ॥ ३१ ॥

अर्थ—हे शूर्पणखा ! तू कैसे मुझ दास की भार्या होकर दासी बनना चाहती है, हे विशालाक्षि ! तू राम ही की छोटी भार्या बन लक्ष्मण के इस प्रकार कथन करने पर वह कराला=बड़ी

कठोर तथा बड़े पेटवाली परिहास=हंसी को न समझकर सत्य मानती हुई सीता के साथ पर्णशाला में बैठे हुए दुर्धर्ष राम को काम से मोहित हुई राक्षसी बोली कि :—

इमां विरूपामसतीं करालां निर्णतोदरीम् ।
वृद्धां भार्यामवष्टभ्य न मां त्वं बहु मन्यसे ॥३२॥
अद्येमां भक्षयिष्यामि पश्यतस्तवमानुषीम् ।
त्वया सह चरिष्यामि निःसपत्ना यथासुखम्॥३३॥

अर्थ–इस विरूपा, असती, करालमूर्ति तथा बड़े पेटवाली वृद्धा भार्या का आश्रय लेकर तू मेरा निरादर करता है, आज मैं इस मानुषी सीता को तेरे देखते २ खाजाउंगी और सौतिन से रहित होकर तेरे साथ सुखपूर्वक विचरूंगी ॥

इत्युक्त्वा मृगशावाक्षीमलातसदृशेक्षणा ।
अभ्यगच्छत्सु संक्रुद्धा महोल्का रोहिणीमिव॥३४॥
तां मृत्युपाशप्रतिमा मापतन्तीं महाबलः ।
निगृह्य रामः कुपितस्ततो लक्ष्मणमब्रवीत् ॥३५॥

अर्थ–यह कहकर हिरण के बच्चे के तुल्य तथा अंगारे के सदृश नेत्रों वाली सीता की ओर क्रोध से इस प्रकार दौड़ी जैसे बड़ी उल्का रोहिणी की ओर दौड़ती है, मृत्यु की पाश के तुल्य आती हुई राक्षसी को कुपित हुए महाबली राम रोककर लक्ष्मण से बोले किः—

क्रूरैरनार्यैः सौमित्रे परिहासः कथंचन ।
न कार्यःपश्य वैदेहीं कथंचित्सौम्य जीवतीम्॥३६॥

इमां विरूपामसतीमतिमत्तां महोदरीम् ।
राक्षसीं पुरुषव्याघ्र विरूपयितुमर्हसि ॥३७॥
इत्युक्तो लक्ष्मणस्तस्याः क्रुद्धो रामस्य पश्यतः ।
उद्धृत्य खड्गं चिच्छेद कर्णनासे महाबलः ॥३८॥

अर्थ—हे लक्ष्मण ! क्रूर अनार्यों के साथ कभी परिहास नहीं करना चाहिये, हे सौम्य ! देख इस समय सीता बड़ी कठिनता से जीवित बची है, हे पुरुषव्याघ्र ! इस विरूपा, असती, अति मदवाली तथा बड़े पेटवली राक्षसी को विरूप करदे, राम के इस प्रकार कथन करने पर क्रुद्ध हुए महाबली लक्ष्मण ने तलवार से राम के देखते २ उसके कान और नाक काट डाले॥

निकृत्तकर्णनासा तु विस्वरं सा विनद्य च ।
यथागतं प्रदुद्राव घोरा शूर्पणखा वनम् ॥३९॥
सा विक्षरन्ती रुधिरं बहुधा घोरदर्शना ।
प्रगृह्य बाहू गर्जन्ती प्रविवेश महावनम् ॥४०॥

अर्थ—तब नाक कान कट जाने पर बड़ा घोर शब्द करती हुई वह शूर्पणखा जैसे आई थी वैसे ही वन को भाग गई, और वह घोरदर्शन=भयंकर मूर्ति शूर्पणखा जगह २ रुधिर छिड़कती तथा भुजा उठाकर गर्जती हुई महावन में प्रविष्ट हुई ॥

ततस्तु सा राक्षससंघसंवृतं खरं जनस्थान-
गतं विरूपिता । उपेत्य तं भ्रातरमुग्रतेज-
सं पपात भूमौ गगनाद्यथाशनिः ॥४१॥

अर्थ–तत्पश्चात् वह कुरूप हुई जनस्थान में राक्षसों के साथ बैठे हुए बड़े तेजस्वी अपने भाई "खर" के समीप जाकर आकाश से विजुली की भांति भूमि पर गिर पड़ी ॥

इति द्वादशः सर्गः

अथ त्रयोदशः सर्गः

सं०–अब राम पर राक्षसों की चढ़ाई तथा उनके मारे जाने का वर्णन करते हैं :—

तां तथा पतितां दृष्ट्वा विरूपां शोणितोक्षिताम् ।
भगिनीं क्रोधसंतप्तः पप्रच्छ राक्षसः खरः ॥ १ ॥
उत्तिष्ठ तावदाख्याहि प्रमोहं जहि संभ्रमम् ।
व्यक्तमाख्याहि केन त्वमेवं रूपा विरूपिता ॥ २ ॥
कः कृष्णसर्पमासीनमाशीविषमनागसम् ।
तुदत्यभिसमापन्नमंगुल्यग्रेण लीलया ॥ ३ ॥

अर्थ–उस गिरी हुई विरूपा तथा रुधिर से लिपटी हुई बहिन को देखकर क्रोध से संतप्त हुआ राक्षस खर पूछने लगा कि हे शूर्पणखा ! मूर्च्छा तथा घबराहट को छोड़कर उठ और स्पष्ट कह कि किसने तुझे इस प्रकार विरूपा किया है ? ऐसा कौन है जो समीप बैठे हुए विषवाले काले नाग को बिना अपराध ही लीलामात्र से अंगुली के अग्रभाग द्वारा पीड़ित करता है॥

निहतस्य मया संख्ये शरसं कृत्तमर्मणः ।
सफेन रुधिरं कस्य मेदिनी पातुमिच्छसि ॥ ४ ॥

अर्थ—युद्ध में मेरे तीरों से मर्मों का छेदन होने पर किस मरे हुए के फेन=झाग वाले रुधिर को पृथिवी पीना चाहती है ॥

इति भ्रातुर्वचः श्रुत्वा क्रुद्धस्य च विशेषतः ।
ततः शूर्पणखा वाक्यं सबाष्पमिदमब्रवीत् ॥ ५ ॥

अर्थ—अति क्रोधित हुए भाई खर के उक्त वचन सुनकर शूर्पणखा आंसु बहाती हुई यह वचन बोली कि :—

फलमूलाशनौ दान्तौ तापसौ ब्रह्मचारिणौ ।
पुत्रौ दशरथस्यास्तां भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥ ६ ॥
तरुणी रूपसम्पन्ना सर्वाभरणभूषिता ।
दृष्टा तत्र मया नारी तयोर्मध्ये सुमध्यमा ॥ ७ ॥
ताभ्यामुभाभ्यां संभूय प्रमदामधिकृत्यताम् ।
इमामवस्थां नीताहं यथाऽनाथासती तथा ॥ ८ ॥
तस्याश्चानृजुवृत्तायास्तयोश्चहतयोरहम् ।
सफेनं पातुमिच्छामि रुधिरं रणमूर्धनि ॥ ९ ॥

अर्थ—फल मूल खाने वाले, जितेन्द्रिय, तपस्वी, ब्रह्मचारी, दशरथ के पुत्र दोनों भाई राम लक्ष्मण हैं, और वहां उन दोनों के मध्य में युवती, रूपवती, सब भूषणों से भूषित सुन्दर नारी मैंने देखी है, उस स्त्री के कारण उन दोनों भाइयों ने मिलकर मुझे अनाथा की भांति इस अवस्था को प्राप्त किया है, सो अब मैं उस कुटिल वृत्तवाली स्त्री तथा उन दोनों दुष्टों के फेन=झाग सहित रुधिर को रण में पीना चाहती हूं ॥

एष मे प्रथमः कामः कृतस्तत्र त्वया भवेत् ।
तस्यास्तयोश्च रुधिरं पिबेयमहमाहवे ॥ १० ॥
इति तस्यां ब्रुवाणायां चतुर्दश महाबलान् ।
व्यादिदेश खरः क्रुद्धो राक्षसानन्तकोपमान् ॥११॥
तौ हत्वा तां च दुर्वृत्तामुपावर्तितुमर्हथ ।
इयं च भगिनी तेषां रुधिरं मम पास्यति ॥१२॥

अर्थ–यह मेरी पहली इच्छा तू पूर्ण कर कि उस स्त्री और उन दोनों भाइयों के रुधिर को मैं युद्ध में पीऊं, शूर्पणखा के इस प्रकार कथन करने पर क्रुद्ध हुए खर ने यमतुल्य चौदह महाबली राक्षसों को आज्ञा दी कि उन दोनों भाई और उस दुष्टा नारी को मार आओ, यह मेरी बहिन उनका रुधिर पियेगी॥

मनोरथोऽयमिष्टोऽस्या भगिन्या मम राक्षसाः ।
शीघ्रं संपाद्यतां गत्वा तौ प्रमथ्य स्वतेजसा ॥१३॥
इति प्रतिसमादिष्टा राक्षसास्ते चतुर्दश ।
तत्र जग्मुस्तया सार्धं घना वातेरिता इव ॥ १४ ॥

अर्थ–हे राक्षसो ! मेरी बहिन के इस अभीष्ट मनोरथ के लिये तुम जाओ और अपने तेज से उन दोनों को मारकर इसका अभीष्ट पूर्ण करो, तब खर से आज्ञा पाये हुए वह चौदह राक्षस वायु से प्रेरित मेघों की न्याईं शीघ्र ही शूर्पणखा के साथ राम के निकट गये ॥

ततः शूर्पणखा घोरा राघवाश्रममागता ।
राक्षसानाचचक्षे तौ भ्रातरौ सह सीतया ॥ १५ ॥

तां दृष्ट्वा राघवः श्रीमानागतांस्तांश्च राक्षसान् ।
अब्रवीद्भ्रातरं रामो लक्ष्मणं दीप्ततेजसम् ॥१६॥
मुहूर्तं भव सौमित्रे सीतयाः प्रत्यनन्तरः ।
इमानस्या वधिष्यामि पदवी मागतानिह ॥१७॥

अर्थ—और उस कराल रूपवाली शूर्पणखा ने राम के आश्रम में आकर सीता सहित उन दोनों भाइयों को दिखलाया, तब राम ने शूर्पणखा सहित उन राक्षसों को आया हुआ देखकर तेजस्वी भाई लक्ष्मण से कहा कि तुम दो घड़ी सीता की रक्षा करो मैं इस शूर्पणखा के साथ आये हुए इन राक्षसों का यहां हनन करूंगा ॥

वाक्यमेतत्ततः श्रुत्वा रामस्य विदितात्मनः ।
तथेति लक्ष्मणो वाक्यं राघवस्य प्रपूजयन् ॥१८॥
राघवोऽपि महच्चापं चामीकरविभूषितम् ।
चकार सज्यं धर्मात्मा तानि रक्षांसि चाब्रवीत्॥१९॥
फलमूलाशनौ दान्तौ तापसौ ब्रह्मचारिणौ ।
वसन्तौ दण्डकारण्ये किमर्थमुपहिंसथ ॥ २० ॥

अर्थ—तब अपने आत्मिक बल को जानने वाला लक्ष्मण राम का वाक्य सुनकर तथास्तु कह उनकी आज्ञापालन के लिये उद्यत हुआ, और इधर धर्मात्मा राम सुवर्ण से भूषित बड़े धनुष पर चिल्ला चढ़ाकर उन राक्षसों से बोले कि हम दोनों फल मूल खाने वाले तपस्वी ब्रह्मचारी जो दण्डक वन में रहते हैं उनको किस अर्थ दुःख देते हो ॥

तिष्ठत्तैवात्र संतुष्टा नोपावर्तितुमर्हथ ।
यदि प्राणैरिहार्थो वो निवर्तध्वं निशाचराः ॥२१॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा राक्षसास्ते चतुर्दश ।
ऊचुर्वाचं सुसंक्रुद्धा ब्रह्मघ्नाः शूलपाणयः ॥ २२ ॥

अर्थ—हे राक्षसो ! यहीं सन्तोषपूर्वक ठहर जाओ मेरे निकट मतआओ, यदि तुम्हें प्राणों से प्रयोजन है तो पीछे लौटजाओ, राम का उक्त वचन सुनकर ब्राह्मणों के विरोधी त्रिशूल हाथों में लिये वह राक्षस अत्यन्त क्रुद्ध होकर राम से बोले कि :—

क्रोधमुत्पाद्य नो भर्त्तुः खरस्य सुमहात्मनः ।
त्वमेव हास्यसे प्राणान्सद्योऽस्माभिर्हतोयुधि ॥२३॥
का हि ते शक्तिरेकस्य बहूनां रणमूर्धनि ।
अस्माकमग्रतः स्थातुं किं पुनर्योद्धुमाहवे ॥ २४ ॥
इत्येवमुक्त्वा संरब्धा राक्षसास्ते चतुर्दश ।
उद्यतायुध निस्त्रिंशा राममेवाभि दुद्रुवुः ॥ २५ ॥

अर्थ—हमारे स्वामी महात्मा खर को तैने क्रोध उत्पन्न किया है सो तू हमसे युद्ध में मारा हुआ शीघ्र ही प्राणों का त्याग करेगा, रण में युद्ध करना तो एक ओर रहा, तुझ एकाकी की हम बहुतों के सन्मुख खड़ा होने की भी शक्ति नहीं, यह कह कर क्रुद्ध हुए वह चौदह राक्षस त्रिशूल और तलवारें उठाकर राम की ओर दौड़े ॥

चिक्षिपुस्तानि शूलानि राघवं प्रति दुर्जयम् ।
तानि शूलानि काकुत्स्थः समस्तानि चतुर्दश॥२६॥

तावद्भिरेव चिच्छेद शरैः काञ्चनभूषितैः ।
गृहीत्वा धनुरायम्य लक्ष्यानुदिश्य राक्षसान् ॥२७॥
मुमोच राघवो बाणान्वज्रानिव शतक्रतुः ।
ते भित्त्वा रक्षसां वेगाद्वक्षांसि रुधिरप्लुताः ॥२८॥
विनिष्पेतुस्तदा भूमौ वल्मीकादिव पन्नगाः ।
तैर्भग्न हृदया भूमौ भिन्नमूला इव द्रुमाः ॥ २९ ॥

अर्थ—और दुर्जय=बहुत कठिनता से जीतने योग्य राम की ओर उन्होंने अपने शूल फेंके, और राम ने उन चौदह शूलों को सुवर्ण से भूषित उतने ही तीरों से काट दिया, फिर धनुष पकड़ खींचकर राक्षसों को लक्ष्य बना राम ने इन्द्र के वज्र समान चौदह बाण छोड़े और वह बांबी से निकले हुए काले नागों की भांतिं बड़े वेग से राक्षसों की छातियों को फोड़कर रुधिर से लिपटे हुए भूमि पर गिरे, तब बाणों से बिंधे राक्षस कटे हुए वृक्षों की भांति भूमि पर गिर पड़े ॥

निपेतुः शोणितस्नाता विकृता विगतासवः ।
तान्भूमौ पतितान्दृष्ट्वा राक्षसी क्रोधमूर्च्छिता॥३०॥
उपगम्य खरं सा तु किंचित्संशुष्क शोणिता ।
पपात पुनरेवार्ता सनिर्यासेव वल्लरी ॥३१॥

अर्थ—और रुधिर से न्हाये हुए अचेत हो मृत्युवश होगये, तब उनको पृथिवी पर गिरा हुआ देखकर क्रोध से मूर्च्छित हुई शूर्पणखा खर के समीप आई, और शुष्क हुए रुधिर वाली राक्षसी पीड़ित होकर लता की भांति पृथिवी पर गिरपड़ी ॥

इति त्रयोदशः सर्गः

अथ चतुर्दशः सर्गः

स पुनः पतितां दृष्ट्वा क्रोधाच्छूर्पणखां पुनः ।
उवाच व्यक्तया वाचा तामनर्थार्थमागताम् ॥१॥
मया त्विदानीं शूरास्ते राक्षसाः पिशिताशनाः ।
त्वत्प्रियार्थं विनिर्दिष्टाः किमर्थं रुद्यते पुनः ॥२॥
भक्ताश्चैवानुरक्ताश्च हिताश्च मम नित्यशः ।
हन्यमाना न हन्यन्ते न न कुर्युर्वचो मम ॥३॥

अर्थ—वह खर पुनः शूर्पणखा को क्रोध से भूमि पर गिर हुआ देखकर अनर्थ के लिये आई हुई उसको स्पष्ट वाणी से बोला कि मैंने तो वह रुधिर पीने वाले शूरवीर राक्षस तेरे हित के लिये भेजे थे जो भक्ति वाले, अनुराग वाले तथा मेरे सदा हितैषी हैं, जो शत्रुओं से मारे जाने पर भी न मरें और यह भी नहीं कि मेरा वचन पूर्ण न करें, फिर तू किस लिये रोती है ॥

किमेतच्छ्रोतुमिच्छामि कारणं यत्कृते पुनः ।
हा नाथेति विनदन्ती सर्पवच्चेष्टसे क्षितौ ॥४॥
अनाथवद्विलपसि किंनु नाथे मयि स्थिते ।
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ मामैवं वैक्लव्यं त्यज्यतामिति ॥५॥
इत्येवमुक्त्वा दुर्धर्षा खरेण परिसान्त्विता ।
विमृज्य नयने सास्रे खरं भ्रातरमब्रवीत् ॥६॥

अर्थ—मैं तेरे रुदन का कारण सुनना चाहता हूं जिस अर्थ तू फिर हा नाथ !! हा नाथ !! इस प्रकार रोती हुई सांप की भांति पृथिवी पर लोट रही है, मुझ नाथ के होते हुए तू कैसे अनाथ की न्यांई विलाप करती है, तू उठ और इस विकलता को छोड़कर मुझ से कह, खर के इसप्रकार कथन करने तथा आश्वासन देने पर वह दुर्धर्षा नेत्रों से आंसु पोंछकर भाई खर से बोली कि:—

प्रेषिताश्च त्वया शूरा राक्षसास्ते चतुर्दश ।
निहन्तुं राघवं घोरं मत्प्रियार्थं सलक्ष्मणम् ॥७॥
ते तु रामेण सामर्षाः शूलपट्टिशपाणयः ।
समरे निहताः सर्वे सायकैर्मर्मभेदिभिः ॥८॥
तान्भूमौ पतितान्दृष्ट्वा क्षणेनैव महाजवान् ।
रामस्य च महत्कर्म महांस्त्रासोऽभवन्मम ॥९॥

अर्थ—तैंने जो मेरे हित के लिये लक्ष्मण सहित राम का वध करने को चौदह शूरवीर राक्षस भेजे थे और वह क्रोध युक्त राक्षस शूल, पटा आदि शस्त्रों से युक्त होने पर भी समर में पहुंचते ही राम ने मर्मभेदी बाणों द्वारा उनको प्राणों से वियुक्त करदिया है, उन बड़े वेगवाले राक्षसों को थोड़ी ही देर में भूमि पर गिरा हुआ देखकर राम के इस महत्कर्म से मुझे बड़ा भय होगया है ॥

सास्मि भीता समुद्विग्ना विषण्णा च निशाचर ।
शरणं त्वां पुनः प्राप्ता सर्वतो भयदर्शिनी ॥१०॥
एते च निहता भूमौ रामेण निशितैः शरैः ।
ये च मे पदवीं प्राप्ता राक्षसाः पिशिताशनाः ॥११॥

मयि ते यद्यनुक्रोशो यदि रक्षः सु तेषु च ।
रामेण यदि शक्तिस्ते तेजो वास्ति निशाचर॥१२॥

अर्थ—हे निशाचर ! मैं भयभीत हो कांपती तथा सब ओर से भय देखती हुई निराश हो फिर तेरी शरण में आई हूं, रुधिर पीने वाले राक्षस जो मेरे साथ गये थे उनको राम ने तीक्ष्ण बाणों द्वारा मारकर पृथिवी पर गिरा दिया है, सो हे निशाचर ! यदि तेरी मुझ पर तथा उन राक्षसों पर दया है और राम के साथ युद्ध करने की तुझ में शक्ति तथा तेज है तो :—

दण्डकारण्यनिलयं जहि राक्षसकण्टकम् ।
यदि राममित्रघ्नं न त्वमद्य वधिष्यसि ॥१३॥
तव चैवाग्रतः प्राणांस्त्यक्ष्यामि निरपत्रपा ।
मानुषौ तौ न शक्नोषि हन्तुं वै रामलक्ष्मणौ ॥१४॥
निःसत्त्वस्याल्प वीर्यस्य वासस्ते कीदृशस्त्विह ।
रामतेजोभिभूतो हि त्वं क्षिप्रं विनाशिष्यसि ॥१५॥

अर्थ—इस दण्डक वन में स्थान प्राप्त किये हुए इस राक्षसों के कांटे को निकाल, और यदि तू शत्रुओं के हनन करने वाले राम को अब नहीं मारेगा तो मैं जिसकी लज्जा जाचुकी है तेरे सन्मुख प्राण त्यागदूंगी, और यदि उन मानुष राम लक्ष्मण को मारने की तेरे में शक्ति नहीं है तो तपहीन, अल्पशक्ति वाले तेरा यहां वन में वास करना ठीक नहीं, क्योंकि राम के तेज से निस्तेज हुआ तू शीघ्र ही नाश को प्राप्त होजायगा ॥

सं०—अब राम पर सेनापति खर की चढ़ाई का वर्णन करते हैं:—

एवमाधर्षितः शूरः शूर्पणख्या खरस्ततः ।
उवाच रक्षसां मध्ये खरः खरतरं वचः ॥ १६ ॥
तवापमानप्रभवः क्रोधोऽयमतुलो मम ।
न शक्यते धारयितुं लवणाम्भ इवोल्बणम् ॥१७॥
न रामं गणये वीर्य्यान्मानुषं क्षीणजीवितम् ।
आत्मदुश्चरितैः प्राणान्हतो योऽद्य विमोक्ष्यते ॥१८॥

अर्थ—इस प्रकार शूर्पणखा से प्रेरित हुआ शूरवीर खर राक्षसों के मध्य में बैठा हुआ बड़े अभिमान सहित बोला कि तेरे अपमान से उत्पन्न हुआ मुझे अतुल क्रोध होरहा है जिसको मैं घाव पर छिड़के हुए लवणयुक्त जल की भांति नहीं सहार सक्ता, मैं अपने बल के सन्मुख राम को कुछ नहीं समझता, उसका जीवन नष्ट होचुका, वह अपने दुश्चरित्रों से मरा हुआ आज प्राणों से वियुक्त होजायगा ॥

बाष्पः संधार्यतामेष संभ्रमश्च विमुच्यताम् ।
अहं रामं सहभ्रात्रा नयामि यमसादनम् ॥ १९ ॥
परश्वधहतस्याद्य मन्दप्राणस्य भूतले ।
रामस्य रुधिरं रक्तमुष्णं पास्यसि राक्षसि ॥ २० ॥

संप्रहृष्टा वचः श्रुत्वा खरस्य वन्धानाच्च्युतम् ।
प्रशशंस पुनर्मौर्ख्याद् भ्रातरं रक्षसां वरम् ॥ २१ ॥

अर्थ—सो तू आंसुओं को रोककर घबराहट छोड़, मैं उस

के भाई सहित राम को आज ही यम के घर पहुंचाता हूं अर्थात् प्राणों से वियुक्त करता हूं, हे राक्षसि! मेरे परशु=कुल्हाड़े से मारे हुए राम का गर्म रुधिर आज तू भूतल में भलेप्रकार पान करेगी, खर के उक्त बचन सुनकर प्रसन्न हुई वह राक्षसी मूर्खता से राक्षसवर अपने भाई की पुनः प्रशंसा करने लगी ॥

तया परुषितः पूर्वं पुनरेव प्रशंसितः ।
अब्रवीद्दूषणं नाम खरं सेनापतिं तदा ॥ २२ ॥
उपस्थापय मे क्षिप्रं रथं सौम्य धनूंषि च ।
शरांश्चचित्रान् खड्गांश्चशक्तीश्चविविधा शिताः॥२३॥
अग्रे निर्यातुमिच्छामि पौलस्त्यानां महात्मनाम् ।
वधार्थं दुर्विनीतस्य रामस्य रणकोविद ॥ २४ ॥

अर्थ—पहले शूर्पणखा ने खर से कठोर कहा फिर प्रशंसा किया हुआ सेनापति खर अपने भाई दूषण से बोला कि हे सौम्य! मेरा रथ शीघ्र ला और धनुष, बाण, विचित्र तलवारें तथा विविध प्रकार की तीक्ष्ण बरछियें लाओ, हे रण में निपुण दूषण! मैं उस दुर्विनीत=दुष्ट राम के वधार्थ पुलस्त्यवंशी महात्माओं के आगे चलुंगा ॥

इति तस्य ब्रुवाणस्य सूर्यवर्णं महारथम् ।
सदश्वैः शबलैर्युक्तमाचचक्षेऽथ दूषणः ॥ २५ ॥
ध्वजनिस्त्रिंश सम्पन्नं किंकिणी वरभूषितम् ।
सदश्वयुक्तं सोऽमर्षादारुरोह खरस्तदा ॥ २६ ॥

ततस्तद्राक्षसं सैन्यं घोरचर्मायुधध्वजम् ।
निर्जगाम जनस्थानान्महानादं महाजवम् ॥२७॥

अर्थ–खर के उक्त प्रकार कथन करने पर दूषण ने विचित्र घोड़ों से युक्त सूर्य्य के तुल्य चमकता हुआ महारथ उपस्थित कर कहा कि रथ तैयार है, ध्वजा तथा तलवार सहित, किंकिणी= सुन्दर घंटियों से भूषित, उत्तम घोड़ों से युक्त रथ पर खर क्रोध के सहित आरूढ़ हुआ, और राक्षसों की बड़ी सेना भयंकर ढाल, तलवार तथा ध्वजाओं से युक्त गर्जती हुई बड़े वेग के साथ जनस्थान=खर के आश्रम से निकली ॥

इति चतुर्दशः सर्गः

अथ पंचदशः सर्गः

सं०–अब राम का युद्ध के लिये तैयार होना कथन करते हैं:–

तानुत्पातान्महाघोरान् रामो दृष्ट्वात्यमर्षणः ।
प्रजानामहितान्दृष्ट्वा वाक्यं लक्ष्मणमब्रवीत् ॥१॥

अर्थ–खर की सेना आदि उन महाघोर उत्पातों को देखकर अति रोष में आये हुए राम प्रजा का अहित देख लक्ष्मण से बोले कि :—

यादृशा इह कूजन्ति पक्षिणो वनचारिणः ।
अग्रतो नो भयं प्राप्तं संशयो जीवितस्य च ॥२॥

संप्रहारस्तु सुमहान्भविष्यति न संशयः ।
अयमाख्याति मे बाहुः स्फुरमाणो मुहुर्मुहुः ॥३॥
सन्निकर्षे तु नः शूर जयं शत्रोः पराजयम् ।
सुप्रभं च प्रसन्नं च तव वक्त्रं हि लक्ष्यते ॥ ४ ॥

अर्थ–जिस प्रकार यह वनचारी पक्षी बोल रहे हैं इनके बोलने से सन्देह होता है कि हमारे आगे बड़ा भय उपस्थित होगा जिससे जीवन का भी संशय प्रतीत होता है, बहुत भारी संप्रहार=युद्ध होगा, इसमें संशय नहीं, यह मेरी दाईं भुजा भी बार २ फर्कती हुई निकट ही हमारा जय और शत्रु का पराजय बतलाती है, और हे वीर ! तेरा मुख भी कान्तिवाला तथा प्रसन्न प्रतीत होता है ॥

उद्यतानां हि युद्धार्थं येषां भवति लक्ष्मण ।
निष्प्रभं वदनं तेषां भवत्यायुः परिक्षयः ॥ ५ ॥
रक्षसां नर्दतां घोषः श्रूयतेऽयं महाध्वनिः ।
आहतानां च भेरीणां राक्षसैः क्रूरकर्मभिः ॥ ६ ॥
अनागतविधानं तु कर्तव्यं शुभमिच्छता ।
आपदा शङ्कमानेन पुरुषेण विपश्चिता ॥ ७ ॥
तस्माद् गृहीत्वा वैदेहीं शरपाणिर्धनुर्धरः ।
गुहामाश्रय शैलस्य दुर्गां पादपसंकुलाम् ॥ ८ ॥

अर्थ–हे लक्ष्मण ! युद्ध के लिये उद्यत हुए जिनका मुख कान्तिहीन होजाता है उनकी आयु क्षीण होजाती है, गर्जते हुए

राक्षसों की ध्वनि तथा क्रूरकर्मा राक्षसों से ताड़न कीहुई भेरियों की महाध्वनि सुनाई देती है, आपदा=विपत्ति की शङ्का होने पर अपना शुभ चाहते हुए बुद्धिमान् को आने वाली विपद् का उपाय करना चाहिये, इसलिये उचित यह है कि तू हाथ में धनुषबाण पकड़ सीता को साथ लेकर वृक्षों से ढकी हुई पर्वत की दुर्गम कन्दरा में चलाजा अर्थात् तू सीता की रक्षा कर ॥

प्रतिकूलितुमिच्छामि न हि वाक्यमिदं त्वया ।
शापितो मम पदाभ्यां गम्यतां वत्स माचिरम् ॥९॥
त्वं हि शूरश्च बलवान्हन्या एतान्न संशयः ।
स्वयं निहन्तुमिच्छामि सर्वानेव निशाचरान् ॥१०॥
एवमुक्तस्तु रामेण लक्ष्मणः सह सीतया ।
शरानादाय चापं च गुहां दुर्गां समाश्रयत् ॥११॥

अर्थ—मैं नहीं चाहता कि तू मेरे उक्त कथन का प्रत्युत्तर देवे, हे वत्स ! शीघ्र जा विलम्ब न कर तुझे मेरे पाओं की शपथ है, इसमें सन्देह नहीं, तू शूरवीर तथा बलवान् होनें से इनका हनन कर सकता है परन्तु मैं स्वयं ही इन सम्पूर्ण राक्षसों को मारना चाहता हूं, राम की आज्ञानुसार लक्ष्मण धनुष बाण लेकर सीता सहित दुर्गम गुहा में चलागया ॥

तस्मिन् प्रविष्टे तु गुहां लक्ष्मणे सह सीतया ।
हन्त निर्युक्तमित्युक्त्वा रामः कवचमाविशत् ॥१२॥
स ते नाग्निनिकाशेन कवचेन विभूषितः ।
बभूव रामस्तिमिरे महानग्निरिवोत्थितः ॥१३॥

ततो देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च सहचारणैः ।
समेयुश्च महात्मानो युद्धदर्शनकांक्षया ॥१४॥

अर्थ–जब सीता सहित लक्ष्मण गुफा में चला गया तब "अहो ठीक हुआ" यह कह राम ने कवच पहना, उस अग्नितुल्य चमकती हुई कवच से सुशोभित राम अन्धकार में अग्नि की भांति बड़े तेजवाले प्रतीत होने लगे, तत्पश्चात् गन्धर्वों सहित देवता तथा चारणों सहित सिद्ध महात्मा युद्ध के देखने की अभिलाषा से वहां पर एकत्रित होगये ॥

ऋषयश्च महात्मानो लोके ब्रह्मर्षि सत्तमाः ।
समेत्य चोचुः सहितास्तेऽन्योन्यं पुण्यकर्मणः ॥१५॥
स्वस्ति गो ब्राह्मणानां च लोकानां चेतिसंस्थिताः ।
जयतां राघवो युद्धे पौलस्त्यान् रजनीचरान् ॥१६॥

अर्थ–और महात्मा ऋषि तथा लोक में पुण्यकर्मा ब्रह्मर्षि सब एकत्रित हो परस्पर कहने लगे कि गो ब्राह्मण तथा सब लोकों का स्वस्ति=कल्याण हो और युद्ध में राम पौलस्त्यवंशी राक्षसों पर विजय प्राप्त करें ॥

इति संभाष्यमाणे तु देवगन्धर्वचारणैः ।
अनीकं यातुधानानां समन्तात्प्रत्यपद्यत ॥१७॥
रामोऽपि चारयंश्चक्षुः सर्वतो रणपण्डितः ।
ददर्श खरसैन्यं तद्युद्धायाभिमुखो गतः ॥१८॥
वितत्य च धनुर्भीमं तूण्याश्चोद्धृत्य सायकान् ।
क्रोधमाहारयत्तीव्रं वधार्थं सर्वरक्षसाम् ॥१९॥

दुष्प्रेक्ष्यश्चाभवत् क्रुद्धो युगान्ताग्निरिवज्वलन् ।
तं दृष्ट्वा तेजसाविष्टं प्राव्यथन्वनदेवताः ॥२०॥

अर्थ–देव, गन्धर्व तथा चारणों के ऐसा कहते २ राक्षसों की सेना चारो ओर से आपहुंची, और रण में प्रवीण राम भी चारो ओर आंख उठाकर खर की सेना को देख युद्ध के लिये सन्मुख गया, और भयंकर धनुष खींच तरकस से तीर निकालकर क्रोधित हुआ सम्पूर्ण राक्षसों के वध के लिये सन्नद्ध होगया, दग्ध हुई प्रलयाग्नि की भांति क्रुद्ध हुआ राम दुष्प्रेक्ष्य=जिसकी ओर कोई आंख नहीं उठा सकता, ऐसे तेज से सम्पन्न राम को देखकर सब वन के देवता कांप उठे ॥

अवष्टब्धधनुं रामं क्रुद्धं तं रिपुघातिनम् ।
ददर्शाश्रममागम्य खरः सह पुरःसरैः ॥२१॥
ते रामे शरवर्षाणि व्यसृजन् रक्षसां गणाः ।
शैलेन्द्रमिव धाराभिर्वर्षमाणा महाघनाः ॥२२॥

अर्थ–उधर योद्धाओं का अग्रणी खर सेना सहित राम के आश्रम में आ पहुंचा और शत्रुओं के हनन करने वाले राम को धनुष थामे हुए क्रोधयुक्त देखकर वह राक्षसों के समुदाय सहित राम पर तीरों की इस प्रकार वर्षा करने लगा, जैसे महामेघ पर्वत पर वर्षा की धारें बरसाते हैं ॥

तानि मुक्तानि शस्त्राणि यातुधानैः स राघवः ।
प्रतिजग्राह विशिखैर्नद्योघानिव सागरः ॥ २३ ॥

स तैः प्रहरणैर्घोरैर्भिन्नगात्रो न विव्यथे ।
रामः प्रदीप्तैर्बहुभिर्वज्रैरिव महाचलः ॥ २४ ॥
स विद्धः क्षतजादिग्धः सर्वगात्रेषु राघवः ।
बभूव रामः सन्ध्याभ्रैर्दिवाकर इवावृतः ॥ २५ ॥

अर्थ—उन राक्षसों के फैंके हुए शस्त्रों को राम ने अपने तीरों से इस प्रकार ग्रहण किया, जैसे सागर नदियों के प्रवाह को ग्रहण करता है, राम उन घोर प्रहारों से क्षत=ज़खमी होकर भी देदीप्यमान वज्रों सहित पर्वत की भांति अचल रहे अर्थात् तनिक भी न हिले, शस्त्रों द्वारा विंधे हुए राम के सारे अङ्गों पर रुधिर की बूंदे पड़ने से वह सन्ध्या के बादलों से घिरे हुए सूर्य्य की भांति होगये ॥

ततो रामस्तु संक्रुद्धो मण्डलीकृतकार्मुकः ।
ससर्ज निशितान्बाणाञ्छतशोऽथ सहस्रशः ॥२६॥
दुरावारान्दुर्विषहान्कालपाशोपमान् रणे ।
आददू रक्षसां प्राणान्पाशाः कालकृता इव ॥२७॥
चिच्छिदुर्बिभिदुश्चैव रामबाणा गुणच्युताः ।
पदातीन् समरेहत्वा अनयद्यमसादनम् ॥२८॥

अर्थ—तब क्रुद्ध हुए राम ने बलपूर्वक धनुष को तानकर गोलाकार करके बहुत से तीव्र बाण खर की सेना पर छोड़े जो काल की पाश तुल्य होने से जिनको रण में न कोई रोक सका, न कोई सहसका और काल की पाशों के तुल्य ही उन्होंने राक्षसों

के प्राण हरलिये, गुणं=गोशे से निकले हुए बाणों द्वारा राम ने राक्षसों को छिन्न भिन्न करके प्यादों को युद्ध में हनन कर यम के द्वार पर पहुंचाया ॥

तत्सैन्यं विविधैर्बाणैरर्दितं मर्मभेदिभिः ।
न रामेण सुखं लेभे शुष्कं वनमिवाग्निना ॥२९॥
नाददानं शरान् घोरान् विमुञ्चन्तं शरोत्तमान् ।
विकर्षमाणं पश्यन्ति राक्षसास्ते शरार्दिताः ॥३०॥
युगपत्पतमानैश्च युगपच्च हतैर्भृशम् ।
युगपत्पतितश्चैव विकीर्णा वसुधाभवत् ॥३१॥

अर्थ—मर्म स्थानों के भेदन करने वाले विविध बाणों द्वारा राम से पीड़ित हुई सेना अग्नि से शुष्क काष्ठ की भांति भस्म होती हुई सुख को प्राप्त न हुई, बाणों से घबराये हुए राक्षस राम को न भयंकर बाण लेते और न छोड़ते दिखाई देते थे किन्तु धनुष को ही खींचता हुआ देखते थे, एक साथ गिरते हुए, एक साथ मरते हुए, बहुत से गिरे हुए राक्षसों से रणभूमि भरगई ॥

निहताः पतिताः क्षीणाश्छिन्नाभिन्ना विदारिताः ।
तत्र तत्र स्म दृश्यन्ते राक्षसास्ते सहस्रशः ॥ ३२ ॥
तान्दृष्ट्वा निहतान्सर्वे राक्षसाः परमातुराः ।
न तत्र चलितुं शक्ता रामं परपुरंजयम् ॥ ३३ ॥

अर्थ—मरे हुए, गिरे हुए, अन्तिम श्वास लेते हुए, कटे हुए, फटे हुए, विदीर्ण=घायल हुए, अनेक राक्षस जहां तहां दिखाई देते थे, उनको मरा हुआ देखकर शेष बचे हुए राक्षस अति

दुःखित होकर वहां शत्रुओं के दुर्गों को तोड़ने वाले राम के सन्मुख आने से अशक्त होगये ॥

दूषणस्तु स्वकं सैन्यं हन्यमानं विलोक्य च ।
शरैरशनि कल्पैस्तं राघवं समवारयत् ॥ ३४ ॥
ततो रामः सुसंक्रुद्धः क्षुरेणास्य महद्धनुः ।
चिच्छेद समरे वीरश्चतुर्भिश्चतुरो हयान् ॥ ३५ ॥
हत्वा चाश्वान् शरैस्तीक्ष्णैरर्धचन्द्रेण सारथेः ।
शिरो जहार तद्रक्षास्त्रिभिर्विव्याध वक्षसि ॥ ३६ ॥

अर्थ—इस प्रकार दूषण अपनी सेना का हनन हुआ देखकर विजुली तुल्य बाणों से उसने राम को घेर लिया, तब अधिक क्रोधित हुए वीर राम ने रण में क्षुर शस्त्र से दूषण के बड़े धनुष को काट दिया, और चार तीक्ष्ण बाणों से दूषण के चारो घोड़ों को मारकर अर्धचन्द्र शस्त्र से सारथि का सिर अलग करके तीन बाण उसकी छाती में मारे ॥

स च्छिन्नधन्वा विरथो हताश्वो हतसारथिः ।
जग्राह गिरिशृङ्गाभं परिघं लोमहर्षणम् ॥ ३७ ॥
तं महोरगसंकाशं प्रगृह्य परिघं रणे ।
दूषणोऽभ्यपतद्रामं क्रूरकर्मा निशाचरः ॥ ३८ ॥
तस्याभिपतमानस्य दूषणस्य च राघवः ।
द्वाभ्यां शराभ्यां चिच्छेद सहस्ताभरणौ भुजौ॥३९॥

अर्थ—धनुष के कटजाने, घोड़े तथा सारथि के मरजाने से

रथहीन हुए दूषण ने रोंगटे खड़े करने वाले बहुत बड़े परिघ अस्त्र को सम्भाला, बड़े नाग के तुल्य उस परिघ अस्त्र को पकड़कर क्रूरकर्मा राक्षस दूषण राम की ओर ज्योंही झपटा कि राम ने उसके हाथों के भूषणयुक्त दोनों भुजाओं को दो बाणों से काट डाला ॥

भृष्टस्तस्य महाकायः पपात रणमूर्धनि ।
परिघश्छिन्नहस्तस्य शक्रध्वज इवागतः ॥ ४० ॥
दृष्ट्वा तु पतितं भूमौ दूषणं निहतं रणे ।
साधु साध्विति काकुत्स्थं सर्वभूतान्य पूजयन्॥४१॥

अर्थ–और फिसलता हुआ उसका बड़ा देह रणभूमि में गिरपड़ा तथा कटा हुआ परिघ इन्द्रध्वज की भांति आगे जापड़ा, रण में भूमि पर गिरे दूषण को देखकर सब लोगों ने राम को पूज्य दृष्टि से देखा ॥

एतस्मिन्नन्तरे क्रुद्धास्त्रयः सेनाग्रयायिनः ।
संहत्याभ्यद्रवन रामं मृत्युपाशावपाशिताः ॥४२॥
महाकपालः स्थूलाक्षः प्रमाथी च महाबलः ।
महाकपालो विपुलं शूलमुद्यम्य राक्षसः ॥४३॥

अर्थ–इसी अवसर में क्रुद्ध हुए सेना के अग्रगामी तीन राक्षस मृत्यु की पाश में बन्धे हुए मिलकर राम की ओर दौड़े, महाकपाल, स्थूलाक्ष तथा महाबली प्रमाथी, इनमें से महाकपाल राक्षस बड़े शूल को उठाकर, और :—

स्थूलाक्षः पट्टिशं गृह्य प्रमाथी च परश्वधम् ।
दृष्ट्वैवापततस्तांस्तु राघवः सायकैः शितैः ॥४४॥

तीक्ष्णाग्रैः प्रतिजग्राह संप्राप्तानतिथीनिव ।
महाकपालस्य शिरश्चिच्छेद रघुनन्दनः ॥ ४५ ॥
असंख्येयैस्तु बाणौघैः प्रममाथ प्रमाथिनम् ।
स्थूलाक्षस्याक्षिणी स्थूले पूरयामास सायकैः ॥४६॥

अर्थ—स्थूलाक्ष पट्टिश लेकर और प्रमाथी परश्वध शस्त्र धारण करके राम की ओर चले, राम ने उनको आता देखकर तीक्ष्ण नोकों वाले बाणों से अतिथियों की भांति उनका सत्कार किया अर्थात् तुरन्त ही बहुत से बाणों द्वारा महाकपाल का शिर काट दिया, प्रमाथी के अङ्गों को चूर २ कर दिया और स्थूलाक्ष के बड़े २ नेत्रों को तीरों से भर दिया ॥

ततः पावकसंकाशैर्हेमवज्रविभूषितैः ।
जघान शेषं तेजस्वी तस्य सैन्यस्य सायकैः ॥४७॥
तैर्मुक्तकेशैः समरे पतितैः शोणितोक्षितैः ।
विस्तीर्णा वसुधा कृत्स्ना महावेदिः कुशैरिव ॥४८॥
तत्क्षणे तु महाघोरं वनं निहतराक्षसम् ।
बभूव निरयप्रख्यं मांसशोणित कर्दमम् ॥ ४९ ॥

अर्थ—तदनन्तर तेजस्वी राम ने सुवर्ण तथा वज्रभूषित अग्नि तुल्य तीरों द्वारा सेना के शेष रहे राक्षसों को मार डाला, उस संग्राम में गिरे हुए खुले बालों वाले रुधिर से लिपटे हुए राक्षस इस प्रकार भूमि पर बिछगये, जैसे महावेदी में कुशा बिछाई जाती हैं, उस समय वह घोर वन जिसमें राक्षस मरे पड़े थे मांस तथा रुधिर के कीचड़ से नरकतुल्य होगया ॥

चतुर्दश सहस्राणि रक्षसां भीमकर्मणाम् ।
हतान्येकेन रामेण मानुषेण पदातिना ॥५०॥

अर्थ—चौदह सहस्र भीमकर्मा=महाबली राक्षसों का एकाकी पैदल मानुष राम ने हनन किया॥

तस्य सैन्यस्य सर्वस्य खरः शेषो महारथः ।
राक्षसस्त्रिशिराश्चैव रामश्च रिपुसूदनः ॥ ५१ ॥
शेषा हता महावीर्या राक्षसा रणमूर्धनि ।
घोरा दुर्विषहाः सर्वे लक्ष्मणस्याग्रजेन ते ॥५२॥

अर्थ—उस सम्पूर्ण सेना में से शत्रुओं के हनन करने वाले राम, महारथी खर तथा राक्षस त्रिशिरा शेष रहे, और अन्य सब महाबली, घोरकर्मा, कठिनता से वध योग्य राक्षस लक्ष्मण के बड़े भाई राम द्वारा मारे गये ॥

इति पंचदशः सर्गः

अथ षोडशः सर्गः

सं०—अब त्रिशिरा राक्षस का वध कथन करते हैं:—

खरं तु रामाभिमुखं प्रयान्त वाहिनीपतिः ।
राक्षसस्त्रिशिरा नाम सन्निपत्येदमब्रवीत् ॥१॥

अर्थ—तत्पश्चात् राम के सन्मुख जाते हुए खर को देखकर सेनापति त्रिशिरा राक्षस रथ से उतरकर बोला कि :—

मां नियोजय विक्रान्तं त्वं निवर्तस्व साहसात्।
पश्य रामं महाबाहुं संयुगे विनिपातितम् ॥२॥
अहं वास्य रणे मृत्युरेष वा समरेमम ।
विनिवर्त्य रणोत्साहं मुहूर्तप्राश्निको भव ॥३॥
प्रहृष्टो वा हते रामं संयुगाय प्रयास्यसि ।
मयि वा निहते रामं जनस्थानं प्रयास्यसि ॥४॥

अर्थ—मुझ पराक्रमशाली को राम के साथ रण में नियुक्त करें और आप इस साहस से हटे रहें, फिर महाबाहु राम को युद्ध में गिरा हुआ देखें, मैं संग्राम में राम की मृत्यु होउंगा अथवा वह मेरी मृत्यु होगा, आप अपने रण के उत्साह को रोककर कुछ काल मध्यस्थ बने रहें, आप या तो राम के मरने पर प्रसन्न हुए जनस्थान को जावें अथवा मेरे मरने पर राम की ओर युद्ध करने के लिये गमन करें ॥

खरस्त्रिशिरसा तेन मृत्युलोभात्प्रसादितः ।
गच्छ युद्ध्येत्यनुज्ञातो राघवाभिमुखो ययौ ॥५॥
आगच्छन्तं त्रिशिरसं राक्षसं प्रेक्ष्य राघवः ।
धनुषा प्रतिजग्राह विधुन्वन्सायकाञ्शितान् ॥६॥
स संप्रहारस्तुमुलोरामत्रिशिरसोस्तदा ।
संबभूवातिबलिनोः सिंहकुञ्जरयोरिव ॥७॥

अर्थ—जब राम की मृत्यु के लोभ से त्रिशिरा ने खर को प्रसन्न करलिया तब उसने त्रिशिरा को युद्ध के लिये आज्ञा दी और वह आज्ञा प्राप्त कर राम के सन्मुख गया, तब सन्मुख आते

हुए त्रिशिरा राक्षस को देखकर राम ने धनुष उठा तीक्ष्ण बाणों से उसका सन्मान किया और फिर सिंह तथा हाथी की भांति अति बलवान् राम और त्रिशिरा का बड़ा प्रबल युद्ध हुआ॥

चतुर्भिस्तुरगानस्य शरैः सन्नतपर्वभिः ।
न्यपातयत तेजस्वी चतुरस्तस्य वाजिनः ॥८॥
अष्टभिः सायकैः सूतं रथोपस्थे न्यपातयत् ।
रामश्चिच्छेद बाणेन ध्वजं चास्य समुच्छ्रितम् ॥९॥
ततो हतरथात्तस्मादुत्पतन्तं निशाचरन् ।
चिच्छेद रामस्तं बाणैर्हृदये सोऽभवज्जडः ॥१०॥

अर्थ–तेजस्वी राम ने झुके हुए पर्वों वाले अर्थात् सर्प के फण की भांति झुकी हुई नोक वाले चार बाणों से त्रिशिरा के चार घोड़ों का हनन किया, आठ बाणों से सारथि को रथ पर गिरा दिया और एक बाण से उसकी ऊंची ध्वजा काटकर नीचे गिरादी, तत्पश्चात् टूटे हुए रथ से उछलकर उतरते हुए त्रिशिरा राक्षस के हृदय को राम ने बाणों से बींध दिया और वह जड़वत्=प्राणों से वियुक्त होगया ॥

सं०–अब खर और राम के युद्ध का वर्णन करते हैं :—

निहतं दूषणं दृष्ट्वा रणे त्रिशिरसा सह ।
आससाद खरो रामं नमुचिर्वासवं यथा ॥११॥
विकृष्य बलवच्चापं नाराचान्रक्त भोजनान् ।
खरश्चिक्षेप रामाय क्रुद्धानाशीविषानिव ॥१२॥

अर्थ—उस रण में दूषण सहित त्रिशिरा को मरा हुआ देख कर खर राम की ओर चला, जैसे नमुचि इन्द्र की ओर गया था, और बलपूर्वक धनुष खींच क्रोधित हुए खर ने नागों की न्याई रुधिर पीने वाले बाण राम की ओर छोड़े ॥

स सर्वांश्च दिशो बाणैः प्रदिशश्च महारथः ।
पूरयामास तं दृष्ट्वा रामोऽपि सुमहद्धनुः ॥१३॥
तद्बभूव शितैर्बाणैः खर राम विसर्जितैः ।
पर्याकाशमनाकाशं सर्वतः शरसंकुलम् ॥१४॥

अर्थ—और उस महारथी खर ने बाणों से सब दिशा और कोंण भरदिये, तब इस प्रकार खर को बाण छोड़ते देखकर राम ने भी अपने धनुष को सम्भाला, और खर तथा राम दोनों के दोनों ओर से छोड़े हुए तीक्ष्ण बाणों से आकाश विना अवकाश के होगया अर्थात् सम्पूर्ण आकाश बाणों से भरगया ॥

ततः सूर्य्यनिकाशेन रथेन महता खरः ।
आससादाथ तं रामं पतङ्ग इव पावकम् ॥ १५ ॥
ततोऽस्य सशरं चापं मुष्टिदेशे महात्मनः ।
खरश्चिच्छेद रामस्य दर्शयन् हस्त लाघवम् ॥१६॥
ततो गम्भीर निर्ह्रादं रामः शत्रुनिबर्हणः ।
चकारान्ताय स रिपोः सज्यमन्यन्महद्धनुः ॥१७॥

अर्थ—तत्पश्चात् सूर्य्य तुल्य बड़े रथ द्वारा खर तुरन्त ही राम के निकट आया, जैसे पतंग अग्नि पर गिरता है, और उसने हाथ की लाघवता से शीघ्र ही महात्मा राम के बाण सहित धनुष

को मुट्ठी की जगह से काट दिया, तब शत्रुओं के हनन करने वाले राम ने खर के नाशार्थ सिंहनाद करके तुरन्त ही दूसरा धनुष उठालिया ॥

सुमहद्वैष्णवं यत्तदतिसृष्टं महर्षिणा ।
वरं तद्धनुरुद्यम्य खरं समभिधावत ॥१८॥
ततः कनक पुंखैस्तु शरैः सन्नतपर्वभिः ।
चिच्छेद रामः संक्रुद्धः खरस्य समरेध्वजम् ॥१९॥

अर्थ—और राम उस बहुत बड़े श्रेष्ठ धनुष को जिसको महर्षि अगस्त्य ने दिया था उठाकर खर की ओर दौड़े और क्रुद्ध हुए राम ने सुवर्ण की नोक तथा तीक्ष्ण पर्वों वाले बाणों से युद्ध में खर के रथ की ध्वजा काट डाली ॥

रथस्य युगमेकेन चतुर्भिः शबलान्हयान् ।
षष्ठेन च शिरः संख्ये चिच्छेद खरसारथेः ॥ २० ॥
प्रभग्नधन्वा विरथो हताश्वो हतसारथिः ।
गदापाणिरवप्लुत्य तस्थौ भूमौ खरस्तदा ॥ २१ ॥

अर्थ—एक बाण से रथ का अग्रभाग=जुआ, चार बाणों से बलवान घोड़े और छठे बाण से खर के सारथि का सिर काट डाला, तब टूटे हुए धनुष तथा रथ वाला खर जिसका सारथि मारागया है वह हाथ में गदा पकड़ रथ से उछलकर भूमि पर जा खड़ा हुआ ॥

तत्कर्म रामस्य महारथस्य समेत्य देवाश्च

महर्षयश्च । अपूज्ययन्प्रांजलयः प्रहृष्टा-
स्तदाविमानाग्र गताः समेताः ॥ २२ ॥

अर्थ–तब महारथी राम का उक्त कर्म देखकर विमानों द्वारा तथा पैदल आये हुए देवता और महर्षिगण सब अति प्रसन्न हो हाथ जोड़कर राम को बधाई देने लगे ॥

इति षोडशः सर्गः

अथ सप्तदशः सर्गः

सं०–अब राम का खर को उपदेश तथा उसका वध कथन करते हैं :—

खरं तु विरथं रामो गदापाणिमवस्थितम् ।
मृदुपूर्व महातेजाः परुषं वाक्यमब्रवीत् ॥ १ ॥
उद्वेजनीयो भूतानां नृशंसः पापकर्मकृत् ।
त्रयाणामपि लोकानामीश्वरोऽपि न तिष्ठति ॥ २ ॥

अर्थ–रथ से हीन हुआ गदा हाथ में लेकर खड़े हुए खर से महातेजस्वी राम सुनने में कोमल पर वास्तव में अति कठोर वाक्य बोले कि जीवों को दुःख देने वाला दुर्जन, पापकर्म करने वाला पुरुष तीनो लोकों का स्वामी होने पर भी नहीं ठहरसक्ता ॥

कर्म लोकविरुद्धं तु कुर्वाणं क्षणदाचर ।
तीक्ष्णं सर्वजनो हन्ति सर्पं दुष्टमिवागतम् ॥ ३ ॥

वसतो दण्डकारण्ये तापसान्धर्मचारिणः ।
किं नु हत्वा महाभागान् फलं प्राप्स्यसि राक्षस ॥४॥
न चिरं पापकर्माणः क्रूरा लोक जुगुप्सिताः ।
ऐश्वर्य्यं प्राप्य तिष्ठन्ति शीर्ण मूला इव द्रुमाः ॥५॥

अर्थ—हे निशाचर ! लोकविरुद्ध कर्म करने वाले तीक्ष्ण=पापात्मा पुरुष को सन्मुख आये दुष्ट सर्प की न्याईं सभी मारते हैं, हे राक्षस ! दण्डकवन में रहने वाले महाभाग धार्मिक तपस्वियों को मारकर तू किस फल को प्राप्त होगा, पापकर्म करने वाला, लोक में निन्दनीय दुष्ट पुरुष पूर्व पुण्यों के प्रभाव से ऐश्वर्य्य को प्राप्त होने पर भी कटी हुई जड़ वाले वृक्ष की भांति चिरकाल तक नहीं ठहर सक्ता ॥

अवश्यं लभते कर्ता फलं पापस्य कर्मणः ।
घोरं पर्यागते काले द्रुमाः पुष्पमिवार्त्तवम् ॥ ६ ॥
न चिरात्प्राप्यते लोके पापानां कर्मणां फलम् ।
सविषाणामिवान्नानां भुक्तानां क्षणदाचरः ॥ ७ ॥

अर्थ—पाप करने वाला पुरुष समय आने पर उस पापकर्म के भयंकर फल को अवश्य प्राप्त होता है, जैसे वृक्ष अर्त्तव=मौसिमी फूल को पाता है, हे निशाचर ! विष मिले हुए अन्न खाने वाले की भांति पापकर्मों का फल लोक में शीघ्र ही मिलजाता है ॥

पापमाचरतां घोरं लोकस्याप्रियमिच्छताम् ।
अहमासादितो राजा प्राणान् हन्तुं निशाचर ॥८॥

ये त्वया दण्डकारण्ये भक्षिता धर्मचारिणः ।
तानद्य निहतः संख्ये ससैन्योऽनुगमिष्यसि ॥९॥
एवमुक्तस्तु रामेण क्रुद्धः संरक्तलोचनः ।
प्रत्युवाच ततो रामं प्रहसन्क्रोधमूर्च्छितः ॥ १० ॥

अर्थ—भयङ्कर पाप करने वाले तथा लोक का अहित चाहने वाले पुरुषों के प्राणों को हनन करने के लिये मैं राजा बनकर आया हूं, इस दण्डकारण्य में जो तैने धर्मचारी भक्षण किये हैं आज युद्ध में मरा हुआ तू सेनासमेत उनके पीछे जायगा, राम के उक्त बचन सुनकर क्रोध से खर के नेत्र लाल होगये और क्रोध से मूर्च्छित हुआ हंसकर राम से बोला कि :—

प्राकृतान् राक्षसान् हत्वा युद्धे दशरथात्मज ।
आत्मना कथमात्मानमप्रशस्यं प्रशंससि ॥ ११ ॥
विक्रान्ता बलवन्तो वा ये भवन्ति नरर्षभः ।
कथयन्ति न ते किंचित्तेजसा चातिगर्विताः ॥१२॥
सर्वथा तु लघुत्वं ते कत्थनेन विदर्शितम् ।
सुवर्ण प्रतिरूपेण तप्तेनेव कुशाग्निना ॥ १३ ॥

अर्थ—हे दशरथ के पुत्र ! प्राकृत=साधारण राक्षसों को युद्ध में मारकर तू कैसे आपही अपनी प्रशंसा करता है तू प्रशंसा के योग्य नहीं, पराक्रम तथा बलवाले और तेज से अभिमानी पुरुष अपनी श्लाघा=बड़ाई स्वयं नहीं किया करते, तैने सर्वथा अपनी श्लाघा करके अपना लघुत्व=हलकापन दिखलाया है, जैसे नकली सोना अग्नि से तपकर अपना लघुत्व दिखलाता है ॥

न तु मामिह तिष्ठन्तं पश्यसि त्वं गदाधरम् ।
पर्याप्तोऽहं गदापाणिर्हन्तुं प्राणान रणे तव ॥१४॥
कामं बह्वपि वक्तव्यं त्वयि वक्ष्यामि नत्वहम् ।
अस्तं प्राप्नोति सविता युद्ध विघ्नस्ततो भवेत् ॥१५॥

अर्थ—क्या तू मुझे हाथ में गदा लेकर खड़ा हुआ नहीं देखता, मैं गदा लेकर अकेला ही तेरे प्राण हनन करने को समर्थ हूं, हां मैंने बहुत कुछ कहना है पर मैं तुझसे इस समय कहना नहीं चाहता, क्योंकि सूर्य्य के अस्त होने पर युद्ध में विघ्न होगा ॥

इत्युक्त्वा परमक्रुद्धः स गदां परमांगदाम् ।
खरश्चिक्षेप रामाय प्रदीप्तमशनिं यथा ॥१६॥
तामापतन्तीं महतीं मृत्युपाशोपमांगदाम् ।
अन्तरिक्षगतां रामश्चिच्छेद बहुधा शरैः ॥१७॥

अर्थ—यह कहकर अति क्रोधित हो खर ने उत्तम बन्द से बंधी हुई गदा जलती हुई बिजुली की भांति राम की ओर फैंकी, तब मृत्यु की पाश तुल्य आती हुई उस बड़ी गदा के राम ने अन्त-रिक्ष में ही कई तीरों से टुकड़े २ करदिये ॥

जातस्वेदस्ततो रामो रोषरक्तान्तलोचनः ।
निर्बिभेद सहस्रेण बाणानां समरे खरम् ॥१८॥
विकलः स कृतो बाणैः खरो रामेण संयुग ।
मत्तौ रुधिरगन्धेन तमेवाभ्यद्रवद्द्रुतम् ॥१९॥

अर्थ—तदनन्तर राम क्रोधित हुए पसीना २ होगये तथा

क्रोध से उनके नेत्र लाल होगये, फिर उसी समय रण में अनेक बाणों से खर को बींध दिया, युद्ध में राम के बाणों से खर विकल होकर रुधिर के गन्ध से मत्त हुआ बड़े वेग से राम की ओर दौड़ा ॥

तमापतन्तं संक्रुद्धं कृतास्त्रो रुधिराप्लुतम् ।
अपासर्पद्द्वित्रिपदं किंचित्त्वरितविक्रमः ॥२०॥
ततः पावकसंकाशं वधाय समरे शरम् ।
खरस्य रामो जग्राह ब्रह्मदण्डमिवापरम् ॥२१॥

अर्थ—तब क्रोध से भरे हुए तथा रुधिर से लिपटे हुए खर को अपने ऊपर पड़ता हुआ देखकर अस्त्रों में निपुण राम शीघ्र ही पांव उठाकर दो तीन पाद पीछे हटगये, और फिर युद्ध में खर का बध करने के लिये राम ने ब्रह्मदण्ड तथा अग्नि के तुल्य एक और बाण लिया ॥

स तद्दत्तं मघवता सुरराजेन धीमता ।
सन्दधे च स धर्मात्मा मुमोच च खरं प्रति ॥२२॥
स विमुक्तो महाबाणो निर्घातसमनिःस्वनः ।
रामेण धनुरायम्य खरस्योरसि चापतत् ॥२३॥
स पपात खरो भूमौ दह्यमानः शराग्निना ।
रुद्रेणेव विनिर्दग्ध श्वेतारण्ये यथान्धकः ॥२४॥
एतस्मिन्नन्तरे देवाश्चरणैः सह संगताः ।
दुन्दुभींश्चाभिनिघ्नन्तः पुष्पवर्षं समन्ततः ॥२५॥

अर्थ—जो देवताओं के स्वामी बुद्धिमान् इन्द्र ने अगस्त्य मुनि द्वारा दिया था, धर्मात्मा राम ने उस वाण को धनुष में जोड़कर खर के प्रति छोड़ा, धनुष को खींचकर राम से छूटा हुआ वह महावाण पर्वत फटने के तुल्य ध्वनी करता हुआ खर की छाती में जाकर ऐसा लगा कि खर वाण की अग्नि से दग्ध होकर भूमि पर गिरपड़ा, जैसे श्वेतारण्य में रुद्र से दग्ध हुआ अन्धकासुर गिरा था, खर के गिरने पर चारणों सहित देवताओं ने दुन्दुभी बजाई और प्रसन्न होकर चारो ओर से राम पर फूलों की वर्षा की ॥

ततो राजर्षयः सर्वे संगताः परमर्षयः ।
सभाज्य मुदिता रामं सागस्त्या इदमब्रुवन् ॥२६॥
तदिदं नः कृतं कार्यं त्वया दशरथात्मज ।
स्वधर्मं प्रचरिष्यन्ति दण्डकेषु महर्षयः ॥२७॥

अर्थ—तदनन्तर अगस्त्यमुनि सहित राजऋषि तथा परमऋषि सब बड़े प्रसन्न हुए और राम का सन्मान करके यह वचन बोले कि हे दशरथ सुत ! यह आपने हमारा बड़ा कार्य्य किया है, अब सब महर्षि निर्विघ्न दण्डक वन में धर्माचरण करेंगे ॥

एतस्मिन्नन्तरे वीरो लक्ष्मणः सह सीतया ।
गिरिदुर्गाद्विनिष्क्रम्य संविवेशाश्रमेसुखी ॥२८॥
ततो रामस्तु विजयी पूज्यमानो महर्षिभिः ।
प्रविवेशाश्रमं वीरो लक्ष्मणेनाभिपूजितः ॥२९॥

अर्थ–इसी अन्तर में सीता सहित वीर लक्ष्मण पर्वत के दुर्ग से निकलकर आनन्दपूर्वक आश्रम में प्रविष्ट हुए, तत्पश्चात् महर्षियों से पूज्यमान्, विजयी राम लक्ष्मण से पूजित हुए आश्रम में आये ॥

तं दृष्ट्वा शत्रुहन्तारं महर्षीणां सुखावहम् ।
बभूव हृष्टा वैदेही भर्त्तारं परिषस्वजे ॥३०॥
मुदा परमया युक्ता दृष्ट्वा रक्षो गणान् हतान् ।
रामं चैवाव्ययं दृष्ट्वा तुतोष जनकात्मजा ॥३१॥

अर्थ–शत्रुओं का हनन करके महर्षियों को सुख प्राप्त कराने वाले अपने भर्ता राम को देख वैदेही ने अतिप्रसन्न होकर उनका आलिङ्गन किया, और परम मोद से युक्त हुई जानकी राक्षसों को मरा हुआ और राम को क्षत से रहित देखकर अतिप्रसन्न हो आनन्द मनाने लगी ॥

इति सप्तदशः सर्गः

अथ अष्टादशः सर्गः

सं०–अब शूर्पणखा का रावण के निकट जाना और उसको उत्तेजित करना कथन करते हैं :—

ततः शूर्पणखा दृष्ट्वा सहस्राणिचतुर्दश ।
हतान्येकेन रामेण रक्षसां भीमकर्मणाम् ॥ १ ॥

दूषणं च खरं चैव हतं त्रिशिरसं रणे ।
जगाम परमोद्विग्ना लङ्कां रावणपालिताम् ॥ २ ॥

अर्थ–तदनन्तर शूर्पणखा भयङ्कर कर्मों वाले चौदहसहस्र राक्षस और त्रिशिरा, दूषण तथा खर को एकाकी राम से युद्ध में मरा हुआ देखकर असन्त भयभीत हुई रावण से पालित लङ्का को गई ॥

स ददर्श विमानाग्रे रावणं दीप्ततेजसम् ।
उपोपविष्टं सचिवैर्मरुद्भिरिव वासवम् ॥ ३ ॥
आसीनं सूर्यसंकाशे काञ्चने परमासने ।
रुक्मवेदिगतं प्राज्यं ज्वलन्तमिव पावकम् ॥ ४ ॥
विशालवक्षसं वीरं राजलक्षण लक्षितम् ।
सुभुजं शुक्लदशनं महास्यं पर्वतोपमम् ॥ ५ ॥

अर्थ–और वहां पहुंचकर ऊंचे महल के ऊपर तेजस्वी रावण को देखा जिसके आस पास देवता इन्द्र के समान मन्त्री लोग बैठे हुए थे, सूर्य्य की भांति देदीप्यमान सुवर्ण के परमासन पर इस प्रकार बैठा हुआ था, जैसे सुवर्ण की वेदि में प्रचुर घृत से प्रज्वलित अग्नि देदीप्यमान होती है, विशाल छाती वाला, वीर, राज लक्षणों से युक्त, सुन्दर भुजाओं वाला, श्वेत दांतों वाला, बड़े मुख वाला और पर्वत के तुल्य आकार वाला ॥

अक्षोभ्याणां समुद्राणां क्षोभणे क्षिप्रकारिणम् ।
क्षेप्तारं पर्वताग्राणां सुराणां च प्रमर्दनम् ॥ ६ ॥

पुरीं भोगवतीं गत्वा पराजित्य च वासुकिम् ।
तक्षकस्य प्रियां भार्यां पराजित्य जहार यः ॥ ७ ॥

अर्थ–और जिसने गम्भीर समुद्रों को हिलचल में डाला हुआ है, जो बड़े साहसपूर्वक शीघ्र ही कार्य्य सिद्ध करने वाला, जो पर्वत की चोटियों को फैंकसक्ता तथा जिसने देवताओं को मर्दन किया हुआ है, और जो भोगवतीपुरी में जाकर वासुकि को जीत तक्षक की प्यारी पत्नी को हर लाया है ॥

कैलासंपर्वतं गत्वा विजित्य नरवाहनम् ।
विमानं पुष्पकं तस्य कामगं वै जहार यः ॥ ८ ॥
वनं चैत्ररथं दिव्यं नलिनीं नन्दनं वनम् ।
विनाशयति यः क्रोधाद्देवोद्यानानि वीर्यवान् ॥९॥

अर्थ–और जिसने कैलासपर्वत पर जाकर कुबेर को जीत अपनी इच्छानुसार चलने वाला पुष्पक विमान छीना हुआ है, और जिसने दिव्य चैत्ररथ, लनिली नन्दन वन तथा देवों की फुलवाड़ियों को क्रोध से नाश करदिया है ॥

राक्षसी भ्रातरं क्रूरं सा ददर्श महाबलम् ।
तं दिव्यवस्त्राभरणं दिव्यमाल्योपशोभितम् ॥१०॥
उपगम्याब्रवीद्वाक्यं राक्षसी भयविह्वला ।
रावणं शत्रुहन्तारं मन्त्रिभिः परिवारितम् ॥ ११ ॥

अर्थ–ऐसे अपने महाबली भयङ्कर भाई रावण को दिव्य वस्त्र पहिने हुए तथा दिव्य मालाओं से शोभायमान उस शूर्पणखा राक्षसी ने देखा और भयभीत हुई मन्त्रियों के मध्य बैठे हुए शत्रुओं के हनन करने वाले रावण के समीप जाकर बोली कि:—

प्रमत्तः कामभोगेषु स्वैरवृत्तो निरंकुशः ।
समुत्पन्नं भयं घोरं बोद्धव्यं नावबुध्यसे ॥ १२ ॥
सक्तं ग्राम्येषु भोगेषु कामवृत्तं महीपतिम् ।
लुब्धं न बहुमन्यं ते श्मशानाग्निमिव प्रजाः ॥१३॥

अर्थ–विषय भोगों में उन्मत्त, स्वेच्छाचारी तथा निरङ्कुश हुआ तू उत्पन्न हुए घोर भय को नहीं जानता जिसका जानना तेरे लिये आवश्यक था, जो राजा सुन्दर भोजन, स्त्रियों के ग्राम्यसुखों में लीन, स्वेच्छाचारी तथा लोभी होता है उसको प्रजा बहुत नहीं मानती, जैसे लोग श्मशान की अग्नि को अपवित्र समझकर ग्रहण नहीं करते ॥

स्वयं कार्याणि यः काले नानुतिष्ठति पार्थिवः ।
स तु वै सह राज्येन तैश्च कार्यैर्विनश्यति ॥१४॥
ये न रक्षन्ति विषयमस्वाधीनं नराधिपाः ।
ते न बुद्ध्या प्रकाशन्ते गिरयः सागरे यथा ॥१५॥

अर्थ–जो राजा स्वयं ठीक समय पर अपने कार्यों का अनुष्ठान नहीं करता वह राज्य और उन कार्यों सहित नाश को प्राप्त होजाता है, जो राजा देश को अपने अधीन न रखकर उसकी रक्षा नहीं करते वह अपनी बुद्धि से प्रकाशित नहीं होते, जैसे समुद्र में पर्वत नहीं दीखते ॥

येषां चाराश्च कोशश्च नयश्च जयतां वर ।
अस्वाधीना नरेन्द्राणां प्राकृतैस्ते जनैः समाः ॥१६॥

यस्मात्पश्यन्ति दूरस्थान्सर्वानर्थान्नराधिपाः ।
चारेण तस्मादुच्यन्ते राजानो दीर्घचक्षुषः ॥१७॥
अयुक्तचारं मन्ये त्वां प्रकृतैः सचिवैर्युतः ।
स्वजनं च यतः स्थानं निहतं नावबुध्यसे ॥ १८ ॥

अर्थ–हे जीतने वालों में श्रेष्ठ ! जिन राजाओं के गुप्तचर, कोश तथा नीति अपने अधीन नहीं वह साधारण मनुष्यों के समान हैं, जो राजा गुप्तचरों द्वारा दूरस्थ सम्पूर्ण बातों का ज्ञान रखते हैं वह दीर्घचक्षु=लम्बी आंखों वाले कहलाते हैं, परन्तु ज्ञात होता है कि आपके समीपस्थ सब मन्त्रीगण साधारण बुद्धिवाले हैं जो आपने गुप्तचर इधर उधर नहीं भेजे और इसीलिये आपको ज्ञात नहीं कि आपके सम्बन्धीजन मारे गये हैं ॥

चतुर्दश सहस्राणि रक्षसां भीमकर्मणाम् ।
हतान्येकेन रामेण खरश्च सहदूषणः ॥१९॥
ऋषीणामभयं दत्तं कृतक्षेमाश्चदण्डकाः ।
धर्षितं च जनस्थानं रामेणाक्लिष्टकारिणा ॥२०॥
त्वं तु लुब्धः प्रमत्तश्च पराधीनश्च राक्षस ।
विषये स्वे समुत्पन्नं यद्भयं नावबुध्यसे ॥२१॥

अर्थ–भयंकर कर्मों वाले चौदह सहस्र राक्षस और दूषण सहित खर को अकेले राम ने मार दिया है, शान्तिपूर्वक काम करने वाले राम ने ऋषियों को अभय देकर दण्डकवन में कल्याण=अमन करदिया है और हमारा जनस्थान बड़े भय को प्राप्त है, सो हे राक्षस ! आप लालच में पड़े हुए, प्रमाद में आये हुए ऐसे

पराधीन होरहे हैं कि अपने देश में उत्पन्न हुए भय को भी नहीं जानते ॥

तीक्ष्णमल्पप्रदातारं प्रमत्तंगर्वितं शठम् ।
व्यसने सर्वभूतानि नाभिधावन्ति पार्थिवम् ॥२२॥
अतिमानिनमग्राह्यमात्मसंभावितं नरम् ।
क्रोधनं व्यसने हन्ति स्वजनोऽपि नराधिपम् ॥२३॥

अर्थ–तीक्ष्णस्वभाव वाला, थोड़ा देनेवाला, प्रमादी, गर्व करने वाला और मूर्ख राजा को व्यसन उपस्थित होने पर सब प्राणी छोड़ देते हैं, और अतिमानी, अग्राह्य, आत्मप्रशंसी तथा क्रोध करने वाले राजा को विपत्तिकाल में स्वजन भी मार डालते हैं ॥

नानुतिष्ठति कार्याणि भयेषु न बिभेति च ।
क्षिप्रं राज्याच्च्युतो दीनस्तृणैस्तुल्यो भवेदिह ॥२३॥
शुष्ककाष्ठैर्भवेत्कार्यं लोष्ठैरपि च पांसुभिः ।
न तु स्थानात्परिभ्रष्टैः कार्यं स्याद्वसुधाधिपैः ॥२४॥
उपभुक्तं यथा वासः स्रजो वा मृदिता यथा ।
एवं राज्यात्परिभ्रष्टः समर्थोऽपि निरर्थकः ॥२५॥

अर्थ–जो राजा अपने कर्तव्यों को पूर्ण नहीं करता और न भय से डरता है वह शीघ्र ही राज्य से च्युत होकर हीन हुआ तृणों के तुल्य होजाता है, लोगों को शुष्क काष्ठ तथा मिट्टी धूल से भी काम होता है, परन्तु स्थानभ्रष्ट राजाओं से कोई काम नहीं होता, जिसप्रकार भोगा हुआ वस्त्र तथा मर्दन

कीहुई पुष्पमाला व्यर्थ होती है इसी प्रकार राज्य से भ्रष्ट हुआ राजा समर्थ होने पर भी निरर्थक होता है ॥

अप्रमत्तश्च यो राजा सर्वज्ञो विजितेन्द्रियः ।
कृतज्ञो धर्मशीलश्च स राजा तिष्ठते चिरम् ॥२६॥
नयनाभ्यां प्रसुप्तो वा जागर्ति नयचक्षुषा ।
व्यक्तक्रोधप्रसादश्च स राजा पूज्यते जनैः ॥२७॥
त्वं तु रावण दुर्बुद्धिर्गुणैरेतैर्विवर्जितः ।
यस्य तेऽविदितश्चारै रक्षसां सुमहान् वधः ॥२८॥

अर्थ—जो राजा प्रमाद रहित, सब ओर की जानने वाला, जितेन्द्रिय, कृतज्ञ और धर्मशील होता है वह चिरकालतक स्थित रहता है, जो नेत्रों से सोया हुआ भी नीतिरूप आंखों से जागता है और जिसकी प्रसन्नता तथा क्रोध फल वाला है वह राजा सब लोगों से पूजा जाता है, परन्तु हे रावण! तू इन गुणों से रहित बुद्धिहीन है जो तुझको राक्षसों का बहुत बड़ा बध गुप्तचरों द्वारा विदित नहीं हुआ ॥

इति अष्टादशः सर्गः

अथ एकोनविंशः सर्गः

सं०—अब रावण का शूर्पणखा से सब वृतान्त पूछना कथन करते हैं :—

ततः शूर्पणखां दृष्ट्वा ब्रुवतीं परुषं वचः।
अमात्यमध्ये संक्रुद्धः परिपप्रच्छ रावणः ॥१॥
कश्च रामःकथंवीर्यः किं रूपः किं पराक्रमः।
किमर्थं दण्डकारण्यं प्रविष्टश्च सुदुस्तरम् ॥२॥
आयुधं किं च रामस्य येन ते राक्षसा हताः।
खरश्च निहतःसंख्ये दूषणस्त्रिशिरास्तथा ॥ ३ ॥
तत्त्वं ब्रूहि मनोज्ञांगि केन त्वं च विरूपिता।
इत्युक्ता राक्षसेन्द्रेण राक्षसी क्रोधमूर्च्छिता ॥४॥

अर्थ–तदनन्तर कठोर वचन बोलती हुई शूर्पणखा को देख मन्त्रियों के बीच बैठा हुआ रावण क्रोधयुक्त होकर पूछने लगा कि वह कौन राम है ? उसका कैसा बल, कैसा रूप तथा कैसा पराक्रम है ? और किस प्रयोजन से उस बड़े भयंकर वन में आया है ? राम का वह ऐसा क्या अस्त्र है जिससे उसने युद्ध में इतने राक्षस और खर,त्रिशिरा तथा दूषण का हनन करादिया है और हे सुन्दराङ्गि ! तुझे ऐसा किसने विरूप किया है ? तू सम्पूर्ण वृतान्त ठीक २ कह, राक्षसेन्द्र=रावण से यह सुनकर क्रोध से मूर्च्छित हुई राक्षसी राम को ठीक २ बतलाने लगी कि:—

ततो रामं यथान्यायमाख्यातुमुपचक्रमे।
दीर्घबाहुर्विशालाक्षश्चीरकृष्णाजिनाम्बरः ॥५॥
कंदर्पसमरूपश्च रामो दशरथात्मजः।
नाददानं शरान्घोरान्विमुञ्चन्तं महाबलम् ॥ ६ ॥

न कार्मुकं विकर्षन्तं रामं पश्यामि संयुगे ।
हन्यमानं तु तत्सैन्यं पश्यामि शरवृष्टिभिः ॥७॥

अर्थ–लम्बी भुजाओं वाला, विशाल नेत्रों वाला, चीर तथा काले मृग की छाल पहने हुए, काम के तुल्य रूपवाला राम दशरथ का पुत्र है, मैं महाबली राम को संग्राम में भयंकर बाण पकड़ता, छोड़ता तथा धनुष को चढ़ाता हुआ न देखती हुई बाणों की वर्षा से सेना का हनन होता हुआ देखती थी ॥

भ्राता चास्य महातेजा गुणतस्तुल्यविक्रमः ।
अनुरक्तश्च भक्तश्च लक्ष्मणो नाम वीर्यवान् ॥८॥
रामस्य तु विशालाक्षी पूर्णेन्दुसदृशानना ।
धर्मपत्नी प्रिया नित्यं भर्तुः प्रियहितेरता ॥९॥

अर्थ–और लक्ष्मण नामक उसका भाई महातेजस्वी गुणों में समान, पराक्रम वाला, राम में अनुरक्त, उनका भक्त तथा शक्तिसम्पन्न है, और राम की प्यारी धर्मपत्नी विशाल नेत्रों वाली, पूर्णचन्द्र समान मुखवाली, सदा अपने भर्ता के प्रिय हित में रत है ॥

तप्तकाञ्चनवर्णाभा रक्ततुंगनखी शुभा ।
सीता नाम वरारोहा वैदेही तनुमध्यमा ॥१०॥
नैव देवी न गन्धर्वी न यक्षी नच किन्नरी ।
तथा रूपा मया नारी दृष्टपूर्वा महीतले ॥ ११ ॥

अर्थ–और तप्त हुए सुवर्ण के रंग समान प्रभा वाली, ऊंचे लाल नखों वाली, उत्तम पतली कमर वाली सीता नामक विदेह राजा की

कन्या है, ऐसी रूपवती नारी मैंने पृथिवी तल पर नहीं देखी, न कभी कोई देवी, न गन्धर्वी,न यक्षी और न कोई किन्नरी देखी है॥

सा सुशीला वपुःश्लाघ्या रूपेणाप्रतीमा भुवि।
ततोऽनुरूपा भार्या सा त्वं च तस्याः पतिर्वरः॥१२॥
भार्यार्थे तु तवानेतुमुद्यताहं वराननाम्।
विरूपितास्मि क्रूरेण लक्ष्मणेन महाभुज॥१३॥

अर्थ—वह सुशीला, शरीर से सराहनीय, रूप में पृथिवी पर अप्रतिम=जिसके समान कोई नहीं, वह तेरी पत्नी और तू उसके समान पति होने योग्य है, हे महाभुज! जब मैं उस सुन्दरी को तेरी पत्नी बनाने के लिये लाने को उद्यत हुई तब क्रूर लक्ष्मण ने मुझे कुरूप कर दिया है॥

इति एकोनविंशः सर्गः

अथ विंशः सर्गः

सं०—अब रावण का मारीच के निकट जाना और उससे सहायता मांगना कथन करते हैं :—

ततः शूर्पणखा वाक्यं तच्छ्रुत्वा रोमहर्षणम्।
सचिवानभ्यनुज्ञाय कार्यं बुद्ध्वा जगाम ह॥१॥
यानशालां ततो गत्वा प्रच्छन्नं राक्षसाधिपः।
सूतं संचोदयामास रथः संयुज्यतामिति॥२॥

एवमुक्तः क्षणे नैव सारथिर्लघु विक्रमः ।
रथं संयोजयामास तस्याभिमतमुत्तमम् ॥ ३ ॥

अर्थ–तत्पश्चात् रावण रोंगटे खड़े करने वाले शूर्पणखा के वाक्य सुन अपना कर्तव्य विचार, मन्त्रियों को आज्ञा देकर वहां से चल पड़ा, और चुपचाप यानशाला में जाकर सारथि को कहा कि शीघ्र ही रथ तैयार कर, रावण की आज्ञा पाते ही सारथि ने तत्काल ही उनके अभिमत उत्तम रथ जोड़कर तैयार करदिया ॥

कामगं रथमास्थाय काञ्चनं रत्नभूषितम् ।
राक्षसाधिपतिः श्रीमान्ययौ नदनदीपतिम् ॥ ४ ॥
तं तु गत्वा परं पारं समुद्रस्य नदीपतेः ।
ददर्शाश्रममेकान्ते पुण्ये रम्ये वनान्तरे ॥ ५ ॥
तत्र कृष्णाजिनधरं जटामण्डल धारिणम् ।
ददर्श नियताहारं मारीचं नाम राक्षसम् ॥ ६ ॥
स रावणः समागम्य विधिवत्तेन रक्षसा ।
ततः पश्चादिदं वाक्यमब्रवीद्वाक्यकोविदः ॥ ७ ॥

अर्थ–तब अपनी इच्छा से चलने वाले रत्नों से भूषित सुनहरी रथ पर चढ़कर श्रीमान् राक्षसाधिपति रावण नद तथा नदियों के पति समुद्र की ओर गया, और समुद्र से पार होकर वन के मध्य एकान्त पवित्र रमणीय देश में उसने एक आश्रम देखा, जिसमें काला मृगान पहने हुए, जटामण्डलधारी, नियत

आहार करने वाला मारीच नाम राक्षस को देख उससे यथाविधि मिलकर पश्चात् वाक्य के जानने वाला रावण मारीच से बोला कि :—

मारीच श्रूयतां तात वचनं मम भाषतः ।
आर्तोऽस्मि मम चार्तस्य भवान् हि परमागतिः ॥८॥
चतुर्दश सहस्राणि रक्षसामुग्रतेजसाम् ।
निहतानि शरैर्दीप्तैर्मानुषेण पदातिना ॥ ९ ॥
खरश्च निहतः संख्ये दूषणश्च निपातितः ।
हत्वा त्रिशिरसं चापि निर्भया दण्डकाः कृताः॥१०॥

अर्थ–हे तात ! तू मेरे वचन को सुन, मैं इस समय बड़ा दुःखी हूं और मुझ आर्त का आप एकमात्र सहारा हैं, हे तात ! उग्र तेजवाले चौदहसहस्र राक्षस एक पैदल मनुष्य ने अपने जलते हुए तीरों से मार डाले हैं, और उसने युद्ध में खर, दूषण तथा त्रिशिरा को भी मारकर दण्डकवन से हमारा भय मिटा दिया है ॥

पित्रा निरस्तः क्रुद्धेन सभार्यः क्षीणजीवितः ।
स हन्ता तस्य सैन्यस्य रामः क्षत्रियपांसनः ॥११॥
अशीलः कर्कशस्तीक्ष्णो मूर्खो लुब्धोऽजितेन्द्रियः ।
त्यक्तधर्मात्वधर्मात्मा भूतानामहिते रतः ॥ १२ ॥
येन वैरं विनारण्ये सत्त्वमास्थाय केवलम् ।
कर्णनासापहारेण भगिनी मे विरूपिता ॥ १३ ॥

अस्य भार्यां जनस्थानात्सीतां सुरसुतोपमाम् ।
आनयिष्यामि विक्रम्य सहायस्तत्र मे भव ॥१४॥

अर्थ—जो क्रुद्ध हुए पिता द्वारा पत्नी सहित घर से निकाला हुआ, क्षीण हुए जीवन वाला और क्षत्रियों को कलङ्क लगाने वाला राम उस सेना का हनन करने वाला है, वह मर्यादा का त्याग करने वाला, क्रूरस्वभाव, बड़ा तीक्ष्ण, मूर्ख, लोभी, अजितेन्द्रिय, धर्म का त्याग किये हुए अधर्मात्मा और सब भूतों के अहित में रत है, जिसने बिना वैर केवल बल के सहारे कान नाक काटकर मेरी भगिनी शूर्पणखा को कुरूप करदिया है, सो मैं उसकी पत्नी सीता जो देवकन्या के समान है उसको बलपूर्वक जनस्थान से लाउंगा, उसके लाने में आप मेरे सहायक हों, क्योंकि :—

वीर्ये युद्धे च दर्पे च नह्यस्ति सदृशस्तव ।
उपायतो महाञ्शूरो महामाया विशारदः ॥१५॥
एतदर्थमहंप्राप्तस्त्वत्समीपं निशाचर ।
शृणु तत्कर्म साहाय्ये यत्कार्य्यं वचनान्मम ॥१६॥
सौवर्णस्त्वं मृगो भूत्वा चित्रो रजतबिन्दुभिः ।
आश्रमे तस्य रामस्य सीतया प्रमुखे चर ॥१७॥

अर्थ—बल, युद्ध तथा दर्प=छल कपट में आपके समान कोई नहीं, आप उपायों में बड़े शूरवीर और महामाया में भी बड़े चतुर हैं, सो हे निशाचर ! मेरा वह कार्य्य सुनें जिसके अर्थ आपके समीप आया हूं और जो मेरी सहायतार्थ मेरे कहने

से आपने करना है, वह यह है कि आप चांदी की विन्दुओं से चितकबरे सुनहरी हरिण बनकर राम के आश्रम में सीता के सन्मुख विचरें ॥

त्वां तु निःसंशयं सीता दृष्ट्वा तु मृगरूपिणम् ।
गृह्यतामिति भर्तारं लक्ष्मणं चाभिधास्यति ॥१८॥
ततस्तयोरपाये तु शून्ये सीतां यथासुखम् ।
निराबाधो हरिष्यामि राहुश्चन्द्रप्रभामिव ॥ १९ ॥
ततः पश्चात्सुखं रामे भार्याहरण कर्शिते ।
विश्रब्धं प्रहरिष्यामि कृतार्थेनान्तरात्मना ॥ २० ॥

अर्थ—सो आपको सुन्दर मृगरूपी देखकर निःसन्देह सीता भर्ता राम और लक्ष्मण को आपके पकड़ने के लिये कहेगी, तब मैं उन दोनों से पृथक् हुई सीता को शून्य में विना रोक टोक सुखपूर्वक हरलूंगा, जैसे राहु चन्द्रप्रभा को हरलेता है, तत्पश्चात् भार्याहरण से दुर्बल हुए राम पर अपने कृतार्थ=कृतकार्य्य मन के साथ सुखपूर्वक निःशंक प्रहार करुंगा ॥

इति विंशः सर्गः

अथ एकविंशः सर्गः

सं०—अब मारीच का सीताहरण से रावण को रोकना कथन करते हैं :—

तच्छ्रुत्वा राक्षसेन्द्रस्य वाक्यं वाक्यविशारदः ।
प्रत्युवाच महातेजा मारीचो राक्षसेश्वरम् ॥ १ ॥

अर्थ—राक्षसेन्द्र रावण के उक्त वचन सुनकर वाक्यविशारद महातेजस्वी मारीच रावण से बोला कि :—

सुलभाः पुरुषा राजन्सततं प्रियवादिनः ।
अप्रियस्य च पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः ॥२॥

अर्थ—हे राजन् ! सदा प्रिय बोलने वाले पुरुष सुलभ हैं परन्तु अप्रिय पथ्य=हितकारी वचन का कहने और सुनने वाला पुरुष दुर्लभ होता है ॥

न नूनं बुध्यसे रामं महावीर्य्यगुणोन्नतम् ।
अयुक्तचारश्चपलो महन्द्रवरुणोपमम् ॥३॥
अपि स्वस्ति भवेत्तात सर्वेषामपि रक्षसाम् ।
अपि रामो न संक्रुद्धः कुर्याल्लोकानराक्षसान् ॥४॥
अपि ते जीवितान्ताय नोत्पन्ना जनकात्मजा ।
अपि सीतानिमित्तं च न भवेद् व्यसनं महत् ॥५॥

अर्थ—निःसन्देह आप उस बड़े बलवाले, गुणों से उन्नत और महेन्द्र तथा वरुण के समान राम को नहीं जानते, और न जानने का कारण यह है कि तुम्हारी बुद्धि चंचल होने से तुमने गुप्तचरों द्वारा उनका सम्पूर्णवृत्त ज्ञात नहीं किया, हे तात ! सब राक्षसों का कल्याण हो, कहीं ऐसा न हो कि राम क्रुद्ध होकर लोक को विना राक्षसों के करदे, कहीं ऐसा तो नहीं कि

जनकात्मजा=सीता आपके जीवन का अन्त करने के लिये ही उत्पन्न हुई हो, कहीं ऐसा न हो कि सीता के कारण भारी विपत्ति आजाय ॥

अपि त्वामीश्वरं प्राप्य कामवृत्तं निरंकुशम् ।
न विनश्येत्पुरी लंकां त्वया सह सराक्षसा ॥६॥
न च पित्रा परित्यक्तो नामर्यादः कथंचन ।
न लुब्धो न च दुःशीलो न च क्षत्रिय पांसनः॥७॥
न च धर्मगुणैर्हीनः कौसल्यानन्दवर्धनः ।
न च तीक्ष्णो हि भूतानां सर्वभूतहिते रतः ॥८॥
वञ्चितं पितरं दृष्ट्वा कैकेय्या सत्यवादिनम् ।
करिष्यामीति धर्मात्मा ततः प्रव्रजितो वनम्॥९॥

अर्थ—कहीं ऐसा न हो कि आप जैसे कामवृत्त निरंकुश राजा को प्राप्त हुई लङ्कापुरी आप और राक्षसों के सहित नाश को को प्राप्त होजाय, राम न पिता से त्यागा हुआ, न अमर्यादा वाला, न लोभी, न दुःशील और न क्षत्रियों को कलंकित करने वाला है, वह कौसल्या का आनन्द बढ़ाने वाला राम धर्म के गुणों से हीन नहीं और न तीक्ष्ण, प्रत्युत सब भूतों के हित में रत है, कैकेयी से वञ्चित हुए पिता को देखकर उस धर्मात्मा ने कहा कि मैं पिता को सत्यवादी बनाउंगा, सो वह पिता को सत्यवादी बनाता हुआ वन में आया है ॥

कैकेय्याः प्रिय कामार्थं पितुर्दशरथस्य च ।
हित्वा राज्यं च भोगांश्च प्रविष्टो दण्डकावनम्॥१०॥

न समः कर्कशस्तात नाविद्वान्नाजितेन्द्रियः ।
अनृतं न श्रुतं चैव नैव त्वं वक्तुमर्हसि ॥११॥
रामो विग्रहवान्धर्मः साधुः सत्यपराक्रमः ।
राजा सर्वस्य लोकस्य देवानामिववासवः ॥१२॥

अर्थ–कैकेयी तथा पिता दशरथ की प्रिय कामना के लिये वह राज्य और भोगों को छोड़कर दण्डक वन में प्रविष्ट हुआ है, हे तात ! राम न क्रूरस्वभाव, न अविद्वान् और न अजितेन्द्रिय है, उसने कभी झूठ का नाम भी नहीं सुना अर्थात् वह सत्यवादी है, आप उसको उक्त गुणों से हीन कहने योग्य नहीं, राम धर्ममूर्त्ति, उत्तम पुरुष, सत्यपराक्रम वाला और इन्द्र के समान सम्पूर्ण लोक का राजा है ॥

कथं नु तस्य वैदेहीं रक्षितां स्वेन तेजसा ।
इच्छसे प्रसभं हर्तुं प्रभामिव विवस्वतः ॥१३॥
न सा धर्षयितुं शक्या मैथिल्योजस्विनः प्रिया ।
दीप्तस्येव हुताशस्य शिखा सीता सुमध्यमा॥१४॥

अर्थ–फिर आप सूर्य्य की प्रभा के समान राम के तेज से सुरक्षित सीता को कैसे हरसकते हैं, उस तेजस्वी राम की प्यारी सुमध्यमा मैथिली सीता को आप प्रदीप्त अग्नि की शिखा के समान छू नहीं सक्ते ॥

परदाराभिमर्शात्तु नान्यत्पापतरं महत् ।
भव स्वदारनिरतः स्वकुलं रक्ष रक्षसान् ॥१४॥

अहं तस्य प्रभावज्ञो न युद्धं तेन ते क्षमम् ।
बलिं वा नमुचिं वापि हन्याद्धि रघुनन्दनः ॥१६॥

अर्थ—परस्त्री पर बल दिखाने से बढ़कर जगत् में कोई पाप नहीं, सो तू अपनी स्त्रियों में रत हो, और अपने कुल तथा राक्षसों की रक्षा कर, मैं राम के प्रभाव को जानता हूं उससे आपको युद्ध करना उचित नहीं, वह रघुनन्दन बलि तथा नमुचि का भी हनन करसक्ता है ॥

सं०—अब रावण मारीच के उक्त कथन का उत्तर देता है:—

मारीचस्य तु तद्वाक्यं क्षमं युक्तं च रावणः ।
उक्तो न प्रतिजग्राह मर्तुकाम इवौषधम् ॥१७॥

अर्थ—मारीच के उक्त उचित वाक्य सुनकर रावण ने स्वीकार न किया, जैसे मृत्यु की कामना वाला औषध को स्वीकार नहीं करता ॥

तं पथ्यहितवक्तारं मारीचं राक्षसाधिपः ।
अब्रवीत्परुषं वाक्यमयुक्तं कालचोदितः ॥१८॥
दुष्कुलैतदयुक्तार्थं मारीच मयि कथ्यते ।
वाक्यं निष्फलमत्यर्थं बीजमुप्तमिवोखरे ॥१९॥
त्वद्वाक्यैर्नतु मां शक्यं भेत्तुं रामस्य संयुगे ।
मूर्खस्य पापशीलस्य मानुषस्य विशेषतः ॥२०॥
अवश्यं तु मया तस्य संयुगे खरघातिनः ।
प्राणैः प्रियतरा सीता हर्तव्या तव सन्निधौ ॥२१॥

अर्थ—उस हितकर बचन कहने वाले मारीच को काल से प्रेरित हुआ रावण यह अयुक्त कठोर वाक्य बोला कि हे दुष्कुलोत्पन्न मारीच! कालरभूमि में बोये हुए बीज की न्याईं अयुक्त अर्थवाला तथा अत्यन्त निष्फल बचन तुमने मुझसे कहे हैं, तेरे उक्त वाक्य मुझे उस मूर्ख, पापी, विशेषतः मानुष राम के साथ संग्राम से रोक नहीं सकते, मैंने युद्ध में उस खर के घातक राम की प्राणप्यारी सीता तेरे सन्मुख अवश्य हरनी है ॥

एवं मे निश्चिता बुद्धिर्हृदि मारीच विद्यते ।
न व्यावर्तयितुं शक्या सेन्द्रैरपि सुरासुरैः ॥ २२ ॥
संपृष्टेन तु वक्तव्यं सचिवेन विपश्चिता ।
उद्यतांजलिना राज्ञो य इच्छेद्भूतिमात्मनः ॥ २३ ॥
एतत्कार्य्यमवश्यं मे बलादपि करिष्यसि ।
राज्ञो विप्रतिकूलस्थो न जातु सुखमेधते ॥२४॥

अर्थ—हे मारीच! सीताहरणविषयक मेरे हृदय में निश्चित बुद्धि विद्यमान है जिसको इन्द्र सहित देव तथा दैत्य कोई भी नहीं पलटसक्ता, अपनी वृद्धि चाहने वाले बुद्धिमान् मन्त्री से पूछने पर उसको चाहिये कि राजा के सन्मुख हाथ जोड़कर कहे, सो हे मारीच! तुझको यह मेरा कार्य्य अवश्य बल से भी करना होगा, क्योंकि राजा के प्रतिकूल होकर कभी कोई सुखपूर्वक नहीं रहसक्ता ॥

आज्ञप्तो रावणेनेत्थं प्रतिकूलं च राजवत् ।
अब्रवीत्परुषं वाक्यं निःशङ्को राक्षसाधिपम् ॥२५॥

कस्त्वया सुखिना राजन्नाभिनन्दति पापकृत् ।
केनेदमुपदिष्टं ते मृत्युद्वारमुपायतः ॥२६॥
बध्याः खलु न बध्यन्ते सचिवास्तव रावण ।
ये त्वामुत्पथमारूढं न निगृह्णन्ति सर्वशः ॥ २७ ॥

अर्थ—जब रावण ने उक्त प्रकार राजाओं की भांति आज्ञा दी तब मारीच निःशङ्क होकर राक्षसाधिपति से कठोर वचन बोला कि हे राजन् ! ऐसा कौन पापी है जो तेरे सुख को नहीं सहार सकता, तुझको किसने इस उपाय से मृत्यु का द्वार बतलाया है, हे रावण ! वध योग्य तेरे मन्त्रियों का हनन क्यों नहीं कियाजाता जो कुमार्ग में आरूढ़ हुए तुझको सब प्रकार से नहीं रोकते ॥

राजमूलो हि धर्मश्च यशश्च जयतांवर ।
तस्मात् सर्वास्ववस्थासु रक्षितव्या नराधिपाः॥२८॥
आनयिष्यसि चेत्सीतामाश्रमात्सहितो मया ।
नैव त्वमपि नाहं वै नैव लङ्का न राक्षसाः ॥२९॥

अर्थ—हे जीतने वालों में श्रेष्ठ ! धर्म तथा यश राज ही से होता है, इसलिये सब अवस्थाओं में राजाओं की रक्षा करनी चाहिये, यदि आप मेरी सहायता द्वारा सीता को आश्रम से लावेंगे तो न आप, न मैं, न लङ्का और न कोई राक्षस जीवित रहेगा ॥

इति एकविंशः सर्गः

अथ द्वाविंशः सर्गः

सं०–अब मारीच का मृगरूप से राम के आश्रम में विचरना कथन करते हैं :—

एवमुक्त्वा तु परुषं मारीचो रावणं ततः ।
गच्छावेत्यब्रवीद्दीनो भयाद्रात्रिंचरप्रभोः ॥ १ ॥
प्रहृष्टस्त्वभवत्तेन वचनेन स राक्षसः ।
परिष्वज्य सुसंश्लिष्टमिदं वचनमब्रवीत् ॥ २ ॥

अर्थ–रावण को उक्त प्रकार कठोर वाक्य कहकर फिर मारीच उसके भय से दीन होकर बोला कि बहुत अच्छा मैं आपके साथ चलता हूं, मारीच का यह वाक्य सुनकर रावण ने उसको भले प्रकार गले लगाया और फिर बोला कि :—

एतच्छौटीर्ययुक्तं ते मच्छन्दवशवर्तिनः ।
इदानीमसि मारीचः पूर्वमन्यो हि राक्षसः ॥ ३ ॥
ततो रावणमारीचौ विमानमिव तं रथम् ।
आरुह्य ययतुः शीघ्रं तस्मादाश्रम मण्डलात् ॥४॥
समेत्य दण्डकारण्यं राघवस्याश्रमं ततः ।
ददर्श सहमारीचो रावणो राक्षसाधिपः ॥ ५ ॥

अर्थ–हे मारीच ! यह तेरा अभिमान युक्त वचन मेरे अनुकूल होने से तू मेरा आज्ञाकारी है, तू अब मारीच कहलाने योग्य है और पहले कोई अन्य राक्षस था, फिर रावण और मारीच

विमानतुल्य रथ पर आरूढ़ होकर शीघ्र ही राम के आश्रम में गये, और दण्डकवन में आकर मारीच के साथ रावण ने राम के आश्रम को देखा ॥

अवतीर्य रथात्तस्मात्ततः कांचनभूषणात् ।
हस्ते गृहीत्वा मारीचं रावणो वाक्यमब्रवीत् ॥६॥
एतद्रामाश्रमपदं दृश्यते कदलीवृतम् ।
क्रियतां तत्सखे शीघ्रं यदर्थं वयमागतः ॥७॥
स रावण वचः श्रुत्वा मारीचो राक्षसस्तदा ।
मृगो भूत्वाश्रमद्वारि रामस्य विचचार ह ॥८॥

अर्थ—तत्पश्चात् सुवर्ण से भूषित रथ से उतर रावण मारीच का हाथ पकड़कर बोला कि हे सखे ! यह केलों से घिरा हुआ राम का आश्रम दीखता है, सो शीघ्र ही वह काम करना चाहिये जिसके लिये हम यहां आये हैं,तब रावण का उक्त वचन सुनकर वह राक्षस मारीच मृग बन राम के आश्रमद्वार के निकट विचरने लगा ॥

मणिप्रवरशृङ्गाग्रः सितासितमुखाकृतिः ।
किंचिदत्युन्नतग्रीव इन्द्रनीलनिभोदरः ॥९॥
मधूकनिभपार्श्वश्च कंजकिंजल्क सन्निभः ।
वैदूर्यसंकाशखुरस्तनुजंघः सुसंहतः ॥१०॥
इन्द्रायुधसवर्णेन पुच्छेनोर्ध्वं विराजिताः ।
क्षणेन राक्षसो जातो मृगः परमशोभनः ॥११॥

रौप्यैर्बिन्दु शतैश्चित्रं भूत्वा च प्रियनन्दनः ।
विटपीनां किसलयान्भक्षयन्विचचार ह ॥१२॥

अर्थ–उत्तम नीलम जैसे सींगों वाला, कहीं श्वेत तथा कहीं काले मुख की शोभा वाला, ऊंची ग्रीवा=गर्दन वाला और इन्द्रनील सदृश पेट वाला, महुआ के पुष्प समान पसलियों वाला, कमल की केसर तुल्य वर्णवाला, हरितमणि के तुल्य खुरों वाला, पतली जंघों वाला, सुन्दर गठा हुआ, इन्द्रधनुष के समान वर्ण वाली पूंछ वाला, ऊंचा शोभायमान एकक्षण में वह राक्षस परम शोभन मृग बनगया, चांदी के अनेक विन्दुओं से विचित्र बना हुआ बड़ा प्रिय आनन्ददायक मृग वृक्षों की कोंपल खाता हुआ इधर उधर विचरने लगा ॥

रामाश्रमपदाभ्याशे विचचार यथासुखम् ।
पुनर्गत्वा निवृत्तश्च विचचार मृगोत्तमः ॥१३॥
विक्रीडंश्चपुनर्भूमौ पुनरेव निषीदति ।
आश्रमद्वारमागम्य मृगयूथानि गच्छति ॥१४॥
समुद्वीक्ष्य च सर्वे तं मृगा येऽन्ये वनेचराः ।
उपगम्य समाघ्राय विद्रवन्ति दिशो दश ॥१५॥

अर्थ–और राम के आश्रम समीप भी यथासुख कूदने लगा, थोड़ी दूर शीघ्रता से जाकर फिर लौट आता था, इस प्रकार बार २ विविध क्रीडा करता हुआ फिर भूमि पर बैठ जाता था, और आश्रम के द्वार पर आकर फिर मृगयूथों के पीछे चल पड़ता था, और दूसरे सब वनचर मृग उसको देखकर समीप आते और सूंघकर दशो दिशाओं को भाग जाते थे ॥

राक्षसः सोऽपि तान्वन्यान्मृगान्मृगवधे रतः ।
प्रच्छादनार्थं भावस्य न भक्षयति संस्पृशन् ॥१६॥
तस्मिन्नेव ततः काले वैदेही शुभलोचना ।
कुसुमापचये व्यग्रा पादपानत्यवर्तत ॥ १७ ॥
तं वै रुचिर दन्तोष्ठं रूप्यधातु तनूरुहम् ।
विस्मयोत्फुल्लनयना सस्नेहं समुदैक्षत ॥१८॥

अर्थ—परन्तु वह राक्षस मृगों के बध में प्रेम रखता हुआ भी अपने भाव को छिपाये हुए उन जंगली मृगों को स्पर्श करता हुआ भी भक्षण नहीं करता था, उसी काल में उत्तम नेत्रों वाली वैदेही फूलों के तोड़ने में मन लगाये हुए कुछ वृक्षों से आगे बढ़गई,और वहां उसने सुन्दर दांत तथा ओष्ठों वाला,चांदी और अन्य धातुओं के समान रोमों से युक्त उस मृग को बड़े स्नेह से देखा और देखकर विस्मय=आश्चर्य्य से उसके नेत्र प्रफुल्लित होगये ॥

इति द्वाविंशः सर्गः

अथ त्रयोविंशः सर्गः

सं०—अब उस मृग को लाने के लिये सीता की राम को प्रेरणा कथन करते हैं :—

प्रहृष्टा चानवद्यांगीमृष्टहाटकवर्णिनी ।
भर्तारमपि चक्रन्द लक्ष्मणं चैव सायुधम् ॥१॥

आहूयाहूय च पुनस्तं मृगं साधु वीक्षते ।
आगच्छागच्छ शीघ्रं वै आर्य्यपुत्र सहानुज ॥२॥
तावाहूतौ नरव्याघ्रौ वैदेह्या रामलक्ष्मणौ ।
वीक्षमाणौ तु तं देशं तदा ददृशतुर्मृगम् ॥३॥
शंकमानस्तु तं दृष्ट्वा लक्ष्मणो वाक्यमब्रवीत् ।
मृगो ह्येवंविधो रत्न विचित्रो नास्ति राघव ॥४॥

अर्थ—उस परमसुन्दर अङ्गों वाली, सुवर्ण के तुल्य वर्ण वाली सीता ने उस मृग को देखकर परमप्रसन्न हो अपने भर्त्ता राम और लक्ष्मण को शस्त्रसहित अपने समीप आने के लिये पुकारा, और बार २ बुला बुलाकर उस मृग को भली भांति देखती हुई बोली कि हे आर्य्यपुत्र ! छोटे भाई के साथ शीघ्र ही आओ, वैदेही के बुलाये हुए दोनों राम लक्ष्मण ने उस स्थान को देखते हुए वहां उन्होंने उस मृग को देखा, और देखकर लक्ष्मण शङ्कापूर्वक यह वाक्य बोला कि हे राघव ! इस प्रकार का रत्नजटित विचित्र मृग नहीं होता है ॥

एवं ब्रुवाणं काकुत्स्थं प्रतिवार्य्य शुचिस्मिता ।
उवाच सीता संहृष्टा च्छद्मना हृतचेतना ॥ ५ ॥
आर्य्यपुत्राभिरामोऽसौ मृगो हरति मे मनः ।
आनयैनं महाबाहो क्रीडार्थं नो भविष्यति ॥ ६ ॥
अहो रूपमहो लक्ष्मीः स्वरसंपच्च शोभना ।
मृगोऽद्भुतो विचित्राङ्गो हृदयं हरतीव मे ॥ ७ ॥

यदि ग्रहणमभ्येति जीवन्नेव मृगस्तव ।
आश्चर्यभूतं भवति विस्मयं जनयिष्यति ॥ ८ ॥

अर्थ–लक्ष्मण के उक्त प्रकार कथन करने पर उस बात को निवारण करती हुई सीता जिसकी बुद्धि हरी गई है वह प्रसन्नवदन हुई बड़े हर्षपूर्वक बोली कि इस सुहावने मृग ने मेरा मन हरलिया है, हे महाबाहो ! इसको अवश्य लावें, यह हमारी क्रीडा के लियें बड़ा आनन्ददायक होगा, अहो रूप, अहो शोभा, अहो स्वरसम्पत्ति=इसका बोलना, कैसा शोभन है, इस विचित्र अङ्गों वाले अद्भुत मृग ने मेरे हृदय को हरलिया है, यदि यह मृग जीवित ही आपके हाथ आजाय तो बड़े आनन्द और आश्चर्य्य की बात होगी ॥

समाप्तवनवासानां राज्यस्थानां च नः पुनः ।
अन्तःपुरे विभूषार्थो मृगएष भविष्याति ॥ ९ ॥
भरतस्यार्य्यपुत्रस्य श्वश्रूणां मम च प्रभो ।
मृगरूपमिदंदिव्यं विस्मयं जनयिष्यति ॥ १० ॥
जीवन्न यदि तेऽभ्येति ग्रहणं मृगसत्तमः ।
अजिनं नरशार्दूल रुचिरं तु भविष्यति ॥ ११ ॥
निहतस्यास्य सत्त्वस्य जाम्बूनदमयत्वचि ।
शष्पबृस्यां विनीतायामिच्छाम्यहमुपासितुम् ॥१२॥

अर्थ–और जब हम वनवास समाप्त करके राज्य पर स्थित होंगे तब यह मृग हमारे अन्तःपुर में शोभा के लिये होगा, हे प्रभो ! इस दिव्य मृग का रूप भरत, शत्रुघ्न और मेरी

सासों को विस्मय=आश्चर्य उत्पन्न करने वाला होगा, हे नरशार्दूल ! यदि यह मृग जीवित ही आपके हाथ न आये तो इसका मृगान भी बड़ा सुन्दर होगा, और यदि यह जीव मारना ही पड़ा तो इसके सुनहरी मृगान को घास के आसन पर बिछाकर परमात्मा की उपासना करना चाहती हूं ॥

लोहितस्तेन रूपेण सीतया च प्रचोदितः ।
उवाच राघवो हृष्टो भ्रातरं लक्ष्मणं वचः ॥ १३ ॥
पश्य लक्ष्मण वैदेह्याः स्पृहामुल्लसितामिमाम् ।
रूप श्रेष्ठतया ह्येष मृगोऽद्य न भविष्यति ॥१४॥
कस्य रूपमिदं दृष्ट्वा जाम्बूनदमयप्रभम् ।
नानारत्नमयं दिव्यं न मनो विस्मयं व्रजेत् ॥१५॥
एतस्य मृगरत्नस्य परार्ध्ये काञ्चनत्वचि ।
उपवेक्षति वैदेही मया सह सुमध्यमा ॥ १६ ॥

अर्थ—सीता के उक्त वचन सुन तथा उस अद्भुत मृग को देखकर उसके रूप से लुभायमान और सीता से प्रेरित हुए राम प्रसन्न होकर भाई लक्ष्मण से बोले कि हे लक्ष्मण ! वैदेही की इस उल्लास=हर्ष भरी इच्छा को देख जिसके लिये आज यह मृग अपने रूप की उत्तमता के कारण जीवित नहीं रहेगा, इस सुवर्णमय नाना रत्नजटित दिव्यरूप को देखकर किसका मन विस्मय होता हुआ लुभायमान नहीं होता, इस दिव्यमृग के परमोत्तम मृगान पर सुमध्यमा=सुन्दर कटि वाली वैदेही मेरे साथ बैठेगी ॥

न कादली न प्रियकी न प्रवेणी न चाविकी ।
भवेदेतस्य सदृशी स्पर्शेऽनेनेति मे मतिः ॥१७॥
यदि वायं तथा यन्मां भवेद्वदसि लक्ष्मणः ।
मायैषा राक्षसस्येति कर्तव्योऽस्य वधो मया ॥१८॥
इह त्वं भव सन्नद्धो यन्त्रितो रक्ष मैथिलीम् ।
अहमेनं वधिष्यामि ग्रहीष्याम्यथवा मृगम् ॥१९॥
त्वचा प्रधानया ह्येष मृगोऽद्य न भविष्यति ।
अप्रमत्तेन ते भाव्यमाश्रमस्थेन सीतया ॥ २० ॥

अर्थ—और मेरी सम्मति में न कदली मृग का मृगान, न प्रियक मृग का मृगान, न प्रवेण मृग का मृगान और न चाविक मृग का मृगान इसके मृगान तुल्य होगा,हे लक्ष्मण! यदि तुम्हारे कथनानुसार यह राक्षसी माया ही हो तब भी इसका बध करना चाहिये, तू यहां सावधान तथा यत्नवान होकर सीता की रक्षा कर मैं इस मृग को या तो पकड़कर नहीं तो मारकर लाऊंगा, उत्तम त्वचा के कारण इस मृग को आज मरा हुआ ही समझना, मेरे आने तक आप सीता के साथ अप्रमत्त होकर आश्रम में रहें॥

इति त्रयोविंशः सर्गः

अथ चतुर्विंशः सर्गः

सं०—अब राम का मृग के लिये जाना कथन करते हैं :—

ततस्त्रिविनतं चापमादायात्म विभूषणम् ।
आवध्य च कलापौ द्वौ जगामोदग्रविक्रमः ॥१॥

बद्धासिर्धनुरादाय प्रदुद्राव यतो मृगः ।
तं स्म पश्यति रूपेण द्योतयन्तमिवाग्रतः ॥२॥
शंकितं तु समुद्भ्रान्तमुत्पतन्तमिवाम्बरम् ।
दृश्यमानमदृश्यं च वनोद्देशेषु केषुचित् ॥३॥

अर्थ—तत्पश्चात् उग्र पराक्रमी राम तीन जगह झुके हुए अपने विभूषित धनुष तथा दोनों तरकस बांधकर, तलवार और धनुष लेकर जिधर मृग था उस ओर दौड़े और उसको अपने सन्मुख बड़ा शोभायमान वन को शोभा देने वाला देखा, जो बहुत डरा हुआ, घबराया हुआ और छलांगें भरता हुआ मानों आकाश में उड़ना चाहता है, वन के किन्हीं प्रदेशों में दीखता और कहीं२ दृष्टि से परे होजाता है ॥

छिन्नाभ्रैरिव संवीतं शारदं चन्द्रमण्डलम् ।
मुहूर्तादेव ददृशे मुहूर्दूरात्प्रकाशते ॥ ४ ॥
दर्शनादर्शनेनैव सोऽपाकर्षत राघवम् ।
सुदूरमाश्रमस्यास्य मारीचो मृगतां गतः ॥ ५ ॥
स तमुन्मादयामास मृगरूपो निशाचरः ।
मृगैः परिवृतोऽथान्यैरदूरात्प्रत्यदृश्यत ॥ ६ ॥
ग्रहीतुकामं दृष्ट्वा तं पुनरेवाभ्यधावत ।
तत्क्षणादेव संत्रासात्पुनरन्तर्हितोऽभवत् ॥ ७ ॥

अर्थ—बादल के टुकड़ों से ढके हुए शरदऋतु के चन्द्र समान कुछ काल दीखता और फिर दूर जा दिखाई देता, वह मृग बना हुआ मारीच इस प्रकार दिखाई देता और छिपता

हुआ राम को उनके आश्रम से बहुत दूर लेगया, उस मृगरूप राक्षस ने राम को थकाकर व्याकुल करदिया, पश्चात् वह बहुत से मृगों के सहित निकट ही दिखाई दिया,पर यह देखकर कि राम उसको पकड़ना चाहते हैं फिर दौड़गया, और भयभीत हुआ उसी समय फिर छिपगया ॥

पुनरेव ततो दूराद्वृक्षखण्डाद्विनिःसृतः ।
दृष्ट्वा रामो महातेजास्तं हन्तुं कृतनिश्चयः ॥८॥
भूयस्तु शरमुद्धृत्य कुपितस्तत्र राघवः ।
संधाय सुदृढे चापे विकृष्य बलवद्बली ॥९॥
तमेव मृगमुद्दिश्य ज्वलन्तामिव पन्नगम् ।
मुमोच ज्वलितं दीप्तमस्त्रं ब्रह्मविनिर्मितम् ॥१०॥
स भृशं मृगरूपस्य विनिर्भिद्य शरोत्तमः ।
मारीचस्यैव हृदयं विभेदाशनि सन्निभः ॥११॥

अर्थ—और फिर दूर जाकर वृक्षसमूह से बाहर निकला तब महातेजस्वी राम ने देखकर उसको मारने का दृढ़ निश्चय करलिया, कुपित हुए महाबली राम ने फिर बाण निकाल बड़े दृढ़ धनुष में जोड़कर बलपूर्वक खींचा, और उसी मृग को लक्ष्य करके फुंकारते हुए सर्प के समान जलता हुआ ब्रह्म बाण छोड़ा, उस विजुली के सदृश उत्तम बाण ने मृग के बनावटी रूप को भेदन करके मारीच के हृदय को वींधदिया ॥

तालमात्रमथोत्प्लुत्य न्यपतत्सभृशातुरः ।
म्रियमाणस्तु मारीचो जहौ तां कृत्रिमां तनुम् ॥१२॥

स प्राप्तकालमाज्ञाय चकार च ततः स्वनम् ।
सदृशं राघवस्यैव हा सीते लक्ष्मणेति च ॥१३॥
तं दृष्ट्वा पतितं भूमौ राक्षसं भीमदर्शनम् ।
रामो रुधिर सिक्तागं चेष्टमानं महीतले ॥१४॥
जगाम मनसा सीतां लक्ष्मणस्य वचःस्मरन् ।
मारीचस्य तु मायैषा पूर्वोक्ता लक्ष्मणेन तु ॥१५॥

अर्थ—तब वह असन्त पीड़ित हुआ तालमात्र उछलकर गिर पड़ा और मरते हुए मारीच ने उस कृत्रिम शरीर को त्यागकर अवसर जान राम के तुल्य ऊंचीध्वनि से हा सीता !! हा लक्ष्मण !! पुकारा उस भयंकरदर्शन राक्षस को भूमि पर गिरा हुआ और रुधिर से लिपटे हुए अङ्गों वाला, महीतल पर लोटता हुआ देखकर राम का मन सीता की ओर गया अर्थात् उनको लक्ष्मण की वह वचन स्मरण आया कि यह मारीच का ही छल निकला, जैसाकि लक्ष्मण ने कहा था ॥

हा सीते लक्ष्मणेत्येवमाक्रुश्य तु महास्वनम् ।
ममार राक्षसः सोऽयं श्रुत्वा सीता कथं भवेत्॥१६॥
लक्ष्मणश्च महाबाहुः कामवस्थां गमिष्यति ।
इति संचिन्त्य धर्मात्मा रामो हृष्टतनूरुहः ॥१७॥
तत्र रामं भयं तीव्र माविवेश विषादजम् ।
त्वरमाणो जनस्थानं ससाराभिमुखं तदा ॥१८॥

अर्थ—और हा सीता !! हा लक्ष्मण !! इस प्रकार ऊंचीध्वनि से

पुकारता हुआ यह राक्षस मरा है, इसका उक्त बोल सुनकर न जाने सीता की क्या दशा होगी तथा महाबाहु लक्ष्मण किस अवस्था में होगा, यह सोचकर धर्मात्मा राम के रोंगटे खड़े होगये और वहां पर राम बड़े भय से विषाद को प्राप्त हुए शीघ्र ही जनस्थान की ओर लौटे ॥

इति चतुर्विंशः सर्गः

अथ पंचविंशः सर्गः

सं०-अब सीता का लक्ष्मण को राम की ओर भेजना कथन करते हैं :—

आर्तस्वरं तु तं भर्तुर्विज्ञाय सदृशं वने ।
उवाच लक्ष्मणं सीता गच्छ जानीहि राघवम् ॥१॥
नहि मे जीवितं स्थाने हृदयं वावतिष्ठते ।
क्रोशतः परमार्तस्य श्रुतः शब्दो मयाभृशम् ॥२॥
आक्रन्दमानं तु वने भ्रातरं त्रातुमर्हसि ।
तं क्षिप्रमभिधाव त्वं भ्रातरं शरणैषिणम् ॥३॥
न जगाम तथोक्तस्तु भ्रातुराज्ञाय शासनम् ।
तमुवाच ततस्तत्र क्षुभिता जनकात्मजा ॥४॥

अर्थ-भर्ता के स्वर समान वन में आर्तस्वर=दुःखी पुरुष का

शब्द सुनकर सीता ने लक्ष्मण से कहा कि तुम शीघ्र जाकर राघव को देखो, मेरा जीवन अथवा हृदय अपने स्थान पर स्थिर नहीं अर्थात् मुझे बड़ी अशान्ति है, क्योंकि पुकारते हुए परम पीड़ित का आर्त शब्द मैंने भलेप्रकार सुना है, तुम बन में चिल्लाते हुए अपने भाई की रक्षा करने योग्य हो, सो शरण चाहते हुए की ओर शीघ्र ही जाओ, सीता के इस प्रकार कहने पर भी उसको अकेली न छोड़ने की भाई की आज्ञा का स्मरण कर लक्ष्मण न गया, तब जनकसुता क्रोध में आकर बोली कि:—

सौमित्रे मित्ररूपेण भ्रातुस्त्वमसि शत्रुवत् ।
यस्त्वमस्यामवस्थायां भ्रातरं नाभिपद्यसे ॥५॥
व्यसनं ते प्रियं मन्ये स्नेहो भ्रातरि नास्ति ते ।
तेन तिष्ठसि विश्रब्धं तमपश्यन्महाद्युतिम् ॥ ६ ॥
किं हि संशयमापन्ने तस्मिन्निह मया भवेत् ।
कर्तव्यमिह तिष्ठन्त्या यत्प्रधानस्त्वमागतः ॥ ७ ॥
एवं ब्रुवाणां वैदेहीं बाष्पशोकसमन्विताम् ।
अब्रवील्लक्ष्मणस्त्रस्तां सीतां मृगवधूमिव ॥ ८ ॥

अर्थ—हे सुमित्रा के पुत्र ! तू मित्ररूप से भाई का शत्रु है जो ऐसी अवस्था में भाई का साथ नहीं देता, मैं देखती हूं कि तुझे भाई की विपद प्यारी है और न तुझे भाई में स्नेह है, इसलिये तू उस महातेजस्वी को न देखता हुआ चुपचाप बैठा है, जिसको तू प्रधान बनाकर साथ आया है जब वही विपदग्रस्त है तो मेरी यहां रक्षा से क्या फल होगा, इस प्रकार कथन करती हुई

आंसुओं से युक्त, शोक से व्याकुल और मृगवधू की भांति भयभीत हुई सीता से लक्ष्मण बोला कि :—

पन्नगासुरगन्धर्वदेवदानवराक्षसैः ।
अशक्यस्तव वैदेहि भर्ता जेतुं न संशयः ॥ ९ ॥
अनिवार्यं बलं तस्य बलैर्बलवतामपि ।
हृदयं निर्वृत्तं तेऽस्तु सन्तापस्त्यज्यतां तव ॥ १० ॥
न्यासभूतासि वैदेहि न्यस्ता मयि महात्मना ।
रामेण त्वं वरारोहे न त्वां त्यक्तुमिहोत्सहे ॥ ११ ॥
कृतवैराश्च कल्याणि वयमेतैर्निशाचरैः ।
खरस्य निधने देवि जनस्थानवधं प्रति ॥ १२ ॥

अर्थ—हे वैदेहि ! तुम्हारा भर्ता नाग, दैत्य, गन्धर्व, देव, दानव और राक्षसों से जीता नहीं जासक्ता, इसमें संशय नहीं, बलवानों के बल भी राम के बल को नहीं सहारसक्ते, सो तुम सन्ताप को त्यागकर अपने हृदय में शान्ति धारण करो, हे वैदेहि ! महात्मा राम मुझे तेरी रक्षा के लिये छोड़ गये हैं, या यों कहो कि मेरे पास राम तुझे धरोहर=अमानत रखगये हैं, सो हे वरारोहे ! तुम्हें छोड़कर जाने को मेरा उत्साह नहीं होता, हे देवि ! खर और जनस्थान का वध करके हमने इन राक्षसों से वैर उत्पन्न करलिया है ॥

राक्षसा विविधा वाचो व्याहरन्ति महावने ।
हिंसाविहारा वैदेहि न चिन्तयितुमर्हसि ॥ १३ ॥

लक्ष्मणे नैवमुक्ता तु क्रुद्धा संरक्त लोचना ।
अब्रवीत्परुषं वाक्यं लक्ष्मणं सत्यवादिनम् ॥१४॥
अहं तव प्रियं मन्ये रामस्य व्यसनं महत् ।
रामस्य व्यसनं दृष्ट्वा तेनैतानि प्रभाषसे ॥ १५ ॥
नैव चित्रं सपत्नेषु पापं लक्ष्मण यद्भवेत् ।
त्वद्विधेषु नृशंसेषु नित्यं प्रच्छन्नचारिषु ॥ १६ ॥

अर्थ—सो हे वैदेहि ! हिंसाशील राक्षसों की इस महावन में भांति २ की बोलियां सुनकर तुम्हें चिन्ता नहीं करनी चाहिये, लक्ष्मण के उक्त वचन सुनकर क्रोध से सीता के नेत्र लाल होगये और वह सत्यवादी लक्ष्मण से इस प्रकार कठोर वाक्य बोली कि मैं जानती हूं तुझे राम की भारी विपद प्यारी है, और इसीलिये राम की विपद देखकर तू इस प्रकार की बातें कहता है, हे लक्ष्मण ! तेरे जैसे क्रूरस्वभाव तथा गुप्तचारी बैरियों में ऐसे पाप का होना आश्चर्य्य नहीं ॥

सुदुष्टस्त्वं वने राममेकमेकोऽनुगच्छसि ।
मम हेतोः प्रतिच्छन्नः प्रयुक्तो भरतेन वा ॥१७॥
समक्षं तव सौमित्रे प्राणांस्त्यक्ष्याम्यसंशयम् ।
रामं विना क्षणमपि नैव जीवामि भूतले ॥ १८ ॥
इत्युक्तः परुषं वाक्यं सीतया रोमहर्षणम् ।
अब्रवील्लक्ष्मणः सीतां प्राञ्जलिः स जितेन्द्रियः॥१९॥

वाक्यमप्रतिरूपं तु न चित्रं स्त्रीषु मैथिलि।
स्वभावस्त्वेष नारीणामेषु लोकेषु दृश्यते ॥ २० ॥

अर्थ–हे अति दुष्ट! तू वन में अकेला एकाकी राम के पीछे मेरे लिये गुप्तरूप से आया है अथवा भरत से प्रेरित हुआ आया है, हे लक्ष्मण! मैं निःसन्देह तेरे सन्मुख प्राण त्यागूंगी, मैं राम के बिना एक क्षण भी भूतल पर जीवित नहीं रहसकती, इस प्रकार रोंगटे खड़े करने वाले सीता के कठोर वाक्य सुनकर जितेन्द्रिय लक्ष्मण हाथ जोड़कर बोला कि हे मैथिलि! अयोग्य बात कहना स्त्रियों के लिये कुछ आश्चर्य्य नहीं, क्योंकि लोक में स्त्रियों का ऐसा ही स्वभाव पाया जाता है ॥

न सहे हीदृशं वाक्यं वैदेहि जनकात्मजे ।
श्रोत्रयोरुभयोर्मध्ये तप्तनाराचसन्निभम् ॥ २१ ॥
उपशृण्वन्तु मे सर्वे साक्षिणो हि वनेचराः ।
न्यायवादी यथा वाक्यमुक्तोऽहं परुषं त्वया ॥२२॥
धिक्त्वामद्य विनश्यन्तीं यन्मामेवं विशंकसे ।
स्त्रीत्वाद्दुष्टस्वभावेन गुरुवाक्ये व्यवस्थितम् ॥२३॥
गच्छामि यत्र काकुत्स्थः स्वस्ति तेऽस्तु वरानने ।
रक्षन्तु त्वां विशालाक्षि समग्रावनदेवताः ॥ २४ ॥
निमित्तानि हि घोराणि यानि प्रादुर्भवन्ति मे।
आपि त्वां सह रामेण पश्येयं पुनरागतः ॥ २५ ॥

अर्थ–हे जनकात्मजे ! मैं तुम्हारे ऐसे वाक्य नहीं सहार

सक्ता जो दोनों कानों में तप्तवाण की भांति लगते हैं, सब वनचारी मेरे साक्षी होकर सुनें, मुझ ठीक कहने वाले को तुमने कैसे कठोर वाक्य कहे हैं, आज नष्ट होने वाली तुझको धिक्कार है जो तू स्त्रीपन के दुष्टस्वभाव से मुझ पर ऐसी शङ्का करती है, मैं तो यहां बड़े भाई की आज्ञा से स्थित हूं, हे वरानने ! मैं राम के समीप जाता हूं, तुम्हारा कल्याण हो, हे विशाल नेत्रों वाली ! वन के सब देवता=ऋषि, मुनि तुम्हारी रक्षा करें, मुझको निमित्त बड़े घोर प्रतीत होते हैं, परमात्मा ऐसी कृपा करें कि मैं राम के साथ तुम्हें फिर आकर देखूं ॥

लक्ष्मणेनैवमुक्ता तु रुदती जनकात्मजा ।
प्रत्युवाच ततो वाक्यं तीव्रबाष्पपरिप्लुता ॥२६॥
गोदावरीं प्रवेक्ष्यामि हीना रामेण लक्ष्मण ।
आबन्धिष्येऽथवा त्यक्ष्ये विषमे देहमात्मनः ॥२७॥
पिबामि वा विषं तीक्ष्णं प्रवेक्ष्यामि हुताशनम् ।
न त्वहं राघवादन्यं कदापि पुरुषं स्पृशे ॥२८॥

अर्थ—लक्ष्मण के उक्त प्रकार कथन करने पर जनकात्मजा तीव्र आंसु बहाती हुई बोली कि हे लक्ष्मण ! मैं राम के विना गोदावरी में डूब मरुंगी वा फांसी लगालूंगी अथवा विषम स्थल मे गिरकर अपने प्राण त्याग दूंगी वा तीव्र विष खालुंगी अथवा अग्नि में कूदकर मरुंगी पर राघव से अन्य पुरुष का कभी स्पर्श न करुंगी ॥

इति पंचविंशः सर्गः

अथ षट्त्रिंशः सर्गः

सं०—अब लक्ष्मण का राम के समीप जाना और रावण का सीता के निकट आना कथन करते हैं :—

तया परुषमुक्तस्तु कुपितो राघवानुजः ।
स विकांक्षन्भृशं रामं प्रतस्थे नचिरादिव ॥१॥
तदासाद्य दशग्रीवःक्षिप्रमन्तरमास्थितः ।
अभिचक्राम वैदेहीं परिव्राजकरूपधिक् ॥२॥
श्लक्ष्मणकाषायसंवीतः शिखी छत्री उपानही ।
वामे चांसेऽवसज्ज्याथ शुभे यष्टिकमण्डलू ॥३॥

अर्थ—जब सीता ने लक्ष्मण से बहुत कठोर कहा तब वह कुपित होकर राम की आकांक्षा वाला लक्ष्मण वहां से शीघ्र ही चलपड़ा, और उसी समय अवसर पाकर संन्यासी का रूप धारण करके रावण सीता के निकट गया, जो शुद्ध गेरवे वस्त्र पहने हुए, शिखाधारी, छाता तथा खडाऊं धारण किये हुए वाम कन्धे पर शुभलाठी धरे और कमण्डलु लटकाये हुए :—

अभ्यवर्तत वैदेहीं चित्रामिव शनैश्चरः ।
सहसा भव्यरूपेण तृणैःकूप इवावृतः ॥४॥
अतिष्ठत्प्रेक्ष्य वैदेहीं राम पत्नीं यशस्विनीम् ।
तिष्ठन्संप्रेक्ष्य च तदापत्नीं रामस्य रावणः ॥५॥

शुभां रुचिरदन्तोष्ठीं पूर्णचन्द्रनिभाननाम् ।
आसीनां पर्णशालायां बाष्पशोकाभिपीडिताम्॥६॥
सतां पद्म पलाशाक्षीं पीतकौशेय वासिनीम् ।
अभ्यगच्छत वैदेहीं हृष्टचेता निशाचरः ॥७॥

अर्थ–शान्त रूप धारण किये तृणों से ढके हुए कूप की भांति बंचन करने वाला रावण इस प्रकार जानकी के सन्मुख आया जैसे शनैश्चर चित्रानक्षत्र के सन्मुख जाता है, और यशस्विनी रामपत्नी जानकी को देखकर ठहरगया, सुन्दर दांत तथा ओष्ठों वाली, पूर्णचन्द्र समान मुख वाली, पर्णशाला में बैठी हुई आंसु बहते हुए, शोक से पीड़ित, कमलपत्र समान नेत्रों वाली, और पीतवस्त्र धारण किये हुए वैदेही को देखकर हर्षित हुआ निशाचर उसको प्राप्त हुआ ॥

दृष्ट्वाकामशराविद्धो ब्रह्मघोषमुदीरयन् ।
अब्रवीत्प्रश्रितं वाक्यं रहिते राक्षसाधिपः ॥८॥
रौप्यकाञ्चनवर्णाभे पीत कौशेय वासिनी ।
कमलां शुभां मालां पद्मिनीव च बिभ्रती ॥९॥
ह्रीः श्रीः कीर्तिः शुभा लक्ष्मीरप्सरा वाशुभानने।
भूतिर्वा त्वं वरारोहे रतिर्वा स्वैरचारिणी ॥१०॥
समाः शिखरिणः स्निग्धाः पाण्डुरा दशनास्तव ।
विशाले विमले नेत्रे रक्तान्ते कृष्णतारके ॥११॥

अर्थ–फिर सीता को देखकर कामरूप बाणों से बिंधा हुआ

राक्षसाधिपति वेदमंत्रों का उच्चारण करके उस एकान्त स्थान में सीता से नम्रतापूर्वक बोला कि हे चांदी तथा सुवर्ण के रंग वाली, पीत रेशमी वस्त्र तथा पद्मिनी की भांति शुभमाला धारण किये हुए, हे सुन्दर मुखवाली ! तू लज्जावती, शोभायमान अथवा रूपवती वा लक्ष्मी वा अप्सरा अथवा तू विभूति है वा स्वेच्छा से विचरने वाली रति=कामदेव की पत्नी है,बराबर नोकदार,स्निग्ध तथा श्वेत तेरे दांत तथा निर्मल विशाल नेत्र हैं जिनके किनारे लाल और तारे श्याम हैं ॥

चारुस्मिते चारुदति चारुनेत्रे विशालिनि ।
मनो हरसि मे रामे नदीकूलमिवाम्भसा ॥१२॥
नैव देवी न गन्धर्वी न यक्षी नच किन्नरी ।
नैवं रूपा मया नारी दृष्टपूर्व महीतले ॥१३॥
रूपमग्र्यं च लोकेषु सौकुमार्यं वयश्चते ।
इह वासश्च कान्तारे चित्तमुन्माथयन्ति मे ॥१४॥
नेह गच्छन्ति गन्धर्वा न देवा नच किन्नराः ।
राक्षसानामयं वासः कथं तु त्वमिहागता ॥१५॥
इह शाखा मृगाः सिंहाद्वीपिव्याघ्र मृगावृकाः ।
ऋक्षास्ते रक्षवः कंकाः कथं तेभ्यो न विभ्यसे॥१६॥
मदान्वितानां घोराणां कुंजराणां तरस्विनाम् ।
कथमेका महारण्ये न विभेषि वरानने ॥ १७ ॥

अर्थ–हे सुन्दर मुसकराने वाली, हे सुन्दर दांतों वाली,

हे अनुपम नेत्रों वाली सुन्दरी तैने मेरे मन को हरलिया है, जैसे नदी पानी द्वारा किनारे को हरलेती है, तेरे जैसे सुन्दर रूपवाली नारी मैंने पृथिवी पर न देवी, न गन्धर्वी, न यक्षी और न किन्नरी पहले कभी देखी है, लोक में तुम्हारा रूप सब से श्रेष्ठ और तुम्हारी आयु भी छोटी है, इस अवस्था में तुम्हारा यहां रहना मेरे चित्त को व्याकुल करता है, क्योंकि न यहां गन्धर्व, न देव और न किन्नर आसक्ते हैं यहां तो राक्षसों का वास है तू कैसे यहां आई ? यहां तो वानर, सिंह, चीते, व्याघ्र, मृग, भेड़िया, ऋक्ष तथा गेंडादि वास करते हैं, तुम उनसे कैसे नहीं डरती हो, हे वरानने ! तू मदान्ध घोर शीघ्रगामी हाथियों से इस महावन में कैसे भयभीत नहीं होती ॥

कासि कस्य कुतश्च त्वं किन्निमित्तं च दण्डकान् ।
एका चरसि कल्याणि घोरान् राक्षस सेवितान्॥१८॥
द्विजातिवेषेण हि तं दृष्ट्वा रावणमागतम् ।
सर्वैरतिथि सत्कारैः पूजयामास मैथिलि ॥ १९ ॥

अर्थ—तू कौन है ? किसकी है ? कहां से आई है ? और किस निमित्त यहां अकेली इस भयङ्कर राक्षसों से सेवित दण्डक वन में विचरती है, ब्राह्मण के वेष में रावण को आया देखकर सीता ने सब अतिथि सत्कारों से उसकी पूजा की ॥

इयं बृसी ब्राह्मण काममास्यतामिदं च पद्यं
प्रतिगृह्यतामिति । इदं च सिद्धं वनजातमु-
त्तमं त्वदर्थमव्यग्रमिहोपभुज्यताम् ॥ २० ॥

अर्थ–हे ब्राह्मण ! इस कुशासन पर विराजें, यह पांव प्रक्षालन करने के लिये जल स्वीकार करें, और यह उत्तम वन के खाद्य पदार्थ आपके लिये उपस्थित हैं भोजन कीजिये ॥

इति षट्विंशः सर्गः

अथ सप्तविंशः सर्गः

सं०–अब सीता रावण के उक्त कथन का उत्तर देती है:—

रावणेन तु वैदेहि तदा पृष्टा जिहीर्षुणा ।
परिव्राजकरूपेण शशंसात्मानमात्मना ॥ १ ॥
दुहिता जनकस्याहं मैथिलस्य महात्मनः ।
सीता नाम्नास्मि भद्रं ते रामस्य महिषी प्रिया॥२॥

अर्थ–परिव्राजक=संन्यासी के रूप द्वारा सीता का हरण चाहते हुए रावण ने जब उक्त प्रकार पूछा तब सीता ने स्वयं अपना आप बतलाया कि मैं मिथिलाधिपति महात्मा जनक की कन्या, मेरा नाम सीता और मैं राम की प्यारी पटरानी हूं ॥

मम भर्त्ता महातेजा वयसा पञ्चविंशकः ।
अष्टादश हि वर्षाणि मम जन्मनिगण्यते ॥ ३ ॥
अभिषेकाय तु पितुः समीपं राममागतम् ।
कैकेयी मम भर्त्तारमित्युवाच द्रुतं वचः ॥ ४ ॥

तव पित्रा समाज्ञप्तं ममेदं शृणु राघव ।
भरताय प्रदातव्यमिदं राज्यमकण्टकम् ॥ ५ ॥
त्वया तु खलु वस्तव्यं नव वर्षाणि पञ्च च ।
चकार तद्वचः श्रुत्वा भर्त्ता मम दृढव्रतः ॥ ६ ॥

अर्थ–मेरा भर्त्ता बड़ा तेजस्वी पच्चीस वर्ष की अवस्था का है और मेरे जन्म को अठारह वर्ष व्यतीत हुए हैं अर्थात् मैं अठारह वर्ष की हूं, जब राम अभिषेक के लिये पिता के निकट आये तब मेरे भर्ता राम को कैकेयी तुरन्त ही यह वचन बोली कि हे राघव ! सुन, तेरे पिता ने मुझे यह आज्ञा दी है कि यह निष्कण्टक राज्य भरत को दो, और तुम चौदहवर्ष वन में वसो, यह सुनकर दृढ़व्रती मेरा भर्त्ता पिता का वचन पूर्ण करने के लिये यहां वन में आया है ॥

दद्यान्न प्रतिगृह्णीयात् सत्यं ब्रूयान्न चानृतम् ।
एतद्ब्राह्मण रामस्य व्रतं धृतमनुत्तमम् ॥ ७ ॥
तस्य भ्राता तु वैमात्रो लक्ष्मणो नाम वीर्य्यवान् ।
रामस्य पुरुषव्याघ्रः सहायः समरेऽरिहा ॥ ८ ॥
स भ्राता लक्ष्मणो नाम ब्रह्मचारी दृढव्रतः ।
अन्वगच्छद्धनुष्पाणिः प्रव्रजन्तं मया सह ॥ ९ ॥

अर्थ–हे ब्राह्मण ! वह कुछ तुम्हें देंगे लेंगे नहीं और सत्यभाषण करेंगे अनृत नहीं, यह उत्तम व्रत राम ने धारण किया हुआ है, उनका वैमात्र=दूसरी माता का पुत्र भाई लक्ष्मण जो शत्रुओं के हनन

करने वाला पुरुषव्याघ्र, बलवान् युद्ध में राम का सहायक है, वह दृढ़व्रत वाला राम का भाई लक्ष्मण हाथ में धनुष लेकर हमारे साथ आया है ॥

समाश्वस मुहूर्त्तं तु शक्यं वस्तुमिहत्वया ।
आगमिष्यति मे भर्ता वन्यमादायपुष्कलम् ॥१०॥
स त्वं नाम च गोत्रं च कुलमाचक्ष्व तत्त्वतः ।
एकश्च दण्डकारण्ये किमर्थं चरसि द्विज ॥ ११ ॥
एवं ब्रुवत्यां सीतायां रामपत्न्यां महाबलः ।
प्रत्युवाचोत्तरं तीव्रं रावणो राक्षसाधिपः ॥ १२ ॥
येन वित्रासिता लोकाः सदेवासुर मानुषाः ।
अहं स रावणो नाम सीते रक्षोगणेश्वरः ॥ १३ ॥

अर्थ—आप कुछ काल तक यहां ठहरें, मेरे भर्त्ता अभी पुष्कल जंगल का आहार फल मूल लेकर आते हैं, हे ब्राह्मण ! अब आप भी अपना कुल तथा गोत्र बतलायें, और आप अकेले यहां दण्डक वन में कैसे विचरते हैं? रामपत्नी सीता के इस प्रकार पूछने पर राक्षसाधिपति महाबली रावण ने उसको तीव्र=असह्य उत्तर दिया कि हे सीते ! जिससे देव, दैत्य तथा मनुष्यों सहित सब लोक कांपते हैं वह मैं रावण नामक राक्षसों का राजा हूं ॥

त्वां तु काञ्चनवर्णाभां दृष्ट्वा कौशेयवासिनीम् ।
रतिं स्वकेषु दारेषु नाधिगच्छाम्यनिन्दिते ॥१४॥

बह्वीनामुत्तमस्त्रीणामाहृतानामितस्ततः ।
सर्वासामेव भद्रं ते ममाग्रमहिषी भव ॥ १५ ॥
लङ्का नाम समुद्रस्य मध्ये मम महापुरी ।
सागरेण परिक्षिप्ता निविष्टा गिरिमूर्धनि ॥ १६ ॥
तत्र सीते मया सार्धं वनेषु विचरिष्यसि ।
न चास्य वनवासस्य स्पृहयिष्यसि भामिनि ॥१७॥

अर्थ—हे अनिन्दिते ! सुवर्ण के रंग वाली, रेशमी वस्त्र धारण किये हुए तुझे देखकर अपनी स्त्रियों में रति को प्राप्त नहीं होता, हे सीते ! तेरा कल्याण हो, मैं बहुत उत्तमोत्तम स्त्रियें जो इधर उधर से लाया हूं उन सब से मुख्य तू मेरी पटरानी बन, समुद्र के मध्य मेरी लंका नाम महापुरी समुद्र से घिरी हुई पर्वत के शिखर पर स्थित है,सो हे सुन्दरि ! तू वहां मेरे साथ विचरती हुई इस वन की कभी इच्छा नहीं करेगी ॥

रावणेनैवमुक्ता तु कुपिता जनकात्मजा ।
प्रत्युवाचानवद्याङ्गी तमनादृत्य राक्षसम् ॥ १८ ॥
महागिरिमिवाकम्प्यं महेन्द्रसदृशं पतिम् ।
महोदधिमिवाक्षोभ्यमहं राममनुव्रता ॥ १९ ॥
सर्वलक्षणसम्पन्नं न्यग्रोधपरिमण्डलम् ।
सत्यसंधं महाभागमहं राममनुव्रता ॥ २० ॥
महाबाहुं महोरस्कं सिंहविक्रान्तगामिनम् ।
नृसिंहंसिंहसंकाशमहं राममनुव्रता ॥ २१ ॥

अर्थ-रावण के उक्त प्रकार कथन करने पर सुन्दरांगि सीता उस राक्षस का निरादर करती हुई बोली कि मैं महापर्वत की न्याईं कम्पायमान न होने वाला, महासागर की भांति क्षोभ से रहित, महेन्द्र के समान पति राम के पीछे आई हूं, सर्व शुभ लक्षणसम्पन्न, बड़ के वृक्ष की भांति सबको छाया देने वाले, सत्यप्रतिज्ञ महाभाग राम के साथ आई हूं, बड़ी भुजा वाले, विशाल छाती वाले सिंह की चाल वाले तथा पुरुषसिंह राम के पीछे आई हूं ॥

त्वं पुनर्जम्बुकः सिंहीं मामिहेच्छसि दुर्लभाम् ।
नाहं शक्या त्वयास्प्रष्टुमादित्यस्यप्रभायथा ॥२२॥

क्षुधितस्य च सिंहस्य मृग शत्रोस्तरस्विनः ।
आशीविषस्य वदनाद्दंष्ट्रामादातुमिच्छसि ॥२३॥

मन्दरं पर्वतश्रेष्ठं पाणिना हर्तुमिच्छसि ।
कालकूटं विषंपीत्वा स्वस्तिमान् गन्तुमिच्छसि ॥२४॥

अक्षिसूच्या प्रसृजति जिह्वया लेढि च क्षुरम् ।
राघवस्य प्रियां भार्यामधिगन्तु त्वमिच्छसि ॥२५॥

अर्थ-और तू गीदड़ मुझ दुर्लभा=कठिनता से प्राप्त होने योग्य सिंहनी की इच्छा करता है, तू मुझसे स्पर्श भी नहीं करसक्ता, जैसे सूर्य्य की प्रभा को कोई नहीं छूसक्ता है, हे मृगों के मारने वाले तू महाबली क्षुधातुर सिंह के मुख से दाढ़ें=जबड़ा निकालने की इच्छा करता है, भला तू श्रेष्ठ मन्दर पर्वत को हाथ से हरण=लेजाने की इच्छा करता है, भला कालकूट विष

को पान करके कल्याण से जाना चाहता है, भला तू सुई से आंख को खुजाना तथा जिह्वा से छुरे की धार को चाटना चाहता है जो तू राम की प्यारी भार्या को ग्रहण करने की इच्छा करता है ॥

अवसज्य शिलां कण्ठे समुद्रं तर्तुमिच्छसि ।
सूर्य्य चन्द्रमसौचोभौपाणिभ्यांहर्तुमिच्छसि ॥ २६॥
अग्निं प्रज्वलितं दृष्ट्वा वस्त्रेणाहर्तुमिच्छसि ।
कल्याणवृत्तां यो भार्यां रामस्याहर्तुमिच्छसि॥२७॥

अर्थ—भला तू गले में पत्थर लटकाकर समुद्र को तैरना चाहता तथा सूर्य्य, चन्द्रमा को हाथ से पकड़ना चाहता है, तू प्रज्वलित अग्नि को वस्त्र द्वारा लेजाने के समान कल्याण स्वभाव वाली राम की भार्या के हरण की इच्छा करता है ॥

यदन्तरं कांचन सीस लोहयोर्यदन्तरं चन्द-
नवारिपंकयोः । यदन्तरं हस्ति बिडाल
योर्वने तदन्तरं दाशरथेस्तवैव च ॥ २८ ॥

अर्थ—जितना अन्तर कांचन तथा सीसा वा लोह में है, जितना अन्तर चन्दन तथा कीचड़ में है और जितना अन्तर वन के हाथी तथा विल्ली में है उतना ही अन्तर दशरथ के पुत्र राम और तुझ में है ॥

यदन्तरं वायस वैनतेययोर्यदन्तरंमद्गुमयूरयोरपि ।
यदन्तरंहंसकगृध्रयोर्वने तदन्तरं दाशरथेस्तवैव च ।२९

अर्थ–जितना अन्तर गरुड़ तथा काक में है, जितना अन्तर मयूर और मुरगी में है अथवा जितना अन्तर हंस और गृध्र में है उतना ही अन्तर राम और तुझ में है ॥

तस्मिन्सहस्राक्षसमप्रभावे रामे स्थिते कार्मुकबाणपाणौ । हृतापि तेऽहं न जरां गमिष्ये आज्यं यथा मक्षिकयावगीर्णम् ॥३०॥

अर्थ–जब तक इन्द्र तुल्य प्रभाव वाले राम हाथ में धनुषबाण लिये स्थित हैं तबतक तू निश्चय रख कि तुझ से हरण कीहुई भी मैं जीर्ण नहीं होउंगी अर्थात् चिरकाल न रहसकुंगी, जैसे मक्खी के साथ खाया हुआ घी परिपक=हज़म नहीं होता है ॥

इतीव तद्वाक्यमदुष्टभावा सुदुष्टमुक्त्वा रजनीचरन्तम् । गात्रप्रकम्पाद्व्यथिता बभूव वातोद्धता सा कदलीव तन्वी ॥ ३१ ॥

अर्थ–वह शुद्धभावना वाली सीता उक्त प्रकार उस दुष्ट राक्षस रावण को कहकर वायु से कम्पाये हुए केले की भांति थर २ कांपने लगी ॥

इति सप्तविंशः सर्गः

अथ अष्टाविंशः सर्गः

सं०—अब सीता का हरण कथन करते हैं :—

सीयता वचनं श्रुत्वा दशग्रीवः प्रतापवान् ।
हस्ते हस्तं समाहन्य चकार सुमहद्वपुः ॥१॥
स मैथिलीं पुनर्वाक्यं बभाषे वाक्यकोविदः ।
नोन्मत्तया श्रुतौ मन्ये मम वीर्यपराक्रमौ ॥२॥
उद्वहेयं भुजाभ्यां तु मेदिनीमम्बरे स्थितः ।
आपिबेयं समुद्रं च मृत्युं हन्यां रणे स्थितः ॥३॥

अर्थ—सीता के उक्त वचन सुनकर प्रतापवान् रावण ने अपने दोनों हाथ मरोड़कर शरीर को भयंकर बना वाक्य के जानने वाला पुनः सीता से बोला कि मैं जानता हूं उन्मत्त हुई तैने मेरे बल पराक्रम नहीं सुने, मैं आकाश में खड़ा होकर दोनों भुजाओं से पृथिवी को उठासक्ता, समुद्र को पान करसक्ता और रण में स्थित हुआ मृत्यु का भी हनन करसक्ता हूं ॥

एवमुक्तवतस्तस्य रावणस्य शिखिप्रभे ।
क्रुद्धस्य हरिपर्यन्ते रक्तेनेत्रे बभूवतुः ॥४॥
सद्यः सौम्यं परित्यज्य तीक्ष्णरूपं स रावणः ।
स्वरूपं कालरूपाभं भेजे वै श्रवणानुजः ॥ ५ ॥

संरक्तनयनः श्रीमांस्तप्तकाञ्चनभूषणः ।
क्रोधेन महताविष्टो नीलजीमूतसन्निभः ॥ ६ ॥

अर्थ–इस प्रकार कहते हुए क्रोध को प्राप्त रावण के नेत्र लाल होगये और मुख से अग्नि बरसने लगी, फिर तत्क्षण सौम्यरूप को त्यागकर वह कुबेर का छोटा भाई रावण कालरूप के तुल्य अपना तीक्ष्णरूप धारण करके लालनेत्रों वाला, श्रीमान्, तपे हुए सुवर्ण के भूषणों वाला, बड़े तेज से युक्त, नील मेघ के समान :—

अभिगम्य सुदुष्टात्मा राक्षसः काममोहितः ।
जग्राह रावणः सीतां बुधः खे रोहिणीमिव ॥ ७ ॥
वामेन सीतां पद्माक्षीं मूर्धजेषु करेण सः ।
ऊर्वोस्तु दक्षिणेनैव परिजग्राह पाणिना ॥ ८ ॥
सच मायामयो दिव्यः खरयुक्तः खरस्वनः ।
प्रत्य दृश्यत हेमाङ्गो रावणस्य महारथः ॥ ९ ॥
ततस्तां परुषैर्वाक्यैरभितर्ज्य महास्वनः ।
अङ्केनादाय वैदेहीं रथमारोहयत्तदा ॥ १० ॥

अर्थ–काम से मोहित हुए दुष्टात्मा राक्षस ने समीप जाकर सीता को पकड़ लिया, जैसे आकाश में बुध रोहिणी को ग्रहण करता है, उस राक्षस ने बायें हाथ से कमल के पत्र समान नेत्रों वाली सीता के केश पकड़ दायें हाथ से दोनों जंघों से उठा लिया, और इसी अन्तर में रावण का वह सुनहरी मायामय दिव्य रथ आगया जो खर से युक्त तथा खर की ध्वनि वाला

यानविशेष था, तत्पश्चात् रावण ने कठोर वाक्यों से सीता को झिड़क अङ्क से उठाकर रथ पर बिठा लिया ॥

सा गृहीतातिचुक्रोश रावणेन यशस्विनी ।
रामेति सीता दुःखार्ता रामं दूरं गतं वने ॥ ११ ॥
तामकामां स कामार्तः पन्नगेन्द्रवधूमिव ।
विचेष्टमानामादाय उत्पपाताथ रावणः ॥ १२ ॥
ततः सा राक्षसेन्द्रेण ह्रियमाणा विहायसा ।
भृशं चुक्रोश मत्तेव भ्रान्तचित्ता यथातुरा ॥ १३ ॥

अर्थ–रावण से ग्रहण कीहुई यशस्विनी सीता ने वन में दूर गये हुए राम को " हा राम !! हा राम " इस प्रकार दुःख से पीड़ित हुई ने पुकारा, उस अकामा को काम से पीड़ित हुआ नागिनी की भांति लोटती हुई को जब रावण लेकर चला, तब उस राक्षस द्वारा हरी जाती हुई सीता उन्मत्त की भांति पीड़ित तथा भ्रान्तचित्त हुई अत्यन्त रुदन कर पुकारने लगी कि :—

हा लक्ष्मण महावाहो गुरुचित्तप्रसादक ।
ह्रियमाणां न जानीषे रक्षसा कामरूपिणा ॥१४॥
जीवितं सुखमर्थं च धर्म हेतोः परित्यजन् ।
ह्रियमाणामधर्मेण मां राघव न पश्यसि ॥ १५ ॥
ननुनामाविनीतानां विनेतासि परंतप ।
कथमेवं विधं पापं न त्वं शाधिहि रावणम् ॥१६॥

अर्थ–हे राम के चित्त को प्रसन्न रखने वाले महाबाहु लक्ष्मण !

क्या तू कामरूपी राक्षस से हरी जाती हुई मुझको नहीं जानता, हे जीवन, सुख तथा धन को धर्म के अर्थ त्यागने वाले राघव ! अधर्म से हरी जाती हुई मुझको क्या आप नहीं देखते हैं, हे परंतप ! आपतो उत्पथगामियों को सीधे मार्ग में चलाने वाले हैं तो फिर ऐसे पापात्मा रावण को कैसे दण्ड नहीं देते हो ॥

हन्तेदानीं सकामा तु कैकेयी बान्धवैः सह ।
ह्रियेयं धर्मकामस्य धर्मपत्नी यशस्विनः ॥ १७ ॥
दैवतानि च यान्यस्मिन्वने विविधपादपे ।
नमस्करोम्यहं तेभ्यो भर्तुः शंसतमां हताम् ॥१८॥
सा तदा करुणा वाचो विलपन्ती सुदुःखिता ।
वनस्पतिगतं गृध्रं ददर्शायत लोचना ॥ १९ ॥

अर्थ—शोक अब कैकेयी बान्धवों सहित पूर्ण कामनावाली होगी जब कि मैं यशस्वी, धर्म की कामना वाले राम की धर्मपत्नी हरी जारही हूं, विविध प्रकार के वृक्षयुक्त इस वन में जो देवता हैं उन सब को मैं नमस्कार करती हूं, आप मेरे स्वामी राम से कहदें कि सीता को रावण हरलेगया है, इस प्रकार करुणामय विलाप करती हुई अत्यन्त दुःखी विशालनेत्रा सीता ने वहीं वृक्षों में जटायु को देखा ॥

सा तमुद्वीक्ष्य सुश्रोणी रावणस्य वशंगता ।
समाक्रन्दद्भयपरा दुःखोपहितया गिरा ॥ २० ॥
जटायो पश्य मामार्य ह्रियमाणामनाथवत् ।
अनेन राक्षसेन्द्रेण करुणं पापकर्मणा ॥ २१ ॥

अर्थ—और वह सुमध्यमा सीता उसको देखकर रावण के वश पड़ी भयभीत हुई २ आर्तबाणी से पुकार कर बोली कि हे आर्य्य जटायो ! देख मुझको यह पापी राक्षस रावण अनाथ की भांति लेजारहा है ॥

नैषवारयितुं शक्यस्त्वया क्रूरो निशाचरः ।
सत्त्ववाञ्जितकाशीच सायुधश्चैव दुर्मतिः ॥२२॥
रामाय तु यथा तत्त्वं जटायो हरणं मम ।
लक्ष्मणाय च तत्सर्वमाख्यातव्यमशेषतः ॥ २३ ॥

अर्थ—हे जटायो ! यह क्रूर दुर्मति निशाचर जो अस्त्र शस्त्र लिये हुए है इसको तुम निवारण करने में अशक्य हो अर्थात् तुम इससे मुझको नहीं छुड़ासक्के, आपने केवल इतना करना कि लक्ष्मण और मेरे प्रिय भर्त्ता राम को मेरा हरण यथावत् सम्पूर्ण रूप से कहदेना ॥

इति अष्टाविंशः सर्गः

अथ एकोनत्रिंशः सर्गः

सं०—अब जटायु तथा रावण का युद्ध वर्णन करते हैं :—

तं शब्दमवसुप्तस्तु जटायुरथ शुश्रवे ।
निरक्षद्रावणं क्षिप्रं वैदेहीं च ददर्श सः ॥ १ ॥

अर्थ—सीता का उक्त कथन सोये हुए जटायु ने सुना और रावण तथा सीता को देखकर बोला कि :—

दशग्रीव स्थितो धर्मे पुराणे सत्यसंश्रवः ।
भ्रातस्त्वं निन्दितं कर्म कर्तुं नार्हसि साम्प्रतम्॥२॥
लोकानां च हिते युक्तो रामो दशरथात्मजः ।
तस्यैषा लोकनाथस्य धर्मपत्नी यशस्विनी ॥३॥

अर्थ–हे दशग्रीव ! अपने सनातन धर्म में स्थित होकर सत्य-प्रतिज्ञ बन, हे भ्राता ! तुझको ऐसा निन्दित कर्म नहीं करना चाहिये, दशरथ का पुत्र राम जो लोकहित में तत्पर है उस लोकनाथ की यह यशस्विनी सीता धर्मपत्नी है ॥

कथं राजा स्थितो धर्मे परदारान्परामृशेत् ।
रक्षणीया विशेषेण राजदारा महाबल ॥४॥
न तत्समाचरेद्धीरो यत्परोऽस्य विगर्हयेत् ।
यथात्मनस्तथान्येषां दारा रक्ष्या विमर्शनात्॥५॥

अर्थ–धर्म में स्थित राजा परस्त्री को कदापि नहीं छू सक्ता, हे महाबली ! राजपत्नियें विशेषतः रक्षा के योग्य होती हैं, धीर पुरुष को निन्दनीय काम कदापि नहीं करना चाहिये, प्रत्युत अपनी स्त्रियों की न्यांई परस्त्रियों की भी यत्न से रक्षा करनी चाहिये ॥

वृद्धोऽहं त्वं युवा धन्वी सरथः कवची शरी ।
नचाप्यादाय कुशली वैदेहीं मे गमिष्यसि ॥६॥
न शक्तस्त्वं बलाद्धर्तुं वैदेहीं मम पश्यतः ।
हेतुभिर्न्यायसंयुक्तै ध्रुवां वेदश्रुतीमिव ॥७॥

युद्ध्यस्व यदि शूरोसि मुहूर्तं तिष्ठ रावण ।
शयिष्यसे हतो भूमौ यथापूर्वं खरस्तथा ॥८॥
किंतु शक्यं मया कर्तुं गतौ दूरं नृपात्मजौ ।
क्षिप्रं त्वं नश्यसे नीच तयोर्भीतो न संशयः ॥९॥

अर्थ—यद्यपि मैं वृद्ध हूं और तू युवा, धनुर्धारी, रथ सहित तथा कवच पहिने और बाण लिये हुए है तथापि तुझको अपने सन्मुख सीता को लेकर कुशलपूर्वक नहीं जाने दूंगा, मेरे देखते हुए तू बल से सीता को नहीं लेजासक्ता, जैसे अटल वेद श्रुतियों का कोई कुतर्कों से अतिक्रमण नहीं करसकता, हे रावण ! यदि तू शूरवीर है तो एक मुहूर्त भर ठहरकर युद्ध कर, जैसे तेरा भाई खर युद्ध में भूतल पर शयन कर गया इसी प्रकार तू भी शयन करेगा, हे रावण ! मैं क्या करूं, वह दोनों राजकुमार दूर निकल गये नहीं तो हे नीच ! तू उनसे भयभीत हुआ शीघ्र ही नाश को प्राप्त होजाता, इसमें संशय नहीं ॥

नहि मे जीवमानस्य नयिष्यसि शुभामिमाम् ।
सीतां कमलपत्राक्षीं रामस्य महिषीं प्रियाम् ॥१०॥
अवश्यं तु मया कार्य्यं प्रियं तस्य महात्मनः ।
जीवितेनापि रामस्य तथा दशरथस्य च ॥११॥
तिष्ठ तिष्ठ दशग्रीव मुहूर्तं पश्य रावण ।
युद्धातिथ्यं प्रदास्यामि यथाप्राणं निशाचर ॥१२॥

अर्थ—मेरे जीतेजी तू इस कमलनेत्रा राम की प्यारी रानी

शुभ सीता को नहीं लेजासक्ता, हे निशाचर! मैंने अपना प्राण देकर भी महात्मा राम और दशरथ का हित अवश्य करना है, हे रावण! ठहर एक मुहूर्त भर और देख, हे निशाचर! जब तक मेरे प्राण हैं तब तक तेरा युद्ध से अतिथि सत्कार करूंगा॥

इत्युक्तः क्रोधताम्राक्षस्तप्तकांचनकुण्डलः।
राक्षसेन्द्रोऽभिदुद्राव पतगेन्द्रममर्षणः॥१३॥
स संप्राहरस्तुमुलस्तयोस्तस्मिन्महामृधे।
बभूव वातोद्धूतयोर्मेघयोर्गगने यथा॥१४॥
स तदा गृध्रराजेन क्लिश्यमानो मुहुर्मुहुः।
अमर्षस्फुरितोष्ठः सन्प्राकम्पत च राक्षसः॥१५॥

अर्थ—जटायु के उक्त कथन को तप्त सुवर्ण के कुण्डलों वाला रावण न सहारता हुआ क्रोध से लाल नेत्र करके उसकी ओर दौड़ा, तब उस युद्ध में उन दोनों की आकाश में वायु से प्रेरे हुए मेघों की भांति बड़ी टक्कर हुई, उस समय जटायु के बल से बार २ क्लेशित हुआ रावण कांप उठा और क्रोध से उसके ओष्ठ फड़कने लगे॥

ततः क्रोधाद्दशग्रीवः सीतामुत्सृज्य वीर्य्यवान्।
मुष्टिभ्यां चरणाभ्यां च गृध्रराजमपोथयत्॥१६॥
सच्छिन्नपक्षः सहसा राक्षस रौद्रकर्मणा।
निपपात महागृध्रो धरण्यामल्पजीवितः॥१७॥
तं दृष्ट्वा पतितं भूमौ क्षतजार्द्रं जटायुषम्।
अभ्यधावत वैदेही स्वबन्धुमिव दुःखिता॥१८॥

अर्थ–तब बली रावण क्रोधातुर हुआ सीता को छोड़कर दोनों मुक्कियों और लातों से गृध्रराज को मारने लगा, पश्चात् उस भयङ्कर कर्मों वाले राक्षस ने गृध्रराज की तलवार से दोनों भुजा काट डालीं और वह भुजाओं के कटजाने से भूमि पर गिर पड़ा, जिसका जीवन अब अल्प शेष रह गया है, तब उस जटायु को रुधिर से लिपटा भूमि पर गिरा हुआ देखकर दुःखित हुई सीता अपने भाई की भांति उसकी ओर दौड़ी ॥

सा तु ताराधिपमुखी रावणेन निरीक्ष्यतम् ।
गृध्रराजं विनिहतं विललाप सुदुःखिता ॥ १९ ॥
अयं हि कृपया राम मां त्रातुमिह संगतः ।
शेते विनिहतो भूमौ ममाभाग्याद्विहंगमः ॥२०॥
तां क्लिष्टमाल्याभरणां विलपन्तीमनाथवत् ।
अभ्यधावत वैदेहीं रावणो राक्षसाधिपः ॥ २१ ॥

अर्थ–और वह चन्द्रमुखी रावण से गृध्रराज को हनन किया हुआ देखकर अति दुःखित हो विलाप करने लगी, कि हे राम! यह विहङ्गम=पुरुषविशेष जटायु जो अपनी परम कृपा से मेरी रक्षा करने के लिये उद्यत हुआ था वह मेरे अभाग्य से हत होकर भूमि पर गिर गया है, तब वह राक्षसाधिपति रावण माला और भूषण तोड़कर फैंक देने वाली तथा अनाथ की भांति विलाप करती हुई सीता की ओर दौड़ा ॥

तां लतामिव वेष्टन्तीमालिङ्गन्तीं महाद्रुमान् ।
मुञ्चमुञ्चेति बहुशः प्रापतां राक्षसाधिपः ॥ २२ ॥

क्रोशन्तीं राम रामेति रामेण रहितां वने।
जीवितान्ताय केशेषु जग्राहान्तिकसन्निभः ॥२३॥
प्रधर्षितायां वैदेह्यां बभूव सचराचरम्।
जगत्सर्वममर्यादं तमसान्धेन संवृतम् ॥ २४ ॥
स तु तां राम रामेति रुदतीं लक्ष्मणेति च।
जगामादाय चाकाशं रावणो राक्षसेश्वरः ॥ २५ ॥

अर्थ—तब वह सीता लता के लपेट की भांति बड़े २ वृक्षों को आलिङ्गन करती हुई और हे राम! "मुझे छोड़ कहां चले गये" इस प्रकार दुःखित हो वार २ विलाप करती हुई को राक्षसाधिपति रावण प्राप्त हुआ, वन में राम से वियुक्त होकर राम २ पुकारती हुई सीता को यम तुल्य रावण ने अपने जीवन के अन्त के लिये उसको बालों से पकड़ लिया, वैदेही का इस प्रकार अपमान होने से सम्पूर्ण चराचर जगत की मर्यादा भङ्ग होकर घोर अन्धकार छागया, और फिर वह रावण राम राम तथा लक्ष्मण लक्ष्मण पुकारकर रोती हुई को आकाश मार्ग द्वारा लेगया ॥

इति एकोनत्रिंशः सर्गः

अथ त्रिंशः सर्गः

सं०—अब आकाश मार्ग द्वारा जाते हुए सीता का रावण को धिक्कारना कथन करते हैं :—

खमुत्पतन्तं तं दृष्ट्वा मैथिली जनकात्मजा ।
रुदती करुणं सीता ह्रियमाणा तमब्रवीत् ॥१॥

अर्थ—रावण को यान द्वारा आकाश की ओर उड़ता देख कर जनकात्मजा दुःखित हो अत्यन्त व्याकुल चित्त हरण होकर जाती हुई रावण से बोली किः—

न व्यपत्रपसे नीच कर्मणानेन रावण ।
ज्ञात्वा विरहितां यो मां चोरयित्वा पलायसे ॥२॥
त्वयैव नूनं दुष्टात्मन्भीरुणा हर्तुमिच्छता ।
ममापवाहितो भर्ता मृगरूपेण मायया ॥३॥
यो हि मामुद्यतस्त्रातुं सोऽप्ययं विनिपातितः ।
गृध्रराजः पुराणोऽसौ श्वशुरस्य सखा मम ॥४॥

अर्थ—हे नीच ! इस कर्म से तुझे लज्जा नहीं आती जो तू मुझे अकेली जान चुराकर भागा जारहा है, हे दुष्टात्मन् ! तुझ कायर ने मुझको हरने की इच्छा से मृगरूप छल द्वारा मेरे प्रिय पति को मुझसे बहुत दूर पहुंचाया है, और जो मेरे श्वसुर महाराज दशरथ का सखा मेरी रक्षा के लिये उद्यत हुआ था उस वृद्ध गृध्रराज को भी तैंने मार दिया है ॥

परमं खलु ते वीर्य्यं दृश्यते राक्षसाधम ।
विश्राव्य नामधेयं हि युद्धेनास्मि जितात्वया॥५॥
ईदृशं गर्हितं कर्म कथं कृत्वा न लज्जसे ।
स्त्रियाश्चाहरणं नीच रहिते च परस्य च ॥६॥

कथयिष्यन्ति लोकेषु पुरुषाः कर्म कुत्सितम् ।
सुनृशंसमधर्मिष्टं तव शौटीर्यमानिनः ॥७॥
धिक् ते शौर्यं च सत्त्वं च यत्त्वया कथितं तदा ।
कुलाक्रोशकरं लोके धिक् ते चारित्रमीदृशम् ॥८॥

अर्थ—हे राक्षसाधम ! मुझको तेरा बल बड़ा दिखाई देता है जो तू युद्ध में अपना नाम सुना मुझे जीतकर लाया है अर्थात् मैं तुझको तब बड़ा बलवान् समझती जब तू राम के सन्मुख मुझको युद्ध में जीतकर लाता, हे राक्षस ! निर्जन में परस्त्रीहरणरूप निन्दित कर्म करके क्या तुझे लज्जा नहीं आती, जगत् में लोग तुझ शूरवीर के इस निन्दित, निर्दय तथा अधर्मयुक्त कर्म का कीर्तन किया करेंगे, हे कुल को कलंकित करने वाले ! तेरी शूरवीरता और साहस को धिक्कार है जो तैने उस समय मुझसे कहा था अर्थात् संन्यासी बनकर मेरे पास गया था अधिक क्या लोक में तेरे जैसे चरित्र को धिक्कार है ॥

किं शक्यं कर्तुमेवं हि यज्जवे नैव धावसि ।
मुहूर्तमपि तिष्ठत्वं न जीवन्प्रतियास्यसि ॥९॥
नहि चक्षुःपथं प्राप्यं तयोः पार्थिवपुत्रयोः ।
ससैन्योऽपि समर्थस्त्वं मुहूर्तमपि जीवितुम् ॥१०॥
न त्वं तयोः शरस्पर्शं सोढुं शक्तः कथंचन ।
वने प्रज्वलितस्येव स्पर्शमग्नेर्विहंगमः ॥११॥

साधु कृत्वात्मनः पथ्यं साधु मां मुञ्च रावण ।
मत्प्रधर्षणसंक्रुद्धो भ्रात्रा सह पतिर्मम ।
विधास्यति विनाशाय त्वं मा यदि न मुंचसि ॥१२॥

अर्थ—इस समय क्या कियाजाय जब तू इस प्रकार वेग से उड़ा जारहा है, यदि कुछ काल भी ठहरजाय तो तू जीवित घर न जायगा, उन दोनों राजकुमारों को दीखने पर तू सेना सहित भी एक मुहूर्त भर जीवित नहीं रहसक्ता, उन दोनों भाइयों के बाणरूप घावों को कौन कहे तू उनका छूना भी नहीं सहसक्ता, जैसे वन में लगी अग्नि का स्पर्श पक्षी नहीं करसक्ते, हे रावण ! अपना हित समझकर अब भी मुझे छोड़दे, नहीं तो मेरे अपमान से क्रुद्ध हुए मेरे पति अपने भाई के साथ तेरे नाश का अवश्य यत्न करेंगे ॥

येन त्वं व्यवसायेन बलान्मां हर्तुमिच्छसि ।
व्यवसायस्तु ते नीच भविष्यति निरर्थकः ॥१३॥
नह्यहं तमपश्यन्ती भर्तारं विबुधोपमम् ।
उत्सहे शत्रुवशगा प्राणान्धारयितुं चिरम् ॥१४॥
न नूनं चात्मनः श्रेयः पथ्यं वा समवेक्षसे ।
मुमूर्षूणां तु सर्वेषां यत्पथ्यं तन्न रोचते ॥१५॥

अर्थ—हे नीच रावण ! तू जिस विचार से मुझे बलपूर्वक हरकर लेजाने की इच्छा करता है वह तेरा विचार निरर्थक होगा, मैं देवतुल्य उस अपने भर्त्ता को न देखती हुई शत्रुओं के

वश पड़ी चिरकाल तक अपने प्राणों को धारण न करसकुंगी, हे रावण ! निःसन्देह तू अपनी भलाई वा पथ्य नहीं देखता, अधिक क्या मृत्यु के निकट आने पर सबका जो पथ्य है वह उनको नहीं रुचता ॥

पश्यामीह हि कण्ठे त्वां कालपाशावपाशितम् ।
यथा चास्मिन्भयस्थाने न बिभेषि निशाचर ॥१६॥
एतच्चान्यच्च परुषं वैदेही रावणाङ्कगा ।
भयशोकसमाविष्टा करुणं विललाप ह ॥१७॥

अर्थ—हे निशाचर! जिस प्रकार तू इस भयस्थानमें भी नहीं डरता, इससे ज्ञात होता है कि तू न रुकने वाली कालपाश से बांधा गया है, रावण के समीप स्थित सीता भय तथा शोक से युक्त हुई अनेक प्रकार के कठोर और करुणामय विलाप करती हुई गई ॥

इति त्रिंशः सर्गः

अथ एकात्रिंशः सर्गः

सं०—अब रावण का सीता को लङ्का में लेजाना कथन करते हैं :—

ह्रियमाणा तु वैदेही कंचिन्नाथमपश्यती ।
ददर्श गिरिशृङ्गस्थान्पञ्च वानरपुंगवान् ॥ १ ॥

तेषां मध्ये विशालाक्षी कौशेयं कनकप्रभम् ।
उत्तरीयं वरारोहा शुभान्याभरणानि च ॥ २ ॥
मुमोच यदि रामाय शंसेयुरिति भामिनी ।
वस्त्रमुत्सृज्य तन्मध्ये निक्षिप्तं सहभूषणम् ॥ ३ ॥
संभ्रमात्तु दशग्रीवस्तत्कर्म च न बुद्धवान् ।
पिंगाक्षास्तां विशालाक्षीं नेत्रैरनिमिषैरिव ॥ ४ ॥

अर्थ—हरण कीहुई सीता अपना कोई रक्षक न देखती हुई आकाश मार्ग में चली जारही थी कि पर्वत के शिखर पर पांच श्रेष्ठ वानरों*को देखा, और उस विशाल नेत्रों वाली वरारोहा ने उनके मध्य में सुवर्ण की चमक वाला अर्थात् सुनहरी गोटे वाला रेशमी दुपट्टा तथा उत्तम भूषण उतार कर ऊपर से छोड़े कि यदि यहां राम आवें तो उनसे कहें कि सीता को रावण हरलेगया है, सीता के छोड़े हुए वस्त्राभूषण उन्हीं वानरों के मध्य में गिरे, और शीघ्रता के कारण व्याकुल हुए रावण ने सीता के इस कर्म को नहीं जाना परन्तु उन वानरों ने उस विशाल नेत्रों वाली सीता को रुदन करते हुए प्रत्यक्ष के समान देखा ॥

विक्रोशन्तीं तदा सीतां ददृशुर्वानरोत्तमाः ।
स च पम्पामतिक्रम्य लङ्कामभिमुखः पुरीम् ॥५॥

---

* "वानर" वास्तव में वन में विचरने वाले मनुष्य ही थे, परन्तु यहां कथा को आश्चर्यजनक बनाने के लिये कवि ने इनको शाखामृगरूप से वर्णन किया है ॥

जगाम मैथिलीं गृह्य रुदतीं राक्षसेश्वरः ।
तां जहार सुसंहृष्टो रावणो मृत्युमात्मनः ॥ ६ ॥
वनानि सरितः शैलान्सरांसि च विहायसा ।
स क्षिप्रं समतीयाय शरश्चापादिव च्युतः ॥ ७ ॥

अर्थ—उस पुकारती तथा रुदन करती हुई सीता को उस समय उन श्रेष्ठ वानरों ने देखा कि वह राक्षसपति रावण पम्पा को लांघकर रुदन करती हुई मैथिली को ग्रहण किये लङ्कापुरी की ओर गया, मानो रावण प्रसन्न होकर अपनी मृत्यु को अपने साथ लेगया, और वन, नदी, पर्वत तथा सरोवरों को आकाश मार्ग द्वारा बाण से छुटे हुए तीर की भांति शीघ्र ही पार होकर :—

तिमिनक्रनिकेतं तु वरुणालयमक्षयम् ।
सरितां शरणं गत्वा समतीताय सागरम् ॥ ८ ॥
प्रविवेश पुरीं लङ्कां रूपिणीं मृत्युमात्मनः ।
सोऽभिगम्य पुरीं लङ्कां सुविभक्त महापथान् ॥९॥
संरूढकक्ष्यां बहुलां स्वमन्तःपुरमाविशत् ।
तत्र तामसितापांगीं शोक मोहसमन्विताम् ।
निदधे रावणः सीतां मयो मायामिवासुरीम् ॥१०॥

अर्थ—मच्छ मगरों से भरे हुए वरुणालय तथा नदियों की शरण समुद्र पर पहुंच उससे पार हो अपनी मृत्युरूप लङ्कापुरी में प्रविष्ट हुआ फिर वह चौड़ी सड़कों वाली लङ्कापुरी में प्रविष्ट

होकर सेवकों से भरी हुई ड्योढ़ियों वाले अपने विशाल अन्तःपुर में गया और वहां उस श्याम नेत्रों वाली शोक मोह से युक्त उस सीता को छिपाकर रखा ॥

अब्रवीच्च दशग्रीवः पिशाचीर्घोरदर्शनाः ।
यथा नैनां पुमान्स्त्री वा सीतां पश्यत्यसम्मतः॥११॥
मुक्तामणिसुवर्णानि वस्त्राण्याभरणानि च ।
यद्यदिच्छेत्तदेवास्या देयं मच्छन्दतो यथा ॥१२॥
या च वक्ष्यति वैदेहीं वचनं किंचिदप्रियम् ।
अज्ञानाद्यदि वा ज्ञानान्न तस्या जीवितं प्रियम्॥१३॥

अर्थ–और रावण ने भयङ्करदर्शन वाली पिशाचियों से कहा कि इस सीता को विना हमारी अनुमति के कोई पुरुष वा स्त्री न देखने पावे, और मोती, माणिक, सुवर्ण, वस्त्र तथा आभूषण जो २ यह चाहे वही इसको हमारी इच्छा से दो, और जो कोई सीता को अज्ञान वा ज्ञान से कुछ भी अप्रिय वचन कहेगी उसका जीवन प्रिय न होगा अर्थात् वह प्राणों से वियुक्त कीजायगी ॥

तथोक्त्वा राक्षसीस्तास्तु राक्षसेन्द्रः प्रतापवान् ।
निष्क्रम्यान्तःपुरात्तस्मात्किंकृत्यमितिचिन्तयन्॥१४॥
ददर्शाष्टौ महावीर्यान् राक्षसान् पिशिताशनान् ।
उवाच तानिदं वाक्यं प्रशस्य बलवीर्य्यतः ॥१५॥

अर्थ–इस प्रकार उन राक्षसियों को आज्ञा देकर प्रतापवान् रावण उस अन्तःपुर से निकलकर यह सोचने लगा कि अब

मुझे क्या करना चाहिये, इसी अन्तर में उसने रुधिर पान करने वाले, बड़े बलवान् आठ राक्षस देखे जिनके बल वीर्य्य की प्रशंसा करके उनको यह वाक्य बोला कि :—

जनस्थाने वसद्भिस्तु भवद्भी राममाश्रिता ।
प्रवृत्तिरुपनेतव्या किंकरोतीति तत्त्वतः ॥ १६ ॥
अप्रमादाच्च गन्तव्यं सर्वैरेव निशाचरैः ।
कर्तव्यश्च सदायत्नो राघवस्य वधं प्रति ॥ १७ ॥
युष्माकं तु बलं ज्ञातं बहुशो रणमूर्धनि ।
अतश्चास्मिञ्जनस्थाने मया यूयं निवेशिताः॥१८॥

अर्थ–आप लोग जनस्थान में जाकर वास करते हुए राम का समाचार ठीक २ देते रहें कि वह क्या करता है, सो तुम सब निशाचर सावधान होकर जाओ और राम के वध का सदा यत्न करते रहो, तुम्हारा बल मैंने रण में सर्वोपरि बहुत वार देखा है अर्थात् तुम रण में अनेक वार विजय को प्राप्त हुए हो, इसलिये मैंने तुम्हें जनस्थान में स्थित किया है ॥

ततः प्रियं वाक्यमुपेत्य राक्षसामहार्थमष्टाव-
भिवाद्यरावणम् । विहाय लङ्कां सहिताः प्रत-
स्थिरे यतो जनस्थानमलक्ष्यदर्शनाः ॥१९॥

अर्थ–तदनन्तर वह आठो राक्षस रावण के उक्त प्रिय अर्थयुक्त वचन सुन उनको नमस्कार कर इकट्ठे हो लङ्कापुरी को छोड़ गुप्तरूप से जनस्थान को गये ॥

ततस्तु सीतामुपलभ्य रावणाः सुसंप्रहृष्टः परि-
गृह्यमैथिलीम्। प्रसज्य रामेण च वैरमुत्तमं
बभूव मोहान्मुदितः स रावणः ॥ २० ॥

अर्थ—और आप सीता को प्राप्त कर हर्षित हो राक्षसियों को सौंप मोहवशात् राम से वैरकर प्रसन्न हो अपने घर बैठा ॥

इति एकत्रिंशः सर्गः

अथ द्वात्रिंशः सर्गः

सं०—अब सीता के प्रति रावण की अयोग्य प्रेरणा कथन करते हैं :—

संदिश्य राक्षसान्घोरान् रावणोऽष्टौ महाबलान् ।
आत्मानं बुद्धि वैक्लव्यात्कृतकृत्यममन्यत ॥१॥
स चिन्तयानो वैदेहीं कामबाणैः प्रपीडितः ।
प्रविवेश गृहं रम्यं सीतां द्रष्टुमभित्वरन् ॥२॥
स प्रविश्य तु तद्वेश्म रावणो राक्षसाधिपः ।
आपश्यद्राक्षसी मध्ये सीतां दुःख परायणाम् ॥३॥
अश्रुपूर्ण मुखीं दीनां शोकभारा व पीडिताम् ।
वायु वेगैरिवा क्रांतां मज्ञंतीं नावमर्णवे ॥४॥

अर्थ—आठ महावली राक्षसों को आज्ञा देकर रावण बुद्धि

के विपरीत होने से अपने आपको कृतकृत्य समझने लगा, वह कामरूप बाणों से पीड़ित हो सीता का चिन्तन करता हुआ उसको देखने के लिये शीघ्र ही रमणीय गृह में प्रविष्ट हुआ, और वहां उसने राक्षसियों के मध्य में दुःखपरायण, आंसुओं से पूर्ण मुखवाली, दीन तथा शोकभार से पीड़ित सीता को इस प्रकार कांपती हुई देखा, जैसे वायु के वेग से नौका समुद्र में कांपती है।

अधोगतमुखीं सीतां तामभ्येत्यनिशाचरः ।
उवाचवाक्यंपापात्मा सीतां लोभितुमिच्छया ॥५॥

अर्थ—ऐसी दीन दशा में नीचे मुख किये बैठी हुई सीता के समीप जाकर वह पापात्मा राक्षस उसको लुभाने की इच्छा से बोला कि :—

यदिदं राज्य तन्त्रं मे त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम् ।
जीवितं च विशालाक्षि त्वं मे प्राणैर्गरीयसी ॥६॥
बह्वीनामुत्तमस्त्रीणां मम योऽसौ परिग्रहः ।
तासां त्वमीश्वरी सीते मम भार्या भव प्रिये ॥७॥
भजस्व सीते मामेव भर्ताहं सदृशस्तव ।
लङ्कायाः सुमहद्राज्यमिदं त्वमनुपालय ॥८॥

अर्थ—हे विशाल नेत्रों वाली सीते! मेरा यह सम्पूर्ण राज्य तथा मेरा जीवन भी तेरे आश्रित और तू मुझे प्राणों से अधिक प्रिय है, हे सीते! मेरी अन्य जो बहुत सी स्त्रियें हैं उन सब की तू स्वामिनी

होगी, सो हे प्रिये ! तू मेरी भार्या बन, हे सीते ! तू मुझ सदृश पति को स्वीकार करके यह जो लङ्का का बहुत बड़ा राज्य है इसका पालन कर ॥

त्वत्प्रेष्या मद्विधाश्चैव देवाश्चापि चराचरम् ।
अभिषेक जलक्लिन्ना तुष्टा च रमयस्व च ॥९॥
दुष्कृतं यत्पुरा कर्म वनवासेन तद्गतम् ।
यच्च ते सुकृतं कर्म तस्येदं फलमाप्नु हि ॥१०॥
इह सर्वाणि माल्यानि दिव्यगन्धानि मैथिलि ।
भूषणानि च मुख्यानि तानि सेव मया सह॥११॥

अर्थ–मेरे जैसे तथा देवता और चर अचर सब तेरे सेवक होंगे, तू अभिषेक के जल से स्नान करके यहां आनन्दपूर्वक रमण कर, जो तेरा पूर्व का दुष्कर्म था वह बनवास से निवृत्त होगया अब तू अपने सुकृत कर्म के फल को यहां प्राप्त हो, हे मैथिलि ! यहां पर सब मालायें, दिव्य गन्ध और जो सब मुख्य भूषण हैं उनको मेरे साथ भोग ॥

पुष्पकं नाम सुश्रोणि भ्रातुर्वैश्रवणस्य मे ।
विमानं सूर्य्यसंकाशं तरसा निर्जितं रणे ॥१२॥
विशालं रमणीयं च तद्विमानं मनो जवम् ।
तत्र सीते मया सार्धं विहरस्व यथा सुखम् ॥१३॥

अर्थ–हे सुश्रोणि ! कुवेर का पुष्पक नाम विमान जो सूर्य्य के समान देदीप्यमान है और जिसको मैं रण में जीतकर लाया हूं, वह अति विशाल, रमणीय, मनोहर तथा मन से भी अधिक

वेग वाला है सो हे सीते ! उस विमान पर चढ़कर मेरे साथ नाना प्रकार के विहार करती हुई सुखपूर्वक विचर ॥

वदनं पद्मसंकाशं विमलं चारुदर्शनम् ।
शोकार्तं तु वरारोहे न भ्राजति वरानने ॥१४॥
एवं वदाति तस्मिन् सा वस्त्रान्तेन वराङ्गना ।
पिधायेन्दुनिभं सीता मन्दमश्रूण्यवर्तयत् ॥१५॥
ध्यायन्तीं तमिवास्वस्थां सीतां चिन्ताहतप्रभाम् ।
उवाच वचनं वीरो रावणो रजनीचरः ॥ १६ ॥

अर्थ—हे वरारोहे ! हे सुन्दर मुखि ! तेरा पद्मतुल्य निर्मल तथा सुन्दर दर्शन वाला मुख शोक से पीड़ित हुआ शोभा नहीं पाता, रावण के ऐसा कहने पर वह वराङ्गना=उत्तम अङ्गोंवाली सीता अपने मुखचन्द्र को वस्त्र के अंचल से ढांपकर मन्द २ आंसु बहाने लगी, चिन्ता से नष्ट हुई कान्तिवाली तथा अस्वस्थ सीता को रजनीचर वीर रावण फिर यह वचन बोला कि :—

अलं व्रीडेन वैदेहि धर्मलोप कृतेन ते ।
आर्षोऽयं देवि निष्पन्दो यस्त्वामभि भविष्यति॥१७॥
प्रसादं कुरु मे क्षिप्रं वश्यो दासोऽहमस्मि ते ।
एवमुक्त्वा दशग्रीवो मैथिलीं जनकात्मजाम्॥१८॥

अर्थ—हे वैदेहि ! धर्मलोप=धर्मनाश के भय से तू लज्जा मतकर यह प्रेमरूप प्रार्थना जिससे मैं तुझे अपने वशीभूत किया चाहता हूं

आर्ष=वैदिक* है, तुम मुझपर शीघ्र ही प्रसन्न होओ, मैं तुम्हारा वशवर्ती दास हूं, इस प्रकार सीता को रावण ने वार २ कहा ॥

इति द्वात्रिंशः सर्गः

अथ त्रयस्त्रिंशः सर्गः

सं०–अब सीता का निर्भय होकर उत्तर और रावण का उस पर क्रोध कथन करते हैं :—

सा तथोक्ता तु वैदेही निर्भया शोककर्शिता ।
तृणमन्तरतः कृत्वा रावणं प्रत्यभाषत ॥१॥
राजा दशरथो नाम धर्मसेतुरिवाचलः ।
सत्यसन्धः परिज्ञातो यस्य पुत्रः स राघवः ॥२॥
रामो नाम स धर्मात्मा त्रिषु लोकेषु विश्रुतः ।
दीर्घ बाहुर्विशालाक्षो दैवतं स पतिर्मम ॥३॥

अर्थ–जब रावण ने सीता से उक्त प्रकार कहा तब वह निर्भय होकर शोक से दुर्बल हुई मध्य में तृण† रखकर रावण से बोली कि जगद्विख्यात राजा दशरथ जो मानो अचल धर्म का सेतु तथा सत्यप्रतिज्ञ हुए हैं उनका पुत्र वह राघव है, वह राम नामक धर्मात्मा तीनों लोकों में विख्यात, महाबाहु तथा विशाल नेत्रों वाला मेरा पति मेरा देवता=पूज्य है ॥

* रावण का यह कथन सीता को फुसलाने के लिये है वास्तव में ठीक नहीं ॥

† तृण रखने का तात्पर्य्य साक्षात् परपुरुष से बात न करने का है ॥

इक्ष्वाकूणां कुले जातः सिंहस्कन्धो महाद्युतिः ।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रायस्ते प्राणान्वधिष्यति ॥४॥
प्रत्यक्षं यद्यहं तस्य त्वया वै धर्षिता बलात् ।
शयिता त्वं हतः संख्ये जनस्थाने यथा खरः॥५॥

अर्थ—वह इक्ष्वाकु कुलोत्पन्न, सिंह के समान कन्धों वाला तथा द्युतिमान् है जो अपने भाई लक्ष्मण के साथ यहां आकर तेरे प्राणों का हनन करेगा, यदि तू उनके सन्मुख मुझको बल से लाता तो तू भी युद्ध में इसी प्रकार मरा हुआ लेटता जैसे जनस्थान में खर सदा के लिये शयन करगया ॥

गतासुस्त्वं गतश्रीको गतसत्त्वो गतेन्द्रियः ।
लंका वैधव्यसंयुक्ता त्वत्कृतेन भविष्यति ॥६॥
न ते पापमिदं कर्म सुखोदर्कं भविष्यति ।
याहं नीता विनाभावं पतिपार्श्वात्त्वया बलात्॥७॥

अर्थ—तू अब मरचुका, तेरी शोभा दूर होचुकी, तेरा अन्तःकरण मलिन होगया, तेरे इन्द्रिय नष्ट होगये, तेरे इस निन्दित कर्म से सारी लंका विधवा होजायगी, यह तेरा पापकर्म सुख वाला न होगा जो तू मुझे बलात्कार मेरे पति से पृथक् करके ले आया है ॥

यदा विनाशो भूतानां दृश्यते कालचोदितः ।
तदा कार्ये प्रमाद्यन्ति नराः कालवशं गताः॥८॥

अर्थ–मनुष्यों का काल से प्रेरा हुआ विनाश जब सन्मुख आता है तब काल के वशीभूत हुए नर अपने कर्तव्य में प्रमाद करते हैं।

मां प्रधृष्य स ते कालःप्राप्तोऽयं राक्षसाधम।
आत्मनो राक्षसानां च वधायान्तःपुरस्य च ॥९॥

अर्थ–इसी प्रकार हे अधम राक्षस! मेरे लाने से तेरे लिये, राक्षसों के लिये और तेरे अन्तःपुर के वध के लिये तेरा काल आया है॥

इदं शरीरं निःसंज्ञं बन्ध वा घातयस्व वा।
नेदं शरीरं रक्ष्यं मे जीवितं वापि राक्षस ॥१०॥
न तु शक्यमपक्रोशं पृथिव्यां दातुमात्मनः।
एवमुक्त्वा तु वैदेही क्रोधात्सु परुषं वचः ॥११॥

अर्थ–हे राक्षस! इस अचेतन शरीर को चाहे बांध, चाहे मारडाल, मुझको अपने जीवन तथा इस शरीर की रक्षा आवश्यक नहीं, चाहे मेरे प्राण वियुक्त होजायं परन्तु मैं पृथिवी पर अपनी निन्दा नहीं कराउंगी, इस प्रकार क्रोधयुक्त वचन कहकर सीता फिर रावण से नहीं बोली॥

सीताया वचनं श्रुत्वा परुषं रोमहर्षणम्।
प्रत्युवाच ततः सीतां भयसन्दर्शनं वचः ॥१२॥
शृणु वैदेहि मद्वाक्यं मासान्द्वादश भामिनि।
कालेनानेन नाभ्येषि यदि मां चारुहासिनि ॥१३॥

अर्थ—रोंगटे खड़े करने वाले सीतां के उक्त कठोर वचन सुनकर रावण भय दिखलाने वाला यह वचन सीता से बोला कि हे मैथिलि ! तू मेरी बात सुन, हे सुन्दर हंसने वाली जानकी ! यदि तू बारह मास तक मुझे स्वीकार न करेगी तो :—

ततस्त्वां प्रातराशार्थं सूदाश्छेत्स्यन्ति लेशशः ।
इत्युक्त्वा परुषं वाक्यं रावणः शत्रुरावणः ॥१४॥
राक्षसीश्च ततः क्रुद्ध इदं वचनमब्रवीत् ।
शीघ्रमेव हि राक्षस्यो विरूपा घोरदर्शनाः ॥१५॥
दर्पमस्यापनेष्यन्तु मांसशोणित भोजनाः ।
वचनादेव तास्तस्य मैथिलीं पर्यवारयन् ॥ १६ ॥

अर्थ—मेरे रसोइये प्रातराश=प्रातःकाल भोजन के लिये तेरे टुकड़े २ करदेंगे, शत्रुओं के रुलाने वाला रावण सीता से इस प्रकार कठोर वाक्य कहकर, फिर क्रुद्ध हुआ राक्षसियों से यह वचन बोला कि विरूप, भयङ्करदर्शन वालीं और मांस तथा रुधिर के खाने वालीं राक्षसियें इसके दर्प=हठ को शीघ्र ही दूर करें, रावण का यह वचन सुनते ही राक्षसियों ने सीता को चारो ओर से घेर लिया ॥

स ताः प्रोवाच राजासौ रावणो घोरदर्शनाः ।
प्रचल्य चरणोत्कर्षैर्दारयन्निव मेदिनीम् ॥ १७ ॥
अशोकवनिकामध्ये मैथिली नीयतामिति ।
तत्रेयं रक्ष्यतां गूढं युष्माभिः परिवारिता ॥ १८ ॥

अर्थ–तब रावण चरणों के प्रहार से मानो पृथिवी को फोड़ता हुआ उन भयङ्करदर्शन वाली राक्षसियों से बोला कि इस मैथिली को अशोकवाटिका में लेजाओ और तुम वहां इसको चारो ओर से घेरकर गुप्तरूप से इसकी रक्षा करो ॥

तत्रैनां तर्जनैर्घोरैः पुनः सान्त्वैश्च मैथिलीम् ।
आनयध्वं वशं सर्वा वन्यां गजवधूमिव ॥ १९ ॥
इति प्रतिसमादिष्टा राक्षस्यो रावणेन ताः ।
अशोकवनिकां जग्मुर्मैथिलीं परिगृह्य तु ॥ २० ॥

अर्थ–और वहां इसको घोर झिड़कें तथा आश्वासन देकर जङ्गली हथिनी की भांति सब प्रकार से अपने वश में लाओ, इस प्रकार रावण से आज्ञा पाई हुई वह राक्षसियें सीता को लेकर अशोकवाटिका को गईं ॥

सर्व काम फलैर्वृक्षैर्नानापुष्पफलैर्वृताम् ।
सर्वकालमदैश्चापि द्विजैः समुपसेविताम् ॥ २१ ॥
शोकेन महता त्रस्ता मैथिली जनकात्मजा ।
न शर्म लभते भीरुः पाशबद्धा मृगी यथा ॥२२॥

अर्थ–जो वाटिका सब रसों के फलों वाले वृक्षों और नाना प्रकार के पुष्प तथा फलों से भरी हुई और जो सब कालों में मत्त पक्षियों से सेवित है, परन्तु जैसे पाश में बन्धी हुई मृगी व्याकुल हो इसी प्रकार महाशोक से त्रसित हुई सीता उस वाटिका में महा अशान्ति को प्राप्त थी ॥

न विन्दते तत्र तु शर्म मैथिली विरूप-
नेत्राभिरतीव तर्जिता। पतिं स्मरन्ती दयितं
च देवरं विचेतना भृद्भयशोकपीडिता॥२३॥

अर्थ—और वहां मैथिली उन विरूप नेत्रों वाली राक्षसियों से झिड़कें खाती हुई अशान्ति को प्राप्त अपने प्यारे पति और देवर का स्मरण करती हुई शोक से पीड़ित व्याकुल होगई॥

इति त्रयस्त्रिंशः सर्गः

अथ चतुस्त्रिंशः सर्गः

सं०—अब राम का लौटकर आश्रम में आना कथन करते हैं:—

राक्षसं मृगरूपेण चरन्तं कामरूपिणम्।
निहत्य रामो मारीचं तूर्णं पथि न्यवर्तत॥ १॥
काञ्चनश्च मृगो भूत्वा व्यपनीयाश्रमात्तुमाम्।
दूरं नीत्वाथ मारीचो राक्षसोऽभूच्छराहतः॥ २॥
हा लक्ष्मण हतोऽस्मीति यद्वाक्यं व्याजहार ह।
अपि स्वस्ति भवेद्द्वाभ्यां रहिताभ्यां मया वने॥३॥
जनस्थाननिमित्तं हि कृतवैरोऽस्मि राक्षसैः।
निमित्तानि च घोराणि दृश्यन्तेऽद्य बहूनि च॥४॥

अर्थ—मृगरूप से विचरते हुए कामरूप मारीच राक्षस को

मारकर राम शीघ्र ही उसी मार्ग से लौटे, वह जितेन्द्रिय यह सोचते हुए आश्रम की ओर आये कि मारीच सोने का मृग बनकर मुझे आश्रम से दूर लेगया और जब उसको तीरों से मारा तो वह राक्षस बनगया, और उसने " हा लक्ष्मण !! मैं मारा गया " यह उच्च स्वर से कहा, सो परमात्मा ऐसी कृपा करें कि मुझसे रहित हुए दोनों सुखपूर्वक हों, जनस्थान के निमित्त मैंने राक्षसों से वैर किया हुआ है और आज निमित्त भी घोर ही प्रतीत होते हैं ॥

ततो लक्ष्मणमायान्तं ददर्श विगतप्रभम् ।
ततो विदूरे रामेण समीयाय स लक्ष्मणः ॥ ५ ॥
स दृष्ट्वा लक्ष्मणं दीनं शून्यं दशरथात्मजः ।
पर्यपृच्छत धर्मात्मा वैदेहीमागतं विना ॥ ६ ॥
प्रस्थितं दण्डकारण्यं या मामनुजगाम ह ।
क्व सा लक्ष्मण वैदेही यां हित्वा त्वमिहागतः ॥७॥

अर्थ–तदनन्तर राम ने मुरझाये हुए चेहरे वाले लक्ष्मण को आते हुए देखा, और उसके अनन्तर वह लक्ष्मण समीप आकर उनसे मिला, राम ने धर्मात्मा दशरथसुत लक्ष्मण को सीता के विना आया देखकर पूछा कि हे लक्ष्मण ! जो दण्डक वन को प्रस्थान करते हुए मेरे पीछे आई वह वैदेही कहां है ? जिसको छोड़कर तू यहां आया है ॥

राज्यभ्रष्टस्य दीनस्य दण्डकान्परिधावतः ।
क्व सा दुःखसहाया मे वैदेही तनुमध्यमा ॥ ८ ॥

यां विना नोत्सहे वीर मुहूर्तमपि जीवितुम्।
क्व सा प्राणसहाया मे सीता सुरसुतोपमा ॥ ९ ॥

अर्थ—राज्य से भ्रष्ट तथा दीन होकर दण्डक वनों की ओर प्रस्थान करते हुए जिसने दुःख में मेरा साथ दिया वह सूक्ष्म मध्य=कटि वाली वैदेही कहां है ? हे वीर ! उसके विना मैं एक मुहूर्त भी नहीं जीसक्ता, वह मेरे प्राणों की सहायक देवकन्या के तुल्य सीता कहां है ॥

कच्चिज्जीवति वैदेही प्राणैः प्रियतरा मम ।
कच्चित्प्रव्राजनं वीर न मे मिथ्या भविष्यति ॥१०॥
यदि जीवति वैदेही गमिष्याम्याश्रमं पुनः ।
संवृत्ता यदि वृत्ता सा प्राणांस्त्यक्ष्यामि लक्ष्मण॥११॥
सर्वथा रक्षसा तेन जिह्मेन सुदुरात्मना ।
वदता लक्ष्मणेत्युच्चैस्तवापि जनितं भयम् ॥१२॥

अर्थ—हे वीर ! क्या मेरे प्राणों से अधिक प्रिय वैदेही जीती है, क्या मेरा विचार मिथ्या तो नहीं होगा, यदि वैदेही जीवित है तो मैं फिर आश्रम को जाउंगा और यदि वह सत्यव्रता मरचुकी है तो हे लक्ष्मण! मैं भी प्राणों को त्यागदूंगा, उस कुटिल दुर्जन राक्षस ने "हा लक्ष्मण" इस प्रकार उच्च स्वर से कहकर मुझे भी सर्वथा भय उत्पन्न करादिया है ॥

श्रुतश्च मन्ये वैदेह्या स स्वरः सदृशो मम ।
त्रस्तया प्रेषितस्त्वं च द्रष्टुं मां शीघ्रमागतः॥१३॥

सर्वथा तु कृतं कष्टं सीतामुत्सृजता वने ।
प्रतिकर्तुं नृशंसानां रक्षसां दत्तमन्तरम् ॥ १४ ॥
दुःखिता खरघातेन राक्षसाः पिशिताशनाः ।
तै सीताः निहता घोरैर्भविष्यति न संशयः ॥१५॥

अर्थ—मैं जानता हूं कि मारीच का वह मेरे सदृश स्वर वैदेही ने सुनकर भयभीत हो तुझे भेजा है और तू मुझे देखने के लिये शीघ्र आया है, सीता को वन में छोड़कर यहां आने का तैने सर्वथा कष्ट किया और बदला लेने की इच्छा वाले दुष्ट राक्षसों को तैने अवकाश दे दिया है, खर के वध से दुखित हुए राक्षस जो रुधिर पीने वाले भयङ्कर हैं, उन्होंने निःसन्देह सीता को मार डाला होगा, इसमें संशय नहीं ॥

अहोऽस्मि व्यसने मग्नः सर्वथा रिपुनाशन ।
किंत्विदानीं करिष्यामि शंके प्राप्तव्यमीदृशम् ॥१६॥
इति सीतां वरारोहां चिन्तयन्नेव राघवः ।
आजगाम जनस्थानं त्वरया सहलक्ष्मणः ॥१७॥

अर्थ—अहो !! हे शत्रुनाशक ! मैं सर्वथा बड़ी विपत्ति में डूबा हुआ हूं, पर अब क्या करूं, स्यात् हमारा ऐसा ही भोग हो, इस प्रकार उस वरारोहा सीता का चिन्तन करते हुए राम शीघ्र ही लक्ष्मण के साथ आश्रम में आये ॥

विगर्हमाणोऽनुजमार्तरूपं क्षुधाश्रमेणैव
पिपासया च । विनिःश्वसञ्शुष्कमुखो
विषण्णःप्रतिश्रयं प्राप्य समीक्ष्य शून्यम् ॥१८॥

अर्थ—और क्षुधा, श्रम तथा प्यास से आर्त=दुःखी, छोटे भाई को निन्दते हुए, ऊंची श्वासें भरते हुए, सूखे हुए मुख तथा गिरे हुए मन वाले राम अपने निवास स्थान पर पहुंच उसको सीता से शून्य देखकर :—

स्वमाश्रमं स प्रविगाह्य वीरो विहारदेशा-
ननुसृत्य कांश्चित् । एतत्तादित्येव निवास-
भूमौ प्रहृष्ट रोमा व्यथितो बभूव ॥ १९ ॥

अर्थ—अपने सम्पूर्ण आश्रम को अवगाहन किया, और फिर विहार=घूमने फिरने के स्थानों में खोजकर फिर अन्यत्र देखने लगे कि यह उसकी क्रीड़ा का स्थान है, स्यात् यहां हो, कदाचित् फूल चुनने के स्थान में हो, इत्यादि, इसी प्रकार कहते और घूमते हुए अति दुःख के कारण उनके रोमांच खड़े होगये ॥

इति चतुस्त्रिंशः सर्गः

अथ पंचत्रिंशः सर्गः

सं०—अब सीता को न पाकर राम का "विलाप" कथन करते हैं :—

दृष्ट्वाश्रमपदं शून्यं रामो दशरथात्मजः ।
रहितां पर्णशालां च प्रविद्धान्यासनानि च ॥१॥

अदृष्ट्वा तत्र वैदेहीं सन्निरीक्ष्य च सर्वशः ।
उवाच रामः प्राक्रुश्य प्रगृह्य रुचिरौ भुजौ ॥२॥
क्व नु लक्ष्मण वैदेही कं वा देशमितो गता ।
केनाहृता वा सौमित्रे भक्षिता केन वा प्रिया॥३॥
वृक्षेणावार्य यदि मां सीते हसितुमिच्छसि ।
अलं ते हसितेनाद्य मां भजस्व सुदुःखितम्॥४॥

अर्थ—दशरथ सुत राम ने आश्रम तथा पर्णशाला को सीता से शून्य, आसनों को इधर उधर फैंका हुआ देखा और वहां सब ओर वैदेही को न देखकर राम दोनों सुन्दर भुजाओं को ऊंची उठा पुकारकर बोले कि हे लक्ष्मण ! वैदेही कहां है, यहां से किस स्थान को गई अथवा किसी से हरी गई वा किसी ने प्यारी को भक्षण करलिया है, हे सीते ! यदि तू वृक्ष की आड़ में छिपकर मुझसे हंसना चाहती है तो आज तुझे हंसी से अलं=बस है, तू शीघ्र ही मेरे समीप आ, मैं तेरे वियोग में अत्यन्त दुःखी हूं ।

यैः परिक्रीडसे सीते विश्वस्तैर्मृगपोतकैः ।
एते हीनास्त्वया सौम्ये ध्यायन्त्यस्रा विलेक्षणः ॥५॥
वृतं शोकेन महता सीताहरणजेन माम् ।
परलोके महाराजो नूनं द्रक्ष्याति मे पिता ॥ ६ ॥
कथं प्रतिज्ञां संश्रुत्य मया त्वमभियोजितः ।
अपूरयित्वातं कालं मत्सकाशमिहागतः ॥ ७ ॥

अर्थ–हे सीते ! तू जिन विश्वस्त मृग बच्चों के साथ क्रीड़ा किया करती है यह दह तुझसे हीन हुए आंसुओं से भरी हुई आंखों द्वारा तुझे चिन्तन कर रहे हैं, हे लक्ष्मण ! सीताहरण से उत्पन्न हुए शोकद्वारा महाराज मेरे पिता मुझको निःसन्देह परलोक में देखेंगे, और वह कहेंगे कि मुझसे आज्ञा दिया हुआ तू प्रतिज्ञा करके फिर कैसे उतने काल को पूर्ण न किया हुआ मेरे समीप यहां आया है ॥

कामवृत्तमनार्यं वा मृषावादिनमेव च ।
धिकृत्वामिति परे लोके व्यक्तं वक्ष्यति मे पिता॥८॥
मामिहोत्सृज्य करुणं कीर्तिर्नरमिवानृजुम् ।
क्व गच्छसि वरारोहे मामोत्सृज्य सुमध्यमे ॥ ९ ॥
त्वया विरहितश्चाहं त्यक्ष्ये जीवितमात्मनः ।
इतीव विलपन्रामः सीतादर्शनलालसः ॥ १० ॥

अर्थ–अपनी इच्छानुसार चलने वाले असत्यवादी मुझ अनार्य्य को परलोक में मेरे पिता "तुझे धिक्कार है" इस प्रकार स्पष्ट कहेंगे, हे वरारोहे ! जैसे कुटिल पुरुष को कीर्ति छोड़ देती है इसी प्रकार तू मुझ दीन को छोड़कर कहां जाती है, हे सुमध्यमे ! तू मुझको मत त्याग, तुझसे रहित हुआ मैं अपना जीवन त्याग दूंगा, इस प्रकार विलाप करते हुए सीता के दर्शन की लालसा वाले राम अति व्याकुल होगये ॥

पंकमासाद्य विपुलं सीदन्तमिव कुंजरम् ।
लक्ष्मणोराममत्यर्थमुवाच हितकाम्यया ॥ ११ ॥

अर्थ—जैसे बड़े कीचड़ में फंसकर हाथी दुःखी होता है इसी प्रकार राम को दुःखी देखकर लक्ष्मण हितकामना से उत्तम अर्थ वाला यह वाक्य बोले कि :—

मा विषादं महाबुद्धे कुरु यत्नं मया सह ।
इदं गिरिवरं वीर बहुकन्दरशोभितम् ॥ १२ ॥
प्रियकाननसंचारा वनोन्मत्ता च मैथिली ।
सा वनं वा प्रविष्टा स्यान्नलिनीं वा सुपुष्पिताम्॥१३॥
सरितं वापि संप्राप्ता मीनवञ्जुल सेविताम् ।
वित्रासयितुकामा वा लीनास्यात्काननेक्वचित् ॥१४॥

अर्थ—हे महाबुद्धे ! विषाद को प्राप्त न होकर मेरे सहित यत्न कर, हे वीर ! यह श्रेष्ठ पर्वत बहुत कन्दराओं से सुशोभित है, और सीता को वनों में घूमना अति प्रिय है, वह फूले हुए वनों में बहुत प्रसन्न होती है सो वह वन में अथवा फूली हुई पद्मिनी में गई होगी वा मछलियों और वैतों से सेवित नदी पर होगी अथवा भयभीत हुई कहीं वन में घुस गई होगी ॥

जिज्ञासमाना वैदेही त्वां मां च पुरुषर्षभ ।
तस्या ह्यन्वेषणे श्रीमन् क्षिप्रमेव यतावहे ॥ १५ ॥
वनं सर्वं विचिनुवो यत्र सा जनकात्मजा ।
मन्यसे यदि काकुत्स्थ मा स्म शोके मनःकृथाः॥१६॥

अर्थ—हे पुरुष श्रेष्ठ ! वह कहीं मुझे और तुम्हें ढूढ़ती होगी, सो हे श्रीमान् ! हमारा कर्तव्य यह है कि हम उसके ढूढ़ने में

शीघ्र ही यत्न करें, आओ सब वन को खोजें जहां वह जनकात्मजा है, और आप अपने मन में शोकित नहों ॥

एवमुक्तः स सौहार्दाल्लक्ष्मणेन समाहितः ।
सह सौमित्रिणा रामो विचेतुमुपचक्रमे ॥ १७ ॥
तौ वनानि गिरींश्चैव सरितश्च सरांसि च ।
निखिलेन विचिन्वन्तौ सीतां दशरथात्मजौ ॥१८॥
तस्य शैलस्य सानूनि शिलाश्च शिखराणि च ।
निखिलेन विचिन्वन्तौ नैव तामभिजग्मतुः॥१९॥

अर्थ—जब इस प्रकार सौहार्दपूर्वक लक्ष्मण ने राम से कहा तब वह अपने चित्त को थामकर लक्ष्मण सहित इतस्ततः ढूंढ़ने लगे, उन दोनों दशरथ सुतों ने वन, पर्वत, नदी और सरोवरों में सीता की भले प्रकार खोज की, और उस पर्वत की चोटियें, शिलायें और शिखरों को उन्होंने यत्नपूर्वक खोजा परन्तु सीता को कहीं न पाया ॥

विचित्य सर्वतः शैलं रामो लक्ष्मणमब्रवीत् ।
नेदं सुविचितं सर्वं पद्मिन्यः फुल्लपंकजाः ॥२०॥
गिरिश्चायं महाप्राज्ञ बहुकन्दर निर्झरः ।
नहि पश्यामि वैदेहीं प्राणेभ्योपि गरीयसीम्॥२१॥

अर्थ—तब सम्पूर्ण पर्वत को खोजकर राम लक्ष्मण से बोले कि हे लक्ष्मण ! इस सम्पूर्ण वन में खोज की और फूले हुए कमलों

वाली पद्मिनी और बहुत कन्दरायें तथा झरनों वाला यह पर्वत भी ढूंढ़ा परन्तु प्राणप्रिय सीता को कहीं नहीं देखता ॥

एवं स विलपन्रामः सीताहरणकर्शितः ।
दीनःशोक समाविष्टो मुहूर्तं विह्वलोऽभवत् ॥२२॥
बहुशः स तु निःश्वस्य रामो राजीवलोचनः ।
हा प्रियेति विचुक्रोश बहुशो बाष्पगद्गदः ॥२३॥

अर्थ—इस प्रकार विलाप करते हुए राम सीता के हरे जाने के कारण दुर्बल, दीन तथा शोक से आकुल हुए कुछ काल के लिये विह्वल होगये, फिर वह कमल नेत्र राम बार २ ऊंची सांस भरकर आंसुओं से गद्गद " हा प्यारी " इस प्रकार कहकर बहुत बार पुकारने लगे ॥

तं सान्त्वयामास ततो लक्ष्मणः प्रियबान्धवम् ।
बहुप्रकारं शोकार्तः प्रश्रितः प्रश्रिताञ्जलिः ॥२४॥
अनादृत्य तु तद्वाक्यं लक्ष्मणोष्ठपुटच्युतम् ।
अपश्यंस्तां प्रियां सीतां प्राक्रोशत्स पुनः पुनः ॥२५॥

अर्थ—तब शोक से पीड़ित हुए लक्ष्मण ने भाइयों से प्यार करने वाले भाई राम के सन्मुख हाथ जोड़कर उनको बहुत प्रकार से आश्वासन दिया, परन्तु लक्ष्मण के ओष्ठों से निकले हुए वाक्यों का राम ने आदर न किया और सीता को वहां न देखते हुए बार २ उसी का नाम लेकर पुकारने लगे कि :—

कर्णिकारवनं भद्रे हसन्ती देवि सेवसे ।
अलं ते परिहासेन मम बाधावहेन वै ॥२६॥

विशेषणाश्रमस्थाने हासोऽयं न प्रशस्यते ।
अवगच्छामि ते शीलं परिहास प्रियंप्रिये ॥२७॥
आगच्छ त्वं विशालाक्षि शून्योऽयमुटजस्तव ।
सुव्यक्तं राक्षसैः सीता भक्षिता वा हृतापि वा॥२८॥
नहि सा विलपन्तं मामुपसंप्रति लक्ष्मण ।
एतानि मृगयूथानि साश्रुनेत्राणि लक्ष्मण ॥२९॥

अर्थ—हे भद्रे ! तू हंसती हुई कर्णिकार वन में फिर रही है, हे देवि ! मुझे पीड़ा देने वाली हंसी से अब तू बसकर, विशेष करके आश्रम स्थान में यह हंसी अच्छी नहीं है, हे प्यारी ! तेरे हंसी के प्यारे स्वभाव को मैं भले प्रकार जानता हूं, हे विशालनेत्रे ! अब तू आ जा तेरे बिना यह कुटिया शून्य प्रतीत होती है, हा यह स्पष्ट जान पड़ता है कि राक्षसों ने सीता खाली अथवा हरली है, क्योंकि मेरे विलाप करते हुए भी वह मेरे समीप नहीं आती, हे लक्ष्मण ! यह मृगयूथ अपने नेत्रों में आंसु भरकर :—

शंसन्तीव हि मे देवीं भक्षितां रजनीचरैः ।
हा ममार्ये क्व यातासि हा साध्वि वरवर्णिनि॥३०॥
कथं नाम प्रवेक्ष्यामि शून्यमन्तःपुरं मम ।
निर्वीय इति लोको मां निर्दयश्चेति वक्ष्यति ॥३१॥
निवृत्तवनवासश्च जनकं मिथिलाधिपम् ।
कुशलं परिपृच्छन्तं कथं शक्ष्ये निरीक्षितुम् ॥३२॥

अर्थ—मानो मुझे यह कह रहे हैं कि देवी को राक्षसों ने भक्षण कर लिया है, हा मेरी आर्ये ! तू कहां चली गई,हा पतिव्रते सुन्दरी ! अब मैं अपने शून्य अन्तःपुर में कैसे प्रवेश करूंगा, क्योंकि तेरे चले जाने से मुझे लोग बलहीन, निर्दय तथा कायर कथन करेंगे, और वनवास से लौटकर जब मैं घर जाउंगा तब मिथिलाधिपति जनक मेरी कुशल पूछेंगे तो उनको कैसे देखसकुंगा ॥

विदेहराजो नूनं मां दृष्ट्वा विरहितं तया ।
सुताविनाशसंतप्तो मोहस्य वशमेष्यति ॥३३॥
अथवा न गमिष्यामि पुरीं भरतपालिताम् ।
स्वर्गोऽपि हि तया हीनः शून्य एवमतो मम ॥३४॥

अर्थ—निःसन्देह विदेहराज मुझको सीता से रहित देखकर पुत्री के विनाश से संतप्त हुए मूर्छित होजावेंगे, अथवा अब मैं भरत से पालित पुरी को नहीं जाउंगा, मेरे लिये सीता से बिना स्वर्ग भी शून्य ही है ॥

तन्मामुत्सृज्य हि वने गच्छायोध्यापुरीं शुभाम् ।
न त्वहं तां विना सीतां जीवेयं हि कथंचन ॥३५॥
गाढमाश्लिष्य भरतो वाच्यो मद्वचनात्त्वया ।
अनुज्ञातोऽसि रामेण पालयेति वसुन्धराम् ॥३६॥
अम्बा च मम कैकेयी सुमित्रा च त्वया विभो ।
कौसल्या वा यथान्यायमभिवाद्या ममाज्ञया ॥३७॥

अर्थ–सो हे लक्ष्मण ! मुझे यहां वन में छोड़कर तू शुभ अयोध्यापुरी को जा, मैं सीता के विना किसी प्रकार भी जीवित नहीं रहसक्ता, भरत को भले प्रकार आलिंगन करके मेरे वचन से यह कहना कि राम ने तेरे लिये यह आज्ञा दी है कि तू पृथिवी का पालन कर, और हे समर्थ ! मेरी माता कैकेयी, सुमित्रा तथा कौसल्या को यथायोग्य अभिवादन और मेरी आज्ञा से उनकी सदा रक्षा करना ॥

सीतायाश्च विनाशोऽयं मम चामित्रसूदन ।
विस्तारेण जनन्या मे विनिवेद्यस्त्वया भवेत्॥३८॥

अर्थ–और हे शत्रुओं को दमन करने वाले ! सीता तथा मेरा विनाश तैने विस्तारपूर्वक मेरी जननी को बतलाना ॥

इति विलपति राघवे तु दीने वनमुपगम्य तया विना सुकेश्या । भयविकलमुखस्तु लक्ष्मणोऽपि व्यथितमना भृशमातुरो बभूव ॥ ३९ ॥

अर्थ–इस प्रकार उस सुन्दर केशों वाली के विना राम के दीन होकर वन में विलाप करते हुए लक्ष्मण भी भय से पीत मुख वाला हुआ २ दुःखित मन तथा अति पीड़ित हुआ ॥

इति पंचत्रिंशः सर्गः

अथ षट्त्रिंशः सर्गः

सं०–अब लक्ष्मण का राम को "आश्वासन" देना कथन करते हैं :—

तं तथा शोकसंतप्तं विलपन्तमनाथवत् ।
मोहेन महता युक्तं परिद्यूनमचेतसम् ॥ १ ॥
ततः सौमित्रिराश्वास्य मुहूर्त्तादिव लक्ष्मणः ।
रामं सम्बोधयामास चरणौ चाभिपीडयन् ॥२॥
महता तपसा चापि महता चापि कर्मणा ।
राज्ञा दशरथेनासील्लब्धोऽमृतमिवामरैः ॥३॥
तव चैव गुणैर्बद्धस्त्वद्वियोगान्महीपतिः ।
राजा देवत्वमापन्नो भरतस्य यथाश्रुतम् ॥४॥

अर्थ—शोक से संतप्त अनाथ की न्याईं विलाप करते हुए बड़े मोह से युक्त, दुर्वल तथा व्याकुलचित्त राम को शीघ्र ही सुमित्रा के पुत्र लक्ष्मण ने आश्वासन देकर उनके चरण पकड़ सावधान किया, और कहा कि आपको राजा दशरथ ने बड़े तप,अनुष्ठान और बड़े यज्ञादि कर्मों द्वारा देवताओं से अमृत की भांति पाया है, और आपके गुणों से बंधे हुए महीपति तुम्हारे वियोग द्वारा देवभाव=स्वर्ग को प्राप्त हुए हैं, जैसाकि आप भरत से सुन चुके हैं ॥

यदि दुःखमिदं प्राप्तं काकुत्स्थ न सहिष्यसे ।
प्राकृतश्चाल्पसत्त्वश्च इतरः कः सहिष्यसि ॥५॥
आश्वसिहि नरश्रेष्ठ प्राणिनः कस्य नापदः ।
संस्पृशन्त्यग्निवद्राजन् क्षणेन व्यपयान्ति च ॥६॥
सुमहान्त्यपि भूतानि देवाश्च पुरुषर्षभ ।
न दैवस्य प्रमुञ्चन्ति सर्वभूतानि देहिनः ॥७॥

अर्थ—सो हे काकुत्स्थ ! इस आये हुए दुःख को यदि आप न सहारेंगे तो दूसरा अल्प धैर्य्य वाला प्राकृत पुरुष कौन सहार सकता है, हे नरश्रेष्ठ ! आप स्वस्थ हों, ऐसा कौन जीवधारी है जिस पर विपत्तियें नहीं आतीं पर हे राजन् ! वह विपत्तियें अग्नि की भांति छूकर क्षण में चली जाती हैं, हे पुरुषश्रेष्ठ ! बड़े २ प्राणधारी तथा देवता और देहधारी सभी प्राणी दैव से छुटकारा नहीं पाते अर्थात् उसके अनुसार ही चलते हैं ॥

तत्त्वतो हि नरश्रेष्ठ बुद्ध्या समनुचिन्तय ।
बुद्ध्या युक्ता महाप्राज्ञा विजानन्ति शुभाशुभे ॥८॥
मामेवं हि पुरा वीर त्वमेव वहुशोक्तवान् ।
अनुशिष्याद्धि को नु त्वामपि साक्षाद्बृहस्पतिः॥९॥
बुद्धिश्च ते महाप्राज्ञ देवैरपि दुरन्वया ।
शोकेनाभिप्रसुप्तं ते ज्ञानं सम्बोधयाम्यहम् ॥१०॥

अर्थ—हे नरश्रेष्ठ ! बुद्धि से ठीक २ चिन्तन करके बुद्धियुक्त महाप्राज्ञ पुरुष शुभाशुभ को जानलेते हैं, हे वीर ! आपही मुझे अनेकवार इसी प्रकार कह चुके हैं आपको कौन शिक्षा दे, चाहे साक्षात् बृहस्पति ही क्यों न हो, हे महाप्राज्ञ ! आपकी बुद्धि को देवता भी नहीं पहुंच सकते, शोक से सोई हुई आपकी बुद्धि को मैं जगाता हूं ॥

इति षट्त्रिंशः सर्गः

अथ सप्तत्रिंशः सर्गः

सं०—अब जटायु का मिलना और उससे सीता का वृतान्त सुनना कथन करते हैं :—

पूर्वजोऽप्युक्तवाक्यस्तु लक्ष्मणेन सुभाषितम् ।
सारग्राही महासारं प्रतिजग्राह राघवः ॥ १ ॥
किं करिष्यावहे वत्स क्व गच्छाव लक्ष्मण ।
केनोपायेन पश्यावः सीतामिह विचिन्तय ॥ २ ॥
तं तथा परितापार्तं लक्ष्मणो वाक्यमब्रवीत् ।
इदमेव जनस्थानं त्वमन्वेषितुमर्हसि ॥ ३ ॥
त्वद्विधा बुद्धिसम्पन्ना महात्मानो नरर्षभाः ।
आपत्सु न प्रकम्पन्ते वायुवेगैरिवाचलाः ॥ ४ ॥

अर्थ—उत्तम रीति से कहे हुए लक्ष्मण के उक्त वाक्य सुन कर सारग्राही राम ने भी उसके महासार को ग्रहण कर कहा कि हे लक्ष्मण ! हम क्या करें, कहां जायें, किस उपाय से सीता का पता लगायें यह बड़ी चिन्ता है, इस प्रकार दुःख से पीड़ित राम को लक्ष्मण बोले कि इसी जनस्थान को आप खोजने योग्य हैं, और आप जैसे महात्मा पुरुषोत्तम जो बुद्धिसम्पन्न हैं वह विपत्ति में भी कम्पायमान नहीं होते, जैसे वायु के वेग से पर्वत नहीं कांपते ॥

इत्युक्तस्तद्वनं सर्वं विचचार सहलक्ष्मणः ।
ददर्श पतितं भूमौ क्षतजार्द्रं जटायुषम् ॥ ५ ॥
तं दृष्ट्वा गिरिशृङ्गाभं रामो लक्ष्मणमब्रवीत् ।
अनेन सीता वैदेही भक्षिता नात्र संशयः ॥ ६ ॥
एनं वधिष्ये दीप्ताग्रैः शरैर्घोरैरजिह्मगैः ।
इत्युक्त्वाभ्य पतद्द्रष्टुं संधाय धनुषि क्षुरम् ॥७॥

अर्थ—लक्ष्मण के इस प्रकार कथन करने पर दोनों भाई सारे वन में विचरकर खोजने लगे तब वहां उन्होंने लहू से लिपटे हुए जटायु को भूमि पर गिरा हुआ देखा, तब उस बड़े डील वाले जटायु को देखकर राम लक्ष्मण से बोले कि इसने ही सीता को भक्षण किया है इसमें संशय नहीं, इसको जलते हुए अग्र वाले तथा सीधे जाने वाले भयङ्कर तीरों से मारुंगा, यह कह धनुष में तीक्ष्ण बाण जोड़कर देखने के लिये उसकी ओर दौड़े ॥

तं दीन दीनया वाचा सफेनं रुधिरं वमन् ।
अभ्यभाषत पक्षी स रामं दशरथात्मजम् ॥ ८ ॥
यामोषधीमिवायुष्मन्नन्वेषसि महावने ।
सा देवी मम च प्राणा रावणेनोभयं हृतम् ॥ ९ ॥

अर्थ—तब वह पक्षी अति दीन वाणी से फेन सहित रुधिर बहाता हुआ दशरथसुत राम से बोला कि हे आयुष्मन् ! जिसको आप औषधि=सञ्जीवनी बूटी की भांति इस महावन में खोजते फिरते हैं वह देवी और मेरे प्राण दोनों रावण ने हरे हैं ॥

त्वया विरहिता देवी लक्ष्मणेन च राघव ।
ह्रियमाणा मया दृष्टा रावणेन बलीयसा ॥ १० ॥
सीता मभ्यवपन्नोऽहं रावणश्चरणे प्रभो ।
विध्वंसित रथच्छत्रः पतितो धरणी तले ॥ ११ ॥
एतदस्य धनुर्भग्नमेते चास्य शरास्तथा ।
अयमस्य रणे राम भग्नः सांग्रामिको रथः ॥ १२ ॥

अर्थ—हे राघव ! लक्ष्मण और तुझसे रहित हुई वह देवी मैंने महाबली रावण से हरी जाती हुई देखी, तब सीता को छुड़ाने के लिये मैं प्राप्त हुआ और हे प्रभो ! मैंने रण में उसका रथ तथा छत्र विध्वंस करके उसको पृथिवी पर गिरा दिया, हे राम ! यह उसका धनुष टूटा पड़ा है, यह उसके तीर हैं और यह उसका रण में सांग्रामिक रथ है जो मैंने तोड़ डाला है ॥

परिश्रान्तस्य मे पक्षी छित्वा खड्गेन रावणः ।
सीतामादाय वैदेहीमुत्पपात विहायसम् ॥ १३ ॥

अर्थ—परन्तु जब मैं थकगया तब मेरी भुजाओं को रावण खड्ग से काट सीता को लेकर ऊपर आकाश में उड़गया है ॥

रक्षसा निहतं पूर्वं मां न हन्तुं त्वमर्हसि ।
रामस्तस्य तु विज्ञाय सीतासक्तां प्रियां कथाम्॥१४॥
गृध्रराजं परिष्वज्य परित्यज्य महद्धनुः ।
निपपातावशो भूमौ रुरोद सहलक्ष्मणः ॥ १५ ॥

अर्थ—राक्षस से पूर्व ही मारे हुए मुझको आप मारने योग्य नहीं, रामने उससे सीता सम्बन्धी प्रिय कथा सुनकर गृध्रराज को कण्ठ लगाया, फिर बड़े धनुप को त्यागकर विवस हुए भूमि पर गिर पड़े और लक्ष्मण सहित रुदन करने लगे॥

एकमेकायने कृच्छ्रे निःश्वसन्तं मुहुर्मुहुः।
समीक्ष्य दुःखितो रामः सौमित्रिमिदमब्रवीत्॥१६॥
राज्यं भ्रष्टं वने वासः सीता नष्टा मृतो द्विजः।
ईदृशीयं ममालक्ष्मीर्दहेदपि हि पावकम् ॥१७॥
सम्पूर्णमपि चेदद्य प्रतरेयं महोदधिम् ।
सोऽपि नूनं ममालक्ष्म्या विशुष्येत्सरितांपतिः॥१८॥

अर्थ—अकेले एकान्त में पड़े बार २ श्वास लेते हुए लक्ष्मण को देखकर दुःखित हुए राम उनसे बोले कि राज्य से भ्रष्ट हुए, वन में वास हुआ, सीता खोई गई, द्विज=जटायु मारा गया, ऐसी हम पर अलक्ष्मी=विपत्ति आई जो अग्नि को भी भस्म करसकती है, यदि आज मैं सम्पूर्ण महासागर को भी तैर जाऊं तो वह भी नदियों का पति निःसन्देह मेरी विपत्ति से सूख जायगा॥

नास्त्यभाग्यतरो लोके मत्तोऽस्मिन् सचराचर।
येनेयं महती प्राप्ता मया व्यसनवागुरा ॥१९॥
अयं पितुर्वयस्यो मे गृध्रराजो महाबलः।
शेते विनिहतो भूमौ मम भाग्यविपर्ययात्॥२०॥

इत्येवमुक्त्वा बहुशो राघवः सहलक्ष्मणः ।
जटायुषं च पस्पर्श पितृस्नेहं निदर्शयन् ॥२१॥

अर्थ–इस चराचर जगत में मुझसे बढ़कर कोई अभागा नहीं जो इन बड़ी विपत्तियों की पाश को प्राप्त हुआ है, यह मेरे पिता का मित्र महावली गृध्रराज मेरे भाग्य के विपर्यय=उलटा होने से मरा हुआ पृथिवी पर लेट रहा है, इस प्रकार लक्ष्मण सहित राम बहुत कुछ कहकर पितृस्नेह दिखलाते हुए जटायु को स्पर्श करने लगे ॥

इति सप्तत्रिंशः सर्गः

अथ अष्टत्रिंशः सर्गः

सं०–अब जटायु की मृत्यु तथा उसका दाहकर्म कथन करते हैं:—

स निक्षिप्य शिरो भूमौ प्रसार्य चरणौ तथा ।
विक्षिप्य च शरीरं स्वं पपात धरणीतले ॥१॥
तं गृध्रं प्रेक्ष्य ताम्राक्षं गतासुमचलोपमम् ।
रामः सुबहुभिर्दुःखैर्दीनः सौमित्रिमब्रवीत् ॥२॥

अर्थ–वह जटायु सिर को भूमि पर गिरा, चरण फैला तथा शरीर को अकड़ाकर धरणी तल पर गिर पड़ा, तब उस

लाल नेत्रों वाले गृध्र राजको मरा हुआ देखकर राम बड़े दुःखों से दीन हुए लक्ष्मण से बोले कि :—

बहूनि रक्षसां वासे वर्षाणि वसता सुखम् ।
अनेन दण्डकारण्ये विशीर्णमिह पक्षिणा ॥३॥
अनेकवार्षिको यस्तु चिरकाल समुत्थितः ।
सोऽयमद्य हतः शेते कालो हि दुरतिक्रमः ॥४॥
पश्य लक्ष्मण गृध्रोऽयमुपकारी हतश्च मे ।
मम हेतोरयं प्राणान्मुमोच पतगेश्वरः ॥५॥

अर्थ—हे लक्ष्मण ! राक्षसों के वासभूत इस दण्डकारण्य में चिरकाल तक सुखपूर्वक रहकर अब इस जटायु ने शरीर छोड़ा है, चिरकाल से जन्मा हुआ अनेक वर्षों का होकर यह आज मृत्यु को प्राप्त हो भूमि पर सोया हुआ है सचमुच काल बड़ा दुरतिक्रम=अटल है, देख लक्ष्मण यह मेरा उपकारी गृध्रराज आज मरा है, मेरे कारण इस पक्षीराज ने प्राण छोड़े हैं ॥

सीताहरणजं दुःखं न मे सौम्य तथागतम् ।
यथा विनाशो गृध्रस्य मत्कृते च परंतप ॥६॥
राजा दशरथः श्रीमान्यथा मम महायशाः ।
पूजनीयश्च मान्यश्च तथायं पतगेश्वरः ॥७॥
सौमित्रे हर काष्ठानि निर्मथिष्यामि पावकम् ।
गृध्रराजं दिधक्ष्यामि मत्कृते निधनं गतम् ॥८॥

अर्थ-हे सौम्य ! मुझको सीता के हरण का ऐसा दुःख नहीं हुआ जैसा इस गृध्रराज के विनाश का सन्ताप हुआ है, जिस प्रकार महायशस्वी राजा दशरथ मेरे माननीय तथा पूजनीय थे वैसा ही मेरे लिये यह गृध्रराज है, हे लक्ष्मण ! इन्धन ला मैं अग्नि मथकर निकाल लूंगा और इस गृध्रराज का जो मेरे अर्थ मृत्यु को प्राप्त हुआ है दाहकर्म करूंगा ॥

या गतिर्यज्ञशीलानामाहिताग्नेश्च या गतिः ।
अपरावर्तिनां याच याच भूमिप्रदायिनाम् ॥९॥
मया त्वं समनुज्ञातो गच्छलोकाननुत्तमान् ।
गृध्रराज महासत्त्व संस्कृतश्च मयाव्रज ॥१०॥

अर्थ-यह कह चिता बनाय राम ने गृध्रराज को कहा कि यज्ञ करने वाले तथा आहिताग्नि=जिनकी यज्ञाग्नि कभी नहीं बुझती वह जिस गति को प्राप्त होते हैं उसी गति को तुम प्राप्त होओ अथवा युद्ध में न भागने वाला तथा भूमि दान करने वाला जिस गति को प्राप्त होता है वही गति तुम्हें प्राप्त हो, हे महापराक्रमी गृध्रराज ! मुझसे संस्कार किये जाने तथा मेरे आशीर्वाद से तुम अनुत्तम लोकों=उच्चगति को प्राप्त होओ ॥

एवमुक्त्वा चितां दीप्तामारोप्य पतगेश्वरम् ।
ददाह रामो धर्मात्मा स्वबन्धुमिव दुःखितः ॥११॥
ततो गोदावरीं गत्वा नदीं नरवरात्मजौ ।
उदकं च क्रतुस्तस्मै गृध्रराजाय तावुभौ ॥१२॥

अर्थ—यह कहकर पक्षिराज जटायु को जलती हुई चिता पर चढ़ा दुःखित हुए धर्मात्मा राम ने अपने बन्धु की न्याईं उसका संस्कार किया, तदनन्तर वह दोनों राजपुत्र गोदावरी नदी के तट पर गये और वहां उन्होंने उस गृध्रराज के निमित्त उदक कर्म किया ॥

इति अष्टत्रिंशः सर्गः

अथ एकोनचत्वारिंशः सर्गः

सं०—अब कबन्ध राक्षस का बध कथन करते हैं :—

कृत्वैवमुदकं तस्मै प्रस्थितौ राघवौ तदा ।
अवेक्षन्तौ वने सीतां जग्मतुः पश्चिमां दिशम् ॥१॥
तां दिशं दक्षिणां गत्वा शरचापासिधारिणौ ।
अविप्रहतमैक्ष्वाकौ पन्थानं प्रतिपेदतुः ॥ २ ॥
गुल्मैर्वृक्षैश्च बहुभिर्लताभिश्च प्रवेष्टितम् ।
आवृतं सर्वतो दुर्गं गहनं घोरदर्शनम् ॥ ३ ॥

अर्थ—उक्त प्रकार गृध्रराज सम्बन्धी उदककर्म करके वह दोनों भाई सीता को वन में ढूढ़ते हुए पश्चिम दिशा को गये, फिर उस पश्चिम दिशा से दक्षिण दिशा में जाकर धनुषबाण तथा खड्गधारी इक्ष्वाकुवंशी दोनों भाई मनुष्यों से न चले हुए मार्ग को प्राप्त हुए जो बहुत से झाड़, वृक्ष तथा बेलों से

आच्छादित, सब ओर से घिरा हुआ दुर्गम, गहन=घना और जो बड़ा भयङ्कर था ॥

व्यतिक्रम्य तु वेगेन गृहीत्वा दक्षिणां दिशम् ।
सुभीमं तन्महारण्यं व्यतियातौ महाबलौ ॥४॥
ततः परं जनस्थानात्त्रिक्रोशं गम्य राघवौ ।
क्रौञ्चारण्यं विविशतुर्गहनं तौ महौजसौ ॥ ५ ॥
नानामेघघनप्रख्यं प्रहृष्टमिव सर्वतः ।
नानावर्णैः शुभैः पुष्पैर्मृगपक्षिगणैर्युतम् ॥ ६ ॥

अर्थ–उस भयङ्कर जङ्गल को बड़े वेग से लांघ दक्षिण दिशा को ग्रहणकर वह महाबली बड़े भयानक महावन से पार होगये, और उससे आगे जनस्थान से तीन कोस जाकर वह बलसम्पन्न दोनों भाई अति गहन क्रौञ्चारण्य को प्राप्त हुए, जो नाना मेघसमूह की भांति श्याम, अनेक रङ्गों से सुन्दर, पुष्प तथा मृग पक्षीगणों से युक्त मानो सब ओर से प्रसन्न हुए के समान था ॥

दिदृक्षमाणौ वैदेहीं तद्वनं तौ विचिन्वतुः ।
तत्र तत्रावतिष्ठन्तौ सीताहरणदुःखितौ ॥ ७ ॥
ततः पूर्वेण तौ गत्वा त्रिक्रोशं भ्रातरौ तदा ।
क्रौञ्चारण्यमतिक्रम्य मतङ्गाश्रममन्तरे ॥ ८ ॥
दृष्ट्वा तु तद्वनं घोरं बहुभीममृगद्विजम् ।
नानावृक्षसमाकीर्णं सर्वं गहनपादपम् ॥ ९ ॥

अर्थ–सीता के दर्शन की इच्छा वाले, सीता हरण से दुःखित हुए २ वहां विश्राम करके उस वन को खोजने गये, तदनन्तर वह दोनों भाई पूर्व की ओर तीन कोस जाकर क्रौञ्च वन को लांघ मध्य में मतङ्ग ऋषि के आश्रम को देख फिर उन्होंने बहुत भयङ्कर मृग तथा पक्षियों से युक्त नाना वृक्षों से घिरे हुए, घने वृक्षों वाले मतङ्ग वन को देखा ॥

दद्दशाते गिरौ तत्र दरीं दशरथात्मजौ ।
पातालसमगम्भीरां तमसा नित्यसंवृताम् ॥ १० ॥
तयोरन्वेषतोरेवं सर्वं तद्वनमोजसा ।
संजज्ञे विपुलः शब्दः प्रभञ्जन्निव तद्वनम् ॥११॥
तं शब्दं कांक्षमाणस्तु रामः खड्गी सहानुजः ।
ददर्श सुमहाकायं राक्षसं विपुलोरसम् ॥ १२ ॥

अर्थ–और वहीं एक पर्वत में दोनों भाइयों ने पाताल तुल्य गहरा, अन्धेरे से सदा ढका हुआ एक दरा देखा, इस प्रकार पराक्रम से उस सारे वन को खोजते हुए उनको एक महान् शब्द उस वन को चीरते हुए के समान सुनाई दिया, उस शब्द का पता लगाते हुए भाई सहित तलवार लिये हुए राम को एक बहुत बड़े शरीर वाला तथा विशाल छाती वाला राक्षस दृष्टिगत हुआ ॥

महान्तं दारुणं भीमं कबन्धं भुजसंवृतम् ।
कबन्धमिव संस्थानादतिघोरप्रदर्शनम् ॥ १३ ॥

स महाबाहुरत्यर्थं प्रसार्य्य विपुलौ भुजौ ।
जग्राह सहितावेष राघवौ पीडयन् बलात् ॥१४॥
ततस्तौ देशकालज्ञौ खड्गाभ्यामेव राघवौ ।
अच्छिन्दन्तां सुसंहृष्टौ बाहू तस्यां सदेशयोः॥१५॥

अर्थ–जो बहुत बड़ा, दारुण, बड़े कर्मों वाला तथा बड़ी भुजाओं वाला, अति भयङ्करदर्शन और जो बनावट में कबन्ध की भांति कबन्ध नामक राक्षस था, उसने अपनी विशाल भुजायें फैलाकर उन दोनों भाइयों को बल से पीड़न करता हुआ एक साथ पकड़ लिया, तदनन्तर देशकाल के जानने वाले दोनों राघवों ने अति प्रसन्न हो तलवारों द्वारा कन्धों पर से उसकी दोनों भुजायें काटदीं ॥

दक्षिणो दक्षिणं बाहुमसक्तमसिना ततः ।
चिच्छेद रामो वेगेन सव्यं वीरस्तु लक्ष्मणः ॥१६॥
स पपात महाबाहुश्छिन्नबाहुर्महास्वनः ।
खं च गां च दिशश्चैव नादयञ्जलदो यथा ॥१७॥

अर्थ–दक्षिण=दाईं भुजा को बुद्धिमान राम ने और बाईं को वीर लक्ष्मण ने बड़े वेग से तलवार द्वारा काट दिया, तब वह बड़ी भुजाओं वाला भुजाओं के कटजाने से घोर ध्वनि करता हुआ मेघ के समान आकाश, पृथिवी तथा दिशाओं में नाद करके भूमि पर गिर पड़ा ॥

सनिकृत्तौ भुजौ दृष्ट्वा शोणितौघपरिप्लुतः ।
दीनः पप्रच्छती वीरौ कौ युवामिति दानवः ॥१८॥

अयमिक्ष्वाकुदायादो रामो नाम जनैः श्रुतः ।
तस्यैवावरजं विद्धि भ्रातरं मां च लक्ष्मणम् ॥१९॥

अर्थ—तत्पश्चात् वह अपनी दोनों भुजायें कटी देखकर रुधिर से लिपटा हुआ, दीन होकर दोनों वीरों से बोला कि आप कौन हैं, तब लक्ष्मण ने कहा कि यह इक्ष्वाकुवंशियों के राजा लोगों में राम नाम से प्रसिद्ध हैं और इनका छोटा भाई मुझे जान मेरा नाम लक्ष्मण है ॥

अस्य देवप्रभावस्य वसतो विजने वने ।
रक्षसापहृता भार्या यामिच्छंता विहागतौ ॥२०॥

अर्थ—इन देव के प्रभाव से इस निर्जन वन में वास करते हुए इनकी भार्या राक्षस हरलेगया है उसी की खोज में हम लोग यहां आये हैं ॥

श्रूयतां राम वक्ष्यामि सुग्रीवो नाम वानरः ।
भ्रात्रा निरस्तः क्रुद्धेन वालिनाशक्रसूनुना ॥२१॥
ऋष्यमूके गिरवरे पंपापर्यन्तशोभिते ।
निवसत्यात्मवान्वीरश्चतुर्भिःसहवानरैः ॥२२॥

अर्थ—हे राम ! मेरे कथन को सुनो, एक सुग्रीव नाम वानर है जिसके भाई वालि ने उसको क्रुद्ध होकर घरसे निकाल दिया है और जो पंपासर के निकट ऋष्यमूक पर्वत पर चार वानरों के साथ रहता है ॥

कृतज्ञः कामरूपी च सहायार्थी च वीर्य्यवान् ।
शक्तौ ह्यद्य युवां कर्तुं कार्यं यस्य चिकीर्षितम् ॥२३॥

अर्थ—वह बड़ा कृतज्ञ, कामरूपी=कई प्रकार के रूप धारण करने वाला, सहायक और बड़ा बलवान् है वह सीता की खोज करदेगा और जो वह कार्य्य कहे आप लोग भी यथाशक्ति उसका कार्य्य करदें ॥

इति एकोनचत्वारिंशः सर्गः

अथ चत्वारिंशः सर्गः

सं०—अब राम का शबरी भीलनी से मिलाप कथन करते हैं:—

तौ कबन्धेन तं मार्गं पम्पाया दर्शितं वने ।
आतस्थतुर्दिशं गृह्य प्रतीचीं नृवरात्मजौ ॥१॥
तौ शैलेष्वाचितानेकान् क्षौद्रपुष्पफलद्रुमान् ।
वीक्षन्तौ जग्मतुर्द्रष्टुं सुग्रीवं रामलक्ष्मणौ ॥२॥
कृत्वा तु शैलपृष्ठे तु तौ वासं रघुनन्दनौ ।
पम्पायाः पश्चिमं तीरं राघवावुपतस्थतुः ॥३॥
तौ पुष्करिण्याः पम्पायास्तीरमासाद्य पश्चिमम्।
अपश्यतां ततस्तत्र शबर्या रम्यमाश्रमम् ॥४॥

अर्थ—वह दोनों राजकुमार कबन्ध के बतलाये हुए पम्पा के मार्ग में पश्चिम दिशा की ओर चल पड़े, और दोनों राम लक्ष्मण मार्ग में पर्वतों पर नाना प्रकार के फले फूले वृक्षों को देखते हुए सुग्रीव को देखने गये, रात्रि भर एक पर्वत पर निवास

करके दोनों भाई प्रातःकाल पम्पा के पश्चिमी तीर पर पहुंचे और वहां उसी तीर पर शबरी भीलनी का रमणीय आश्रम देखा ॥

तौ तमाश्रममासाद्यद्रुमैर्बहुभिरावृतम् ।
सुरम्यमभिवीक्षन्तौ शबरीमभ्युपेयतुः ॥५॥
तौ दृष्ट्वा तु तदासिद्धा समुत्थाय कृताञ्जलिः ।
पादौ जग्राह रामस्य लक्ष्मणस्य च धीमतः ॥६॥
पाद्यमाचमनीयं च सर्वं प्रादाद्यथाविधि ।
तामुवाच ततो रामः श्रमणीं धर्मसंस्थिताम् ॥७॥

अर्थ—और बहुत घने वृक्षों से आच्छादित उस सुरम्य आश्रम को प्राप्त हो उसकी शोभा निहारते हुए शबरी के समीप आये, उस सिद्धनी ने उनको देख उठकर हाथ जोड़ बुद्धिमान् राम तथा लक्ष्मण के पांव छुए, और पाद्य तथा आचमनीय आदि सब सत्काराहं पदार्थ यथाविधि दिये, तब धर्म में स्थित उस भीलनी से राम बोले कि :—

कच्चित्ते निर्जिता विघ्नाः कच्चित्ते वर्धते तपः ।
कच्चित्ते नियतः कोप आहारश्च तपोधने ॥८॥
कच्चित्ते नियमा प्राप्ता कच्चित्ते मनसः सुखम् ।
कच्चित्ते गुरुशुश्रूषा सफला चारुभाषिणि ॥९॥
रामेण तापसी पृष्टा सा सिद्धा सिद्धसंमता ।
शशंस शबरी वृद्धा रामाय प्रत्यवस्थिता ॥१०॥

अर्थ—हे तपोधने ! क्या तुम्हारे सब विघ्न शान्त होगये हैं, क्या तुम्हारा तप बढ़ रहा है, और क्या कोप तथा आहार तुम ने वशीभूत कर लिये हैं, क्या तुम्हारे नियम तो सब भले प्रकार चले जाते हैं, क्या तुम्हारा मन तो सुखी रहता है, हे चारुभाषिणि ! गुरुओं की कीहुई सेवा तो सफल है ? राम के इस प्रकार पूछने पर सिद्धों से मान प्राप्त कीहुई वह सिद्धा तपस्विनी शबरी सन्मुख स्थित राम से बोली कि :—

अद्य प्राप्ता तपः सिद्धिस्तव संदर्शनान्मया ।
अद्य मे सफलं जन्म गुरवश्च सुपूजिताः ॥११॥
अद्य मे सफलं तप्तं स्वर्गश्चैव भविष्यति ।
त्वयिदेववरे राम पूजिते पुरुषर्षभ ॥१२॥
तवाहं चक्षुषा सौम्य पूता सौम्येनमानद ।
गमिष्याम्यक्षयांल्लोकांस्त्वत्प्रसादादरिंदम ॥१३॥
चित्रकूटं त्वयि प्राप्ते विमानैरतुलप्रभैः ।
इतस्ते दिवमारूढा यानहं पर्यचारिषम् ॥१४॥

अर्थ—आज आपके दर्शन से मेरा तप सफल हुआ, मेरा जन्म सफल हुआ और गुरुओं की कीहुई पूजा भी सफल है, आज मेरा तप सफल हुआ और हे पुरुषश्रेष्ठ ! यह भी आशा हुई कि मैं उच्च अवस्था को प्राप्त होउंगी, क्योंकि हे देव ! मैंने आपकी पूजा की है, हे मान के देने वाले ! तुम्हारे सौम्य नेत्रों की सौम्य दृष्टि से मैं पवित्र हुई, और अब मैं आपके प्रसाद से अक्षय लोकों को प्राप्त होउंगी, जब आप चित्रकूट में पहुंचे

थे उसी समय वह अतुल प्रभा वाले महर्षि विमानों द्वारा यहां से स्वर्ग को चले गये जिनकी मैं सेवा करती रही हूं॥

तैश्चाहमुक्ता धर्मज्ञैर्महाभागैर्महर्षिभिः ।
आगमिष्यति ते रामः सुपुण्यमिममाश्रमम् ॥१५॥
स ते प्रतिग्रहीतव्यः सौमित्रिसहितोऽतिथिः ।
तं च दृष्ट्वा वरांल्लोकानक्षयांस्त्वं गमिष्यसि ॥१६॥
मया तु संचितं वन्यं विविधं पुरुषर्षभ ।
तवार्थे पुरुषव्याघ्र पम्पायास्तीरसम्भवम् ॥१७॥
शबरी दर्शयामास ताबभौ तद्वनं महत् ।
पश्य मेघघनप्रख्यं मृगपक्षिसमाकुलम् ॥१८॥

अर्थ–और शरीर त्याग समय उन धर्मज्ञ महाभाग महर्षियों ने मुझसे कहा कि राम तेरे इस पुण्य आश्रम में आवेंगे, और तू लक्ष्मण सहित उनका अतिथि सत्कार करना, उनके दर्शन=सत्संग से तू स्वर्ग को प्राप्त होगी, सो हे पुरुषश्रेष्ठ! मैंने आपके लिये पम्पा के किनारे पर होने वाले भांति २ के जङ्गली फल एकत्रित किये हुए हैं, फिर शबरी ने उनको वह बड़ा वन दिखलाया और कहा कि आप इस वन को देखें जो मेघ घटा के तुल्य श्याम होरहा है और जो मृग तथा पक्षियों से भरपूर है ॥

मतंगवनमित्येव विश्रुतं रघुनन्दन।
इह ते भावितात्मानो गुरवो मे महाद्युते ।
जुहवांचक्रिरे नीडं मन्त्रवन्मन्त्रपूजितम् ॥ १९ ॥

कृत्स्नं वनमिदं दृष्टं श्रोतव्यं च श्रुतं त्वया ।
तदिच्छाम्यभ्यनुज्ञाता त्यक्ष्याम्ये तत्कलेवरम् ॥२०॥
तेषामिच्छाम्यहं गन्तुं समीपं भावितात्मनाम् ।
मुनीनामाश्रमो येषामहं च परिचारिणी ॥ २१ ॥

अर्थ—हे रघुनन्दन ! यही मतङ्ग वन विख्यात है, हे महा तेजस्वी ! यहीं मेरे शुद्धात्मा गुरुओं ने वेदानुसार मन्त्रों से पूजित यज्ञ किया था, आपने यह सारा वन देख लिया और सुनने योग्य बात सुनली, अब मैं आपसे आज्ञा पाकर इस शरीर को छोड़ उन शुद्धात्मा मुनियों के समीप जाना चाहती हूं जिनका यह आश्रम है और जिनकी मैं चिरकाल तक सेवक रही हूं ॥

तामुवाच ततो रामः शवरीं संशितव्रताम् ।
अर्चितोऽहं त्वया भद्रे गच्छकामं यथासुखम् ॥२२॥
इत्येवमुक्त्वा जटिला चीरकृष्णाजिनाम्बरा ।
ज्वलत्पावकसंकाशा स्वर्गमेव जगाम ह ॥ २३ ॥
यत्र ते सुकृतात्मानो विहरन्ति महर्षयः ।
तत्पुण्यं शवरी स्थानं जगामात्मसमाधिना ॥२४॥

अर्थ—तदनन्तर उस तीक्ष्ण व्रतों वाली शवरी से राम ने कहा कि हे भद्रे ! अब आपसे हमारा अतिथि सत्कार भलेप्रकार होचुका, अब आप इच्छानुसार सुखपूर्वक जायं, राम के इस प्रकार कथन करने पर वह जटाधारी, चीर तथा काला मृगान पहने

हुए, जलती हुई अग्नि के समान तेज वाली स्वर्ग को प्राप्त हुई अर्थात् जहां वह पुण्यात्मा महर्षि उसके गुरु विचरते हैं वहीं पर वह शबरी आत्मसमाधि द्वारा उस पुण्य स्थान को चलीगई ॥

इति चत्वारिंशः सर्गः

अथ एकचत्वारिंशः सर्गः

सं०—अब राम, लक्ष्मण का पम्पा पर जाना कथन करते हैं।—

चिन्तयित्वा तु धर्मात्मा प्रभावं तं महात्मनाम् ।
हितकारिणमेकाग्रं लक्ष्मणं राघवोऽब्रवीत् ॥ १ ॥
दृष्टो मयाश्रमः सौम्य बह्वाश्चर्यः कृतात्मनाम् ।
विश्वस्तमृगशार्दूलो नाना विहगसेवितः ॥ २ ॥
प्रनष्टमशुभं यन्नः कल्याणं समुपस्थितम् ।
तेन त्वेतत्प्रहृष्टं मे मनो लक्ष्मण सम्प्रति ॥ ३ ॥

अर्थ—धर्मात्मा राम महात्माओं के उस प्रभाव को चिन्तन करते हुए अपने हितकारी एकाग्रचित्त लक्ष्मण से बोले कि हे सौम्य ! हमने इन महात्माओं का अति आश्चर्य्ययुक्त आश्रम देखा जिसमें मृग शार्दूल आदि तथा नाना प्रकार के पक्षी वैरभाव छोड़कर एकही स्थान पर विचरते हैं, हे लक्ष्मण ! अब हमारे सब अशुभकर्म नष्ट होकर कल्याण उपस्थित हुआ है, क्योंकि इस समय मेरा मन बड़े आनन्द को प्राप्त होरहा है ॥

हृदये मे नरव्याघ्र शुभमाविर्भविष्यति ।
तदागच्छ गमिष्यावः पम्पां तां प्रियदर्शनाम् ॥४॥
ऋष्यमूको गिरिर्यत्र नातिदूरे प्रकाशते ।
यस्मिन्वसतिधर्मात्मा सुग्रीवोंऽशुमतःसुतः ॥५॥
अहं त्वरे च तं द्रष्टुं सुग्रीवं वानरर्षभम् ।
तदधीनं हि मे कार्यं सीतायाः परिमार्गणम् ॥ ६ ॥

अर्थ–हे नरश्रेष्ठ ! अब मेरे हृदय में शुभ प्रगट होगा सो आओ उस प्रियदर्शन वाली पम्पा पर चलें, जहां निकट ही ऋष्यमूक पर्वत शोभा देरहा है और जिसमें सूर्य्यपुत्र धर्मात्मा सुग्रीव निवास करता है, मैं उस वानरश्रेष्ठ सुग्रीव को शीघ्र ही मिलना चाहता हूं, क्योंकि उसके अधीन मेरा कार्य्य है वह अवश्य सीता की खोज करेगा ॥

इति ब्रुवाणं तं वीरं सौमित्रिरिदमब्रवीत् ।
गच्छावस्त्वरितं तत्रममापि त्वरते मनः ॥ ७ ॥
आश्रमात्तु ततस्तस्मान्निष्क्रम्य स विशांपतिः ।
आजगाम ततः पम्पां लक्ष्मणेन सह प्रभुः ॥ ८ ॥

अर्थ–राम के उक्त प्रकार कथन करने पर लक्ष्मण बोले कि वहां शीघ्र चलें, मेरा मन भी वहां जाने के लिये शीघ्रता कर रहा है, तब वह प्रजाओं के स्वामी राम उस आश्रम से निकलकर लक्ष्मण सहित पम्पा पर आये ॥

समीक्षमाणः पुष्पाढ्यं सर्वतो विपुलद्रुमम् ।

कोयष्टिभिश्चार्जुनकैः शतपत्रैश्च कीचकैः।
तत्र जग्मतुरव्यग्रौ राघवौ हि समाहितौ ॥ ९ ॥

अर्थ—और वहां सम्पूर्ण वृक्षों को चहुं ओर पुष्पों से युक्त देखा जहां कोकिल, मयूर=मोर, सुआ तथा मैना आदि नाना प्रकार के पक्षी उस महावन में बोल रहे थे, वहां पर एकाग्रचित्त हुए दोनों भाई विचरने लगे।

रम्योपवनसंबाधां रम्यसंपीडितोदकाम्।
स्फटिकोपमतोयां तां श्लक्ष्णवालुकसन्तताम्॥१०॥
पद्मसौगन्धिकैस्ताम्रां शुक्लां कुमुदमण्डलैः।
नीलां कुबलयोद्धाटैर्बहुवर्णां कुथामिव ॥ ११ ॥

अर्थ—वह अति रमणीय उपवनों से सुशोभित, बिल्लौर के तुल्य स्वच्छ जलवाली, गहरे जल वाली, नीचे फैले हुए शुद्ध रेत वाली, सौगन्धिक कमल पुष्पों से लाल, कुमुदों के समूहों से श्वेत, और नील कमलों के पुष्पों से नीली, इस प्रकार विविध रंगों से अनेक रंगों वाले गलीचे की न्याईं शोभायमान थी ॥

क्रमेण गत्वा प्रविलोकयन्वनं ददर्शपम्पां
शुभदर्शन काननम्। अनेक नानाविध
पक्षि संकुलां विवेश रामः सहलक्ष्मणेन ॥ १२ ॥

अर्थ–इस प्रकार क्रमपूर्वक बन को देखते हुए पम्पा को देखा, फिर सुन्दर प्रेक्षणीय बन से उपयुक्त नाना प्रकार के पक्षि समूहों से समाकुल पम्पा के समीप लक्ष्मण सहित राम ने प्रवेश किया ॥

इति एकचत्वारिंशः सर्गः

समाप्तश्चेदं अरण्यकाण्डम्

इति श्रीमदार्य्यमुनिनोपनिबद्धे बाल्मीकीये रामायणे पूर्वार्द्ध समाप्तम्

स्वामी ओमानन्द जी की रचनाएँ

पुस्तक	मूल्य	पुस्तक	मूल्य
१. हरयाणा के प्राचीन मुद्रांक	५०१.००	३१. हरयाणा की संस्कृति	१.००
२. हरयाणा के प्राचीन लक्षणस्थान	२००.००	३२. रूस में १५ दिन	१.५०
		३३. मेरी विदेश यात्रा	१.५०
३. वीरभूमि हरयाणा	५.००	३४. जापान यात्रा	२.००
४. शेरशाह सूरी	१.००	३५. काला पानी यात्रा	१.५०
५. वीर हेमू	१.००	३६. नैरोबी यात्रा	१.५०
५. मांस मनुष्य का भोजन नही	१.००	३७. शराब से सर्वनाश	.५०
७. ब्रह्मचर्यामृत	.५०	३८. घरेलू औषध हल्दी	१.२५
८. बालविवाह से हानियां	.२५	३९. घरेलू औषध लवण	१.२५
९. स्वप्नदोषचिकित्सा	.५०	४०. घरेलू औषध मिर्च	१.५०
१०. बिच्छूविष चिकित्सा	.२५	४१. भारतीय जड़ी बूटी आक	२.५०
११. सर्पविष चिकित्सा	४.००	४२. ,, ,, नीम	१.५०
१२. पापों की जड़ (शराब)	.७५	४३. ,, ,, पीपल	१.५०
१३. हमारा शत्रु (तम्बाकू)	.३५	४४. ,, ,, बड़	१.५०
१४. नेत्र रक्षा	१.५०	४५. ,, ,, सिरस	१.५०
१५. व्यायाम का महत्त्व	.६०	४५. गोदुग्ध अमृत है	५.००
१६. रामराज्य कैसे हो	.५०	४७. शाक भाजी से चिकित्सा	२.५०
१७. हरयाणा के वीर यौधेय	७.००	४८. आर्य समाज के बलिदान	१६.००
१८. २८ ब्रह्मचर्य के साधन १ से ११ भाग	१६.७५	**अप्रकाशित ग्रन्थ**	
		४९. योरोप यात्रा	
२९. श्लीपद चिकित्सा	.५०	५०. भारत के प्राचीन शस्त्रास्त्र	
३०. हरयाणा का संक्षिप्त इतिहास	१.००	५१. महारानी सीता	
		५२. महाराजा नाहरसिंह	

प्रकाशक

हरयाणा साहित्य संस्थान, गुरुकुल, झज्जर, रोहतक

आर्यसमाज के नियम

१—सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उन सबका आदि मूल परमेश्वर है।

२—ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्ता है, उसी की उपासना करनी योग्य है।

३—वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।

४—सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए।

५—सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहिय।

६—संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है—अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।

७—सबसे प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य वर्तना चाहिए।

८—अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिए।

९—प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट न रहना चाहिए, किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए।

१०—सब मनुष्य को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिए और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें।
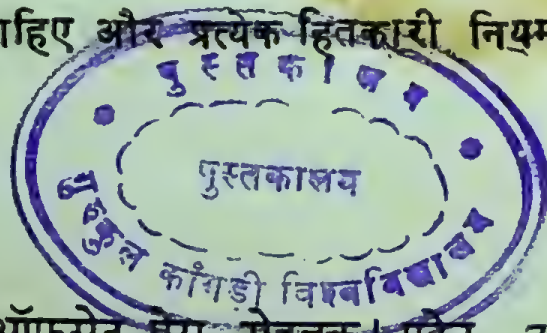
मुद्रक - आचार्य ऑफसेट प्रेस, रोहतक। फोन - 72874